शास्त्री निर्मला योगभा...

पं० रामानुजाचार्य

आदि शंकराचार्य मुनि

महर्षि पाणिनि मुनि

दण्डी गुरू विरजानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द सरस्वती

पं० ब्रह्मदत्त जि...

णिनि स्मारक

उमा आर्या

उत्तर प्रदेश तथा उत्तराखण्ड की इंण्टरमीडिएट कक्षाओं के लिए
स्वीकृत नवीनतम् संशोधित पाठ्यक्रमानुसार

माध्यमिक

भारत-भूमि का इतिहास

(1526 ई0 से आधुनिक काल तक)

Uma arya
उमा आर्या

इण्टरमीडिएट कक्षाओं के लिए

द्वितीय भाग

(निबन्धात्मक, कथनात्मक, अति लघु, लघु, बहु-विकल्पीय प्रश्नों एवं ऐतिहासिक तिथियों सहित)

लेखक
शिवनारायण सिंह राना
एम०ए० (इतिहास, राजनीति विज्ञान)
अवकाशप्राप्त-प्रवक्ता (उप-प्रधानाचार्य)
शुकदेव इण्टर कॉलेज, खागा, फतेहपुर

संशोधनकर्ता
स्वदेश सिंह राना, एम.ए.

हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन्स प्रा० लि०
सी० 21/30, पिशाचमोचन, वाराणसी-221010

नवीन संशोधित संस्करण (2009-2010) मूल्य-85.00

प्रकाशक :
विजय प्रकाश बेरी
हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन्स प्रा. लि.
सी. 21/30, पिशाचमोचन, वाराणसी-221010
फोन : 2410425
फैक्स : (0542) 2410670

पहला संस्करण : जुलाई, 1972
40वाँ संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण, जुलाई 2009

लेखक : सम्पर्क-सूत्र
शिवनारायण सिंह राना
बांकी रोड, भरुवा-सुमेरपुर
जनपद : हमीरपुर (उ. प्र.)
पिन : 210502
मोबाइल : 9451653952, 9455073273, 9455073274
rana-swadesh@rediff.com

कम्प्यूटराइज्ड
एच0पी0एस0 इन्टरनेशनल प्रा0लि0
पिशाचमोचन, वाराणसी-221010

मुद्रक :
रत्ना ऑफसेट्स लिमिटेड,
कमच्छा, वाराणसी

अविस्मरणीय अतीत

'सैनिक क्रान्ति (1857 का प्रथम स्वाधीनता संग्राम) के समय हिन्दुस्तान का बादशाह था बहादुरशाह द्वितीय। वह कवि भी था। उसका कविता का उपनाम 'ज़फर' था। सैनिक क्रान्ति की विफलता, दिल्ली की बरबादी और अपनी बेबसी से बेहद खिन्न होकर उसने निम्नलिखित शेर कहा था :

दमदमें में दम नहीं, अब खैर मानो जान की।
ऐ 'ज़फर' ठण्डी हुई, शमशीर हिन्दुस्तान की।

एक तेजस्वी एवं निर्भीक नौजवान ने उसका उत्तर दिया था :

ग़ाजियों में बू रहेगी जब तलक ईमान की।
तब तो लंदन तक चलेगी, तेग हिन्दुस्तान की।।

नौजवान के उत्तर ने 1859 के प्रारम्भ में एक अकथनीय अंग्रेज विरोधी भावना को जाग्रत कर दिया, जो 'वन्देमातरम्' और 'हिन्दू-मुसलमान की जय' आदि नारों में परिणत होती हुई अन्त में 'भारत-छोड़ो आन्दोलन' के रूप में प्रकट हुई।

अन्ततः शहीद मंगल पाण्डेय द्वारा की गई क्रान्ति की शुरुआत अनेक उतार-चढ़ाव की दशाओं से गुजरती हुई सन् 1947 के अगस्त माह की 15 तारीख को पूर्ण हुई।'

अविस्मरणीय कथन

'इतिहास सत्य की प्रतिमूर्ति होता है, उसका साम्प्रदायिकता, दंगे-फसाद, हिन्दू-मुस्लिम, अच्छा-बुरा से कोई संबंध नहीं होता, वह तो केवल हमें अतीत का दर्शन कराता है।'

× × × ×

'प्रत्येक धर्म की संस्कृति लोगों को सुसंस्कृत करती है। बालक को कुसंस्कृतियाँ पढ़ा कर स्वामी विवेकानन्द नहीं बनाया जा सकता। जिसे अपने धर्म पर विश्वास नहीं, वह दूसरे के धर्म का सम्मान नहीं कर सकता।'

प्रस्तावना

"माध्यमिक भारत-भूमि का इतिहास" (द्वितीय भाग) माध्यमिक शिक्षा-परिषद उ. प्र. के नवीनतम पाठ्यक्रम के अनुसार लिखा गया है। इस प्रकार इसमें भारतीय इतिहास के उत्तर, मध्यकाल और आधुनिक काल का विशद आकलन किया गया है। इसके प्रारम्भ में अपने देश के इतिहास के प्रसिद्ध राजवंश मुगलवंश का तो विस्तृत विवेचन है ही, साथ ही उस ऐतिहासिक पीठिका को भी स्पष्ट किया गया है, जिसके आधार पर अंग्रेजी राज्य की स्थापना हुई थी। अतः इस पुस्तक में कथ्य और तथ्य दोनों के सामंजस्य का यथोचित ध्यान रखा गया है।

मुगलवंश की स्थापना और अंग्रेजों का हमारे देश में आगमन भारतीय इतिहास की दो महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं। इनसे हमारे देश की सभ्यता और संस्कृति में व्यापक रूप से उत्क्रांति हुई। यही नहीं, आधुनिक काल की इस पृष्ठभूमि में सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना भारतीय स्वतन्त्रता है। अपने देश के गत वर्षों के जीवन में कैसी परिस्थितियाँ रहीं, यहाँ प्रजातान्त्रिक शासन प्रणाली की किस प्रकार स्थापना हुई और अंग्रेजी शासन के दो सौ वर्षों की पराधीनता के कारण हमारे विकास में कितने गत्यावरोध आये– इन सब पर यहाँ विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है।

इस पुस्तक के लिखने में छात्रों की सुविधाओं का विशेष रूप से ध्यान रखा गया है। जहाँ तक सम्भव था, अनावश्यक सामग्री को हटा दिया गया है। ऐसी दशा में विद्यार्थियों को प्रश्न और उनके उत्तर ढूँढने में तनिक भी कठिनाई न होगी। विषय का विवेचन तर्कपूर्ण एवं वैज्ञानिक आधार पर किया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में इण्टरमीडिएट परीक्षा के प्रश्न-पत्र भी दे दिये गये हैं, जिससे प्रश्नों के अनुसार अभ्यास करने में छात्रों को विशेष सुविधा होगी। साथ ही, अन्त में भारतीय इतिहास की प्रमुख तिथियाँ दी गयी हैं।

आशा है, अपने वर्तमान रूप में यह पुस्तक छात्रों एवं पाठकों, दोनों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना में जिन विद्वानों के मतों एवं कृतियों से सहायता मिली है, उनके प्रति लेखक हृदय से कृतज्ञ है। पुस्तक के प्रति सुझावों एवं त्रुटियों की ओर संकेत करने वाले लोगों के विचारों का स्वागत किया जायेगा।

महाशिवरात्रि, 1972

लेखक

पाठ्यक्रम : द्वितीय प्रश्नपत्र

(1526 से वर्तमान समय तक)

1. मुगल साम्राज्य की स्थापना-बाबर हुमायूँ।
2. मध्यान्तर-सूर साम्राज्य-शेरशाह सूरी। चरित्र, शासन प्रबन्ध, धार्मिक सहिष्णुता।
3. मुगल साम्राज्य का द्वितीय चरण :-
   साम्राज्य का विस्तार – अकबर से औरंगजेब तक।
   राष्ट्रीयता का बीजारोपण – अकबर के कार्य, सामाजिक एवं धार्मिक सुधार, धार्मिक नीति।
   निर्माण का युग – ऐतिहासिक भवन, अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ की देन।
   औरंगजेब – राष्ट्रीय एकता पर आघात, साम्राज्य का पतन।
4. मुगलकालीन शासन व्यवस्था, समाज, कला एवं साहित्य।
5. शिवाजी – शासन प्रबंध, चरित्र, मूल्यांकन।
6. यूरोपीय शक्तियों का भारत में प्रवेश-सत्ता के लिए संघर्ष, भारतवासियों में एकता का अभाव। अंग्रेजों का व्यापार से राजनीति में प्रवेश।
7. अंग्रेजी कम्पनी का विस्तार – साम्राज्यवादी नीति 1740-1856, संक्षेप में क्लाइव से डलहौजी तक का घटना-चक्र।
8. कम्पनी की शासन नीति एवं वैधानिक विकास 1773-1856।
9. सामाजिक चेतना – राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, एनी बेसेण्ट, जस्टिस रानाडे, राष्ट्रीयता की भावना का जन्म, नवनिर्माण-रेल, तार, डाक आदि।
10. 1857 – स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष – कारण, स्वरूप परिणाम।
11. कांग्रेस की स्थापना – शोषण के प्रति जनजागरण, शिक्षा का विस्तार।
12. राष्ट्रीय आन्दोलन 1858-1919 कांग्रेस नीति में परिवर्तन, तिलक, गोखले।
13. राजनीति में अहिंसा का प्रयोग 1919-1947, गांधी के सिद्धान्त और कार्य – असहयोग आन्दोलन, सभी क्षेत्रों में गांधी की देन (संक्षेप में उन सभी शहीदों का उल्लेख अवश्य किया जाय जिनके जीवन से छात्रों को प्रेरणा मिले।)
14. 1919 तथा 1935 का भारत ऐक्ट, संक्षिप्त।
15. एक महान् भूल देश विभाजन, अंग्रेजी नीति का परिणाम। हमारी असहिष्णुता, प्राचीन परम्पराओं को छोड़ना।
16. स्वतन्त्र भारत 1947, समस्याएँ, निराकरण, राजनीति व एकीकरण, संविधान 1950, उसकी विशेषताएँ, अब तक के संशोधन, लोककल्याणकारी कार्य, पंचवर्षीय योजनाएँ-शिक्षा प्रसार, औद्योगिक विकास।
17. विदेश नीति-गुटनिरपेक्षता-पंचशील।
18. वर्तमान की समस्याएँ, उनका निदान-चारित्रिक विकास, नैतिक मूल्यों का महत्व, राष्ट्रीयता की भावना।

अमर संदेश

"मुझे उस धर्म का अनुयायी होने का अभिमान है, जिसने संसार को सहिष्णुता और विश्व-प्रेम की शिक्षा दी है। हम केवल विश्व्यापिनी सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं रखते, हम यह भी मानते हैं कि सब धर्म सच्चे हैं। मुझे उस जाति में उत्पन्न होने का अभिमान है, जिसने अत्याचार-पीड़ितों को मतवादियों द्वारा सताये हुए लोगों और पृथ्वी की सब जातियों को आश्रय दिया है .... मैं आपके सामने एक मन्त्र की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करता हूँ, जिसका पाठ मैं बचपन से करता आ रहा हूँ, और जिसका मेरे देश के करोड़ों आदमी प्रतिदिन पाठ करते हैं :

नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णवहव ।

अर्थात्– "जैसे सब नदियाँ भिन्न-भिन्न मार्गों से चलकर एक समुद्र में मिल जाती हैं, इसी प्रकार हे प्रभु, सब भिन्न-भिन्न नामों और उपायों से उपासना करने वाले का अन्तिम लक्ष्य तू ही है।

✍ **स्वामी विवेकानन्द**

"अगर भारत को कभी ऐसे राष्ट्र का घर बनाना है जो अपने भीतर शान्ति रख सके और अपनी सीमा पर शान्ति की रक्षा कर सके, जो देश के आर्थिक संसाधनों का विकास कर सके, विद्या और विज्ञान का संवर्धन कर सके, तो हिन्दुत्व और इस्लाम दोनों को ही अवश्य मरना होगा और फिर से जन्म लेना होगा – इन दोनों ही धर्मों को अवश्य ही तर्क और विज्ञान के शासन में विशुद्ध होना पड़ेगा और पुनर्यौवन प्राप्त करना होगा।

✍ **डॉ. यदुनाथ सरकार**

विषय-सूची

खण्ड 1 : मध्य काल : मुगल-काल

खण्ड 2 : आधुनिक काल : आंग्ल-काल

छात्र-छात्राओं के नाम महत्त्वपूर्ण संदेश

परीक्षाओं में अनुचित साधनों के प्रयोग की बुराई एक सामाजिक कलंक है। जहाँ इसमें फँस जाने पर छात्र कभी भी अपना जीवन नहीं सँवार पाता, परिवार, समाज व प्रदेश कलंकित होता है वहीं मेहनती व निष्ठावान तथा लगनशील छात्र-छात्राओं के मनोबल पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। यदि इसे नहीं रोका गया तो समाज व देश के सुनहरे भविष्य के सपने टूट जाएँगे। मुझे आशा और विश्वास है कि बालक-बालिकाएँ नकल की सामाजिक बुराई से दूर रहेंगे और अपने साथियों को भी इससे दूर रखने में सफल होंगे।

खण्ड 1

माध्यमिक भारत-भूमि का इतिहास

मध्य काल : मुगल-काल

1

मुगल साम्राज्य का संस्थापक जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर

[1526-30]

> "मेरे राज्य पर जब आक्रमण हुए तो उनका सामना करने के लिए मैं प्रसन्नता के साथ तैयार हुआ। मैंने इसे कभी दुर्भाग्य नहीं समझा। मैं जानता था कि शासक को युद्ध से डरना नहीं चाहिए। जो युद्ध नहीं कर सकता, वह शासक नहीं हो सकता और न शासन ही कर सकता है।" -बाबर

मुगलों का परिचय- मुगल शब्द मंगोल से निकला है। मंगोल लोग मंगोलिया के आदिवासी थे। मंगोलिया मध्य-एशिया में चीन के उत्तर-पश्चिम में स्थित है। प्रारम्भ में मंगोल लोग खानाबदोशों की भाँति अपने जीविकोपार्जन के लिए इधर-उधर घूमा करते थे। मंगोल बड़े वीर और कुशल सैनिक की भाँति थे। अपने बाहुबल से इन लोगों ने एशिया में मंगोल साम्राज्य की स्थापना की। मंगोल के नेता चंगेज खाँ ने योरोप के कुछ भागों में भी अपना अधिकार जमा लिया था। इनकी शाखा का एक सरदार तैमूर भी था। चंगेज खाँ ने गुलाम वंश के शासन काल में तथा तैमूर ने तुगलक वंश के शासन काल में भारत पर आक्रमण किया था। बाबर पिता के पक्ष में तैमूर का तथा माता के पक्ष में चंगेज खाँ का वंशज था। बाबर ने लोदी वंश के शासन काल में भारत पर आक्रमण किया और यहाँ पर मुगल साम्राज्य की स्थापना की।

बाबर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक दशा

बाबर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक अवस्था ठीक उसी प्रकार की थी जिस प्रकार तुर्कों के आक्रमण के समय 8वीं और 10वीं शताब्दी में थी। इस समय भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। ये राज्य परस्पर ईर्ष्या-द्वेष रखते थे और प्रायः एक-दूसरे से संघर्ष करते रहते थे। फलतः बाबर को भारत पर आक्रमण करने का निमन्त्रण मिला। बाबर के आक्रमण के समय निम्नलिखित राज्य थे :

(1) दिल्ली- दिल्ली का शासक इब्राहीम लोदी था जो 1517 में दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। उसका राज्य-विस्तार दिल्ली, जौनपुर, बिहार, बयाना, आगरा तथा चन्देरी तक था। इब्राहीम के हठधर्मी स्वभाव के कारण अफगान सामन्त अत्यधिक असन्तुष्ट थे। स्वयं सुल्तान के चाचा आलम खाँ लोदी की आँखें दिल्ली के सिंहासन पर लगी थीं। पंजाब के सूबेदार दौलत खाँ लोदी ने अपने को वहाँ का बादशाह घोषित कर दिया था। बिहार और जौनपुर में भी अफगानों ने विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया था। इस प्रकार दिल्ली के राज्य में चारों ओर अशान्ति छायी हुई थी।

(2) मेवाड़- मेवाड़ राजस्थान का सबसे शक्तिशाली राज्य था। बाबर के आक्रमण के समय यहाँ का शासक राणा साँगा था जो अत्यधिक वीर योद्धा था। कहा जाता है कि सौ युद्धों में भाग लेने के फलस्वरूप उसके शरीर पर अस्सी घावों के चिन्ह थे। राणा साँगा का उद्देश्य भारत में राजपूत शासन स्थापित करना था। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए, संभवतः उसने बाबर को इब्राहीम लोदी के राज्य पर आक्रमण करने के लिये परामर्श दिया

था। निःसंदेह वह उत्तरी भारत का एक महान् शासक था।

(3) मालवा– इस राज्य का संस्थापक दिलावर खाँ था जो तैमूर के हमले के बाद फैली हुई अव्यवस्था से लाभ उठाकर स्वतंत्र हो गया था। बाबर के आक्रमण के समय मालवा का शासक महमूद द्वितीय था। इसके शासन-काल में एक राजपूत सरदार मेदिनीराय, जो मंत्री पद पर आसीन था, उसका इतना प्रभाव बढ़ गया कि उसने अनेक महत्वपूर्ण पदों पर अपने मित्रों और सम्बन्धियों की नियुक्तियाँ कर दी। मुसलमानों को यह बात असह्य हो गई और उन्होंने गुजरात के सुल्तान मुजफ्फरशाह की सहायता से उसे परास्त कर निकाल बाहर करने का प्रयास किया, किन्तु मेवाड़ के शासक राणा साँगा ने मेदिनीराय का पक्ष लेकर आक्रमण कर दिया। महमूद द्वितीय पराजित हुआ तथा बन्दी बनाकर चित्तौड़ ले जाया गया। परन्तु कालान्तर में उसे मुक्त करके सम्मान सहित उसका राज्य वापस कर दिया गया। इस प्रकार मालवा की स्थिति असन्तोषजनक एवं निर्बल थी।

बाबर के आक्रमण के समय भारत के प्रमुख राज्य

1. दिल्ली
2. मेवाड़
3. मालवा
4. गुजरात
5. बंगाल
6. सिंध
7. पंजाब
8. कश्मीर
9. खानदेश
10. उड़ीसा
11. विजयनगर
12. बहमनी राज्य

(4) गुजरात– इस राज्य का संस्थापक जाफर खाँ था, जो 1401 में मुजफ्फरशाह के नाम से सिंहासन पर बैठा। बाबर का समकालीन गुजरात का शासक मुजफ्फरशाह द्वितीय था। उसे अपने राज्यकाल में मेवाड़ के राणा साँगा से पराजित होना पड़ा। 1526 के अप्रैल माह में उसकी मृत्यु हो गई। तत्पश्चात् उसका पुत्र बहादुरशाह सिंहासन पर बैठा जो आगे चलकर एक सुयोग्य शासक सिद्ध हुआ।

(5) बंगाल– फिरोज तुगलक के शासनकाल में ही बंगाल हुसेनी राजवंश के अन्तर्गत स्वतन्त्र हो गया था। इस राजवंश का प्रथम सुयोग्य शासन अलाउद्दीन हुसैनशाह था। जौनपुर के सुल्तान हुसैनशाह शर्की को शरण देने के परिणामस्वरूप दिल्ली के सिकन्दर लोदी से उसका संघर्ष हो गया, लेकिन कालान्तर में दोनों पक्षों में सन्धि हो गई। बाबर के आक्रमण के समय अलाउद्दीन हुसैन का पुत्र नुसरतशाह बंगाल का शासक था।

(6) सिन्ध– मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के पश्चात् सिन्ध प्रान्त स्वतन्त्र हो गया था। बाबर के आक्रमण के समय इस प्रान्त में अरगूनों की शक्ति का प्रभाव था। लेकिन राजनीतिक अवस्था असन्तोषजनक थी।

(7) पंजाब– पंजाब प्रान्त दिल्ली राज्य का ही एक अंग था। यहाँ के गवर्नर दौलत खाँ लोदी के सम्बन्ध इब्राहीम लोदी से अच्छे नहीं थे। अपने पुत्र दिलावर खाँ से यह सन्देश पाकर कि सुल्तान अपनी वर्तमान कठिनाइयों से निपट कर पंजाब की ओर ध्यान देगा, वह अपने को पूर्ण स्वतन्त्र बनाने का प्रयास करने लगा और इस प्रयासपूर्ति के लिए बाबर को दिल्ली राज्य पर आक्रमण करने का निमंत्रण दिया। यह उसी प्रकार का निमन्त्रण था जिस प्रकार जयचन्द ने मुहम्मद गोरी को आक्रमण करने के लिये निमन्त्रित किया था।

(8) कश्मीर– 1339 में शाह मीर नामक एक योद्धा ने कश्मीर सिंहासन पर अधिकार करके मुसलमानी राजवंश की स्थापना की। इस राज्य का प्रसिद्ध शासक जैनुल आबदीन था। 1470 में उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के पश्चात् कश्मीर में सर्वत्र अशान्ति और अव्यवस्था फैल गई। दिल्ली से अत्यधिक दूर होने के कारण उत्तर भारत की राजनीति में कश्मीर का कोई प्रभाव नहीं था।

(9) खानदेश– यह मध्य-भारत का एक समृद्धिशाली राज्य था। यहाँ के राजवंश की नींव मलिक रजा फारूकी ने डाली थी। 1399 में मलिक रजा की मृत्यु के बाद उसका सुयोग्य पुत्र मलिक नसीर खाँ गद्दी पर बैठा। उसने असीरगढ़ के प्रसिद्ध किले पर अधिकार कर लिया। खानदेश का अन्तिम राजा आदिल खाँ फारूकी था। बाबर के आक्रमण के समय खानदेश का शासक मीरन मुहम्मद शाह था। इस देश में अधिक शान्ति रहने के कारण यह समृद्ध हो गया था।

(10) उड़ीसा– यह हिन्दू राज्य था और इसके शासक शक्तिशाली थे। उत्तरी भारत की राजनीति में इसका कोई विशेष प्रभाव न था।

(11) विजयनगर– यह दक्षिणी भारत का शक्तिशाली हिन्दू राज्य था। इस राज्य की स्थापना 1336 में हरिहर और बुक्का राव नामक दो भाइयों ने की थी। कृष्णदेवराय इस वंश का बहुत शक्तिशाली राजा था जो बाबर का समकालीन था। एक पुर्तगाली यात्री ने जो 1522 में भारत आया था, कृष्णदेव के विषय में लिखा है– "वह एक प्रकाण्ड पण्डित तथा सर्वोत्तम राजा है जो सदा प्रसन्नचित्त और हँसमुख रहता है। वही एक सम्राट ऐसा है जो कि विदेशियों का सम्मान करता है, उनका हृदय से स्वागत करता है और उनकी हर बात को पूछता है।" विदेशी यात्रियों के विवरण से ज्ञात होता है कि यह राज्य आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पन्न था। 1565 में दक्षिण के मुसलमान शासकों ने एक संघ बनाकर तालीकोट के युद्ध में इस हिन्दू राज्य को विध्वंस कर दिया।

(12) बहमनी राज्य– मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में ही उसके एक अफगान अफ़सर हसन ने 1347 में इस राज्य की स्थापना की थी। इस राज्य के सुल्तानों का प्रायः विजयनगर के हिन्दू राजाओं से संघर्ष चलता रहा। 1481 में सुयोग्य मंत्री मुहम्मद गवाँ के प्राणदण्ड के पश्चात् राज्य के सूबेदारों के स्वतंत्र हो जाने से यह राज्य पाँच स्वतन्त्र राज्यों में विभक्त हो गया था, जिनके नाम इस प्रकार हैं :

1. बीजापुर का आदिलशाही वंश (1489–1686)
2. गोलकुण्डा का कुतुबशाही वंश (1512–1687)
3. अहमदनगर का निजामशाही वंश (1490–1595)
4. बीदर का बरीदशाही वंश (1492–1609)
5. बरार का इमादशाही वंश (1484–1575)

इन राज्यों ने ही संघ बनाकर 1565 में तालीकोट के युद्ध में विजयनगर के हिन्दू राज्य का विनाश कर दिया था।

इस प्रकार बाबर के आक्रमण के समय भारत अनेक राज्यों में विभक्त था जो अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए सदैव परस्पर संघर्ष किया करते थे। अतः ऐसी परिस्थिति में साहसी बाबर ने भारत पर आक्रमण करके मुगल साम्राज्य की नींव डाली तो आश्चर्य ही क्या था?

बाबर का परिचय

बाबर का जन्म 14 फरवरी, 1483 को फरगना के शासक उमर शेख़ मिर्जा के घर हुआ था। उसका पिता तैमूर का पाँचवाँ वंशज था और माता कुतलुक निगार खानम चंगेज खाँ की वंशज थी। इस प्रकार मध्य एशिया के दो योद्धाओं और विजेताओं का वह वंशज था। उसका परिवार तुर्की जाति के चगताई कबीले के अन्तर्गत था। एक दिन जब उसका पिता कबूतरों की उड़ान का आनन्द ले रहा था तो अचानक मकान के ऊपर से गिर जाने के कारण 8 जून, 1494 को उसकी मृत्यु हो गई। अतः बाबर 11 वर्ष की अल्पायु में फरगना की गद्दी पर बैठा। उसने छोटी अवस्था में ही तुर्की और फारसी भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उसने उच्चकोटि की सैनिक शिक्षा भी प्राप्त कर ली थी। उसकी मानसिक

शक्तियों का ऐसा विकास हुआ था कि वह राजनीतिक घटनाओं के महत्व को आसानी से समझ लेता था और मानव-चरित्र को सरलता से परख लेता था।

बाबर का भारत की ओर अभियान

भारत की ओर प्रस्थान करने के पूर्व बाबर के अधिकार में काबुल और बदख्शाँ ही थे। तीन बार प्रयास करने के बावजूद भी वह समरकन्द पर, जो विजेता तैमूर की राजधानी थी, स्थायी अधिकार नहीं कर सका। लेकिन बाबर निराश होने वाला व्यक्ति नहीं था। उसने भारत की वास्तविक राजनीतिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के लिये चार प्रारम्भिक आक्रमण किए। प्रथम आक्रमण 1519 में उसने उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त में निवास करने वाली यूसुफजाई जाति को परास्त किया तथा भेरा पर अधिकार कर लिया। लेकिन काबुल वापस जाते ही इस प्रदेश पर से उसका आधिपत्य समाप्त हो गया। दूसरा आक्रमण 1519 के अन्त में किया, लेकिन मध्य एशिया की राजनीतिक स्थिति डाँवाडोल होने के कारण वह शीघ्र ही काबुल लौट गया। भारत पर तीसरा आक्रमण उसने 1520 में किया और क्रमशः बजोर, भेरा, स्यालकोट तथा सैयदपुर पर

अपना अधिकार स्थापित किया। चौथा आक्रमण उसने 1524 में किया। इस आक्रमण के लिये दौलत खाँ लोदी और आलम खाँ लोदी ने उसे आमंत्रित किया था। उसने पंजाब और दिपालपुर को अपने अधिकार में कर लिया। दिपालपुर-विजय में दौलत खाँ ने इस उद्देश्य से बाबर की सहायता की थी कि वह उसको पंजाब का सूबा दे देगा। लेकिन बाबर ने उसे जालंधर और सुल्तानपुर के जिले ही दिये और आलम खाँ को दिपालपुर प्रदान किया। तत्पश्चात् भारत में अपनी सेना की कुछ टुकड़ियाँ छोड़कर बाबर काबुल लौट गया।

पानीपत का प्रथम युद्ध (21 अप्रैल, 1526)

बाबर नवम्बर, 1525 में विशेष सैनिक तैयारी के पश्चात् भारत की ओर चल पड़ा। उसके पास 12,000 अश्वारोही तथा 700 तोपें थीं। तोपखाने के अफसर उस्ताद अली और मुस्तफा रूमी थे। सम्पूर्ण पंजाब पर अधिकार करने के पश्चात् वह दिल्ली की ओर बढ़ा। दिल्ली का शासक इब्राहीम लोदी भी चालीस हजार सैनिकों को लेकर बाबर का सामना करने के लिए पंजाब की ओर चल पड़ा। 12 अप्रैल, 1526 को दोनों पक्षों की सेनाएँ पानीपत के रणक्षेत्र में एक दूसरे के सामने डट गईं। 20 अप्रैल की रात्रि को बाबर ने अपने चार-पाँच हजार सैनिकों को आक्रमण करने के लिए अफगान शिविर की ओर भेजा किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। अतः इब्राहीम लोदी की सेना उत्साहित होकर आगे बढ़ी। 21 अप्रैल[1] को दोनों ओर की सेनाओं में भीषण युद्ध छिड़ गया। बाबर की तोपों की मार के सम्मुख अफगान सेना के पैर उखड़ गये। इसी अवसर पर उसने तुलगमा सेनाओं को तुरन्त घूमकर

1. डॉ. राधेश्याम ने 20 अप्रैल माना है।

पीछे से आक्रमण करने की आज्ञा दी। उधर इब्राहीम ने मुगलों की बायीं ओर की सेना पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। इसका परिणाम यह हुआ कि अफगान सेना मुगल सेना के चारों ओर से घिर गई। इसी अवसर पर बाबर ने तोपचियों को अफगान सेना पर आग बरसाने की आज्ञा दे दी। इस भीषण स्थिति में इब्राहीम लोदी के साथ के महमूद खाँ ने उससे कहा, "भयानक मुसीबत का सामना है। मेरी नेक सलाह है कि आप मैदान से फौरन निकल कर चले जावें। अगर आपकी जिन्दगी कायम है तो ऐसी न जाने कितनी लड़ाइयाँ आप अपने जीवन में लड़ेंगे।" इस बात को सुनते ही इब्राहीम ने जवाब देते हुए कहा– "लड़ाई के मैदान से भागना बादशाहों के लिए एक बड़े लज्जा की बात होती है। वे या तो विजय प्राप्त करते हैं या मारे जाते हैं। बादशाह युद्ध के मैदान से भागा नहीं करते। मेरे साथ के अगणित शूरवीर योद्धा यहाँ पर कटे पड़े हैं। मैं जिन्दगी में उनके साथ रहा और मरने पर भी उनके साथ रहना चाहता हूँ।" अन्त में इब्राहीम लोदी वीरता से लड़ता हुआ मारा गया। उसके 15 हजार सैनिक भी युद्ध में काम आये। बाबर ने अपने हाथों से इब्राहीम के रक्त पूर्ण शरीर को उठाकर रोमांचकारी शब्दों में कहा था– "मैं तेरी बहादुरी की तारीफ करता हूँ।" शाही सम्मान के साथ उसी स्थान पर जहाँ वह मारा गया था, दफना दिया गया। इस प्रकार 'पानीपत का युद्ध' निर्णायक सिद्ध हुआ। बाबर ने तुरन्त दिल्ली एवं आगरा पर अधिकार कर लिया। दिल्ली की जामा मस्जिद में उसके नाम का खुत्वा पढ़ा गया।

पानीपत के प्रथम युद्ध के परिणाम

पानीपत का प्रथम युद्ध निर्णायक सिद्ध हुआ। इसका भारतीय इतिहास में बहुत अधिक महत्व है। इसके निम्नलिखित प्रभावशाली परिणाम हुए :

1. भारत में लोदी वंश के शासन का अन्त हो गया। दिल्ली व पंजाब से उसकी सत्ता समाप्त हो गई। इस सम्बन्ध में ईश्वरीप्रसाद ने लिखा है, "पानीपत युद्ध से ही दिल्ली सांम्राज्य बाबर के हाथ में आ गया। लोदी वंश की शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई और भारत की सत्ता चगताई तुर्कों के हाथ चली गई।"
2. भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना हुई और बाबर की समस्त कठिनाइयों का अन्त हो गया। इस सम्बन्ध में रसब्रुक विलियम ने लिखा है, "इस युद्ध में विजय होने से बाबर की कठिनाइयों का अन्त हो गया और उसे अपने प्राणों की रक्षा तथा सिंहासन की सुरक्षा के लिए चिंतित होने की आवश्यकता नहीं रही। अब उसे अपनी सैनिक प्रतिभा और असीम शक्ति का प्रयोग अपने साम्राज्य के विस्तार के लिये करना पड़ा।"
3. भारत को अत्यधिक धन-जन की क्षति उठानी पड़ी और बाबर को अपार धनराशि प्राप्त हुई, जिसे उसने अपनी प्रजा तथा सैनिकों में वितरित कर दिया।
4. हिन्दुओं की आशाओं पर पानी फिर गया और उन्हें अपनी सैनिक अयोग्यता का आभास हुआ।
5. इस युद्ध के पश्चात् बाबर का युद्ध राजपूतों से अनिवार्य हो गया तथा उसकी सफलता का युग प्रारम्भ हुआ।
6. सैन्य इतिहास में भारत के युद्ध के मैदानों में तोपखाने का प्रयोग इसी युद्ध से आरम्भ होता है।

खानवा का युद्ध (16 मार्च, 1527)

पानीपत की विजय ने बाबर को दिल्ली और आगरा का बादशाह बना दिया। जब उसने भारत में ठहरने का विचार किया तब राजपूतों की आँखें खुलीं। राणा साँगा की धारणा थी

कि बाबर भी अन्य मंगोल आक्रमणकारियों की भाँति इब्राहीम लोदी को पराजित कर तथा लूट-मार कर स्वदेश वापस चला जायेगा, लेकिन जब बाबर को भारत में ठहरने के लिये दृढ़-प्रतिज्ञ पाया तो दोनों के मध्य युद्ध अनिवार्य हो गया।

11 फरवरी, 1527 को बाबर राणा साँगा से युद्ध करने के लिये आगरा से चल पड़ा। बाबर के प्रारम्भिक आक्रमण को राजपूतों ने विफल कर दिया। इससे मुगल सेना में निराशा फैल गई। इसी समय काबुल से आये हुये मोहम्मद शरीफ नामक ज्योतिषी ने यह भविष्यवाणी की कि "युद्ध में बाबर की विजय अत्यन्त कठिन है क्योंकि उसके विरुद्ध ग्रहों का प्रकोप है।" लेकिन बाबर तनिक भी हतोत्साहित नहीं हुआ। उसी समय उसने शराब न पीने की शपथ खाई और मद्यपान के बहुमूल्य पात्रों को तुड़वाकर दीन-दुखियों में वितरण करवा दिया। उसने युद्ध सम्बन्धी एक सभा की और एक बड़ा ही ओजस्वी भाषण दिया। उसने कहा- "सरदारो और सिपाहियो! हर एक आदमी जो इस दुनिया में पैदा हुआ है, जरूर मरेगा। हम सबकी मृत्यु होगी और सिर्फ एक खुदा ही शेष रहेगा। जो व्यक्ति जीवन का आनन्द लेते हैं उनको भयभीत नहीं होना चाहिए। कलंकित नाम के साथ रहने की अपेक्षा शान से मृत्यु का आलिंगन करना अधिक श्रेयकर है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि मेरी मृत्यु सम्मान के साथ हो और अपने पीछे प्रतिष्ठा छोड़ जाऊँ। खुदा का शुक्र है कि अगर हम लड़ाई में मरेंगे तो हम शहीद कहलायेंगे और यदि जीवित रह गये तो गाजी कहे जायेंगे। आइये, हम सब कुरान हाथ में लेकर प्रतिज्ञा करें कि उस समय तक युद्ध करते रहेंगे जब तक हमारे शरीर में प्राण है।" यह कहकर बाबर रुका और फिर कहा- "ग्रहों की हरकत तो हमारी आपकी जमामर्दी और नामर्दी पर मुनहसिर है। अगर हम जमामर्द हैं तो ग्रह मुआफिक हैं और हम नामर्द हैं तो ग्रहों के खिलाफ होने में कितनी देर लगती है। क्या आपको यह बताने की जरूरत है कि आज तक दुनिया के किसी बहादुर ने ज्योतिषियों से पूछकर युद्ध नहीं किया।" इस प्रभावशाली भाषण के बाद सेनाध्यक्षों और सैनिकों ने कुरान लेकर कसमें खायीं कि वे जीवन-मरण में अपने नेता का साथ देंगे और दुश्मन के खून से जमीन को रंग देंगे। इस प्रकार अपने सैनिकों को प्रोत्साहित कर बाबर ने राणा साँगा की सेना पर धावा बोल दिया। 16 मार्च, 1527 को यह निर्णायक युद्ध बड़ी भीषणता से प्रारम्भ हुआ। दस घण्टे तक युद्ध चलने के बाद राजपूत पराजित हुए। वे तोपों की मार न सह सके। राणा साँगा घायल हुआ और उसके पक्ष की अत्यधिक हानि हुई। यह युद्ध भी पानीपत के समान निर्णायक सिद्ध हुआ।

खानवा-युद्ध के परिणाम

1. यह युद्ध भी पानीपत की भाँति निर्णायक सिद्ध हुआ और राजपूतों की शक्ति क्षीण हो गई।
2. भारत में अब कोई भी शक्ति न रही जो बाबर के मार्ग में बाधा पहुँचाती।
3. राजपूतों का हिन्दू राज्य स्थापित करने का स्वप्न अधूरा रह गया तथा उनकी धन-जन की बहुत क्षति हुई।

इस युद्ध के सम्बन्ध में डॉ. आशीर्वादीलाल ने लिखा है, "शायद ही ऐसा कोई दूसरा युद्ध हुआ हो, जिसका निर्णय अन्तिम समय तक तुला में लटका रहा हो" डॉ. रसबुक विलियम के अनुसार, "खानवा का युद्ध भारत के इतिहास में एक निर्णायक युद्ध था। राणा साँगा और उसके समर्थक अफगान सरदारों की भीषण पराजय हुई। राजपूतों की शक्ति पूर्णतया समाप्त हो गई। उनकी प्रतिष्ठा और सम्मान धूल में मिल गई।"

चन्देरी का युद्ध (29 जनवरी, 1528)

चन्देरी के प्रसिद्ध दुर्ग पर मेदिनीराय नामक एक वीर राजपूत का आधिपत्य था, जिसने मालवा के राजाओं के मध्य अपनी विशेष प्रतिष्ठा स्थापित कर ली थी। बाबर ने उसके पास एक सन्धि-प्रस्ताव भेजा, जिसमें उसने उसे चन्देरी के बदले शमसाबाद की जागीर देने का वचन दिया। लेकिन मेदिनीराय ने संधि प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। फलतः बाबर ने चन्देरी का घेरा डाल दिया। राजपूत वीरता से लड़े, परन्तु पराजित हुए। दुर्ग की स्त्रियों ने जौहर की प्रथानुसार अपने को अग्नि में समर्पित कर दिया। इस प्रकार 29 जनवरी, 1528 को बाबर का चन्देरी दुर्ग पर अधिकार हो गया। भारतीय मुसलमानों को खुश करने के लिए बाबर ने चन्देरी को नासिरुद्दीन के नाती अहमदशाह के सुपुर्द कर दिया और अहमदशाह ने 50 लाख रुपये प्रतिवर्ष दिल्ली के राजकोष में भेजने का वचन दिया।

घाघरा का युद्ध (6 मई, 1529)

राणा साँगा की पराजय के बाद महमूद लोदी ने बिहार पर अधिकार कर लिया। अनेक अफगान सरदारों ने उसे इब्राहीम लोदी का उत्तराधिकारी स्वीकार कर सुल्तान घोषित कर दिया। अतः बाबर महमूद लोदी का दमन करने के लिए चल पड़ा। अनेक सरदारों ने इलाहाबाद, चुनार तथा बनारस के स्थान पर उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। यह देखकर महमूद लोदी बंगाल भाग गया और वहाँ के शासक नसरतशाह के यहाँ शरण ली। बाबर बंगाल की ओर बढ़ा और 6 मई, 1529 को घाघरा के तट पर अफगानों को पराजित किया। नसरतशाह ने बाबर से संधि कर ली और बिहार पर बाबर का आधिपत्य स्वीकार कर लिया।

इस युद्ध के परिणामस्वरूप अफगानों की बची-खुची शक्ति समाप्त हो गई। अब बाबर के अधिकार में इस देश का सिन्धु नदी से बिहार तक और हिमालय से ग्वालियर और चन्देरी तक का इलाका आ गया।

लेनपूल के कथनानुसार, "इस युद्ध ने अफगानों की शक्ति का नाश कर दिया और बंगाल के साथ शान्ति की संधि सम्पन्न की। तीन युद्धों को लड़कर बाबर ने सम्पूर्ण उत्तरी भारत को अपने अधीन कर लिया। उसने अपने जीवन का शेष डेढ़ वर्ष मुख्यतः आगरा में रहकर अपने नये साम्राज्य को सुस्थापित करने के प्रयास में व्यतीत किया।"

उपर्युक्त युद्धों में विजय-श्री प्राप्त कर बाबर ने भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना की।

बाबर की मृत्यु– 1530 की ग्रीष्म में हुमायूँ बीमार पड़ा। कहा जाता है कि बाबर ने अपनी जान के बदले हुमायूँ की जान बचाने की ईश्वर से प्रार्थना की, "भगवान्, मेरे प्यारे बेटे हुमायूँ को सेहत करो और उसके बदले मुझे बीमार कर दो। मैं हुमायूँ के पीछे अपनी जिन्दगी देने को तैयार हूँ।" बाबर की प्रार्थना ईश्वर ने सुन ली। हुमायूँ की दशा धीरे-धीरे ठीक होने लगी और बाबर अस्वस्थ होने लगा। अन्त में उसका अन्तिम दिन आ गया। उसने मृत्यु के समय पहले अमीरों को बुलाया और कहा, "अब जबकि मैं रोगग्रस्त पड़ा हूँ, आप लोगों को आदेश देता हूँ कि हुमायूँ को मेरा उत्तराधिकारी स्वीकार कर लो और सदैव उसके प्रति वफादार रहो।" इसके बाद बाबर ने हुमायूँ से कहा– "तेरे भाइयों और अपने पूरे परिवार को मैं तुझे सौंपता हूँ। मैं इस बात पर यकीन करता हूँ कि अब तक जो मैंने तुझे नसीहतें दी हैं, उसको तू भूलेगा नहीं और सभी लोगों के साथ अच्छा व्यवहार करेगा।" अन्त में 26 दिसम्बर, 1530 को बाबर का आगरा में देहावसान हो गया।

बाबर का चरित्र तथा व्यक्तित्व

प्रायः सभी इतिहासकारों ने बाबर के चरित्र और व्यक्तित्व की प्रशंसा की है और यह राय प्रकट की है कि बाबर मध्य एशिया के महान् सम्राटों में से एक था।

डॉ. स्मिथ के अनुसार, "बाबर अपने युग के एशियाई शासकों में सबसे अधिक प्रभावशाली था और किसी भी देश तथा काल के सम्राटों में उच्च पद पाने के योग्य था।"

डॉ. आशीर्वादीलाल के अनुसार, "उसके चरित्र में एक महान राजा और एक श्रेष्ठ पुरुष के सद्गुणों का बड़ा सुन्दर मिश्रण था। वह इतना प्रसन्नचित्त, स्पष्ट और साहस सम्पन्न था कि किसी भी प्रकार की कमी, कठिनाई अथवा आपत्ति उसके स्थिर मन को विचलित नहीं कर सकती थी।"

डॉ. ईश्वरीप्रसाद के अनुसार, "बाबर अपने काल का सर्वश्रेष्ठ मुसलमान शासक था।"

हैवेल के अनुसार, "उसके आकर्षक व्यक्तित्व, कलात्मक स्वभाव, रोचक तथा आश्चर्यजनक जीवन के कारण उसका स्थान इस्लाम के इतिहास में सबसे अधिक चित्ताकर्षक व्यक्तियों में हैं।"

डॉ. रामप्रसाद त्रिपाठी के अनुसार, "बाबर एक नये साम्राज्य के निर्माण का पथ-प्रदर्शक ही नहीं रहा, उसने उन लक्षणों और नीतियों का भी संकेत किया, जिन्हें उसके उत्तराधिकारी मान्यता देते रहे। उसने भारत में एक राजवंश और उसकी परम्परा की स्थापना की, जिसकी जोड़ किसी दूसरे देश के इतिहास में मुश्किल से मिलती है।"

बाबर का चरित्र तथा व्यक्तित्व
1. व्यक्ति के रूप में
2. साहित्य और कला प्रेमी के रूप में
3. मुसलमान के रूप में
4. सेनापति के रूप में

(1) व्यक्ति के रूप में– बाबर का व्यक्तिगत जीवन आदर्शमय था। उसने सदैव अपने पिता की आज्ञाओं का पालन किया और अपने पुत्रों के साथ विशेष सद्व्यवहार किया। अपनी पत्नियों के प्रति उसका आदर्श व्यवहार था। अपने कुटुम्बियों और अन्य रिश्तेदारों के प्रति भी सद्भाव रखता था। वह शराब का शौकीन अवश्य था, लेकिन कभी उसका गुलाम नहीं बना। शरीर से वह इतना बलिष्ठ था कि बगल में दो व्यक्तियों को दबाये किले की चहारदीवारी की छत पर आसानी से दौड़ लेता था। बहुत चौड़ी नदियों को भी वह तैर कर पार कर लिया करता था। कहा जाता है कि एक बार उसने गंगा को तैर कर पार किया था।

(2) साहित्य और कला प्रेमी के रूप में– बाबर बड़ा विद्वान था। उसका साहित्य तथा ललित कलाओं के प्रति विशेष अनुराग था। प्राकृतिक सौंदर्य की विशेषताओं का वह अद्भुत पारखी था तथा व्यक्ति और जीवन के बहुरंगी रूपों का दर्शन बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से करता था। वह तुर्की और फारसी भाषाओं का विशेष ज्ञाता था। वह एक सुयोग्य लेखक था। उसने तुर्की भाषा में अपनी आत्म-कथा 'तुजुक-ए-बाबरी' (बाबरनामा) नाम से लिखी थी। वह 'मुबइयान्' नामक एक विशेष पद्य शैली का जन्मदाता था। डॉ. आशीर्वादीलाल के शब्दों में, "वैसे तो बाबर में एक विद्वान की सभी विशेषताएँ विद्यमान थीं, फिर भी उसे सैनिक विद्वान कहना ठीक होगा। वह सैनिक पहले था, विद्वान बाद में।" बाबर को स्थापत्य कला से भी विशेष लगाव था। ग्वालियर की शिल्पकला से वह बड़ा प्रभावित हुआ था। उसने अनेक भवनों का निर्माण कराया, लेकिन उसके द्वारा निर्मित अधिकांश भवन नष्ट-भ्रष्ट हो गये हैं। केवल पानीपत तथा रुहेलखण्ड के सम्भल नामक नगर की मस्जिदें आज भी विद्यमान हैं।

(3) मुसलमान के रूप में– बाबर पक्का सुन्नी मुसलमान था, किन्तु उसमें धार्मिक कट्टरता नहीं थी। उसने अन्य धर्मावलम्बियों से कठोरता का व्यवहार नहीं किया। ईश्वर के प्रति उसकी इतनी अधिक अटूट श्रद्धा थी कि उसे 'ईश्वरीय पुत्र' कहा गया है। वह कहा करता था, "ईश्वर की इच्छा के बिना कुछ भी नहीं हो सकता, उसकी शरण में ही रहकर हमें आगे बढ़ना चाहिए।" भारत में उसने धार्मिक सहिष्णुता की नीति नहीं अपनाई। राणा

साँगा और मेदिनीराय के विरुद्ध उसने जेहाद (धर्मयुद्ध) का नारा अपनाया। उसके समय में हिन्दू व्यापारियों से चुंगी पूर्ववत् ली जाती रही जबकि मुसलमान व्यापारी चुंगी से पूर्णतया मुक्त रहे। इतना सब होते हुए भी दिल्ली सल्तनत के सुल्तानों की अपेक्षा उसकी नीति भारत की जनता के प्रति उदार थी।

(4) सेनापति के रूप में– राजनीतिक परिस्थितियों ने बाबर को एक योग्य सेनापति बना दिया था। वह एक प्रशंसनीय घुड़सवार, कमाल का निशानेबाज, कुशल तलवार चालक तथा एक उच्चकोटि का शिकारी था। वह अपने सैनिक अधिकारियों तथा सैनिकों के मध्य लोकप्रिय था, क्योंकि वह प्रत्येक समय उनके दुःख तथा कठिनाइयों में सम्मिलित रहता था, किन्तु युद्ध के समय अनुशासनहीनता पर वह सैनिकों के साथ कठोर व्यवहार किया करता था। उसने अपने उन सैनिकों को जिन्होंने जनता के साथ दुर्व्यवहार किया, मौत के घाट उतार दिया। उसकी सैन्य संगठन की श्रेष्ठता ने ही विशाल सेनाओं को परास्त किया। इतिहासकार रसब्रुक विलियम ने बाबर की प्रशंसा इन शब्दों में की है, "युद्ध की पराजय, साहसपूर्ण घुमक्कड़ी और विभिन्न वीर जातियों से सम्बन्ध-सम्पर्क करने के अनुभवों पर ही बाबर एक उच्चकोटि का सेनापति बन सका था।"

(5) शासक के रूप में– बाबर ने एक सैनिक तथा विजेता के रूप में जितनी ख्याति प्राप्त की है उतनी एक सफल शासक के रूप में नहीं। उसमें रचनात्मक बुद्धि का अभाव था। उसने पुरानी संस्थाओं में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया और न नवीन शासन व्यवस्था को ही अपनाया। उसका साम्राज्य "छोटे-छोटे राज्यों का समूह मात्र था। उसके शासन-प्रबन्ध के अन्तर्गत विधिपूर्ण सुसंगठित साम्राज्य नहीं था। सीमान्त और पर्वतीय जिलों में बहुत तो नाममात्र के लिए उसकी अधीनता मानते थे। उसकी न्याय-व्यवस्था अव्यवस्थित थी। राजा की निरंकुश शक्ति को छोड़कर शायद ही ऐसा कोई कानून था जो उस समय सारे साम्राज्य में लागू समझा जाता रहा हो।" अर्थ-सम्बन्धी ज्ञान का भी उसमें अभाव था। उसे इस बात का किंचित् मात्र भी ज्ञान नहीं था कि आर्थिक स्थिति के सुदृढ़ होने पर ही शासन-व्यवस्था की सफलता निर्भर है। अतः उसने दिल्ली और आगरा में प्राप्त राजकोष को समाप्त कर दिया और इसका दुःखद परिणाम उसके पुत्र हुमायूँ को भोगना पड़ा। इस सम्बन्ध में रसब्रुक विलियम ने कहा है, "बाबर ने अपने पुत्र के लिए ऐसा साम्राज्य छोड़ा जो केवल युद्धकालीन परिस्थितियों में ही सुसंगठित रह सकता था, शान्तिकाल के लिए यह निर्बल और निकम्मा था।"

इतिहास में बाबर का स्थान

बाबर भारत में मुगल साम्राज्य का संस्थापक माना जाता है। लेकिन उसने भारत में मुगल वंश की नींव का पहला पत्थर ही रखा था। जिस प्रकार बाबर का एक सम्राट के रूप में उसकी मातृभूमि ट्रान्सौक्सिआना के इतिहास में कोई प्रमुख स्थान नहीं है, उसी प्रकार भारतीय इतिहास में भी उसका कोई स्थान न होता, यदि उसके पुत्र हुमायूँ के निष्कासन के बाद मुगलों के हाथ से सम्पूर्ण साम्राज्य सदैव के लिये निकल गया होता, लेकिन उसका भाग्य ही समझिए कि अकबर जैसा पौत्र पैदा हुआ और उसने मुगल साम्राज्य की इतनी गहरी नींव डाली जो दो सौ वर्षों से भी अधिक समय तक स्थापित रहा। इसलिए भारत में मुगल साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक अकबर को ही माना जाता है। डॉ. आशीर्वादीलाल के अनुसार, "भारतीय इतिहास में बाबर का स्थान एक विजेता और साम्राज्य का शिलान्यास करने वाले व्यक्ति के रूप में ही है।"

भारत में बाबर की सफलता के कारण

मुगल साम्राज्य की नींव का प्रथम पत्थर रखने के लिये बाबर को भारत में चार युद्ध करने पड़े। प्रथम युद्ध उसके और इब्राहीम लोदी के मध्य पानीपत के रणस्थल में 1526 में हुआ। द्वितीय युद्ध उसके और राणा साँगा के मध्य खानवा नामक स्थल पर 1527 में

हुआ। तीसरा युद्ध उसके और मेदिनीराय के मध्य चन्देरी में 1528 में हुआ। अन्तिम चौथा युद्ध उसके और अफगानों के बीच घाघरा के तट पर 1529 में हुआ। इन चारों युद्धों में उसकी सफलता के निम्नलिखित कारण थे-

(1) इब्राहीम लोदी का सरदारों के साथ दुर्व्यवहार- इब्राहीम ने जो मूर्ख और हठधर्मी था, अपने सरदारों को असन्तुष्ट कर दिया था। उन सरदारों को उसके दरबार में कोई सम्मान न मिला जिन्हें उसके बाप और दादा सम्मानित करते थे। उसने अपने निकटतम सम्बन्धियों की भी उपेक्षा की। फलतः उसके सरदार उसके ही विरोधी हो गये और उसके शासन तन्त्र को समाप्त करने के लिए षड्यन्त्र रचने लगे। उन्होंने ही काबुल के शासक बाबर को भारत पर आक्रमण करने का निमन्त्रण दिया जिसका बाबर ने पूरा लाभ उठाया।

भारत में बाबर की सफलता के कारण

1. इब्राहीम लोदी का सरदारों के साथ दुर्व्यवहार
2. बाबर की सेना की रण-कुशलता
3. बाबर द्वारा तोपखाने का प्रयोग
4. इब्राहीम में सैनिक-गुणों का अभाव
5. बाबर द्वारा 'तुलगमा' रण-पद्धति का प्रयोग
6. बाबर का आकर्षक व्यक्तित्व
7. बाबर द्वारा 'जेहाद' का नारा
8. बाबर को पर्याप्त अवकाश की प्राप्ति

(2) बाबर की सेना की रण-कुशलता- बाबर के सैनिक वीर, साहसी तथा रण-कुशल थे। अनेक युद्धों में भाग लेने के कारण उन्हें अच्छा अनुभव प्राप्त था। इसके विपरीत इब्राहीम लोदी के सैनिक नौसिखिये और उजड्ड थे। वे युद्ध की पैंतरेबाजी से पूर्णतया अनभिज्ञ थे तथा उनमें राष्ट्रीय भावना का अभाव था। इस सम्बन्ध में बाबर ने 'तुजुक-ए बाबरी' में लिखा है, 'भारत के सैनिक मरना जानते हैं, युद्ध करना नहीं।

(3) बाबर द्वारा तोपखाने का प्रयोग- बाबर की सफलता का सबसे बड़ा कारण तोपखाने का प्रयोग था। इसमें बड़ी-बड़ी तोपें और छोटी बन्दूकें भी शामिल थीं। उसे तोपखाने के दो विशेषज्ञों- मुस्तफा रूमी और उस्ताद अली की सेवाएँ प्राप्त थीं। इसके विपरीत इब्राहीम के पास तोपखाने का कोई दल नहीं था तथा इनके प्रयोग के सम्बन्ध में उसके सैनिक पूर्णतः अपरिचित थे। परिणाम यह हुआ कि तोपों की अग्निवर्षा के सम्मुख भारतीय सैनिक नहीं ठहर सके। वे भाग खड़े हुए और विजय-माला बाबर के गले में पड़ी।

(4) इब्राहीम में सैनिक-गुणों का अभाव- बाबर और इब्राहीम लोदी के सैनिक गुणों में आकाश-पाताल का अन्तर था। बाबर युद्ध-कला का पण्डित था। अपने दुश्मन के विरुद्ध अभियान करने के पूर्व वह अपनी सम्पूर्ण सैनिक तैयारी कर लेता था। इसके विपरीत इब्राहीम में युद्ध-कला का अभाव था। उसने घिसी-पिटी प्राचीन युद्ध-प्रणाली को ही अपनाया था। वह सैन्य संचालन उतनी कुशलता से नहीं कर सका जितनी कुशलता से बाबर ने किया। इब्राहीम की सैनिक अनुभवहीनता के सम्बन्ध में बाबर ने लिखा है, "वह अनुभवहीन युवक अपनी युद्ध की गतिविधियों में इतना अधिक लापरवाह था कि बिना किसी नियम के आगे बढ़ जाता था। कभी बिना किसी ढंग के रुक जाता था अथवा लौट पड़ता था और कभी-कभी अदूरदर्शिता के साथ बिना सोचे-समझे भिड़ जाता था।

(5) बाबर द्वारा तुलगमा रण-पद्धति का प्रयोग- बाबर ने युद्ध में तुलगमा पद्धति का प्रयोग किया जो उसकी सफलता का एक बहुत बड़ा कारण था। उसने पानीपत के युद्ध में खाइयों और कँटीली झाड़ियों द्वारा अपनी सेना के दोनों पक्षों की व्यवस्था कर दी। फिर उसने सेना के सामने गाड़ियों और खम्भों को खड़ा कर मध्य में तोपों और अश्वारोहियों की व्यवस्था की। तुलगमा दलों को घूमकर पीछे से आक्रमण करने की आज्ञा दी जिससे इब्राहीम की सेना घिर गई। इसी अवसर पर उसने अपने तोपचियों को भी आग बरसाने की आज्ञा

दी। परिणामतः इब्राहीम की सेना तोपों की मार न सह सकी और भाग खड़ी हुई। इस प्रकार तुलगमा रण-पद्धति ने बाबर को विजयी बनाया।

(6) बाबर का आकर्षक व्यक्तित्व– बाबर का व्यक्तित्व बहुत ही आकर्षक था। वह अपने सैनिक तथा पदाधिकारियों के साथ सद्व्यवहार करता था। उसमें आत्मबल तथा आत्मविश्वास कूट-कूट कर भरा था। अत्यधिक भयंकर परिस्थितियों में भी वह घबड़ाने वाला व्यक्ति नहीं था। उसने खानवा के युद्ध में अपने निराश सैनिकों को उत्साहित करने के लिये जो ओजस्वी भाषण दिया था, वह इतिहास में प्रसिद्ध है। उसी भाषण के परिणामस्वरूप उसने राणा साँगा पर विजय प्राप्त की थी।

(7) बाबर द्वारा 'जेहाद' (धर्म-युद्ध) का नारा– बाबर की सफलता का एक बड़ा कारण धर्म-युद्ध का नारा था। उसने राणा साँगा और मेदिनीराय के विरुद्ध धर्म-युद्ध को अपनाया। खानवा के युद्ध में धर्म का नारा देते हुए उसने अपने सैनिकों के बीच में कहा था, "खुदा का शुक्र है कि अगर हम लड़ाई में मरेंगे तो शहीद होंगे और जीतेंगे तो गाजी कहलाएँगे। आओ, हम सब कुरान हाथ में लेकर कसम खायें कि शरीर में जान रहते मैदाने जंग से पीठ न दिखलाएँगे।" परिणामतः उसकी सेना ने धार्मिक भावना से ओत-प्रोत होकर युद्ध किया और विजयी हुई।

(8) बाबर को पर्याप्त अवकाश की प्राप्ति– इसे बाबर का भाग्य ही माना जाना चाहिए कि उसे खानवा के युद्ध के पूर्व अपनी सैनिक तैयारियों और व्यूह-रचना के लिए पर्याप्त समय प्राप्त हुआ, जिसका उसने सदुपयोग किया। यदि युद्ध कुछ समय पहले प्रारम्भ हो गया होता तो बाबर को सफलता न प्राप्त हुई होती और भारत का इतिहास कुछ और ही होता।

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ (Important Dates & Events)

1. 1483 ई.	–	बाबर का जन्म।
2. 1494 ई.	–	बाबर का फरगना की गद्दी पर बैठना।
3. 1519 ई.	–	बाबर का भारत प्रवेश।
4. 1526 ई.	–	पानीपत का प्रथम युद्ध व इब्राहीम लोदी की मृत्यु।
5. 1527 ई.	–	खानवा का युद्ध।
6. 1528 ई.	–	चन्देरी का युद्ध।
7. 1529 ई.	–	घाघरा का युद्ध।
8. 1530 ई.	–	बाबर का देहावसान।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. बाबर के आक्रमण से पूर्व भारत की राजनीतिक अवस्था का परिचय दीजिए। (1964, 68, 85)
2. बाबर के चरित्र तथा कार्यों का वर्णन कीजिए। (1965, 72)
3. भारत में बाबर को मुगल साम्राज्य स्थापित करने में क्यों सफलता प्राप्त हुई? (1966)
4. बाबर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक स्थिति का वर्णन कीजिए तथा राजपूतों के विरुद्ध उसकी सफलता के कारण बताइए। (1984)
5. बाबर के चरित्र का मूल्यांकन कीजिए। क्या वह मुगल साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक था? (1989)
6. पानीपत के प्रथम युद्ध (1526) के कारणों और परिणामों का विवेचन कीजिए। (1995)

7. बाबर की विजयों का विवेचन कीजिए। (2000)
8. बाबर के व्यक्तित्व एवं उसकी भारत में सफलताओं की समीक्षा कीजिए। (2001)
9. 'बाबरनामा' के प्रकाश में बाबर के चरित्र एवं उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।(2005)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "बाबर एक विजेता था, साम्राज्य निर्माता नहीं।" इस कथन के आलोक में बाबर का मूल्यांकन कीजिए। (1984)
2. "बाबर अपने युग के एशिया के शासकों में सबसे अधिक शानदार था और किसी भी युग के शासकों में वह उच्च स्थान पाने के योग्य है।" उक्त कथन के आलोक में बाबर के व्यक्तित्व और चरित्र का मूल्यांकन कीजिए। (1990)
3. "पानीपत का प्रथम युद्ध सल्तनत काल का अन्त एवं मुगल साम्राज्य का आरम्भ है।" स्पष्ट कीजिए।
4. "पानीपत तथा खानवा के युद्ध भारतीय इतिहास की महत्वपूर्ण निर्णायक घटनायें थीं।" इन दोनों युद्धों के कारणों तथा परिणामों की समीक्षा कीजिए। (1991,93)
5. "बाबर मुगल साम्राज्य का संस्थापक था।" इस कथन के आलोक में बाबर के योगदानों का उल्लेख कीजिए। (1992)
6. "बाबर के आक्रमण के पूर्व भारत स्वतंत्र देशी राज्यों का एक विशृंखल समूह मात्र था।" इस कथन के अनुसार तत्कालीन राजनीतिक दशा का वर्णन कीजिए। (1996)
7. "बाबर में उच्चकोटि की सैनिक प्रतिभा थी।" स्पष्ट कीजिए। (1998)
8. "पानीपत युद्ध से ही दिल्ली साम्राज्य बाबर के हाथ में आ गया।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए। (1999)
9. "बाबर सेनानायक था न कि एक प्रशासक।" क्या आप बाबर के इस मूल्यांकन से सहमत हैं? कारण दीजिए। (2004)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. बाबर के आक्रमण के समय उत्तरीय भारत के चार प्रमुख राज्यों का परिचय दीजिए।
2. भारत में बाबर की सफलता के क्या कारण थे?
3. बाबर के चरित्र तथा व्यक्तित्व का मूल्यांकन कीजिए।
4. बाबर की दो भारतीय विजयों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
5. पानीपत के प्रथम युद्ध (1526 ई.) के किन्हीं दो कारणों और दो परिणामों को विवेचना कीजिए।
6. बाबर ने राणा सांगा को किस युद्ध में पराजित किया था? उसके क्या परिणाम हुए?

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. बाबर के आक्रमण के पूर्व उत्तर भारत की दो प्रमुख शक्तियाँ बताइए।
   (क) दिल्ली का राज्य तथा (2) मेवाड़ का राज्य।
2. बाबर की माता का नाम बताइए।
   बाबर की माता का नाम कुतलुग निगारखानम था।
3. बाबर के आक्रमण के समय दिल्ली का शासक कौन था?
   दिल्ली का शासक इब्राहीम लोदी था।
4. बाबर के आक्रमण के समय मेवाड़ का शासक कौन था?
   मेवाड़ का शासक राणा सांगा था।
5. बाबर के दो तोपंदाजों के नाम लिखिए।
   (क) उस्ताद अली तथा (ख) मुस्तफा रूमी।
6. बाबर को भारत पर आक्रमण करने का निमन्त्रण देने वाले दो हिन्दुस्तानी शासकों के नाम बताइए।

(क) दौलत खाँ लोदी तथा (ख) राणा सांगा।

7. बाबर के दो प्रमुख युद्धों के नाम बताइएं।
(क) पानीपत का प्रथम युद्ध (1526) तथा (2) खानवा का युद्ध (1527)।

8. बाबर के पुत्रों के नाम बताइए।
(क) हुमायूँ, (ख) कामरान, (ग) हिन्दाल तथा (4) अस्करी।

9. बाबर ने पानीपत के प्रथम युद्ध में किस रण-नीति का प्रयोग किया था?
तुलगमा रणनीति का प्रयोग किया था।

10. शस्त्र बहुधा युद्धों में विजय प्राप्त करने में सहायक हुए हैं, मध्यकालीन भारतीय इतिहास में इसका कोई उदाहरण दीजिए।
बाबर का तोपखाना।

11. हुमायूँ के तीन भाई कौन थे?
हुमायूँ के तीन भाई- कामरान, हिन्दाल और अस्करी थे।

बहुविकल्पीय प्रश्न

निर्देश : नीचे दिये गये प्रत्येक प्रश्न के चार विकल्पों में से सही विकल्प छाँट कर लिखिए :

1. बाबर का जन्म कब हुआ था?
(क) 1450 ई. (ख) 1460 ई. (ग) 1483 ई. (घ) 1490 ई.

2. पानीपत का प्रथम युद्ध कब हुआ था?
(क) 1526 ई. (ख) 1527 ई. (ग) 1556 ई. (घ) 1757 ई.

3. भारत में तोपखाने का प्रयोग सर्वप्रथम किसने किया था?
(क) इब्राहीम लोदी ने (ख) जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर ने
(ग) राणा सांगा ने (घ) मेदिनीराय ने

4. बाबर की मृत्यु कहाँ हुई थी?
(क) काबुल (ख) लाहौर (ग) आगरा (घ) जयपुर

5. बाबर का मकबरा कहाँ स्थित है?
(क) काबुल (ख) लाहौर (ग) सहसराम (घ) आगरा

6. 'उपवनों का राजकुमार' कहा गया है-
(क) हुमायूँ को (ख) बाबर को (ग) शेरशाह को (घ) कामरान को

7. 'बाबरनामा' का लेखक कौन है?
(क) फरिश्ता (ख) बाबर (ग) हुमायूँ (घ) बायजीद

8. खानवा का युद्ध कब हुआ था?
(क) 1526 ई. (ख) 1527 ई. (ग) 1528 ई. (घ) 1529 ई.

9. चन्देरी का युद्ध कब लड़ा गया था?
(क) 1519 ई. (ख) 1528 ई. (ग) 1529 ई. (घ) 1530 ई.

10. घाघरा का युद्ध कब हुआ था?
(क) 1526 ई. (ख) 1527 ई. (ग) 1529 ई. (घ) 1530 ई.

11. बाबर की मृत्यु कब हुई थी?
(क) 1526 ई. (ख) 1528 ई. (ग) 1530 ई. (घ) 1535 ई.

■

2

नासिरुद्दीन हुमायूँ

[1530-1540] व [1555-1556]

"हुमायूँ योग्य तथा कुशल शासक नहीं था। उसके नाम (भाग्यशाली) के ठीक विपरीत भारतीय इतिहास में उसे स्थान प्राप्त हुआ।" -डॉ. ईश्वरी प्रसाद

प्रारम्भिक जीवन व सिंहासनारोहण- नासिरुद्दीन मुहम्मद हुमायूँ का जन्म काबुल के किले में 6 मार्च, 1508 को माहम सुल्ताना के गर्भ से हुआ था। वह बाबर का ज्येष्ठ पुत्र था। बचपन में उसने दर्शनशास्त्र तथा गणित का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। सैनिक शिक्षा भी उसने प्राप्त की थी। 18 वर्ष की आयु से उसने युद्धों में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था। पानीपत और खानवा के युद्धों में उसने भाग लिया था। बाबर ने अपने जीवन काल में ही उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। 26 दिसम्बर, 1530 को बाबर की मृत्यु हुई और हुमायूँ 30 दिसम्बर, 1530 को राज-सिंहासन पर आसीन हुआ। बाबर की मृत्यु और हुमायूँ के राज-सिंहासन पर आसीन होने के बीच चार दिवस का अन्तर था, क्योंकि उसको गद्दी से हटाने और मेंहदी ख्वाजा को राजगद्दी पर बैठाने का षड्यन्त्र रचा गया था, किन्तु षड्यन्त्र के कार्यान्वित होने के पूर्व ही उसका अन्त कर दिया गया और हुमायूँ का बिना किसी बाधा के राज्याभिषेक समारोह 30 दिसम्बर, 1530 को सम्पन्न हुआ।

हुमायूँ की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ- हुमायूँ ने दिल्ली के राज-सिंहासन को काँटों की शैय्या के रूप में पाया। राज-सिंहासन पर आरूढ़ होते ही उसको अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उसके समक्ष निम्नलिखित कठिनाइयाँ विद्यमान थीं-

(1) असंगठित साम्राज्य की प्राप्ति- हुमायूँ एक विशाल साम्राज्य का उत्तराधिकारी बना, जिसमें मध्य एशिया के बल्ख, कुन्दुज और बदख्शाँ के प्रान्त सम्मिलित थे। बाबर को अपनी विजयों में व्यस्त रहने के कारण नवविजित विशाल साम्राज्य को संगठित करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ था, जिसके कारण साम्राज्य में चारों ओर अराजकता के चिन्ह विद्यमान थे। साम्राज्य के अन्तर्गत अनेक शक्तिशाली सरदार अपनी स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना की ताक में बैठे हुए सुअवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे।

(2) सुनिश्चित शासन-व्यवस्था का अभाव- बाबर ने अपने साम्राज्य में कोई सुसंगठित शासन-व्यवस्था स्थापित नहीं की थी, क्योंकि उसमें रचनात्मक बुद्धि का अभाव था तथा एक अच्छे प्रशासक के गुण नहीं थे। लोदियों के समय से चली आने वाली शासन-व्यवस्था को ही उसने अपनाया। उसने जागीरदारी प्रथा को अपनाकर साम्राज्य को अमीरों और जागीरदारों

में बाँट दिया था। यह जागीरदारी प्रथा हुमायूँ के लिये खतरे से खाली न थी।

(3) साम्राज्य का भाइयों में बँटवारा– हुमायूँ ने अपने पिता के आदेशानुसार साम्राज्य को अपने भाइयों में बाँट दिया। उसने कामरान को काबुल और कंधार, अस्करी को सम्भल और हिंदाल को मेवात और अलवर के प्रान्त दिये। हुमायूँ को अपने इन सगे भाइयों से भी संघर्ष करना पड़ा। इनमें कामरान हुमायूँ के लिये अत्यधिक खतरनाक था। उसकी दिल्ली सिंहासन की ओर दृष्टि लगी हुई थी। अस्करी और हिन्दाल भी बड़े झगड़ालू, उपद्रवी तथा महत्वाकांक्षी थे। इनके सम्बन्ध में लेनपूल ने ठीक ही कहा है, "सदा से निर्बल और कपटी अस्करी और हिन्दाल इस दृष्टिकोण से खतरनाक थे कि महत्वाकांक्षी व्यक्ति उनको अपना अस्त्र बनाकर हुमायूँ के विरुद्ध प्रयोग कर सकते थे।" साम्राज्य का इस प्रकार विभाजन हुमायूँ के लिए विपदा का कारण बना।

हुमायूँ की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ

1. असंगठित साम्राज्य की प्राप्ति
2. सुनिश्चित शासन-व्यवस्था का अभाव
3. साम्राज्य का भाइयों में बँटवारा
4. अफगानों की समस्या
5. रिक्त राजकोष
6. सम्बन्धियों द्वारा असहयोग
7. दोषपूर्ण सैन्य संगठन
8. राजपूतों की ओर से खतरा
9. हुमायूँ के चरित्र की दुर्बलताएँ

(4) अफगानों की समस्या– यद्यपि बाबर ने अपने चार वर्षों के शासनकाल में अफगानों को पराजित किया था, किन्तु उनकी शक्ति समूल नष्ट नहीं हुई थी। वे पुनः अपनी सत्ता की स्थापना की ताक में बैठे अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे। इब्राहीम लोदी का भाई महमूद लोदी बंगाल के शासक की मदद से अपने पूर्वजों की राजगद्दी को पुनः प्राप्त करने का प्रयास कर रहा था। बिहार में अफगानों का सरदार शेरखाँ सूरी एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने का अवसर ताक रहा था। उसने तो मुगलों को भारत से निकालने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। इसी तरह इब्राहीम लोदी का चाचा आलम खाँ गुजरता के शासक बहादुरशाह की मदद से हुमायूँ के विरुद्ध सैन्य संगठन कर रहा था।

(5) रिक्त राजकोष– बाबर ने भारत-विजय के समय जो धन प्राप्त किया था, उसका उसने अपव्यय किया। उसने सरदारों तथा सैनिकों को प्रसन्न करने के लिये खुले हाथों धन का वितरण किया। परिणामतः राजकोष रिक्त हो गया। उसने इस बात की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया कि आर्थिक स्थिति के सुदृढ़ होने पर ही साम्राज्य का स्थायी रहना निर्भर है। हुमायूँ ने भी रिक्त राजकोष को पूरा करने का प्रयास नहीं किया, बल्कि उसने भी धन का अपव्यय किया जिसका दुःखद परिणाम उसे भोगना पड़ा।

(6) सम्बन्धियों द्वारा असहयोग– हुमायूँ की सबसे बड़ी हानि उसके उन सम्बन्धियों से हुई जो बाबर से अपने रक्त-सम्बन्ध का दावा करते थे और अपने आप को मिर्जा कहकर पुकारते थे। इनमें सबसे प्रमुख मुहम्मद जमान मिर्जा था। वह हिरात के सुल्तान हुसैन बैकरा का पौत्र था और हुमायूँ की सौतेली बहन मासूमा बेगम का पति था। वह बड़ा चंचल और उपद्रवी था और दिल्ली के राजसिंहासन पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहता था। दूसरा प्रमुख विरोधी मुहम्मद सुल्तान मिर्जा था। वह भी तैमूर का वंशज था और हिन्दुस्तान के राज-सिंहासन को प्राप्त करने का आकांक्षी था। तीसरा विरोधी मीर मुहम्मद मेहदी ख्वाजा था जो बाबर का बहनोई था। उसने हुमायूँ के विरुद्ध बाबर के प्रधानमंत्री खलीफा से मिलकर एक षड्यन्त्र रचा था, किन्तु उसको उसमें सफलता नहीं प्राप्त हुई।

(7) दोषपूर्ण सैन्य-संगठन– बाबर ने अपनी सेना में विभिन्न जाति और वर्ग के लोगों को भर्ती किया था। उसमें मुगल, उजबेक, तुर्क, अफगान, ईरानी और हिन्दुस्तानी सभी प्रकार

के लोग थे। बाबर की मृत्यु के पश्चात् सेना में एकता की भावना नहीं रही, क्योंकि हुमायूँ में बाबर की भाँति योग्यता और प्रभावशाली व्यक्तित्व का अभाव था। अतः युद्ध के समय उसकी सेना पर अत्यधिक विश्वास नहीं किया जा सकता था।

(8) राजपूतों की ओर से खतरा– यद्यपि बाबर ने खानवा के युद्ध (1527) में राणा साँगा को परास्त कर राजपूतों की शक्ति को भारी आघात पहुँचाया था, किन्तु राणा साँगा के पुत्र रत्नसिंह ने पुनः राजपूतों की शक्ति को संगठित करना आरम्भ कर दिया था। अन्य राजपूत राजे भी अपने को संगठित करने तथा अपनी शक्ति को सुदृढ़ करने का प्रयत्न कर रहे थे। वे मुगलों को भारत से निकालने के प्रयास में अफ़गानों से गठबन्धन कर सकते थे। अतः ऐसी अवस्था में हुमायूँ के लिये संयुक्त मोर्चे का सामना करने का खतरा उत्पन्न हो सकता था।

(9) हुमायूँ के चरित्र की दुर्बलताएँ– हुमायूँ के चरित्र में अनेक दुर्बलताएँ थीं, जिसके कारण वह स्वयं अपना सबसे बड़ा शत्रु था। डॉ. आशीर्वादीलाल के अनुसार, "बौद्धिक योग्यता और साहित्य के प्रति अभिरुचि होते हुए भी उसमें फौजी प्रतिभा और इच्छा–शक्ति का अभाव था। साथ ही वह क्रियाशील पुरुष नहीं था। किसी बात को शीघ्र तय करने और शीघ्र उसे कार्यान्वित करने में भी वह शून्य था।" इतिहासकार लेनपूल ने ठीक ही कहा है, "हुमायूँ कभी भी डटकर काम करने वाला व्यक्ति नहीं था। विजय–प्राप्ति के उल्लास में वह अपने को अन्तःपुर (हरम) की विलासिता में डुबो दिया करता था। जब उसके द्वार पर शत्रुओं का गर्जन सुनाई पड़ता था, तब वह अपने को अफीमची के स्वप्नों की दुनिया में बरबाद करता रहता था। जब शत्रुओं को दण्ड देने की आवश्यकता होती थी तो वह अपनी स्वाभाविक दयालुता के वशीभूत होकर उन्हें क्षमा प्रदान करता था और जब उसे युद्धस्थल में होना चाहिए, उस समय वह हरम में आमोद–प्रमोद में मस्त रहता था।" वास्तव में हुमायूँ बड़ा भाग्यहीन था। वह जीवन पर्यन्त ठोकरें खाता रहा और ठोकरें खाकर भी नहीं संभला।

हुमायूँ की प्रारम्भिक सफलताएँ

हुमायूँ को अपनी प्रारम्भिक कठिनाइयों के लिए अनेक संघर्ष करने पड़े, जिनका निम्न प्रकार से वर्णन किया जा सकता है :

(1) कालिंजर पर आक्रमण (1531)– राज्यारोहण के पश्चात् छः महीने के भीतर हुमायूँ ने बुन्देलखण्ड के कालिंजर दुर्ग पर आक्रमण किया। किले का घेरा एक महीने तक पड़ा रहा और अन्त में हुमायूँ को कालिंजर के राजा प्रताप रुद्रदेव से सन्धि करनी पड़ी। राजा ने हुमायूँ को 12 मन सोना दिया और शाही सेवा भी स्वीकार कर ली।

(2) महमूद लोदी का दमन– कालिंजर घेरा उठाने के पश्चात् हुमायूँ महमूद लोदी का दमन करने के लिये पूर्व की ओर बढ़ा जो मुगल प्रदेश की ओर बढ़ा आ रहा था। दोनों ओर की सेनाओं में अगस्त, 1532 में दोराह नामक स्थान पर युद्ध हुआ। अफगान लोग युद्ध में पराजित हुए और बिहार की ओर भाग खड़े हुए।

(3) चुनार का घेरा (1532)– महमूद लोदी को पराजित करने के उपरान्त हुमायूँ ने सितम्बर 1532 में चुनार के दुर्ग का घेरा डाला। इस समय चुनार पर शेरखाँ का अधिकार था। यह घेरा सितम्बर से दिसम्बर, 1532 तक रहा। अन्त में शेरखाँ ने हुमायूँ की अधीनता स्वीकार कर ली। उसने हुमायूँ से चुनार का दुर्ग अपने ही अधीन रहने का अनुरोध किया। हुमायूँ को भी इस समय पश्चिम में अशान्ति के समाचार मिल चुके थे। अतः उसने खुशी–खुशी शेरखाँ के अनुरोध को स्वीकार कर लिया और आगरा लौट आया। इस प्रकार शेरखाँ ने अपनी कूटनीति से अपनी शक्ति संगठित करने का पूरा अवसर प्राप्त कर लिया। शेरखाँ को इस प्रकार छोड़ देना हुमायूँ की महान भूल थी।

(4) मुहम्मद जमान मिर्जा तथा मुहम्मद सुल्तान मिर्जा का दमन– जुलाई, 1534 में दोनों मिर्जाओं ने विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया, किन्तु विद्रोह का दमन कर दिया गया। हुमायूँ ने मुहम्मद जमान को बन्दी बनाकर बयाना के दुर्ग में रख छोड़ा, किन्तु वह वहाँ से भागने में सफल हुआ और उसने गुजरात के शासक बहादुरशाह के यहाँ शरण ली। हुमायूँ ने मुहम्मद सुल्तान मिर्जा तथा उसके दो पुत्रों को बन्दी बनाकर बयाना भेज दिया जहाँ उनकी आँखें निकलवा ली गईं।

(5) बहादुरशाह से युद्ध (1535-36)– बहादुरशाह गुजरात और मालवा का शासक था। वह बड़ा महत्वाकांक्षी था और दिल्ली पर अपना अधिकार करना चाहता था। उसने आलम खाँ लोदी तथा मुहम्मद जमान मिर्जा को अपने दरबार में शरण दे रखी थी। उसने बहुत से प्रदेशों को विजित कर अपनी शक्ति सुदृढ़ कर ली थी। जब बहादुरशाह चित्तौड़ पर आक्रमण करके उसका घेरा डाले पड़ा था, हुमायूँ को चित्तौड़ की रानी कर्णवती की भेजी हुई राखी मिली जिसके माध्यम से सहायता की याचना की गई थी। हुमायूँ बहादुरशाह से पहले ही सचेत था। अतः वह मालवा में घुसकर रायसेन होता हुआ सारंगपुर पहुँच गया। हुमायूँ के सारंगपुर तक पहुँच आने पर बहादुरशाह चिन्तित हुआ। उसने बादशाह से निवेदन किया कि जब तक वह चित्तौड़ के साथ युद्ध करने में लगा है, किसी मुस्लिम शासक का उस पर आक्रमण करना धर्म विरुद्ध कार्य है। हुमायूँ धीमी गति और सावधानी से आगे बढ़ा और चित्तौड़ तथा माँडू के बीच एक स्थान पर मोर्चा लगा लिया। बहादुरशाह ने शीघ्र ही राजपूतों को समर्पण के लिए विवश कर दिया। मार्च, 1535 में चित्तौड़ पर बहादुरशाह का अधिकार हो गया।

चित्तौड़ के पतन के पश्चात् हुमायूँ बहादुरशाह से युद्ध के लिये मंदसौर पहुँचा। उसने बहादुरशाह की सेना को मंदसौर के निकट एक कृत्रिम झील के किनारे युद्ध में परास्त कर उसे माँडू से चम्पानेर एवं अहमदाबाद तथा वहाँ से खम्भात तक खदेड़ दिया (अप्रैल, 1535)। अन्ततः बहादुरशाह पुर्तगाली द्वीप दीव में शरण लेने को विवश हो गया। मालवा और गुजरात पर मुगलों का अधिकार हो गया। हुमायूँ ने अपने भाई अस्करी को इन प्रदेशों की व्यवस्था का भार सौंप दिया। इस बीच चम्पानेर और माँडू को विजित करने के पश्चात् वह आमोद-प्रमोद में लीन हो गया। इससे चारों ओर अव्यवस्था फैल गई जिसका लाभ बहादुरशाह ने उठाया और पुनः अपने राज्य पर अधिकार कर लिया (1536)।

शेरखाँ से संघर्ष (घटना) हुमायूँ के जीवन की

शेरखाँ हसन खाँ का सबसे बड़ा पुत्र था। उसने बिहार पर अधिकार कर लिया और बंगाल को जीतकर 1536 ई. की फरवरी के अन्त तक गौड़ के किले तक पहुँच गया। जब हुमायूँ को शेरखाँ की इन कार्यवाहियों का हाल ज्ञात हुआ तो सेना लेकर वह गौड़ की ओर बढ़ा। शेरखाँ उसके रास्ते से हटकर बिहार की ओर वापस लौट गया और गौड़ पर हुमायूँ का अधिकार हो गया। इसके पश्चात् आठ महीने तक वह आमोद-प्रमोद में मग्न रहा। इसी बीच शेरखाँ ने अपनी शक्ति को और अधिक सुदृढ़ कर हुमायूँ के वापस लौटने के मार्ग को अवरुद्ध करा दिया। इधर आगरा में हुमायूँ का भाई हिन्दाल अपने को स्वतन्त्र शासक घोषित करने की तैयारी कर रहा था।

चौसा का युद्ध (26 जून, 1539)– हिन्दाल के विद्रोह का समाचार पाते ही हुमायूँ ने आगरा की ओर प्रस्थान किया और मुँगेर में गंगा को पार किया। शेरखाँ उसका सामना करने के लिये आगे बढ़ा। जब हुमायूँ को अपनी भयंकर स्थिति का ज्ञान हुआ तो उसने शेरखाँ से सन्धि-वार्ता चलाई, किन्तु वह इसके लिये तैयार न हुआ। तीन महीने तक दोनों ओर की सेनाएँ एक दूसरे का सामना किये हुए पड़ी रहीं। अन्त में 26 जून 1539 को शेरखाँ की सेना ने अचानक रात्रि में मुगल सेना पर आक्रमण कर दिया। इस अचानक आक्रमण से मगल सैनिक बुरी तरह

भयभीत होकर भाग खड़े हुए। हुमायूँ भी भागकर प्राण बचाने के लिए घोड़े पर चढ़ा हुआ गंगा में कूद पड़ा। निजाम खाँ नाम के एक भिश्ती ने उसे डूबने से बचाया। भिश्ती ने उसे अपनी मशक पर बैठाकर कुशलतापूर्वक नदी के दूसरे किनारे पर पहुँचाया। यह युद्ध बक्सर के पास चौसा नामक स्थान पर होने के कारण 'चौसा का युद्ध' के नाम से प्रसिद्ध है। इस युद्ध में विजयी होने के बाद शेरखाँ ने 'शेरशाह' की उपाधि धारण की।

कन्नौज का युद्ध (17 मई, 1540)– चौसा के युद्ध में पराजित होकर हुमायूँ आगरा आया और शेरशाह का सामना करने के लिये 90 हजार सैनिक इकट्ठा किये। इसने अपने भाइयों से भी मदद प्राप्त करने का प्रयास किया, किन्तु कोई भी उसका साथ देने को तैयार नहीं हुआ। हुमायूँ के भाइयों की फूट से प्रोत्साहित होकर शेरशाह आगे बढ़ा। हुमायूँ भी शेरशाह का सामना करने के लिए चल पड़ा। कन्नौज के पास गंगा के किनारे दोनों ओर की सेनाओं ने पड़ाव डाले। एक महीने तक दोनों ओर की सेनाएँ आमने-सामने डटी रहीं। 15 मई को अचानक भीषण वर्षा हो जाने के कारण मुगल शिविर में पानी भर गया। अतः मुगलों ने अपने शिविर को किसी ऊँचे स्थान पर ले जाने का विचार किया। इसी बीच 17 मई को अचानक शेरशाह ने मुगल शिविरों पर आक्रमण कर दिया। कीचड़ के कारण मुगल सैनिक तोपों का प्रयोग नहीं कर सके और उनमें भगदड़ मच गई। इस प्रकार अफगानों ने बड़ी आसानी से विजय प्राप्त की। मिर्जा हैदर के शब्दों में, "इस युद्ध में एक गोली तक नहीं चलाई गई। गोला-बारूद का कत्तई काम नहीं पड़ा।"

हुमायूँ का पलायन व वापसी– 1540 में हुमायूँ आगरा की ओर भागा। शेरशाह ने उसका पीछा किया। हुमायूँ आगरा, दिल्ली होता हुआ लाहौर गया। इस महान संकट के समय भी उसके भाई कामरान ने उसकी मदद नहीं की बल्कि हुमायूँ के कश्मीर जाने के प्रयत्न को विफल कर दिया। फलतः कई वर्षों तक वह सिन्ध और राजपूताना के प्रदेशों की खाक छानता रहा। अमरकोट में उसकी रानी हमीदा बेगम ने एक पुत्र को जन्म दिया जो कालान्तर में अकबर महान् के नाम से विख्यात हुआ। हुमायूँ को अपना नवजात शिशु कन्दहार में अस्करी के पास छोड़कर फारस की ओर भागना पड़ा। इस प्रकार हुमायूँ ने अपने पिता से प्राप्त साम्राज्य को खो दिया और 15 वर्षों (1540-1555) तक निर्वासित जीवन समाप्त करने के बाद ईरान के शाह तहमास्प की सहायता से 23 जुलाई, 1555 को दिल्ली का सिंहासन पुनः प्राप्त किया।

हुमायूँ की मृत्यु– हुमायूँ छः महीने से अधिक राज्य का सुख न भोग सका। एक दिन संध्या के समय दिल्ली में नमाज पढ़ने के लिए 'दीनपनाह' महल स्थित पुस्तकालय की सीढ़ियों से नीचे आते समय उसका पैर फिसल गया और नीचे गिर पड़ने से उसकी खोपड़ी की हड्डी टूट गई। 28 जनवरी, 1556 को वह इस संसार से चल बसा। इतिहासकार लेनपूल ने लिखा है, "हुमायूँ गिरते-पड़ते इस जीवन से मुक्त हो गया – ठीक उसी प्रकार जिस तरह तमाम जिन्दगी भर वह गिरते-पड़ते चला आ रहा था।"

हुमायूँ की असफलता के कारण

बाबर की मृत्यु के उपरान्त हुमायूँ को जिन परिस्थितियों में दिल्ली का सिंहासन प्राप्त हुआ वह किसी भी सुयोग्य शासक के लिए सिर-दर्द का कारण बन सकती थीं, किन्तु यदि हुमायूँ में बुद्धिमत्ता, योग्यता तथा दूरदर्शिता जैसे गुणों का अभाव न होता तो उसकी प्रारम्भिक उलझनें और कठिनाइयाँ दूर हो गई होतीं और उसे उन परिस्थितियों का शिकार न बनना पड़ता, जिन परिस्थितियों ने उसे पैतृक राज्य छोड़ने के लिये बाध्य किया। उनमें से अधिकांश उसकी अपनी मूर्खता और कमजोरियाँ थीं। निस्सन्देह उसका जीवन असफलताओं से भरी हुई एक दुःखद कहानी है। उसकी असफलता के कारण निम्न थे :

(1) भाइयों में साम्राज्य का बँटवारा– हुमायँ की असफलता का सबसे बड़ा कारण

अपने भाइयों में साम्राज्य का बँटवारा करना था। इस समय तो सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की थी कि सम्पूर्ण मुगल-साम्राज्य की बागडोर एक ही व्यक्ति के हाथ में होती, जिससे आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं से डटकर सामना किया जा सकता। कामरान के अधिकार में पंजाब और काबुल का होना भी हुमायूँ के लिये हानिकारक सिद्ध हुआ, क्योंकि वहाँ से उसको वीर सैनिकों का मिलना बंद हो गया जिससे उसकी सैनिक-शक्ति कमजोर हो गई।

(2) भारतीय प्रजा का असहयोग– बाबर की भाँति हुमायूँ ने भारतीय प्रजा को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास नहीं किया। रचनात्मक कार्य करने के स्थान पर उसने साम्राज्यवादी नीति अपनाई। गद्दी पर बैठने के बाद ही उसने कालिंजर के राजा पर आक्रमण किया जो उस समय की परिस्थितियों को देखते हुए सर्वथा अनुचित था। उसने आक्रमण इसलिए किया कि वहाँ का राजा अंफगानों का समर्थक था। यदि हुमायूँ में कुछ भी बुद्धि होती तो वह कूटनीति के द्वारा कालिंजर नरेश को अपने वश में कर सकता था। इस आक्रमण से हुमायूँ की प्रतिष्ठा को आघात ही लगा, भले ही उसे कालिंजर नरेश से कितना ही धन क्यों न मिला हो।

(3) भाइयों और सम्बन्धियों द्वारा विश्वासघात– हुमायूँ ने अपने भाइयों और सम्बन्धियों पर विश्वास किया। उसका सबसे बुरा शत्रु उसका ही भाई कामरान था, जो अन्त तक उसे धोखा देता रहा और हुमायूँ सदा उसे क्षमा करता रहा। कामरान के अन्तिम बार बन्दी किये जाने पर जब हुमायूँ के सरदारों ने उससे कामरान का वध कर डालने का निवेदन किया तो उसने कहा, 'मेरी बुद्धि तो तुम्हारी बातें मानती है, लेकिन मेरा दिल नहीं मानता," और उसने अपने भाई के खून से हाथ रँगने से इन्कार कर दिया। उसके सम्बन्धी मिर्जाओं ने विद्रोह किया और उन्होंने गुजरात के शासक बहादुरशाह के यहाँ शरण ली और उसको दिल्ली पर आक्रमण करने के लिये प्रोत्साहित किया।

हुमायूँ की असफलता के कारण

1. भाइयों में साम्राज्य का बँटवारा
2. भारतीय प्रजा का असहयोग
3. भाइयों और सम्बन्धियों द्वारा विश्वासघात
4. शेरशाह की बढ़ती हुई शक्ति की उपेक्षा
5. बहादुरशाह के प्रति हुमायूँ की नीति
6. समय का दुरुपयोग
7. भूलों की पुनरावृत्ति
8. गुप्तचर-विभाग की अकर्मण्यता
9. हुमायूँ स्वयं उत्तरदायी

(4) शेरशाह की बढ़ती हुई शक्ति की उपेक्षा– हुमायूँ ने शेरशाह की दिनों-दिन बढ़ती हुई शक्ति की उपेक्षा की और यही आत्मविश्वास किये बैठा रहा कि वह जब चाहेगा, शेरशाह की शक्ति को नष्ट कर देगा; लेकिन उसकी यह सबसे बड़ी मूर्खता और भूल थी। हुमायूँ यदि प्रारम्भ से ही शेरशाह के प्रति सतर्क हो जाता, तो सम्भवतः उसे देश का त्याग न करना पड़ता। जब उसने 1532 में चुनार का घेरा डाला था, शेरशाह से संधि न करता, लेकिन उसने ऐसा न किया, बल्कि शेरशाह से सन्धि करके चुनार दुर्ग पर उसी का आधिपत्य रहने दिया। इस सम्बन्ध में डॉ. आशीर्वादीलाल का कथन है, "हुमायूँ के स्थान पर यदि कोई दूरदर्शी और समझदार शासक होता तो साम्राज्य के अन्य भागों में सैनिक अभियानों की लम्बी-चौड़ी योजनायें न बनाकर पहले अफगानों की ही जड़ें खोद देता।"

(5) बहादुरशाह से प्रति हुमायूँ की नीति– हुमायूँ ने बहादुरशाह के प्रति जिस नीति को अपनाया वही उसकी असफलता का कारण सिद्ध हुई। बहादुरशाह पर तो उसे उसी समय आक्रमण करना चाहिए था जब वह चित्तौड़ के राजपूतों से युद्ध कर रहा था। उसका परिणाम यह होता कि वह उसकी सैनिक-शक्ति को बुरी तरह नष्ट कर देता और राजपूतों की भी सहानुभूति प्राप्त कर लेता। गुजरात और मालवा पर विजय प्राप्त करके भी वह उन पर अधिकार न रख

सका क्योंकि विजय प्राप्त करने के बाद वह माँडू में कई सप्ताह तक आमोद-प्रमोद में लीन रहा, जिससे बहादुरशाह को गुजरात और मालवा पर पुनः अधिकार करने का सुअवसर प्राप्त हो गया।

(6) समय का दुरुपयोग– हुमायूँ की असफलता का एक प्रमुख कारण यह भी था कि उसने समय का कभी उचित उपयोग नहीं किया, बल्कि महत्वपूर्ण समय में आमोद-प्रमोद में लीन रहा। गुजरात और गौड़ में उसने यही किया। इसी प्रकार उसने चुनारगढ़-विजय में 6-7 महीने व्यर्थ नष्ट किये। यही समय वह शेरशाह का पूर्ण दमन करने में इस्तेमाल कर सकता था, किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। इससे शेरशाह को अपनी सैनिक शक्ति का संगठन करने का अवसर प्राप्त हो गया और उसने गौड़ से लौटते समय हुमायूँ को चौसा में परास्त किया। डॉ. आशीर्वादीलाल ने ठीक ही लिखा है, "क्या किसी ऐसे शासक की कल्पना की जा सकती है जो पूरे आठ महीने तक अपनी राजधानी से कोई समाचार न प्राप्त कर सके और सोचता यही रहे कि वहाँ सब ठीक है?"

(7) भूलों की पुनरावृत्ति– अपने दुष्ट भाई कामरान द्वारा लगातार विश्वासघात किये जाने पर भी वह उसे क्षमादान करता रहा। 1535 में उसने बहादुरशाह के विरुद्ध चित्तौड़ की रानी कर्णवती की समय पर मदद नहीं की। यदि मदद देना स्वीकार कर लिया होता तो बहुत सम्भव है कि उसके जीवन का कुछ और ही इतिहास होता। चौसा के युद्ध में शेरशाह से धोखा खाने के बाद भी वह कन्नौज की लड़ाई में बहुत भारी भूल कर बैठा। "सैनिक-शिविर स्थापित करने के लिए नीचा स्थान पसन्द करना, एक महीने तक अकर्मण्य बने रहना, शिविर को दूसरे स्थान पर हटाते समय अच्छा प्रबन्ध न करना; तोप, गोलों के दल को युद्ध के समय पीछे छोड़ देना और भयभीत भागते हुए सैनिकों की रोक-थाम न करना आदि बातें उसकी असफलता, पराजय और अन्त में भारत से भागने के लिये उत्तरदायी हैं।"

(8) गुप्तचर-विभाग की अकर्मण्यता– हुमायूँ की भाँति उसका गुप्तचर विभाग भी अकर्मण्य था। उसे किसी महत्वपूर्ण घटना की खबर ठीक समय पर नहीं मिलती थी। कामरान किस तरह और किस उद्देश्य से पंजाब की ओर बढ़ आया, शेरखाँ किस अभिप्राय से अपना सैन्य संगठन कर रहा था, चौसा के युद्ध में शेरखाँ का दाँव क्या था आदि ऐसी बातें हैं; जिनकी सही सूचना गुप्तचर विभाग की अकर्मण्यता के कारण हुमायूँ को नहीं मालूम हो सकीं। फलतः उसको लगातार असफलता मिलती रही।

(9) हुमायूँ स्वयं उत्तरदायी– हुमायूँ में डटकर कार्य करने की क्षमता नहीं थी। जब कभी उसे युद्ध में सफलता मिलती थी तो वह प्रसन्नता में अपने आपको भूलकर आमोद-प्रमोद में समय व्यतीत करने लगता था। गुजरात और गौड़ में उसने यही किया। लेनपूल ने ठीक ही कहा है, "हुमायूँ जमकर काम करने वाला व्यक्ति नहीं था। क्षणिक विजय उल्लास में ही वह अपने को अन्तःपुर की विलासिता में डूबो दिया करता था। जब उसके द्वार पर शत्रुओं का गर्जन होता था तब वह अफीमची के स्वप्नों की दुनिया में अपने को बरबाद करता रहता था। जब शत्रुओं को दण्ड देने की आवश्यकता होती थी तब वह स्वाभाविक दयालुता के वशीभूत होकर उन्हें क्षमा प्रदान करता था। जब उसे युद्ध-स्थल में होना चाहिए, उस समय वह महल में रंगरेलियों में मस्त रहता था। उसका चरित्र प्रभावहीन था। शासक के रूप में वह नितान्त असफल रहा।" हेवेल ने लिखा है, "वह अन्धविश्वासी था और ज्योतिषियों के परामर्श के अनुसार ही वह कार्य किया करता था, परन्तु फिर भी नक्षत्र सदैव उसके विपरीत ही रहे।" ''डॉ. आशीर्वादीलाल के अनुसार, "उसका स्वभाव ही उसकी असफलताओं का प्रमुख कारण था।"

उपर्युक्त कारणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि विविध प्रकार की कठिनाइयों और कमजोरियों के कारण हुमायूँ असफल रहा। यह अभागा बादशाह जीवन पर्यन्त ठोकरें खाता रहा और ठोकर

खाकर ही उसकी मृत्यु भी हुई।

हुमायूँ का चरित्र-चित्रण– हुमायूँ का शाब्दिक अर्थ होता है "भाग्यशाली", किन्तु उस जैसा अभागा बादशाह दिल्ली के सिंहासन पर संभवतः बैठा ही नहीं। उसमें अनेक गुण विद्यमान थे, किन्तु उसके चरित्र की अनेक दुर्बलताएँ उसके गुणों को ढँक देती हैं। उसके चरित्र का वर्णन निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है :

(1) व्यक्ति के रूप में– हुमायूँ का चरित्र व्यक्ति के रूप में आदर्श था। इस सम्बन्ध में तत्कालीन और आधुनिक इतिहासकारों ने उसकी प्रशंसा की है।

(i) आज्ञाकारी पुत्र में– वह एक आज्ञाकारी पुत्र था। उसने अपने पिता के अन्तिम उपदेश को जिसमें उसने कहा था कि अपने भाइयों के साथ सदैव उदारता का व्यवहार करना, सदैव स्मरण रखा। यद्यपि इसके पालन में उसको अपमे भाइयों से उत्पन्न अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। यहाँ तक कि उसे अपना पैतृक साम्राज्य भी त्यागना पड़ा।

(ii) सम्बन्धियों से प्रेमपूर्ण व्यवहार– उसने अपने सम्बन्धियों से बड़ा ही अच्छा प्रेमपूर्ण व्यवहार किया। मुहम्मद जमान मिर्जा, मुहम्मद सुल्तान मिर्जा तथा अनेक सम्बन्धियों के सदैव विद्रोह करते रहने पर भी उन्हें क्षमा प्रदान करता रहा।

(iii) दाम्पत्य और वात्सल्य की प्रतिमूर्ति– अनेक पत्नियाँ रखते हुए भी वह सभी से प्रेम करता था। अपने बच्चों को, विशेषकर अकबर को अधिक प्यार करता था।

(iv) दयालु व्यक्ति– वह अत्यधिक दयालु स्वभाव का था। निरन्तर विद्रोह करने वाले उसके भाई कामरान को जब उसके सरदारों ने मृत्युदण्ड का परामर्श दिया तो यह कहकर कि 'मेरी बुद्धि तुम्हारी बातें मानती है, लेकिन मेरा हृदय नहीं मानता," इन्कार कर दिया। इस प्रकार हुमायूँ में व्यक्ति के रूप में अनेक गुण विद्यमान थे।

(2) विद्वान के रूप में– हुमायूँ एक विद्याप्रेमी व्यक्ति था। वह स्वयं विद्वानों का आदर करता था। वह गणित, ज्योतिष, दर्शन तथा तुर्की-फारसी साहित्य आदि विषयों का अच्छा ज्ञाता था। लेकिन वह बाबर के समान विद्वान न था। वह कभी-कभी भाषा-शैली और शुद्ध शब्दों के प्रयोग में भूल कर जाया करता था। यह सब कमियाँ होते हुए भी वह सुसंस्कृत व्यक्ति था। पुस्तकालय स्थापित करना उसे अत्यन्त रुचिकर था।

(3) सच्चे मुसलमान के रूप में– हुमायूँ एक सहिष्णु मुसलमान था। उसमें धार्मिक कट्टरता का अभाव था। सुन्नी होते हुए भी शिया मतावलम्बियों के प्रति वह उदार था। उसकी पत्नी हमीदा बानू बेगम तथा उसका विशेष विश्वासपात्र सेवक अमीर बैरम खाँ दोनों ही शिया मतावलम्बी थे, किन्तु जहाँ तक हिन्दुओं के साथ व्यवहार करने का प्रश्न है वह अपने समय के विचारों से ऊपर नहीं उठ सका। उसने मुसलमानों का सदैव पक्ष लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि वह हिन्दुओं की सहानुभूति नहीं प्राप्त कर सका।

(4) सैनिक के रूप में– यद्यपि हुमायूँ एक वीर सैनिक था और रणस्थल में अपने जीवन तक को संकट में डाल देता था तथा धैर्य से काम लेता था, फिर भी वह असफल सैनिक सिद्ध हुआ। उसमें एक श्रेष्ठ सेनापति के गुणों का अभाव था। उसमें दृढ़ निश्चय की कमी थी। वह एक शत्रु को पूर्णतया पराजित किये बिना ही दूसरे शत्रु पर आक्रमण कर देता था। उसकी सेना में उसके नियन्त्रण का इतना अधिक अभाव था कि उसके सैनिक निरन्तर उसकी आज्ञाओं का उल्लंघन करते रहते थे। फलतः वही मुगल सेना जो बाबर के काल में अपनी वीरता के लिये प्रसिद्ध थी, हुमायूँ के समय शक्तिहीन बनकर रह गई।

(5) शासक के रूप में– मध्यकालीन शासकों में हुमायूँ को एक सुयोग्य शासक भी नहीं कहा जा सकता। उसमें अपने पिता के समान ही रचनात्मक कार्यों को करने की क्षमता तथा

प्रतिभा का अभाव था। उसने एक सुदृढ़ शासन-व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास नहीं किया और न उस समय की जनता की नैतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति में ही कोई सुधार किया। कुछ विद्वानों का मत है कि समयाभाव के कारण वह कोई अच्छी शासन व्यवस्था स्थापित नहीं कर सका, परन्तु यह मत सत्य से बहुत दूर है। शेरशाह ने तो केवल पाँच वर्षों में ही एक सुव्यवस्थित शासन प्रणाली की स्थापना की थी जबकि हुमायूँ ने निर्वासित होने के पूर्व दस वर्षों तक शासन किया। सत्य तो यह है कि एक सुसंगठित शासन-व्यवस्था स्थापित करने की उसमें योग्यता नहीं थी।

हुमायूँ ने ज्योतिषशास्त्र के अनुसार अपने सरकारी अधिकारियों को 12 श्रेणियों में विभक्त किया था और प्रत्येक श्रेणी एक तीर चिह्न से जानी जाती थी। उसने सप्ताह के प्रत्येक दिन अलग-अलग रंग की पोशाक पहनने का नियम बनाया था, जिसका शासन-सम्बन्धी कार्यों से कोई संबंध नहीं था। निष्कर्षस्वरूप डॉ. आशीर्वादीलाल के शब्दों में कहा जा सकता है, "शासन सम्बन्धी शुष्क बातों में उसका मन नहीं लगता था। चाहे यह कथन कितना ही विचित्र क्यों न जान पड़े, लेकिन यह सत्य है कि उत्तरदायित्व सम्भालने और निभाने की भावना हुमायूँ के अन्दर नहीं थी।"

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ (Important Dates & Events)

1. 1508 ई. – हुमायूँ का जन्म।
2. 1530 ई. – हुमायूँ का सिंहासनारोहण।
3. 1532 ई. – चुनार का घेरा।
4. 1535 ई. – हुमायूँ और बहादुरशाह के मध्य युद्ध।
5. 1539 ई. – हुमायूँ और शेरशाह के मध्य चौसा का युद्ध।
6. 1540 ई. – कन्नौज का युद्ध तथा हुमायूँ का भारत से पलायन।
7. 1555 ई. – हुमायूँ का दिल्ली सिंहासन पुनः प्राप्त करना।
8. 1556 ई. – हुमायूँ का देहावसान।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।

1. हुमायूँ की असफलता के क्या कारण थे? सप्रमाण वर्णन कीजिए।(1963,03,05)
2. हुमायूँ के विरुद्ध शेरशाह की सफलता के कारण बतलाइए। (1963)
3. सिंहासनारूढ़ होने के समय हुमायूँ के समक्ष क्या कठिनाइयाँ थीं? उसने उन पर कैसे विजय प्राप्त की? (1967)
4. हुमायूँ बादशाह के जीवन तथा चरित्र का वर्णन कीजिए। (1978)
5. हुमायूँ तथा शेरशाह के बीच हुए संघर्ष का वर्णन कीजिए। हुमायूँ क्यों असफल रहा? (1986)
6. भारत में मुगल वंश की स्थापना में हुमायूँ के योगदान का वर्णन कीजिए। (उत्तरां. 2006)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "हुमायूँ जीवन भर लड़खड़ाता रहा और लड़खड़ा कर ही उसके जीवन का अन्त हुआ।" इस कथन की विवेचना कीजिए। (1970,73,80,91,94)
2. "हुमायूँ जिस सिंहासन पर बैठा, वह फूलों की शय्या न होकर काँटों की शय्या थी, 'इस कथन

के प्रकाश में हुमायूँ की प्रारम्भिक कठिनाइयों की समीक्षा कीजिए।

3. "हुमायूँ स्वयं अपना शत्रु था।" स्पष्ट कीजिए। (1989)
4. "हुमायूँ ने अपने पिता से उत्तराधिकार में कठिनाइयाँ ही प्राप्त की थीं, जिनको उसने अपने त्रुटियों से और भी अधिक बढ़ा दिया।" इस कथन के आलोक में बताइए कि सिंहासन पर बैठने के समय हुमायूँ के समक्ष क्या कठिनाइयाँ थीं?
5. "स्वभाव की मृदुलता और आलस्य ही हुमायूँ की असफलता के मुख्य कारण थे"। स्पष्ट कीजिए। (1998)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. हुमायूँ की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ क्या थीं?
2. हुमायूँ की असफलता के क्या कारण थे?
3. चौसा के युद्ध के महत्व पर प्रकाश डालिए।
4. कन्नौज के युद्ध के महत्व पर प्रकाश डालिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. हुमायूँ की प्राण रक्षा करने वाले भिश्ती का नाम बताइए।
   हुमायूँ की प्राण-रक्षा करने वाले भिश्ती का नाम निजामखाँ था।
2. हुमायूँ के दरबार के दो इतिहासकारों के नाम बताइए।
   (क) बायजीद तथा (ख) जौहर।
3. हुमायूँ के शासन-काल में निर्मित दो इमारतों के नाम बताइए।
   (क) शेख अब्दुल कद्दूस का मकबरा तथा (ख) फतेहाबाद की मस्जिद।
4. हुमायूँ के राज्य काल के दो चित्रकारों के नाम बताइए।
   (क) मीर सैयद अली तथा (ख) ख्वाजा अब्दुल समद।
5. चौसा का युद्ध किस-किस के बीच हुआ था?
   चौसा का युद्ध हुमायूँ तथा शेरशाह के बीच हुआ था।
6. हुमायूँ की मृत्यु कैसे हुई?
   पुस्तकालय की सीढ़ी से फिसल कर सिर पर चोट लगने के कारण हुमायूँ की मृत्यु हुई।
7. हुमायूँ का मकबरा कहाँ स्थित है?
   हुमायूँ का मकबरा दिल्ली में स्थित है।

बहुविकल्पीय प्रश्न

निर्देश : नीचे दिये गये चार विकल्पों में से सही विकल्प छाँटकर लिखिए।

1. हुमायूँ का जन्म कब हुआ था?
   (क) 1504 ई. (ख) 1508 ई. (ग) 1510 ई. (घ) 1515 ई.
2. कन्नौज का युद्ध कब हुआ था?
   (क) 1525 ई. (ख) 1535 ई. (ग) 1540 ई. (घ) 1545 ई.
3. हुमायूँ ने दिल्ली का सिंहासन पुनः कब प्राप्त किया था?
   (क) 1540 ई. (ख) 1545 ई. (ग) 1555 ई. (घ) 1556 ई.
4. हुमायूँ की मृत्यु कब हुई थी?
   (क) 1545 ई. (ख) 1556 ई. (ग) 1558 ई. (घ) 1560 ई.
5. 'हुमायूँ गिरते-पड़ते इस जीवन से मुक्त हो गया ठीक उसी प्रकार जिस तरह तमाम जिन्दगी भर वह गिरते-पड़ते चला आ रहा था'। यह कथन किसका है?

(क) मिर्जा हैदर (ख) लेनपूल (ग) निजामुद्दीन अहमद (घ) मैलिसन

6. हुमायूँ और बहादुरशाह के बीच मन्दसौर का युद्ध कब हुआ था?
   (क) 1530 ई. (ख) 1532 ई. (ग) 1535 ई. (घ) 1538 ई.

7. हुमायूँ और शेरशाह के मध्य चौसा का युद्ध कब लड़ा गया था?
   (क) 1935 ई. (ख) 1539 ई. (ग) 1540 ई. (घ) 1545 ई.

8. हुमायूँ गद्दी पर कब बैठा?
   (क) 1530 ई. (ख) 1532 ई. (ग) 1534 ई. (घ) 1540 ई.

9. हुमायूँ का मकबरा कहाँ स्थित है?
   (क) लाहौर (ख) आगरा (ग) दिल्ली (घ) पेशावर

10. गंगा में डूबते हुए हुमायूँ के प्राण किसने बचाये थे?
   (क) निंजाम खाँ ने (ख) बैरम खाँ ने (ग) दौलत खाँ ने (घ) आलम खाँ ने

■

जन्म - 1472 ई॰

मृत्यु - 1545
राज्य सिंहासन - 1540
मकबरा - सहसराम

3

शेरशाह सूरी

[1540-45]

"शेरशाह इतिहास के उन महापुरुषों में हैं जो धूल से एकाएक पुष्पित और सम्मानित और अपनी योग्यता, अपने साहस, अपनी कार्य-कुशलता व सूझ तथा तलवार के बल पर ऊँचे-से-ऊँचे उठ गये।"-डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी

प्रारम्भिक जीवन : हसन खाँ की पहली पत्नी के गर्भ से 1472 ई. में फरीद (शेरशाह) का जन्म हुआ था।[1] फरीद अफगान जाति के 'सूर' नामक कबीले का था। उसका पितामह इब्राहीम घोड़ों का सौदागर था। उसका पिता हसन बिहार की एक जागीर का जागीरदार था। हसन ने चार विवाह किये थे। उसके कुल आठ लड़के पैदा हुए थे। फरींद और निजाम पहली पत्नी से, सुलेमान और अहमद सबसे छोटी पत्नी से उत्पन्न हुए थे। हसन फरीद तथा उसकी माता को प्रेम नहीं करता था। फरीद की विमाता उसको उपेक्षा और घृणा की दृष्टि से देखती थी। इससे फरीद का प्रारम्भिक जीवन बहुत कष्टमय रहा। इस पारिवारिक कलह से तंग आकर बाईस वर्ष की अवस्था में वह अध्ययन के लिए जौनपुर चला गया।

शिक्षा– जौनपुर उस समय इस्लामी संस्कृति और शिक्षा का केन्द्र था। यहाँ रहकर फरीद ने अरबी और फारसी साहित्य का अच्छा अध्ययन किया। उसने फारसी साहित्य के प्रसिद्ध ग्रन्थों–'गुलिस्ताँ', 'सिकन्दरनामा', 'शाहनामा' तथा 'बोस्ता' आदि का अध्ययन किया। वह बड़ा ही कुशाग्र बुद्धि का था। उसकी कुशाग्र बुद्धि से जौनपुर का गवर्नर जमाल खाँ भी अत्यधिक प्रभावित हुआ और उसने पिता-पुत्र में समझौता करा दिया।

जागीर का प्रबन्ध– शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात् फ़रीद सहसराम आ गया और अपने पिता की जागीर का प्रबन्ध करने लगा। 21 वर्षों तक वह यह कार्य सफलतापूर्वक करता रहा। इसी समय उसने भूमि-कर व्यवस्था में महत्वपूर्ण सुधार किये और लगान की दर निश्चित कर दी तथा लगान समय पर जमा करना प्रत्येक किसान के लिये अनिवार्य नियम बना दिया। उसने किसानों के हित का पूरा-पूरा ध्यान रखा और पथ-भ्रष्ट लगान अधिकारियों को दण्डित किया। उसके इन सुधारों का वांछनीय परिणाम निकला, किन्तु उसकी इस सफलता से उसकी विमाता फिर ईर्ष्या करने लगी।

गृह-त्याग तथा पुनः वापसी– फ़रीद ने अपनी विमाता के दुर्व्यवहारों से तंग आकर 1518 में पुनः गृह का परित्याग कर दिया। वह दिल्ली के सुल्तान इब्राहीम लोदी के दरबार में पुनः जागीर प्राप्त करने के लिये पहुँचा, परन्तु सुल्तान ने उसकी कोई सहायता नहीं की। संयोगवश इसी मध्य हसन की मृत्यु हो गई। अतः इब्राहीम ने शाही फरमान द्वारा सहसराम की जागीर फरीद को दे दी। अतः वह 1520-21 में सहसराम लौट गया।

बिहार का उप-गवर्नर– सहसराम आने पर उसका सौतेले भाई सुलेमान से उत्तराधिकार का झगड़ा प्रारम्भ हो गया। उसने जागीर का बँटवारा करने की बात कही, परन्तु फरीद उसके लिए तैयार नहीं हुआ और दक्षिण बिहार के शासक बहार खाँ की अधीनता में नौकरी कर

1. डॉ. कानूनगो ने शेरशाह का जन्मकाल 1486 ई. माना है।

ली। उसकी लगन और तत्परता से प्रसन्न होकर बहार खाँ ने उसको अपने पुत्र जलाल खाँ का शिक्षक नियुक्त कर दिया। एक दिन फरीद ने शिकार के समय बिना किसी अस्त्र-शस्त्र के एक शेर का वध कर दिया, जिससे प्रसन्न होकर बहार खाँ ने उसे शेरखाँ की उपाधि प्रदान की। इसके बाद वह दक्षिण बिहार का उप-गवर्नर बना दिया गया।

पद से निवृत्ति– शेरखाँ की बढ़ती हुई शक्ति से अन्य अफगान सरदार उससे ईर्ष्या करने लगे। उन्होंने उसके विरुद्ध एक षड्यन्त्र रचकर बहार खाँ को समझाया कि वह उसके विरुद्ध महमूद लोदी का समर्थक है। परिणामतः उसने शेरखाँ को वहाँ से निकालकर समस्त जागीर अपने कब्जे में कर ली। एक बार पुनः शेरखाँ गृहविहीन होकर नौकरी की खोज में निकल पड़ा।

शेरखाँ तथा मुगलों का सम्बन्ध– बिहार के शासक बहार खाँ के यहाँ से शेरखाँ जौनपुर के गवर्नर जुवैद के यहाँ चला गया। जुवैद ने शेरखाँ का परिचय बाबर से कराया। वह बाबर की सेना में भर्ती हो गया। पूर्व में अफगानों के विरुद्ध उसने बाबर का साथ दिया, जिससे प्रसन्न होकर बाबर ने 1528 में उसकी जागीर को पुनः उसे दिला दिया, परन्तु उसका मुगलों से शीघ्र संबंध खराब हो गया। इन्हीं दिनों जलाल खाँ की माँ दूदू बीबी ने शेरखाँ को राज्य का प्रबन्ध करने के लिए बुला भेजा। अतः वह मुगलों की नौकरी छोड़कर बिहार चला गया।

उप-गवर्नर के पद की पुनः प्राप्ति– जलाल खाँ की माँ दूदू बीबी ने शेरखाँ को फिर से उसका संरक्षक तथा शिक्षक बना दिया तथा बिहार का उप-गवर्नर नियुक्त कर दिया। कुछ दिनों पश्चात् जलाल खाँ की माँ की मृत्यु हो गई और शासन की समस्त सत्ता शेरखाँ के अधिकार में आ गई। उसने सेना का पुनः संगठन किया और अपने विश्वासपात्र व्यक्तियों को सेना में उच्च पदों पर नियुक्त कर दिया। उसने बड़ी योग्यता से शासन-व्यवस्था का संगठन किया। इससे उसकी प्रतिष्ठा तथा मान में वृद्धि हुई और वह शीघ्र ही बिहार में लोकप्रिय हो गया।

शक्ति-उत्कर्ष– शेरखाँ ने 1529 में बंगाल के शासक नसरतशाह को बुरी तरह परास्त किया। उसके इस कार्य से उसकी प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा और बढ़ गई। जलाल खाँ दक्षिणी बिहार से चला गया और सम्पूर्ण राजनैतिक सत्ता शेरखाँ के हाथ में आ गई, किन्तु उसने किसी राजसी उपाधि को धारण नहीं किया और 'हजरत-ए आला' की साधारण पदवी लेकर राज्य के कार्यों का संचालन करने लगा। 1530 में चुनार के एक पूर्व गवर्नर ताज खाँ की विधवा पत्नी लाद मलिका से विवाह करके उसने चुनार को अपने अधिकार में कर लिया। जिससे उसकी सैनिक और आर्थिक स्थिति बहुत दृढ़ हो गई क्योंकि वहाँ से उसको बहुत अधिक धन प्राप्त हुआ।

शेरखाँ का हुमायूँ से संघर्ष– शेरखाँ की बढ़ती हुई शक्ति से हुमायूँ बहुत सशंकित हो गया और उसकी शक्ति को दबाने के लिए आगरा से चल पड़ा। शेरखाँ ने उसका कोई विरोध नहीं किया और उसने उसे बंगाल की राजधानी गौड़ पर अधिकार कर लेने दिया और स्वयं बिहार चला गया। गौड़ में हुमायूँ छः महीने तक आमोद-प्रमोद में मस्त रहा। जिस समय हुमायूँ राग-रंग में मस्त था, शेरखाँ बिहार और जौनपुर के मुगल-प्रदेशों को अपने अधीन करने तथा पश्चिम में कन्नौज तक के प्रदेश लूटने में लगा हुआ था।

चौसा का युद्ध (26 जून, 1539)– पश्चिम में शेरखाँ की कार्यवाहियों का समाचार पाते हुमायूँ गौड़ से चल पड़ा और मुंगेर में गंगा को पार किया। शेरखाँ जो पहले ही तैयार बैठा था, आगे की ओर बढ़ा और 26 जून, 1539 को बक्सर के समीप चौसा नामक स्थान पर मुगल सेना को परास्त किया। इस युद्ध में कम से कम 7,000 मुगल सैनिक मारे गये और हुमायूँ को अपनी प्राण-रक्षा के लिए गंगा में कूदना पड़ा। वह डूबने ही वाला था कि निजाम खाँ नाम के एक भिश्ती ने उसके प्राण बचाये। इस युद्ध में विजयी होने के

पश्चात् शेरखाँ ने 'शेरशाह' की उपाधि धारण की।

कन्नौज का युद्ध (17 मई, 1540)– हुमायूँ चौसा में पराजित होकर आगरा पहुँचा और शेरशाह का सामना करने के लिये 90 हजार सैनिक इकट्ठे किये और शेरशाह का, जो आगरे की ओर बढ़ता चला आ रहा था, सामना करने के लिए चल पड़ा। कन्नौज में गंगा के किनारे दोनों ओर की सेनाएँ एक दूसरे के आमने-सामने डट गईं। 15 मई को अचानक वर्षा हो जाने से मुगल शिविर में पानी भर गया। मुगलों के इस संकट से लाभ उठाकर 17 मई को शेरशाह ने मुगल सेना पर अचानक आक्रमण कर दिया। असावधान और असंगठित होने के कारण मुगल सेना में भगदड़ मच गई। हुमायूँ को अपने प्राणों की रक्षा के लिए रणस्थल छोड़कर आगरा की ओर भागना पड़ा। मिर्जा हैदर ने इस युद्ध के विषय में लिखा है, 'इस युद्ध में एक भी सैनिक घायल नहीं हुआ और न एक भी तोप दागी गई।' शेरशाह ने हुमायूँ का पीछा किया और दिल्ली तथा आगरा पर अधिकार कर लिया और अपने को भारत का सम्राट घोषित किया।

शेरशाह की प्रमुख विजयें

हुमायूँ के भारत से पलायन करने के उपरान्त शेरशाह ने पश्चिमोत्तर सीमा की उचित व्यवस्था की ओर अपना ध्यान आकृष्ट किया, जिसकी दशा उस समय अव्यवस्थित थी। उसकी अन्य प्रमुख विजयें निम्नलिखित हैं :

(1) खोखरों पर विजय– झेलम और सिन्धु नदी के बीच खोखर प्रदेश था। सीमा के समीप होने के कारण राजनीतिक दृष्टि से यह बड़ा महत्वपूर्ण था। अतएव सर्वप्रथम शेरशाह ने इस पर अधिकार करने का निश्चय किया। उसने जब खोखरों को अपनी अधीनता स्वीकार करने को लिखा तो उन्होंने प्रत्युत्तर में कहा कि 'हम तो तीर और शेर सिपाही हैं, हमसे आप शेर और तीर के अतिरिक्त और कुछ नहीं माँग सकते।' इस पर शेरशाह क्रोधाग्नि से उबल पड़ा और कहा, "मैं इन दुष्ट जानवरों में ऐसा पच्चड़ लगाऊँगा कि कयामत तक याद रहेगी।" उसने शीघ्र ही खोखरों पर आक्रमण किया और उनके प्रदेश को बुरी तरह उजाड़ दिया। भविष्य में वे पुनः सिर न उठा सकें, इसलिये शेरशाह ने इस प्रदेश में रोहतास नामक एक दुर्ग का निर्माण करवाया और इसकी सुरक्षा के लिये वहाँ 5,000 सैनिक तथा हैबत खाँ और खवास खाँ जैसे योग्य सेनापतियों की नियुक्ति की।

शेरशाह की प्रमुख विजयें

1. खोखरों पर विजय
2. बंगाल-विजय
3. मालवा-विजय
4. रणथम्भौर-विजय
5. रायसिन-विजय
6. सिन्ध तथा मुल्तान-विजय
7. राजपूताना-विजय–
   (क) मारवाड़-विजय
   (ख) मेवाड़-विजय
8. कालिंजर-विजय

(2) बंगाल-विजय (1541)– बंगाल के शासक महमूद की मृत्यु हो जाने पर वहाँ के सूबेदार खिज्र खाँ ने उसकी कन्या से विवाह कर लिया था, साथ-ही-साथ उसने स्वयं को वहाँ का स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया था। उसके इस कृत्य पर दण्ड देने के लिये शेरशाह ने बंगाल पर आक्रमण किया। खिज्र खाँ बन्दी बना लिया गया। बंगाल को अनेक प्रान्तों में विभक्त कर प्रत्येक प्रान्त में सूबेदार नियुक्त किये जो सीधे शेरशाह के प्रति उत्तरदायी थे। शेरशाह की इस नयी व्यवस्था से सैनिक शासन के स्थान पर एक नयी शासन-व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ।

(3) मालवा-विजय (1542)– बंगाल की ओर से निश्चिन्त होकर शेरशाह ने मालवा की ओर ध्यान दिया। इस समय मालवा पर कादिरशाह स्वतंत्र शासक के रूप में शासन कर रहा था। शेरशाह ने मालवा पर आक्रमण किया। रास्ते में उसने ग्वालियर का प्रसिद्ध दुर्ग जो अब्दुल कासिम के अधीन था, जीत लिया। तत्पश्चात् वह आगे बढ़ा। उसकी शक्ति से भयभीत होकर कादिरशाह ने आत्म-समर्पण कर दिया। शेरशाह ने शुजात खाँ को मालवा

का सूबेदार नियुक्त किया।

(4) रणथम्भौर-विजय– मालवा-विजय करने के पश्चात् लौटते समय शेरशाह ने रणथम्भौर पर आक्रमण किया। वहाँ के सूबेदार उस्मान खाँ ने बिना युद्ध किये दुर्ग पर शेरशाह का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। शेरशाह ने अपने ज्येष्ठ पुत्र आदिलशाह को वहाँ पर सूबेदार नियुक्त किया।

(5) रायसिन-विजय (1543)– मध्य भारत में स्थित रायसिन रियासत में राजपूत राजा पूरनमल चौहान शासन कर रहा था। उसने समीपवर्ती राज्यों को जीत कर अपनी सैनिक शक्ति काफी बढ़ा ली थी। उसकी शक्ति का दमन करने के लिए 1543 में शेरशाह ने रायसिन पर आक्रमण किया। 6 महीने तक दुर्ग का घेरा चलता रहा, किन्तु राजपूतों ने शेरशाह की अधीनता स्वीकार नहीं की। अन्त में शेरशाह ने कुरान की शपथ खाकर वचन दिया कि राजा और उसके परिवार के साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार नहीं किया जायगा, तो पूरनमल ने आत्मसमर्पण कर दिया। उसको शेरशाह के समीप एक शिविर में ठहराया गया। शेरशाह ने कुरान प्रतिज्ञा को ताक पर रखकर निःशस्त्र राजपूतों पर आक्रमण कर उनको मौत के घाट उतरवा दिया। यद्यपि राजपूतों ने अदम्य उत्साह तथा साहस का परिचय दिया। कहा जाता है कि कुछ स्त्रियाँ और बच्चे ही शेष रहे जिन्हें गुलाम बना लिया गया। वास्तव में शेरशाह जैसे महान् न्याय-प्रिय शासक का यह कार्य न्यायोचित नहीं था और उसके उच्च चरित्र पर यह एक बड़ा भारी धब्बा है।

6. सिन्ध तथा मुल्तान-विजय (1543)– शेरशाह के योग्य सेनापति हैबैत खाँ नियाजी ने मुल्तान पर अधिकार कर लिया। इसी वर्ष सिन्ध प्रदेश पर भी शेरशाह का अधिकार हो गया और उसने इस्लाम खाँ को वहाँ का सूबेदार नियुक्त किया।

7. राजपूताना-विजय : (क) मारवाड़-विजय– इस समय मारवाड़-राज्य का शक्तिशाली शासक मालदेव था। उसने अपने पड़ोसी राज्यों की स्वतन्त्रता का अपहरण कर अपने साम्राज्य का अत्यधिक विस्तार कर लिया था। उसकी बढ़ती हुई शक्ति से भयभीत होकर बीकानेर के राव कल्यानमल और मेड़ता के बरिमदेव ने शेरशाह को मारवाड़ पर आक्रमण करने के लिये निमंत्रित किया। इस अवसर का लाभ उठाकर 1544 में शेरशाह ने 80 हजार सैनिक लेकर मारवाड़ पर आक्रमण किया। मालदेव ने भी अपनी विशाल तथा संगठित सेना के साथ सामना किया। दोनों ओर की सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ किन्तु राजपूतों की वीरता के सम्मुख शेरशाह को सफलता न मिल सकी। अन्त में शेरशाह ने कूटनीति का सहारा लिया। उसने इस आशय के पत्र लिखवाकर कि 'हम राजपूत मालदेव की स्वतंत्र नीति से असन्तुष्ट हैं, वचन देते हैं कि उसको पकड़कर आपके (शेरशाह) हवाले कर देंगे', मालदेव के डेरे के पास डलवा दिया। जब वे पत्र मालदेव को प्राप्त हुए तो उसे अपने साथियों के विश्वासघात को देखकर बड़ा दुःख हुआ और अन्त में उसने युद्ध न करने का निश्चय किया। कुछ सरदारों ने शपथपूर्वक कहा कि 'वे पत्र जाली हैं, आप हम सब पर विश्वास रखिए।' यह कहकर उन्होंने अफगान सेना पर आक्रमण किया किन्तु उनकी पराजय हुई। कुछ समय उपरान्त ही जब मालदेव को सत्यता का पता चला तब तक शेरशाह का मारवाड़ पर अधिकार हो चुका था। इस युद्ध में राजपूत इतनी भीषणता से लड़े थे कि उनकी वीरता और साहस को देखकर स्वयं शेरशाह ने कहा था, "एक मुट्ठी भर बाजरे के लिए मेरा भारत का समस्त साम्राज्य चला गया होता।" शेरशाह ने मारवाड़ को दिल्ली सल्तनत में मिलाकर ईसा खाँ नियाजी को वहाँ का सूबेदार नियुक्त किया।

(ख) मेवाड़-विजय– मारवाड़ पर अधिकार करने के उपरान्त शेरशाह ने मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ पर आक्रमण किया और उस पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् उसने बीकानेर

और जैसलमेर पर भी अधिकार कर लिया। इस प्रकार राजपूताना का बहुत बड़ा भाग शेरशाह के अधिकार में आ गया। किन्तु ये भू-भाग उसके अधीन अधिक दिनों तक न रह सके और वे शीघ्र ही स्वतन्त्र हो गये। शेरशाह ने राजपूत राजाओं को उनके राज्य वापस कर दिये, क्योंकि वह उनको सर्वदा अपने अधीन नहीं रखना चाहता था। वह केवल उनकी राजनीतिक स्वतन्त्रता का ही अपहरण कर लेता था। इसी सम्बन्ध में डा. कानूनगो ने लिखा है, "शेरशाह ने भारत के अन्य भागों की भाँति राजपूताने में वहाँ के स्थानीय सरदारों को न तो समूल नष्ट किया और न उनके स्वामित्व का ही पूर्णतया अपहरण किया। उसने ऐसा करना खतरनाक और निरर्थक समझा। उसने विजितों की स्वतन्त्रता को पूर्णतया समाप्त कर देने की चेष्टा नहीं की।"

8. कालिंजर - विजय और शेरशाह की मृत्यु (1545)– राजपूताना के पश्चात् शेरशाह का ध्यान कालिंजर की ओर आकृष्ट हुआ। उस समय बुन्देलखण्ड में कालिंजर का दुर्ग अजेय समझा जाता था। वहाँ का शासक कीर्तिसिंह था। उसके यहाँ रीवाँ के राजा ने भागकर शरण ली थी। शेरशाह ने कीर्तिसिंह से उसको वापस माँगा, किन्तु उसने उसे देने से इन्कार कर दिया। इस पर क्रोधित होकर शेरशाह ने नवम्बर, 1544 में कालिंजर पर आक्रमण कर दिया और दुर्ग का घेरा डाल दिया। यह दुर्ग 369 मीटर (समुद्र की सतह से) ऊँचा है। इसकी दीवरों की मैदान से तिरछी ऊँचाई 45 मीटर है तथा इसकी दीवारों की मोटाई बिना सीमेंट के 10.5 मीटर है। इसके चारों ओर एक चौड़ी खाई है। दुर्ग का घेरा 1 वर्ष तक चलता रहा, किन्तु दुर्ग पर शेरशाह का अधिकार नहीं हो पाया। अन्त में शेरशाह ने दुर्ग को बारूद से उड़ाने का निश्चय किया। 22 मई, 1545 को जब शेरशाह बारूदखाने का निरीक्षण कर रहा था तो संयोग से एक गोला नगर द्वार से टकरा कर फट गया तथा बारूदखाने में आग लग गई। शेरशाह बुरी तरह से जल गया। फिर भी उसने दुर्ग पर आक्रमण जारी रखने की आज्ञा दी। अन्त में दुर्ग पर उसका अधिकार हो गया और अपनी विजय के समाचार को सुनने के कुछ समय उपरान्त ही उसकी मृत्यु हो गई।

शेरशाह की सफलता के कारण

शेरशाह एक छोटे से जागीरदार का पुत्र था। बचपन से ही उसको अपने पिता और विमाता के क्रोध का भाजन बनकर कई बार अपने गृह का परित्याग करने के लिये बाध्य होना पड़ा था, फिर भी उसने अपनी सच्ची लगन और प्रतिभा के बल से ही दिल्ली के राजसिंहासन को प्राप्त किया और हुमायूँ को भारत परित्याग करना पड़ा। संक्षेप में, उसकी सफलता के निम्नलिखित कारण बतलाए जा सकते हैं :

(1) सैनिक योग्यता– शेरशाह में एक उच्चकोटि के सैनिक तथा सेनापति के गुण विद्यमान थे। वह बड़ा ही वीर, साहसी तथा अदम्य उत्साही था। भीषण-से-भीषण विपत्ति के आ जाने तथा प्रतिकूल परिस्थितियों के उत्पन्न हो जानें पर भी वह विचलित नहीं होता था। चुनार के दुर्ग पर अधिकार करना, बिहार के शासक जलाल खाँ को मार भगाना, बंगाल राज्य पर अधिकार कर लेना और हुमायूँ को चौसा और कन्नौज के युद्ध में परास्त करना आदि सम्पूर्ण बातें उसकी सैनिक योग्यता को प्रमाणित करती हैं।

शेरशाह की सफलता के कारण

1. सैनिक योग्यता
2. लक्ष्य की प्रधानता
3. उच्चकोटि का कूटनीतिज्ञ
4. समय का सदुपयोग
5. संगठन शक्ति
6. सौभाग्य का सहयोग
7. मितव्ययिता
8. आलौकिक व्यक्तित्व

(2) लक्ष्य की प्रधानता– शेरशाह ने प्रारम्भ से ही यह लक्ष्य बना रखा था कि

वह मुगलों को भारत से निकाल कर ही दम लेगा और अफगान शक्ति को पुनः स्थापित करेगा। इस लक्ष्य से वह कभी विचलित नहीं हुआ, बल्कि वह अपने लक्ष्य की पूर्ति में सफल हुआ। वह लक्ष्य की पूर्ति के लिये प्रत्येक साधन का प्रयोग करने से नहीं हिचकता था, चाहे नैतिक दृष्टि से वह उचित हो या अनुचित।

(3) उच्चकोटि का कूटनीतिज्ञ– शेरशाह बड़ा कूटनीतिज्ञ था। किस समय शत्रु पर आक्रमण करना चाहिए और किस समय उसके मार्ग से हट जाना चाहिए, इस कला से वह भलीभाँति परिचित था। उसने हुमायूँ को गौड़ तक निर्विरोध चले आने दिया और स्वयं बिहार की ओर चला गया। जब उसे इस बात का पूर्ण विश्वास हो गया कि वह हुमायूँ को परास्त कर लेगा, तब गौड़ से वापस आते हुमायूँ को चौसा के युद्ध में परास्त किया। उसने हुमायूँ के शत्रु बहादुरशाह से गठबन्धन करके उसे बड़ी संकटापन्न परिस्थिति में डाल दिया।

(4) समय का सदुपयोग– शेरशाह की सफलता का एक बहुत बड़ा कारण यह था कि उसने अपने समय को कभी नष्ट नहीं किया और न वह विजय से प्रसन्न होकर आमोद-प्रमोद में ही लीन रहा। जबकि हुमायूँ ने चुनार और गौड़ में क्रमशः 6 और 8 महीने अपने मूल्यवान समय को आमोद-प्रमोद में नष्ट किया और शेरशाह ने इसी समय का सदुपयोग करके अपनी शक्ति को सुदृढ़ किया। वह समय के मूल्य को भली-भाँति जानता था।

(5) संगठन शक्ति– शेरशाह में संगठन करने की अपूर्व शक्ति थी। वह भली-भाँति जानता था कि अफगानों को संगठित किए बिना वह मुगलों को भारत से निकालने के लक्ष्य में सफल नहीं हो सकता। उसके अफगानों को एकता के सूत्र में बाँध कर एक ऐसी प्रबल सेना का निर्माण किया जो मुगलों की शक्ति का विरोध करने में पूर्णरूपेण सफल हुई। यह समय का अद्भुत खेल ही तो था कि अफगानों को उनकी आवश्यकतानुसार एक कुशल नेता शेरशाह जैसा मिल गया और शेरशाह को उसकी आवश्यकतानुसार अफगानों जैसी शक्ति का पूर्ण समर्थन मिल गया।

(6) सौभाग्य का सहयोग– शेरशाह का उसके भाग्य ने सदैव साथ दिया। यह उसका सौभाग्य ही तो था कि जिस समय हुमायूँ का संघर्ष गुजरात के शासक बहादुरशाह से चल रहा था। उस समय उसने पूर्व में अपनी सैन्य-शक्ति को बढ़ाना प्रारम्भ किया। उसके सौभाग्य से ही हुमायूँ 6 महीने तक चुनार-दुर्ग का घेरा डाले पड़ा रहा और उसे बंगाल को जीतने का अवसर प्राप्त हो गया। शेरशाह के सौभाग्य से ही हुमायूँ बंगाल की राजधानी गौड़ में आठ महीने से अधिक समय तक आमोद-प्रमोद में लीन रहा और उसको अपनी सैन्य-शक्ति को बढ़ाने का सुअवसर मिल गया तथा चौसा के युद्ध में हुमायूँ को बुरी तरह परास्त किया। यह उसका सौभाग्य ही था कि कन्नौज के युद्ध के समय भयंकर वर्षा हो गई और मुगल सेना के शिविर में पानी भर गया जिससे मुगल सेना पर अचानक आक्रमण करने का अवसर प्राप्त हो गया। इस प्रकार शेरशाह की सफलता में उसके भाग्य का बहुत बड़ा हाथ था।

(7) मितव्ययिता– शेरशाह बड़ा मितव्ययी था। एक कुशल राजनीतिज्ञ होने के कारण वह यह भलीभाँति जानता था कि धनाभाव में वह एक विशाल सेना का संगठन नहीं कर सकता। फलतः उसने धन का दुरुपयोग नहीं किया और राजकोष को सदैव सम्पन्न रखा। सौभाग्य से उसे चुनार के दुर्ग में बहुत सा धन मिल गया। बंगाल के शासक को परास्त करके उसने उससे बहुत सा धन प्राप्त किया। उसने धन की ही सहायता से एक विशाल सेना का निर्माण करके अपने शत्रुओं को परास्त किया। मितव्ययी होने के कारण उसे कभी धन का अभाव नहीं हुआ।

(8) अलौकिक व्यक्तित्व– शेरशाह की सफलता का मुख्य कारण उसका अलौकिक व्यक्तित्व भी था। उसने अपनी अलौकिक प्रतिभा के कारण ही जौनपुर के गवर्नर जमाल खाँ

को इतना अधिक प्रभावित किया कि उसने उसके पिता हसन को सहसराम की जागीर का प्रबन्ध शेरशाह को सौंप देने का परामर्श दिया था। अपनी अलौकिक प्रतिभा के द्वारा ही वह मुगल सेना में प्रवेश पा सका था और उसे वहाँ सेना सम्बन्धी अनेक प्रकार की जानकारी प्राप्त हो गईं थी। उसके असाधारण व्यक्तित्व के कारण ही जमाल खाँ की माँ दूदू बीबी ने उसे अपने पुत्र का संरक्षक नियुक्त किया था ओर वहीं रहकर शेरशाह को अपनी शक्ति बढ़ाने का अवसर प्राप्त हुआ था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त गुणों के कारण शेरशाह को सदैव सफलता प्राप्त हुई और वह भारत का एक महान् सम्राट बन सका।

शेरशाह की शासन-व्यवस्था

शेरशाह अपनी शासन-व्ययस्था के लिये इतिहास में सदैव अमर रहेगा। उसकी सुव्यवस्थित शासन-प्रणाली ही उसे मध्यकालीन भारत के शासकों में उच्चतम स्थान प्रदान करती है। उसकी शासन-व्यवस्था की अनेक बातों को अकबर महान् ने भी ग्रहण किया। इसिलिए उसे 'अकबर का अग्रणी' भी कहा जाता है। हेग के अनुसार, "वास्तव में शेरशाह उन महानतम शासकों में से एक था जो दिल्ली के सिंहासन पर बैठे थे। ऐबक से लेकर औरंगजेब तक किसी अन्य को न तो शासन के ब्योरे का इतना ज्ञान था और न ही इतनी योग्यता तथा कुशलता से सार्वजनिक कार्यों पर इतना नियंत्रण ही रखा जितना कि वह (शेरशाह) रखता था।" लगभग सभी इतिहासकार इस मत से सहमत हैं कि "शेरशाह मध्यकालीन भारत के महान् शासन-प्रबन्धकों में से एक था।" शेरशाह की शासन व्यवस्था को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत विभक्त किया जा सकता है :

(1) केन्द्रीय-शासन– सुल्तान केन्द्रीय शासन का केन्द्र-बिन्दु था। शासन की समस्त सत्ता उसी में निहित थी। वह एक निरकुंश शासक था, किन्तु अपने पूर्व सुल्तानों के समान नहीं। वह अपनी प्रजा को पुत्रवत् समझता था। उसके राज्य में कोई भी सरकारी पदाधिकारी प्रजा के साथ दुर्व्यवहार नहीं कर सकता था। उसने परामर्श हेतु मन्त्रियों की विशेष आवश्यकता नहीं समझी, क्योंकि वह स्वयं एक सुयोग्य तथा प्रतिभाशाली शासक था। फिर भी उसने विशाल साम्राज्य की व्यवस्था के लिए मन्त्रि-विभागों की स्थापना की थी। वे विभाग इस प्रकार थे :

शेरशाह की शासन-व्यवस्था

1. केन्द्रीय शासन
2. प्रान्तीय शासन
3. भूमि प्रबन्ध तथा राजस्व-व्यवस्था
4. न्याय व्यवस्था
5. पुलिस तथा गुप्तचर विभाग
6. सैनिक-व्यवस्था
7. मुद्रा-व्यवस्था
8. सड़क और सरायें
9. डाक-विभाग
10. इमारतों का निर्माण
11. सार्वजनिक कार्य

दीवान-ए-वजारत (अर्थ विभाग)– इस विभाग का अध्यक्ष वजीर (मुख्य मंत्री) था। वह साम्राज्य की आय-व्यय की देखभाल तथा अन्य विभागों की भी देखभाल करता था। वजीर का महत्व सुल्तान के बाद था।

दीवान-ए-आरिज (युद्ध विभाग)– इस विभाग का अध्यक्ष 'आरिज-ए-मुमालिक' कहलाता था। वह सेना की भर्ती, अनुशासन तथा नियन्त्रण कार्य करता था तथा वेतन वितरण का प्रबन्ध भी उसी के हाथ में था। शेरशाह स्वयं इस विभाग में बड़ी रुचि लेता था।

दीवान-ए-रसालत (वैदेशिक विभाग)– इस विभाग के अध्यक्ष को विदेश मन्त्री कहा जाता था। उसका प्रमुख कार्य राजदूतों का स्वागत करना तथा सरकारी पत्रव्यवहार करना था।

दीवान-ए-इन्शा-(सामान्य प्रशासन विभाग)- इस विभाग के मन्त्री का भी मुख्य कार्य सरकारी घोषणाओं तथा सरकारी आज्ञाओं को लिपिबद्ध करना था।

दीवान-ए-काजा (न्याय-विभाग)- इस विभाग का अध्यक्ष मुख्य काजी था। वह न्याय करने का कार्य करता था तथा प्रान्तीय काजियों की अपीलें सुनता था।

दीवान-ए-वरीद (गुप्तचर विभाग)- इस विभाग का अध्यक्ष वरीद-ए-ममालिक कहलाता था। इसका प्रमुख कार्य राज्य की समस्त घटनाओं की सूचना प्राप्त करने की व्यवस्था करना था।

(2) प्रान्तीय शासन- शासन-सुविधा की दृष्टि से शेरशाह का सम्पूर्ण राज्य 47 भागों में विभक्त था, जिन्हें प्रान्त अथवा इक्ता कहा जा सकता है। प्रत्येक प्रान्त का मुख्य पदाधिकारी सूबेदार होता था। प्रत्येक प्रान्त कई (जिलों) में विभाजित था। प्रत्येक सरकार में दो अधिकारी-शिकदार-ए-शिकदारान (प्रमुख शिकदार) तथा मुंशिफ-ए-मुंशिफान (प्रमुख मुंशी) होते थे। प्रमुख शिकदार का काम अपनी सरकार (जिले) में शान्ति और व्यवस्था बनाये रखना तथा मुंशी का काम दीवानी मुकदमों का निर्णय करना था।

प्रत्येक सरकार के अन्तर्गत कई परगने होते थे। अब्बास खाँ के अनुसार परगनों की संख्या 1,13,000 थी। परन्तु प्रो. कानूनगो इस संख्या से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार परगनों की संख्या 7,401 से अधिक नहीं रही होगी। प्रत्येक परगने में निम्न पदाधिकारी होते थे :

शिकदार- यह एक सैनिक अधिकारी था। इसका मुख्य कार्य अपने क्षेत्र में शान्ति व्यवस्था रखना तथा आवश्यकता पड़ने पर अमीन को सैनिक सहायता देना था।

अमीन- इसका कार्य भूमि की नाप करवाना तथा लगान वसूल करना था।

फोतेदार- यह खजांची का कार्य करता था।

कारकुन (लेखक)- यह संख्या में दो होते थे। इनमें एक हिन्दी में तथा दूसरा फारसी में कार्य करता था।

प्रत्येक परगने में बहुत से गाँव होते थे। गाँव शासन की सबसे छोंटी इकाई थी। प्रत्येक गाँव में एक पटवारी, एक मुकद्दम (मुखिया) तथा एक चौधरी होता था। गाँव के प्रशासन में मुखिया का बहुत महत्व था। प्रत्येक गाँव में एक पंचायत होती थी जिसके सदस्य गाँव के वृद्ध लोग होते थे। यह गाँव के झगड़ों का फैसला किया करते थे।

(3) भूमि-प्रबन्ध तथा राजस्व व्यवस्था- शेरशाह ने समस्त कृषियोग्य भूमि की नाप करवायी और उसको बीघों में विभाजित करवाया। एक बीघे का क्षेत्रफल 360 वर्ग गज निश्चित किया गया। उपज के अनुसार भूमि को तीन किस्मों-अच्छी, साधारण और खराब में बाँटा गया। किसान राज्य को लगान के रूप में उपज का $\frac{1}{3}$ भाग देते थे। किसान को यह सुविधा दी गई थी कि वे लगान (भूमिकर) नकद अथवा उपज, किसी भी रूप में दे सकते थे। भूमिकर के अतिरिक्त किसानों को भूमि की पैमाइश करने वालों की फीस के रूप में भूमि-कर का $\frac{1}{2}$ प्रतिशत से 5 प्रतिशत रकम अदा करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त उन्हें उपज का $2\frac{1}{2}$ प्रतिशत तक कर रूप में और देना पड़ता था।

शेरशाह ने अपने अधिकारियों को यह आदेश दे रखा था कि वे भूमि-कर निश्चत करते समय तो नरमी बरतें, लेकिन वसूल करते समय किसी प्रकार की रियायत न करें। फसल खराब होने पर किसान भूमि-कर से मुक्त कर दिये जाते थे। सैनिक अभियान के समय यदि खड़ी फसलों को किसी प्रकार की हानि हो जाती थी तो किसानों को उसकी क्षति-पूर्ति कर दी जाती थी।

(4) न्याय-व्यवस्था- मध्ययुग के शासकों में शेरशाह अपनी न्याय-व्यवस्था के

लिए बहुत प्रसिद्ध है। उसका सिद्धान्त था, 'न्याय के अभाव में कोई भी साम्राज्य स्थायी नहीं रह सकता तथा दण्ड के बिना न्याय भी संभव नहीं है।' न्याय के सम्बन्ध में वह बहुत कठोर था। वह अमीरों और गरीबों के साथ एक समान निष्पक्ष न्याय करता था। उसने न्याय-व्यवस्था के लिये दारुल अदालतों की स्थापना की थी जिसमें काजी और मीर अदल मुकदमों का फैसला किया करते थे। वह न्याय के समय किसी प्रकार का पक्षपात नहीं करता था। यहाँ तक कि वह अपने निकट सम्बन्धियों को भी न्याय के समय कोई महत्व नहीं देता था। फौजदारी कानून बड़ा कठोर था। फौजदारी के मुकदमें सरकारी न्यायालयों में तय किये जाते थे। हिन्दू प्रायः अपने मामले पंचायतों द्वारा ही तय कर लेते थे। चोरी और डकैती के लिए प्राणदण्ड की व्यवस्था थी। कठोर दण्ड-विधान होने के कारण बहुत कम अपराध होते थे और राज्य में सर्वत्र शान्ति छा गई थी। इस सम्बन्ध में 'तबकात-ए-अकबरी' का लेखक निजामुद्दीन अहमद लिखता है, "शेरशाह के शासनकाल में कोई भी व्यापारी रेगिस्तान में यात्रा करते हुए सो सकता था और लुटेरों द्वारा लूटे जाने का उसे कोई भय नहीं था। शेरशाह के भय और न्याय-प्रेम के कारण चोर, लुटेरे तक व्यापारियों के माल की देख-भाल करते थे।"

(5) पुलिस तथा गुप्तचर विभाग– शेरशाह के समय फौजी सैनिक ही पुलिस का कार्य करते थे। उसने स्थानीय अधिकारियों के उत्तरदायित्व के नियम के आधार पर शान्ति और सुरक्षा की व्यवस्था की थी। चोर-डाकुओं तथा अपराधियों का पता लगाने का उत्तरदायित्व गाँवों के मुखिया पर था। यदि वे चोरों अथवा डकैतों का पता लगाने में असमर्थ रहते थे तो उनको हानि की पूर्ति करनी पड़ती थी। इसी प्रकार यदि वे अपने क्षेत्र में हुई हत्या का पता लगाने में असमर्थ रहते थे तो उनको मृत्युदण्ड दे दिया जाता था। इसके अतिरिक्त मुख्य शिकदार भी अपनी सरकारों में शान्ति और सुरक्षा के उत्तरदायी थे।

गम्भीर अपराधों का पता लगाने तथा राजकीय कर्मचारियों पर नियन्त्रण रखने के लिए शेरशाह ने गुप्तचर विभाग की स्थापना की थी। उसकी गुप्तचर व्यवस्था इतनी उच्चकोटि की थी कि राज्य की सभी घटनाओं तथा उपद्रवों की सूचना सबसे पहले उसे प्राप्त हो जाती थी।

(6) सैनिक व्यवस्था– शेरशाह के पास एक विशाल और शक्तिशाली सेना थी। उसने अपनी सेना का संगठन अलाउद्दीन खिलजी के सैन्य संगठन के आधार पर किया था। वह सैनिक से सीधा सम्पर्क रखता था और स्वयं उनकी भरती करता तथा योग्यतानुसार वेतन निश्चित करता था। सैनिकों को वेतन सीधे राज-कोष से दिया जाता था। उनकी पदोन्नति योग्यता और सेवाओं के आधार पर की जाती थी। शेरशाह घोड़ों पर दाग लगाने की प्रथा चलाई ताकि अश्वारोही सैनिक दूसरे घोड़े दिखाकर उसे धोखा न दे सकें। उसने अपनी स्थायी सेना को कई भागों में विभाजित कर दिया था और प्रत्येक विभाग एक अनुभवी सेनापति के अन्तर्गत था। उसके अधीन सेना में 1 लाख 50 हजार अश्वारोही, 25 हजार पैदल सेना तथा 3 सौ हाथी थे। उसकी सेना छावनियों में रहती थी जो राज्य के विभिन्न स्थानों पर स्थापित की गई थीं। उसके पास एक अच्छा तोपखाना भी था। डॉ. त्रिपाठी का कहना है कि "शेरशाह की सेना की कुल संख्या 4,00,000 से कम न रही होगी।"

(7) मुद्रा व्यवस्था– शेरशाह ने देश में प्रचलित मुद्रा-व्यवस्था में भी महत्वपूर्ण सुधार किया। उसने समस्त पुराने सिक्कों का प्रचलन बन्द कर दिया और अपने नाम का चाँदी का रुपया तथा ताँबे का सिक्का चलाया जो 'दाम' कहलाता था। चाँदी का रुपया और दाम में 64:1 का अनुपात था।

(8) सड़क और सरायें– शेरशाह ने अपने साम्राज्य में कई बड़ी-बड़ी सड़कों का निर्माण कराया जो राज्य के अनेक प्रमुख नगरों का संबंध राजधानी से जोड़ती थीं। उसकी

चार प्रमुख सड़कें इस प्रकार थीं :

1. वर्तमान 'ग्रांड-ट्रंक सड़क'– यह कलकत्ता से पेशावर तक जाती है। इसी सड़क पर आगरा, दिल्ली, तथा लाहौर पड़ते हैं। इसकी लम्बाई 4800 किमी. है। यह सड़क उस काल में 'सड़क-ए-आजम' के नाम से पुकारी जाती थी।
2. आगरा से बुरहानपुर तक।
3. आगरा से जोधपुर और फिर चित्तौड़ तक।
4. लाहौर से मुल्तान तक।

शेरशाह ने सड़कों के किनारे 1,702 सराएँ बनवाई थीं। प्रत्येक सराय में एक कुआँ, एक मस्जिद तथा एक राजकीय कमरा होता था तथा एक पुलिस अफसर (शिकदार) रहता था। सरायों में हिन्दुओं और मुसलमानों के लिये ठहरने की अलग-अलग व्यवस्था थी। ये सराएँ डाक-चौकियों का भी काम देखती थीं। डॉ. कानूनगो के अनुसार ये सराएँ "साम्राज्य-रूपी शरीर की धमनियाँ थीं।"

(9) डाक-विभाग– शेरशाह ने डाक-विभाग को भी उन्नत किया। सड़कों के किनारे बनी हुई सराएँ डाक-विभाग अथवा डाक-चौकियों का भी कार्य करती थीं। डाक घोड़ों तथा पैदल हरकारों द्वारा भेजी जाती थी। प्रत्येक सराय में डाक ले जाने के लिये दो घोड़ों का प्रबन्ध रहता था।

(10) इमारतों का निर्माण– शेरशाह को इमारतों के निर्माण का बड़ा शौक था। उसने अपने शासन-काल में पाँच वर्षों में जिन इमारतों को निर्माण कराया वे स्थापत्य-काल का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। उसने पंजाब में झेलम नदी के तट पर रोहतासगढ़ नामक नगर का निर्माण करवाया। उसने सहसराम के झील के किनारे अपना भव्य मकबरा बनवाया जो भारत की श्रेष्ठ इमारतों में से एक है। उसने एक जामा मस्जिद तथा रोहतास, दिल्ली, कन्नौज, पटना आदि स्थानों पर दुर्गों का निर्माण करवाया।

(11) सार्वजनिक कार्य– शेरशाह ने जनसाधारण की भलाई के लिए अनेक सराय, औषधालय और दान-शालाओं का निर्माण कराया था। उसके भोजनालय में सहस्र व्यक्ति प्रतिदिन भोजन करते थे। इसमें प्रतिवर्ष 18,25,000 रुपये व्यय होते थे। वह अनाथों, विधवाओं तथा साहित्यकारों को बहुत अधिक दान देता था।

शेरशाह ने अनेक पाठशालाएँ खुलवायीं जिनमें योग्य छात्रों की छात्रवृत्तियाँ मिलती थीं। उसने उच्च शिक्षा की प्राप्ति के लिये मदरसे भी खुलवाये।

इस प्रकार शेरशाह के अल्पकाल में ही एक ऐसी सुव्यवस्थित शासन-प्रणाली स्थापित की जिसके कारण यह इतिहास में सदा के लिए अमर हो गया।

शेरशाह का चरित्र तथा उसका मूल्यांकन

प्रायः सभी इतिहासकारों ने शेरशाह के चरित्र की प्रशंसा की है। डॉ. आशीर्वादीलाल लिखते हैं, "राज्यारोहण के समय भारत के किसी शासक को शासन सम्बन्धी विभिन्न विभागों की इतनी अच्छी जानकारी नहीं थी, जितनी उसे थी।" कीन महोदय ने लिखा है, "किसी भी अन्य सरकार ने यहाँ तक कि ब्रिटिश सरकार ने भी उतनी बुद्धिमता का परिचय नहीं दिया, जितना कि इस पठान ने दिया था।" जिस समय शेरशाह राज-सिंहासन पर बैठा उस समय उसकी अवस्था 68 वर्ष की थी। इतनी अवस्था होने पर भी उसने जिस प्रकार शारीरिक और मानसिक

शेरशाह का चरित्र

1. व्यक्ति के रूप में
2. सैनिक के रूप में
3. विजेता के रूप में
4. शासक के रूप में
5. राष्ट्र-निर्माता के रूप में

स्फूर्ति का प्रदर्शन किया, वह पच्चीस साल के युवा के लिये स्पृहणीय हो सकता है। शेरशाह के चरित्र का निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णन किया जा रहा है :

(1) व्यक्ति के रूप में– शेरशाह का व्यक्तिगत जीवन आदर्श नहीं माना जा सकता। बाल्यकाल से ही अनेक कठिनाइयों तथा आपत्तियों का सामना करने के कारण उसका बाह्य रूप बड़ा शुष्क था। उसे एक आज्ञाकारी पुत्र नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अपने पिता और विमाता से उसका मनमुटाव था। उसमें दाम्पत्य प्रेम का भी अभाव था। वह एक सुशिक्षित व्यक्ति था। उसको अरबी और फारसी का अच्छा ज्ञान था। यद्यपि वह विद्वानों का आदर और सत्संग करता था, लेकिन उसके शासन-काल में किसी भी विद्वान् ने कोई भी विशिष्ट रचना नहीं की। संभवतः किसी भी कवि अथवा साहित्यकार को उसके दरबार में संरक्षण प्राप्त नहीं हुआ। वह बड़ा परिश्रमी था। वह प्रतिदिन 16 घण्टे राज्य कार्य में व्यतीत करता था। न्याय करने में वह पक्षपात नहीं करता था। उसकी व्यक्तिगत विशेषताओं में सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह एक महान् निर्माता था।

(2) सैनिक के रूप में– शेरशाह में जन्मजात एक श्रेष्ठ-सैनिक के गुण और विशेषताएँ विद्यमान थीं। अपने पिता की जागीर का प्रबन्ध करते समय उसने विद्रोही जागीरदारों का दमन किया था। उसने चौसा और कन्नौज के युद्ध में हुमायूँ को पराजित कर भारत छोड़ने के लिए बाध्य किया था। यह उसके एक सुयोग्य और सफल सेनापति होने का ज्वलन्त प्रमाण है। अपने शत्रु पर आक्रमण करने के पूर्व वह अपनी रक्षा की व्यवस्था कर लेता था। उसने शत्रु पर कभी सम्मुख होकर आक्रमण नहीं किया। जो सैनिक चालें वह व्यवहार में लाता था वे थीं– "शत्रु को बेखबर रखना, उस पर अचानक हमला बोल देना, उसे झाँसा देकर किसी छिपे हुए मार्ग को ओर ले जाना और वहाँ पर कई ओर से आक्रमण करना।" अपने सैनिकों के साथ उसे बहुत सहानुभूति थी। वह स्वयं भी उनके साथ सदैव सुख और दुःख भोगने को उद्यत रहता था।

(3) विजेता के रूप में– शेरशाह एक महान् तथा दूरदर्शी विजेता था। जिन प्रदेशों को विजित करता था, वहाँ शासन व्यवस्था की ओर तुरन्त ध्यान देता था और किसानों के साथ सद्व्यवहार करता था। उसने अपने सैनिकों को यह आदेश दे रखा था कि वे किसानों की खड़ी फसल को किसी प्रकार की हानि न पहुँचायें। विजेता के रूप में उसने अपने शत्रु के परिवार वालों के साथ कभी दुर्व्यवहार नहीं किया। चौसा के युद्ध में हुमायूँ की पटरानी बेगा बेगम और अन्य मुगल महिलाएँ बन्दी बना ली गई थीं। शेरशाह ने उन्हें सुरक्षित हुमायूँ के पास भिजवा दिया था। उसने अपने बाहुबल से एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी।

(4) शासक के रूप में– शेरशाह एक सफल शासक था। उसने अपने विशाल साम्राज्य में एक सुव्यवस्थित शासन-व्यवस्था स्थापित की। उसके भूमि सम्बन्धी सुधारों से किसानों को बहुत लाभ हुआ। उसने कई बड़ी सड़कों का निर्माण करवाया और शान्ति व्यवस्था के लिये पुलिसे और गुप्तचर विभाग की स्थापना की। इससे वाणिज्य और व्यापार की प्रगति में बड़ा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। उसके अधिकारी किसानों का शोषण नहीं कर सकते थे। दुर्भिक्ष आदि के समय वह किसानों को आवश्यक सहायता प्रदान करता था। उसने धर्म को राजनीति में कोई स्थान नहीं दिया। किन्तु युद्ध के अवसर पर प्रायः अपने मुसलमान सैनिकों की धर्मान्धता से लाभ उठाता था। न्याय-व्यवस्था के सम्बन्ध में उसका सिद्धान्त था– "न्याय के अभाव में कोई भी साम्राज्य स्थायी नहीं हो सकता तथा दण्ड के बिना न्याय असम्भव है।"

(5) राष्ट्र-निर्माता के रूप में– शेरशाह ने धार्मिक सहिष्णुता की नीति अपनाकर हिन्दुओं और मुसलमानों के साथ समान सद्व्यवहार करके भारत को एक राष्ट्र के रूप में

संगठित करने का प्रयास किया। कतिपय इतिहासकारों ने उसकी अकबर से तुलना करते हुए कहा है, "शेरशाह ने जिस राष्ट्र-निर्माण और नीति का सूत्रपात किया उसी को अपनाकर, शेरशाह के पद-चिह्नों पर चलकर मुगल सम्राट अकबर ने महानता का गौरव प्राप्त कर लिया। अकबर की उदार तथा धार्मिक सहिष्णुता की नीति, राजपूतों के साथ सद्भावना रखने तथा उनका सहयोग प्राप्त करने की नीति और उसकी 'सुलहकुल' की विराट चेष्टा का बीजारोपण शेरशाह ने कर दिया था।"

अकबर के अग्र-गामी के रूप में शेरशाह का स्थान

इतिहासकारों ने शेरशाह को अकबर का अग्र-गामी अथवा पथ-प्रदर्शक माना है। डॉ. त्रिपाठी ने लिखा है कि, "यदि शेरशाह कुछ और जीवित रहता तो कदाचित् अकबर की महानता की बराबरी तक पहुँच जाता। दिल्ली सल्तनत के दूरदर्शी सुल्तानों में उसका पद बहुत ऊँचा है। अकबर की उदार वृत्ति के लिए मार्ग प्रशस्त करने के कारण शेरशाह को अकबर के पथ-प्रदर्शक का पद मिलना चाहिए।" शेरशाह ने अनेक कार्य ऐसे किये, जिनका अनुकरण आगे चलकर अकबर ने किया। अकबर ने शेरशाह के कुछ उपयोगी कार्यों, प्रणालियों और सुधारों को अपनाया। साथ ही उसने स्वयं न केवल अनेक उपयोगी नियम बनाए और सुधार किये, बल्कि शेरशाह के कार्यों को आगे भी बढ़ाया। अकबर शेरशाह का ऋणी है, पर उसने मौलिक प्रतिभा भी प्रदर्शित की। शेरशाह भी अपने अनेक सुधारों और व्यवस्थाओं के लिये दिल्ली सल्तनत के पूर्ववर्ती सुल्तानों का ऋणी था।

अकबर ने शेरशाह के राजपद के आदर्श, लोक-हितकारी कार्य, भूमि-प्रबन्ध, नागरिक प्रशासन, सैनिक संगठन आदि को मान्यता दी। उसने शेरशाह के प्रशासन से कुछ क्षेत्रों में बहुत कुछ दिशा-निर्देशन प्राप्त किया।

डॉ. कानूनगो ने लिखा है, "शेरशाह उचित रूप से अकबर के उस दावे को झुठला सकता है कि वह पहला मुस्लिम शासक था, जिसने भारत में राष्ट्र-निर्माण कार्य को आरम्भ करने का प्रयास किया।" शेरशाह के शासन-प्रबन्ध के विभिन्न पहलुओं पर दृष्टिपात करने पर हमें यह निष्कर्ष स्थापित करने में कठिनाई नहीं होगी कि उसके राज्य का वास्तविक महत्व इस बात में है कि उसमें वे ही गुण थे, जिसकी भारत में एक राष्ट्रीय राज्य बनाने की आवश्यकता होती है तथा उसने कई प्रकार से अकबर के गौरवपूर्ण राज्य के लिये क्षेत्र तैयार कर दिया।

शेरशाह ने यह अच्छी तरह समझ लिया था कि शासक का काम केवल सुरक्षा कायम रखना और राजस्व की वसूली ही नहीं था, अपितु उसका सबसे मुख्य काम था जनता की साधारण स्थिति को सुख-सुविधामय बनाकर तथा उसके लिये उन्नति के साधन प्रस्तुत करके उसकी सेवा करना। उसने अपने अल्प-शासन काल को एकता स्थापित करने में लगाया, जिसकी देश में बहुत पहले से आवश्यकता अनुभव हो रही थी। कट्टर मुसलमान होते हुए भी उसने अपनी हिन्दू प्रजा का कभी उत्पीड़न नहीं किया। उसकी उन्नति उसकी प्रजा समृद्धि का कारण हुई, न कि नाश का। लूट तथा नरसंहार की दीर्घ परम्परा टूट गई। शेरशाह के कार्यों की उसके शत्रुओं ने भी जिन्होंने उसकी मृत्यु के बाद तथा उसके वंश के लुप्त हो जाने के उपरान्त लिखा, भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

अकबर को शेरशाह की राष्ट्रीय एकीकरण की भावना से भी प्रेरणा मिली। शेरशाह अकबर का अग्रगामी कहलाने का अधिकारी है।

शेरशाह के उत्तराधिकारी (1545-55)

शेरशाह की मृत्यु के पश्चात् दस वर्षों में ही दूसरी अफगान सल्तनत का पतन हो गया। उसके प्रबल व्यक्तित्व के लुप्त होने तथा उसके उत्तराधिकारियों की दुर्बलता के कारण

अफगान सरदारों में पुनः विद्वेष एवं कलह आरम्भ हो गया, जिससे सम्पूर्ण राज्य अराजकता के अंक में डूब गया। इस प्रकार मुगलों के पुनरुत्थान का रास्ता साफ हो गया।

इस्लामशाह (1545-53)- शेरशाह की मृत्यु होने पर उसका द्वितीय पुत्र जलाल खाँ सुल्तान इस्लामशाह के नाम से गद्दी पर बैठा (27 मई, 1545)। यह साधारणतया सलीमशाह के नाम से विख्यात है। सलीम ने बड़े उपायों से अपने भाई एवं उसके समर्थकों के षड्यन्त्रों के विरुद्ध अपनी स्थिति को दृढ़ किया। वह उग्र स्वभाव का व्यक्ति था। उसने अमीरों के साथ क्रूर तथा उदण्ड व्यवहार किया। अतः देश में असन्तोष और विद्रोह की भावना बढ़ने लगी। 1553 में उसकी मृत्यु हो गई।

फिरोजशाह तथा मुहम्मद आदिलशाह (1553-55)- इस्लामशाह के बाद उसका पुत्र फिरोजशाह 12 वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठा। तीन दिन बाद ही उसके मामा मुबारिक खाँ ने उसकी हत्या कर दी तथा मुहम्मद आदिलशाह की उपाधि धारण कर सुल्तान बन गया। आदिलशाह दुराचारी और मूर्ख था। उसके आलसी एवं अयोग्य सुल्तान होने के कारण हेमू ने राज-काज का प्रबन्ध कुशलता से करने का प्रयत्न किया। हेमू रेवाड़ी के एक साधारण हिन्दू की स्थिति से बढ़कर, सूर सुल्तान का प्रधानमंत्री बन गया।

आदिलशाह ने अपने अमीरों से पद तथा जागीरें छीन लीं और अपने प्रियजनों को दे दी। शेरशाही और इस्लामशाही अमीरों में जो बच रहे थे, उनकी जगह उसने नये अमीर बनाये और उपद्रवी नेताओं का गर्व और मान-मर्दन प्रारम्भ कर दिया। इन सबका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि अफगान अमीर उसके शत्रु हो गये और उसकी सत्ता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया।

अराजकतापूर्ण परिस्थितियों से लाभ उठाकर सुल्तान के बड़े बहनोई और चचेरे भाई इब्राहीम खाँ सूर नें दिल्ली और आगरा पर कब्जा कर लिया। इब्राहीमशाह की उपाधि लेकर उसने अपने को सुल्तान घोषित किया। आदिलशाह पूर्व की ओर भाग गया, जहाँ उसने चुनार को अपनी नई राजधानी बनाया। इब्राहीम सूर की सफलता से प्रेरित होकर अदिलशाह का छोटा बहनोई और चचेरा भाई अहमदखाँ भी विद्रोही हुआ। उसने दिल्ली पर अधिकार करने के लिए इब्राहीम सूर पर चढ़ाई कर दी। इब्राहीम की हार हुई और वह सम्भल की ओर भाग गया। अहमद ने दिल्ली और आगरा पर अधिकार कर लिया और तुरन्त सिकन्दशाह की उपाधि लेकर अपने को सुल्तान घोषित कर दिया। इस प्रकार शेरशाह की सल्तनत के टुकड़े-टुकड़े होने लगे। बंगाल और मालवा के स्वतन्त्र प्रान्त बन गये और मुहम्मद सूर तथा बाजबहादुर क्रमशः इनके सुल्तान बने।

आपसी फूट के कारण अफगान राज्य एकदम दुर्बल हो गया। इसी समय 1555 में हुमायूँ ने हिन्दुस्तान पर आक्रमण करके अफगानों को निर्णायक मात दी। सूर वंश समाप्त हो गया और मुगल साम्राज्य की पुनः स्थापना हुई।

सूर-साम्राज्य के पतन के कारण

1540 में हुमायूँ को परास्त कर शेरशाह ने भारत में सूर-साम्राज्य की स्थापना की, किन्तु पाँच वर्ष के अल्पकालीन शासन के पश्चात् ही कालिंजर-विजय के समय बारूद में आग लग जाने से उसकी मृत्यु हो गई। शेरशाह की मृत्यु के पश्चात् दस वर्षों के अन्दर ही हुमायूँ पुनः दिल्ली तथा आगरा पर अधिकार करने में सफल हुआ और सूर-साम्राज्य का सदैव के लिए अन्त हो गया। संक्षेप में, सूर-साम्राज्य के पतन के निम्नलिखित कारण बतलाए जा सकते हैं :

(1) शेरशाह की असामयिक मृत्यु- शेरशाह 1540 में दिल्ली के सिंहासन पर आसीन हुआ और केवल पाँच वर्ष शासन करने के उपरान्त 1545 में कालिंजर विजय के समय बारूद में आग लग जाने से उनका देहान्त हो गया। उसकी असामयिक मृत्यु से सूर-

साम्राज्य को गहरा आघात लगा। यदि वह कुछ दिन और जीवित रहता तो सूर-साम्राज्य की नींव इतनी सुदृढ़ हो जाती कि भारत में पुनः मुगल-साम्राज्य की स्थापना न हो पाती।

सूर-साम्राज्य के पतन के कारण

1. शेरशाह की असामयिक मृत्यु
2. उत्तराधिकार के नियम का अभाव
3. शेरशाह के अयोग्य उत्तराधिकारी
4. अमीरों के साथ दुर्व्यवहार
5. राजकोष का रिक्त होना
6. हेमू का दुर्व्यवहार
7. साम्राज्य का विभाजन
8. हुमायूँ की फारस के शाह की सहायता

(2) उत्तराधिकार के नियम का अभाव– मुसलमानों में उत्तराधिकार के नियम का अभाव होने के कारण सूर-साम्राज्य की बहुत अवनति हुई। शेरशाह ने अपने ज्येष्ठ पुत्र आदिल खाँ को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था, किन्तु अमीरों ने उसके पुत्र जलाल खाँ को सुल्तान बनाया। इससे कुछ अमीरों में अत्यधिक असन्तोष उत्पन्न हो गया और उन्होंने विद्रोह किया। यद्यपि विद्रोह का दमन कर दिया गया, परन्तु अफगानों की एकता को भारी आघात पहुँचा और साम्राज्य की शक्ति का ह्रास होना आरम्भ हो गया।

(3) शेरशाह के अयोग्य उत्तराधिकारी– शेरशाह के उत्तराधिकारी अयोग्य सिद्ध हुए। उसका पुत्र जलाल खाँ "इस्लामशाह" की पदवी धारण कर गद्दी पर आसीन हुआ। उसका अधिकांश समय अमीरों के विद्रोह के दमन में ही व्यतीत हुआ। 1553 में उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका बारह वर्षीय पुत्र फिरोज राज-सिंहासन पर बैठा। परन्तु तीन दिन के पश्चात् उसके मामा मुबारिक खाँ ने ही उसका वध कर दिया और स्वयं आदिलशाह के नाम से राजसिंहासन पर आसीन हुआ। उसमें शासन करने की क्षमता का नितान्त अभाव था। वह निकम्मा तथा चरित्रहीन था।

(4) अमीरों के साथ दुर्व्यवहार– शेरशाह ने अपनी योग्यता और प्रतिभा के बल पर अमीरों पर सदैव नियन्त्रण रखा। वह अमीरों के साथ सद्व्यवहार भी करता था। इसके बदले में अमीर भी उसके लिए जान देने के लिए सदैव तैयार थे। लेकिन उसकी मृत्यु के उपरान्त इसके उत्तराधिकारी अमीरों के साथ सद्व्यवहार न रख सके, बल्कि उनके साथ दुर्व्यहार करके उनमें असन्तोष उत्पन्न कर दिया। फलतः उन्होंने सूर-साम्राज्य की जड़ों पर प्रहार करना आरम्भ कर दिया।

(5) राजकोष का रिक्त होना– शेरशाह बड़ा मितव्ययी था। उसने धन का कभी दुरुपयोग नहीं किया था। उससे उसको कभी धनाभाव महसूस नहीं हुआ। परन्तु उसके उत्तराधिकारियों ने विलासिता में फँसकर धन का अपव्यय किया। धनाभाव में सैन्य-संगठन कमजोर पड़ गया और सूर-साम्राज्य पतन की ओर अग्रसर होने लगा।

(6) हेमू का दुर्व्यवहार– हेमू जो नमक का व्यापारी था, सुल्तान आदिलशाह का विशेष कृपापात्र था। सुल्तान ने उसको मंत्री तथा प्रधान सेनापति बनाया था। अफगान उसके अधीन रहकर कार्य करना अपना अपमान समझते थे। उसका अफगान सरदारों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं था। अतः अफगान सुल्तान और हेमू दोनों के शत्रु हो गये और वे सूर-साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी सिद्ध हुए।

(7) साम्राज्य का विभाजन– आदिलशाह की मृत्यु के उपरान्त महमूदशाह, इब्राहीम खाँ तथा सिकन्दरशाह में सत्ता के लिए जो संघर्ष हुआ वह सूर-साम्राज्य के लिये बड़ा घातक सिद्ध हुआ। समस्त सूर-साम्राज्य तीन शासकों में विभक्त हो गया। सिकन्दरशाह ने दिल्ली और आगरा पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार सूर-साम्राज्य की शक्ति की एकता समाप्त हो गई और

हुमायूँ को पुनः दिल्ली के राज-सिंहासन पर अधिकार स्थापित करने का अवसर प्राप्त हो गया।

(8) हुमायूँ की फारस के शाह की सहायता– फारस के शाह से सहायता मिलने पर हुमायूँ की स्थिति बहुत दृढ़ हो गई। उसने काबुल पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् भारत पर आक्रमण करके पंजाब और दिल्ली पर अधिकार कर लिया और पुनः भारत में मुगल-साम्राज्य की स्थापना करने में सफल हुआ।

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ (Important Dates & Events)

1.1472 ई. – शेरशाह का जन्म।
2.1539 ई. – शेरशाह और हुमायूँ के मध्य चौसा का युद्ध।
3.1540 ई. – शेरशाह और हुमायूँ के मध्य कन्नौज का युद्ध।
4.1541 ई. – बंगाल विजय।
5.1542 ई. – मालवा तथा रणथम्भौर-विजय।
6.1543 ई. – रायसिन-विजय।
7.1544 ई. – मारवाड़-विजय तथा कालिंजर पर आक्रमण।
8.1545 ई. – शेरशाह की मृत्यु।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. शेरशाह के प्रारम्भिक जीवन का उल्लेख कीजिए। वह भारत का शासक कैसे बना?
2. शेरशाह की शासन-व्यवस्था की रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए। वह अकबर का पथ प्रदर्शक क्यों कहा गया है? (1985)
3. शेरशाह के भूमि प्रबन्ध, मुद्रा सुधार तथा सैनिक सुधारों का उल्लेख कीजिए। (1991)
4. शेरशाह के प्रमुख विजयों का संक्षेप में वर्णन कीजिए। (1989)
5. शेरशाह सूरी के शासन-प्रबन्ध की व्याख्या कीजिए। (1997)
6. शेरशाह सूरी के व्यक्तित्व एवं उसकी विजयों का वर्णन कीजिए। (1997)
7. शेरशाह सूरी के शासन प्रबन्ध की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। (2000)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "शेरशाह एक महान विजेता से अधिक एक प्रशासक था।" इस कथन के आलोक में उसकी शासन-व्यवस्था का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।
2. "शेरशाह आपने भाग्य का स्वयं निर्माता था।" इस कथन के आलोक में उसकी विजयों का वर्णन कीजिए।
3. "शेरशाह उत्कृष्ट संगठन-कर्ता तथा चतुर सेनानायक था।" विवेचन कीजिए।
4. "आर्थिक एवं सैनिक सुधारों की दृष्टि से शेरशाह की भारत के महान् शासकों में गणना की जाती है।" स्पष्ट कीजिए।
5. "मध्यकालीन भारत के इतिहास में शेरशाह वास्तव में प्रभावशाली व्यक्तित्व था"– शेरशाह की उपलब्धियों की समीक्षा करते हुए इस कथन की सार्थकता सिद्ध कीजिए। (1992)
6. इस तथ्य का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए कि "इतिहास में शेरशाह की महानता का कारण उसके प्रशासनिक सुधार हैं।" (2005)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. शेरशाह और हुमायूँ के बीच हुए दो प्रमुख युद्धों का उल्लेख कीजिए।
2. शेरशाह की सफलता के क्या कारण थे?
3. शेरशाह ने जन-साधारण के लिए क्या-क्या कार्य किए?
4. सूर-साम्राज्य के पतन के मुख्य कारणों का उल्लेख कीजिए।
5. शेरशाह की राजस्व-व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. शेरशाह का जन्म-स्थान बताइए।
   शेरशाह का जन्म स्थान नारनौल था।
2. शेरशाह के पिता का नाम बताइए।
   शेरशाह के पिता का नाम हसन था।
3. शेरशाह के शिक्षा प्राप्त करने का स्थान बतांइए।
   शेरशाह के शिक्षा प्राप्त करने का स्थान जौनपुर था।
4. शेरशाह के पिता के संरक्षक का नाम लिखिए।
   शेरशाह के पिता के संरक्षक का नाम जमाल खाँ था।
5. शेरशाह के राज्याभिषेक का स्थान बताइए।
   शेरशाह का राज्याभिषेक आगरा में हुआ था।
6. सुल्तान जलालखाँ (सुल्तान जलालुद्दीन) लोहानी के पिता का नाम बताइए।
   बहार खाँ (सुल्ताना मुहम्मद लोहानी)।
7. सुल्तान आदिलशाह के प्रधान मन्त्री का नाम बताइए।
   सुल्तान आदिलशाह के प्रधान मन्त्री का नाम हेमू था।
8. शेरशाह के उत्तराधिकारी सुल्तान का नाम बताइए।
   इस्लामशाह (जलाल खाँ), शेरशाह का उत्तराधिकारी था।
9. शेरशाह के दो विजय-स्थानों के नाम बताइए।
   (1) मालवा विजय (1542), तथा (2) कालिंजर विजय (1545)।
10. शेरशाह की बनवायी हुई दो सड़कों के नाम बताइए।
    (1) ग्राण्ड ट्रंक रोड-कलकत्ता से पेशावर तक। (2) आगरा से बुरहानपुर तक।
11. शेरशाह के समकालीन दो इतिहासकारों के नाम लिखिए।
    (1) हसन अली खाँ, तथा (2) शेख रिज्कुल्लाह मुश्ताकी।
12. शेरशाह द्वारा बनवाई हुई किसी भी एक इमारत का नाम बताइए।
    सहसराम में बना शेरशाह का मकबरा।
13. शेरशाह के दो उत्तराधिकारियों के नाम बताइए।
    (1) इस्लामशाह (जलाल खाँ), तथा (2) फिरोजशाह।
14. शेरशाह का वास्तविक नाम क्या था और उसका जन्म कब हुआ था?
    शेरशाह का वास्तविक नाम फरीद था और उसका जन्म 1472 ई. में हुआ था।
15. शेरशाह सूरी का मकबरा किस स्थान और किस राज्य में स्थित है?
    शेरशाह सूरी का मकबरा सहसराम स्थान और बिहार राज्य में स्थित है?
16. कन्नौज और चौसा वर्तमान में किस राज्य में स्थित हैं?
    वर्तमान में कन्नौज उत्तर प्रदेश राज्य में और चौसा बिहार राज्य में स्थित हैं।

बहुविकल्पीय प्रश्न

निर्देश : नीचे दिये गये, प्रत्येक प्रश्न के चार विकल्पों में से सही विकल्प छाँटकर लिखिए :

1. शेरशाह राज-सिंहासन पर कब बैठा था?
   (क) 1535 ई. (ख) 1538 ई. (ग) 1540 ई. (घ) 1541 ई.
2. शेरशाह की मृत्यु कब हुई थी?
   (क) 1530 ई. (ख) 1540 ई. (ग) 1545 ई. (घ) 1548 ई.
3. चौसा का युद्ध कब लड़ा गया था?
   (क) 1530 ई. (ख) 1535 ई. (ग) 1539 ई. (घ) 1540 ई.
4. कन्नौज का युद्ध किस वर्ष लड़ा गया था?
   (क) 1536 ई. (ख) 1540 ई. (ग) 1542 ई. (घ) 1545 ई.
5. शेरशाह का मकबरा कहाँ स्थित है?
   (क) आगरा (ख) दिल्ली (ग) लाहौर (घ) सहसराम

■

4

अकबर

[1556-1605]

"अकबर का महान् विचार एक सम्राट के अन्तर्गत समस्त देश में एकता स्थापित करना था। उसका विधान एक शासक तथा एक साम्राज्य निर्माता के लिए सर्वश्रेष्ठ था। इसके वे ही नियम थे जिसके आधार पर पाश्चात्य शासक आज भी शासन कर रहे हैं।" –कर्नल मेलेसन

प्रारम्भिक जीवन– जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर का जन्म अमरकोट के राना वीरसाल के महल में 14 अक्टूबर, 1542 को हुमायूँ की नव-विवाहिता पत्नी हमीदा बानू बेगम के गर्भ से हुआ था। पुत्र जन्म के समय हुमायूँ की आर्थिक दशा बड़ी सोचनीय थी। उस समय उसके पास एक कस्तूरी के अतिरिक्त और कुछ न था। उसने उसे तोड़कर अपने सरदारों में बाँटते हुए कहा– "अपने पुत्र के जन्म के अवसर पर केवल यही भेंट इस समय मैं आप लोगों को दे सकता हूँ। मैं आशा और कामना करता हूँ कि जिस तरह इस खेमे में इस कस्तूरी की सुगन्ध फैल रही है, उसी तरह मेरे पुत्र का यश-सौरभ किसी दिन संसार भर में फैलेगा।" वास्तव में हुमायूँ के ये शब्द आगे चलकर अक्षरशः सत्य सिद्ध हुए।

अकबर का बाल्यकाल बहुत कष्टमय रहा। हुमायूँ को शीघ्र ही भारत छोड़ना पड़ा। फारस की ओर जाते समय वह अपने पुत्र अकबर को जो उस समय एक वर्ष का था, अपने भाई अस्करी के पास कन्धार में छोड़ गया। 1545 में उसको हुमायूँ की बहन खानजादा बेगम के साथ काबुल भेज दिया गया। इसी समय 15 नवम्बर, 1545 को हुमायूँ ने कामरान से काबुल जीत लिया और अकबर को अपने पास मँगवा लिया। 1546 में हुमायूँ ने बदख्शा विजय के लिए प्रस्थान किया। इसी बीच कामरान ने काबुल पर पुनः अधिकार कर लिया तथा अकबर को अपने संरक्षण में ले लिया। बदख्शा से लौटकर अप्रैल, 1547 में हुमायूँ ने काबुल के दुर्ग पर घेरा डालकर उस पर भयंकर गोलाबारी की। गोलीबारी के समय कामरान ने अकबर को किले की दीवार पर बैठा दिया। सौभाग्य से हुमायूँ के आदमियों ने अकबर को पहचान लिया और तोपों के मुँह को फेर दिया। ईश्वर की कृपा से अकबर का बाल भी बाँका न हुआ और हुमायूँ काबूल-विजय करने में सफल हुआ। इसके बाद अकबर सदैव अपने पिता के पास रहा और बारह वर्ष की उम्र में ही वह हाथी, घोड़े तथा ऊँटों की सवारी तथा युद्ध कला में प्रवीण हो गया। 1551 में हिन्दाल की पुत्री से अकबर का विवाह कर दिया गया। दिल्ली विजय के बाद हुमायूँ ने अकबर को लाहौर को गवर्नर बना दिया और बैरम खाँ को उसका संरक्षक नियुक्त कर दिया।

सिंहासनारोहण– जब अकबर अपने संरक्षक बैरम खाँ के साथ पंजाब के विद्रोही गवर्नर का दमन करके वापस लौट रहा था तब पंजाब के गुरुदासपुर जिले के कलानौर नामक स्थान पर उसे अपने पिता हुमायूँ की मृत्यु की सूचना मिली। बैरम खाँ ने तुरन्त वहीं पर ईंटों का चबूतरा बनाकर 14 फरवरी, 1556 को अकबर का राज्याभिषेक कर भारत का सम्राट घोषित कर दिया। इस समय अकबर की अवस्था केवल तेरह वर्ष चार महीने की थी। अतः शासन की देखभाल बैरम खाँ करने लगा।

अकबर की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ

जिस समय कलानौर में ईंटों के सिंहासन पर बैरम खाँ द्वारा अकबर का राज्याभिषेक हुआ उस समय उसके पास न कोई सिंहासन था और न कोई साम्राज्य। राज-सिंहासन पर बैठने के समय वह चारों ओर से कठिनाइयों से घिरा हुआ था। उसके सम्मुख विभिन्न समस्याएँ निम्नलिखित थीं :

(1) साम्राज्य के प्रतिद्वन्दी– यद्यपि हुमायूँ ने दिल्ली और आगरा पर अधिकार कर लिया था, किन्तु अपने विजित प्रदेशों में वह अपने शत्रुओं का पूर्ण दमन नहीं कर पाया था। अतः उसकी मृत्यु के उपरान्त ही हेमू ने दिल्ली और आगरा पर अधिकार कर लिया था। काबुल पर अकबर के सौतेले भाई मुहम्मद हकीम का अधिकार था। इस प्रकार काबुल का क्षेत्र अकबर के अधिकार से स्वतंत्र था। मुहम्मद आदिलशाह और इब्राहीम सूर भारतीय मुस्लिम साम्राज्य के दावेदार बन रहे थे। अकबर का अधिकार केवल पंजाब तक ही सीमित था। वहाँ का दावेदार सिकन्दर सूर बन गया था, यद्यपि वह सरहिन्द नामक स्थान पर पराजित हो गया था।

अकबर की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ

1. साम्राज्य के प्रतिद्वन्द्वी
2. मुगल सरदारों में विरोधात्मक भावना
3. आर्थिक कठिनाइयाँ
4. राजपूतों की शत्रुता
5. संरक्षक की समस्या
6. भारतीयों में मुगलों के प्रति ईर्ष्या और घृणा का होना
7. साधनों का अभाव

(2) मुगल सरदारों में विरोधात्मक भावना– मुगल सरदारों में बड़ा मतभेद था और वे अकबर के समर्थक नहीं थे। उनमें असन्तोष और विद्रोह की भावना विद्यमान थी। इन सरदारों में सबसे प्रमुख अब्दुल माली था जो हुमायूँ का विशेष कृपापात्र होने के कारण सनकी और घमण्डी हो गया था।

(3) आर्थिक कठिनाइयाँ– अकबर को आर्थिक कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ा, क्योंकि उसके लिए हुमायूँ ने रिक्त राजकोष छोड़ा था। इसी समय अनावृष्टि के कारण जो दुर्भिक्ष पड़ गया था, उसके कारण दिल्ली-आगरा क्षेत्र के लोगों की आर्थिक स्थिति अत्यधिक खराब हो गयी थी और असंख्य लोग मृत्यु के ग्रास बन रहे थे। एक विद्वान् के अनुसार, "राजधानी तो बिलकुल बरबाद हो चुकी थी। थोड़े से भवनों के अतिरिक्त वहाँ कुछ भी नहीं रह गया था। महामारी एवं प्लेग के कारण असंख्य लोग मर गये थे। और आदमी आदमी का भक्षण करने लगा था।"

(4) राजपूतों की शत्रुता– यद्यपि राजपूत खानवा के युद्ध में पराजित हो गये थे, किन्तु वे निराश नहीं हुए थे और मुगलों से अपनी पराजय का बदला लेने के लिए अपने आपको संगठित कर रहे थे। मारवाड़ के मालदेव ने बहुत अधिक शक्ति का संचय कर लिया था और वह दिल्ली पर अधिकार करने को प्रयत्नशील था।

(5) संरक्षक की समस्या– यद्यपि हुमायूँ ने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में बैरम खाँ को जो फारस का निवासी और शिया-सम्प्रदाय का अनुयायी था, अकबर का संरक्षक बना दिया था, किन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त अन्य सरदार भी जैसे- मुनीर खाँ, अब्दुल माली, तार्दीबेग

आदि संरक्षक के पद को प्राप्त करने के इच्छुक हो उठे। इस प्रकार इन सरदारों की दलबन्दी स्पष्ट रूप से प्रकट हो गई। अब्दुल माली तो 17 फरवरी के राज्यारोहण में सम्मिलित ही नहीं हुआ।

(6) भारतीयों में मुगलों के प्रति ईर्ष्या और घृणा का होना– भारतीय जनता हिन्दू और मुसलमान दोनों मुगलों को विदेशी समझ कर ईर्ष्या और घृणा की दृष्टि से देखते थे। बाबर और हुमायूँ को भारत में बहुत से युद्धों में संलग्न रहने के कारण भारतीय जनता की सहानुभूति और सहयोग प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला था। अतः अकबर के सम्मुख भारतीय जनता का सहयोग प्राप्त करने की समस्या भी उपस्थित थी।

(7) साधनों का अभाव– अकबर के पास साधनों का अभाव था। उसके पास न कोई सुसंगठित तथा सुव्यवस्थित सेना थी और न इसके लिये उसके पास कोई साधन ही थे। उसके पास जो सेना भी थी वह नये शासक की अनिश्चित और संकटपूर्ण स्थिति होने के कारण वफादार होने में संदिग्ध थी।

अतः संक्षेप में, जिस समय अकबर राजसिंहासन पर आसीन हुआ उसके चारों ओर विपत्तियों का पहाड़ था जिस पर अधिकार करना एक तेरह वर्षीय बालक के लिये असम्भव था, किन्तु अकबर का भाग्य बड़ा ही बलिष्ठ था कि उसको बैरम खाँ जैसा स्वामिभक्त सेनापति तथा संरक्षक मिल गया जिसने मुगल–साम्राज्य की स्थापना की और विषम परिस्थितियों में अपने स्वामी के पुत्र की सहायता की।

कठिनाइयों पर विजय

यद्यपि अकबर अनेक भयानक कठिनाइयों से घिरा हुआ था, किन्तु उसने धैर्य और साहस के साथ उनका सामना करने का निश्चय किया और उसके इस कार्य में उसके संरक्षक बैरम खाँ ने उसकी पूरी–पूरी सहायता की। उसमें कठिनाइयों का सामना करने की क्षमता थी। सबसे पहले उसने अपने विरोधियों को समाप्त करने का निश्चय किया।

(1) अब्दुल माली के विरुद्ध कार्यवाही– जैसा कि लिखा जा चुका है कि अकबर के सरदारों में सबसे प्रमुख अब्दुल माली था जिसमें असन्तोष और विद्रोह की भावना विद्यमान थी। वह शिया लोगों से घृणा करता था और बैरम खाँ के उत्थान से उसे ईर्ष्या थी। अतः बैरम खाँ ने सबसे पहले अपने लक्ष्य का निशाना अब्दुल माली को ही बनाया। एक दिन जब अकबर के राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में एक प्रीति–भोज दिया गया तो वहीं बैरम खाँ ने अब्दुल माली को पकड़वा लिया और लाहौर भेजकर किले में कैद कर दिया।

(2) हेमू के साथ संघर्ष : पानीपत का द्वितीय युद्ध (1556)– अब बैरम खाँ ने दिल्ली की ओर ध्यान दिया जिस पर मुहम्मदशाह सूरी के सेनापति हेमू ने अधिकार करके 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की थी। बैरम खाँ ने हेमू से युद्ध करने का निश्चय किया। उसकी सेना बड़ी तेजी से दिल्ली की ओर बढ़ी। अन्त में 5 नवम्बर, 1556 को हेमू तथा मुगल सेनाओं के बीच पानीपत के मैदान में भीषण संग्राम हुआ। हेमू की वीरता से मुगल सेना के होश उड़ गये और उसके पैर उखड़ने वाले ही थे कि अचानक हेमू की आँख में एक तीर लगा और वह बेहोश होकर अपने हाथी के हौदे से गिर पड़ा। इस घटना से उसकी सेना में भगदड़ मच गई और वह बन्दी बना लिया गया और अकबर के सामने उपस्थित किया गया। बैरम खाँ ने हेमू का वध कर 'गाज़ी' की उपाधि धारण करने की प्रार्थना की परन्तु अकबर ने पराजित शत्रु के साथ ऐसा घृणित व्यवहार करना उचित न समझा। अतः बैरम खाँ ने अपनी ही तलवार से हेमू का वध कर दिया।

पानीपत का द्वितीय युद्ध भी प्रथम युद्ध की भाँति निर्णायक सिद्ध हुआ। दिल्ली, आगरा तथा उसके निकटवर्ती प्रदेश पर अकबर का अधिकार स्थापित हो गया और भारत में मुगल साम्राज्य की पुनः स्थापना हो गई।

(3) सिकन्दर सूर की पराजय– पानीपत के युद्ध के पश्चात् बैरम खाँ ने अकबर के साथ सिकन्दर सूर का सामना करने के लिये प्रस्थान किया। हेमू से संघर्ष के पहले ही उसके विरुद्ध एक सेना भेज दी गई थी। परन्तु वह बिना युद्ध किये ही शिवालिक पर्वत की ओर चला गया था। शाही सेना के आने की सूचना पाते ही उसने मानकोट के दुर्ग में शरण ले ली। मुगल सेना ने दुर्ग का घेरा डाल दिया जो छः महीने तक चलता रहा। अन्त में तंग आकर सिकन्दर सूर इस शर्त पर सन्धि करने को उद्यत हो गया कि बिहार में उसे जागीर दे दी जाय। उसकी यह शर्त मान ली गई। उसने 1557 में आत्मसमर्पण कर दिया और दुर्ग पर मुगल सेना का अधिकार हो गया। सिकन्दर सूर को बिहार में जागीर दे दी गई, जहाँ 1569 में उसकी मृत्यु हो गई।

बैरम खाँ का पतन– बैरम खाँ ने अपने चार वर्षों के शासन–काल में अकबर को उसकी प्रारम्भिक कठिनाइयों से मुक्त कर दिया और काबुल से जौनपुर तक तथा कश्मीर से अजमेर तक के भू–भाग का अधिकारी बना दिया। बैरम खाँ की बढ़ती हुई शक्ति से दरबार और अन्तःपुर के लोग ईर्ष्या करने लगे और उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचे जाने लगे। राजमाता हमीदाबानू बेगम, अकबर की विमाता माहम अंगा, उसका सौतेला भाई अदहम खाँ तथा दिल्ली का गवर्नर शहाबुद्दीन आदि उसके पतन के कारण बने। अकबर भी जो इस समय तक अट्ठारह वर्ष का हो चुका था, शासन–सूत्र अपने हाथ में लेना चाहता था। इसी बीच अकबर को सूचना मिली कि बैरम खाँ कामरान के पुत्र अब्दुल कासिम को सिंहासन पर बिठाने का षड्यन्त्र रच रहा है। फलतः उसने क्रोधित होकर 27 मार्च, 1560 को बैरम खाँ को संरक्षक पद से पदच्युत कर दिया और राज्य की बागडोर हाथ में लेने तथा बैरम खाँ के मक्का जाने की घोषणा कर दी।

बैरम खाँ को जब अपने पतन की सूचना मिली तो वह आश्चर्यचकित हो गया। उसने दो विश्वस्त पदाधिकारियों को अकबर के पास अपनी स्वामिभक्ति का विश्वास दिलाने के लिए भेजा। अकबर ने इन दोनों पदाधिकारियों को बन्दी बनाकर कैद में डाल दिया और उससे मिलने से इन्कार कर दिया तथा पीर मुहम्मद को उसको मक्का पहुँचाने के लिए नियुक्त कर दिया। बैरम खाँ ने इस कृत्य को अपना अपमान समझा, अतः उसने विद्रोह कर दिया किन्तु जालन्धर के समीप तिलवाड़ा नामक स्थान पर वह पराजित हुआ और बन्दी बनाकर अकबर के सामने लाया गया। उसकी पिछली महत्वपूर्ण सेवाओं को ध्यान में रखते हुए अकबर ने उसे क्षमा कर दिया और उसे जागीर प्रदान कर मक्का जाने की आज्ञा दे दी। बैरम खाँ ने मक्का की ओर प्रयाण किया किन्तु 31 जनवरी, 1561 को पाटन के स्थान पर मुबारक खाँ लोहानी नामक एक अफगान द्वारा उसकी हत्या कर दी गई। बैरम खाँ की विधवा पत्नी सलीमा बेगम से अकबर ने विवाह कर लिया और उसके पुत्र रहीम को दरबार में रख लिया। कालान्तर में यही सुकवि रहीम के रूप में विख्यात हुआ।

1560 से 1562 तक अकबर अपनी धाय माँ माहम अंगा के प्रभाव में रहा। इसके बाद अकबर का स्वतन्त्र शासन आरम्भ हो गया।

साम्राज्य विस्तार

अकबर साम्राज्यवादी भावना से ओत–प्रोत था। उसने अपने से पूर्व शासकों की भाँति स्वाधीन राज्यों को जीतने की नीति अपनाई। वह कहा करता था, "एक राजा को विजय के लिये सदैव तत्पर रहना चाहिए, नहीं तो पड़ोसी शासक उसके विरुद्ध शस्त्र उठाने की चेष्टा करते हैं।" वह यह भी कहा करता था, "फौज़ को सदैव लड़ाई में व्यस्त रहना चाहिए, क्योंकि लड़ाई के अभ्यास के अभाव में सैनिक प्रमादी और विलासी हो जाते हैं।" अतः उसने भारत–विजय की योजना बनाई। अकबर की विजयों को निम्न प्रकार वर्णन किया जा सकता है :

(1) मालवा विजय (1561)– मालवा का शासक बाजबहादुर अत्यन्त विलासी

था। 1561 में अकबर ने मालवा विजय के लिये अपने सौतेले भाई अदहम खाँ को भेजा। वह शीघ्र ही बाजबहादुर को परास्त करने में सफल हुआ तथा बहुत-सी-सम्पत्ति उसके हाथ लगी। उसने प्राप्त सम्पत्ति का थोड़ा सा हिस्सा अकबर के पास भेज दिया। इससे अकबर बहुत क्रोधित हुआ और तुरन्त एक विशाल सेना लेकर मालवा पहुँचा। इसी बीच अदहम खाँ की माँ भी वहाँ जा पहुँची। उसने अपने पुत्र को क्षमा करवा दिया। अकबर ने अदहम खाँ को वापस भेज दिया और मुहम्मद खाँ को मालवा का गवर्नर बना दिया। परन्तु कुछ समय उपरान्त उसको बाजबहादुर मालवा से निकालकर पुनः वहाँ का शासक बन बैठा। तुरन्त ही अब्दुल खाँ उजबेग की अध्यक्षता में एक सेना मालवा भेजी गयी। बाजबहादुर पराजित हुआ और मालवा पर मुगलों का अधिकार हो गया।

उत्तरी-विजय

1. मालवा-विजय
2. गोंडवाना-विजय
3. चित्तौड़-विजय
4. रणथम्भौर-विजय
5. कालिंजर-विजय
6. अन्य राजपूतों द्वारा आत्म-समर्पण
7. गुजरात-विजय
8. बिहार तथा बंगाल-विजय
9. महाराणा प्रताप के साथ संघर्ष
10. काबुल-विजय
11. कश्मीर-वजिय
12. सिन्ध-विजय
13. उड़ीसा-विजय
14. बलूचिस्तान-विजय
15. कन्धार-विजय

(2) गोंडवाना विजय (1564)- गोंडवाना में रानी दुर्गावती अपने नाबालिग पुत्र वीरनारायण की संरक्षिका बनकर शासन कर रही थी। अकबर ने आसफ खाँ को 50 हजार सैनिकों के साथ गोंडवाना पर आक्रमण करने को भेजा। रानी दुर्गावती ने नरही नामक स्थान पर दो दिन तक शत्रु की सेना से डटकर सामना किया। अन्त में दो तीर लगने से घायल हो गई। विजय की कोई आशा न देखकर रानी ने छुरा भोंककर स्वयं अपनी हत्या कर ली। इसके पश्चात् वीरनारायण ने मुगल सेना का वीरता से सामना किया। अन्त में वह भी वीरगति को प्राप्त हुआ। राजपूत महिलाओं ने जौहर करके अपने सम्मान की रक्षा की। आसफ खाँ ने खूब लूट-पाट की। उसको बहुत सा सोना-चाँदी, हीरे-जवाहरात तथा 1,000 हाथी प्राप्त हुए, किन्तु उसने धन का केवल कुछ अंश और 200 हाथी अकबर की सेवा में भेजे। एक छोटे से राज्य पर अकारण आक्रमण करना, अकबर के चरित्र पर पहुत बड़ा कलंक का टीका है। डॉ. स्मिथ के अनुसार, "अकबर का ऐसी भली रानी पर आक्रमण करना सर्वथा अनुचित था, इसमें रानी का कोई दोष न था। यह तो अकबर की लूट और विजय लालसा का ही प्रतीक था।"

(3) चित्तौड़ विजय (1567-68)- अकबर ने विजय-योजना के अनुसार 1567 में चित्तौड़ के प्रसिद्ध दुर्ग पर आक्रमण किया। कायर राणा उदयसिंह ने दुर्ग की रक्षा का भार जयमल राठौर तथा फत्ता (फतेसिंह) को सौंपकर स्वयं अरावली की पहाड़ियों में कुम्भलगढ़ नामक दुर्ग में शरण ली।लगभग एक महीने तक मुगल सेना राजपूतों का कुछ न बिगाड़ सकी। 17 दिसम्बर, 1567 को बारूद की सुरंगों में आग लगाकर किले को क्षति पहुँचाने में मुगला सेना सफल हो गईं। एक दिन जबकि जयमल दुर्ग की एक दीवार की मरम्मत करा रहा था, अकबर ने उसको निशाना लगाकर मार दिया। जयमल की मृत्यु हो जाने पर 8,000 राजपूतों ने बड़ी वीरता से फत्ता के नेतृत्व में युद्ध किया, किन्तु सभी रणबाँकुरे राजपूत मारे गये। राजपूत स्त्रियों ने जौहर करके अपने सिसोदिया वंश की लाज रख ली। दूसरे दिन अकबर ने दुर्ग में प्रवेश किया किन्तु भीतर उसे राजपूतों के भयंकर विरोध का सामना करना पड़ा। सम्राट ने क्रोधित होकर 30 हजार स्त्री-पुरुषों की हत्या करा दी। अकबर के जीवन का यह पहला और अन्तिम निर्दयतापूर्ण कृत्य था। मेवाड़ के राजपूत इसे कभी भी भुला न सके। उन्होंने आत्मसमर्पण करने

के बजाय मुगलों की राजसत्ता का विरोध करने के लिए पहले से भी अधिक उत्साह के साथ कमर कस ली। आसफ खाँ को चित्तौड़ का गवर्नर नियुक्त करने के पश्चात् अकबर आगरा लौट आया।

(4) रणथम्भौर का युद्ध (1569)– 1569 में अकबर ने रणथम्भौर के दुर्ग पर आक्रमण किया। रणथम्भौर का शासक सुरजनराय हाड़ा एक वीर राजपूत था। डेढ़ महीने के घेरे के पश्चात् भी मुगल सेना रणथम्भौर पर अधिकार न कर सकी। अन्त में अकबर आमेर के राजा भगवानदास को सुरजनराय के पास भेजकर सन्धि करने में सफल हो गया और 22 मार्च 1569 को दुर्ग पर मुगलों का अधिकार हो गया। अकबर ने भी सुरजनराय के साथ मित्रता का व्यवहार किया और उसे शाही नौकरी में सम्माननीय पद प्रदान किया।

(5) कालिंजर-विजय (1569)– अगस्त, 1569, में मंजनू खाँ काकसल के सेनापतित्व में कालिंजर के प्रसिद्ध दुर्ग पर आक्रमण किया गया। चित्तौड़ और रणथम्भौर के दुर्ग का पतन राजपूत देख चुके थे। अतः राजा रामचन्द्र ने बिना सामना किये आत्मसमर्पण कर दिया और दुर्ग पर मुगलों का अधिकार हो गया। रामचन्द्र को इलाहाबाद के निकट अरैल का परगना जागीर में दे दिया गया।

(6) अन्य राजपूतों द्वारा आत्म-समर्पण (1570-71)– अकबर की नागौड़ यात्रा के समय जोधपुर के राजा चन्द्रसेन ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली, फलस्वरूप बीकानेर तथा जैसलमेर के राजाओं ने भी अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली तथा अकबर ने बीकानेर के राजघराने के कहान की पुत्री से विवाह किया। जैसलमेर के शासक रावल हरसहाय ने भी अपनी पुत्री का विवाह अकबर से कर दिया। इस प्रकार मेवाड़ को छोड़कर सम्पूर्ण राजस्थान अकबर के अधीन हो गया।

(7) गुजरात-विजय (1572-73)– गुंजरात एक समृद्ध प्रान्त था। अकबर ने एक लाख अश्वारोहियों के साथ 1572 में अजीज कोका की अध्यक्षता में एक सेना गुजरात विजय के लिए भेजी। मुगल सेना का बिना सामना किये मुजफ्फर खाँ तृतीय भागकर एक अनाज के खेत में छिप गया और गुजरात पर मुगलों का अधिकार हो गया। सम्राट ने अजीज कोका को गुजरात का गवर्नर बना दिया, पर मुगल सेना के लौटते ही गुजरात में पुनः मिर्जाओं ने विद्रोह कर दिया। फलतः अकबर 3,000 अश्वारोहियों की एक छोटी-सी टुकड़ी लेकर गुजरात की ओर चल पड़ा। केवल 11 दिनों में 720 किमी. की यात्रा करके विद्रोहियों को चकित कर दिया। उसने शत्रुओं की 20,000 सैनिकों की सेना को पराजित कर दिया और गुजरात प्रान्त दिल्ली साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

(8) बिहार तथा बंगाल विजय– 1574 तथा 1576 के मध्य अकबर ने बंगाल के शासक दाऊद को पराजित कर बिहार तथा बंगाल पर अधिकार कर लिया।

(9) मेवाड़ विजय के लिए प्रयत्न, हल्दीघाटी का युद्ध (1576)– उदयसिंह की मृत्यु के पश्चात् महाराणा प्रताप 1572 में गद्दी पर आसीन हुए। राणा का जन्म 31मई, 1539 को हुआ था। वह एक स्वतन्त्र प्रकृति के व्यक्ति थे। उसने मुगलों की अधीनता स्वीकार करना अपने कुल के यश के कलंक का टीका समझा। सिंहासन पर बैठते ही प्रताप सिंह ने अपनी सैन्य-शक्ति बढ़ाना शुरू कर दिया। उन्होंने कुम्भलनेर तथा

गोगुन्दा के दुर्गों की मरम्मत भी करायी। राणा प्रताप की इन सैनिक तैयारियों से अकबर का सचेत होना स्वाभाविक था। उसने राणा के पास एक दूत भेजकर अधीनता स्वीकार करने को कहा, किन्तु राणा ने उसके अधीन होना स्वीकार नहीं किया। इस संबंध में डॉ. आशीर्वादीलाल का कथन है, "महाराणा ने अपने सीमित साधनों के बल पर अपने सैनिक असन्तोष तथा भाई शक्तिसिंह के विरोधी होने पर भी उस समय पृथ्वी के पर्दे पर सबसे अधिक समृद्धिशाली सम्राट से निःसंकोच लोहा लिया।"

इसी बीच एक दिन गुजरात से वापस आते समय राजा मानसिंह उदयपुर गये। महाराणा प्रताप ने उनका आदर-सत्कार किया, किन्तु भोजन के समय उनके साथ भोजन करने न आये और अपने पुत्र अमर सिंह को भेज दिया। न आने का कारण राजा मानसिंह को नीचा समझना था, क्योंकि उनकी बुआ जोधाबाई का विवाह अकबर से हुआ था। मानसिंह ने इस सम्बन्ध में पूछने पर बताया गया कि उसके सिर में दर्द है। मानसिंह वास्तविकता तो ताड़ गये और बिना भोजन किये उदयपुर से यह कहकर चल दिए, "मैं महाराणा प्रताप के सिर दर्द की दवा लेकर शीघ्र ही आऊँगा।" इसी बीच किसी राजपूत ने वाक-बाण प्रहार किया, "कुँवर साहब! जब आप मेवाड़ लौटकर आयें तब अपने फूफा अकबर को भी लेते आना।" मानसिंह ने सम्पूर्ण घटना अकबर को सुनाई, जिसे सुनकर वह क्रोधांध हो उठा।

महत्वाकांक्षी अकबर ने जो पहले ही मेवाड़ को जीतने का संकल्प कर चुका था, 1576 में मानसिंह और आसफ खाँ को मेवाड़ विजय के लिये भेजा। 18 जून, 1576 को हल्दीघाटी के मैदान में राणा प्रताप और मुगल सेना में भीषण युद्ध हुआ। इस युद्ध में दोस्त-दुश्मन को पहचानना कठिन था। राणा की ओर से हकीम सूर अफगान और ताज खाँ ने ऐसा युद्ध किया कि शाही फौज के राय लोनकरण कछवाहा का दल भाग खड़ा हुआ। कुछ देर तो ऐसा जान पड़ा कि राणा प्रताप ने बाजी मार ली। किन्तु अन्त में राणा प्रताप पराजित हुए और वे भाग निकले, पर उनके प्रिय घोड़े चेतक ने थकान के कारण प्राण त्याग दिये। वहाँ आज भी चेतक की समाधि है। मुगल सेना इतनी अधिक थक चुकी थी कि वह प्रताप सिंह के सैनिकों का पीछा न कर सकी। राणा ने गोगुंदा छोड़कर अपने राज्य के भीतरी भागों में शरण ली। मुगल सेना ने उनके सभी किलों पर अधिकार कर लिया, किन्तु उदयपुर राणाप्रताप के अधिकार में ही रहा।

हल्दी घाटी के युद्ध में राणा के निकट सम्बन्धियों में से लगभग 500 लोगों को वीरगति प्राप्त हुई। मेवाड़ में शायद ही कोई ऐसा परिवार बचा हो जिसके किसी न किसी सदस्य ने युद्ध में अपना बलिदान न किया हो। राणा प्रताप को वन-वन की खाक छाननी पड़ी। कई अवसरों पर उनके बच्चों को खाने के लिए अनाज का एक दाना नहीं मिला, किन्तु इस स्वतन्त्रता-प्रेमी ने अकबर की कभी अधीनता स्वीकार नहीं की। राणा प्रताप ने पुनः अपनी शक्ति को संगठित किया और एक के बाद एक दुर्गों पर अधिकार करना प्रारंभ किया। 19 जनवरी, 1597 को राणा प्रताप की मृत्यु हो गई। मृत्यु के समय सम्पूर्ण मेवाड़ पर केवल चित्तौड़ को छोड़कर उनका अधिकार था। उसने अपनी माँ के दूध को सफल बनाने की कठिन प्रतिज्ञा की थी जिसे उसने भली भाँति निबाहा। इतिहासकार टॉड के शब्दों में, "राणा वह राजपूत वीर था जिसकी स्मृति आज भी हर सिसोदिया को है और उसे वह तब तक रखेगा जब तक कि कोई नया दमन का विनाशक तत्व देश-प्रेम की उन बची-खुची चिनगारियों को बुझा न देगा। आशा है कि वह दिन कभी न आयेगा।" उनकी मृत्यु के उपरान्त उनका पुत्र अमरसिंह मेवाड़ का शासक हुआ। उसने मुगलों की अधीनता स्वीकार नहीं की। मुगल सम्राट ने कई बार अमरसिंह के विरुद्ध अपनी सेनाएँ भेजीं, किन्तु मेवाड़ पर वह विजय प्राप्त नहीं कर सका।

(10) काबुल विजय (1581)– अकबर की धार्मिक उदार नीति के कारण बहुत

से मुसलमान असन्तुष्ट थे जिसका लाभ उठाकर मिर्जा मुहम्मद हकीम ने जो काबुल पर शासन कर रहा था, पंजाब पर आक्रमण कर दिया। अकबर ने शीघ्र उसका सामना करने के लिए प्रस्थान किया। मिर्जा मुहम्मद हकीम भयभीत होकर काबुल लौट गया। अकबर ने 10 अगस्त, 1581 को काबुल में प्रवेश किया। मिर्जा हकीम ने क्षमा-याचना की। अन्त में उसे क्षमा कर दिया गया और पुनः उसे काबुल का शासक बना दिया गया। उसकी मृत्यु के पश्चात् 1585 में काबुल को मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया।

(11) कश्मीर-विजय (1586)– पश्चिमोत्तर सीमा की सुरक्षा की दृष्टि से कश्मीर को अकबर अपने अधिकार में करना चाहता था। फलतः उसने 1586 में राणा भगवानदास तथा कासिम खाँ को कश्मीर-विजय के लिए भेजा। वर्षा और हिमपात के कारण मुगल सेना को भारी क्षति उठानी पड़ी, सुल्तान यूसुफ खाँ मुगल सेना का सामना नहीं कर सका और उसने आत्म-समर्पण कर दिया। उसको मुगल दरबार में 500 का मनसब दे दिया गया। कुछ समय उपरान्त यूसुफ खाँ के पुत्र याकूब खाँ ने विद्रोह किया, किन्तु अन्त में उसे आत्म-समर्पण करने के लिए बाध्य होना पड़ा कश्मीर मुगल-साम्राज्य में मिला लिया गया।

(12) सिन्ध-विजय (1590)– सिन्ध प्रान्त को छोड़कर समस्त उत्तरी भारत पर मुगलों का अधिकार हो चुका था। अतः सिन्ध विजय के लिए बैरम खाँ के पुत्र रहीम खानखाना को एक विशाल सेना के साथ भेजा गया। मिर्जा जानी बेग ने मुगल सेना का डटकर सामना किया, किन्तु पराजित हुआ। अकबर ने उसको सिन्ध का सूबेदार बना दिया तथा उसको तीन हजारी मनसब प्रदान किया।

(13) उड़ीसा-विजय (1590-92)– 1590 में बंगाल के सूबेदार राजा मानसिंह ने अकबर की आज्ञानुसार उड़ीसा पर आक्रमण किया। निसार खाँ पराजित हुआ और उसने तुरन्त संधि कर ली। परन्तु दो वर्ष पश्चात् ही उसने सन्धि की शर्तें तोड़कर विद्रोह कर दिया। राजा मानसिंह ने 1592 में उसे पुनः पराजित किया। उड़ीसा का प्रान्त मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया और उसे बंगाल सूबे का एक भाग बना दिया गया।

(14) बलूचिस्तान-विजय (1595)– 1595 में बलूचिस्तान विजय के लिए मीर मासूम को भेजा गया। इस समय इस प्रदेश पर अफगानों का आधिपत्य था। मीर मासूम ने अफगानों को परास्त किया और इस प्रदेश पर मुगल सम्राट का अधिकार स्थापित हो गया।

(15) कन्धार-विजय (1595)– 1595 में शाहबेग को कन्धार विजय के लिए भेजा गया। बिना युद्ध किये ही कन्धार के गवर्नर मुजफ्फर हुसैन मिर्जा ने कन्धार के सुदृढ़ दुर्ग को शाहबेग को सौंप दिया। हुसैन मिर्जा को पाँच हजार का मनसब तथा सम्भल की जागीर दे दी गई और कन्धार मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया।

दक्षिण-विजय (1598-1601)

उत्तर-भारत की विजय से यह स्पष्ट हो चुका है कि अकबर बड़ा महत्वाकांक्षी तथा साम्राज्यवादी भावना से ओत-प्रोत था। अतः उसने दक्षिण भारत को विजय करने की योजना का निर्माण किया।

(1) खान-देश– 1598 में अकबर ने दक्षिण की रियासतों के पास यह प्रस्ताव भेजा कि वे उसकी अधीनता स्वीकार कर लें। खान-देश के सुल्तान रजा अली खाँ ने अकबर के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। अन्य रियासतों ने उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया। फलतः अकबर को बड़ा क्रोध आया और उसने दक्षिण-विजय का निश्चय किया।

दक्षिण-विजय

1. खानदेश
2. अहमदनगर-विजय
3. असीरगढ़-विजय

(2) अहमदनगर-विजय (1600)– सर्वप्रथम अहमदनगर को ही अकबर की साम्राज्यवादी नीति का निशाना बनाना पड़ा। अकबर ने अपने पुत्र मुराद तथा अब्दुल रहीम खानखांना को एक विशाल सेना के साथ अहमदनगर पर आक्रमण करने के लिये भेजा। चाँदबीबी ने जो बीजापुर की रानी थी, मुगल सेना का बड़ी वीरता के साथ सामना किया, किन्तु अन्त में उसे सन्धि के परिणामस्वरूप बरार का प्रान्त मुगलों को देना पड़ा। इसके बदले में मुगलों ने उसके भतीजे बहादुरशाह को अहमदनगर का सुल्तान स्वीकार कर लिया, परन्तु कुछ समय पश्चात् चाँदबीबी के शत्रुओं ने उसके भतीजे की हत्या कर दी। इसी समय अकबर स्वयं एक सेना लेकर अहमदनगर आया और अन्ततः मुगलों ने 1600 ई. में 15000 सैनिकों की जीवन समाप्त करके अहमदनगर जीत लिया। चाँदबीबी की या तो हत्या कर दी गई अथवा उसने स्वयं विषपान कर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर ली।

(3) असीरगढ़-विजय (1601)– खानदेश के सुल्तान रजा अली खाँ की मृत्यु के उपरान्त मीरन बहादुर खान देश के सिंहासन पर आसीन हुआ। उसने मुगलों का आधिपत्य मानने से इन्कार कर दिया और स्वतन्त्र शासक की भाँति आचरण करने लगा। फलतः अकबर ने असीरगढ़ के दुर्ग का घेरा डाल दिया। कई महीने तक घेरा पड़ा रहा किन्तु मुगलों को सफलता न मिली। अन्ततः अकबर ने किलेदार को रिश्वत देकर 17 जनवरी, 1601 को दुर्ग में घुसने में सफल हुआ। इस प्रकार असीरगढ़ मुगल आधिपत्य में आ गया। किसी इतिहासकार ने ठीक लिखा, "अकबर ने चाँदी की तालियों से आसीरगढ़ का दुर्ग खोला था।" आसीरगढ़ की विजय अकबर की अन्तिम विजय थी।

साम्राज्य-विस्तार– अकबर ने विशाल साम्राज्य की स्थापना की। उसने 1561 से 1576 तक उत्तरी भारत की विजय की, 1581 से 1595 तक पश्चिमोत्तर प्रदेश को जीता तथा 1598 से 1601 तक दक्षिणी भारत को जीता। इस प्रकार उसके साम्राज्य में सम्पूर्ण उत्तरी-भारत, उत्तर-पश्चिम में अफगान देश से लेकर पूर्व में असम और उत्तर में कश्मीर से लेकर दक्षिण में बीजापुर और गोलकुण्डा की सरहद तक सम्मिलित था। उसका समस्त साम्राज्य निम्न पन्द्रह प्रान्तों में विभक्त था :

(1) काबुल, (2) लाहौर, (3) मुल्तान, (4) दिल्ली, (5) आगरा, (6) अवध, (7) इलाहाबाद, (8) अजमेर, (9) गुजरात, (10) मालवा, (11) बिहार, (12) बंगाल, (13) खान देश, (14) बरार, (15) अहमदनगर।

अकबर की मृत्यु– अकबर जैसे महान् सम्राट के अन्तिम दिन कष्टमय व्यतीत हुए। इसका प्रधान कारण उसका सबसे बड़ा प्रिय पुत्र सलीम था।[1] जिससे साम्राज्य प्राप्ति के लिए कई बार विद्रोह किया और अकबर के अनन्य मित्र अबुल फजल की ओरछा के वीरसिंह बुन्देला द्वारा हत्या करवा दी। इन घटनाओं से सम्राट को अत्यधिक दुःख हुआ और वह अस्वस्थ रहने लगा। यद्यपि उसने अपने पुत्र सलीम को क्षमा कर अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया, किन्तु अस्वस्थता बढ़ती ही गई और संग्रहणी रोग का रूप धारण कर लिया। अन्त में 17 अक्टूबर, 1605 को इस महान् सम्राट ने सदा के लिए आँखें मूँद लीं।

अकबर की राजपूत-नीति

अकबर एक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था। वह भारत को एक विशाल साम्राज्य के रूप में संगठित करना चाहता था। उसने आरम्भ में ही समझ लिया था कि बिना हिन्दुओं का सहयोग लिए अपने

---

1. सलीम के अन्य भाई मुराद और दानियाल थे। मुराद की 1599 में और दानियाल की मार्च, 1605 में मृत्यु हो गई थी।

राज्याधिकार को सुरक्षित रखना तथा अपने राजवंश को आगे बढ़ाना कठिन है। हिन्दुओं में से विशेषतः राजपूत जाति का सहयोग प्राप्त करना उसके लिए आवश्यक था, क्योंकि उसको यह मालूम था कि राजपूतों को परास्त करने में उसके पितामह बाबर को कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। राजपूतों के सहयोग के अभाव में ही उसके पिता हुमायूँ को भारत छोड़कर भागना पड़ा था। अतः "अकबर ने अपनी दूरदर्शिता से उस तथ्य को हृदयंगम कर लिया जिसे समझने में उसके पिता और पितामह ने भूल की थी। उसने यह भली प्रकार समझ लिया कि राजपूतों के ऊपर जिनके अधिकार में विस्तृत-भू-प्रदेश हैं, असंख्य सैनिक दल हैं, जो अपनी बात के पक्के हैं तथा अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध हैं, विश्वास किया जा सकता है और उन्हें मित्र बनाया जा सकता है। फलतः उसने राजपूतों का सहयोग प्राप्त करने का निश्चय किया।" इस ओर अकबर के झुकाव के निम्न कारण बतलाये जा सकते हैं :

(1) अकबर का स्वभाव– अकबर जन्म से हिन्दुओं के प्रति उदार तथा सहिष्णु था। उसको मालूम था कि जब उसका पिता हुमायूँ मुसीबतों से घिरा हुआ था तब अमरकोट के राना वीरसाल ने ही उसको शरण दी थी तथा उसका जन्म भी वीरसाल के दुर्ग में हुआ था। अतः उसने व्यापक दृष्टिकोण अपनाकर राजपूतों के साथ उदारता का व्यवहार किया।

उदार राजपूत नीति के उत्तरदायी कारण

1. अकबर का स्वभाव
2. वीर सैनिकों की आवश्यकता
3. राजपूतों के पौरुष-पराक्रम का आकर्षण
4. अफगानों का भय
5. विदेशी अमीरों का भय
6. राजस्थान का भौगोलिक महत्व

(2) वीर सैनिकों की आवश्यकता– दिल्ली के पूर्व सुल्तानों को उत्तर-पश्चिम के सीमान्त प्रदेशों तथा अफगानिस्तान से अधिकांश सैनिकों की प्राप्ति हो गई थी, किन्तु अकबर को उस ओर से कोई आशा नहीं थी। उसको साम्राज्य स्थापित करने के लिए एक युद्ध-कर्मी वर्ग की आवश्यकता थी। अतः उसने राजपूत जैसी वीर जाति की ओर मित्रता का हाथ बढ़ाना उचित समझा।

(3) राजपूतों के पौरुष-पराक्रम का आकर्षण– अकबर जानता था कि राजपूत जाति अपने पौरुष-पराक्रम के लिए अत्यधिक प्रसिद्ध है। उसको युद्ध में पराजित करना असम्भव है। उसे यह भी ज्ञात था कि राजपूत अपनी बात के पक्के होते हैं और विश्वासघात करना उनका स्वभाव नहीं है। राजपूतों के इन गुणों से प्रभावित होकर अकबर ने उनसे सहयोग करना उचित समझा।

(4) अफगानों का भय– अफगानों का पूर्णतया दमन नहीं हो पाया था। वे अभी तक बिहार, पंजाब और उड़ीसा के बहुत से भू-भागों पर अपना अधिकार जमाये हुए थे और अपनी शक्ति का संगठन कर रहे थे। अतः अफगान सरदारों का दमन करने के लिए राजपूतों का सहयोग आवश्यक था।

(5) विदेशी अमीरों का भय– राजपूतों के साथ अच्छे संबंध स्थापित करने का एक यह भी कारण था कि मुगल दरबार में विदेशी अमीरों के दल का प्रभाव बहुत अधिक बढ़ गया था। उनसे सम्राट को सदैव भय रहता था। उनके प्रभाव को समाप्त करने के लिए यह आवश्यक था कि एक शक्तिशाली देशी दल की स्थापना की जाय। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए राजपूतों से सहयोग की आवश्कता थी। फलतः अकबर ने राजपूतों को उच्च-पद प्रदान किए और उनकी अपार शक्ति तथा निष्ठा को प्राप्त किया।

(6) राजस्थान का भौगोलिक महत्व– भौगोलिक दृष्टि से राजस्थान का बहुत महत्व

था, क्योंकि आगरा और दिल्ली राजस्थान के समीप स्थित है। अतः मुगल सम्राट के लिए यह आवश्यक था कि या तो राजपूतों की शक्ति का उन्मूलन कर दिया जाय अथवा उन्हें मित्रता के सूत्र में बाँध दिया जाय। अकबर ने राजपूतों से मित्रता स्थापित करने में ही साम्राज्य-निर्माण का आशा-स्वप्न देखा, अन्यथा उसे जीवनपर्यन्त राजपूतों से संघर्ष करते रहना पड़ता।

राजपूत नीति का क्रियान्वयन

1. राजपूतों से वैवाहिक सम्बन्ध-
   (अ) आमेर से सम्बन्ध
   (ब) जोधपुर और जैसलमेर से सम्बन्ध
2. राजपूतों को उच्च पद प्रदान करना
3. धार्मिक स्वतन्त्रता
4. सम्राट द्वारा हिन्दू-परम्पराओं को अपनाना
5. आक्रमणात्मक नीति
6. अभयदान नीति किन्तु साम्राज्य-क्षेत्र का विस्तार
7. सामाजिक सुधार

राजपूत नीति का क्रियान्वयन स्वरूप– अकबर की राजपूत नीति का विवरण स्पष्ट रूप से समझने के लिए उसे निम्न वर्गों में बाँटा जा सकता है–

(1) राजपूतों से वैवाहिक सम्बन्ध– राजपूतों को अपना विश्वस्त मित्र बनाने के लिए उसने निम्न वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये :

(अ) आमेर से सम्बन्ध– 1562 में अकबर ने ख्वाजा मुईनुद्दीउन चिश्ती की दरगाह का दर्शन करने के लिये अजमेर की यात्रा की। रास्ते में साँगानेर नामक स्थान पर आमेर के कछवाहा राजा बिहारीलाल ने उससे भेंट की। अकबर ने उसके साथ शिष्टतापूर्वक व्यवहार किया जिससे बिहारीलाल बहुत प्रभावित हुआ और उसने अपनी पुत्री का विवाह उससे करने की इच्छा प्रकट की। बादशाह ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर लिया और अजमेर से लौटते समय उसकी पुत्री जोधाबाई को साभर नामक स्थान पर ब्याह कर ले गया। इसी पुत्री से जहाँगीर का जन्म हुआ। इस विवाह के महत्व पर प्रकाश डालते हुए सुप्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. बेनीप्रसाद ने लिखा है– "यह वैवाहिक सम्बन्ध भारतीय इतिहास में एक नये युग का प्रतीक है। उसके द्वारा देश को प्रसिद्ध सम्राटों की वंश परम्परा प्रदान हुई। उसने चार पीढ़ियों तक मुगल सम्राटों को प्रमुख सेनापतियों तथा कूटनीतिज्ञों को सेवायें प्रदान कीं।"

(ब) जोधपुर और जैसलमेर से सम्बन्ध– 1570 में अकबर ने जैसलमेर और जोधपुर की राजकुमारियों के साथ विवाह किये। 1584 में उसने अपने पुत्र जहाँगीर का विवाह राजा बिहारीमल (भारमल) के पुत्र भगवानदास की पुत्री से कर दिया और मारवाड़ की राजकुमारी ने स्वयं विवाह कर लिया।

(2) राजपूतों को उच्च पद प्रदान करना– अकबर ने राजपूतों तथा अन्य हिन्दुओं को प्रत्येक विभाग में उच्च तथा विश्वसनीय पद प्रदान किये। आमेर के राजा भारमल को पंच हजारी मनसब प्रदान किया तथा उसके पुत्र भगवानदास तथा पौत्र मानसिंह को भी सेना में उच्चपद प्रदान किय। राजा टोडरमल को दीवान-ए-अशरफ (भूमि-विभाग का अध्यक्ष) का पद दिया गया। राजा बीरबल को नवरत्नों[1] में स्थान दिया गया और सेनापति का भार भी सौंपा गया। इस प्रकार अकबर की सेवा में अनेक हिन्दू पदाधिकारी तथा सैनिक थे।

(3) धार्मिक स्वतन्त्रता–पूर्व मध्यकालीन सुल्तानों की भाँति अकबर ने हिन्दुओं के प्रति संकीर्ण नीति नहीं अपनायी, बल्कि उसने हिन्दूओं को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान कर दी। अकबर ने अपनी हिन्दू रानियों को भी हिन्दू जीवन बिताने तथा पूजा-पाठ करने की स्वतन्त्रता

1. अकबर ने नवरत्नों के नाम इस प्रकार थे- मुल्ला दो प्याजा, हकीम इमाम, अब्दुल फजल, शेखी फैजी, अबुल रहीम खानखाना, तानसेन, राजा टोडरमल, राजा मानसिंह और राजा बीरबल।

दे दी। हिन्दुओं पर लगे हुए जजिया तथा अन्य धार्मिक करों को समाप्त कर दिया तथा उनके मन्दिरों को नष्ट किया जाना बंद कर दिया गया।

(4) सम्राट द्वारा हिन्दू परम्पराओं को अपनाना– सम्राट ने स्वयं अनेक हिन्दू रीति-रिवाजों को ग्रहण कर लिया। उसने हिन्दुओं के त्योहारों में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। वह हिन्दुओं की भाँति वस्त्र पहिनने लगा तथा माथे में तिलक लगाने लगा और माला भी धारण करने लगा। इस प्रकार हिन्दू परम्पराओं को अपनाकर सम्राट हिन्दुओं को और निकट लाने में सफल हुआ।

(5) आक्रमणात्मक नीति– जिन राजपूत राजाओं ने अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की, उन राजपूत राजाओं के साथ उसने आक्रमणात्मक नीति अपनायी। रणथम्भौर और मेरठ आदि के दुर्गों को उसने युद्ध द्वारा जीता। राणा उदयसिंह के समय में उसने चित्तौड़ पर आक्रमण करके उस पर अधिकार किया। राणा प्रतापसिंह से तो उसका जीवन-भर संघर्ष चलता रहा। संक्षेप में, जिन राजपूत राजाओं ने उसके सामने आत्म-समर्पण न कर उसका विरोध किया उसको विनष्ट करने में उसने लेशमात्र भी संकोच नहीं किया।

(6) अभयदान नीति किन्तु साम्राज्य-क्षेत्र का विस्तार– चित्तौड़ पराजय के उपरान्त बीकानेर, जैसलमेर और जोधपुर के राजाओं ने अपने को निर्बल समझकर बिना युद्ध किये ही मुगल-सम्राट की अधीनता स्वीकार कर ली। अधीनता स्वीकार कर लेने पर अकबर ने उसके साथ उदारता का व्यवहार किया। इस प्रकार अभयदान नीति द्वारा राजपूतों से अच्छे सम्बन्ध भी बने तथा साम्राज्य-क्षेत्र का विस्तार भी हुआ। मेवाड़ को छोड़कर राजस्थान का सम्पूर्ण प्रदेश मुगल सम्राट के अधिकार में आ गया।

(7) सामाजिक सुधार– अकबर ने हिन्दू समाज में फैली हुई अनेक कुरीतियों के निराकरण का भी प्रयास किया जिसका प्रभाव सामाजिक क्षेत्र में गहरा तथा दूरगामी सिद्ध हुआ। उसके निम्नलिखित सामाजिक सुधार उल्लेखनीय हैं :

1. सती-प्रथा पर प्रतिबन्ध लगाने का प्रयास किया।
2. बाल-विवाह पर प्रतिबन्ध लगा दिया।
3. अधिक दहेज का विरोध किया।
4. अन्तर्जातीय विवाहों तथा विधवा-विवाह को प्रोत्साहन दिया।

राजपूत नीति के परिणाम– अकबर की राजपूत-नीति के परिणाम बड़े ही व्यापक तथा महत्वपूर्ण सिद्ध हुए। डॉ. आशीर्वादीलाल के शब्दों में, "इसका परिणाम यह निकला कि वे राजपूत राजा जो 350 वर्षों से दिल्ली के तुर्क अफगान सुल्तानों से जूझते आये थे, मुगल सिंहासन के प्रबल समर्थक ही नहीं बन गये, बल्कि देश में मुगल शासन को फैलाने के साधन भी सिद्ध हुए। अकबर के शासनकाल में जो सैनिक, राजनीतिक, प्रशासनिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा कलात्मक उन्नति हुई इसमें उन्होंने यथेष्ट योगदान दिया।" संक्षेप में, राजपूत नीति के निम्नलिखित परिणाम बतलाये जा सकते हैं :

राजपूत-नीति के परिणाम

1. राजनीतिक परिणाम
2. सामाजिक परिणाम
3. धार्मिक परिणाम
4. आर्थिक परिणाम
5. सांस्कृतिक परिणाम

(1) राजनीतिक परिणाम– राजपूतों के मुगल सेना में भर्ती हो जाने से मुगल साम्राज्य की सैनिक शक्ति में बड़ी वृद्धि हो गई और मुगल-सम्राट को पूर्व तथा सुदूर दक्षिण तक अपना साम्राज्य विस्तार करने में सफलता प्राप्त हुई। उसने विविध मुसलमान राज्यों के विरुद्ध वरन् राजपूत-राज्यों के विरुद्ध भी राजपूत राजाओं का प्रयोग किया। इस प्रकार उसने राजपूतों की तलवार से ही राजपूत राजाओं को पराभूत किया। राजपूतों की शक्ति के द्वारा वह विदेशी अमीरों पर भी नियन्त्रण रखने में सफल हुआ।

(2) सामाजिक परिणाम– राजपूत नीति का सामाजिक क्षेत्र में भी बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। हिन्दू और मुसलमान एक–दूसरे के सम्पर्क में आ गये। अकबर ने हिन्दू–समाज की अनेक कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया। उसने सती–प्रथा तथा बाल विवाह पर प्रतिबन्ध लगा दिया तथा अन्तर्जातीय विवाहों और विधवा विवाह को प्रोत्साहन प्रदान किया। स्वयं सम्राट ने हिन्दू–समाज की अनेक रीति–रिवाजों को ग्रहण कर लिया। इस प्रकार सम्राट ने उदार–नीति अपनाकर हिन्दुओं के विश्वास को प्राप्त किया।

(3) धार्मिक परिणाम– अकबर ने धार्मिक क्षेत्र में सहिष्णुता की नीति अपनायी। हिन्दुओं के मन्दिरों तथा उनकी मूर्तियों को तुड़वाना बन्द कर दिया गया और उन्हें अपने मन्दिरों के बनवाने की पूरी स्वतन्त्रता प्रदान कर दी गई। फलतः उसके राज्यकाल में हिन्दुओं ने मथुरा में अनेक मन्दिर बनवाये और वृन्दावन में गोविन्ददेव के मन्दिर का निर्माण हुआ। जजिया तथा अन्य धार्मिक करों से हिन्दुओं को मुक्ति मिल गई।

(4) आर्थिक परिणाम– अकबर की उदार नीति का आर्थिक क्षेत्र में बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। हिन्दू और राजपूतों के सहयोग से मुगल शासन–प्रबन्ध का भी पर्याप्त विकास हुआ तथा शान्ति और सुव्यवस्था के परिणामस्वरूप देश में व्यापार और वाणिज्य में बड़ी प्रगति हुई। राजा टोडरमल ने जो भूमि सुधार किया वह इतिहास में सदैव याद किया जाता रहेगा।

(5) सांस्कृतिक परिणाम– अकबर की उदार नीति का सांस्कृतिक क्षेत्र में भी बहुत प्रभाव पड़ा। मुगल–दरबार में हिन्दी तथा संस्कृत को प्रश्रय मिला तथा हिन्दू भी फारसी की ओर आकृष्ट हुए। उसकी सहिष्णु नीति के कारण हिन्दू वास्तुकला का पुनः विकास हुआ। राजपूत राजाओं ने मालवा तथा राजपूताना में अनेक इमारतों का निर्माण कराया। आमेर, बीकानेर, जोधपुर, ओरछा आदि के राजपूत राजाओं द्वारा निर्मित महल आज भी दर्शनीय हैं। इस काल की हिन्दू और मुस्लिम इमारतों में हिन्दू और मुस्लिम कला शैलियों का सम्मिश्रण स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

अकबर की धार्मिक–नीति

अकबर स्वभाव से बड़ा ही उदार तथा जिज्ञासु था। वह एकान्त में बैठकर जीवन के निगूढ़ रहस्यों पर घण्टों सोचता रहता था। उसके विचार बड़े ही व्यापक थे। बाल्यावस्था से वह ऐसे वातावरण तथा ऐसे व्यक्तियों के सम्पर्क में रहा था कि उसका उदार तथा सहिष्णु हो जाना स्वाभाविक था। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य तत्कालीन परिस्थितियाँ थीं जिनका उस पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ा। अकबर के इन उदार धार्मिक विचारों के विकास में निम्नलिखित बातों ने योग दिया :

अकबर की धार्मिक उदारता के कारण

1. पैतृक प्रभाव
2. शिक्षकों तथा संरक्षक का प्रभाव
3. राजपूतों के सम्पर्क का प्रभाव
4. मुल्ला–मौलवियों का प्रतिकूल प्रभाव
5. विभिन्न धार्मिक आचार्यों का प्रभाव
6. 'इबादतखाना' के वाद–विवाद का प्रभाव
7. राजनीतिक कारण
8. धार्मिक आन्दोलन का प्रभाव

(1) पैतृक प्रभाव– अकबर के पिता हुमायूँ और पितामह कट्टर सुन्नी होते हुए भी स्वभाव से उदार थे। अकबर की माता हमीदाबानू बेगम शिया थीं। अतः अकबर पर पैतृक विचारों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था।

(2) शिक्षकों तथा संरक्षक का प्रभाव– अकबर पर उसके शिक्षकों तथा संरक्षक का बहुत प्रभाव पड़ा। उसके शिक्षक शिया तथा सुन्नी दोनों ही थे। अब्दुल लतीफ उसके शिया शिक्षक थे और बयाजद तथा मुनीम खाँ उसके सुन्नी शिक्षक थे। उसका संरक्षक बैरम खाँ भी शिया था और बहुत ही उदार था। अतः अकबर

अपने उदार शिक्षकों तथा संरक्षक से बहुत प्रभावित हुआ।

(3) राजपूतों के सम्पर्क का प्रभाव– अकबर के धार्मिक विचारों को उदारता प्रदान करने में राजपूतों के सम्पर्क का प्रभाव विशेष रूप से पड़ा। उसने राजपूतों की कन्याओं से विवाह किया जो अन्तःपुर (हरम) में हिन्दू धर्म का ही पालन करती थीं। अतः हिन्दू रानियों का उस पर प्रभाव पड़ना अनिवार्य था।

(4) मुल्ला-मौलवियों का प्रतिकूल प्रभाव– मुल्ला–मौलवियों के धार्मिक विचार उदार न थे। उनमें धार्मिक कट्टरता कूट–कूटकर भरी हुई थी। धार्मिक बातों को लेकर वे प्रायः आपस में झगड़ते तथा गाली–गलौज करते रहते थे। इस सम्बन्ध में बदायूँनी ने लिखा है, "धार्मिक वाद–विवाद में मुल्ला–मौलवी जो जीभ से खड्ग खींच लेते थे और साम्प्रदायिक वैमनस्यता इस सीमा तक पहुँच जाती थी कि एक–दूसरे को मूर्ख और काफिर कहने लगते थे।" अकबर को उनके इस प्रकार से व्यवहार से बड़ा दुख होता था। इस प्रकार मुल्ला–मौलवियों की धार्मिक कट्टरता ने अकबर के हृदय में उनके प्रति अश्रद्धा पैदा कर दी।

(5) विभिन्न धार्मिक आचार्यों का प्रभाव– अकबर विभिन्न धार्मिक आचार्यों से भी बहुत प्रभावित हुआ। हिन्दू आचार्यों में पुरुषोत्तम और देवा, जैन आचार्यों में हीर विजय, विजयसेन सूरी, भानुचन्द्र उपाध्याय, जय सीमा उपाध्याय तथा पारसी धर्माचार्य दस्तूर माह्यार जी राणा आदि ने विशेष रूप से उसको प्रभावित किया। ईसाई और सिक्खों के धर्माचार्यों का भी उस पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

(6) 'इबादतखाना' के वाद-विवाद का प्रभाव– अकबर ने धार्मिक वाद–विवाद के लिए फतेहपुर सीकरी में एक 'इबादतखाना' (पूजा–गृह) की स्थापना की जिसमें विभिन्न धर्मों के विद्वान भाग लेते थे। इससे अकबर को यह विदित हुआ कि "सभी धर्मों में बुद्धिमान लोग होते हैं और वे स्वतन्त्र विचारक भी होते हैं। जब सत्य सभी धर्मों में है तो यह समझना भूल है कि सच्चाई सिर्फ इस्लाम धर्म में ही है।"

(7) राजनीतिक कारण– अकबर बड़ा महात्वाकांक्षी व्यक्ति था। उसकी राजनीतिक महत्वाकांक्षा भी उसके धार्मिक विचारों को उदार बनाने में सहायक सिद्ध हुई। वह एक विशाल साम्राज्य की स्थापना करना चाहता था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये आवश्यक था कि वह राजपूतों का सहयोग प्राप्त करे। अतः उसने राजपूतों के साथ धार्मिक उदारता की नीति अपनायी।

(8) धार्मिक आन्दोलन का प्रभाव– लम्बे समय से भारत में धार्मिक जागरण का आन्दोलन चल रहा था। विभिन्न धर्मानुयायियों ने बाह्य–आडम्बरों तथा कट्टरता का डटकर विरोध किया। उन्होंने प्रेम और उदारता की शिक्षा दी और दोनों धर्मों के अनुयायियों में समन्वय उत्पन्न करने की ओर प्रयत्नशील हुए। अकबर पर भी धार्मिक आन्दोलन का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था।

अकबर के धार्मिक विचारों का विकास– डॉ. विसेन्ट स्मिथ ने अकबर के धार्मिक विचारों का विकास तीन कालों में विभक्त किया है, जो इस प्रकार है :

(1) 1556–1575– इस काल में अकबर ने एक कट्टर मुसलमान की भाँति जीवन व्यतीत किया। वह नियमित रूप से पाँच बार 'नमाज' पढ़ता था और 'या–हू–या–हादी' का मुसलमानी ढंग से उच्च स्वर से पाठ करता था। वह प्रत्येक वर्ष ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह के दर्शन के लिये अजमेर जाया करता था। वह मुसलमानों और उल्माओं का बड़ा सम्मान करता था तथा उनकी आज्ञाओं का कभी उल्लंघन नहीं करता था। इस प्रकार इस काल में वह धर्मानुकूल आचरण करता रहा।

(2) 1575–1582– इस काल में अकबर अन्य धर्मों की ओर आकृष्ट हुआ। उसने 1575 में फतेहपुर सीकरी में धार्मिक वाद–विवाद के लिये 'इबादतखाना' (प्रार्थना–गृह) का

निर्माण करवाया। प्रारम्भ में वाद-विवाद में इस्लाम धर्म के समर्थक ही भाग लेते थे। मखदूम-उल-मुल्क और शेख अब्दुल नवी इस्लाम धर्म के कट्टर समर्थक थे जो प्रायः इस्लामी धर्मशास्त्र सम्बन्धी सैद्धान्तिक प्रश्नों पर परस्पर लड़ते-झगड़ते रहते थे। एक बार अपनी वर्षगाँठ के अवसर पर अकबर केसरिया वस्त्र पहनकर शेख अब्दुल नवी से मिलने गया। वेश-भूषा में हिन्दू प्रभाव को देखकर शेख क्रोधित हो उठा और इतनी उतावली से अपनी बेंत उठायी कि बादशाह को लग गई। इस घटना से अकबर को इस्लाम धर्म के प्रति अत्यधिक अरुचि पैदा हो गई। अतः उसने अन्य अनुयायियों को भी 'इबादतखाना' में भाग लेने की आज्ञा दे दी। 'इबादतखाना' में अकबर को सब धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन करने का अवसर मिला, जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

हिन्दू धर्म– हिन्दू आचार्यों में पुरुषोत्तम ओर देवा प्रमुख थे। इन्होंने अकबर को हिन्दू धर्म-सिद्धान्तों को समझाया जिनसे प्रभावित होकर वह हिन्दुओं जैसे वस्त्र पहनने लगा तथा कभी-कभी चन्दन भी लगा लेता और माला भी धारण कर लेता। अपनी माता की मृत्यु पर उसने हिन्दुओं की ही भाँति अपना मुण्डन करवा कर शोक मनाया।

जैन-धर्म– अकबर को जैनाचार्य शान्तिचन्द, विजयसेन सूरी, हीर विजय सूरी, भानुचन्द्र उपाध्याय और जय सोमा उपाध्याय आदि ने बहुत प्रभावित किया। उनके प्रभाव के अन्तर्गत अकबर ने शिकार खेलना तथा मांस खाना बन्द कर दिया। वर्ष के आधे से अधिक दिनों में उसने जानवरों और पक्षियों की भी हत्या करना बन्द करवा दिया।

पारसी-धर्म– अकबर ने पारसी धर्म का ज्ञान दस्तूर माह्यार जी राणा नामक आचार्य से प्राप्त किया। पारसी-धर्म से प्रभावित होकर बादशाह अग्नि, सूर्य और प्रकाश के प्रति पूजाभाव प्रकट करने लगा तथा सूर्य उपासना भी आरम्भ कर दी। उसने दरबार में हर समय अग्नि जलते रहने की आज्ञा दे दी।

ईसाई-धर्म– इस समय अकबर ईसाई धर्मोपदेशकों के भी सम्पर्क में आया। इनसे प्रभावित होकर उसने आगरा और लाहौर में गिरिजाघरों का निर्माण कराया तथा हिन्दू मुसलमानों को ईसाई धर्म में दीक्षित करने की उन्हें आज्ञा भी दे दी लेकिन पादारियों ने मुहम्मद को अपशब्द कहकर अपने को अकबर की दृष्टि में अप्रिय बना लिया।

सिक्ख-धर्म– अकबर सिक्ख धर्म का भी आदर करता था। उसने सिक्ख गुरुओं की प्रार्थना पर एक वर्ष का पंजाब-कर माफ कर दिया था।

इमाम-ए-आदिल का पद ग्रहण करना– इबादतखाना के धार्मिक वाद-विवाद के फलस्वरूप अकबर ने 'इमाम-ए-आंदिल' बनने का निश्चय किया। उसने 16 जून, 1579 को फतेहपुर सीकरी की प्रधान मस्जिद की वेदी पर चढ़कर कवि फैजी द्वारा कविता में रचित 'खुत्वा' पढ़ा। इसी वर्ष अबुल फजल ने एक अधिकारपत्र (महज़र) तैयार किया जिसमें इस्लाम धर्म के नेताओं ने अपने हस्ताक्षर कर दिए। इस पर शेख मुबारक के अतिरिक्त मखदूम-उल् मुल्क तथा शेख अब्दुल नवी के भी हस्ताक्षर थे। इस अधिकार पत्र के द्वारा इस्लामी सम्बन्धी-विवादों में बादशाह सर्वोपरि हो गया। वह कुरान के अनुसार किसी भी नये मत का प्रतिपादन कर सकता था। कट्टर मुसलमानों को यह उचित न लगा और उन्होंने उसके विरुद्ध आवाज उठाई, लेकिन अकबर अपने दृढ़ निश्चय से तनिक भी विचलित नहीं हुआ। आधुनिक इतिहासकारों ने अकबर के इस कार्य को उचित नहीं ठहराया है। स्मिथ का मत है, 'वह स्वयं पैग़म्बर बनना चाहता था।' बूल्जले हेग का मत है, 'वह पोप और राजा दोनों ही बन गया था।'

(3) 1582-1605 : दीन-ए-इलाही– अकबर की धारणा थी कि "किसी भी साम्राज्य के अन्तर्गत यह अनुचित है कि जनता अनेक धर्मों में विभाजित हो। इससे आपस में

मतभेद उत्पन्न होता है। जितने धर्म उतने दल होते हैं। उनमें आपस में शत्रुता होती है। अतएव सभी धर्मों में समन्वय अपेक्षित है। परन्तु इसे ऐसे ढंग से करना चाहिए कि एक होते हुए भी उनकी विशेषता बनी रहे। इससे सभी धर्मों की अच्छाइयाँ बनी रहेंगी और एक दूसरे धर्मों की विशेषताएँ भी आ जाएँगी। इससे ईश्वर के प्रति आदर बढ़ेगा, लोगों में शान्ति होगी और साम्राज्य की सुरक्षा भी बढ़ेगी। "फलतः 1582 में उसने समस्त धर्मों के मूल सिद्धान्तों को एकत्रित कर एक नवीन धर्म प्रचलित किया जिसका नाम उसने 'दीन-ए-इलाही' अर्थात् 'ईश्वरीय-धर्म' रखा।" यह धर्म रहस्यवाद, अध्यात्म विद्या और प्रकृति-पूजा का सम्मिश्रण था।" उसमें पीर-पैगम्बरों तथा देवी-देवताओं को कोई स्थान नहीं था। दीन-ए-इलाही के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित थे जिनका विवरण अबुल फज़ल ने अपनी पुस्तक 'आइन-ए-अकबरी' के 77वें 'आइन' में दिया है :

(1) ईश्वर एक है तथा अकबर उसका सर्वोच्च पुजारी तथा पैगम्बर है।
(2) इस धर्म के अनुयायियों को अपनी मृत्यु के बाद दिया जाने वाला भोज अपने जीवन-काल मे ही देना पड़ता था।
(3) इस धर्म के अनुयायियों के लिए मांस-भक्षण निषेध था। वे कसाइयों, मच्छरों तथा बहेलियों के बर्तनों को प्रयोग में नहीं ला सकते थे।
(4) इस धर्म के अनुयायी वृद्धा स्त्रियों तथा अल्पवयस्क कन्याओं के साथ-विवाह नहीं कर सकते थे।.
(5) इस धर्म के अनुयायी अपनी वर्षगाँठ के दिन भी एक भोज देते थे।
(6) इसके अनुयायी सम्राट को साष्टांग प्रणाम अथवा सिजदा करते थे।
(7) इसके अनुयायियों को सूर्य तथा अग्नि की उपासना अनिवार्य थी।
(8) रविवार का दिन ही इस धर्म को ग्रहण करने के लिए ठहराया गया था।
(9) मृतक देह के सिर को पूर्व की ओर तथा पैरों को पश्चिम की ओर करके दफनाना वर्जित था।
(10) इस धर्म के अनुयायी को सम्राट के प्रति धन-सम्पदा, मान-सम्मान, जीवन और धर्म का बलिदान करने को प्रस्तुत रहना पड़ता था। इस सम्बन्ध में बदायूँनी लिखता है, "जो इन चारों का परित्याग करता था, वह चारों दर्जों का अधिकारी होता था और जो इनमें से एक का परित्याग करता था वह एक का अधिकारी होता था।" दीन-ए-इलाही में लिए जाते समय सदस्यों (चेलों) को निम्नलिखित उपदेश दिये जाते थे :
    (1) अपने कानों को मत-मतान्तर के विवादों से गन्दा न करो।
    (2) सभी मतों का आदर करो।
    (3) शिकार या युद्ध के अतिरिक्त किसी जीव की हिंसा न करो।
    (4) प्रकाश पुंजों (सूर्य-चन्द्र आदि) का आदर करो क्योंकि इनमें परमात्मा का तेज प्रत्यक्ष हुआ है।
    (5) हर समय परमात्मा की शक्ति और व्यापकता का स्मरण करते रहो।
    (6) क्षण भर के लिये भी बाहर या भीतर, परमात्मा को न बिसारो।

जहाँगीर के अनुसार अकबर इन विचारों से ओत-प्रोत था और इन्हें क्षण भर के लिये भी न भूलता था।

'दीन-ए-इलाही' की सदस्य संख्या- अबुल फजल के अनुसार इस धर्म के केवल अट्ठारह अनुयायी थे। हिन्दुओं में केवल बीरबल ने इसे स्वीकार किया था। राजा भगवानदास और मानसिंह ने इसे स्वीकार करने से इन्क़ार कर दिया था। मुसलमानों में अबुल फजल, मिर्जा जानी और अजीज कोका आदि उल्लेखनीय सदस्य थे। अकबर सम्राट अशोक की भाँति धर्म-प्रचारक

नहीं था। उसने दीन-ए-इंलाही धर्म अंगीकार करने के लिये किसी को बाध्य नहीं किया।

'दीन-ए-इलाही' की आलोचना- बदायूँनी का मत-कुछ इतिहासकारों ने दीन-ए-इलाही की कटु आलोचना की है। तत्कालीन इतिहासकारों में बदायूँनी ने विशेष रूप से इसकी आलोचना की है। उसके अनुसार मुसलमानों के साथ अकबर ने अमानवीय व्यवहार किया और ऐसे नियम प्रचलित कराये जो इस्लाम धर्म के विरोधी थे। वह लिखता है कि-

1. बारह वर्ष की उम्र के पहले खतना मना कर दिया गया और उसके पश्चात् लड़कों की इच्छा पर छोड़ दिया गया।
2. गो-मांस खाने का निषेध कर दिया गया। जंगली सुअर और शेर का मांस खाने को प्रोत्साहन दिया गया।
3. कुरान और हदीस का बहिष्कार कर दिया गया। इसके स्थान पर गणित, ज्योतिष, काव्य, वैद्यकशास्त्र तथा इतिहास के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया गया।
4. अरबी और फारसी का अध्ययन अपराध समझा जाने लगा।
5. सोने-चाँदी के काम के कपड़े, जिसका शरीयत के अनुसार पहनना अवैध था, आवश्यक कर दिया गया।
6. मुस्लिम नाम जैसे अहमद और मुहम्मद मुस्तफा नामों से बादशाह को इतनी चिढ़ हो गई कि वह उसे बदलवा कर दूसरा नाम रखवा देता था।
7. रमजान का व्रत और हज करना रोक दिया गया।
8. दाढ़ी रखने का निषेध कर दिया गया।
9. बादशाह ने हरम में तथा किले में सुअर और कुत्ते रखे जाने का आदेश दे दिया और प्रतिदिन प्रातःकाल उन्हें देखने जाना एक अनिवार्य धार्मिक कृत्य बना दिया।
10. मस्जिदों और इबादतखानों को गोदाम बना डाला गया।
11. नमाज और अजान बन्द कर दिया गया।
12. लड़कों के विवाह की आयु 16 वर्ष और लड़कियों के विवाह की आयु 14 वर्ष निर्धारित कर दी गई।
13. ममेरे, फुफेरे, मौसेरे भाई-बहनों के बीच विवाह बन्द कर दिया गया जो इस्लामी कानून में जायज था।

बदायूँनी द्वारा वर्णित कुछ आक्षेप सर्वथा अविश्वसनीय है। क्योंकि वह एक कट्टर मुसलमान था। इसलिए धर्म सहिष्णु बादशाह की आलोचना करना उसके लिए स्वाभाविक ही था। डॉ. ईश्वरीप्रसाद के शब्दों में, "क्या यह बात विश्वास करने योग्य है कि अकबर के समान धार्मिक स्वतन्त्रता देने वाला तथा विशाल हृदय बादशाह जो सब धर्मों का सम्मान करता था, सुअरों और कुत्तों को देखने जाना एक धार्मिक कार्य समझता हो ?"

स्मिथ का मत- डॉ. स्मिथ ने भी अकबर के इस कृत्य की कटु आलोचना की है। वह लिखता है, 'दीन-ए-इलाही अकबर की बुद्धिमत्ता का नहीं, बल्कि उसकी मूर्खता का प्रतीक था।' हम डॉ. स्मिथ के इस कटु कथन से सहमत नहीं हैं, क्योंकि उसने भी अपना मत बदायूँनी के लेखों के आधार पर प्रकट किया है।

दीन-ए-इलाही कभी भी सर्वप्रिय लोक धर्म और राज-धर्म नहीं बन सका। यह इसके प्रवर्तक अकबर की मृत्यु के पश्चात् समाप्त सा हो गया और धीरे-धीरे इसका अस्तित्व भी लुप्त हो गया। पर फिर भी दीन-ए-इलाही उन शक्तिशाली तत्वों में से एक तो था ही, जिसने सम्राट के चारों ओर महानता और आध्यात्मिकता का प्रभा-मण्डल सृजन कर उसके अस्तित्व की महत्ता में वृद्धि की।

अकबर की शासन व्यवस्था

(अ) केन्द्रीय शासन– अकबर की केन्द्रीय शासन-व्यवस्था[1] को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत विभक्त किया जा सकता है :

अकबर की शासन-व्यवस्था

अ. केन्द्रीय शासन–
  1. सम्राट
  2. मंत्रि-परिषद
ब. प्रान्तीय शासन
स. सरकारों (जिलों) का शासन
द. सैनिक व्यवस्था
य. न्याय-व्यवस्था
र. भूमि-व्यवस्था
ल. गुप्तचर तथा डाक-विभाग
व. पुलिस-व्यवस्था

(1) सम्राट– सम्राट शासन का केन्द्र बिन्दु था और शासन की समस्त सत्ता उसी में निहित थी। वही सेना का सर्वोच्च अधिकारी था। वह न्याय तथा धर्म सम्बन्धी मामलों का आदि स्रोत भी था। अकबर अपनी प्रजा का बहुत ध्यान रखता था। वह राज्य कार्यों के लिये दिन में तीन बार दरबार में उपस्थित होता था। सूर्योदय के समय वह प्रजा को झरोखे से दर्शन देता था तथा प्रत्येक व्यक्ति की फरियाद सुनता था। इसके उपरान्त साढ़े चार घण्टे तक वह 'दीवान-ए-आम' में बैठकर कार्य करता था तथा रात्रि में 'दीवान-ए-खास' में अपने मन्त्रियों तथा परामर्शदाताओं के साथ विदेश तथा शासन सम्बन्धी मामलों पर विचार करता था। इस प्रकार वह शासन कार्यों में सोलह घण्टे व्यतीत करता था।

(2) मंत्रि परिषद– शासन सम्बन्धी मामलों में परामर्श देने के लिए मुगल शासन में मंत्रिपरिषद की भी व्यवस्था थी। परन्तु सम्राट मन्त्रि-परिषद की सलाह मानने के लिए बाध्य नहीं था। वह प्राय: गंभीर विषयों पर उससे परामर्श लिया करता था। मंत्रीगण सम्राट के प्रति उत्तरदायी थे। मुगलकाल की मन्त्रि-परिषद आधुनिक काल की मन्त्रि-परिषद के रूप में संगठित नहीं थी।

प्रमुख मंत्री तथा उनके विभाग– बाबर से अकबर तक केन्द्रीय सरकार के चार विभाग थे। औरंगजेब के शासन काल में विभागों की संख्या 6 कर दी गई और उत्तरकालीन शासकों के समय उनकी संख्या बढ़ाकर आठ कर दी गई। प्रमुख मंत्री तथा उनके विभाग इस प्रकार थे :

(1) दीवान अथवा प्रधानमन्त्री– मुगल काल में प्रधानमन्त्री की पदवी वकील थी। उसके अधिकार में कोष तथा राजस्व विभाग रहता था। वह सम्राट तथा अन्य पदाधिकारियों के बीच मध्यस्थ का काम करता था। सम्राट के अनुपस्थित रहने पर वह उसकी जगह कार्य करता था। समस्त वित्त-सम्बन्धी पत्र तथा युद्ध-क्षेत्र-सम्बन्धी पत्र उसके पास आते थे। उसके अधीन दो सहायक मंत्री-दीवान-ए-खालसा तथा दीवान-ए-तान भी होते थे।

(2) पीर सामाँ– शाही राजमहल, हरम, रसोई आदि के प्रबन्ध का दायित्व पीर सामाँ पर होता था। इस पद पर अति विश्वसनीय व्यक्ति की ही नियुक्ति की जाती थी।

(3) मीरबख्शी– मीरबख्शी के अधीन सैनिकों का वेतन तथा जमा-खर्च विभाग था। उसी के विभाग द्वारा मनसबों की नियुक्तियाँ होती थीं। वह मनसबदारों के अधीन रहने वाले सैनिकों का निरीक्षण करता था। उसके पास एक रजिस्टर रहता था जिससे समस्त मनसबदारों के अधीन रहने वाले सैनिकों की निर्दिष्ट संख्या लिखी रहती थी वह मनसबदारों के वेतन का भी वितरण करता था।

(4) काजी-उल्-कजात– न्याय-विभाग का प्रधान काजी-उल्-कजात होता था, जो प्रधान काजी भी कहलाता था। उसका न्यायालय न्याय का सबसे बड़ा न्यायालय था। वह प्रत्येक

1. अकबर द्वारा प्रतिपादित केन्द्रीय शासन-व्यवस्था न्यूनाधिक परिवर्तनों के साथ समस्त मुगल काल में चलती रही।

बुधवार को अपनी कचहरी करता था। वह प्रान्त, जिला तथा नगरों के न्यायाधीशों की नियुक्ति करता था।

(5) सद्र-उल्-सदूर– सद्र-उल्-सदूर के अधीन धन-सम्पत्ति निर्धारण तथा दातव्य विभाग था। इसका प्रमुख कार्य दान की भूमि और सम्पत्ति का निर्णय तथा निरीक्षण करना था। वह विद्वानों, मुल्लाओं तथा साधु-संतों को जागीर दिया करता था।

(6) मुहतसिब– मुहतसिब के अधीन जनता का सदाचार निरीक्षण विभाग था। वह मुस्लिम कानून के अनुसार जनता के नैतिक आचरण को उन्नत करता था। उसका काम खींची गई शराब अथवा उत्तेजक जौ की शराब और मादक द्रव्यों का पीना, जुए खेलना तथा कुछ विशेष प्रकार के मैथुनों को रोकना होता था। वह उन मुसलमानों को दण्ड देता था जो इस्लाम धर्म के विरुद्ध विचार रखते थे या पैगम्बर में अविश्वास करते थे और पाँचों नमाज और रोजों का त्याग करते थे। औरंगजेब के शासन-काल में उनका कार्य हिन्दुओं के मन्दिरों को तुड़वाना था।

(7) मीरआतिश– मीरआतिश के अधीन तोपखाना विभाग था। इसको दरोगा-ए-तोपख़ाना भी कहते थे। इसके अधिकार में गढ़ तोड़ने वाली तोपों से लेकर छोटी-छोटी बन्दूकें थीं।

(8) दरोगा-ए-डाक– डाक चौकी के दरोगा के अधीन संवाद, समाचार तथा डाक विभाग था। इसके अधिकार में समाचार-लेखक, गुप्तचर और संदेशवाहक होते थे, जिनकी नियुक्ति समस्त साम्राज्य में की जाती थी। इन लोगों का कार्य अपने-अपने क्षेत्रों की प्रमुख घटनाओं की सूचना भेजना था।

(ब) प्रान्तीय शासन– शासन की सुविधा के लिए समस्त मुगल साम्राज्य प्रान्तों में विभक्त था। अकबर के शासन-काल में प्रान्तों की संख्या 15 थी। औरंगजेब के काल में इनकी संख्या बढ़कर 21 हो गई थी। प्रान्तों की शासन व्यवस्था की रूपरेखा केन्द्रीय शासन के समान थी। प्रान्त के प्रमुख पदाधिकारियों के नाम इस प्रकार हैं :

(1) सूबेदार– प्रत्येक प्रान्त का प्रधान पदाधिकारी सूबेदार होता था। अकबर के शासन-काल में उसको सिपहसालार कहते थे किन्तु उसके उत्तराधिकारियों के काल में वह सूबेदार अथवा नाजिम कहलता था। उसका प्रमुख कार्य अपने प्रान्त में शान्ति और व्यवस्था का रखना, राजकीय आज्ञाओं का पालन करवाना तथा राज-करों के वसूल करने में सहायता देना होता था। वह प्रान्त की समस्त घटनाओं से सम्राट को अवगत कराता रहता था। उसे न्याय का भी कार्य करना पड़ता था। आवश्यकतानुसार वह सम्राट को सैनिक सहायता प्रदान करता था।

(2) दीवान– प्रान्त का दूसरा पदाधिकारी दीवान होता था। उसका प्रमुख कार्य कर वसूली का प्रबन्ध करना, प्रान्तों में कर लगाना, करों के उगाहने की व्यवस्था करना तथा कर वसूल करने वाले कर्मचारियों की नियुक्ति करना आदि था। मालगुजारी सम्बन्धी मुकदमा का भी वह निर्णय करता था। प्रान्त का खजाना उसी के अधीन होता था।

(3) बख्शी– यह सेनाविभाग का अध्यक्ष होता था। उसका प्रमुख कार्य सैनिकों तथा मनसबदारी का निरीक्षण करना तथा सैनिकों का वेतन देना था।

(4) काजी तथा सद्र– इन दोनों पदों पर एक ही व्यक्ति कार्य करता था। वह सद्र उल-सदूर के अन्तर्गत कार्य करता था।

(5) आमिल– इस पदाधिकारी का प्रमुख कार्य राज-कर को राजकोष में जमा करना था। इसके अतिरिक्त वह भूमि, कृषि तथा व्यापार आदि की भी देखभाल करता था।

(स) सरकारों (जिलों) का शासन– प्रत्येक प्रान्त सरकारों अथवा जिलों में बँटा हुआ था। सरकार का सबसे बड़ा अधिकारी फ़ौजदार कहलाता था। वह सेना और माल दोनों पदाधिकारी था। उसको सूबेदार के अन्तर्गत रहकर उसके आदेशों के अनुसार कार्य करना पड़ता था। जिले

में शान्ति एवं व्यवस्था रखना उसका प्रमुख कार्य था।

परगनों का शासन– प्रत्येक सरकार (जिला) परगनों में विभक्त थी। प्रत्येक परगना में एक शिकदार, एक आमिल, एक फोतदार तथा कुछ कारकुन (क्लर्क) होते थे। शिकदार परगना का सबसे बड़ा अधिकारी होता था। उसका कार्य परगनों में शान्ति और व्यवस्था रखना होता था। आमिल का कार्य परगना का लगान वसूल करना था तथा फोतदार परगना के खजाने का अधिकारी होता था।

नगरों का शासन– नगर का प्रबन्धक कोतवाल होता था। वह नगर की पुलिस का प्रधान था। उसकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाती थी। उसके मुख्य कार्य निम्नलिखित थे :

(क) नगर की रक्षा करना,
(ख) बाजार-भाव पर नियन्त्रण रखना,
(ग) लावारिसों की सम्पत्ति की उचित व्यवस्था करना,
(घ) जनता के चरित्र को उन्नत करना तथा अपराधों को रोकना,
(ङ) सामाजिक बुराइयों को दूर करना।
(च) श्मशान, कब्रिस्तान तथा बूचड़खानों आदि का प्रबन्ध करना,
(छ) नगर की सफाई की व्यवस्था करना,
(ज) चोरों का पता लगाना।

इन कार्यों को पूरा करने के लिए उसे पुलिस तथा गुप्तचर-विभाग का सहयोग प्राप्त था।

ग्राम-शासन– मुगल शासन व्यवस्था में गाँव प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थे। गाँव का मुख्य अधिकारी 'मुकद्दम' कहलाता था। वह गाँव का एक सम्मानित व्यक्ति होता था। राजकीय करों की वसूली में वह कर्मचारियों की मदद करता था। गाँव की शान्ति-व्यवस्था तथा छोटे-छोटे झगड़ों का निपटारा वह स्वयं करता था। गाँव के अन्य कर्मचारियों में पटवारी और थानेदार मुख्य थे।

(द) सैनिक व्यवस्था– अकबर की सेना में कितने सैनिक थे, यह प्रश्न बड़ा विवादास्पद है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि उसकी सेना में कम से कम चार लाख सैनिक थे, क्योंकि हाकिन्स के अनुसार जहाँगीर की सेना में तीन-चार लाख सैनिक थे। अतः अकबर की सेना से सैनिकों की भी यही संख्या रही होगी। 'आइन-ए-अकबरी' में अकबर की सेना की कुल संख्या 44 लाख दी हुई है।

(अ) सेना के विभिन्न अंग– समस्त सेना पाँच अंगों में विभक्त थी :

(1) पैदल सेना– पैदल सेना बहुत महत्वपूर्ण नहीं थी। आइन-ए-अकबरी में लिखा है कि अकबर की पैदल सेना में 12 हजार बन्दूकची और एक लाख तलवारधारी थे।

(2) अश्वारोही सेना– इस सेना का विशेष महत्व था। अश्वारोही दो प्रकार के थे :

(i) वरगीरि– इनको सेना का समस्त सामान सरकार की ओर से मिलता था।

(ii) सिलेदार– इनके अपने अस्त्र तथा घोड़े होते थे। अकबर ने घोड़ों को दगवाने तथा अश्वारोहियों की हुलिया लिखाने की पद्धति पर बहुत जोर दिया था।

(3) तोपखाना– अकबर के पास तोपखाना भी था। इसके पिता और पितामह ने भी युद्धों में तोपों का प्रयोग किया था। तोपखाना में विदेशियों की संख्या बहुत अधिक थी। अकबर के उत्तराधिकारियों ने भी तोपखाना की उन्नति की ओर बहुत ध्यान दिया। तोपखाना का प्रधान 'दरोगा-ए-तोपखाना' कहलाता था।

(4) हस्ति सेना– मुगलों के पास हाथियों की सेना थी। ये युद्ध-सामग्री ढोने के कार्य में प्रयोग किये जाते थे। अकबर की हस्ति सेना में 5,000 प्रशिक्षित हाथी थे।

(5) नौसेना– मुगलों की नौ सेना उन्नत नहीं थी, यद्यपि अकबर ने इस ओर विशेष ध्यान दिया। उसने बड़ी-बड़ी नावों का निर्माण करवाया था और उन पर हल्की तोपें लगवायी थीं।

(ब) सेना के विभिन्न प्रकार– अकबर के शासन-काल में पाँच विभिन्न प्रकार की सेनाएँ थीं। उनका विवरण इस प्रकार है :

(1) स्थायी सेना– यह सेना सदैव सम्राट के साथ रहती थी। इस सेना का खर्च शाही राजकोष से होता था। कुछ इतिहासकारों की धारणा है कि स्थायी सेना का आकार बहुत छोटा था। किन्तु हाकिन्स ने जहाँगीर की स्थायी सेना में 3-4 लाख सैनिकों का उल्लेख किया है। इसी के आधार पर अनुमान किया जाता है कि अकबर की स्थायी सेना में भी इतने ही सैनिक रहे होंगे।

(2) अधीन्स्थ राजाओं की सेना– जिन राजाओं ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी, उन्हें अपनी-अपनी सेनाओं के साथ आवश्यकतानुसार सम्राट की सहायता करनी पड़ती थी।

(3) अहदी सेना– इस सेना के सैनिकों की भरती स्वयं सम्राट करता था। विश्वासपात्र कुलीन लोग ही इसमें भर्ती किये जाते थे और अन्य सैनिक की अपेक्षा इन्हें अधिक वेतन मिलता था। अहदी सैनिक सम्राट के अंगरक्षक होते थे।

(4) दाखिली सेना– इस सेना का कार्य आन्तरिक शान्ति तथा सुव्यवस्था बनाये रखना था। इसकी भरती राज्य की ओर से होती थी। इसमें घुड़सवार तथा पैदल सैनिक होते थे।

(5) मनसबदारों की सेना– इस सेना का प्रमुख आधार मनसबदारी प्रथा थी। साधारणतः मनसब का अर्थ पद अथवा प्रतिष्ठा है। मनसबदारों की सेवा का संगठन पद या दर्जे के आधार पर किया गया था। अकबर के समय मनसबदारों की 33 श्रेणियाँ थी। सबसे नीचे का मनसब 10 का तथा सबसे ऊँचे का मनसब 12,000 का होता था। 5,000 के ऊपर के मनसब राजकुमारों के लिए ही सुरक्षित रहते थे, किन्तु कुछ समय के उपरान्त कुछ सरदारों को 7,000 की मनसबदारी राजकीय सेवाओं का ध्यान रखते हुए दे दी गई थी। जहाँगीर और शाहजहाँ के काल में 8,000 तक की मनसबदारी मिल सकती थी। उत्तरकालीन मुगल शासकों के शासन काल में इसकी सीमा 50,000 तक पहुँच गई थी। कुछ मनसबदारों को जात तथा सवार के पद भी मिलते थे। जात मनसबदार का व्यक्तिगत पद था जिसके साथ सवारों की एक टुकड़ी सम्मिलित कर ली जाती थी। सवार पद के मनसबदार को घुड़सवारों की निश्चित संख्या रखनी पड़ती थी। प्रत्येक मनसबदार को अपने पद के अनुसार सैनिकों, घोड़ों, हाथियों, ऊँटों, खच्चरों ओर गाड़ियों की एक निश्चत संख्या रखनी पड़ती थी। मनसबदारी का पद वंशानुगत नहीं था। मनसबदार के पुत्रों को उनकी योग्यतानुसार पद प्राप्त होता था।

(य) न्याय-व्यवस्था– सम्पूर्ण सामाज्य में सबसे बड़ा न्यायाधीश सम्राट था। सम्राट के पश्चात् न्यायाधीश 'काजी-उल-कजात' अर्थात् काजी होता था। उसके नीचे बहुत से काजी होते थे। प्रत्येक न्यायालय में तीन पदाधिकारी-काजी, मुफ़्ती तथा मीरअदल थे। काजी का कार्य मामले की जाँच करना, मुफ्ती का कार्य कानून की व्याख्या करना तथा मीरअदल का कार्य फैसला सुनाना था। दण्ड-विधान कठोर था। राजद्रोह तथा हत्या करने वालों को प्राणदण्ड दिया जाता था। मुकदमों का फैसला शरीयत के अनुसार होता था। अकबर के शासन काल में हिन्दुओं के मुकदमों का निर्णय करने के लिए ब्राह्मण नियुक्त किये गये थे।

(र) भूमि-व्यवस्था– भूमिकर राजकीय आय का प्रधान साधन था। बाबर और हुमायूँ ने लगान व्यवस्था की प्राचीन प्रथा ही अपनायी थी। शेरशाह ने अपने अल्पकाल के शासन में भूमि की पैमाइश कराई थी और उपज के औसत का ध्यान रख लगान की दर निश्चित की थीं,

किन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त उसकी यह व्यवस्था समाप्त हो गई। अकबर के राज-सिंहासन पर आसीन होने के पूर्व भूमि की तीन श्रेणियाँ थीं- (1) खलासा (राज्य-भूमि) (, (2) जागीर और (3) सयूरगल (दान दी हुई मुवाफी की भूमि)। अकबर ने जागीर-प्रथा को समाप्त कर दिया और मालगुजारी विभाग को उन्नत करने की ओर ध्यान दिया। उसको इस कार्य में कई अनुभवी व्यक्तियों की सेवाएँ उपलब्ध हुई। सर्वप्रथम जिस समय अब्दुल मजीद दीवान थे उस समय प्रान्तीय सरकारों ने अनुमान द्वारा भूमि-कर निश्चित करने का प्रयास किया किन्तु इससे कोई विशेष लाभ न हुआ। इसके बाद 1564 में मुजफ्फर खाँ दीवान नियुक्त हुआ और राजा टोडरमल उसके सहायक नियुक्त हुए तो भूमि-कर को निश्चित करने का प्रयास किया। उसके प्रयत्नों के फलस्वरूप इस बार भूमि-कर नकदी में वसूल किया जाने लगा, किन्तु इससे भी कोई विशेष लाभ नहीं हुआ।

1573 में गुजरात विजय के बाद टोडरमल को वहाँ भूमि-व्यवस्था के लिये भेजा गया। उसने समस्त भूमि की पैमाइश कराई और क्षेत्रफल तथा उपज के अनुसार भूमि-कर निर्धारित किया। इस नई व्यवस्था का प्रयोग बंगाल और बिहार के अतिरिक्त सम्पूर्ण अधिकृत साम्राज्य में किया गया। सम्पूर्ण साम्राज्य 182 परगनों में विभाजित किया गया। प्रत्येक परगना का अधिकारी करोड़ी कहलाता था। इन पदाधिकारियों को अनुचित लाभ उठाने पर दण्ड देने की व्यवस्था की गई थी।

टोडरमल के सुधार- 1582 में राजा टोडरमल की नियुक्ति 'दीवान-ए-अशरफ' के पद पर हुई। उसने अपने अनुभव के आधार पर भूमि व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान दिया। उसके सम्मुख भूमि-कर व्यवस्था की निम्न पाँच समस्याएँ थीं :

(1) भूमि की नाप,
(2) भूमि का वर्गीकरण,
(3) प्रत्येक बीघे की औसत उपज का ज्ञान प्राप्त करना,
(4) बीघे की उपज में राज्य के भाग को निश्चित करना,
(5) लगान की दर को निश्चित करना।

उपर्युक्त पाँचों समस्याओं का समाधान निम्न उपायों द्वारा किया गया-

(1) भूमि की नाप- अकबर के पूर्ववर्ती शासकों के समय में भूमि की नाप सन की रस्सी से होती थी, जो भींग जाने पर सिकुड़ जाती थी और सूख जाने पर बढ़ जाती थी। फलतः खेतों की नाप-जोख में बड़ी गड़बड़ी हुआ करती थी। टोडरमल ने रस्सी के स्थान पर बाँसों की जरीब की व्यवस्था की और उनको लोहे के छल्लों में बँधवा दिया ताकि उसमें घटने-बढ़ने की संभावना न रहे। खेतों की नाप पटवारी के कागजों में अंकित कर दी गई।

(2) भूमि का वर्गीकरण- कृषि योग्य सम्पूर्ण भूमि का वर्गीकरण निम्न चार वर्गों में किया गया था :

(अ) पोलज- प्रथम वर्ग के अन्तर्गत की भूमि पोलज कहलाती थी। यह भूमि प्रतिवर्ष जोती-बोई जाती थी और वर्ष में दो फसल तैयार की जाती थी।

(ब) परौती- द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत की भूमि परौती कहलाती थी। यह भूमि पोलज की भाँति उर्वरा नहीं होती थी। इस पर दो-तीन वर्ष तक लगातार खेती करने के बाद एक वर्ष बाद एक वर्ष के लिए पुनः उर्वरा होने के लिए परती छोड़ दिया जाता था।

(स) चाचर- तृतीय वर्ग के अन्तर्गत की भूमि चाचर कहलाती थी। इसमें परौती से भी कम उर्वरा शक्ति होती थी। इस भूमि का तीन या चार वर्ष तक के लिए परती छोड़ दिया जाता था।

(द) बंजर- चतुर्थ वर्ग के अन्तर्गत की भूमि बंजर कहलाती थी। इसकी उर्वरा-शक्ति

बहुत कम होती थी। इस भूमि को तीन या चार वर्ष तक के लिए परती छोड़ दिया जाता था।

(3) औसत उपज का निर्धारण– उपर्युक्त तीन वर्गों की भूमि तीन भागों में और विभक्त की जाती थी। इन तीनों वर्गों की भूमि की औसत पैदावार निकाली जाती थी जो प्रत्येक प्रकार की पैदावार मान ली जाती थी। पिछले दस वर्षों की पैदावार के आधार पर प्रत्येक फसल की प्रति बीघा पैदावार का औसत निकाल लिया जाता था।

(4) राज्य का भाग निश्चित करना– औसत उपज का निर्धारण करने के उपरान्त राज्य उस औसत का एक-तिहाई भाग लगान के रूप में वसूल करता था।

(5) राज्य-कर का नकद मूल्य निश्चित करना– राज्य का भाग निश्चित करने के पश्चात् लगान वस्तु रूप में न लेकर नकद रुपयों में लिया जाता था। पिछले दस वर्षों के भाव के औसत के अनुसार अनाज का मूल्य निश्चित कर लगान नकद रुपये के रूप में तय कर दिया गया जिसका विवरण पटवारी के कागजों में अंकित कर दिया जाता था। विशेष परिस्थितियों में ही वस्तुओं के रूप में भूमि कर स्वीकार कर लिया जाता था।

टोडरमल की यह दससाला भूमि व्यवस्था जाब्ता-प्रथा कहलाती थी। यह प्रथा बिहार, इलाहाबाद, अवध, आगरा, दिल्ली, मालवा, मुल्तान और लाहौर के प्रान्तों में प्रचलित थी। अजमेर और गुजरात के कुछ भागों में भी इसका प्रचलन था। इस व्यवस्था में प्रत्येक खेत के लगान में उसमें बोये जाने वाले अनाज की किस्म के अनुसार एक विशेष रकम अदा करनी पड़ती थी। इस प्रथा का निर्धारण प्रति दसवें वर्ष होता था। इसके अतिरिक्त दो अन्य प्रथाएँ-गल्लाबख्श और नसक भी प्रचलित थीं। गल्लाबख्श में किसान गल्ले की बटाई के समय गल्ला देता था। नसक प्रथा रैयतवाड़ी की प्रथा थी। उसमें प्रजा सीधे सरकार को लगान अदा करती थी।

(6) माल विभाग के पदाधिकारी– लगान वसूल करने के लिए टोडरमल ने कुछ राजकीय कर्मचारियों की नियुक्ति की। उसने मालगुजारी वसूल करने के लिए 'अमीन' नियुक्त किये और इस कार्य में सहायता करने के लिए 'वितिक्ची', 'पोद्दार', 'कानूनगो', 'पटवारी' तथा 'मुकद्दम' आदि वैतानिक कर्मचारी नियुक्त किये। राज्य की ओर से कर्मचारियों को आदेश था कि मालगुजारी की वसूली में प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट न दिया जाय। किसान स्वयं अपनी लगान राजकोष में जमा कर सकता था। मालगुजारी की वसूली के बाद किसान को पटवारी द्वारा एक रसीद दी जाती थी जिसमें लगान की रकम, खेतों का क्षेत्रफल तथा किसान का नाम, ग्राम आदि का विवरण लिखा रहता था।

कृषक-वर्ग पर प्रभाव– इस भूमि व्यवस्था से कृषक-वर्ग को निम्नलिखित लाभ हुआ :

(1) किसान और राज्य दोनों को लाभ हुआ। कृषकों की आर्थिक अवस्था पहले से बहुत अच्छी हो गई।

(2) राज्य की आय निश्चित हो गई, उसमें धोखे का कोई स्थान न रह गया।

(3) किसानों का भूमि पर स्वामित्व स्थापित हो गया।

(4) उन्हें अनेक करों से मुक्ति मिल गई।

(5) उनको अपनी मालगुजारी मालूम हो गई। फलतः कर्मचारी को उसे अधिक वसूल करने का अधिकार न रहा।

(6) दुर्भिक्ष आदि के समय मालगुजारी में कमी कर दी जाती थी और 'तकाबी' आदि की भी व्यवस्था कर दी जाती थी।

(7) किसान सीधे अपना लगान राजकोष में जमा कर सकता था।

(8) प्रत्येक फसल पर कर निर्धारित था। इससे किसान को यह मालूम रहता था कि अमुक फसल बोने पर उसे इतना कर देना पड़ेगा।

(ल) गुप्तचर तथा डाक-विभाग– अकबर ने साम्राज्य की विशेष घटनाओं की सूचना प्राप्त करने के लिए गुप्तचर-विभाग की स्थापना की थी। यह व्यवस्था बड़े सुचारु रूप से चलती थी। अकबर ने डाक की भी अच्छी व्यवस्था की थी। डाक ले जाने के लिए सड़कों के किनारे चौकियों का निर्माण कराया जिनमें घोड़े रखे जाते थे। एक चौकी से दूसरी चौकी तक 6-7 मील का फासला तय करके हरकारा डाक ले जाता था, जहाँ दूसरा हरकारा मिलता था। इस प्रकार डाक चौबीस घण्टे चलती थी। एक निश्चत दूरी के बाद घोड़े बदलने की व्यवस्था रहती थी।

(व) पुलिस-व्यवस्था– साम्राज्य में आन्तरिक शान्ति बनाये रखने के लिए पुलिस का संगठन किया गया था। पुलिस को तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया था। प्रथम, नगर पुलिस थी जिसका प्रधान कोतवाल होता था। द्वितीय, जिला पुलिस थी जिसका प्रधान पदाधिकारी फौजदार था। तृतीय, ग्राम पुलिस थी। ग्राम की सुरक्षा का उत्तरदायित्व मुखिया पर होता था। डॉ. आशीर्वादीलाल के शब्दों में, "अकबर की संरक्षकता में पुलिस का प्रबन्ध अत्यन्त सुन्दर, सुदृढ़ एवं उच्चकोटि का था जिससे जनता में शान्ति और अनुशासन की समुचित व्यवस्था रही।"

निस्सन्देह अकबर ने भारत में एक सुसंगठित शासन-प्रणाली की स्थापना की। उसकी प्रजा सुखी और सम्पन्न थी। साम्राज्य की आर्थिक दशा बड़ी सुदृढ़ थी। डॉ. स्मिथ के शब्दों में, "अकबर अपने समय में विश्व का सबसे धनी सम्राट था।"

अकबर राष्ट्रीय सम्राट

"राष्ट्र-निर्माता उस व्यक्ति को कहते हैं जो किसी जन-समूह में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक एकता उत्पन्न कर उसे एकता के प्रबल सूत्र में बाँध देता हो, जो उनकी भिन्नता को दूर कर उसमें साम्य स्थापित करे और उन्हें एकता के प्रबल सूत्र में आबद्ध कर दे।" अकबर को एक राष्ट्रीय सम्राट माना जाता है। वह भारत जैसे विशाल देश का शासक था जिसमें विभिन्न प्रकार की जातियाँ निवास करती थीं और विभिन्न धर्मों को मानती थीं। इन जातियों में राष्ट्रीय एकता का सर्वथा अभाव था। हिन्दू और मुसलमान तो एक दूसरे के कट्टर शत्रु थे। अकबर ने यह भली-भाँति समझ लिया था कि हिन्दुओं और मुसलमानों में मैत्री-सम्बन्ध स्थापित किये बिना वह भारत को एक प्रबल राष्ट्र नहीं बना सकता। अतः उसने भारत में राष्ट्रीय राज्य स्थापित करने के लिये जो प्रयास किए, वे इस प्रकार थे :

अकबर राष्ट्रीय सम्राट

1. राजनीतिक एकता
2. धार्मिक एकता
3. सामाजिक एकता
4. सांस्कृतिक एकता
5. आर्थिक एकता

(1) राजनीतिक एकता– अकबर ने प्रारम्भ से ही भारत में राजनीतिक एकता स्थापित करने का प्रयास किया। उसने सम्पूर्ण उत्तरी भारत तथा दक्षिणी भारत का अधिकांश भाग जीतकर एक शासन के अन्तर्गत संगठित किया। सम्पूर्ण अधिकृत साम्राज्य में एक ही प्रकार की शासन-व्यवस्था स्थापित की। उसने हिन्दुओं को भी उनकी योग्यतानुसार प्रशासन में उच्च-पद प्रदान किये। उसने युद्ध कर्मी राजपूत जाति से मित्रता स्थापित की और उससे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये। संक्षेप में, समस्त साम्राज्य के लिये एक कानून, एक प्रकार की न्याय-व्यवस्था नीति अपनाकर अकबर ने राजनीतिक क्षेत्र में एकता उत्पन्न करने का प्रयास किया।

(2) धार्मिक एकता– भारत को एक प्रबल राष्ट्र बनाने के लिए दूसरी आवश्यकता धार्मिक एकता की थी। अकबर ने धार्मिक एकता के लिए प्रशंसनीय प्रयास किया। उसने हिन्दुओं को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान कर दी और उनके मंदिरों तथा उनकी मूर्ति को तुड़वाना बन्द करवा दिया। उसने जजिया तथा अन्य धार्मिक करों को समाप्त कर दिया जो हिन्दुओं से उगाहे जाते थे। उसने फतेहपुर सीकरी में धार्मिक वाद-विवाद के लिए एक 'इबादतखाना' का निर्माण करवाया

जिसमें सभी धर्मों के अनुयायियों को भाग लेने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। वह सभी धर्मों को आदर की दृष्टि से देखता था। धार्मिक एकता के स्वप्न को साकार करने के लिए उसने 'दीन-ए-इलाही' धर्म की स्थापना की जिसमें सभी धर्मों के मूल सिद्धान्तों का समन्वय था। धार्मिक एकता स्थापित करने में अकबर के ये विचार बहुत सहायक हुए कि 'सभी धर्मों में बुद्धिमान लोग तथा स्वतन्त्र विचारक होते हैं। सत्य सभी धर्मों में है। अतः यह समझना कि सच्चाई सिर्फ इस्लाम धर्म में ही है, बहुत बड़ी भूल है।' इस धार्मिक एकता के प्रयास ने सच्चे अर्थों में अकबर को एक राष्ट्रीय सम्राट बना दिया।

(3) सामाजिक एकता– भारत को एक राष्ट्रीय सूत्र में बाँधने के लिए तीसरी आवश्यकता सामाजिक एकता की थी। अकबर ने अनेक सामाजिक सुधार प्रस्तुत करके सामाजिक एकता को स्थापित करने के लिए प्रयास किया। उसने हिन्दुओं की अनेक सामाजिक कुरीतियों तथा असुविधाओं को दूर कर उन्हें मुसलमानों का समकक्ष बना दिया। जजिया तथा अन्य धार्मिक करों को हटाकर, सती प्रथा पर प्रतिबन्ध लगाकर, अन्तर्जातीय विवाहों तथा विधवा विवाह को प्रोत्साहन देकर, हिन्दुओं को दरबार में उच्च-पद प्रदान कर अकबर ने अनेक हिन्दू रीति-रिवाजों को अपना लिया और हिन्दुओं के त्योहारों में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। वह हिन्दुओं की भाँति वस्त्र पहनने लगा तथा माथे में तिलक और गले में माला धारण करने लगा। इस प्रकार अकबर ने सामाजिक एकता स्थापित करने का सतत् प्रयास किया।

(4) सांस्कृतिक एकता– भारत में राष्ट्रीय एकता बनाने के लिए चौथी आवश्यकता सांस्कृतिक एकता की थी। अकबर ने इस ओर भी श्लाघनीय प्रयास किया। प्राचीन धर्म-ग्रन्थों, वेद-पुराण तथा विभिन्न संस्कृत ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद और फारसी के ग्रंथों का संस्कृत में अनुवाद कराया। उसने स्थापत्य कला, चित्रकला तथा संगीत कला का राष्ट्रीयकरण किया। उसने स्वयं जितनी इमारतों का निर्माण कराया उनमें से अधिकतर हिन्दुओं और मुसलमानों की मिश्रित शैली में बनी हैं। मुस्लिम चित्रकारों द्वारा उसने हिन्दुओं की पौराणिक कथाओं के चित्र बनवाये। उसने अपनी राज-सभा में वैष्णव संगीत को प्रश्रय दिया। इस प्रकार अकबर ने हिन्दुओं ओर मुसलमानों को एक दूसरे के सन्निकट लाने का प्रयास किया।

(5) आर्थिक एकता– भारत को प्रबल राष्ट्र बनाने के लिए पाँचवीं आवश्यकता आर्थिक एकता की थी। अकबर ने इस दिशा में भी प्रयास किया। व्यवसाय और व्यापार को नियंत्रित कर उसने देश की आर्थिक समृद्धि का मार्ग खोला। उसने राजा टोडरमल से देश की समस्त भूमि की नाप कराकर एक निश्चित लगान निर्धारित किया। उद्योग-धन्धों को भी उसने प्रोत्साहन दिया जिसके फलस्वरूप देश विकास एवं समृद्धि की चरम-सीमा पर पहुँचकर विदेशी यात्रियों और दूतों की आँखों में चकाचौंध पैदा करने लगा।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि अकबर एक महान् राष्ट्र-निर्माता था। एच.जी.वेल्स ने एक राष्ट्रनिर्माता के रूप में अकबर की प्रशंसा करते हुए लिखा है, "यह भारत का प्रथम सम्राट था, जिसने सबसे पहले यह निश्चय किया कि मेरा साम्राज्य न मुसलमानों का होगा, न हिन्दुओं का, न द्रविड़ों का, मेरा साम्राज्य भारतीय होगा।"

अकबर महान् सम्राट क्यों ?

अकबर की गणना न केवल भारत के इतिहास वरन् विश्व के इतिहास में महान् सम्राटों में की जाती है। भारत के मुसलमान शासकों में वही एक ऐसा सम्राट था जो अपनी प्रजा को पुत्रवत् मानता था। उसने ऐसी नीति अपनाई कि हिन्दू और मुसलमान पारस्परिक विद्वेष को भूलकर एक-दूसरे के सन्निकट आ गये। मुसलमानों के समान ही उसने हिन्दुओं को भी उच्च-पद प्रदान करके अपनी सहृदयता का परिचय दिया। उसके चरित्र की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

(1) शारीरिक गठन– अकबर का शारीरिक गठन बहुत प्रभावशाली था। उसके अंग-प्रत्यंग से राजत्व टपकता था।

जहाँगीर के शब्दों में– "वे बीच के कद के थे, या कुछ लम्बे कद की ओर थे। उनका रंग गेहुँआ था, उनकी आँखें और भौं काली थीं। वे सिंह के जैसे थे, उनकी छाती चौड़ी थी, और हाथ लम्बे। उनकी नाक के बाएँ मटर के दाने के आधे के बाराबर एक मसा था जो बड़ा सुन्दर लगता था। सामुद्रिक शास्त्रवेत्ता इसे चरम सौभाग्य और उन्नति का लक्षण मानते। उनकी आवाज ऊँची थी, जब वे बोलते तो बड़ी गंभीर ध्वनि होती। अपनी चाल-ढाल में वे साधारण मनुष्य न जान पड़ते, वरन् ऐसा जान पड़ता कि ईश्वर का प्रकाश ही प्रत्यक्ष हो गया है।"

अकबर महान् सम्राट क्यों?

1. शारीरिक गठन
2. शारीरिक शक्ति
3. वेश-भूषा तथा आहार
4. अकबर का स्वभाव
5. मानसिक योग्यता
6. महान् सेनानायक
7. महान् विजेता
8. महान् साम्राज्य-निर्माता
9. महान शासक
10. महान् राष्ट्र-निर्माता

(2) शारीरिक शक्ति– अकबर बड़ा शक्तिशाली तथा बलिष्ठ था। वह बड़े-बड़े मस्त हाथियों तथा उद्दण्ड घोड़ों को अपने वश में कर लेता था। बिना विश्राम किये लगातार घण्टों कार्य करने की उसमें अपूर्व क्षमता थी। घुड़सवारी में उसके तुल्य कोई नहीं था। ऐसा कहा जाता है कि अजमेर से आगरा की 384 किमी की दूरी उसने केवल 24 घण्टे में घोड़े से तय की थी। इसी प्रकार उसने फतेहपुर सीकरी से अहमदाबाद की 720 किमी की दूरी ग्यारह दिन घोड़े पर सवार होकर तय की थी।

(3) वेश-भूषा तथा आहार– वस्त्राभूषणों में वह मुगल सम्राटों के समान ही अनुसरण करता था। वह घुटनों तक लम्बा रेशमी अँगरखा पहनता था जिस पर सोने का काम किया रहता था। वह सिर पर बहुमूल्य मोतियों और रत्नों से अलंकृत एक पगड़ी धारण करता था। उसकी कमर में सदैव एक कटार लटकती रहती थी। उसके साथ सशस्त्र अंग-रक्षक रहते थे।

अकबर स्वल्पाहारी था। दिन में केवल एक बार भोजन करता था। हिन्दू रानियों के प्रभाव में आकर उसने गो-मांस, लहसुन और प्याज खाना छोड़ दिया था। वह इच्छानुसार परिमित मात्रा में मद्यपान भी करता था।

(4) अकबर का स्वभाव– अकबर का स्वभाव बड़ा ही स्नेहमय तथा अच्छा था। उसे इस बात का हार्दिक दुःख रहता था कि उसके पिता की मृत्यु पहले हो गई और उनकी सेवा नहीं कर सका। उसका व्यवहार अमीरों तथा सरदारों के साथ बड़ा सौहार्दपूर्ण था। उसे अहंकार और दंभ से घोर घृणा थी, परन्तु जब उसको क्रोध उत्पन्न होता था तब उसका क्रोध भयंकर रूप धारण कर लेता था और वह कठिन से कठिन दण्ड देने में भी नहीं हिचकता था। उसने अपने धाय भाई अदहम खाँ को महल की छत से फेंकवा दिया था। लेकिन उसका क्रोध अधिक समय तक न रहकर शीघ्र ही शांत हो जाता था। अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों के प्रति उसका व्यवहार बड़ा ही नम्र था। उसने अपने भाई मुहम्मद हकीम तथा पुत्र सलीम को कई बार क्षमा प्रदान किया। अपने अनन्य मित्र अबुल फजल तथा बीरबल की मृत्यु पर वह फूट-फूटकर रोया था। पादरी जैरोम जैवियर के अनुसार, "यह बड़े के साथ बड़ा तथा छोटे के साथ छोटा बन जाता था।"

(5) मानसिक योग्यता– निरक्षर होते हुए भी अकबर की मानसिक योग्यता बड़ी उच्चकोटि की थी। उसकी बुद्धि बड़ी प्रखर थी तथा स्मरण शक्ति इतनी तीव्र थी कि उसने सुनकर ही इतना अधिक ज्ञान प्राप्त कर लिया था कि अन्य व्यक्ति पढ़कर भी संभवतः उतना ज्ञान प्राप्त करने में अपने आपको असमर्थ पाता। विद्वानों के संसर्ग द्वारा अथवा पुस्तकें सुनकर उसने दर्शन-

शास्त्र, धर्मशास्त्र, इतिहास तथा राजनीति का अच्छी जानकारी प्राप्त कर ली थी। गंभीर विषय पर उसके सुझाव बड़े उच्चकोटि के होते थे। उसके सम्बन्ध में इतिहासकार फरिस्ता लिखता है, "यद्यपि अकबर पढ़ा-लिखा न था, किन्तु वह कभी-कभी कविताओं की रचना करता। वह इतिहासकारों तथा धर्मशास्त्रियों के ग्रन्थों से भलीभाँति परिचित था। उसका सम्पर्क एशिया के सामान्य साहित्य और विशेषतया सूफी विद्वानों के लेखों से विशेष रूप से था।"

(6) **महान् सेनानायक**– अकबर में एक महान् सेनापति के सभी गुण विद्यमान थे। उसमें असाधारण साहस, शौर्य और शारीरिक पराक्रम विद्यमान था। युद्ध के भीषणता पर तथा भयानक संकट आ जाने पर उसका धैर्य तनिक भी विचलित नहीं होता था। डॉ. आशीर्वादीलाल के शब्दों में, "उसमें एक मौलिक एवं अपूर्व संगठन-क्षमता तथा प्रभावशाली जनाकर्षक व्यक्तित्व था जिसके फलस्वरूप वह बड़ी सरलता से अपनी सेना को शासित कर पाता और युद्ध में विजय-श्री प्राप्त कर लेता था। यही कारण है कि जीवन भर उसकी विजय-पताका कभी नहीं झुकी।"

(7) **महान् विजेता**– अकबर एक महान् विजेता था। वह बड़ा ही महत्वाकांक्षी तथा साम्राज्यवादी सम्राट था। उसकी यही नीति थी कि शत्रु के आक्रमण का सामना करने की अपेक्षा स्वयं पहले उस पर आक्रमण कर देना श्रेयस्कर है। उसका समस्त जीवन अपने शत्रुओं से युद्ध करने तथा उन पर विजय प्राप्त करने में व्यतीत हुआ। उसका सिद्धान्त था, "शासक को सदा युद्धशील रहना चाहिए, अन्यथा उसके पड़ोसी उसके विरुद्ध विद्रोह का झण्डा उठाना आरम्भ कर देंगे। सैनिकों को रणक्षेत्र का अभ्यास बनाये रखना चाहिये अन्यथा इस प्राकृतिक शिक्षण के अभाव में वे स्वार्थरत और निकम्में हो जाते हैं।" पराजित अथवा आत्मसमर्पण करने वाले राजाओं के साथ वह उदारता का व्यवहार करता था।

(8) **महान् साम्राज्य-निर्माता**– जिस समय अकबर का राज्याभिषेक हुआ था उस समय उसके पास न कोई सिंहासन था और न कोई साम्राज्य। उसने अपने बाहु-बल तथा पराक्रम से एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की, जो पश्चिम में अफगानिस्तान से लेकर पूर्व में आसाम तक तथा उत्तर में कश्मीर से लेकर दक्षिण में बीजापुर और गोलकुण्डा की सरहद तक फैला हुआ था। इस विशाल साम्राज्य का निर्माता होने के कारण ही वह मुगल साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक माना जाता है। उसने अपने साम्राज्य की नींव ऐसे आदर्शों तथा सिद्धान्तों पर आधारित की कि उसके उत्तराधिकारियों के लिए वह बड़ा ही स्थायी तथा सबल साम्राज्य सिद्ध हुआ।

(9) **महान् शासक**– अकबर एक उच्च-कोटि का शासक था। यद्यपि सैद्धान्तिक दृष्टि से वह एक निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी शासक था, किन्तु व्यावहारिक रूप में वह विनम्र, सहानुभूतिपूर्ण, उदार, न्यायी तथा प्रजापालक था। शासन के मामलों में वह सदा बहुत सावधान रहता था। भूमि-व्यवस्था तथा सामाजिक सुधार उसकी प्रजावत्सलता की भावना के प्रतीक हैं। उसने एक ऐसे लौकिक शासन की स्थापना की, जिसमें सभी जाति, धर्म तथा वर्ग वालों को अपनी उन्नति का समान अवसर प्राप्त था। छत्रपति शिवाजी ने महान् शासक के रूप में अकबर की प्रशंसा करते हुए औरंगजेब को लिखा था– "अकबर ने इस बड़े राज्य को बावन बरस तक ऐसी सावधानी और उत्तमता से चलाया कि सब फिरकों के लोगों ने सुख और आनन्द पाया। सब पर उनकी समान कृपादृष्टि रहती थी। इसी सुलहकुल के बर्ताव के कारण सब लोगों ने एक मुँह उसे जगतगुरु की पदवी दी थी। इसी प्रभाव के कारण वे जिधर देखते थे, फतह उनके सामने आकर खड़ी हो जाती थी।" (सर यदुनाथ सरकार)

(10) **महान् राष्ट्र-निर्माता**– एक राष्ट्र-निर्माता के रूप में भी अकबर अत्यन्त महान् था। उसने भारत में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में एकता उत्पन्न कर उसे एक प्रबल राष्ट्र बनाने का प्रयास किया। राजनीतिक क्षेत्रों में उसने एक प्रकार

के कानून, एक प्रकार की न्याय-व्यवस्था की नीति अपनाई। सामाजिक क्षेत्र में उसने हिन्दुओं की अनेक सामाजिक कुरीतियों तथा असुविधाओं को दूर कर उन्हें मुसलमानों का समकक्षी बना दिया। धार्मिक क्षेत्र में उसने हिन्दुओं को पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान कर दी तथा सभी धर्मों का सार लेकर 'दीन-ए-इलाही' धर्म की स्थापना की। आर्थिक क्षेत्र में व्यवसाय और व्यापार को नियन्त्रित कर उसने देश की आर्थिक समृद्धि का मार्ग प्रशस्त किया। इसी प्रकार सांस्कृतिक क्षेत्र में उसने अपने प्राचीन धर्मगन्थों-वेद, पुराण तथा संस्कृत ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद कराया तथा स्थापत्य कला में उसने हिन्दुओं और मुसलमानों की मिश्रित शैली अपनाई। एच.जी.वेल्स ने एक महान् राष्ट्र-निर्माता के रूप में अकबर की प्रशंसा करते हुए लिखा है, "अकबर ही भारत का प्रथम सम्राट था, जिसने सबसे पहले यह निश्चय किया कि मेरा साम्राज्य न मुसलमानों का होगा, न हिन्दुओं का, न द्रविणों का, मेरा साम्राज्य भारतीय होगा।"

उपर्युक्त विवरण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि "अकबर अत्यन्त विवेकी, ज्ञानशील, नीतिज्ञ और साहसी शासक था जिसने शासन के आधार पर मूल सिद्धान्तों तक का परिवर्तन और परिवर्द्धन करके उसे अपने देश, काल और समाज के अनुरूप बना दिया।" अतः उसकी गणना न केवल भारत के वरन् विश्व के महान् सम्राटों में की जानी चाहिए।

अकबर के सम्बन्ध में इतिहासकारों के मत

इतिहासकारों ने अकबर की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। पाठकों की सुविधा के लिए कुछ इतिहासकारों के विचार निम्न पंक्तियों में उद्घृत किए जाते हैं :

"अकबर संसार के बड़े-बड़े नरपतियों में स्थान पाने का अधिकारी है। उसके चमत्कारी बुद्धि-बल, उसका दृढ़ चरित्र-बल और उसकी सफल राजनीतिक पटुता जिनके बल पर उसने एक छोटे तथा शक्तिहीन राज्य को अपने समय का संसार का बड़ा, सबसे अधिक शक्तिशाली और सबसे अधिक समृद्धिशाली साम्राज्य बना दिया।" —डॉ. ईश्वरीप्रसाद

"मुगलों में अकबर सबसे महान था और यदि मौर्यों के काल से नहीं तो कम-से-कम एक सहस्त्र वर्षों तक के भारतीय शासकों में वह सबसे महान् था।" —प्रो. के.टी.शाह

"वह भारत का भद्रतम सम्राट था। वह साम्राज्य का उच्च संस्थापक तथा संगठनकर्त्ता था। वह मुगल साम्राज्य के स्वर्ण-युग का प्रतिनिधित्व करता है।" —लेनपूल

"वह मनुष्यों का जन्मसिद्ध शासक था जिसकी गणना इतिहास के सर्वश्रेष्ठ शासकों में होना पूर्णतया न्याय-संगत है।" —विन्सेंट स्मिथ

"अकबर निस्सन्देह मध्यकालीन भारत के महानतम शासकों में से एक था। उसका तो युग ही महान् शासकों का युग था।" —वूल्जले हेग

"अकबर ऐतिहासिक भारत के उन महान् शासकों में एक था जिन्हें कभी भारत ने उत्पन्न किया हो। वही अपने युग का शिशु तथा जनक भी था।" — डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ (Important Dates & Events)

1. 1539 ई. – महाराणा प्रताप का जन्म।
2. 1542 ई. – अकबर का जन्म।
3. 1556 ई. – हुमायूँ की मृत्यु।
4. 1556 ई. – अकबर का सिंहासनारोहण तथा पानीपत का द्वितीय युद्ध।
5. 1560 ई. – बैरम खाँ का पतन।
6. 1561 ई. – बैरम खाँ की मृत्यु।
7. 1562 ई. – आमेर के राजा बिहारीमल की पुत्री जोधाबाई से सम्राट अकबर का

विवाह।
8. 1564 ई. – रानी दुर्गावती की मृत्यु।
9. 1568 ई. – अकबर की चित्तौड़ विजय।
10. 1569 ई. – अकबर की रणथम्भौर और कालिंजर विजय।
11. 1575 ई. – अकबर द्वारा फतेहपुर सीकरी में 'इबादतखाना' का निर्माण।
12. 1576 ई. – अकबर और राणा प्रताप के बीच हल्दी-घाटी का युद्ध।
13. 1582 ई. – दीन-ए-इलाही की घोषणा।
14. 1595 ई. – बलूचिस्तान व कंधार का मुगल साम्राज्य में मिलाया जाना।
15. 1597 ई. – राणा प्रताप की मृत्यु।
16. 1600 ई. – चाँदबीबी की मृत्यु व मुगलों की अहमदनगर की विजय।
17. 1605 ई. – अकबर का सलीम को अपना उत्तराधिकारी घोषित करना तथा अकबर की मृत्यु।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. अकबर को मुगल राज्य का वास्तविक संस्थापक क्यों कहा जाता है? (1972)
2. अकबर की धार्मिक नीति की विवेचना कीजिए। उसको राष्ट्रीय सम्राट क्यों कहा जाता है? (1977)
3. सम्राट अकबर की राजपूत नीति की समीक्षा कीजिए। (1978,1992)
4. अकबर को महान् सम्राट् क्यों कहा जाता है? कारण दीजिए। (1984,91)
5. राजपूत राज्यों के प्रति अकबर की नीति की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए। यह नीति किस सीमा तक सफल हुई? विवेचना कीजिए। (1964)
6. अकबर की मनसबदारी व्यवस्था से आप क्या समझते हैं? क्या यह व्यवस्था उसकी सैनिक शक्ति का आधार थी? (1997)
7. दीन-ए-इलाही के विशेष संदर्भ में अकबर की धार्मिक नीति की विवेचना कीजिए। (2003)
8. अकबर की दक्षिण नीति की विवेचना कीजिए। (2004, 2005)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "अकबर भारत का एक राष्ट्रीय सम्राट था।" इस कथन की समीक्षा कीजिए। (1963,68,91,97,01)
2. "मुगल साम्राज्य की स्थापना बाबर ने की परन्तु उसका सुदृढ़ीकरण एवं विकास अकबर ने किया।" इस कथन की व्याख्या कीजिए। (1974,85)
3. "दीन-ए-इलाही अकबर की बुद्धिमता का नहीं, बल्कि उसकी मूर्खता का प्रतीक था।" इस कथन के आलोक में अकबर की धार्मिक नीति की समीक्षा कीजिए। (1986,93)
4. "वह (अकबर) मनुष्यों का जन्मसिद्ध शासक था, जिसकी गणनां इतिहास के सर्वश्रेष्ठ शासकों में होना पूर्णतया उचित एवं न्यायसंगत है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए। (1990)
5. "अकबर की महान् उपलब्धि यह थी कि उसने भिन्न-भिन्न धर्मों के समूहों को एक रूप

में जोड़ दिया।" इस कथन के परिवेश में उसकी धार्मिक नीति की समीक्षा कीजिए। (1988)

6. "अकबर के दीन-ए-इलाही का मूलभाव धार्मिक सहिष्णुता थी।" इस कथन की विवेचना कीजिए। (1990)
7. "अकबर के अपनी हिन्दू-प्रजा, विशेषकर राजपूतों के प्रति, सद्व्यवहार के बड़े सुखद तथा दीर्घगामी परिणाम निकले।" इस कथन की सविस्तार पुष्टि कीजिए। (1996)
8. "प्रतिस्पर्धी शक्तियों को एकाकी रखने तथा मुगल साम्राज्य को शक्तिशाली बनाने के लिए अकबर ने राजपूतों के साथ मेल-मिलाप की नीति अपनायी।" विवेचना कीजिए। (2005)
9. "अकबर एक राष्ट्रीय शासक था।" व्याख्या कीजिए। (2001, 06)
10. "एक शासक के रूप में अकबर की सबसे बड़ी विशेषता (सफलता) यह थी कि उसने भिन्न-भिन्न राज्यों, विभिन्न जातियों व विभिन्न धर्मों के समूह को एक सूत्र में पिरो दिया।" विवेचना कीजिए। (उ.प्र.2007)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. अकबर की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ क्या थीं?
2. अकबर-कालीन इमारतों का परिचय दीजिए?
3. टोडरमल के भूमि-सुधार का संक्षिप्त वर्णन कीजिए?
4. 'दीन-ए-इलाही' धर्म क्या था?
5. मेवाड़-विजय के लिए अकबर ने क्या प्रयास किए?
6. पानीपत के द्वितीय युद्ध के परिणामों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
7. अकबर ने किन राजपूत वंशों के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किए?
8. पानीपत के द्वितीय युद्ध के महत्व का वर्णन कीजिए।
9. अकबर के संरक्षक के रूप में बैरम खाँ का मूल्यांकन कीजिए।
10. अरावली पहाड़ियों को देखकर किस महान स्वतंत्रता संग्रामी का स्मरण होना स्वाभाविक है? कारण सहित उत्तर दीजिए।
11. 'सम्राट अकबर के काल में भारत में समन्वित संस्कृति का विकास हुआ।' विवेचना कीजिए।
12. इबादतखाना के महत्व का वर्णन कीजिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **अकबर की माता तथा उसके संरक्षक का नाम लिखिए।**
   अकबर की माता का नाम हमीदा बानू बेगम तथा संरक्षक का नाम बैरम खाँ था।
2. **वह स्थान बताइए जहाँ अकबर का राज्यारोहण हुआ था।**
   कलानौर नामक स्थान पर अकबर का राज्यारोहण हुआ था।
3. **पानीपत का द्वितीय युद्ध कब और किस-किस के बीच हुआ था?**
   पानीपत का द्वितीय युद्ध 1556 ई. में अकबर और हेमू के बीच हुआ था।
4. **अकबर ने इबादतखाना की स्थापना कहाँ की थी?**
   अकबर ने फतेहपुर सीकरी में इबादतखाना की स्थापना की थी।
5. **दीन-ए-इलाही धर्म का प्रवर्त्तक कौन था?**
   दीन-ए-इलाही धर्म का प्रवर्त्तक सम्राट अकबर था।
6. **दीन-ए-इलाही का सरकारी नाम क्या था?**
   दीन-ए-इलाही का सरकारी नाम 'तौहीद-ए-इलाही' था।
7. **अकबर के दो सभासदों के नाम बताइए।**
   अकबर के दो सभासद - अबुल फजल, तथा राजा बीरबल थे।

8. अकबर के दो हिन्दू सहायकों के नाम बताइए।
अकबर के दो हिन्दू सहायक - राजा मानसिंह, तथा राजा बीरबल या राजा टोडरमल थे।
9. हल्दीघाटी का युद्ध किस-किस के बीच हुआ था?
हल्दीघाटी का युद्ध महाराणा प्रताप एवं मुगलों (अकबर) के बीच हुआ था।
10. महाराणा प्रताप की मृत्यु कब हुई थी?
महाराणा प्रताप की मृत्यु 1597 ई. में हुई थी।
11. 'मनसब' से आप क्या समझते हैं?
मनसब का तात्पर्य पद से होता है।
12. हेमू कौन था?
हेमू दिल्ली के शासक मुहम्मदशाह सूरी का सेनापति था।
13. अमरकोट वर्तमान में किस राज्य में स्थित है?
अमरकोट राजस्थान राज्य में है।
14. अकबर के मकबरे 'सिकन्दरा' की वास्तुकला की एक मुख्य विशेषता लिखिए।
मकबरा लाल पत्थर से निर्मित है।

बहु-विकल्पीय प्रश्न

निर्देश : नीचे दिये गये प्रत्येक प्रश्न के चार विकल्पों में से सही विकल्प छाँटकर लिखिए :

1. अकबर का जन्म कब हुआ था?
(क) 1539 ई., (ख) 1542 ई., (ग) 1545 ई., (घ) 1548 ई.।
2. हल्दीघाटी का युद्ध कब हुआ था?
(क) 1570 ई. (ख) 1576 ई., (ग) 1575 ई., (घ) 1578 ई.।
3. अकबर ने बैरम खाँ को संरक्षक पद से कब पदच्युत कर दिया था?
(क) 1555 ई., (ख) 1560 ई., (ग) 1562 ई., (घ) 1565 ई.।
4. अकबर ने 'इमाम-ए-आदिल' का पद कब ग्रहण किया था?
(क) 1560 ई., (ख) 1565 ई., (ग) 1579 ई., (घ) 1582 ई.।
5. अकबर की मृत्यु कब हुई थी?
(क) 1600 ई., (ख) 1605 ई., (ग) 1606 ई., (घ) 1610 ई.।
6. अकबर का मकबरा कहाँ स्थित है?
(क) फतेहपुर सीकरी, (ख) सिकन्दरा (आगरा),
(ग) लाहौर, (घ) बयाना।
7. अकबर द्वारा निर्मित बुलन्द दरवाजा कहाँ स्थित है?
(क) आगरा, (ख) फतेहपुर सीकरी, (ग) दिल्ली, (घ) लाहौर
8. बैरम खाँ की मृत्यु कब हुई थी?
(क) 1555 ई. (ख) 1560 ई. (ग) 1561 ई. (घ) 1564 ई.
9. रानी दुर्गावती की मृत्यु कब हुई थी?
(क) 1562 ई. (ख) 1564 ई. (ग) 1566 ई. (घ) 1570 ई.
10. अकबर ने 'इबादतखाना' का निर्माण कब कराया था?
(क) 1569 ई. (ख) 1572 ई. (ग) 1575 ई. (घ) 1577 ई.
11. अकबर ने 'दीन-ए-इलाही' धर्म की घोषणा कब की थी?
(क) 1576 ई. (ख) 1580 ई. (ग) 1582 ई. (घ) 1584 ई.
12. चाँद बीबी की मृत्यु कब हुई थी?
(क) 1597 ई. (ख) 1600 ई. (ग) 1602 ई. (घ) 1605 ई.

13. अकबर ने अधिकार-पत्र (महज़र) कब घोषित किया था?
(क) 1573 ई. (ख) 1576 ई. (ग) 1579 ई. (घ) 1582 ई.

14. 'दीन-ए-इलाही अकबर की बुद्धिमत्ता का नहीं, बल्कि उसकी मूर्खता का प्रतीक था'। यह कथन किसका है?
(क) बदायूँनी (ख) स्मिथ (ग) डॉ. ईश्वरी प्रसाद (घ) डॉ. आशीर्वादी लाल

15. अकबर के दरबार का प्रसिद्ध कवि कौन था?
(क) तुलसीदास (ख) अब्दुर्रहीम (ग) बीरबल (घ) बैरम खाँ

16. अकबर ने गुजरात पर विजय कब प्राप्त की?
(क) 1570 ई. (ख) 1572 ई. (ग) 1575 ई. (घ) 1580 ई.

17. अकबर ने मनसबदारी व्यवस्था के आधार पर अपना सैन्य संगठन किस वर्ष किया?
(क) 1572 ई. (ख) 1575 ई. (ग) 1578 ई. (घ) 1582 ई.

18. अकबर ने 'जजिया' कब समाप्त किया था?
(क) 1561 ई. (ख) 1562 ई. (ग) 1563 ई. (घ) 1564 ई.

19. अकबर ने 'अमोधत्व का आदेश' (महजर) कब लागू किया?
(क) 1570 ई. (ख) 1574 ई. (ग) 1579 ई. (घ) 1584 ई.

20. शेख सलीम चिश्ती का मकबरा कहाँ स्थित है?
(क) आगरा (ख) फतेहपुर सीकरी (ग) लाहौर (घ) अजमेर

■

5

जहाँगीर

[1605-27]

"जहाँगीर के सम्पूर्ण जीवन पर दृष्टि डालने से यह मालूम होता है कि वह उदार हृदय का व्यक्ति था। कुछ घटनाएँ उसके क्रोध का प्रमाण देती हैं जब उसने अमानवीय अत्याचार किये, लेकिन एक शासक के नाते उसमें मानवता सहृदयता तथा मुक्तहृदयी भावना थी।" –डॉ. बेनीप्रसाद

प्रारम्भिक जीवन

जन्म– बहुत सी प्रार्थनाओं के पश्चात् शेख सलीम चिश्ती के आशीर्वाद से 30 अगस्त, 1569 को जहाँगीर का जन्म हुआ। उसकी माँ आमेर के राजपूत राजा बिहारीमल की पुत्री जोधाबाई थी। शेख के नाम पर इसका बचपन का नाम सलीम था। अकबर उसे शेखू बाबा के नाम से पुकारा करता था। सलीम का पालन-पोषण बड़े लाड़-प्यार से हुआ था।

शिक्षा– यद्यपि अकबर स्वयं अनपढ़ था किन्तु उसने सलीम की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। 28 नवम्बर, 1573 को उसका विद्यारम्भ का संस्कार हुआ। अब्दुर्रहीम खानखाना की संरक्षता में उसने फारसी, तुर्की, अरबी, हिन्दी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त उसने गणित, इतिहास तथा भूगोल का भी अध्ययन किया। उसने संगीतकला तथा चित्रकला का भी ज्ञान प्राप्त किया। उसकी सैनिक शिक्षा पर भी विशेष ध्यान दिया गया था।

अकबर ने सलीम को अपने अन्य पुत्रों की तुलना में अधिक उच्च मनसब प्रदान किया। 1577 में उसे 10,000 का मनसब दिया गया और 1585 में उसका मनसब बढ़ाकर 12,000 कर दिया गया। इतना ऊँचा मनसब पहले किसी को भी नहीं मिला था।

विवाह– 15 वर्ष की आयु में सलीम का विवाह आमेर के राजा भगवानदास की पुत्री मानबाई[1] के साथ हुआ। विवाह-संस्कार हिन्दू व मुसलमान दोनों प्रकार की रीति-रिवाजों के अनुसार 16 फरवरी, 1585 को सम्पन्न हुआ। इसी विवाह से अभागे खुसरो का जन्म हुआ, जिसके विद्रोह से दुखी होकर मानबाई ने आत्महत्या कर ली थी। इस घटना से सलीम को इतना दुःख हुआ कि उसने चार दिनों तक भोजन नहीं किया। इसके अतिरिक्त सलीम के कई विवाह हुए जिसमें मारवाड़ के कोटा राजा उदयसिंह की पुत्री मानवती का नाम विशेष रूप से

1. विवाह के बाद मानबाई का नाम शाहबानू रखा गया था।

उल्लेखनीय है। उसके अन्तःपुर में स्त्रियों की संख्या 800 थी।

सलीम का विद्रोह (1599-1604)- 1599 में सलीम ने सम्राट पद पाने के लिए अनुचित प्रयास किया। 1600 में जिस समय अकबर ने असीरगढ़ का घेरा डाल रखा था उस समय सलीम ने आगरा से चलकर इलाहाबाद में विद्रोह कर अपने को स्वतन्त्र शासन घोषित कर दिया। जब अकबर को विद्रोह का पता चला तो उसने पत्र लिखकर सलीम को समझाने का प्रयास किया, परन्तु उसने कोई ध्यान नहीं दिया। 1601 में असीरगढ़ का दुर्ग जीतकर अकबर वापस आगरा आया। उसने सलीम को जो एक सेना लेकर इलाहाबाद से इटावा तक आ गया था, धमकाया। इस पर सलीम पुनः इलाहाबाद लौट गया और बादशाह की भाँति आचरण करने लगा। उसने नियमित रूप से दरबार लगाना, आज्ञाएँ जारी करना तथा जागीर प्रदान करना आरम्भ कर दिया। अतः अकबर ने इस सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने के लिए दक्षिण से अबुल फजल को बुलाया, परन्तु सलीम ने मार्ग में ही वीरसिंह बुन्देला द्वारा 12 अगस्त 1602 को उसकी हत्या करा दी। अकबर इस घटना से अत्यधिक नाराज हुआ, लेकिन अन्तःपुर की रानियों ने सलीम को क्षमा प्रदान करने की प्रार्थना की। सलीम की विमाता सलीमा बेगम इलाहाबाद जाकर सलीम को समझा-बुझाकर ले आईं। सम्राट ने उसे क्षमा कर दिया। सलीम ने सम्राट को 770 हाथी व 2,000 सोने की मुहरें भेंट की।

1603 में सलीम ने पुनः इलाहाबाद आकर सम्राट के विरुद्ध विद्रोह किया, परन्तु उसे आगरा आकर अकबर से क्षमा माँगने के लिए बाध्य होना पड़ा। सम्राट ने उसे क्षमाप्रदान कर दिया। अन्त में अपनी मृत्यु के समय 1605 में अकबर ने उसे उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

सलीम को सिंहासन से वंचित करने का षड्यन्त्र- अकबर 1605 में बीमार पड़ गया और दिनोंदिन उसकी दशा बिगड़ती चली गई और 16 अक्टूबर, 1605 को उसकी मृत्यु हो गई। दरबार में दो दल बन गये। एक दल राजा मानसिंह व मिर्जा अजीज कोका का था। जो खुसरो को उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे। दूसरा दल सलीम का था। राजा मानसिंह और मिर्जा अजीज कोका का षड्यन्त्र सफल न हो सका और अन्त में सलीम ही गद्दी पर बैठा।

राज्याभिषेक व अध्यादेश- जहाँगीर गुरुवार 24 अक्टूबर, 1605 को 36वर्ष की आयु में आगरा के किले में अपने पिता की गद्दी पर बैठा और 'नूरुद्दीन मुहम्मद जहाँगीर बादशाह गाजी' की उपाधि धारण की। उसने बहुत-सी जागीरें एवं उपाधियाँ बाँटीं और अपने विरोधियों को क्षमा किया। उसने निम्न 12 अध्यादेशों (दस्तूर-उल-अमल) में अपनी नीति की घोषणा की :

1. तमगा, मीर बहरी तथा अन्य महसूल हटा दिये गये।
2. उसने सड़कों के किनारे सराय, मस्जिद और कुओं आदि बनाने का आदेश दिया।
3. उसने यह आदेश दिया कि मृत्यु के पश्चात् किसी मनुष्य की सम्पत्ति उसके उत्तराधिकारी को बिना बाधा के दे दी जाय। यदि मृत व्यक्ति का कोई उत्तराधिकारी न हो तो ऐसी सम्पत्ति की देखभाल सरकार स्वयं करेगी और उसका प्रयोग इस्लाम के कानून के अनुसार होगा।
4. मद्य तथा अन्य मादक वस्तुओं को तैयार करने एवं बेचने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।
5. सरकारी कर्मचारियों को किसी दूसरे के मकान का बलपूर्वक अधिकार कर लेने की मनाही कर दी गई।
6. नाक व कान काटने के दण्ड को समाप्त कर दिया गया।
7. उसने सरकारी अधिकारियों को कृषकों की उपजाऊ भूमि को लेने का निषेध कर दिया।
8. उसकी आज्ञा बिना जागीरदार अथवा परगनाधीश अपने परगने में किसी व्यक्ति के साथ विवाह संबंध स्थापित नहीं कर सकता था।

9. गरीबों ओर असहायों की चिकित्सा के लिए शहरों में सरकारी अस्पतालों की स्थापना की गई।
10. उसने वृहस्पतिवार एवं रविवार को पशु-वध की मनाही कर दी।
11. उसने रविवार को मुख्य दिन माना और उसे बड़ा सम्मान दिया।
12. उसने अपने पिता के काल से चले आ रहे कर्मचारियों एवं जागीरदारों को अपने-अपने पदों पर पुनः बने रहने की पुष्टि की।

शासन-काल की प्रमुख घटनाएँ

खुसरो का विद्रोह– खुसरो राजा मानसिंह का भानजा और मिर्जा अजीज कोका का दामाद था। वह एक खूबसूरत राजकुमार था। एक बार अकबर ने सलीम के बजाय खुसरो को अपना उत्तराधिकारी बनाने का विचार किया था, किन्तु पिता-पुत्र में समझौता हो जाने पर उसने यह विचार छोड़ दिया। परन्तु तभी से खुसरो में शासक बनने की महत्वाकांक्षा बलवती हो उठी थी। अतः 6 अप्रैल, 1606 को 350 अश्वारोहियों के साथ अपने पितामह अकबर के मकबरा के दर्शन के बहाने आगरा से बाहर हो गया और तेजी से दिल्ली की ओर बढ़ा। मार्ग में हुसेन बेग 300 अश्वारोहियों के साथ उससे आ मिला। धीरे-धीरे उसके समर्थकों की संख्या 12,000 हो गई। उसने तरन-तारन में सिक्खों के गुरु अर्जुनदेव से आशीर्वाद प्राप्त किया। लाहौर का दीवान अब्दुर्रहमान भी उसके साथ था। उसने लाहौर के किले का घेरा डाल दिया। परन्तु उसे सफलता न मिली। जहाँगीर को विद्रोह की जब सूचना मिली तो उसने स्वयं उसका पीछा किया। भैरोवाल नामक स्थान पर दोनों ओर की सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ। खुसरो पराजित हो गया और काबुल की ओर भागा, परन्तु शाहपुर के निकट चिनाव नदी को पार करते हुए पकड़ा गया और कैदखाने में डाल दिया गया। उसके समर्थकों को कठोर दण्ड दिये गये।

गुरु अर्जुनदेव की हत्या– खुसरो की सहायता करने के अपराध में जहाँगीर ने अर्जुनदेव की सम्पत्ति का अपहरण कर लिया और उन पर दो लाख रुपये का जुर्माना किया। अर्जुनदेव ने जुर्माना देने से इन्कार कर दिया। फलतः उन्हें मृत्यु-दण्ड दिया गया। जहाँगीर का यह कार्य राजनीतिक दृष्टि से विवेकशून्य था, क्योंकि इससे सिक्ख मुगल राज्य के कट्टर शत्रु हो गये।

खुसरो का अन्त– जहाँगीर की आज्ञा से खुसरो को अन्धा कर दिया गया, परन्तु कालान्तर में जहाँगीर को दया आ गई और उसने उसकी आँखें ठीक करा दी। परन्तु नूरजहाँ इससे अप्रसन्न हो गई क्योंकि वह अपने दामाद शहरयार को सिंहासन देना चाहती थी। 1616 में खुसरो आसफ खाँ को सौंप दिया गया। अन्त में 1620 में वह खुर्रम के सुपुर्द कर दिया गया। 1622 में बुरहानपुर में खुसरो का वध कर दिया गया। कुछ इतिहासकारों की धारणा है कि खुसरो की हत्या में खुर्रम का हाथ था। इलाहाबाद स्थित खुसरोबाग में उसका मकबरा है।

बंगाल का विद्रोह– बंगाल में उस्मान नामक एक अफगान नेता ने विद्रोह कर दिया, परन्तु बंगाल के सूबेदार इस्लाम खाँ ने उसे पराजित कर दिया। उस्मान युद्ध-स्थल में मारा गया।

मेवाड़ विजय– इस समय मेवाड़ में महाराणा प्रताप का पुत्र अमरसिंह राज्य कर रहा था। अकबर अपने जीवन काल में मेवाड़ पर अधिकार नहीं कर सका था। अतः अपने पिता की इच्छा पूर्ण करने के लिए जहाँगीर ने अपने पुत्र परवेज को 1606 में 20,000 अश्वारोहियों के साथ मेवाड़ को जीतने के लिए भेजा, परन्तु उसे सफलता न मिली।

दो वर्ष पश्चात् 1608 में महावत खाँ ने नेतृत्व में दूसरी बार सेना भेजी गई। इस सेना में 12,000 अश्वारोहियों, 500 अहदी, 2,000 पैदल तथा 60 हाथी 80 छोटी बन्दूकें थीं। परन्तु उसको सफलता नहीं मिली और 1609 में वह वापस बुला लिया गया।

अंततः 1614 में खुर्रम के नेतृत्व में एक विशाल सेना भेजी गई। उसने सैन्य-संचालन

में "अपूर्व योग्यता, रौद्र शक्ति तथा असाधारण सौभाग्य का परिचय दिया। राजपूत इस बार पराजित हुए। अन्त में राणा अमरसिंह और खुर्रम में संधि हो गई। सन्धि की शर्तें इस प्रकार थीं :

(1) राणा अमरसिंह ने जहाँगीर की अधीनता स्वीकार कर ली।
(2) जहाँगीर ने राणा को चित्तौड़ सहित वह सम्पूर्ण प्रान्त वापस कर दिया जो अकबर के समय से मुगल साम्राज्य के अन्तर्गत था।
(3) चित्तौड़ के दुर्ग को सुरक्षित रखना अथवा उसकी मरम्मत कराना रोक दिया गया।
(4) शाही दरबार में उपस्थित होना राणा के लिए अनिवार्य नहीं था, बल्कि उसका पुत्र कर्णसिंह उसका प्रतिनिधित्व कर सकता था।
(5) राणा को मुगलों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए बाध्य नहीं किया गया।

इस सन्धि का बड़ा महत्व है। डॉ. आशीर्वादीलाल के शब्दों में, "मेवाड़ और दिल्ली की सत्ताओं के इतिहास में यह सन्धि अपना विशेष स्थान रखती है। इसके पूर्व किसी भी सिसोदिया वंशज ने किसी भी मुगल शासक की प्रत्यक्ष रूप से अधीनता स्वीकार न की थी। दो राज्य सत्ताओं के बीच की एक चिरस्थायी विद्वेष की भावना का इस सन्धि ने अन्त कर दिया।"

काँगड़ा-विजय– जहाँगीर ने मुर्तजा खाँ को कांगड़ा का दुर्ग जीतने के लिए भेजा, किन्तु युद्ध में मुर्तजा खाँ मारा गया। तत्पश्चात् खुर्रम को भेजा गया। इस बार राजपूत पराजित हुए और 1620 में राजपूतों ने मुगल-सम्राट की अधीनता स्वीकार कर ली।

दक्षिण-विजय– अकबर के काल में खानदेश और अहमदनगर का कुछ हिस्सा जीता जा चुका था। जहाँगीर ने पूरे अहमदनगर, गोलकुण्डा व बीजापुर को जीतने की योजना बनाई। 1608 में अब्दुल रहीम खानखाना के नेतृत्व में 12,000 अश्वारोहियों की एक सेना भेजी गई, परन्तु वह विशेष सफलता न प्राप्त कर सकी, क्योंकि उसका मुकाबला वहाँ के मंत्री मलिक अम्बर नामक अबीसीनिया निवासी से हुई जिसकी शक्ति बहुत अधिक थी।

इसके पश्चात् 1611 में खानेजहाँ लोदी और अब्दुल खाँ को भेजा गया। अब्दुल खाँ ने गुजरात की ओर से तथा खानेजहाँ, मानसिंह एवं अमीर-उल-उमरा ने बरार व खानदेश की ओर से एक ही समय आक्रमण किया। लेकिन इस बार भी मुगलों को सफलता न मिली।

अन्त में, 1616 में यह दुष्कर कार्य राजकुमार खुर्रम को सौंपा गया। वह मार्च, 1617 में बुरहानपुर पहुँचा। इस बार मुगलों की विशाल सेना देखकर मलिक अम्बर भयभीत हो गया और उसने सन्धि की सम्पूर्ण शर्तें स्वीकार कर लीं। आदिलशाह ने पन्द्रह लाख रुपये खुर्रम को भेंट किया और मलिक अम्बर द्वारा जीता गया बालाघाट का पूरा प्रान्त लौटा दिया। जहाँगीर ने प्रसन्न होकर खुर्रम को शाहजहाँ की उपाधि प्रदान की तथा तीस हजार जात और बीस हजार सवार का मनसब का पद प्रदान किया। परन्तु वास्तविक दृष्टि से मुगलों की विजय अपूर्ण थी क्योंकि न अहमदनगर को पूरी तरह जीता जा सका और न मलिक अम्बर की ही शक्ति का पूरा दमन किया जा सका।

किस्तावर-विजय–काश्मीर जीते जाने के पश्चात् भी किस्तावर अभी तक स्वतन्त्र था। 1622 में जहाँगीर ने आक्रमण करके उसे भी जीत लिया।

कन्धार का मुगल साम्राज्य से निकल जाना– 1622 में कन्धार मुगलों के हाथ से निकल गया। शाहजहाँ के विद्रोह के कारण जहाँगीर फारस के शाह के विरुद्ध कोई कदम न उठा सका।

जहाँगीर और पुर्तगाली– पुर्तगालियों ने सोलहवीं शताब्दी के अन्त में भारत के पश्चिमी तट पर अनेक व्यापारिक कोठियाँ बना ली थीं। जहाँगीर इनसे मैत्री-पूर्ण सम्बन्ध कायम रखना चाहता था। 1607 और 1610 में गोवा से पुर्तगाली दूत मण्डल भी मुगल दरबार

में आये। पर उनका उद्दण्ड व्यवहार बादशाह के लिए परेशानी का कारण बन गया। 1613 में पुर्तगालियों ने मुगलों की समुद्री नौकाओं पर आक्रमण कर दिया। तब सूरत के सूबेदार के हाथों उन्हें बुरी तरह पराजित होना पड़ा और जहाँगीर ने पुर्तगालियों के व्यापार सम्बन्धी समस्त अधिकार छीन लिए। बाद में पादरियों के प्रयास से 1615 में जहाँगीर तथा पुर्तगालियों के बीच शांति स्थापित हो गई।

जहाँगीर और अंग्रेज– जहाँगीर के शासन काल में इंगलैण्ड के सम्राट जेम्स प्रथम ने 1608 में विलियम एडवर्ड को व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए मुगल दरबार में भेजा; पर पुर्तगालियों के विरोध के कारण वह सफल न हो सका। तत्पश्चात् सर टामस रो (1615-1619) राजदूत बनकर भारत आया। उसे सर्वप्रथम अंग्रेजों के लिए भारत में व्यापार करने की आज्ञा प्राप्त हुई। अंग्रेजों द्वारा भारत में ब्रिटिश राज्य स्थापित होने का यह पहला चरण था।

नूरजहाँ

जन्म तथा बचपन– नूरजहाँ के बचपन का नाम मेहरुन्निसा था। उसका पिता मिर्जा गयासबेग तेहरान का निवासी था। वह अत्यधिक निर्धन था। अपने पिता–ख्वाजा मोहम्म्द शरीफ की मृत्यु के उपरान्त वह नौकरी की खोज में भारत आया। साथ में उसकी गर्भवती पत्नी भी थी। 1578 में कन्दहार पहुँचने पर उसकी पत्नी ने जिस पुत्री को जन्म दिया, वह मेहरुन्निसा थी। कठिनाइयों के कारण उन्होंने पुत्री को एक पेड़ के नीचे छोड़कर आगे प्रस्थान किया। कुछ दूर चलने पर माँ की ममता उमड़ पड़ी। अतः गयासबेग ने पुत्री को उठा लिया। वे लाहौर पहुँचे। मलिक मसूद नामक एक व्यापारी के प्रयास से गयासबेग को अकबर के दरबार में नौकरी मिल गई। अपनी योग्यता के कारण वह शीघ्र ही शाही प्रबन्धक बन गया।

विवाह– मेहरुन्निसा एक अत्यधिक सुन्दर लड़की थी। सुन्दरता के कारण वह नूरजहाँ के नाम से विख्यात हुई। वह अक्सर दरबार में आया करती थी। सलीम ने एक बार उसको देखा और उसकी सुन्दरता पर मुग्ध हो गया। वह उसे विवाह करना चाहता था, लेकिन अकबर ने उससे विवाह करने की स्वीकृति नहीं दी और 17 वर्ष की आयु में उसका विवाह एक ईरानी व्यक्ति शेर अफगन के साथ कर दिया। पहले इसका नाम अलीकुली खाँ था। सिंहासन पर बैठने पर सलीम ने उसको बंगाल में एक जागीर दे दी। अतः वह बंगाल चला गया।

शेर अफगन की हत्या– जहाँगीर के सिंहासन पर बैठने के उपरान्त 1607 में बंगाल में अफगानों ने स्वतन्त्र होने के विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। जहाँगीर को शेर अफगन के भी स्वतन्त्र हो जाने की शंका हुई। अतः उसने बंगाल के सूबेदार कुतुबुद्दीन को आदेश दिया कि वह शेर अफगन पर कड़ी नजर रखे। कुतुबुद्दीन ने उसे दरबार में बुलाया। आने पर उसे कैद करना चाहा। इस पर क्रोधित होकर शेर अफगन ने कुतुबुद्दीन का वध कर दिया। कुतुबुद्दीन के सैनिकों ने उसका वध कर दिया।

शेर अफगन की हत्या में जहाँगीर का हाथ व नूरजहाँ से विवाह– इस घटना के पश्चात् विधवा नूरजहाँ और उसकी पुत्री लाड़ली बेगम को आगरा लाया गया और उसको राजमाता सलीमा बेगम की सेवा में रख दिया गया। चार वर्षों के पश्चात् 1611 में जहाँगीर ने उससे विवाह कर लिया।

यह प्रश्न बड़ा विवादास्पद है कि शेर अफगन की हत्या के लिए जहाँगीर को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। इस सम्बन्ध में दो इतिहासकारों के मत उल्लेखनीय हैं।

डॉ. बेनीप्रसाद के अनुसार शेर अफ़गन की हत्या के लिए जहाँगीर को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। इस सम्बन्ध में वह निम्न तर्क प्रस्तुत करते हैं :

(1) कोई भी फारसी लेखक इस बात का उल्लेख नहीं करता कि जहाँगीर ने मेहरुन्निसा

से पहले विवाह करना चाहा या अकबर ने इसका विरोध किया था। न ही किसी ने शेर अफगन की हत्या का उस पर आरोप लगाया।

(2) अकबर के पास कोई कारण न था कि वह मेहरुन्निसा और सलीम के विवाह का विरोध करता।

(3) नूरजहाँ एक चरित्र वाली स्त्री थी। यदि उसके पति शेर अफगन की हत्या में जहाँगीर का हाथ होता तो वह उससे कभी विवाह न करती।

डॉ. बेनीप्रसाद के शब्दों में, "मध्यकालीन इतिहास में किसी व्यक्ति का जीवन इतना रोमांचकारी नहीं है जितना नूरजहाँ का और जहाँगीर के शासन की कोई घटना इतनी रोचक नहीं जितना नूरजहाँ से उसका विवाह। नूरजहाँ का आकर्षक तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व पूरे 15 वर्षों तक राज्य पर छाया रहा और जहाँगीर के दरबार, हरम, सरकार तथा उसके व्यक्तिगत जीवन पर उसका विशेष प्रभाव रहा।"

डॉ. ईश्वरीप्रसाद उपर्युक्त मत से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार यह प्रश्न सन्देह उत्पन्न करता है। इस सम्बन्ध में उन्होंने निम्न तर्क दिये हैं :

(1) डच लेखक डी.लेट ने सलीम तथा मेहरुन्निसा के प्रेम का उल्लेख किया है और उसने यह भी लिखा है कि अकबर की आज्ञा के अभाव में उन दोनों का विवाह न हो सका।

(2) यह ठीक है कि इस घटना का वर्णन समकालीन इतिहासकारों ने नहीं किया, परन्तु यह भी तो हो सकता है कि जहाँगीर के भय के कारण किसी ने इस सम्बन्ध में स्पष्ट लिखने का साहस नहीं किया हो।

(3) जहाँगीर जो अपनी आत्मकथा कहने में इतना स्पष्टवादी है, इस घटना के सम्बन्ध में तथा नूरजहाँ के साथ अपने विवाह के विषय में जो निस्सन्हेह उसके जीवन में बहुत बड़ी महत्वपूर्ण घटना है, बिल्कुल चुप है। उसका यह मौन इस विषय में सन्देह उत्पन्न करने वाला है।

(4) मेहरुन्निसा दरबार में क्यों भेजी गई जबकि उसका पिता राजधानी में ही रहता था?

(5) सम्राट ने विधवा और उसकी पुत्री को शाही हरम में राजमाता के सुपुर्द रखने का असाधारण कार्य क्यों किया जबकि उसके पिता तथा भाई के साथ रखा जा सकता था?

(6) चार वर्षों के पश्चात् जहाँगीर का नूरजहाँ ने विवाह करना इस बात को द्योतक है कि शायद वह नूरजहाँ से शीघ्र ही विवाह करके शेर अफगन की मृत्यु के विषय में संदेह उत्पन्न कराना नहीं चाहता था।

अन्त में, उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि प्रेम शक्ति की धारणा सत्य है तो शेर अफगन की हत्या का उद्देश्य भी स्पष्ट ही है, किन्तु इस बात का कोई दृढ़ प्रमाण नहीं है। शेर अफगन की मृत्यु की घटना अभी भी इतिहासकारों के लिए पहेली है।

तत्कालीन राजनीति पर नूरजहाँ का प्रभाव– नूरजहाँ के शासन-काल एवं प्रभाव को निम्न दो भागों में बाँटा जा सकता है :

पहला काल (1612–1622)– इस काल में नूरजहाँ का बहुत अधिक प्रभाव रहा। सिक्कों पर उसका नाम अंकित कर दिया गया। उसके नाम खुतबा भी पढ़ा जाने लगा। उसने अपना एक दल भी बना लिया। उस दल में चार प्रमुख व्यक्ति थे :

(1) उसका पिता गयासबेग (2) उसकी माता असमत बेग
(3) उसका भाई आसफ खाँ (4) शाहजादा खुर्रम

इस काल के उसके निम्न कार्य उल्लेखनीय हैं :

(i) वह स्वयं झरोखा से प्रजा को दर्शन दिया करती थी।

(ii) शासन की तमाम आज्ञाएँ उसी के नाम से निकाली जाती थीं।
(iii) ऊँचे-ऊँचे पदाधिकारियों को वही आदेश देती थी।
(iv) सिक्कों पर उसका नाम अंकित होता था।

इस प्रकार दस साल तक शासन में नूरजहाँ का प्रभाव छाया रहा।

दूसरा काल (1622-1627)- यह काल नूरजहाँ के लिए संघर्ष का काल था। इस काल में निम्न प्रमुख घटनाएँ हुई :

(1) खुर्रम का विद्रोह (1622-26)- इस बीच नूरजहाँ के माता-पिता की मृत्यु हो चुकी थी। दरबार के बहुत से अमीर लोग उसके विरोधी हो गये। 1620 में उसने अपनी पुत्री का विवाह शहरयार के साथ कर दिया और अपने दामाद को साम्राज्य का उत्तराधिकारी बनाने के लिए खुर्रम के विरुद्ध षड्यन्त्र करना आरम्भ कर दिया। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने खुर्रम को राजधानी से दूर कंधार भेजना चाहा। परन्तु खुर्रम उसकी चालाकियों से भलीभाँति परिचित था। अतः उसने कंधार जाने से इन्कार कर दिया और उसने विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया (1622)। जहाँगीर ने नूरजहाँ का पक्ष लिया और विद्रोह दमन के लिए महावत खाँ को भेजा गया। बलोचलपुर में खुर्रम की हार हुई और वह दक्षिण की ओर भागा। उसने मलिक अम्बर से सहायता माँगी, परन्तु उससे कोई सहायता न मिली। फलतः वह तेलंगाना, उड़ीसा होता हुआ बिहार पहुँचा। वहाँ भी उसे शाही सेनाओं ने घेर लिया। वह पुनः दक्षिण की ओर भागा लेकिन अन्त में उसको आत्मसमर्पण करना पड़ा। सम्राट ने उसे क्षमा कर दिया (1626)। उसके विद्रोह-काल में उसके दो पुत्रों-दारा और औरंगजेब को बन्धक के रूप में मुगल दरबार में रखा गया था।

(2) महावत खाँ का विद्रोह- खुर्रम के विद्रोह का दमन करने से महावत खाँ की प्रतिष्ठा में बहुत वृद्धि हो गई थी। वह शहरयार को उत्तराधिकारी बनाने के पक्ष में नहीं था, बल्कि परवेज को उत्तराधिकारी बनाकर स्वयं वजीर बनने को इच्छुक था। नूरजहाँ यह कैसे सहन कर सकती थी? उसने महावत खाँ को राजधानी से दूर बंगाल का सूबेदार बनाकर भेज दिया (1625)। उसने महावत खाँ पर गबन का आरोप लगाकर बंगाल और उड़ीसा की प्राप्त आय का हिसाब माँगा और दरबार में उपस्थित होने की आज्ञा दी। महावत खाँ सम्पूर्ण परिस्थिति को भाँप गया और 5 हजार राजपूत सैनिकों का संगठन कर विद्रोह कर दिया। इस समय जहाँगीर काबुल जा रहा था (मार्च, 1626)। महावत खाँ ने आकस्मिक आक्रमण कर जहाँगीर और नूरजहाँ को झेलम नदी पार करते समय बन्दी बना लिया। परन्तु नूरजहाँ अपनी कूटनीति से जहाँगीर और स्वयं को मुक्त करने में सफल हो गई। महावत खाँ भागकर खुर्रम के पास दक्षिण चला गया और उससे सन्धि कर ली। इसी समय शाहजादा परवेज की मृत्यु हो गई (18, अक्टूबर, 1626)।

जहाँगीर की मृत्यु तथा उत्तराधिकार का युद्ध- पर्याप्त समय से जहाँगीर का स्वास्थ्य बहुत खराब चल रहा था। फलतः काश्मीर से लाहौर लौटते समय 7 नवम्बर, 1627 को 58 वर्ष की आयु में उसका देहान्त हो गया। खुर्रम जो दक्षिण में था, दिल्ली की ओर बढ़ा। उसके श्वसुर आसफ खाँ ने उसकी सहायता की और शासन की सुरक्षा की दृष्टि से उसने खुसरो के नाबालिग पुत्र दावरबख्श को शासक घोषित कर दिया। नूरजहाँ के दामांद शहरयार ने लाहौर में अपने को शासक घोषित कर दिया, किन्तु आसफ खाँ ने लाहौर पर आक्रमण करके उसको परास्त कर दिया और उसकी आँखें निकलवा लीं। इसी बीच खुर्रम आगरा पहुँच गया और दावरबख्श का बध कराकर 4 फरवरी, 1628 को राजसिंहासन पर बैठा। उसके नाम का खुत्वा पढ़ा गया।

इसके बाद नूरजहाँ का राजनीतिक प्रभाव समाप्त हो गया। उसको दो लाख रुपया वार्षिक पेंशन दे दी गई। उसने अपने जीवन के 18वर्ष अपनी पुत्री के साथ लाहौर में व्यतीत किया। 17 दिसम्बर, 1645 को उसकी मृत्यु हो गई।

जहाँगीर का चरित्र एवं व्यक्तित्व

जहाँगीर का चरित्र बड़ा विवादास्पद विषय है। उसके चरित्र के विषय में दो विरोधी मत हैं। कुछ इतिहासकारों के मतानुसार वह एक न्यायप्रिय तथा लोकप्रिय शासक था। इसके विपरीत कुछ इतिहासकारों के मतानुसार वह क्रूर और निर्दयी शासक था तथा सुरा, सुन्दरी और सौंदर्य का दास था। कुछ उसे विरोधी गुणों का सम्मिश्रण मानते हैं। अतः सत्य की जानकारी के लिए उसके चरित्र के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करना आवश्यक है।

(1) व्यक्ति के रूप में– जहाँगीर व्यक्ति के रूप में अधिक उदार था। उसका व्यक्तित्व बहुत आकर्षक था। उसके हृदय में अपने पिता के प्रति बड़ा सम्मान था। यद्यपि उसने अपने पिता के विरुद्ध दो बार विद्रोह किया था किन्तु जब उसको अपनी मूर्खता का आभास हुआ तो बाद में उसको बड़ा पश्चाताप हुआ था। "राजसिंहासन पर आसीन होने के पश्चात् वह अपने पिता के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता रहा . . . . . ,, सिकन्दरा में निर्मित अकबर के स्मारक को पैदल चलकर जाता और समाधि- रज को शिरोधार्य करके अपने को प्रतिष्ठित करता।"

वह अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों के प्रति प्रेम-भाव रखता था। वह अपनी पत्नियों से भी प्रेम रखता था। मानबाई की मृत्यु पर उसने चार दिनों तक अन्न और जल ग्रहण नहीं किया। नूरजहाँ के प्रति उसका अटूट स्नेह था।

(2) सेनापति के रूप में– जहाँगीर ने बचपन से ही सैनिक-शिक्षा प्राप्त की थी। एक योग्य सैनिक के रूप में उसने कई युद्धों में भाग लिया था। वह एक कुशल तीरन्दाज था परन्तु उसमें नेतृत्व के गुणों का सर्वथा अभाव था। उसने अपने पिता की भाँति कोई विशेष विजयें प्राप्त न कीं। उसके काल की केवल मेवाड़ और काँगड़ा की विजयें अवश्य उल्लेखनीय हैं किन्तु उसका श्रेय जहाँगीर को नहीं, बल्कि शाहजादा खुर्रम को है। कन्धार उसके हाथ से निकल गया था। उसको पुनः अपने साम्राज्य के अन्तर्गत लाने का उसने कोई प्रयास नहीं किया।

जहाँगीर का चरित्र एवं व्यक्तित्व

1. व्यक्ति के रूप में
2. सेनापति के रूप में
3. विद्वान के रूप में
4. कला-प्रेमी के रूप में
5. शासक के रूप में
6. धार्मिक व्यक्ति के रूप में
7. दुर्बलताएँ

(3) विद्वान के रूप में– जहाँगीर एक विद्या-प्रेमी सम्राट था। उसको फारसी और तुर्की भाषाओं का अच्छा ज्ञान था तथा हिन्दी और अरबी भाषाओं से भी वह भलीभाँति परिचित था। 'तुजुक-ए-जहाँगीरी' उसका फारसी का एक अनूठा ग्रन्थ है। उसको वनस्पति विज्ञान, जन्तु विज्ञान आदि गंभीर विषयों के प्रति भी अनुराग था। वह प्रकृतिप्रेमी था। वह विद्वानों का आदर करता था। उसके दरबार में अनेक हिन्दू विद्वान विद्यमान थे।

(4) कला-प्रेमी के रूप में– जहाँगीर को कला से बड़ा अनुराग था। उसके शासन-काल में स्थापत्य-कला का बड़ा विकास हुआ। उसने सिकन्दरा में अपने पिता का मकबरा बनवाया जो स्थापत्य-कला का उत्कृष्ट नमूना है। चित्रकला का वह प्रेमी था। उसके काल में चित्रकला अपनी सीमा पर पहुँच गई थी। जहाँगीर स्वयं चित्रों का बड़ा पारखी था। उसने अपने आत्मपरिचय 'तुजुक-ए-जहाँगीरी' में लिखा है, "अपने विषय में मैं कह सकता हूँ कि चित्रकला में मेरी आसक्ति और विवेचना इस सीमा तक पहुँच चुकी है कि जब कोई चित्र मेरे सम्मुख

प्रस्तुत किया जाता है, चाहे मृत चित्रकार का हो या जीवित का, मैं देखकर बता सकता हूँ वह किसकी तूलिका से बना है और यदि एक चित्रपट पर अनेक व्यक्तियों की छवियाँ हैं, जो विभिन्न चित्रकारों द्वारा अंकित की गई हैं, तो मैं बता सकता हूँ कि अमुक मुख अमुक चित्रकार ने बनाया है। यदि एक मुख के नेत्र और भौंहें किसी अन्य ने रंगी हैं तो मैं बता सकता हूँ कि मुख, नेत्र और भौंहों के निर्माता कौन हैं?

जहाँगीर प्राकृतिक सौन्दर्य का उपासक था। उसने भारत की सरिताओं, झरनों, झीलों, पर्वतमालाओं का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। वह कश्मीर के प्राकृतिक सौंदर्य से विशेष प्रभावित था। उसे बाग लगवाने का बड़ा शौक था। उसने लाहौर और कश्मीर में कई बाग लगवाये थे।

(5) शासक के रूप में– जहाँगीर एक प्रभावशाली शासक नहीं था। उसमें रचनात्मक प्रतिभा का अभाव था। इलियट के अनुसार उसमें न मौलिकता थी और न प्रभाव था। उसने अपने पिता की राज्य-संचालन नीति में तनिक भी परिवर्तन नहीं किया। शासन सम्बन्धी कार्यों के प्रति उसमें अधिक उदासीनता आ गई थी। उसकी बेगम नूरजहाँ राज्य के कार्यों को सम्पादित करती थी। न्याय के क्षेत्र में उसने अवश्य एक प्रशंसनीय कार्य किया। जनसाधारण की फरियाद सुनने के लिए उसने अपने महल में एक सोने की जंजीर लगवा दी थी। वह सभी लोगों के साथ समान एवं निष्पक्ष न्याय करता था।

(6) धार्मिक व्यक्ति के रूप में– जहाँगीर के धार्मिक विश्वासों के सम्बन्ध में इतिहासकारों के विभिन्न मत हैं। सर टामस रो के अनुसार वह नास्तिक था। कुछ इतिहासकारों के अनुसार वह कट्टर मुसलमान था। कुछ के अनुसार वह ईसाई था। डॉ. आशीर्वादीलाल के अनुसार, वास्तविकता यह थी कि वह पूर्णतया किसी धर्म को मानने वाला नहीं था। वह एक उदार मुसलमान था और उसका धार्मिक विश्वास एवं क्रियायें सामान्यतः दूसरे धार्मिक सिद्धान्तों के प्रति सहिष्णुता की आधार-शिला पर अवलम्बित थीं। इस्लाम धर्म के अनुसार वह पाँच बार नमाज भी नहीं पढ़ता था और न रमजान के रोजे ही रखता था। इस बात में उसे विश्वास था कि ईश्वर एक है।"

हिन्दुओं के प्रति उसकी धार्मिक-नीति असहिष्णु थी। मेवाड़ और काँगड़ा विजय के समय उसने हिन्दू-मन्दिरों को ध्वस्त कराया। अजमेर की एक वाराह की मूर्ति को नष्ट कराकर एक जलाशय में फेंकवा दिया। उसने सिक्खों के गुरु अर्जुनदेव को मृत्यु-दण्ड दिया। फिर भी वह विभिन्न धर्मों के आचार्यों का आदर करता था। डॉ. बेनीप्रसाद के अनुसार कुछ घटनाओं को छोड़कर उसकी धार्मिक नीति उदार थी।

(7) दुर्बलताएँ– जहाँगीर के चरित्र में हुमायूँ की भाँति कुछ दुर्बलताएँ भी थीं। उसके चरित्र का सबसे बड़ा दोष यह था कि वह बड़ा शराबी था। एक बार उसने स्वयं कहा था कि मैंने भारतवर्ष का सारा राज्य अपनी प्यारी बेगम नूरजहाँ के हाथों के एक प्याली शराब तथा एक प्याला शोरबे के लिए बेच दिया है। सप्ताह में वृहस्पतिवार और रविवार को छोड़कर वह बहुत शराब पीता था। वह एक दिन में 20 प्याले तक पी जाता था। वह सुरा, सुन्दरी एवं सौन्दर्य में लिप्त रहता था। भोग-विलास में सदा लिप्त रहने के कारण ही उसकी बेगम नूरजहाँ वास्तविक रूप में भारत की शासिका बन गई थी। उसके अन्तःपुर में 800 स्त्रियाँ थीं।

क्या जहाँगीर में विरोधी गुणों का सम्मिश्रण था?– कुछ इतिहासकारों के अनुसार जहाँगीर का चरित्र विरोधी गुणों का सम्मिश्रण था। एडवर्ड टेरी जो सर टामस रो के साथ भारत आया था, लिखता है, "जहाँ तक राजा के स्वभाव का सम्बन्ध है वह मुझे विपरीत गुणों का मिश्रण प्रतीत होता है, क्योंकि वह अतिक्रूर था और कभी अत्यधिक उदार था।" वह आगे

लिखता है, "क्रोध में वह कभी-कभी अपराधी को जिन्दा आग में जला देने की आज्ञा दे देता अथवा अपनी आँखों के सामने हाथी के नीचे कुचलवा देता था। जब उसका क्रोध शान्त हो जाता तो वह अपनी अतिवादी प्रवृत्ति एवं प्रकृति पर पश्चात्ताप किया करता था।"

लेकिन डॉ. बेनीप्रसाद उपर्युक्त विचारों को उसके चरित्र का सही मूल्यांकन नहीं मानते। उनका कहना है, "उसके सम्पूर्ण जीवन पर दृष्टि डालने से यह मालूम होता है कि वह एक उदार हृदय व्यक्ति था। राजकुमार तथा शासक के रूप में कुछ घटनाएँ इसके क्रोध का प्रमाण देती हैं, जब उसने अमानवीय अत्याचार किए, लेकिन एक शासक के नाते उसमें मानवता, सहृदयता तथा मुक्तहृदयी भावना महान थीं।"

अन्त में डॉ. आशीर्वादीलाल के शब्दों में कह सकते हैं, "जहाँगीर एक सफल शासक और प्रबन्धक कहा जा सकता है। उसने अपने समय की आवश्यकताओं और दशाओं को समझने की अपूर्व क्षमता थी। उसने अपने पिता की राज्य संचालन नीतियों का अनुसारण किया। पर वह एक महान् रचनात्मक राजनीतिज्ञ न था, जो महान् राज्य सुधार की योजनायें प्रस्तुत कर सकता और भावी सन्तान के लिए उत्तमोत्तमं कानून बना सकता। उसमें अकबर के समान महान् आदर्श तथा गुण नहीं थे।"

नूरजहाँ का चरित्र

डॉ. बेनीप्रसाद के शब्दों में, 'मध्ययुगीन इतिहास में अन्य कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं हुआ जिसका जीवन इतना रोमांचकारी हो जितना कि नूरजहाँ का . . . . पूरे पन्द्रह वर्ष तक वह महिला मुगल-साम्राज्य में सबसे अधिक आकर्षक तथा प्रभावशाली थी।'

'नूरजहाँ में बड़ी अद्भुत प्रतिभा और भारी बुद्धिमता थी जिससे वह बिना किसी कठिनाई के साम्राज्य की कठिन समस्याओं का समझ लेती थी। कोई भी राजनीतिक तथा कूटनीतिक समस्या उसकी समझ से परे न थी। बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ और प्रभावशाली मन्त्री उसके निर्णय के सम्मुख नतमस्तक हो जाते थे।'

(1) सौन्दर्य– नूरजहाँ अनुपम सुन्दरी थी जिस कारण उसने सम्राट जहाँगीर के हृदय पर विजय प्राप्त कर ली थी। 40 वर्ष की आयु में भी मनमोहकता का गुण रखनां इस बात का प्रमाण है कि नूरजहाँ का रूप लावण्य अत्यधिक आकर्षक एवं सम्पूर्ण था। डॉ. ईश्वरीप्रसाद लिखते हैं कि 'उसकी बढ़ी हुई आयु भी उसकी सुन्दरता और आकर्षण को कम न कर सकी। कला और प्रकृति के संयोग ने उसकी मोहकता में भारी वृद्धि की थी और स्त्रियों में जो कुछ भी प्रिय और मोहक है उन सबके लिये वह दूर-दराज तक विख्यात हो गई।'

(2) पति-प्रिया– अपने विलक्षण सौन्दर्य के परिणामस्वरूप उसे सम्राट का अपूर्व स्नेह मिला। जिस भाँति नूरजहाँ जहाँगीर से प्रेम करती थी, उसी भाँति जहाँगीर भी उससे प्रेम करता था। जहाँगीर ने उसे अपने साम्राज्य का समस्त कार्यभार तक सौंप दिया था।

(3) मानसिक-प्रतिभा– नूरजहाँ ने अपनी मानसिकता प्रतिभा के कारण भारत के सम्राट जहाँगीर के हृदय पर विजय प्राप्त की थी। वह अत्यन्त बुद्धिमान थी और प्रत्येक समस्या को समझने की क्षमता रखती थी। उसे फारसी का पूर्ण ज्ञान था। वह कवयित्री भी थी तथा साधारण छन्दों की रचना भी करती थी, कविता भी लिखती थी।

(4) उदारता– नूरजहाँ उदार प्रवृत्ति की महिला थी। उसकी उदारता ने प्रजा के हृदय पर विजय प्राप्त की थी। लेनपूल ने लिखा है कि 'वह अपने समर्थकों के लिए बड़ी ही उदार थी और उसकी पूरी तरह से सहायता करती थी। वह अनाथ लड़कियों का विवाह करा देती थी, स्वयं खर्च का भार उठाती थी।

(5) स्वामिभक्ति– नूरजहाँ रूपमती होने के साथ अभिमानिनी नहीं थी। लेखक डिलेट के कथनानुसार 'जहाँगीर नूरजहाँ को बचपन से प्रेम करता था, किन्तु उसका सम्बन्ध शेर अफगन से हो चुका था। यद्यपि जहाँगीर राजकुमार था परन्तु फिर भी मेहरुन्निसा ने अपने पति शेर अफगन को ही अपना स्वामी माना। शेर अफगन की मृत्यु पर वह अधिक दुःखी हुई। जब उसने जहाँगीर से विवाह कर लिया तो वह तन-मन से जहाँगीर की सेवा में निरन्तर रही और अपने को संकट में डालकर उसने महावत खाँ की कैद से छुड़ा लिया।' जहाँगीर के प्रति उसका प्रेम अप्रतिम था। वह अपने सम्पूर्ण प्रेम के साथ जहाँगीर को प्यार करती थी और उसने उसे अपने आकर्षण के पाश में बन्दी बना लिया था।

6. कला-प्रेमी– नूरजहाँ ने तरह-तरह के वस्त्रों, आभूषणों एवं शृंगारों को जन्म दिया। उसने नए-नए आकार के किमखाब, जरी, बेल-बूटे, दरियाँ आदि निकाल कर कला को प्रोत्साहन प्रदान किया। खाफी खाँ लिखता है कि 'नूरजहाँ द्वारा चलाया फैशन समाज को शासित करता था। नूरजहाँ नए-नए प्रकार के सुनहरे आभूषणों के नमूने रखती थी, भाँति-भाँति के फूल, सुगन्धित तेल व इत्र का वह प्रयोग करती थी। गुलाब से इत्र की उत्पत्ति भी नूरजहाँ द्वारा खोजी गई थी।'

7. कुशल राजनीतिज्ञ एवं दृढ़ संकल्प– नूरजहाँ अपने विचारों में दृढ़ रहती थी। वह जिसकी ओर झुक जाती थी उसे पूर्णतः उन्नति की चरम सीमा तक पहुँचा देती थी। जब तक वह खुर्रम की ओर झुकी रही उसे काफी उन्नति दिलाई, उसे शाहजहाँ की उपाधि से भी विभूषित कराया। जब उसके विरुद्ध हुई तो पिता को उसके विरुद्ध करके शाहजहाँ को विद्रोह करने के लिये विवश किया। महावत खाँ तथा खुर्रम को न मिलने दिया। खुसरो की हत्या का षडयन्त्र रचाया। राजनीति का उसने ऐसा जाल बिछा दिया था कि उसमें सभी दरबारी आबद्ध रहे। यदि भाग्य उसका साथ देता तो वह शहरयार को सम्राट का उत्तराधिकारी भी बना देती। नूरजहाँ में दृढ़ संकल्प का महान् गुण था। उसकी राजनीति के समक्ष महावत खाँ एवं खुर्रम भी नतमस्तक हो गये थे।

(8) स्वार्थी– नूरजहाँ के चरित्र का सबसे बड़ा दोष उसका स्वार्थी होना था। उसने जहाँगीर से विवाह करके अपने ही परिवार के लोगों का हित किया, उन्हें उच्च पदों पर नियुक्त करवाया। वह स्वयं जहाँगीर पर प्रभुत्व जमाए हुए थी। उसकी पूरी राजनीति स्वार्थ का ही परिणाम थी। उसके स्वार्थ के कारण जहाँगीर के दरबार में दलबन्दी का बीजारोपण हुआ।

(9) द्वेष-भावना– नूरजहाँ के चरित्र में भी यह एक विशेष दोष था कि वह किसी की उन्नति नहीं देख सकती थी। द्वेष की भावना के कारण ही उसने सम्राट से महावत खाँ को अपमानित कराया। इस कलुषित भावना से ही वह निम्न से निम्न काम को करने में संकोच नहीं करती थी। ईर्ष्या के कारण ही उसने खुर्रम को दक्षिण से हटवाया। उसकी ईर्ष्या से ही खुसरो का वध हुआ।

(10) दलबन्दी की अभिरुचि– नूरजहाँ के कारण ही जहाँगीर के दरबार में दलबन्दी का प्रारम्भ हुआ। डॉ. ईश्वरी प्रसाद का अभिमत है कि 'नूरजहाँ के अपने भारी प्रभाव से अपने पति को आनन्द के पथ पर इतनी तेजी से आगे बढ़ाया कि उसने साम्राज्य और जनता के विषय में रुचि लेना बन्द कर दिया और मदिरा को ही परम मित्र बनाने लगा।'

यद्यपि नूरजहाँ में अनेक गुण थे परन्तु फिर भी राजनैतिक दृष्टि से उसका प्रभाव राज्य पर अच्छा न पड़ा।

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ (Important Dates & Events)

1. 1569 ई. – जहाँगीर का जन्म।
2. 1605 ई. – जहाँगीर का राज्याभिषेक।
3. 1606 ई. – जहाँगीर के ज्येष्ठ पुत्र खुसरो का विद्रोह।
4. 1607 ई. – शेर अफगन की हत्या।
5. 1611 ई. – जहाँगीर का मेहरुन्निसा (नूरजहाँ) से विवाह।
6. 1615 ई. – सर टामस रो का भारत आगमन।
7. 1622 ई. – शाहजादा खुर्रम का विद्रोह तथा कन्धार का हाथ से निकल जाना।
8. 1626 ई. – महावत खाँ का विद्रोह।
9. 1627 ई. – जहाँगीर की मृत्यु।
10. 1645 ई. – नूरजहाँ की मृत्यु।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. जहाँगीर के समय की मुख्य-मुख्य घटनाओं का वर्णन करते हुए उसके सफल या असफल होने की विवेचना कीजिए। (1972)
2. जहाँगीर के शासन-काल की प्रमुख घटनाओं का विवरण दीजिए। (1978,80,99)
3. जहाँगीर के शासन-काल में नूरजहाँ का क्या प्रभाव पड़ा? विस्तार से लिखिए। (1983)
4. नूरजहाँ के चरित्र का वर्णन कीजिए। जहाँगीर के शासनकाल के अंतिम वर्षों में उसकी राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं के क्या परिणाम हुए? (1996)
5. जहाँगीर के राज्यकाल में नूरजहाँ की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए। (2005)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "जहाँगीर के शासन संचालन में नूरजहाँ वास्तविक शक्ति थी।" इस कथन की विवेचना कीजिए (1970)
2. "जहाँगीर में विरोधी गुणों का सम्मिश्रण था।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।
3. "पूरे पन्द्रह वर्षों तक वह महिला मुगल साम्राज्य में सबसे अधिक प्रभावशाली थी।" इस कथन के आलोक में नूरजहाँ की राजनीतिक उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।
4. "जहाँगीर के काल में ललित कलाओं, मुख्यतः चित्रकला का विकास हुआ।" समीक्षा कीजिए।
5. "जहाँगीर के शासनकाल में शासन की वास्तविक शक्ति नूरजहाँ के हाथों में थी।" इस कथन की व्याख्या कीजिए। (1997)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. जहाँगीर की मेवाड़-विजय का उल्लेख कीजिए।
2. क्या जहाँगीर में विरोधी गुणों का सम्मिश्रण था?
3. क्या शेर अफगन की हत्या में जहाँगीर का हाथ था?
4. जहाँगीर की दक्षिण-नीति का मूल्यांकन कीजिए। (1994)
5. जहाँगीर के शासन काल में निर्मित भवनों का उल्लेख कीजिए। (1995)

6. जहाँगीर काल की चित्रकला पर प्रकाश डालिए।
7. जहाँगीर के शासनकाल में नूरजहाँ का क्या प्रभाव था?
8. नूरजहाँ के महत्व की विवेचना कीजिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. जहाँगीर की माता का नांम बताइए।
जहाँगीर की माता का नाम जोधाबाई (मरियम-उज-जमानी) था।
2. जहाँगीर के बचपन का नाम क्या था?
जहाँगीर के बचपन का नाम सलीम था।
3. नूरजहाँ के पिता तथा उसके प्रथम पति का नाम बताइए।
नूरजहाँ के पिता का नाम मिर्जा गयासबेग तथा उसके प्रथम पति का नाम शेर अफगन (अलीकुली खाँ) था।
4. जहाँगीर का राज्याभिषेक कहाँ हुआ था?
जहाँगीर का राज्याभिषेक आगरा में हुआ था।
5. जहाँगीर के दो पुत्रों के नाम बताइए।
जहाँगीर के दो पुत्र– खुसरो तथा खुर्रम (शाहजहाँ) थे।
6. जहाँगीर काल के दो विद्रोह बताइए।
जहाँगीर काल के दो विद्रोह थे– खुर्रम का विद्रोह तथा महावत खाँ का विद्रोह।
7. जहाँगीर के शासन-काल में आए दो अंग्रेज राजदूतों के नाम बताइए।
जहाँगीर के शासन-काल में आने वाले दो अंग्रेज राजदूत– विलियम हाकिन्स (1608 ई.) तथा सर टामस रो (1615-1619 ई.) थे।
8. नूरजहाँ की मृत्यु कब हुई थी?
नूरजहाँ की मृत्यु 1645 ई. में हुई थी।
9. जहाँगीर का मकबरा कहाँ स्थित है?
जहाँगीर का मकबरा लाहौर में स्थित है?

बहुविकल्पीय प्रश्न

निर्देश : नीचे दिये गये प्रत्येक प्रश्न के चार विकल्पों में से सही विकल्प छाँटकर लिखिए :

1. जहाँगीर का सिंहासनारोहण कब हुआ था?
(क) 1600 ई., (ख) 1605 ई., (ग) 1604 ई., (घ) 1606 ई.।
2. नूरजहाँ व जहाँगीर का विवाह कब हुआ था?
(क) 1606 ई. (ख) 1610 ई., (ग) 1611 ई., (घ) 1612 ई.।
3. जहाँगीर की मृत्यु कब हुई थी?
(क) 1605 ई., (ख) 1607 ई., (ग) 1627 ई., (घ) 1629 ई.।
4. जहाँगीर ने मेवाड़ पर विजय कब प्राप्त की थी?
(क) 1610 ई., (ख) 1620 ई., (ग) 1622 ई., (घ) 1615 ई.।
5. जहाँगीर की कब्र भारत से बाहर कहाँ है?
(क) काबुल, (ख) लाहौर (पाकिस्तान), (ग) कंधार, (घ) हिरात।

6. जहाँगीर ने किस कला को विशेष रूप से संरक्षण प्रदान किया?
(क) वास्तुकला, (ख) मूर्तिकला, (ग) चित्रकला, (घ) संगीत कला।

7. शेर अफगन की हत्या कब हुई थी?
(क) 1606 ई. (ख) 1607 ई. (ग) 1610 ई. (घ) 1615 ई.

8. नूरजहाँ की मृत्यु कब हुई थी?
(क) 1622 ई. (ख) 1626 ई. (ग) 1628 ई. (घ) 1645 ई.

9. सर टामस रो भारत कब आया था?
(क) 1606 ई. (ख) 1611 ई. (ग) 1615 ई. (घ) 1622 ई.

10. खुसरो का वध कब किया गया?
(क) 1606 ई. (ख) 1622 ई. (ग) 1608 ई. (घ) 1614 ई.

11. जहाँगीर के विरुद्ध खुसरो ने कब विद्रोह किया?
(क) 1603 ई. (ख) 1604 ई. (ग) 1605 ई. (घ) 1606 ई.

12. जहाँगीर के विरुद्ध शाहजादा खुर्रम ने कब विद्रोह किया?
(क) 1620 ई. (ख) 1622 ई. (ग) 1624 ई. (घ) 1626 ई.

13. जहाँगीर के विरुद्ध महावत खाँ ने कब विद्रोह किया?
(क) 1626 ई. (ख) 1627 ई. (ग) 1628 ई. (घ) 1629 ई.

14. नूरजहाँ का मकबरा कहाँ स्थित है?
(क) आगरा (ख) लाहौर (ग) दिल्ली (घ) औरंगाबाद

■

6

शाहजहाँ

[1628-58]

> "शाहजहाँ इस प्रकार शासन नहीं करता था, जैसे एक राजा अपनी प्रजा पर करता है। उसका शासन ऐसा था, जैसे पिता का अपने परिवार तथा पुत्रों पर होता है।"
>
> –टैवर्नियर

प्रारम्भिक जीवन

जन्म– शाहजहाँ का जन्म 5 जनवरी, 1592 को लाहौर में हुआ था। उसकी माता मारवाड़ के कोटा राजा उदयसिंह की पुत्री मानवती (उपनाम जगत गुसाइंन) थी। शाहजहाँ के बचपन का नाम खुर्रम था। वह अपने पितामह अकबर का सबसे अधिक प्रिय पौत्र था। उसकी दक्षिण-विजय से प्रसन्न होकर जहाँगीर ने उसको 'शाहजहाँ' की पदवी प्रदान की थी।
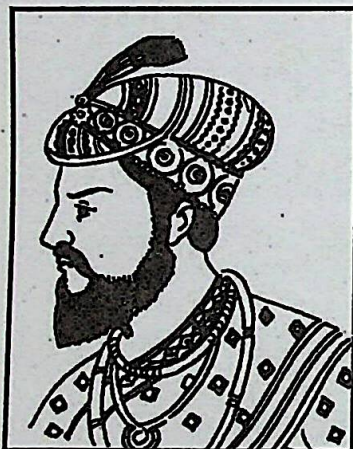
शिक्षा– बचपन से ही उसकी शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध किया गया। उसने फारसी भाषा और साहित्य का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। इसके अतिरिक्त उसने राजनीति, इतिहास, भूगोल तथा धर्मशास्त्र आदि का भी अध्ययन किया। तुर्की भाषा के प्रति उसे रुचि नहीं थी। अस्त्र शस्त्र चलाने की भी उसने शिक्षा प्राप्त की थी।

विवाह तथा उत्कर्ष– बीस वर्ष की आयु में शाहजहाँ का विवाह नूरजहाँ के भाई आसफ खाँ की पुत्री अरजुमन्द बानू बेगम के साथ हुआ था। यही महिला इतिहास में मुमताज बेगम के नाम से विख्यात है। अपने पिता के शासन काल में ही वह साम्राज्य का उत्तराधिकारी समझा जाने लगा। 1607 में जहाँगीर ने उसे 8,000 जात और 500 सवार का मनसबदार बना दिया। 1608 में उसको हिसारफिरोजा की जागीर प्रदान की गई। 1612 में उसका पद 12,000 जात और 5,000 सवार तथा 1614 में 15,000 जात तथा 8,000 सवार कर दिया गया। कुछ समय के बाद उसका मनसब बढ़ाकर 30,000 जात तथा 20,000 सवार कर दिया गया। उसने मेवाड़ के राजा अमर सिंह तथा दक्षिण से मलिक अम्बर को आत्म-समर्पण के लिए बाध्य किया। इस सफलता से उसकी ख्याति बढ़ गई। इसके पश्चात् उसको दक्षिण का गवर्नर बना दिया गया और गुजरात का प्रान्त भी उसकी
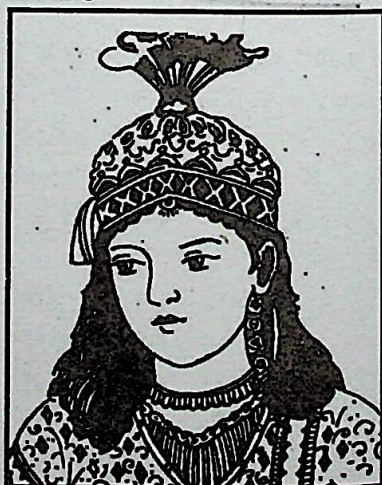
अध्यक्षता में सौंप दिया गया।

शाहजहाँ का विद्रोह– जैसा कि पिछले अध्याय में लिखा जा चुका है, नूरजहाँ के व्यवहार से तंग आकर शाहजहाँ ने विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया, लेकिन अन्त में उसे आत्मसमर्पण करना पड़ा। जहाँगीर ने उसको क्षमा प्रदान कर उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित किया।

सिंहासनारोहण– जहाँगीर की मृत्यु होने पर नूरजहाँ के दामाद शहरयार ने लाहौर में अपने को बादशाह घोषित कर दिया। आसफ खाँ ने अपने दामाद शाहजहाँ की सहायता की और सुरक्षा की दृष्टि से उसने खुसरो के नाबालिग पुत्र दावरबख्श को बादशाह घोषित कर दिया। उसने लाहौर पर आक्रमण करके शहरयार को बन्दी बना लिया। शाहजहाँ जो दक्षिण में था, 28 जनवरी, 1628 को आगरा पहुँचा और दावरबख्श को हटाकर 14 फरवरी, 1628 ई. को बड़ी धूमधाम से राजसिंहासन पर बैठा और उसने 'अबुल मुजफ्फर शिहाबुद्दीन मुहम्मद साहिब-ए-किरान सानी शाहजहाँ बादशाह गाजी' की उपाधि धारण किया। उसने आसफ खाँ को अपना वजीर नियुक्त किया और उसे 8,000 जात व 7,000 सवार का मनसबदार बना दिया। महावत खाँ को 7,000 जात व 7,000 सवार का पद तथा खानखाना की उपाधि प्रदान की।

शासन-काल की प्रमुख विशेषताएँ

शाहजहाँ के शासन-काल की निम्नलिखित घटनाएँ उल्लेखनीय हैं–

खानेजहाँ लोदी का विद्रोह (1628)– खानेजहाँ लोदी एक योग्य किन्तु उपद्रवी अफगान सरदार था। जहाँगीर की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार-युद्ध में उसने शहरयार का पक्ष लिया था। शाहजहाँ के गद्दी पर बैठने पर उसने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। सम्राट ने उसे क्षमा कर दिया। किन्तु उसे पुनः दक्षिण का सूबेदार नहीं बनाया और आगरा बुला लिया। उसको जीवन तथा धन की सुरक्षा का आश्वासन दे दिया गया, किन्तु वह आगरा से 1,200 अफगानों के साथ भाग निकला। शाही सेना ने उसका पीछा किया। खानेजहाँ मालवा की ओर भागा। अन्त में मुगल सेना के साथ युद्ध करता हुआ अपने पुत्रों सहित मारा गया (1631)।

जुझारसिंह बुन्देला का विद्रोह (1628-1629)– वीरसिंह बुन्देला की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र जुझारसिंह ओरछा का शासक बना। शाहजहाँ के राज्याभिषेक के समय अपने पुत्र विक्रमजीत पर शासन का भार सौंपकर वह सम्राट की सेवा में आगरा चला आया। विक्रमजीत ने निर्दयतापूर्वक प्रजा से मालगुजारी वसूल की। उसके कृत्य से अप्रसन्न होकर शाहजहाँ ने जाँच-पड़ताल की आज्ञा दे दी। जुझारसिंह इससे घबड़ा उठा और ओरछा लौट आया तथा विद्रोह कर दिया। परन्तु महावत खाँ ने उसको पराजित कर दिया। सन्धि की शर्तों के अनुसार उसको 15 लाख रुपये हर्जाने के रूप में और 1,000 सोने की मोहरें तोहफे के रूप में देनी पड़ीं।

पुर्तगालियों का दमन (1631-32)– हुगली नदी के किनारे बंगाल में रहने वाले पुर्तगालियों का व्यवहार जनता के साथ अच्छा नहीं था। वे बलपूर्वक वहाँ के लोगों को ईसाई बना लेते थे। ग्रामों की लूटमार करते और बड़े-बूढ़ों को उठा ले जाते थे। टेवर्नियार के अनुसार, "बूढ़े लोगों को उन्हीं के निवास-स्थान पर बेचने लगते और युवक लोग धन देकर अपने माता-पिता को छुड़ाते थे। वह दृश्य बहुत ही दर्दनाक होता था। इस प्रकार के कार्यों से शाहजहाँ बहुत क्रोधित हुआ। उसने जल तथा स्थल मार्गों से पुर्तगालियों पर आक्रमण करने का आदेश दे दिया तीन महीने तक दोनों ओर की सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ। अन्त में पुर्तगालियों को आत्म-समर्पण करना पड़ा।" इस युद्ध में 10,000 पुर्तगाली तथा 1,000 मुगल सैनिक मारे गये एवं 44C पुर्तगाली बन्दी बनाकर लाये गये। उनको आदेश दिया गया कि या तो वे इस्लाम धर्म स्वीकार कर लें या आजीवन कारावास का दण्ड स्वीकार करें। इस प्रकार शाहजहाँ ने पुर्तगालियों का दमन कर दिया।

जुझारसिंह बुन्देला का पुनः विद्रोह (1635-36)– जुझारसिंह बुन्देला ने 1635

में पुनः विद्रोह कर दिया। औरंगजेब को उसके विद्रोह का दमन करने के लिए भेजा गया। जुझारसिंह पराजित हुआ और उसके पुत्र विक्रमजीत का वध कर दिया गया। उसके अन्य दो पुत्रों को मुसलमान बना दिया गया। जुझारसिंह का भी सिर काटकर दरबार में भेज दिया गया। ओरछा के मन्दिर नष्ट कर दिये गये। शाहजहाँ ने भरत सिंह के लड़के देवीसिंह को वहाँ का शासक नियुक्त कर दिया।

1630 का भयंकर अकाल– 1630 में गुजरात व खानदेश में भयंकर अकाल पड़ा। इसमें असंख्य मनुष्य भूख से तड़प-तड़प कर मर गये। सड़कें लाशों से पट गईं। शाहजहाँ ने प्रजा को भोजन देने के लिए निःशुल्क भोजनालय खोले और मालगुजारी का 1/3 भाग क्षमा कर दिया। तत्कालीन इतिहासकार मिराज अमीन काजवीनी ने अकाल की दुर्दशा का वर्णन इस प्रकार किया है, "भूख के कारण हजारों व्यक्ति अपने बच्चों को खा गये। हड्डी का चूर्ण आटे में मिलाकर प्रयोग किया गया। कुत्तों का गोश्त खाद्य सामग्री बन गया। अकाल ने अनेक ग्रामों तथा नगरों को उजाड़ दिया।"

मुमताज महल की मृत्यु (1631)– शाहजहाँ की कई पत्नियाँ थीं, लेकिन वह अर्जुमन्द (मुमताज महल) को अत्यधिक प्रेम करता था। उसके 14 सन्तानें हुई थीं जिनमें से केवल 7 जीवित रही थीं। 7 जून, 1631 को कन्या के जन्म के समय उसकी मृत्यु हो गई।

दक्षिणी-नीति– शाहजहाँ ने अपने पूर्वजों की दक्षिणी नीति को जारी रखा। वह कट्टर सुन्नी मुसलमान होने के कारण दक्षिण के शिया मुसलमानों को घृणा की दृष्टि से देखता था। मुगलों के विद्रोहियों को दक्षिण के राज्यों में शरण भी मिलने लगी थी। अतः शाहजहाँ ने दक्षिण के राज्य– अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा को अपने अधीन करने का निश्चय कर लिया।

1. अहमदनगर पर आक्रमण– मुगल सेना ने 1632 में अहमदनगर पर आक्रमण किया। मुगल सेनापति महावत खाँ ने मलिक अम्बर के पुत्र फतेह खाँ तथा सुलतान हुसेनशाह को आत्मसमर्पण करने के लिए बाध्य कर दिया। फतेह खाँ को दो लाख वार्षिक पेंशन दे दी गई। हुसेनशाह ग्वालियर भेज दिया गया। इस प्रकार अहमदनगर मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया।

2. बीजापुर पर आक्रमण– शाहजहाँ ने बीजापुर पर आक्रमण करने के लिए मुगल सेना औरंगजेब के नेतृत्व में भेजा। औरंगजेब ने बड़ी कुशलता से सेना का संचालन करके बीजापुर का घेरा डाल दिया। बीजापुर के सुलतान ने शाहजहाँ की अधीनता स्वीकार कर ली। उसने 1 लाख रुपये वार्षिक कर देना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार बीजापुर मुगल सम्राट के अधीन हो गया।

3. गोलकुण्डा पर आक्रमण– शाहजहाँ ने गोलकुण्डा के सुलतान को भी नतमस्तक करने का निश्चय किया। मुगल के आक्रमण के भय से गोलकुण्डा के सुलतान ने शाहजहाँ को वार्षिक कर देना प्रारम्भ कर दिया किन्तु कुछ दिनों बाद उसने कर देना बन्द कर दिया। अतः औरंगजेब को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया गया। औरंगजेब के आक्रमण से भयभीत होकर उसने पुनः कर देना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार गोलकुण्डा भी मुगलों के अधीन हो गया।

मध्य एशिया की नीति– शाहजहाँ अपने पूर्वजों की जन्म-भूमि मध्य एशिया पर अधिकार करना चाहता था। उसने मुराद की अध्यक्षता में एक विशाल सेना बल्ख पर आक्रमण करने के लिए भेजी। मुराद ने 1646 में बल्ख पर अधिकार कर लिया। 1647 में औरंगजेब बुखारा की ओर बढ़ा। अब्दुल अजीज की उजबेग सेना के साथ उसका भयंकर युद्ध हुआ। औरंगजेब को पीछे हटना पड़ा। वह बड़ी मुश्किल से काबुल पहुँचा। फलतः शाहजहाँ ने मध्य एशिया की विजय का ध्यान ही छोड़ दिया। बल्ख पर स्थायी रूप से उसका अधिकार न रह सका।

मध्य एशिया के युद्धों में मुगलों को जान-माल की बड़ी हानि उठानी पड़ी। इस सम्बन्ध में सर यदुनाथ ने लिखा है, "देश की समृद्धि ने शाहजहाँ का मस्तिष्क फेर दिया। हिन्दूकुश पर्वत

के आगे एक अपरिचित स्थान में भारतीय सेनाओं को ले जाना एक गलत कार्य था। इसमें असफलता मिलनी स्वाभाविक थी। शत्रु प्रदेश की एक इंच भी जमीन मुगल साम्राज्य में न मिलाई जा सकी और न बल्ख का राजवंश ही बदला जा सका।"

कन्धार का हाथ से निकलना– 1638 में मुगल सेना ने कन्धार पर अधिकार कर लिया, लेकिन फारस के शाह ने 1649 में कन्धार पर आक्रमण कर दिया और 57 दिन के घेरे के बाद उस पर अधिकार कर लिया। शाहजहाँ ने कन्धार को पुनः प्राप्त करने लिए तीन बार (1649, 1652, 1653) आक्रमण किया लेकिन तीनों ही बार उसको असफलता का आलिंगन करना पड़ा। अन्त में निराश होकर शाहजहाँ ने कन्धार पर अधिकार करने का विचार ही त्याग दिया।

कन्धार के इन तीनों आक्रमणों से साम्राज्य की आर्थिक दशा को काफी धक्का पहुँचा। इसमें लगभग 12 करोड़ रुपये व्यय हुआ और कोई विशेष लाभ न हो सका। एक इंच भूमि भी मुगल सम्राट को न मिल सकी। मुगल सम्राट के हाथ से केवल कन्धार का दुर्गम दुर्ग ही न छिना, अपितु आस-पास का बहुत सा प्रदेश भी उसके हाथ से निकल गया। बहुत से आदमी तथा बोझा ढोने वाले जानवर मारे गये। बादशाह की राजनीतिक तथा सैनिक कुशलता को भी काफी धक्का पहुँचा।

निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि शाहजहाँ की मध्य एशिया तथा उत्तर पश्चिम-सीमा नीति असफल रही।

उत्तराधिकारी का युद्ध

6 सितम्बर, 1657 को शाहजहाँ बीमार पड़ गया। इस समय उसकी अवस्था 65 वर्ष हो चुकी थी। उसकी बीमारी का समाचार चारों ओर फैल गया। प्रजा की चिन्ता दूर करने के लिए एक सप्ताह पश्चात् वह 'झरोखा दर्शन' के लिए बैठा। जलवायु परिवर्तन की दृष्टि से 18 अक्टूबर, 1657 को वह आगरा चला गया। परन्तु अपनी शक्ति का ह्रास होते देखकर उसने दाराशिकोह को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

शाहजहाँ के चार पुत्र थे। उनका जन्म मुमताज के गर्भ से हुआ था। भाइयों में सबसे बड़ा दारा था। उसकी आयु 43 वर्ष की थी। उसे 'शाह इकबाल' की उपाधि मिली थी। शाहजहाँ उसे अधिक प्यार करता था। इससे वह प्रायः आगरा में अपने पिता के पास ही रहता था। वह बड़ा ही उदार तथा दयालु स्वभाव का था। उस पर शियाओं, सूफियों तथा हिन्दू वेदान्तियों का अत्यधिक प्रभाव पड़ा था। राजधानी में रहने के कारण वह साम्राज्य की समस्याओं से भी परिचित था। परन्तु जितना उसे प्रशासकीय अनुभव था उतना सामरिक अनुभव न था। फिर भी वीरता, साहस तथा उत्साह का उसमें अभाव न था। एक लेखक के अनुसार, "दारा का पालन-पोषण अपने पिता की नर्तकियों और भाँड़ों के बीच हुआ था, इसलिए, उसे युद्धों का पर्याप्त अनुभव नहीं था और वह विश्वासघातियों की बातों पर आवश्यकता से अधिक विश्वास करता था।" लेनपूल के अनुसार, "वह कवि या सुन्दर दार्शनिक हो सकता था, भारत का शासक कभी नहीं।"

शाहशुजा शाहजहाँ का दूसरा पुत्र था। उसकी आयु 41 वर्ष की थी। वह सेनापति के रूप में बड़ा ही कुशल सैनिक था। उसमें सबसे बड़ा अवगुण यह था कि वह विलासिता का दास था। लेनपूल के अनुसार, "शाहशुजा का रनिवास ही उसके जीवन का बन्दी-गृह था।" मद्य-पान के कारण वह निर्बल, जाहिल और कायर हो गया था। इस समय वह बंगाल का सूबेदार था।

औरंगजेब शाहजहाँ का तीसरा पुत्र था। उसकी आयु 39 वर्ष की थी। वह सेनापति के रूप में अपने भाइयों में सबसे अधिक योग्य था। वह बड़ा ही वीर, साहसी तथा दृढ़ संकल्प वाला व्यक्ति था। उसने अनेक युद्धों में भाग लिया था। उसकी अध्यक्षता में दो बार कन्धार पर आक्रमण किया गया था। धार्मिक दृष्टि से वह कट्टर सुन्नी मुसलमान था। राजनीतिज्ञता एवं कूटनीतिज्ञता उसमें उच्चकोटि की थी। इस समय वह दक्षिण का सूबेदार था। बर्नियर के अनुसार, "वह कुशल

राजनीतिज्ञ तथा महान शासक था और उसमें अद्वितीय प्रतिभा थी।" लेनपूल का कथन है, "वह विरोधी तत्वों का अद्‌भुत सम्मिश्रण था। उसमें अनेक महान् गुण थे, उसका आचरण पवित्र तथा भला था, पर मनुष्य-मात्र का नायक बनने का एक आवश्यक तत्व उसमें न था। वह किसी के हृदय को जीत न सकता था।"

मुराद शाहजहाँ का चौथा तथा सबसे छोटा पुत्र था। उसकी आयु 33 वर्ष थी। वह भी अत्यन्त विलास-प्रिय था। उसमें दूरदर्शिता का पूर्ण अभाव था। उसमें सैनिक प्रतिभा तथा प्रशासकीय प्रतिभा का भी अभाव था। बर्नियर के अनुसार, "उसका मूल विचार यह रहता था कि वह किस प्रकार अपने जीवन में आनन्द उठा सके। उसको रणभूमि तथा मदिरा पान का आनन्द एक सा आकर्षित करता था।" इस समय वह गुजरात का सूबेदार था।

इसके अतिरिक्त शाहजहाँ की दो लड़कियाँ जहाँआरा व रोशनआरा भी थीं जिन्होंने उत्तराधिकार के युद्ध में भाग लिया। जहाँआरा ने दारा की और रोशनआरा ने औरंगजेब की मदद की।

उत्तराधिकार युद्ध की घटनाएँ– शाहजहाँ की बीमारी का समाचार पाते ही औरंगजेब, मुराद तथा शाहशुजा ने दारा के विरुद्ध युद्ध की तैयारियाँ प्रारम्भ कर दीं। यद्यपि दारा ने बीमारी का समाचार गुप्त रखने का प्रयास किया, किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। सबसे पहले मुराद ने गुजरात में अपने को सम्राट घोषित कर दिया। शुजा ने भी बंगाल में अपने को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया; लेकिन औरंगजेब ने अपने-आपको स्वतन्त्र शासक घोषित नहीं किया। उसने अपनी बहन रोशनआरा तथा गुप्तदूतों द्वारा आगरा के सभी परिवर्तनों और तैयारियों की पूरी जानकारी प्राप्त कर ली। उसने मुराद से एक गुप्त सन्धि की जिसमें यह तय हुआ कि दोनों संयुक्त सेनायें दिल्ली की ओर बढ़ें तथा दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार हो जाने पर सिंधु, पंजाब, काश्मीर तथा काबुल का प्रान्त मुराद को दे दिया जायगा, शेष औरंगजेब के अधीन रहेगा।

(क) बहादुरपुर का युद्ध (14 फरवरी, 1658)– शुजा बंगाल में अपने को स्वतंत्र घोषित कर आगरा की ओर बढ़ा। बिहार को रौदते हुए वह 24 जनवरी, 1658 को बनारस पहुँचा दूसरी ओर दारा ने अपने पुत्र सुलेमान शिकोह और राजा जयसिंह को शुजा का सामना करने लिए भेजा। 14 फरवरी, 1658 को बनारस के निकट बहादुरपुर नामक स्थान पर दोनों ओर की सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ जिसमें शुजा की हार हुई। पराजित होकर शुजा बंगाल की ओर भाग गया।

(ख) धरमत का युद्ध (15 अप्रैल, 1658)– गुप्त सन्धि के परिणाम स्वरूप मुराद और औरंगजेब की संयुक्त सेनायें आगे बढ़ीं। दारा ने जसवन्तसिंह और कासिम खाँ को औरंगजेब और मुराद का समाना करने के लिए भेजा। 15 अप्रैल, 1658 को धरमत नामक स्थान पर दोनों ओर की सेनाओं के बीच भीषण संग्राम हुआ। राजपूत बड़ी वीरता से लड़े परन्तु कुशल सेनापति के अभाव में उनकी पराजय हुई। जसवन्तसिंह बुरी तरह घायल हुआ और विवश होकर उन्हें मैदान से हटना पड़ा। यह युद्ध उत्तराधिकार के युद्धों में एक महत्वपूर्ण युद्ध था।

(ग) सामूगढ़ का युद्ध (29 मई, 1658)– अब मुराद और औरंगजेब की विजयी सेनायें आगरा की ओर बढ़ीं। इस बार दारा ने अपनी सेना का संचालन स्वयं किया। 29 मई, 1658 को आगरा के पूर्व 13 किमी की दूरी पर सामूगढ़ नामक स्थान पर दारा और उसके भाइयों की सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ जिसमें दारा परास्त हुआ। वह भागकर आगरा पहुँचा और अपनी स्त्री तथा बच्चों को साथ लेकर दिल्ली भाग गया। इस युद्ध में उसके 10,000 सैनिक मारे गये। यह युद्ध निर्णायक तथा उत्तराधिकार का सबसे बड़ा युद्ध था। औरंगजेब ने 8 जून, 1658 को शाहजहाँ को बन्दी बना लिया और शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली।

(घ) मुराद की गिरफ्तारी व उसका अन्त– आगरा पर अधिकार करने के पश्चात्

औरंगजेब ने दारा का पीछा किया किन्तु उसे यह समाचार मिला कि मुराद ने 20,000 सेना इकट्ठी कर ली है। औरंगजेब ने चालाकी से काम किया। उसने मथुरा के पास मुराद को एक शानदार दावत दी और उसे अत्यधिक शराब पिलाकर गिरफ्तार कर लिया। उसे ग्वालियर के दुर्ग में बन्द कर दिया गया। अन्ततः 25 दिसम्बर 1661 को उसे मृत्यु के घाट उतार दिया गया।

(ङ) दारा का अन्त– मुराद को बन्दी करने के उपरान्त औरंगजेब ने दारा का पीछा किया। दारा बिना युद्ध किये ही दिल्ली से लाहौर भाग गया। औरंगजेब इसका पीछा करते हुए लाहौर गया। दारा मुल्तान की ओर चला गया और वहाँ से सेहबान, थट्टा होते हुए गुजरात चला गया। अब औरंगजेब ने दारा का पीछा करने का काम अपने दो योग्य सेनापतियों–शेख मीर तथा दिलेर खाँ को सौंप कर स्वयं दिल्ली वापस आ गया। अहमदाबाद के सूबेदार ने दारा को दस लाख रुपया दिया। उसने इस धन से 10 सहस्र सैनिक एकत्र कर लिये। इसी समय उसे राजा जसवन्तसिंह ने अजमेर बुलाया और सहायता का वचन दिया। दारा ने जसवन्तसिंह को बहुत समझाया पर उसने उसकी एक न सुनी। आखिर दारा ने देवराई की घाटी में औरंगजेब की सेना से टक्कर ली, किन्तु वह पुनः पराजित हुआ। इस बार भी दारा गुजरात की ओर गया किन्तु अबकी बार अहमदाबाद के सूबेदार ने उसे अपने यहाँ शरण नहीं दी। इधर–उधर भटकने के अनन्तर उसने दादर (सिंध) के एक बलूची मुखिया मलिक जिसवन खाँ के यहाँ शरण ली। किन्तु उसने विश्वासघात करके दारा को बन्दी बना लिया और औरंगजेब के सुपुर्द कर दिया। दारा के साथ बहुत बुरा व्यवहार किया गया। उसे एक नंगे हाथी पर बैठाकर दिल्ली की सड़कों पर घुमाया गया। बर्नियर ने लिखा है, "मैंने हर जगह देखा कि लोग दारा की किस्मत पर आँसू बहा रहे हैं। मर्द, औरत, बच्चे सभी इस तरह विलाप कर रहे थे, मानो बहुत बड़ी विपत्ति आई हो।" दारा के प्रति प्रजा की इतनी अधिक सहानुभूति देखकर 15 सितम्बर, 1659 को उसका वध कर दिया गया। उसके ज्येष्ठ पुत्र सुलेमान शिकोह को भी मई, 1662 में ग्वालियर के दुर्ग में विष देकर समाप्त कर दिया गया।

(च) शाहशुजा का अन्त– सुलेमान शिकोह से पराजित होकर शुजा बंगाल की ओर भाग गया। इसी बीच उसने सेना का संगठन किया और आगरा की ओर बढ़ा। वह सितम्बर, 1658 में इलाहाबाद पहुँच गया। वहाँ से आगे बढ़ने पर उसने फतेहपुर जिले के खजुहा नामक स्थान पर औरंगजेब की सेनाओं से भीषण युद्ध किया जिसमें उसकी हार हुई। वह अराकान की ओर भाग गया, जहाँ पर उसका वध कर दिया गया।

इस प्रकार चार वर्षों के भीतर औरंगजेब ने अपने सभी प्रतिद्वन्द्वियों को समाप्त कर दिया। लेकिन बड़े आश्चर्य की बात है कि उसने शाहजहाँ का वध न कराया। श्रीनेत्र पाण्डेय के अनुसार, "जिस प्रकार शाहजहाँ ने अपने सिंहासनारोहण के पूर्व अपने सभी भाइयों तथा भतीजों की नृशंसतापूर्वक हत्या करवा दी थी उसी प्रकार औरंगजेब ने भी अपने सिंहासनारोहण के समय अपने भाइयों तथा भतीजों का क्रूरतापूर्वक वध करवा दिया। शाहजहाँ ने जैसा बोया था वैसा ही काटा।"

औरंगजेब की सफलता के कारण

1. वीर सैनिक तथा उच्चकोटि का सेनापति
2. महान् कूटनीतिज्ञ
3. दारा की असंगठित सेना
4. तोपखाने का प्रयोग
5. व्यवहारकुशल
6. कट्टर सुन्नी मुसलमान

औरंगजेब की सफलता के कारण– उत्तराधिकार के युद्ध में औरंगजेब की सफलता के मुख्य कारण निम्नलिखित थे :

(1) वीर सैनिक तथा उच्चकोटि का सेनापति– औरंगजेब में एक वीर सैनिक तथा उच्चकोटि के सेनापति के सभी गुण

विद्यमान थे जबकि उसके भाइयों में इन गुणों का अभाव था। अपने पिता के शासनकाल में उसने कई युद्धों में भाग लिया था। उसकी अध्यक्षता में दो बार कन्धार पर आक्रमण किया गया था। भीषण-से-भीषण परिस्थितियों के उत्पन्न होने पर भी वह विचलित नहीं होता था। इस प्रकार वह एक वीर सैनिक तथा उच्चकोटि का सेनापति था।

(2) महान् कूटनीतिज्ञ– औरंगजेब कूटनीति का महान् पण्डित था। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह सब प्रकार की कूटनीति का प्रयोग कर सकता था। उसने कूटनीति द्वारा ही मुराद को अपनी ओर मिला लिया और उद्देश्य की पूर्ति के उपरान्त उसका वध करवा दिया।

(3) दारा की असंगठित सेना– औरंगजेब की सेना की तरह शाही सेना संगठित न थी। उसमें हिन्दू और मुसलमानों का सम्मिश्रण था। युद्ध-स्थल पर मुसलमान सैनिक हिन्दू सैनिकों की सहायता नहीं करते थे। उसकी सेना में अनुशासन का भी अभाव था। इसके विपरीत औरंगजेब की सेना संगठित तथा अनुशासन-पालक थी।

(4) तोपखाने का प्रयोग– औरंगजेब का श्रेष्ठ तोपखाना भी उसकी सफलता का कारण रहा। सामूगढ़ के युद्ध में वह विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ। इसके विपरीत दारा का तोपखाना श्रेष्ठ न था।

(5) व्यवहारकुशल– औरंगजेब बड़ा व्यवहार कुशल था। वह अमीरों की सदैव हर संभव सहायता करता रहता था जिसके कारण उसे अमीरों का सदैव समर्थन मिलता रहा। उसके विरोधियों की संख्या कम थी।

(6) कट्टर सुन्नी मुसलमान– औरंगजेब एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था। फलतः उसको कट्टर मुसलमानों का सहयोग तथा सहानुभूति प्राप्त थी। इसके विपरीत दारा हिन्दू तथा मुसलमान सभी को बराबर महत्व देता था। वह बहुत उदार था। उसकी इस उदारता के कारण कट्टर मुसलमान उसको घृणा की दृष्टि से देखते थे।

उपर्युक्त सभी कारणों से उत्तराधिकार के युद्ध में औरंगजेब को सफलता मिली, शेष तीनों भाई पराजित हुए और मारे दिये गये।

शाहजहाँ के अन्तिम दिन– शाहजहाँ के जीवन के अन्तिम साढ़े सात वर्ष आगरा के दुर्ग शाहबुर्ज में बन्दी के रूप में व्यतीत हुए। इस संकटकाल में उसकी प्रिय पुत्री जहाँआरा सदा उसकी सेवा में रही। वह औरंगजेब के पुत्र मुहम्मद की उपस्थिति में ही किसी से बातें कर सकता था। कोई भी उससे पत्र व्यवहार नहीं कर सकता था। उसके मूल्यवान् आभूषण तथा रत्न धीरे-धीरे उससे छीन लिये गये। जनवरी, 1666 में वह बीमार पड़ गया और अन्त में 22 जनवरी, 1666 को उसने 74 वर्ष की आयु में सदैव के लिए आँखें मूँद लीं। कहा जाता है, "अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक वह ताजमहल की ओर अपलक नेत्रों से ताकता रहा।" कठोर औरंगजेब मृत्यु के उपरान्त भी बैर को न भूला। उसकी अर्थी साधारण नौकरों और हिजड़ों द्वारा ले जाई गयी। ताजमहल में ही अपनी प्रियतमा मुमताज महल जिसकी मृत्यु 1631 में हो गई थी, के पार्श्व में उसको दफना दिया गया।

शाहजहाँ का काल स्वर्णयुग

निस्संदेह शाहजहाँ का शासन-काल मुगल शासन का स्वर्ण-युग था। लेकिन इस कथन के सम्बन्ध में इतिहासकारों में बड़ा मतभेद है। अनेक इतिहासकार उसके काल को मुगल शासन का स्वर्ण-युग मानते हैं तो बहुत से इतिहासकार उसके काल की कटु आलोचना करते हैं। अतः दोनों पक्ष में विद्वानों के मतों का नीचे विश्लेषण करेंगे।

शाहजहाँ का काल स्वर्णयुग न था– अनेक इतिहासकारों के मतानुसार शाहजहाँ के काल को स्वर्ण-युग के नाम से पुकारना एक बड़ी भारी भूल होगी। डॉ. स्मिथ के अनुसार,

"शाहजहाँ व्यक्ति और शासक दोनों ही रूपों में असफल रहा। उसके शासन-काल को मध्यकालीन भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग कहना भ्रमपूर्ण है।" अत: इसको समझने के लिए निम्न तर्क दिये जा सकते है :

(1) व्यक्तिगत चरित्र– शाहजहाँ का चरित्र आदर्शमय नहीं था। उसने अपने पिता के विरुद्ध कई बार विद्रोह किया। उसने अपने भाई खुसरो तथा उसके पुत्र दावरबख्श का वध कराया। राजसिंहासन पर अधीन होने के उपरान्त अपने सब विरोधियों का अन्त कर दिया। अपने पुत्रों और पुत्रियों में दारा तथा जहाँआरा को अधिक प्रेम करता था जिसके कारण उसके जीवन काल में ही उसके पुत्रों में उत्तराधिकार युद्ध हुआ। वह बड़ा क्रोधी, कामातुर तथा विलासी था। मुमताज बेगम से अटूट प्रेम रखते हुए भी अन्य बहुत सी स्त्रियों को अपने अन्त:पुर में रखा था। प्रिय पत्नी मुमताज की मृत्यु के बाद उसकी बड़ी बेटी जहाँआरा उसके प्रेम की पात्र बनी। इस प्रकार जब उसका व्यक्तिगत जीवन ही उन्नत न था तो वह अपने काल को कैसे उन्नत बना सकता था।

(2) कट्टर मुसलमान– शाहजहाँ एक कट्टरपंथी मुसलमान था। उसने हिन्दुओं के प्रति धार्मिक असहिष्णुता की नीति अपनाई। उसने हिन्दुओं पर तीर्थ-यात्रा कर लगाया। उसने हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बननें के लिए बाध्य किया। जुझारसिंह बुन्देला के दो पुत्रों को मुसलमान बना लिया तथा विक्रमजीत का इसलिए वध करा दिया कि उसने इस्लाम धर्म स्वीकार करने से इनकार कर दिया था। उसकी इस नीति के फलस्वरूप हिन्दुओं में व्यापक असन्तोष की भावना फैल गयी। इस सम्बन्ध में डॉ. आशीर्वादीलाल ने लिखा है, "यह ठीक है कि उसके शासनकाल में प्रतिक्रियावादी भावना के बीज बोये जा चुके थे, जो फलस्वरूप मुगलवंश तथा साम्राज्य के पतन के मूल कारण थे। उसकी धार्मिक कट्टरता तथा असहिष्णुता ने ही औरंगजेबी प्रतिक्रियावादी शासन पद्धति को जन्म दिया था।

(3) अव्यवस्थित शासन-व्यवस्था– शाहजहाँ का प्रशासन बड़ा अव्यवस्थित था। उसमें मौलिकता का अभाव था। उसके शासन-काल में किसान, मजदूर, चपरासी तथा छोटे-छोटे दुकानदारों की दशा अच्छी न थी। उन्हें दैनिक जीवन की वस्तुएँ नहीं मिल पाती थीं। शाहजहाँ के काल में प्रान्तीय गवर्नर स्वतन्त्र हो गये थे। सड़कें भी बहुत सुरक्षित न थीं। किसानों के उपज का आधा भाग बड़ी कठोरता से वसूल किया जाता था। इस प्रकार उसकी शासन व्यवस्था संतोषजनक न थी।

(4) अपव्यय– शाहजहाँ का जीवन बड़ा ही विलासी था। अत: उसके काल में धन का खूब अपव्यय हुआ। उसने अनेक सुन्दर इमारतों के निर्माण में असंख्य धन व्यय किया जिसकी पूर्ति के लिए निर्धन प्रजा पर अनेक कर लगाये गये। डॉ. आशीर्वादीलाल के अनुसार, "जनता की धनराशि दरबारों की शान-शौकत को बढ़ाने के लिए खींची जा रही थी। इससे आर्थिक स्थिति डाँवाडोल हो गई थी और इस प्रकार राष्ट्र का दिवाला निकलना प्रारम्भ हो गया था।"

(5) भयंकर दुर्भिक्ष– शाहजहाँ के काल में गुजरात व खानदेश में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। इसके फलस्वरूप असंख्य मनुष्य तड़प-तड़प कर मृत्यु के ग्रास बन गये। सड़कें लाशों से पट गई थीं। ऐसी अवस्था में भी शासन की ओर से कोई व्यवस्था न की गई थी। अब्दुल हमीद लाहौरी के अनुसार, "एक-एक रोटी के लिए लोग अपना जीवन बेच रहे थे लेकिन कोई खरीदनें को तैयार न था। बाजारों में बकरे के नाम पर कुत्तों का मांस बिकता था और मरे हुए व्यक्तियों की हड्डियाँ पीसकर आटे में मिलाकर लोग बेचते थे।"

(6) दुर्बल सैनिक प्रबन्ध– शाहजहाँ में सैनिक संगठन की योग्यता का अभाव था। कन्धार पर विजय प्राप्त करने के लिए उसने तीन बार प्रयास किया, किन्तु तीनों बार ही केवल निराशा और असफलता हाथ लगी। इस कार्य में लगभग 12 करोड़ रुपये व्यय हुए और एक इंच

भूमि मुगल सम्राट को न मिल सकी। इससे मुगल सेना की निर्बलता दृष्टिगोचर होती है।

(7) कठोर न्याय व्यवस्था– डॉ. स्मिथ ने शाहजहाँ की न्याय व्यवस्था को बहुत कठोर बतलाया है। बर्नियर के अनुसार स्थानीय अधिकारियों का प्रजा पर ऐसा प्रबल एकाधिकार था कि उनके द्वारा सताई हुई प्रजा न्याय के लिए कहीं प्रार्थना नहीं कर सकती थी। पीटर मेंडी ने भी सूबेदारों को निर्दयी व बड़ा अत्याचारी बतलाया है। उसने बनारस में एक आदमी को पेड़ से उलटा लटकता हुआ देखा था, क्योंकि उसने मंदिर नष्ट करने की राजाज्ञा को मानने से इनकार कर दिया था। उसने बयाना और फतेहपुर सीकरी के बीच 250-300 मनुष्यों को सूली दिये जाते देखा था। माण्डेल्स्लो ने भी इसी प्रकार के अत्याचारों का उल्लेख किया है।

शाहजहाँ का काल स्वर्ण युग था– अनेक इतिहासकारों के मतानुसार शाहजहाँ का काल स्वर्णयुग था।

टैवर्नियर ने कहा है, "शाहजहाँ का शासन ऐसा था जैसा कि पिता का अपने परिवार तथा पुत्रों पर होता है।"

खाफी खाँ ने कहा है, "अकबर एक विजेता तथा व्यवस्थापक के रूप में सर्वश्रेष्ठ था, किन्तु जहाँ तक राज्य की व्यवस्था तथा सुप्रबन्ध, वित्त तथा प्रत्येक विभाग के सुशासन का सम्बन्ध है, भारत में कोई ऐसा शासक नहीं हुआ जिसकी तुलना शाहजहाँ से की जा सके।"

हण्टर के अनुसार, "शाहजहाँ के शासन-काल में मुगल साम्राज्य अपनी शक्ति तथा उन्नति के चर्मोत्कर्ष पर पहुँच गया था।"

प्रो. श्रीराम शर्मा के अनुसार, "शाहजहाँ का शासन-काल बड़ा गौरवपूर्ण और समृद्धशाली था। अतः उसे निस्सन्देह स्वर्ण-युग कहा जा सकता है।"

शाहजहाँ के काल को स्वर्ण-युग कहे जाने के सम्बन्ध में निम्न तर्क दिये जा सकते हैं :

(1) प्रजावत्सल सम्राट– शाहजहाँ अपनी प्रजा के साथ पुत्रवत् व्यवहार करता था। वह प्रजा के सुख-चैन का सदैव ध्यान रखता था जिसके कारण प्रजा के हृदय में उसके लिए बड़ा प्रेम तथा स्नेह था। गुजरात व खानदेश के भयंकर दुर्भिक्ष पीड़ितों की उसने यथासंभव मदद की थी। उसने बुरहानपुर, अहमदनगर और सूरत के प्रदेशों में भोजनालय खोले जहाँ गरीबों को निःशुल्क भोजन दिया जाता था। बुरहानपुर में बीस सप्ताह तक प्रत्येक सोमवार को दुर्भिक्ष पीड़ितों में 5 हजार रूपये बाँटे गये थे। इसी प्रकार अहमदाबाद में भी 50 हजार रुपये व्यय किये गये थे। मालगुजारी का 1/3 भाग माफ कर दिया गया। टैवर्नियर ने लिखा है, "शाहजहाँ ने ऐसा शासन नहीं किया जैसा कि राजा अपनी प्रजा पर करता है, बल्कि उसका शासन ऐसा था जैसा कि पिता अपने परिवार तथा पुत्रों पर करता है।" इस प्रकार वह प्रजा-पालक सम्राट था।

(2) शान्ति तथा सुव्यवस्था– शान्ति तथा सुव्यवस्था की दृष्टि से शाहजहाँ का शासन-काल स्वर्ण-युग था। कुछ विद्रोहों को छोड़कर इस काल में शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित रही। प्रान्तों के सूबेदार उसकी आज्ञाओं का पालन करते थे। उसके काल में कोई भी ऐसा शक्तिशाली व्यक्ति भारत में न था जो उसकी प्रभुता को चुनौती दे सकता। टैवर्नियर के

शाहजहाँ का काल मुगल-काल का स्वर्ण-युग क्यों?

1. प्रजावत्सल सम्राट
2. शान्ति तथा सुव्यवस्था
3. आर्थिक-सम्पन्नता
4. उत्तम न्याय-व्यवस्था
5. व्यापार में उन्नति
6. बाह्य आक्रमण का न होना
7. स्थापत्य कला का निर्माण
8. अन्य कलाओं का विकास
   - (अ) चित्रकला
   - (ब) संगीत-कला
   - (स) साहित्य की प्रगति
   - (द) शिक्षा का प्रसार
9. बाग-बगीचे

अनुसार मार्ग सुरक्षित थे। मनूची ने उसके शासन काल की सरायों की एक लम्बी सूची दी है। उसके अनुसार सम्पूर्ण साम्राज्य में सराएँ थीं, जिनमें घोड़ों, ऊँटों और गाड़ियों सहित 800 से 1,000 तक मनुष्य रह सकते थे।

(3) आर्थिक सम्पन्नता– शाहजहाँ का काल आर्थिक दृष्टि से बहुत सम्पन्न था। अब्दुल हमीद लाहौरी के कथनानुसार, "1644 में उसके राजकोष में 5 करोड़ 20 लाख रुपये की कीमत के जवाहरात तथा मोती थे।" मोरलैण्ड के अनुसार, "अच्छी वित्त-व्यवस्था के फलस्वरूप 1657 में 300 लाख रुपये सुरक्षित आय कर ली गई तथा शासन-काल के अन्तिम दिनों में वह 400 लाख रुपये बढ़ गई थी।" राय भारमल नामक समकालीन इतिहासकार ने शाहजहाँ के समय की आर्थिक समृद्धि का वर्णन करते हुए लिखा है, "सम्राट (शाहजहाँ) ने इन सुखमय दिनों में अपनी प्रजा का पालन-पोषण करने के लिए सभी साधनों का प्रयोग किया। राजकीय भूमि तथा उसके कृषकों की वह चिन्ता रखता और कृषि को प्रोत्साहन देता था। उसके इन कार्यों से साम्राज्य की आय और समृद्धि बहुत बढ़ गई थी। जिस परगना से अकबर के शासन-काल में तीन लाख रुपये की आय होती थी उससे अब दस लाख रुपये वसूल होता था।" इस प्रकार शाहजहाँ के काल में आर्थिक सम्पन्नता थी।

(4) उत्तम न्याय व्यवस्था– शाहजहाँ न्यायप्रिय शासक था। लुब्बतुवारीख का हिन्दू लेखक तथा मनूची उसके न्याय-प्रबन्ध की बड़ी प्रशंसा करते हैं। वह स्वयं सबसे बड़ा न्यायाधीश था। काजियों के विरुद्ध फैसलों की अपील वह स्वयं सुना करता था। उसकी जानकारी में कोई पदाधिकारी प्रजा पर अत्याचार नहीं कर सकता था। कहा जाता है कि वह एक बार नाट्य-मण्डली ने अपने अभिनय द्वारा गुजरात के सूबेदार के अत्याचारों का प्रदर्शन किया। सम्राट ने तुरन्त मामले की जाँच करने की आज्ञा दी और अपराध सिद्ध हो जाने पर उसको आजीवन कारावास की सजा का दण्ड दिया।

(5) व्यापार में उन्नति– शाहजहाँ के शासन-काल में पश्चिम एशिया के देशों के साथ भारत में व्यापारिक सम्बन्ध पहले की अपेक्षा अधिक सुदृढ़ हो गये। भारत की बनी अनेक वस्तुएँ यूरोपीय देशों को भेजी जाती थीं। इनसे भारतीय व्यापारियों को लाखों रुपयों की आय होती थी। व्यापारियों को आवागमन की सभी सुविधाएँ उपलब्ध थीं।

(6) बाह्य आक्रमण का न होना– शाहजहाँ के काल में किसी विदेशी आक्रमणकारी ने हमला नहीं किया। यद्यपि उसकी मध्य एशिया और कन्धार की नीति असफल रही लेकिन इससे उसकी राज्य सीमा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह विस्तृत साम्राज्य का अधिकारी बना रहा।

(7) स्थापत्य कला का निर्माण– डॉ. आशीर्वादीलाल के अनुसार, "शाहजहाँ का काल केवल कला और वास्तुकला की दृष्टि से भी स्वर्ण-युग कहा जा सकता है।" निस्सन्देह स्थापत्य कला के निर्माण में वह मुगल काल में सबसे आगे था। इसीलिए उसे 'इन्जीनियर सम्राट' कहा गया है। उसके काल में निम्न विशाल सुन्दर इमारतें बनीं :

(क) ताजमहल– शाहजहाँ द्वारा निर्मित इमारतों में ताजमहल उसकी सर्वश्रेष्ठ कृति है जो आगरा में यमुना नदी के तट पर 6.6 मीटर ऊँचे तथा 93.3 मीटर वर्गाकार चबूतरे पर बना हुआ है। इसके चारों ओर के मीनार 41.1 मीटर ऊँचे हैं। मकबरा 35.5 मीटर वर्गाकार है तथा इसके बीच में गुम्बद का व्यास 16 मीटर है। यह सफेद संगमरमर का बना हुआ है। इसे शाहजहाँ ने अपनी प्रियतमा मुमताज महल की याद में बनवाया था। यह दुनिया के सात आश्चर्यों में से एक है।

समकालीन लेखक अब्दुल हमीद लाहौरी के अनुसार, 'ताजमहल 12 वर्षों में बनकर तैयार हुआ और इसके निर्माण में 50 लाख रुपये व्यय हुए।' टैवर्नियर के अनुसार, 'इसके निर्माण

में 22 वर्ष लगे और इसमें 3 करोड़ रुपये व्यय हुए।' आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव के अनुसार इसके निर्माण में $4\frac{1}{2}$ करोड़ से भी अधिक रुपये खर्च हुए। दीवान-ए-अफरीदी ग्रन्थ के अनुसार इस इमारत के निर्माण में 9 करोड़ 17 लाख रुपये खर्च हुए, परन्तु डॉ. मजूमदार तथा रायचौधरी जैसे इतिहासविदों ने इसके निर्माण में आये खर्च को 50 लाख रुपया बतलाया है। कुछ विद्वानों ने ताजमहल को '**संगमरमर का स्वप्न**' और कुछ ने '**पवित्र प्रेम का प्रतीक**' कहा है। किसी ने इसको '**काल के कपोल पर अश्रुविन्दु**' कहा है।

ताजमहल के सम्बन्ध में कतिपय विद्वानों के मत :

बेयेनट- "यह उत्कृष्ट स्मारक यह सिद्ध करने को पर्याप्त है कि भारतीय स्थापत्य कला से अनभिज्ञ नहीं हैं।"

स्मिथ- "यह एशियाई तथा यूरोपीय प्रतिभा के सम्मिश्रण का प्रतिफल है।"

आर्नोल्ड इरविन- "ए ताज तुम अन्य भवनों की भाँति नहीं हो, बल्कि किसी सम्राट के प्रेम की वह गर्वित प्रेरणा हो, जिसे चमकते हुए कल्पना जगत के सजीव प्रस्तरों में मूर्तिमान किया गया है, जिसके साक्षात् सौन्दर्यरूपी शरीर में आत्मा और मस्तिष्क दोनों ही विश्राम करते हैं।"

शाहजहाँ- "इस भवन को देखते ही दुःख भरी आहें उठती हैं, सूर्य तथा चन्द्र भी अपने नेत्रों से अश्रु बहाते हैं, इस संसार में यह मन्दिर भगवान् की शान का प्रदर्शन करने के लिए ही मानो बनाया गया है।"

(ख) मोती मस्जिद- आगरा के किले में बनी हुई मोती मस्जिद भी विशेष रूप से उल्लेखनीय इमारत है। यह सम्पूर्ण श्वेत संगमरमर से बनी हुई है। इसके निर्माण में 3 लाख रुपये व्यय हुए एवं 5 वर्ष लगे। यह दीवान-ए-आम के उत्तर में स्थित है। इसकी लम्बाई 70.2 मीटर और चौड़ाई 56.4 मीटर है। इसकी सुन्दरता दर्शकों को आत्म-विभोर कर देती है। पर्सी ब्राउन ने इसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है- "बहुत थोड़ी सी ही धार्मिक इमारतें दर्शक को इस शाही मस्जिद की अपेक्षा अधिक पवित्र भावना से ओत-प्रोत करती हैं। मोती मस्जिदों का निर्माण आगरा के अतिरिक्त दिल्ली तथा लाहौर में भी किया गया, परन्तु उनमें आगरा के दुर्ग की मोती मस्जिद अतुलनीय है।"

(ग) आगरा के किले में शाहजहाँ के भवन- मोती मस्जिद के अतिरिक्त शाहजहाँ ने किले में मुसम्मन बुर्ज, दीवान-ए-आम, दीवान-ए-खास, शीश-महल, खास महल, नगीना मस्जिद आदि का निर्माण कराया। मुसम्मन बुर्ज में शाहजहाँ ने कैदी के रूप में अपने जीवन की घड़ियाँ बिताई थीं।

(घ) लालकिला- शाहजहाँ ने वर्तमान दिल्ली में यमुना किनारे 1639 में शाहजहाँबाद की नींव डाली। यहाँ उसने लालकिले का निर्माण कराया। इसमें रंग-महल, दीवान-ए-आम तथा दीवान-ए-खास बहुत प्रसिद्ध इमारतें हैं। दीवान-ए-खास सबसे अधिक अलंकृत है। इसकी दीवारों पर ये शब्द आज भी अंकित हैं :

"गर फ़िरदौस बर रूये ज़मीं अस्त। यीं अस्त, यीं अस्त, यीं अस्त।।"

अर्थात्- "यदि इस पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है, तो यहीं है, यहीं है, यहीं है।"

(ङ) जामा मस्जिद- शाहजहाँ ने लालकिले के ही समाने 1658 में लाल पत्थर की जामा मस्जिद का निर्माण कराया। यह भारत की जामा मस्जिदों में सबसे बड़ी है। इसमें 899 आदमी बैठ सकते हैं। इस मस्जिद के एक अभिलेख से पता चलता है कि इसके बनने में 5 लाख रुपये व्यय हुए और 5 वर्ष लगे। इसकी दो मीनारें 39 मीटर ऊँची हैं तथा बाहरी क्षेत्रफल 1,134 वर्गमीटर है।

(च) अन्य इमारतें– उपर्युक्त इमारतों के अतिरिक्त शाहजहा ने अजमेर में कई सुन्दर इमारतों का निर्माण कराया जिनमें जामा मस्जिद तथा निजामुद्दीन औलिया का मकबरा विशेष उल्लेखनीय हैं। उसने लाहौर में अपने पिता ज़हाँगीर का भी मकबरा बनवाया।

(छ) तख्स ताऊस– शाहजहाँ की कृतियों में तख्त ताऊस भी एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह मयूर की आकृति का बनवाया गया था। ताज के पश्चात् इसका ही नम्बर आता है। यह 3.15 मीटर लम्बा है और 2.25 मीटर चौड़ा, 4.5 मीटर ऊँचा था। यह 12 खम्भों पर स्थित था जिन पर बहुत कीमती हीरे, जवाहरातों के मयूर बने हुए थे। इसके निर्माण में 7 वर्ष लगे और एक करोड़ से अधिक रुपया व्यय हुआ। इस तख्त ताऊस को नादिरशाह अपने साथ फारस ले गया।

(8) अन्य कलाओं का विकास– स्थापत्य कला के साथ ही इस कला में चित्रकला, संगीत-कला, साहित्य एवं शिक्षा की भी पर्याप्त उन्नति हुई। इनका विवरण संक्षेप में इस प्रकार है :

(अ) चित्रकला– शाहजहाँ चित्रकला का भी प्रेमी था। उसने चित्रकला की ओर भी ध्यान दिया। परन्तु समालोचकों के अनुसार इस काल की चित्रकला में मौलिकता का अभाव है। मोहम्म्द कादिर, आसफ खाँ, मीरहाशिम, अनूप, चित्रा, फकीरउल्ला उसके समय के प्रसिद्ध चित्रकार थे। स्मिथ महोदय का कहना है, "शाहजहाँ के शासन काल में चित्रकला चरमोन्नति को पहुँच गई थी।"

(ब) संगीत-कला– शाहजहाँ संगीत का प्रेमी था। उसके दरबार में बहुत से गायक थे। वह स्वयं संगीत का अच्छा ज्ञाता था। वह गायकों को बड़ा सम्मान देता था। उसने संस्कृत राजकवि जगन्नाथ को उसके गाने से प्रसन्न होकर सोने-चाँदी से तौल दिया था। रामदास और महापात्र उसके दरबार के प्रमुख गायक थे। सम्राट स्वयं बड़ा अच्छा गवैया था। सम्राट के संगीत की प्रशंसा करते हुए यदुनाथ सरकार ने लिखा है, "अनेक शुद्धात्मा सूफी फकीर तथा संसार से संन्यास लेने वाले साधु-सन्त भी उसका गाना सुनकर सुध-बुध बिसार देते थे और परमानन्द में लीन हो जाते थे।"

(स) साहित्य की प्रगति– शाहजहाँ के काल में साहित्य के क्षेत्र में बड़ी प्रगति हुई। अब्दुल हमीद लाहौरी का 'बादशाहनामा', अमीन्न कज़वीनी का 'बादशाहनामा', इनायत खाँ का 'शाहजहाँनामा', मुहम्मद सालेह का 'आलम-ए-सालेह', खाफी खाँ का 'मतखब-उल-लुबाब' आदि इस काल के प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं। उसके दरबारी कवियों में मुहम्मद जान, कलीम, जगन्नाथ, चन्द्रभान आदि प्रमुख थे। कवीन्द्र आचार्य सरस्वती हाजी संस्कृत साहित्य के अच्छे विद्वान थे। हिन्दी साहित्य में 'सिंहासन बत्तीसी', 'बारहमासा' आदि ग्रन्थों की रचना हुई। अतः साहित्य की दृष्टि से यह स्वर्ण काल कहा जा सकता है।

(द) शिक्षा का प्रसार– शाहजहाँ के काल में शिक्षा के प्रसार की ओर भी ध्यान दिया गया। अनेक मकतब तथा मदरसे खोले गये। उसने दिल्ली की जामा मस्जिद के निकट शिक्षा का केन्द्र खोला। अजमेर, आगरा, दिल्ली, लाहौर मुस्लिम शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे। काशी व बंगाल हिन्दू-शिक्षा के केन्द्र थे। इस प्रकार इस काल में शिक्षा का भी अच्छा प्रसार हुआ।

(9) बाग-बगीचे– शाहजहाँ को बाग लगवाने का बड़ा शौक था। उसने लाहौर में शालीमार, दिल्ली में ताल कटोरा और काश्मीर में नजीर बाग का निर्माण कराया। लाहौर के शालीमार बाग की प्रशंसा इन शब्दों में की गई है, "यह बाग ऐसा सुन्दर और आनन्ददायक है कि पोस्ता का रंग-बिरंग फूल तो इसके सामने अत्यन्त तुच्छ है। सूर्यमुखी और चन्द्रमुखी पुष्प ही इसके सुन्दर दीप हैं।"

उपर्युक्त विपक्ष एवं पक्ष के तर्कों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि शाहजहाँ

का काल वास्तव में मुगलकाल का स्वर्ण-युग था। लेनपूल ने भी कहा है, "शाहजहाँ अपनी उदारता के लिए प्रसिद्ध था और इसीलिए वह अपनी प्रजा का अत्यन्त प्रिय था।"

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ (Important Dates & Events)

1. 1592 ई. – शाहजहाँ का जन्म।
2. 1628 ई. – शाहजहाँ का सिंहासनारोहण।
3. 1628 ई. – बुन्देलों का विद्रोह।
4. 1630 ई. – खानदेश व गुजरात में भयंकर अकाल।
5. 1631 ई. – मुमताज की मृत्यु।
6. 1658 ई. – धरमत का युद्ध तथा सामूगढ़ का युद्ध।
7. 1659 ई. – दारा को मृत्यु-दण्ड।
8. 1661 ई. – मुराद का अन्त।
9. 1662 ई. – दारा के ज्येष्ठ पुत्र सुलेमान शिकोह का अन्त।
10. 1666 ई. – शाहजहाँ का देहावसान।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. शाहजहाँ के पुत्रों के उत्तराधिकार-युद्ध का वर्णन कीजिए। औरंगजेब को उसमें क्यों सफलता प्राप्त हुई? (1965,90)
2. शाहजहाँ के राज्य-काल में कला और साहित्य की क्या दशा थी? (1960,80)
3. शाहजहाँ के राज्य-काल में शासन-प्रबन्ध कैसा था? क्या आप इस कथन से सहमत हैं कि वह अपने पिता के समान अपनी प्रजा की रक्षा करता था? (1961)
4. शाहजहाँ के शासन-काल को मुगल-काल का स्वर्णयुग क्यों कहा जाता है? (1963,66,67)
5. शाहजहाँ द्वारा निर्मित इमारतों का उल्लेख कीजिए। (1999)
6. शाहजहाँ की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए। (2000)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "शाहजहाँ का शासनकाल मुगल-काल का स्वर्ण-युग था।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं? (1968,71,74,84,92,97)
2. "शाहजहाँ का काल केवल कला और वास्तुकला की दृष्टि से ही स्वर्ण-युग कहा जा सकता है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
3. "शाहजहाँ भारतीय शासकों में सर्वाधिक प्रतापी था।" इस कथन के आलोक में शाहजहाँ की उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए। (1987)
4. "शाहजहाँ एक महान् निर्माता था।" इस कथन की व्याख्या कीजिए। (1991)
5. "शाहजहाँ का शासन काल, भारत में मुगलकाल का स्वर्ण युग था।" इस कथन की समीक्षा कीजिए। (2001, 06)
6. "शाहजहाँ का काल साधारणतया मुंगल शासन काल का सुनहरा और वैभवशाली काल था।" विश्लेषण कीजिए। (2005)
7. "शाहजहाँ का शासन काल संभवतः भारतीय इतिहास का सर्वाधिक समृद्धशाली युग था।" इस कथन की आलोचना कीजिए। (उ.प्र.2007)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. शाहजहाँ काल की प्रमुख घटनाएँ क्या थीं?
2. उत्तराधिकार के युद्ध में औरंगजेब की सफलता के क्या कारण थे? (1987)
3. शाहजहाँ द्वारा निर्मित इमारतों का उल्लेख कीजिए। (1985)
4. शाहजहाँ के काल में साहित्य और कला की क्या प्रगति हुई?
5. शाहजहाँ के काल को मुगलकाल का स्वर्ण-युग क्यों कहा जाता है?
6. शाहजहाँ की मध्य एशियाई नीति की विवेचना कीजिए।
7. शाहजहाँ के स्थापत्य कला की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
8. ताजमहल की किन्हीं चार स्थापत्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **शाहजहाँ के बचपन का नाम बताइए।**
   शाहजहाँ के बचपन का नाम खुर्रम था।
2. **शाहजहाँ के पुत्रों का नाम बताइए।**
   शाहजहाँ के चार पुत्र- दाराशिकोह, शुजा, मुराद तथा औरंगजेब थे।
3. **शाहजहाँ का विवाह कब और किसके साथ हुआ था?**
   शाहजहाँ का विवाह 1619 ई. में आसफ खाँ की पुत्री अर्जुमन्द बानू बेगम (मुमताज महल) के साथ हुआ था।
4. **राज्यारोहण के बाद शाहजहाँ को किन विद्रोहों का सामना करना पड़ा था?**
   (1) खानेजहाँ लोदी का विद्रोह, तथा (2) जुझारसिंह बुन्देला का विद्रोह।
5. **शाहजहाँ द्वारा निर्मित दो भव्य इमारतों के नाम बताइए।**
   शाहजहाँ द्वारा निर्मित दो भव्य इमारतें हैं– आगरा का ताजमहल तथा दिल्ली की जामा मस्जिद।
6. **मुमताज महल तथा शाहजहाँ की कब्रें कहाँ स्थित हैं?**
   मुमताज महल तथा शाहजहाँ की कब्रें आगरा के ताजमहल में स्थित हैं।
7. **शाहजहाँ की दो पुत्रियों के नाम बताइए।**
   शाहजहाँ की दो पुत्रियाँ– जहाँआरा तथा रोशनआरा थीं।
8. **शाहजहाँ ने अपने किस पुत्र को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था?**
   शाहजहाँ ने अपने ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था।
9. **दिल्ली की जामा मस्जिद का निर्माण किसने कराया?**
   दिल्ली की जामा मस्जिद का निर्माण सम्राट शाहजहाँ ने कराया।
10. **दिल्ली की जामा मस्जिद की वास्तुकला की एक मुख्य विशेषता लिखिए?**
    जामा मस्जिद के निर्माण में लाल पत्थर का प्रयोग हुआ है।
11. **क्या आगरा के किला में शीशमहल व मोती मस्जिद हैं?**
    हाँ, आगरा के किला में शीशमहल व मोती मस्जिद हैं।

बहुविकल्पीय प्रश्न

निर्देश : नीचे दिये गये प्रत्येक प्रश्न के चार विकल्पों में से सही विकल्प छाँटकर लिखिए :

1. **शाहजहाँ का सिंहासनारोहण कब हुआ था?**
   (क) 1624 ई., (ख) 1628 ई., (ग) 1630 ई., (घ) 1632 ई.।
2. **शाहजहाँ की मृत्यु कब हुई थी?**
   (क) 1658 ई. (ख) 1660 ई., (ग) 1666 ई., (घ) 1668 ई.।

3. मुमताज महल की मृत्यु कब हुई थी?
(क) 1628 ई., (ख) 1631 ई., (ग) 1634 ई., (घ) 1635 ई.।

4. 'इंजीनियर सम्राट' किसे कहा गया है?
(क) जहाँगीर को, (ख) शाहजहाँ को, (ग) अकबर को, (घ) औरंगजेब को।

5. 'तख्त-ए-ताऊस' किसने बनवाया था?
(क) अकबर ने, (ख) जहाँगीर ने, (ग) शाहजहाँ ने, (घ) औरंगजेब ने।

6. दाराशिकोह को मृत्यु दण्ड कब दिया गया था?
(क) 1631 ई. (ख) 1657 ई. (ग) 1659 ई. (घ) 1660 ई.

7. 'शालीमार बाग' कहाँ स्थित है?
(क) दिल्ली (ख) आगरा (ग) लाहौर (घ) कश्मीर।

■

7

औरंगजेब

[1658-1707]

> "औरंगजेब का जीवन एक महान् असफलता थी, किन्तु वह एक शानदार असफलता थी। उसकी शान इसी बात में थी कि उसने अपनी आत्मा के विरुद्ध, अपनी आस्था के विरुद्ध कभी कोई काम नहीं किया। भारत का महान् कट्टरधर्मी बादशाह, वास्तव में, शहीदों का ताज पहनने वाले लोगों की मिट्टी का बना था।"
> –लेनपूल

प्रारम्भिक जीवन

जन्म– औरंगजेब का जन्म 3 नवम्बर, 1618 को उज्जैन के निकट दोहद नामक स्थान पर हुआ था।[1] उसका पूरा नाम मुहीबउद्दीन औरंगजेब था। शाहजहाँ के विद्रोहकाल में औरंगजेब तथा दारा को नूरजहाँ के पास बंधक के रूप में रक्खा गया। जब शाहजहाँ ने आत्म-समर्पण कर दिया तथा उसे क्षमा कर दिया गया तब इन दोनों भाइयों को मुक्त कर दिया गया। इस कारण 10 वर्ष की उम्र तक औरंगजेब की शिक्षा का कोई अच्छा प्रबन्ध न किया जा सका।

शिक्षा– औरंगजेब की शिक्षा 10 वर्ष की आयु के पश्चात् हुई। मुहम्मद हाशिम को उसका शिक्षक बनाया गया। उसने फारसी और अरबी का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। उसने सैनिक शिक्षा भी उच्चकोटि की प्राप्त की। औरंगजेब ने धार्मिक ग्रन्थों का भी अध्ययन किया। वह कुरान तथा हदीस का पण्डित था।

उत्कर्ष– 1634 में औरंगजेब दस हजार अश्वारोहियों का मनसबदार बनाया गया। अगले वर्ष उसको बुन्देलों के विद्रोह का दमन कार्य सौंपा गया जिसमें वह पूर्णरूपेण सफल रहा। 1636 में उसे दक्षिण का सूबेदार बनाया गया। इस पद पर वह 1644 तक रहा। 1644 में उसे दक्षिण से वापस बुला लिया गया।

16 फरवरी, 1645 को उसे गुजरात का सूबेदार बनाया गया। यहाँ पर भी उसने अपनी सैनिक तथा प्रशासकीय प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया।

दो वर्ष पश्चात् 1647 में उसको बल्ख तथा बदख्शाँ पर आक्रमण करने के लिए भेजा गया। वहाँ उसने साहस और वीरता का अच्छा प्रदर्शन किया लेकिन वहाँ पर वह अपना अधिकार स्थायी न रख सका।

1648 से 1652 तक वह मुल्तान तथा सिन्ध का सूबेदार रहा। वहाँ उसने बड़ी योग्यता से शासन किया। वहाँ रहते उसने दो बार कन्धार पर आक्रमण किया लेकिन उस पर वह अपना अधिकार स्थायी न रख सका।

कन्धार की असफलता से अप्रसन्न होकर शाहजहाँ ने उसे पुनः 1652 में दक्षिण का सूबेदार बनाया। इस पद पर वह 1658 तक रहा। इस काल में उसने बहुत से आर्थिक सुधार

---

1. सर यदुनाथ के अनुसार औरंगजेब की जन्म तिथि 24 अक्टूबर, 1618 है।

किये। उसने वहाँ मुर्शीद कुली खाँ की सहायता से भूमि की पैमाइश कराई और खेतों की सिंचाई का प्रबन्ध किया। इसी बीच उसने गोलकुण्डा तथा बीजापुर के राज्यों पर भी विजय प्राप्त की। उसने इन दोनों प्रदेशों को मुगल साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया होता यदि दाराशिकोह के कहने पर शाहजहाँ ने मना न किया होता।

6 सितम्बर, 1657 को शाहजहाँ बीमार पड़ा और 1658 में उसकी मृत्यु की अफवाह फैल गई। फलतः उसके पुत्रों में उत्तराधिकार के लिए संघर्ष छिड़ गया। औरंगजेब अपने भाइयों में सबसे अधिक योग्य, दूरदर्शी तथा कूटनीतिज्ञ था। उसने अपनी कूटनीति द्वारा उत्तराधिकार के युद्ध में सफलता प्राप्त की और अन्त में अपने भाइयों का वध कर तथा बूढ़े पिता को बन्दी बनाकर सिंहासन प्राप्त कर लिया।

राज्याभिषेक– यद्यपि औरंगजेब ने 21 जुलाई, 1658 को अपने को बादशाह घोषित कर दिया था, किन्तु उसका विधिवत् राज्याभिषेक 5 जून, 1659 को दिल्ली में बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। औरंगजेब ने अपने भाइयों का वध कर दिया तथा बूढ़े पिता को बन्दी बनाकर सिंहासन प्राप्त किया था। प्रजा उसके इन कुकर्मों को भूल जाय अतएव उसने दिल खोलकर लोगों में धन तथा पुरस्कार बाँटे। सिंहासनारोहण के बाद उसने 'मुजफ्फर मुईउद्दीन औरंगजेब बहादुर आलमगीर बादशाह गाजी' की उपाधि ग्रहण की।

औरंगजेब की धार्मिक नीति

भारतीय इतिहास में जहाँ अकबर अपनी धार्मिक उदारता तथा सहिष्णुता के लिये विख्यात है, वहाँ औरंगजेब अपनी धार्मिक कट्टरता तथा असहिष्णुता के लिए विख्यात है। उसकी धार्मिक नीति इस्लामी आचार-विचारों पर आधारित थी। उसका व्यक्तिगत जीवन भी धार्मिकता से ओत-प्रोत था। वह धार्मिक कृत्यों का पूर्णतया पालन करता था। उसने विलासिता से अपने को दूर रक्खा और एक फकीर के समान जीवनयापन किया जिसके कारण वह 'जिन्दा पीर' के नाम से विख्यात हुआ। सिंहासन पर बैठने पर उसने शरीयत के अनुसार शासन करने का निश्चय किया और निम्न कार्य किए :

(1) करों का हटाना– उसने जजिया, जकात, खिराज तथा खुम्स नामक चार करों को छोड़कर लगभग अन्य करों को बन्द कर दिया।

(2) सिक्कों पर से कलमा हटाना– उसने सिक्कों पर कलमा खुदवाना बंद कर दिया, क्योंकि विधर्मियों के हाथ लग जाने से उसके अपवित्र होने का भय था।

(3) मादक वस्तुओं पर प्रतिबन्ध– उसने शराब तथा भाँग के सेवन पर प्रतिबन्ध लगा दिया। भाँग की उपज बंद कर दी गई।

(4) नौरोज पर प्रतिबन्ध– उसने फारस के नौरोज उत्सव पर प्रतिबन्ध लगा दिया, क्योंकि यह शरीयत के अनुसार न था।

(5) मुहतसिब की नियुक्ति– उसने इस्लाम के प्रचार के लिए मुहतसिब नामक पदाधिकारी नियुक्त किए। उनका कार्य लोगों के नैतिक जीवन को ऊँचा उठाना तथा कुरान के नियमों के अनुसार बनाना था।

(6) संगीत पर प्रतिबन्ध– 1668 में उसने संगीत पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इस सम्बन्ध में एक इतिहासकार लिखता है कि कुछ संगीतज्ञों ने बादशाह तक अपनी प्रार्थना पहुँचाने के लिए संगीत-अर्थी का एक जुलूस निकला। जुलूस शाही महल के नीचे से गुजरा। बादशाह ने शोर होने का कारण पूछा। मालूम हुआ कि संगीतज्ञ संगीत रानी की अर्थी लिये जा रहे हैं। यह सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और बोला कि संगीत को जमीन में इतना नीचे दफना दिया

जाय कि वह फिर कभी उभर न सके।

(7) झरोखा दर्शन पर प्रतिबन्ध– 1668 में उसने झरोखा दर्शन की पद्धति को बन्द कर दिया।

(8) मस्जिदों की मरम्मत– उसने टूटी हुई मस्जिदों की मरम्मत कराई।

(9) वेश्यावृत्ति पर प्रतिबन्ध– उसने वेश्यावृत्ति पर प्रतिबन्ध लगा दिया, किन्तु इसके लिए कोई नियम न बनाया जा सका।

(10) रेशमी कपड़ों पर प्रतिबन्ध– उसने रेशमी व सुनहले कपड़ों के पहनने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। वह स्वयं फकीरों की भाँति जीवन-यापन करता था।

हिन्दुओं के विरुद्ध कार्य– औरंगजेब की हिन्दू-विरोधी नीति का निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णन किया जा सकता है :

(1) हिन्दुओं के मन्दिरों को ध्वस्त करना– औरंगजेब ने हिन्दुओं के मन्दिरों को ध्वस्त करने की नीति अपनाई। 1644 में जबकि वह गुजरात का सूबेदार था, चूड़ामणि के हिन्दू-मन्दिर को ध्वस्त करवाकर उसके स्थान पर मस्जिद का निर्माण करवाया। उसने 9 अप्रैल, 1669 को यह आदेश जारी किया कि हिन्दुओं के सभी मन्दिरों को ध्वस्त कर दिया जाय। उसके इस आदेश के अनुसार सोमनाथ का दूसरा मन्दिर, बनारस का विश्वनाथ मन्दिर, मथुरा का केशवराय मन्दिर आदि ध्वस्त कर दिये गये और उनके स्थान पर मस्जिदों का निर्माण कराया गया। उसने मथुरा का नाम बदलकर इस्लामाबाद रख दिया। गत 10-15 वर्षों में जिन मन्दिरों का निर्माण हुआ था उनको भी ध्वस्त करा दिया। हिन्दुओं को नये मन्दिरों के निर्माण की आज्ञा नहीं थी। उसने अजमेर, जोधपुर, अयोध्या, हरिद्वार में भी अनेक मन्दिरों को ध्वस्त करवा दिया।

हिन्दुओं के विरुद्ध कार्य

1. हिन्दुओं के मन्दिरों को ध्वस्त करना
2. जजिया लगाना
3. हिन्दुओं को सरकारी नौकरियों से पृथक् करना
4. हिन्दुओं पर सामाजिक प्रतिबन्ध
5. हिन्दुओं पर चुंगी जारी रखना
6. इस्लाम धर्म स्वीकार करने का प्रोत्साहन देना

(2) जजिया लगाना– औरंगजेब ने जिस दिन (2 अप्रैल, 1679) मारवाड़ को मुगल साम्राज्य में मिलाया उसी दिन से उसने हिन्दुओं पर पुनः जजिया लगा दिया। हिन्दुओं को तीन श्रेणियों में बाँटा गया। प्रथम श्रेणी के लोगों को 48 दरहम, दूसरी श्रेणी के लोगों को 24 दरहम और तृतीय श्रेणी के लोगों को 12 दरहम का देना पड़ता था। समकालीन साहित्यकार मनूची के अनुसार- "ऐसे अनेकों हिन्दू जो यह कर नहीं दे सकते थे, इस कर के वसूल करने वालों द्वारा दिये जाने वाले अपमानों से छुटकारा पाने के लिए मुसलमान हो गये।"

(3) हिन्दुओं को सरकारी नौकरियों से पृथक् करना– 1671 में औरंगजेब के आदेशानुसार हिन्दुओं को माल विभाग से अलग कर दिया गया और उसके स्थान पर मुसलमान नियुक्त किये गये। किन्तु हिन्दू अधिकारियों के अभाव में माल-विभाग अव्यवस्थित हो गया। अतः विवश होकर उसे पुनः माल विभाग में हिन्दुओं को नियुक्त करना पड़ा। उसके शासनकाल में 'कानूनगो बनने के लिए मुसलमान बनना' एक लोकप्रसिद्ध कहावत हो गई थी।

(4) हिन्दुओं पर सामाजिक प्रतिबन्ध– औरंगजेब ने हिन्दुओं पर अनेक प्रकार के सामाजिक प्रतिबन्ध लगा दिए जिनमें प्रमुख इस प्रकार हैं :

(अ) राजपूतों के अतिरिक्त समस्त हिन्दुओं को हाथी, घोड़ों और पालकी पर चलने

के अधिकार से वंचित कर दिया। वे शस्त्र भी धारण नहीं कर सकते थे।

(ब) हिन्दुओं के विभिन्न तीर्थ-स्थानों पर मेला लगाना रोक दिया गया।

(स) हिन्दुओं के दशहरा, होली तथा दीवाली आदि त्योहारों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

(5) हिन्दुओं पर चुंगी जारी रखना– औरंगजेब ने हिन्दू व्यापारियों के साथ भी अच्छा व्यवहार नहीं किया। उसने हिन्दू व्यापारियों पर 5 प्रतिशत चुँगी लगाई तथा मुसलमानों पर 2.5 प्रतिशत चुंगी लगाई। कालान्तर में उसने मुसलमानों पर से चुंगी कर बिल्कुल उठा लिया।

(6) इस्लाम धर्म स्वीकार करने का प्रोत्साहन देना– हिन्दुओं को इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए अनेक प्रकार के प्रलोभन दिये गये। इस्लाम धर्म स्वीकार करने वालों को उच्च पदों पर नियुक्ति किया जाता था तथा उनको अनेक प्रकार की सुविधाएँ दी जाती थीं। मुसलमान बन जाने वाले कैदी को छोड़ दिया जाता था और उसको अनेक पुरस्कार प्रदान किये जाते थे।

धार्मिक नीति के परिणाम– औरंगजेब की धार्मिक नीति का परिणाम मुगल-साम्राज्य के लिए अहितकर सिद्ध हुआ। धार्मिक नीति के परिणामों का निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णन किया जा सकता है :

(1) आर्थिक परिणाम– आर्थिक क्षेत्र में राज्य की आय बहुत कम हो गई, क्योंकि मुसलमान करों से मुक्त कर दिये गये थे। इसके अतिरिक्त राज्यों को इस्लाम धर्म के प्रचार के लिये भी बहुत धन व्यय करना पड़ा था। हिन्दुओं की आर्थिक अवस्था शोचनीय हो गई। सरकारी नौकरियों से वंचित कर दिये जाने के कारण उनमें बेकारी फैल गई। फलतः बहुत से हिन्दू दक्षिण-भारत चले गये। इससे भी राज्य की आर्थिक व्यवस्था पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा।

(2) राजनीतिक परिणाम– औरंगजेब ने अपनी हिन्दू-विरोधी नीति के कारण हिन्दुओं को अपना कट्टर शत्रु बना लिया। परिणामस्वरूप चारों ओर विद्रोह हुए। संक्षेप में, विद्रोहों का विवरण इस प्रकार है :

औरंगजेब की धार्मिक नीति के परिणाम

1. आर्थिक परिणाम
2. राजनीतिक परिणाम–
   - (क) जाटों का विद्रोह
   - (ख) सतनामियों का विद्रोह
   - (ग) सिक्खों का विद्रोह
   - (घ) बुन्देलों का विद्रोह
   - (ङ) राजपूतों से संघर्ष
   - (च) मराठों से संघर्ष

(क) जाटों का विद्रोह– औरंगजेब की कट्टर धार्मिक नीति के कारण 1669 में मथुरा के जाटों ने गोकुल के नेतृत्व में विद्रोह किया। अनेक मस्जिदें गिरा दी गईं तथा हिन्दू-मन्दिरों को ध्वस्त करने वाले अब्दुलनवी नामक अधिकारी की हत्या कर दी गई। ज़ाटों के विद्रोह का दमन करने के लिए औरंगजेब ने एक सेना भेजी। तिलपत में जाटों की पराजय हुई और गोकुल जाट की नृशंसतापूर्वक हत्या कर दी गई। 1686 में राजाराम के नेतृत्व में पुनः विद्रोह हुआ। परन्तु उसका विद्रोह भी 1688 में दबा दिया गया और उसकी भी हत्या कर दी गई। राजाराम के बाद उसके भतीज़े चूड़ामन के नेतृत्व में यह संघर्ष चलता रहा। औरंगजेब इस विद्रोह को दबा न सका।

(ख) सतनामियों का विद्रोह– 1672 में दूसरा विद्रोह दिल्ली के दक्षिण-पश्चिम के नारनौल व मेवात के सतनामियों ने किया। सतनामियों का विद्रोह लगान वसूल करने वाले एक अधिकारी के प्यादे द्वारा सतनामी किसान की हत्या के कारण प्रारंभ हुआ। मुगल कर्मचारी के सेवक द्वारा किये गये अन्याय के प्रति सतनामियों ने संगठित होकर विद्रोह कर दिया। उन्होंने

नारनौल जिले और शहर पर अधिकार कर लिया। अन्ततः तोपखाने से सुसज्जित मुगल सेना से वे पराजित हुए। दो हजार सतनामी युद्ध-भूमि में मारे गये तथा बहुतों ने आत्म-समर्पण कर दिया।

(ग) सिक्खों का विद्रोह– औरंगजेब की धार्मिक नीति का सिक्खों के नवें गुरु तेगबहादुर ने प्रबल विरोध किया। इससे औरंगजेब ने गुरु तेगबहादुर को गिरफ्तार कर कारागार में डाल दिया। इस्लाम धर्म न स्वीकार करने के कारण उनका दिसम्बर, 1675 में वध कर दिया गया। उनके पुत्र गुरुगोविन्द सिंह ने सिक्खों के संघर्ष को जारी रक्खा। उन्होंने खालसा सम्प्रदाय की नींव डाली। आनन्दपुर की दो लड़ाइयों में उन्होंने मुगलों से टक्कर ली। उनके दो पुत्र चमकोर की लड़ाई में मारे गये। शेष दो पुत्रों को जिन्दा दीवार में चुनवा दिया गया। इस प्रकार गुरु गोविन्द जीवन भर औरंगजेब से टक्कर लेते रहे। कालान्तर में किसी अफगान ने उनकी 1708 में हत्या कर दी।

(घ) बुन्देलों का विद्रोह– औरंगजेब की धार्मिक नीति से अप्रसन्न बुन्देलों के नेता चम्पतराय ने विद्रोह कर दिया। परन्तु इसका दमन कर दिया गया। बाद में उसने आत्महत्या कर ली। इसके पश्चात् उसके पुत्र छत्रसाल ने मुगलों से संघर्ष जारी रक्खा। उसने मुगलों को कई युद्धों में पराजित किया। उसने पूर्वी मालवा में एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। 1731 में उसकी मृत्यु हो गई।

(ङ) राजपूतों से संघर्ष– औरंगजेब की राजपूत नीति भी उदार न थी। जसवन्तसिंह और जयसिंह के काल में भी उसने मंदिरों को ध्वस्त करा दिया। जसवन्तसिंह की मृत्यु के उपरान्त उसने मारवाड़ को मुगल साम्राज्य में मिला लिया। जसवन्तसिंह के पुत्र अजीत को इस शर्त पर मारवाड़ राज्य देने को तैयार हुआ कि वह मुसलमान बनना स्वीकार कर ले। राजपूतों ने इसका विरोध किया। इस प्रकार 30 वर्षों तक मारवाड़ का औरंगजेब से संघर्ष चलता रहा। अन्त में अजीत सिंह मारवाड़ का शासक बना। औरंगजेब का मेवाड़ के शासक राजसिंह से भी संघर्ष हुआ क्योंकि उन्होंने मारवाड़ की सहायता की थी। राजसिंह की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र जयसिंह मेवाड़ का शासक हुआ। उसने भी औरंगजेब से संघर्ष जारी रक्खा। दीर्घकालीन संघर्ष के पश्चात् औरंगजेब ने मेवाड़ पर जयसिंह का अधिकार स्वीकार कर लिया।

(च) मराठों से संघर्ष– औरंगजेब की धार्मिक नीति से मराठे भी असन्तुष्ट हुए। उन्होंने मराठा सरदार शिवाजी के नेतृत्व में मुगलों से संघर्ष जारी रक्खा। अन्त में औरंगजेब ने शिवाजी को राजा स्वीकार कर लिया। 1680 में शिवाजी की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र शम्भा जी सिंहासन पर बैठा। कालान्तर में औरंगजेब ने उसका वध करा दिया। अन्तिम 22 वर्षों तक औरंगजेब मराठों से बराबर टक्कर लेता रहा। परन्तु स्थायी सफलता प्राप्त न कर सका और अन्त में 21 फरवरी, 1707 को उसकी मृत्यु हो गई।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर औरंगजेब की धार्मिक नीति का विवेचन किया जा सकता है। उसकी हिन्दू-विरोधी नीति के कारण जाटों, सतनामियों, सिक्खों, बुन्देलों, राजपूतों तथा मराठों ने विद्रोह किए। सारांश में, उसकी हिन्दू-विरोधी नीति उसके तथा मुगल साम्राज्य के पतन का कारण सिद्ध हुई।

औरंगजेब की राजपूत-नीति

औरंगजेब के पूर्वजों बाबर, हुमायूँ, अकबर व जहाँगीर ने राजपूतों के साथ उदारता की नीति अपनायी थी। अकबर ने राजपूतों के सहयोग से ही एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी। जहाँगीर ने अपने पिता की ही नीति का अनुसारण किया था। शाहजहाँ के काल में यह सम्बन्ध कुछ कटु हो चले थे। लेकिन औरंगजेब के काल में यह सम्बन्ध बिल्कुल ही खराब

हो गये। गद्दी पर बैठते ही उसने अपने पूर्वजों की राजपूत-नीति को बिल्कुल बदल दिया। एक कट्टर सुन्नी मुसलमान होने के नाते वह राजपूतों के प्रति किसी भी प्रकार की उदारता दिखाना अनुचित समझता था।

नीति में परिवर्तन– राजपूत नीति में परिवर्तन का मुख्य कारण औरंगजेब की धार्मिक असहिष्णुता की नीति थी। इसके अतिरिक्त वह राजपूत-राज्यों की आन्तरिक स्वतन्त्रता को समाप्त कर उन्हें पूर्णरूपेण मुगल-साम्राज्य में मिला लेना चाहता था। जब तक राजा जयसिंह और महाराज जसवन्तसिंह जीवित रहे, वह अपनी नीति को कार्यान्वित नहीं कर सका, किन्तु उनकी मृत्यु के उपरान्त उसने राजपूतों के प्रति ऐसी संकीर्णतापूर्ण नीति अपनाई कि वे साम्राज्य के प्रबल शत्रु बन गये।

औरंगजेब का राजपूतों के साथ संघर्ष

(1) मारवाड़ से संघर्ष– 20 दिसम्बर, 1678 को अफगानिस्तान में जमरूद नामक स्थान पर महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु हो गई। कुछ इतिहासकारों का विचार है कि औरंगजेब ने जसवन्तसिंह को विष दिला दिया था। जसवन्तसिंह की मृत्यु का समाचार पाते ही औरंगजेब ने मारवाड़ राज्य को मुगल साम्राज्य में मिला लिया। जिस दिन उसने मारवाड़ को मिलाया उसी दिन हिन्दुओं पर जजिया लगा दिया।

औरंगजेब ने जसवन्तसिंह के परिवार के साथ भी कठोर नीति अपनाई। जब जसवन्तसिंह का परिवार जमरूद से दिल्ली लौट रहा था, तो लाहौर में उसकी दो विधवा रानियों ने फरवरी, 1679 में दो पुत्रों को जन्म दिया। उसमें से एक की जन्म के बाद ही मृत्यु हो गई और दूसरा पुत्र बड़ा होकर महाराज अजीतसिंह के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जून, 1679 में अजीत अपने माता सहित दिल्ली पहुँचा। औरंगजेब ने उसे शाही हरम में भेज दिये जाने की आज्ञा दी और उसे मारवाड़ का राज्य इस शर्त पर वापस करने को कहा कि वह इस्लाम धर्म स्वीकार कर ले। राठौरों के लिए यह बहुत बड़ा अपमान था। उन्होंने अपने नेता दुर्गादास के नेतृत्व में अजीत सिंह को इस संकट से निकालने का उपाय सोच निकाला।

अजीत का मारवाड़ पहुंचना– राठौर लोग दुर्गादास की सहायता से रानी के स्थान पर नौकरानी और अजीत के स्थान पर नौकरानी के पुत्र को रखकर रानी और राजकुमार को हवेली से निकाल लाने में सफल हो गये। राजपूत योद्धाओं ने मुगलों की उस सेना से डटकर सामना किया जो दिल्ली के फौजदार के नेतृत्व में रानी और अजीत को पकड़ने के लिए भेजी गई थी और जिसने जसवन्तसिंह के निवास-स्थान को चारों ओर से घेर लिया था। जब तक राजपूत योद्धा मुगल सेना से टक्कर लेते रहे तब तक दुर्गादास ने अजीत और रानियों सहित जो पुरुष वेष में थीं, 14 किमी का रास्ता तय कर लिया। मुगल सेना ने उनका पीछा किया किन्तु राजपूतों ने उसे तीन बार हराया और वापस भगा दिया। इस प्रकार दुर्गादास अजीतसिंह को सुरक्षित मारवाड़ (जोधपुर) लाने में सफल हो गये। दुर्गादास के सम्बन्ध में डॉ. ईश्वरीप्रसाद ने लिखा है, "दुर्गादास का नाम राजपूतों के इतिहास में सदा अमर रहेगा। मारवाड़ के राजघराने के प्रति भक्ति तथा उच्चकोटि के वीर और राजनीतिज्ञ होने के नाते दुर्गादास की प्रतिष्ठा भारी थी, उसने कभी शत्रु के साथ भी अपना वचन भंग न किया था अथवा कभी अपने मन्तव्य की पूर्ति के लिए किसी को धोखा देना, चाल चलना तो सीखा ही न था।

मारवाड़ पर पुनः आक्रमण– मारवाड़ को पुनः जीतने के लिए औरंगजेब ने अपने पुत्र अकबर को भेजा। काफी संघर्ष के पश्चात् मुगल सेना मारवाड़ पर विजय प्राप्त कर सका। उसने मारवाड़ पर विजय प्राप्त कर समस्त नगरों को खूब लूटा और मंदिरों को ध्वस्त कर दिया। राठौर लोग मुगल सेना को लगातार परेशान करते रहे। मारवाड़ को छोटे-छोटे जिलों में बाँट

दिया गया।

(2) मेवाड़ से संघर्ष– औरंगजेब का मेवाड़ के शासक राजा राजसिंह के साथ संघर्ष हुआ क्योंकि उसने अजीत का पक्ष लिया था। औरंगजेब ने उससे जजिया देने को कहा। राजसिंह ने जजिया देने से इनकार कर दिया और युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी। औरंगजेब ने 1679 में हसनअली खाँ के नेतृत्व में 7,000 सैनिकों को मेवाड़ पर आक्रमण करने के लिए भेजा। राणा उदयपुर छोड़कर पहाड़ियों पर भाग गया। चित्तौड़ और मेवाड़ पर अधिकार कर लेने के पश्चात् हसनअली खाँ ने वहाँ मन्दिरों को उजाड़ा। उदयपुर में 123 और चित्तौड़ में 63 मन्दिर धराशायी कर दिये गये। यद्यपि आमेर का राजा बादशाह का मित्र था, परन्तु वहाँ के भी 66 मन्दिर ध्वस्त कर दिये गये। एक रात अवसर पाकर राजसिंह के पुत्र जयसिंह ने अकबर पर आक्रमण कर दिया। अकबर पराजित हुआ। औरंगजेब ने अकबर को मारवाड़ भेज दिया और उसके स्थान पर शाहजादा आजम की चित्तौड़ में नियुक्ति कर दी।

अब मेवाड़ पर तीन ओर से आक्रमण करने की योजना बनी। उत्तर से मुअज्जम के द्वारा, पूर्व से आजम द्वारा और पश्चिम से अकबर के द्वारा। परन्तु राजपूतों ने अकबर को औरंगजेब के स्थान पर बादशाह बनाने का प्रलोभन देकर अपनी ओर मिला लिया। 1680 में राजसिंह की मृत्यु हो जाने से यह योजना कार्यान्वित न हो सकी। फलतः 11 जनवरी, 1681 को अकबर ने अपने-आपको भारत का बादशाह घोषित कर दिया।

औरंगजेब को जब इसकी सूचना मिली तो वह विचलित नहीं हुआ और उसने कूटनीति से काम लिया। उसने यह झूठा पत्र लिखकर दुर्गादास के शिविर में बाहर डलवा दिया, "बेटे अकबर! राजपूतों को ठग कर तुमने ठीक ही किया, यही तो मैंने तुमसे कहा था, अब इतना और करो कि राजपूत हमारी-तुम्हारी दोनों की फौजों के बीच आ जायँ, बस इसी में तुम्हारी विजय है।" इस पत्र के फलस्वरूप दुर्गादास अकबर के विरुद्ध हो गया और अकबर को राजपूतों का सहयोग प्राप्त न हो सका।

लेकिन बाद में दुर्गादास को औरंगजेब की चालाकी का पता लग गया और उसने अकबर को पुनः शरण में लिया तथा उसकी रक्षा करना परम कर्त्तव्य समझा। उसको सुरक्षित दक्षिण भारत में मराठा सरदार शंभाजी की शरण में भेज दिया गया। परन्तु राजपूतों के साथ औरंगजेब का संघर्ष बहुत दिनों तक चलता रहा।

मेवाड़ से सन्धि– अन्त में 24 जून, 1681 को औरंगजेब ने मेवाड़ के राजा जयसिंह से एक सन्धि की । सन्धि की शर्तें इस प्रकार थीं :

(1) राजा जयसिंह को मेवाड़ का राणा स्वीकार कर लिया गया और उसको पाँच हजार का मनसबदार बना दिया गया।
(2) मुगलों ने मेवाड़ राज्य से सेना हटा लेने का वायदा किया।
(3) राणा ने जजिया कर देने की जगह मण्डलपुर व बदनौर के परगने मुगलों को दे दिये।
(4) राणा ने विद्रोही राजाओं को शरण न देने का वायदा किया।

सन्धि हो जाने के बावजूद भी मेवाड़ के लोगों ने अगले 30 वर्षों तक संघर्ष जारी रक्खा। औरंगजेब एक विशाल सेना सहित दक्षिण चला गया।

अजीतसिंह का राजा होना– औरंगजेब दक्षिण भारत जाकर वहाँ के युद्धों में इतना अधिक उलझ गया कि वह पुनः वहाँ से उत्तरी भारत न लौट सका। यद्यपि उसने दुर्गादास के साथ सन्धि करने का प्रस्ताव दो बार रखा, किन्तु वह इस कार्य में सफल न हुआ। इसी बीच 1707 में उसकी मृत्यु हो गई और दिल्ली में उत्तराधिकार का युद्ध शुरू हो गया। इस स्थिति का लाभ उठाकर राठौर राजपूतों ने सम्पूर्ण मारवाड़ पर अधिकार कर लिया। औरंगजेब

के उत्तराधिकारी बहादुरशाह ने 1708 में अजीतसिंह को जोधपुर का स्वतंत्र शासक स्वीकार कर लिया।

राजपूत-नीति के परिणाम- औरंगजेब की राजपूत-नीति मुगल साम्राज्य के लिए अहितकर सिद्ध हुई। इस नीति के निम्नलिखित परिणाम हुए :

(1) मुगलों को राजपूतों से कोई सहयोग नहीं मिला। जो राजपूत अकबर के काल में मुगल साम्राज्य के सहायक थे, इस काल में शत्रु बन गये।
(2) इन युद्धों में जान-माल की बड़ी हानि हुई।
(3) राजपूतों के सहयोग से शाहजादा अकबर ने विद्रोह किया और औरंगजेब के लिए विकट समस्या बन गई।
(4) राजपूतों के अभाव में औरंगजेब को दक्षिण भारत में बड़े कष्ट उठाने पड़े। लेनपूल ने ठीक ही कहा है, "औरंगजेब को अपनी दाहिनी भुजा खोकर दक्षिण के साथ युद्ध करना पड़ा।"
(5) राजपूतों से लगातार युद्ध करने में मुगलों की सैनिक शक्ति की दुर्बलता का पता चल गया। एक लेखक के अनुसार, "मारवाड़ की स्वतन्त्रता के लिये किये युद्ध और दुर्गादास के शौर्य ने विश्व में मुगल शक्ति की क्षीणता को स्पष्ट कर दिया।"

इस प्रकार औरंगजेब की राजपूत-नीति मुगल साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध हुई और मुगल साम्राज्य पतनोन्मुख हो गया।

औरंगजेब की दक्षिण-नीति

औरंगजेब एक बड़ा ही महत्वाकांक्षी तथा सम्राज्यवादी बादशाह था। भारत में एकछत्र साम्राज्य स्थापित करने के लिए दक्षिण भारत की विजय अनिवार्य थी। अतः औरंगजेब ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 25 वर्ष तक दक्षिण में संघर्ष किया।

दक्षिण-नीति के कारण- औरंगजेब ने दक्षिण के राज्यों पर कई कारणों से आक्रमण किया, जो इस प्रकार हैं :

(1) औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था। वह शिया मुसलमानों से घृणा करता था। बीजापुर और गोलकुण्डा के शासक शिया ही थे।
(2) दक्षिण के सुल्तानों ने कई वर्षों से खिराज कर अदा नहीं किया था।
(3) दक्षिण में शिवाजी के नेतृत्व में मराठा शक्ति बढ़ रही थी।
(4) विद्रोही अकबर ने दक्षिण में पहुँचकर मराठों की सहायता से खलबली मचा दी थी।

(1) बीजापुर से संघर्ष- 1672 में बीजापुर के सुल्तान अली आदिलशाह की मृत्यु हो गई और उसका नाबालिग पुत्र सिकन्दर बीजापुर की गद्दी पर बैठा। 1676 में मुगल सेनापति बहादुर खाँ ने बीजापुर पर आक्रमण कर दिया लेकिन उसे पराजय का आलिंगन करना पड़ा। इसके पश्चात् 1679 में दिलेर खाँ को बीजापुर पर आक्रमण करने के लिए भेजा गया। परन्तु उसको भी सफलता न मिली। अतः फरवरी, 1680 में उसे वापस बुला लिया गया। 1685 में शाहजादा आजम को बीजापुर पर आक्रमण करने के लिए भेजा गया। परन्तु मराठों और गोलकुण्डा की मदद के कारण पन्द्रह महीनों तक घेरा डालने के बाद भी मुगल सेना को कोई सफलता नहीं मिली। अतः जुलाई 1686 में औरंगजेब ने

औरंगजेब की दक्षिण-नीति

1. बीजापुर से संघर्ष
2. गोलकुण्डा से संघर्ष
3. मराठों से संघर्ष
   (क) औरंगजेब व शिवाजी
   (ख) औरंगजेब व शंभाजी
   (ग) औरंगजेब व राजाराम
   (घ) औरंगजेब व ताराबाई

बीजापुर की ओर प्रस्थान किया, घेरा और मजबूत किया गया। सम्राट ने स्वयं मुगल सेना का नेतृत्व किया। रसद के अभाव में बीजापुर के सैनिक भूखों मरने लगे। अतः सितम्बर, 1686 में सुल्तान सिकन्दर ने आत्मसमर्पण कर दिया। औरंगजेब ने उसे एक लाख रुपये वार्षिक पेंशन देकर दौलताबाद के किले में बन्द कर दिया तथा उसका राज्य मुगल साम्राज्य में मिला लिया।

(2) गोलकुण्डा से संघर्ष– बीजापुर के साथ-साथ औरंगजेब की दृष्टि गोलकुण्डा पर पड़ी। गोलकुण्डा पर आक्रमण के तत्कालीन कारण निम्नलिखित थे :

(1) गोलकुण्डा का शासक अब्दुल हसन एक विलासी शासक था। उसने हिन्दुओं को अपना प्रधानमंत्री व प्रधान सेनापति बनाया था।

(2) उसने बहुत दिनों से मुगल सम्राट को खिराज नहीं भेजा था।

(3) उसने मुगलों के विरुद्ध बीजापुर के सुल्तान की सहायता की थी।

यह सब औरंगजेब के लिए असह्य था। उसने शाहजादा मुअज्जम को गोलकुण्डा पर आक्रमण करने के लिए भेजा। 1685 में मुअज्जम ने गोलकुण्डा की राजधानी हैदराबाद पर अधिकार कर लिया। सुल्तान अब्दुल हसन ने भाग कर गोलकुण्डा के किले में शरण ली। 1687 में औरंगजेब ने स्वयं गोलकुण्डा जाकर मजबूत घेरा डाला। दुर्ग को जीतने के लिए बारूद की सुरंगें लगाई गईं। परन्तु इससे मुगल सेना का ही विनाश हुआ और कोई सफलता न मिली। दुर्ग-रक्षक अब्दुल रज्जाक मुगलों से युद्ध करता हुआ मारा गया। औरंगजेब ने अब्दुल गनी नामक अफगान अधिकारी को रिश्वत देकर अपनी ओर मिला लिया। उसने रात के तीन बजे दुर्ग का फाटक खोल दिया। इस प्रकार 1687 में गोलकुण्डा पर मुगलों का अधिकार हो गया। अब्दुल हसन को 50 हजार रुपया वार्षिक पेंशन देकर दौलताबाद के किले में बन्द कर दिया गया।

(3) मराठों से संघर्ष : (क) औरंगजेब व शिवाजी– दक्षिण में मराठों से भी औरंगजेब को भयंकर संघर्ष करना पड़ा। इन दिनों मराठों का नेतृत्व शिवाजी कर रहे थे। बीजापुर के सुल्तान ने अफजल खाँ को शिवाजी के विरुद्ध भेजा। उसने पूना पर अधिकार कर लिया, लेकिन शिवाजी ने रात्रि के समय उस पर अचानक धावा बोल दिया। शाइस्ता खाँ का पुत्र अब्दुल फतह मारा गया। वह स्वयं घायल होकर भाग खड़ा हुआ। 1663 में जसवन्तसिंह को शिवाजी को दबाने के लिए भेजा गया, किन्तु कोई सफलता न मिली।

शाहजादा मुअज्जम तथा राजा जयसिंह को शिवाजी के विरुद्ध भेजा गया। मुगल सेना ने शिवाजी के कई दुर्गों पर अधिकार कर लिया और महाराष्ट्र को खूब लूटा। अन्त में शिवाजी को जयसिंह के साथ सन्धि करनी पड़ी। शिवाजी अपने पुत्र शम्भाजी के साथ आगरा आये। औरंगजेब ने उन्हें और उनके पुत्र को कैद कर लिया। पर शिवाजी कूटनीति से वहाँ से निकल भागे और अनेक कष्ट उठाते हुए पुत्र सहित महाराष्ट्र जा पहुँचे।

शिवाजी ने तीन साल तक मुगलों से युद्ध नहीं किया और अपनी सेना को शक्तिशाली बनाया। 1671 में औरंगजेब ने पुनः शिवाजी को कैद करने का प्रयास किया। अतः शिवाजी ने सूरत और खानदेश को खूब लूटा तथा पुरन्दर, माहुली, नन्देर के किलों पर अधिकार कर लिया। 1674 में शिवाजी ने 'छत्रपति' की उपाधि धारण की। इस प्रकार वह सम्पूर्ण महाराष्ट्र को स्वतंत्र करने में सफल हो गये। यह शिवाजी को चरमोन्नति का काल था। परन्तु दुर्भाग्यवश इस स्वतन्त्रता सेनानी का 13 अप्रैल, 1680 को स्वर्गवास हो गया।

(ख) औरंगजेब व शम्भाजी– शिवाजी की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र शम्भाजी गद्दी पर बैठा। उसने औरंगजेब के विद्रोही पुत्र अकबर को अपने यहाँ शरण दी थी। फलतः औरंगजेब ने महाराष्ट्र पर आक्रमण कर दिया। शम्भाजी और उसका प्रधानमंत्री कविकलश कैद करके

बहादुरगढ़ ले जाये गये। वहाँ पर शम्भाजी को सड़कों पर घुमाया गया और 14 मार्च, 1689 को कोरेगाँव के समीप भीमा नदी के तट पर उसका वध कर दिया गया।

(ग) औरंगजेब व राजाराम– शिवाजी के दूसरे 19 वर्षीय पुत्र राजाराम ने औरंगजेब से संघर्ष जारी रखा। उसने जिन्जी को अपना केन्द्र बनाया। औरंगजेब ने जिन्जी के दुर्ग का घेरा डाल दिया। राजाराम किसी प्रकार दुर्ग से निकल भागा और सतारा जा पहुँचा। जिन्जी के दुर्ग पर मुगलों का अधिकार हो गया। दुर्भाग्यवश, 12 मार्च, 1700 को राजाराम की मृत्यु हो गई। सतारा के दुर्ग पर मुगलों का अधिकार हो गया।

(घ) औरंगजेब व ताराबाई– राजाराम की विधवा स्त्री ताराबाई ने मराठों का नेतृत्व सँभाला और औरंगजेब से संघर्ष जारी रखा। उसने अनेक दुर्गों पर अधिकार कर लिया। औरंगजेब अधिक दिनों तक जीवित न रहा और 21 फरवरी, 1707 को उसकी मृत्यु हो गई।

दक्षिण नीति के परिणाम– औरंगजेब की दक्षिण नीति बिल्कुल असफल रही। डॉ. स्मिथ महोदय ने लिखा है, "दक्षिण भारत उसकी प्रतिष्ठा तथा उसके शरीर की ही नहीं, बल्कि उसके साम्राज्य की भी समाधि सिद्ध हुआ।" यदुनाथ सरकार ने लिखा है, "जिस प्रकार स्पेन के नासूर ने नैपोलियन का विनाश कर दिया, उसी प्रकार दक्षिण के नासूर ने औरंगजेब का विनाश कर दिया।" संक्षेप में, औरंगजेब की दक्षिण नीति के निम्नलिखित परिणाम हुए :

(1) उत्तर भारत में अव्यवस्था– औरंगजेब ने अपने शासन-काल के अन्तिम पच्चीस वर्ष दक्षिण भारत के युद्ध में व्यतीत किये थे। इसका परिणाम यह हुआ कि उत्तर भारत में अराजकता व अनुशासनहीनता फैल गई। चारों ओर विद्रोह की बाढ़ सी आ गई और केन्द्रीय शासन शिथिल हो गया।

दक्षिण-नीति के परिणाम

1. उत्तर भारत में अव्यवस्था
2. मराठों की शक्ति का विकास
3. सैनिक शक्ति को आघात
4. मारवाड़ का स्वतन्त्र हो जाना
5. राजकोष का रिक्त हो जाना
6. कृषि व उद्योग-धन्धों का नष्ट हो जाना
7. सांस्कृतिक जीवन पर प्रभाव

(2) मराठों की शक्ति का विकास– बीजापुर व गोलकुण्डा के समाप्त हो जाने से मरहठों को अपनी शक्ति बढ़ाने का अवसर प्राप्त हो गया। यदि औरंगजेब ने इन राज्यों का मुगल साम्राज्य में विलय न किया होता तो यही राज्य मराठों के पतन में सहायक सिद्ध हो सकते थे।

(3) सैनिक शक्ति को आघात– दक्षिण के लगातार युद्धों से मुगलों की सैनिक शक्ति को बड़ा आघात लगा। असंख्य सैनिक युद्धों में मारे गये। युदनाथ सरकार का कथन है कि दक्षिण के युद्धों में प्रतिवर्ष एक लाख सैनिक तथा तीन लाख घोड़े आदि पशुओं का विनाश होता था।

(4) मारवाड़ का स्वतन्त्र हो जाना– दक्षिण के युद्धों में लगातार व्यस्त रहने के कारण औरंगजेब मारवाड़ की ओर पूरा ध्यान न दे सका और मारवाड़ स्वतन्त्र हो गया और अजीतसिंह वहाँ का शासक नियुक्त हुआ।

(5) राजकोष का रिक्त हो जाना– दक्षिण के युद्धों के संचालन में अत्यधिक धन व्यय हुआ, जिसके कारण मुगलों का राजकोष खाली हो गया। उत्तर भारत से पूरा राजस्व वसूल न होने के कारण राजकोष पर बहुत बड़ा धक्का लगा। सैनिकों के तीन-तीन वर्ष के वेतन भी न दिये जा सके। इससे सैनिकों में भी असंतोष व्यपाप्त हो गया।

(6) कृषि व उद्योग-धन्धों का नष्ट हो जाना– इन युद्धों का प्रभाव कृषि और उद्योग-धन्धों पर भी पड़ा। असंख्य खेत उजाड़ दिये गये और उद्योग-धन्धे नष्ट हो गये। व्यापार पर

भी बहुत बड़ा धक्का लगा और दक्षिण भारत की आर्थिक स्थिति अत्यधिक शोचनीय हो गई। मनूची ने लिखा है, "उन प्रान्तों के खेतों में न तो फसलें थीं और न कोई वृक्ष ही। उनके स्थान पर वहाँ सब ओर मनुष्यों की हड्डियाँ बिखरी पड़ी थीं।"

(7) सांस्कृतिक जीवन पर प्रभाव– दक्षिण के युद्धों के कारण साहित्य और कला की उन्नति न हो सकी, क्योंकि किसी साहित्यकार तथा कलाकार को राज्य का संरक्षण प्राप्त न हो सका। युदनाथ सरकार ने लिखा है, "सम्राट द्वारा प्रश्रय न दिए जाने के कारण कला और साहित्य का पतन हुआ। एक भी इमारत, सुलिखित पाण्डुलिपि अथवा कलापूर्ण चित्र औरंगजेब के शासन-काल की याद दिलाने के लिए नहीं हैं।"

इस प्रकार औरंगजेब की दक्षिण-नीति बिल्कुल असफल रही और मुगल वंश के लिए विनाशकारी सिद्ध हुई। लेनपुल का यह कथन कि "भारतीय इतिहास में बार-बार हम देखते हैं कि दक्षिण, दिल्ली के राजाओं के नाश का कारण सिद्ध हुआ है। प्रकृति ने कभी नहीं चाहा कि विंध्य पर्वत के दोनों ओर एक राजा राज्य करे क्योंकि दोनों ओर के लोगों, उनके चरित्रों और भौगोलिक दशाओं में अन्तर है। फिर भी दिल्ली के हर बड़े बादशाह ने दक्षिण-विजय की कामना की है और इस कोशिश में हमेशा बरबादी आई है, "औरंगजेब की भी दक्षिण-नीति पर अक्षरशः सत्य चरितार्थ होता है।

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ (Important Dates & Events)

1. 1618 ई. – औरंगजेब का जन्म।
2. 1659 ई. – औरंगजेब का राज्याभिषेक।
3. 1668 ई. – संगीत पर प्रतिबन्ध।
4. 1675 ई. – गुरु तेगबहादुर को मृत्यु-दण्ड।
5. 1678 ई. – महाराज जसवन्तसिंह की मृत्यु।
6. 1681 ई. – औरंगजेब के पुत्र अकबर ने अपने-आपको भारत का सम्राट घोषित किया।
7. 1707 ई. – औरंगजेब की मृत्यु।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. औरंगजेब और राजपूतों के सम्बन्ध का उल्लेख कीजिए। उनके बीच संघर्ष के कारणों का वर्णन कीजिए।
2. औरंगजेब की दक्षिण-नीति की विवेचना कीजिए। (1967,70)
3. औरंगजेब के चरित्र का उल्लेख कीजिए। वह मुगल साम्राज्य की अवनति के लिए कहाँ तक उत्तरदायी था?
4. औरंगजेब की धार्मिक नीति एवं उसके परिणामों का परीक्षण कीजिए। (1979)
5. औरंगजेब की दक्षिण-नीति और उसके परिणाम पर प्रकाश डालिए। (1980,83)
6. औरंगजेब की धार्मिक नीति की विवेचना कीजिए। मुगल साम्राज्य के पतन में इसका कहाँ तक योगदान था? (2005)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "औरंगजेब की दक्षिण-नीति मुगल साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी थी।" इस कथन की विवेचना कीजिए। (1990,99)

2. "जिस प्रकार स्पेन के नासूर ने नैपोलियन का विनाश कर दिया उसी प्रकार दक्षिण के नासूर ने औरंगजेब का विनाश कर दिया।" इस कथन के आलोक में औरंगजेब की दक्षिण-नीति का मूल्यांकन कीजिए।
3. "दक्षिण के नासूर ने औरंगजेब का विनाश कर दिया।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं? (1995)
4. "औरंगजेब की दक्षिण-नीति उसकी असफलता का प्रमुख कारण थी।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं? (1995)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. औरंगजेब ने हिन्दुओं के विरुद्ध कौन से कार्य किये?
2. औरंगजेब ने दक्षिण नीति के क्या परिणाम हुए?
3. औरंगजेब की धार्मिक नीति के क्या परिणाम हुए?
4. औरंगजेब की असफलता के किन्हीं चार कारणों का वर्णन कीजिए?
5. क्या आप सहमत हैं कि औरंगजेब की धार्मिक नीति मुगल साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी थी?
6. औरंगजेब ने दक्षिण के मुसलमानी राज्यों पर क्यों आक्रमण किया? दो कारण बताइए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सूबेदार के पद पर कार्य करने के कारण औरंगजेब को किन दो क्षेत्रों में विशेष अनुभव प्राप्त हुआ?
   युद्ध और प्रशासन के क्षेत्रों में विशेष अनुभव प्राप्त हुआ।
2. औरंगजेब के प्रारम्भिक कार्यों को किन दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है?
   (1) प्रशासनिक, तथा (2) राजनीतिक।
3. मुहतसिब का कोई एक प्रमुख कार्य बतलाइए।
   मद्यपान, जुआ तथा वेश्यागमन को रोकना।
4. आसाम विजय के लिए नियुक्त दो सूबेदारों के नाम क्या थे।
   (1) मीर जुमला, तथा (2) शाइस्ता खाँ।
5. शाइस्ता खाँ की बंगाल सूबेदारी के समय दो महत्वपूर्ण कार्य क्या थे?
   (1) समुद्री डाकुओं (पुर्तगालियों) का दमन करना, तथा (2) संद्वीप नामक द्वीप और चटगाँव पर अधिकार।
6. औरंगजेब का जन्म कब हुआ था?
   3 नवम्बर, 1618 को औरंगजेब का जन्म हुआ था।
7. सोलह वर्ष की आयु में औरंगजेब को कितने का मनसब प्रदान किया गया?
   10 हजार का मनसब प्रदान किया गया।
8. पहली बार औरंगजेब कब-से-कब तक दक्षिण का सूबेदार रहा?
   औरंगजेब 1636 से 1644 तक दक्षिण का सूबेदार रहा।
9. औरंगजेब को गुजरात का सूबेदार कब बनाया गया?
   1645 ई. में औरंगजेब को गुजरात का सूबेदार बनाया गया।
10. दूसरी बार कब-से-कब तक औरंगजेब दक्षिण का सूबेदार रहा?
    1652 से 1658 तक औरंगजेब दक्षिण का सूबेदार रहा।
11. औरंगजेब के काल के दो विद्रोह बताइए।
    (1) जाटों का विद्रोह, तथा (2) सतनामियों का विद्रोह।

12. औरंगजेब की दक्षिण नीति के दो परिणाम बताइए।
 (1) उत्तर भारत में अव्यवस्था का फैल जाना, तथा (2) मराठों की शक्ति का विकास।
13. औरंगजेब का मकबरा कहाँ स्थित है?
 औरंगजेब का मकबरा औरंगाबाद में स्थित है।

बहुविकल्पीय प्रश्न

निर्देश : नीचे दिये गये प्रत्येक प्रश्न के चार विकल्पों में से सही विकल्प छाँटकर लिखिए :

1. औरंगजेब सिंहासनारूढ़ कब हुआ था?
 (क) 1650 ई. में, (ख) 1655 ई. में, (ग) 1656 ई. में, (घ) 1658 ई. में।
2. औरंगजेब ने संगीत पर प्रतिबन्ध कब लगाया था?
 (क) 1658 ई. (ख) 1665 ई., (ग) 1668 ई., (घ) 1670 ई.।
3. औरंगजेब ने बीजापुर पर विजय कब प्राप्त की थी?
 (क) 1680 ई., (ख) 1681 ई., (ग) 1686 ई., (घ) 1688 ई.।
4. औरंगजेब ने गोलकुण्डा पर अधिकार कब किया था?
 (क) 1676 ई., (ख) 1680 ई., (ग) 1687 ई., (घ) 1690 ई.,।
5. औरंगजेब की मृत्यु कब हुई थी?
 (क) 1698 ई., (ख) 1699 ई., (ग) 1700 ई., (घ) 1707 ई.।
6. औरंगजेब ने अपने किस भाई की हत्या करके उसका शव दिल्ली की सड़कों पर घुमाया?
 (क) दाराशिकोह (ख) मुराद (ग) शाहशुजा (घ) इनमें से कोई नहीं।
7. गुरु तेगबहादुर को मृत्युदण्ड कब दिया गया था?
 (क) 1659 ई. (ख) 1675 ई. (ग) 1668 ई. (घ) 1678 ई.
8. महाराज जसवन्त सिंह की मृत्यु कब हुई थी?
 (क) 1665 ई. (ख) 1681 ई. (ग) 1678 ई. (घ) 1675 ई.
9. औरंगजेब ने जजिया कर पुनः कब शुरू किया?
 (क) 1669 ई. (ख) 1670 ई. (ग) 1679 ई. (घ) 1680 ई.
10. औरंगजेब के सिंहासनारोहण तथा अंतिम शासन का वर्ष क्या था?
 (क) 1656–1702 ई. (ख) 1657–1704 ई.
 (ग) 1657–1706 ई. (घ) 1658–1707 ई.

■

8

मुगल वंश के अन्तिम सम्राट एवं साम्राज्य का पतन

"जैसे किसी सम्राट के मृत शरीर को युग-युगान्तर तक एकान्त में मुकुट पहना कर, शस्त्रों से सजाकर तथा पूर्णरूप से प्रभावशाली बनाकर रखा जाता है, किन्तु प्रकृति के तनिक श्वास लेने पर वह धूल में मिल जाता है, वैसे ही मुगल साम्राज्य अपने रक्षक स्वरूप महान् यश के लुप्त होते ही समाप्त हो गया।"
-लेनपूल

उत्तराधिकार का युद्ध

औरंगजेब की मृत्यु के समय उसके तीन पुत्र-मुअज्जम, आजम तथा कामबख्श जीवित थे। मुअज्जम काबुल का, आजम गुजरात का तथा कामबख्श बीजापुर के सूबेदार थे। इन तीनों ही पुत्रों ने अपने को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया। मुअज्जम की यह हार्दिक इच्छा थी कि उत्तराधिकार के लिए भाइयों में पारस्परिक युद्ध न हो। साम्राज्य-विभाजन के लिए आजम को पत्र लिखा, लेकिन आजम ने इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया, बल्कि सेना लेकर आगरा के निकट जाजऊ नामक स्थान पर आ डटा। मुअज्जम भी युद्ध के लिए तैयार था। अब दोनों भाइयों के बीच युद्ध अनिवार्य हो गया।

18 जून, 1707 को 'जाजऊ' नामक स्थान पर दोनों सेनाओं में बड़ा घमासान युद्ध हुआ, जिसमें मुअज्जम विजयी हुआ और आजम अपने दो पुत्रों के साथ मारा गया। इसके बाद मुअज्जम ने कामबख्श से सन्धि-वार्ता चलाई, किन्तु उसने मुअज्जम के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। फलतः हैदराबाद के निकट दोनों की सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ, जिसमें कामबख्श बुरी तरह घायल हुआ और उसी रात उसकी मृत्यु हो गई।

इस प्रकार मुअज्जम उत्तराधिकार के युद्ध में विजयी हुआ और 'बहादुरशाह' नाम से गद्दी पर आसीन हुआ।

उत्तरकालीन मुगल सम्राट

बहादुरशाह प्रथम (1707-1712)

जिस प्रकार बहादुरशाह राज-सिंहासन पर आसीन हुआ, उसके सम्मुख अनेक कठिनाइयाँ विद्यमान थीं। राजपूत; सिक्ख तथा मराठे अपनी शक्ति का विस्तार करके मुगल साम्राज्य को क्षति पहुँचा रहे थे। निम्न पंक्तियों में इनका अलग-अलग वर्णन किया जायेगा।

1. राजपूतों का दमन- जोधपुर के राणा अजीतसिंह ने अपने को स्वतन्त्र शासक घोषित करके मुगल प्रदेश पर आक्रमण कर दिया था। बहादुरशाह ने आमेर पहुँचकर वहाँ के उत्तराधिकार के प्रश्न में हस्तक्षेप करके विजयसिंह को आमेर का राजा घोषित किया। इसके पश्चात् वह जोधपुर गया और अजीतसिंह को परास्त कर उसे क्षमा प्रदान की और उसको मारवाड़ का राजा स्वीकार कर साढ़े तीन हजार का मनसब प्रदान किया। जब बहादुरशाह कामबख्श के विरुद्ध दक्षिण की ओर जा रहा था तब अजीतसिंह तथा दुर्गादास ने आमेर के राजा विजयसिंह को परास्त कर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया। बहादुरशाह को पुनः राजपूताना जाना पड़ा, किन्तु उसने उनसे सन्धि कर ली और उन्हें अपने-अपने राज्यों में भेज दिया।

2. सिक्खों का दमन– बहादुरशाह को सिक्खों के नेता बन्दा बैरागी के विद्रोह का भी सामना करना पड़ा जिसकी सूरत गुरु गोविन्दसिंह से काफी मिलती-जुलती थी। उसने 'सच्चा बादशाह' की उपाधि धारण की और सिक्ख वर्ग को धर्म-युद्ध करने के लिए प्रोत्साहित किया। उसने सरहिन्द को लूट कर उस पर अधिकार कर लिया। बहादुरशाह 1710 में पंजाब गया और सिक्खों के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ हो गया। मुगल सेना ने बन्दा बैरागी को कई स्थानों पर परास्त किया। विवश होकर उसे जम्मू की पहाड़ियों में शरण लेनी पड़ी। इसी बीच बहादुरशाह की मृत्यु हो जाने के कारण मुगलों का सिक्खों के विरुद्ध कार्य शिथिल हो गया।

उत्तरकालीन मुगल सम्राट

1. बहादुरशाह प्रथम
2. जहाँदारशाह
3. फर्रूखसियर
4. अफीउद दरजात
5. रफीउद्दौला
6. मुहम्मदशाह
7. अहमदशाह
8. आलमगीर द्वितीय
8. शाहआलम द्वितीय
10. अकबर द्वितीय
11. बहादुरशाह द्वितीय

3. मराठे– मराठों की शक्ति कम करने तथा उनमें आपसी फूट डालने के लिए बहादुरशाह ने शम्भाजी के पुत्र साहूजी को 1707 में कैद से मुक्त कर दिया और उसको दक्षिण के प्रान्तों से चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार प्रदान किया। साहूजी के पहुँचते ही मराठा-संघ दो दलों में विभाजित हो गया और उनका गृह-युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस प्रकार बहादुरशाह अपने मन्तव्य को पूर्ण करने में सफल हुआ।

बहादुरशाह की मृत्यु– पाँच वर्ष शासन-करने के पश्चात् 1712 में 69 वर्ष की आयु में बहादुरशाह की मृत्यु हो गई।

जहाँदारशाह (1712-13)

बहादुरशाह की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्रों- जहाँदारशाह, अजीमउसशान, रफी-उसशान तथा जहाँनशाह में उत्तराधिकार का युंद्ध प्रारम्भ हुआ जिसमें जहाँदार को सफलता मिली। वह एक विलासी, अयोग्य तथा निकम्मा व्यक्ति था। उसकी इस स्थिति का लाभ उठाकर उसके भाई के पुत्र फर्रूखसियर ने जो बंगाल का गवर्नर था, 13 फरवरी, 1713 को उसका वध कर दिया। फर्रूखसियर ने जहाँदारशाह का वध करने में सैयद अब्दुल्ला खाँ तथा हुसैन अली नामक दो सैयद भाइयों की सहायता प्राप्त की थी।

फर्रूखसियर (1713-19)

फर्रूखसियर सैयद अब्दुल्ला खाँ और हुसैनअली की सहायता से 13 फरवरी, 1713 को गद्दी पर आसीन हुआ था। अतः उसने उन्हें पर्याप्त परितोषिक दिया। वह परम सुन्दर किन्तु अत्यन्त कायर, अविवेकी तथा चरित्रहीन था। एक विद्वान् के उसके विषय में लिखा है, "फर्रूखसियर स्वेच्छा से शासन करने की योग्यता से रहित था और उसमें दूसरों पर नियन्त्रण रखने की क्षमता न थी। वह किसी भी योग्य कर्मचारी का विश्वास नहीं करता था, परन्तु बच्चों के समान अपने मन्त्रियों के उत्तेजना दिलाने पर सन्देहशील हो उठता था तथा उनके द्वारा उठाये गये षड्यन्त्रों में भाग लेने लगता था।"

(1) राजपूत– फर्रूखसियर को मारवाड़ के राजा अजीतसिंह से संघर्ष का सामना करना पड़ा। अजीतसिंह ने मुगलों के प्रदेशों पर आक्रमण करके अजमेर पर अपना अधिकार कर लिया था। हुसैनअली ने अजीतसिंह को सन्धि के लिए विवश किया। अजीतसिंह ने अपने पुत्र अभयसिंह को मुगल दरबार में भेजना स्वीकार कर लिया।

(2) सिक्ख– बन्दा बैरागी ने सिधौरा के निकट एक दुर्ग का निर्माण कर आस-पास के प्रदेशों पर शासन करना प्रारम्भ कर दिया था। सम्राट ने उस पर आक्रमण करने का आदेश दिया। लाहौर के सुबेदार अब्दुल समद खाँ ने सिधौरा के दुर्ग का घेरा डाल दिया। सिक्खों को विवश होकर दुर्ग छोड़ना पड़ा और उन्होंने लौहगढ़ के दुर्ग में शरण ली। अब अब्दुल समद खाँ ने इसका भी घेरा डाल दिया। बैरागी पुनः पहाड़ियों में चला गया और वहाँ से मुगल प्रदेशों में लूटमार करनी प्रारम्भ कर दी। अन्त में 1715 में बन्दा बैरागी तथा उसके 140 साथियों को बन्दी बना लिया गया। सम्राट ने बन्दा बैरागी तथा उसके साथियों का नृशंसतापूर्वक वध करवा दिया।

(3) जाट– इसके पश्चात् चूड़ामन जाट को दबाने का प्रयास किया गया, जिसने आगरा के निकट छापे मारना प्रारम्भ कर दिया था। जयपुर के राजा जयसिंह को जाटों का दमन करने के लिए भेजा गया, लेकिन वह जाटों का दमने करने में सफल न हो सका। अन्त में सैयद भाइयों कें प्रयास से दोनों में सन्धि हो गई। चूड़ामन को 50 लाख रुपया भेंट के रूप में मिला और उसने मुगल साम्राज्य की अधीनता स्वीकार कर ली।

फर्रूखसियर का अन्त– फर्रूखसियर सैयद भाइयों की सहायता से राजसिंहासन पर आसीन हुआ था, किन्तु वह उसके चंगुल से छुटकारा पाना चाहता था। उसने उनके विरुद्ध अनेंक षड्यन्त्र रचने प्रारम्भ कर दिये, लेकिन सफलता नहीं मिली। अन्त में 1719 में सैयद भाइयों ने उसकी हत्या कर दी।

मुहम्मदशाह (1719-1748)

फर्रूखसियर की हत्या के बाद सैयद भाइयों ने अफीउद दरजात तथा रफी-उद्दौला को क्रमशः गद्दी पर बैठाया, पर वे नाममात्र के शासक थे। शीघ्र ही उनको गद्दी से उतार दिया गया। अन्त में उन्होंने बहादुरशाह के पौत्र मुहम्मदशाह को गद्दी पर बैठाया। वह सम्राट भी अत्यन्त अयोग्य तथा दुर्वल था। उसके शासनकाल की प्रमुख घटनाएँ निम्नलिखित हैं :

(1) सैयद भाइयों का अन्त– गद्दी पर आसीन होने के पश्चात् ही मुहम्मदशाह ने सैयद भाइयों के प्रभाव को समाप्त कर देने का षड्यन्त्र रचना प्रारम्भ कर दिया, क्योंकि शासन में सैयद भाइयों का बहुत अधिक प्रभाव बढ़ गया था। हुसैनअली कहा करता था, "जिसके सिर पर मेरे जूतों का साया पड़ जायगा, वह दिल्ली का बादशाह हो जायेगा।" षड्यन्त्र के परिणामस्वरूप मुहम्मदशाह ने हुसैन अ़ली को दक्षिण भेजा। हुसैनअली के दक्षिण जाने पर मार्ग में ही उसका वध कर दिया गया। अब्दुल को भी बन्दी बना लिया गया। 1722 में विषपान कराकर उसकी जीवन-लीला समाप्त कर दी गई। इस प्रकार मुहम्मदशाह को सैयद भाइयों से मुक्ति मिल गई।

(2) हैदराबाद में निजामशाही की नींव– सैयद भाइयों के पतन के उपरान्त मुहम्मदशाह ने दक्षिण के सूबेदार निजामुल्मुल्क को मंत्री पद पर आसीन किया, किन्तु वह दरबार के षड्यन्त्रों से ऊबकर 8 दिसम्बर, 1723 को शिकार का बहाना कर पुनः दक्षिण चला गया और वहाँ अपने लिए निजामशाही नामक एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। मुगल सम्राट ने उसका दमन करने के लिए एक सेना दक्षिण भेजी लेकिन निजाम ने उसे पराजित कर दिया। इस प्रकार सम्राट ने उसे आसफशाह की उपाधि देकर सन्धि करने का प्रयास किया, किन्तु उसने गुजरात पर भी अधिकार कर लिया। निजाम ने पेशवा बाजीराव से सन्धि कर लिया ताकि मराठे उसके प्रान्तों पर आक्रमण न करें।

(3) अन्य प्रान्तों की स्वतन्त्रता– निजामुल्मुल्क का अनुसरण अन्य प्रांत-प्रतियों ने भी किया। सआदत खाँ ने अवध में, अलीवर्दी खाँ ने बंगाल में तथा रुहेला सरदारों ने रुहेलखण्ड

में अपना राज्य स्थापित कर लिया। मराठों ने दक्षिण में अपनी शक्ति सुदृढ़ कर ली और मुगल प्रान्तों पर धावा मारने लगे।

(4) नादिरशाह का आक्रमण- मुहम्मदशाह के शासनकाल की प्रसिद्ध घटना नादिरशाह का आक्रमण है। नादिरशाह खुराशानी तुर्क था। वह बड़ा ही महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। उसने 1737 में भारत के सीमान्त प्रान्तों पर आक्रमण किया और 1738 में कन्धार तथा काबुल पर अधिकार कर अटक की ओर बढ़ा और शीघ्र ही लाहौर पर अधिकार कर लिया। जब मुहम्मदशाह को नादिरशाह के आक्रमण का समाचार ज्ञात हुआ तो वह एक विशाल सेना के साथ करनाल नामक स्थान पर पहुँचा। यहीं पर 28 फरवरी, 1739 को करनाल का युद्ध हुआ जिसमें मुगल सेना पराजित हुई। मुहम्मदशाह ने नादिरशाह को युद्ध के हरजाने के रूप में 2 करोड़ रुपये देना स्वीकार किया लेकिन नादिरशाह ने 20 करोड़ रुपये की माँग की। अन्त में विवश होकर उसने नादिरशाह को दिल्ली चलकर धन देने का वायदा किया। 20 मार्च को विजेता नादिर ने बड़े शान से दिल्ली में प्रवेश किया जहाँ उसका भव्य स्वागत हुआ। किन्तु संयोग से 22 मार्च को दिल्ली के कुछ नागरिकों ने नादिर के कुछ सैनिकों का वध कर दिया। फलतः क्रोधित होकर नादिर ने कत्लेआम की आज्ञा दे दी जिसके फलस्वरूप 30 हजार व्यक्ति कत्लेआम में मारे गये। नादिरशाह 15 मई तक दिल्ली में रहा। भारत से जाते समय वह अपने साथ 'कोहेनूर हीरा', 'तख्ते ताऊस' तथा अतुल धन ले गया। नादिरशाह के आक्रमण का मुगल साम्राज्य पर बड़ा घातक प्रहार लगा और उसकी जड़ें हिल गईं। हेग के शब्दों में, "नादिरशाह के आक्रमण से मुहम्मदशाह और उसके दरबारियों पर इतना भीषण आधात लगा कि वे उसके दिल्ली से जाने के बाद मूर्च्छित हो कर किंकर्त्तव्य-विमूढ़ से रह गये।"

(5) अहमदशाह अब्दाली का आक्रमण- 1747 में नादिरशाह की मृत्यु के उपरान्त अहमदशाह अब्दाली अफगानिस्तान का शासक हुआ। पंजाब के सूबेदार शाहनवाज खाँ ने अब्दाली को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया। अतएव अब्दाली ने लाहौर पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया तथा वहाँ से दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। मुहम्महदशाह के पुत्र अहमद ने सरहिन्द के मैदान में पराजित करके उसे अफगानिस्तान को वापस लौटने पर विवश कर दिया।

मुहम्मदशाह की मृत्यु- 26 अप्रैल, 1748 को मुहम्मदशाह की मृत्यु हो गई और उसका पुत्र अहमदशाह सिंहासन पर बैठा। मुहम्मदशाह के सम्बन्ध में सियाउल मुख्तरीन ने लिखा है, "दिल्ली साम्राज्य की नींव गल और सड़ चुकी थी, परन्तु मुहम्मदशाह ने अपनी चतुरता से उसे स्थिर रखा। उसे बाबर के वंश का अन्तिम सम्राट कहा जा सकता है, क्योंकि उसके बाद सम्राटों के पास नाम के अतिरिक्त और कुछ शेष नहीं रह गया था।"

अहमदशाह तथा अन्य मुगल सम्राट (1748-1759)

मुहम्मदशाह की मृत्यु के उपरान्त 28 अप्रैल, 1748 को अहमदशाह राजसिंहासन पर आसीन हुआ और 1754 तक शासन किया। उसके शासन-काल में उसके मंत्री गाजीउद्दीन का शासन पर विशेष प्रभाव रहा। 1748 में अहमदशाह अब्दाली ने दूसरी बार भारत पर आक्रमण किया और पंजाब के सूबेदारों को 14 हजार रुपये वार्षिक कर के रूप में देने को बाध्य किया। 1754 में अहमदशाह को उसके वजीर गाजीउद्दीन ने गद्दी से उतार दिया और उसके स्थान पर जहाँदारशाह के पुत्र आलमगीर द्वितीय को राजसिंहासन पर बैठाया। इसके समय में अब्दाली ने 1757 में भारत पर तीसरी बार आक्रमण किया और दिल्ली, मथुरा आदि प्रदेशों को लूट कर वापस चला गया। आलमगीर द्वितीय भी एक अयोग्य तथा निकम्मा शासक था। फलतः थोड़े दिनों के बाद ही 1759 में उसका वध कर दिया गया और उसके पुत्र शाहआलम

द्वितीय को राज-सिंहासन पर बैठाया गया।

शाहआलम द्वितीय (1759-1806)

1759 में शाहआलम द्वितीय राज-सिंहासन पर आसीन हुआ। शासन की सत्ता पर गाजीउद्दीन का प्रभुत्व स्थापित था। उसकी नीति से क्षुब्ध होकर अनेक अमीर उसके विरोधी हो गये। फलतः गाजीउद्दीन ने मराठों की सहायता प्राप्त की और उन्हें साम्राज्य की नीति में हस्तक्षेप का अधिकार दे दिया। मराठों ने पंजाब पर अधिकार कर लिया। मराठों के प्रभाव को बढ़ता देखकर दिल्ली के अमीरों ने अहमदशाह अब्दाली को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया और उसकी मदद करने को वचन दिया।

पानीपत तृतीय युद्ध- दिल्ली के अमीरों के आमन्त्रण पर 1761 में अहमदशाह अब्दाली ने चौथी बार भारत पर आक्रमण किया। मराठों ने पानीपत के मैदान में बड़ी वीरता से सामना किया। घमासान युद्ध के पश्चात् मराठे पराजित हुए। इस युद्ध से मराठों को गहरा आघात लगा। अब्दाली ने शाहआलम को दिल्ली का सम्राट स्वीकार कर लिया। बंगाल की ओर से अंग्रेज अपनी शक्ति का विस्तार कर रहे थे। उन्होंने 1764 में बक्सर युद्ध में विजय प्राप्त की और 1765 में इलाहाबाद की सन्धि के अनुसार बिहार, बंगाल और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त की। अंग्रेजों ने शाहआलम को इलाहाबाद और कड़ा के जिले तथा 26 लाख रुपये वार्षिक पेंशन देना स्वीकार कर लिया। 1771 में मराठों के संरक्षण में चले जाने के कारण उसकी पेंशन बन्द कर दी गई। 1778 में अब्दुल कादिर ने दिल्ली पर अधिकार कर शाहआलम को गद्दी से उतार दिया। वह अंग्रेजों के संरक्षण में आ गया और 1806 में उसकी मृत्यु हो गई।

शाहआलम की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र अकबर द्वितीय राज-सिंहासन पर आसीन हुआ। वह नाममात्र का सम्राट था। वह भी आजीवन अंग्रेजों का पेंशनभोक्ता बना रहा।

बहादुरशाह द्वितीय (1837-58)

अकबर द्वितीय के पश्चात् उसका पुत्र बहादुरशाह द्वितीय 1837 में राज-सिंहासन पर आसीन हुआ। यह अन्तिम मुगल सम्राट था। 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता-संग्राम में उसने क्रान्तिकारियों का नेतृत्व ग्रहण किया। क्रांति के असफल हो जाने पर अंग्रेजों ने उसे सिंहासन से उतार दिया और उसको कालापानी का दण्ड देकर रंगून भेज दिया। वहीं 7 नवम्बर, 1862 को उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार मुगल साम्राज्य का टिमटिमाता दीप सदैव के लिए बुझ गया और भारत पर अंग्रेजों की सत्ता स्थापित हो गई।

मुगल साम्राज्य के पतन के कारण

प्रकृति का यह शाश्वत नियम है कि जिसका उत्थान होता है, उसका एक दिन पतन भी अवश्य होता है। प्रकृति का यह नियम साम्राज्य पर भी लागू होता है। हम देखते हैं कि औरंगजेब के पश्चात् मुगल साम्राज्य का एकाएक पतन हो गया। इस सम्बन्ध में स्मिथ महोदय ने लिखा है, "मुगल साम्राज्य का सहसा पतन हुआ जो प्रथम दृष्टि डालने पर आश्चर्यजनक मालूम होता है। परन्तु उस विद्यार्थी को जिसे इतिहास का सामान्य सही ज्ञान प्राप्त है। इस पर आश्चर्य होगा कि साम्राज्य इतने दिनों तक किस तरह चलता रहा, इस बात पर नहीं कि उसका पतन क्यों हो गया।"

संक्षेप में, मुगल साम्राज्य के पतन के निम्नलिखित कारण बताये जा सकते हैं :

1. राजनीतिक कारण- मुगल साम्राज्य के पतन के अनेक राजनीतिक कारण थे, जिनका उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है :

(अ) स्वेच्छाचारी केन्द्रीभूत शासन- मुगल शासन-व्यवस्था स्वेच्छाचारिता पर

आधारित थी। राज्य की समस्त शक्तियाँ सम्राट के हाथ में केन्द्रित थीं। इस प्रकार की शासन-व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए योग्य एवं प्रभावशाली शासक की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु औरंगजेब के पश्चात् के शासक इतने योग्य तथा प्रभावशाली न हुए कि वे मुगल साम्राज्य को सुरक्षित तथा संगठित रख सकते।

(ब) उत्तराधिकार के नियम का अभाव- मुगलों के उत्तराधिकार का कोई नियम न था। अतः सम्राट की मृत्यु के उपरान्त उत्तराधिकार का युद्ध प्रारम्भ हो जाता था। इन निरन्तर उत्तराधिकार के युद्धों से मुगल साम्राज्य की शक्ति का बहुत ह्रास हुआ। शाहजहाँ और औरंगजेब ने उत्तराधिकार के युद्धों में जिस प्रकार अपने भाइयों और भतीजों का वध करके खून के छींटों से इतिहास के पन्नों को रंग दिया है, भला उन्हें कौन इतिहाकार भुला सकता है?

(स) अमीरों की दलबन्दी तथा षड्यन्त्र- अमीरों की दलबन्दी तथा उनके षड्यन्त्रों ने मुगल साम्राज्य को बहुत बड़ा आघात पहुँचाया। उन्होंने दरबार में अपने कई दल बना लिये थे जैसे-तूरानी दल, हिन्दुस्तानी दल तथा ईरानी दल इत्यादि। उसमें राजभक्ति का सर्वथा अभाव था। वे सदैव अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए दरबार में षड्यन्त्र करते रहते थे। सैयद भाइयों अर्थात् अब्दुल्ला खाँ व हुसैन अली के हाथ शासन की इतनी अधिक शक्ति आ गई थी कि वे सम्राट-निर्माता बन गये थे।

(द) प्रांतपतियों की स्वार्थ-परता- प्रांतपतियों में भी राजभक्ति का अभाव था। साम्राज्य की निर्बलता से स्वार्थी प्रांतपतियों ने भी लाभ उठाया और उन्होंने केन्द्रीय शक्ति की उपेक्षा करके अपने-आप को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया। शुजात खाँ ने अवध में तथा अलीवर्दी खाँ ने बंगाल में अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया था। इस प्रकार प्रांतपतियों की स्वार्थपरता से मुगल साम्राज्य का पतन हुआ।

(य) साम्राज्य का विस्तार- औरंगजेब के काल में साम्राज्य का इतना अधिक विस्तार हो गया था कि यातायात के साधनों के अभाव में एक ही स्थान से अधिक समय तक इस पर नियन्त्रण नहीं रखा जा सकता था। बीजापुर और गोलकुण्डा के राज्यों को मुगल साम्राज्य में मिलाकर औरंगजेब ने बहुत बड़ी भूल की थी। इन राज्यों तथा मराठों को नियन्त्रित करने के लिए उसको अपने जीवन के अन्तिम 25 वर्ष दक्षिण भारत में ही बिताने पड़े और वहीं उसकी मृत्यु भी हुई।

मुगल साम्राज्य के पतन के कारण

1. राजनीतिक कारण-
   - (अ) स्वेच्छाचारी केन्द्रीभूत शासन
   - (ब) उत्तराधिकार के नियम का अभाव
   - (स) अमीरों की दलबन्दी तथा षड्यन्त्र
   - (द) प्रांतपतियों की स्वार्थपरता
   - (य) साम्राज्य का विस्तार
2. नैतिक कारण-
   - (क) मुगलों-सम्राटों का चारित्रिक पतन
   - (ख) मुगल सरदारों का चारित्रिक पतन
3. धार्मिक कारण-
4. आर्थिक कारण-
   - (क) युद्धों में अत्यधिक व्यय
   - (ख) फिजूलखर्ची
   - (ग) कृषि, व्यापार व उद्योग-धन्धों की शोचनीय दशा
5. सैनिक कारण-
   - (क) सेना में अनुशासनहीनता
   - (ख) मनसबदारी प्रथा का दोषपूर्ण होना
   - (ग) राजपूतों तथा अफगानों की सैन्य-भर्ती में उपेक्षा
   - (घ) जल सेना का अभाव
6. विदेशी कारण

(2) नैतिक कारण- मुगल साम्राज्य के पतन के कुछ नैतिक कारण भी थे जिनका

वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है :

(क) मुगल सम्राटों का चारित्रिक पतन– उत्तरकालीन मुगल सम्राटों के चरित्र का पतन होने लगा था। वे बहुत विलासी हो गये। उनका अधिकांश समय अन्तःपुर में ही व्यतीत होता था। जहाँगीर तो इतना अधिक विलासी हो गया था कि शासन की सम्पूर्ण शक्ति नूरजहाँ के हाथ में आ गई थी। औरंगजेब के उत्तराधिकारी बहादुरशाह प्रथम 'मस्त राजा' और मुहम्मदशाह 'रंगीले' के नाम से प्रसिद्ध थे। डॉ. स्मिथ का कथन है, "जब तक शासकों का व्यक्तिगत चरित्र ऊँचा रहा, शासन को किसी प्रकार की आँच नहीं आई, परन्तु जैसे ही नैतिक पतन हुआ तो अराजकता ने घर कर लिया।"

(ख) मुगलों सरदारों का चारित्रिक पतन– मुगल सरदारों का भी नैतिक पतन हो गया था। मसीर–उल–उमरा के अध्ययन से मुगल सरदारों के नैतिक पतन का अच्छा विवरण मिलता है। यदुनाथ सरकार ने मुगल सरदारों की विलासिता का उल्लेख इन शब्दों में किया है, "उनकी विलासिता ऐसी थी जिसकी फारसी व एशियाई सुल्तानों के स्वप्न में भी कल्पना नहीं की जा सकती थी। उनके हरम में असंख्य स्त्रियाँ रहा करती थीं तथा उनमें विभिन्न जातियों, प्रथाओं और आचरण का मिश्रण हो गया।" सरदारों का यह चारित्रिक पतन मुगल साम्राज्य के पतन का एक महत्वपूर्ण कारण था।

(3) धार्मिक कारण– मुगल साम्राज्य के पतन का एक प्रमुख कारण औरंगजेब की धार्मिक नीति भी थी। अकबर ने उदार धार्मिक नीति अपनाकर हिन्दुओं को अपना मित्र बनाया था और मुगल साम्राज्य की नींव सुदृढ़ की थी। किन्तु औरंगजेब ने धार्मिक असहिष्णुता की नीति अपनाकर हिन्दुओं को अपना कट्टर शत्रु बना लिया, जिसका परिणाम मुगल साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध हुआ। उसकी धार्मिक नीति के कारण जाटों, सतनामियों, राजपूतों, सिक्खों, बुन्देलों तथा मराठों के विद्रोह हुए। इन विद्रोहों को दबाने में उसको पूर्ण सफलता न मिल सकी और मुगल साम्राज्य पतनोन्मुख हो गया।

(4) आर्थिक कारण– मुगल साम्राज्य के पतन के कुछ आर्थिक कारण भी थे जिनका उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है :

(क) युद्धों में अत्यधिक व्यय– शाहजहाँ और औरंगजेब के काल के युद्धों में राज्य का अत्यधिक धन व्यय हुआ। शाहजहाँ के उत्तर–पश्चिमी सीमा तथा मध्य एशिया के युद्धों में 12 करोड़ रुपये व्यय हुआ किन्तु एक इंच भी भूमि मुगल साम्राज्य के अन्तर्गत न आ सकी। औरंगजेब ने दक्षिण के युद्धों में भी अपार धन व्यय किया। इस प्रकार युद्धों में अत्यधिक व्यय के कारण मुगल सरकार की आर्थिक अवस्था बिगड़ गई।

(ख) फिजूलखर्ची– शाहजहाँ ने अनेक इमारतों का निर्माण कराकर अपार धनराशि का व्यय किया था। उस समय जबकि निम्न वर्ग के लोग अपनी दैनिक जीवन की वस्तुएँ भी नहीं खरीद सकते थे, अनेक इमारतों का निर्माण करना मुगल सम्राट की बुद्धिमत्ता का द्योतक नहीं कहा जा सकता। विलियम फास्टर ने लिखा है, "उस काल के सभी लेखकों ने शाहजहाँ के दरबार के वैभव, शासन की उदारता और उसकी निजी सर्वप्रियता की खूब प्रशंसा की है, किन्तु उसके साथ–साथ उन्होंने उन विनाशकारी तथ्यों को भी नहीं छिपाया है, जो इस वैभव में समाये हुए थे। देश की आय के साधनों को देखते हुए दरबार की यह फिजूलखर्ची देश को रसातल की ओर ले जा रही थी।"

(ग) कृषि, व्यापार व उद्योग-धन्धों की शोचनीय दशा– शाहजहाँ ने भूमि का लगान बढ़ाकर उपज का आधा कर दिया था। भूमि की पैदावार कम होती जा रही थी। फलतः किसानों में कृषि के प्रति उदासीनता आने लगी। दक्षिण के लगातार युद्धों ने कृषि, व्यापार,

उद्योग-धन्धों को नष्ट कर दिया। अतः धनाभाव में मुगल साम्राज्य का पतन होना अनिवार्य हो गया।

मुगल साम्राज्य के आर्थिक पतन की जानकारी 1755 की एक घटना से होती है जिसके सम्बन्ध में इतिहासकार सर यदुनाथ सरकार लिखते हैं, "एक बार दो-तीन दिन तक शाही हरम में चूल्हा नहीं जला था और एक दिन जब शहजादियाँ भूख की ज्वाला से तपड़ गई थीं तब वे पर्दे की कट्टर प्रथा को तोड़कर महल से शहर की ओर चल पड़ी थीं, लेकिन किले के द्वार बंद होने के कारण वे सारी रात चौकीदार की कोठरी में बैठी रहीं और उसके बाद फिर अपने कमरों में वापस चली गईं।"

5. सैनिक कारण– मुगल साम्राज्य के पतन का एक प्रमुख कारण सैन्य-संगठन भी था जिसका उल्लेख निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है :

(क) सेना में अनुशासनहीनता– उत्तरकालीन मुगल शासकों के काल में सेना में अनुशासनहीनता फैल गई थी। उनमें वह राजभक्ति नहीं रह गई थी जो बाबर और अकबर के काल में थी। डॉ. आशीर्वादीलाल के शब्दों में, "जिस मुगल सेना ने देश के आखिरी कोने तक ही नहीं, बल्कि मध्य एशिया की ऑक्सस और हेलमण्ड नदियों के परे मुगल झण्डा फहराया था, वह अब हमला करने में बिल्कुल असहाय हो गई थी।"

(ख) मनसबदारी प्रथा का दोषपूर्ण होना– मुगल सम्राटों के पास अपनी कोई स्थायी सेना नहीं थी। वे सैनिक आवश्यकता के लिए मनसबदारों पर निर्भर रहा करते थे जो अवसर मिलने पर सम्राटों को धोखा देने में नहीं चूकते थे। सैनिकों को मनसबदार ही वेतन देते थे, उन्हें शाही राजकोष से सीधे वेतन नहीं मिलता था। अतः सैनिकों और सम्राट में कोई सीधा सम्बन्ध नहीं था। फलतः सैनिक मनसबदारों के प्रति भक्ति रखते थे, न कि सम्राट के प्रति। मनसबदारी की यह दोषपूर्ण प्रथा औरंगजेब के उत्तराधिकारियों के काल में भी थी।

(ग) राजपूतों तथा अफगानों की सैन्य भर्ती में उपेक्षा– शाहजहाँ के काल में ही वीर जाति राजपूतों और अफगानों की सेना में भर्ती बन्द कर दी गई थी। औरंगजेब ने भी इनकी उपेक्षा की। वह अपने सेनापति जसवन्तसिंह व जयसिंह पर सन्देह करता था। राजपूतों के सहयोग के अभाव में मुगल साम्राज्य पतनोन्मुख हो गया।

(घ) जल सेना का अभाव– अच्छे जहाजी बेड़ों का अभाव भी मुगल साम्राज्य के पतन का एक कारण था। अंग्रेजों की अपेक्षा मुगल राज्य की समुद्री शक्ति निर्बल थी। इसलिए आंग्ल-जाति भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने में सफल हुई।

(6) विदेशी कारण– मुगल साम्राज्य के पतन का सबसे प्रमुख कारण कुछ विदेशी आक्रमण थे। 1737 में नादिरशाह के आक्रमण से मुगल साम्राज्य की अवशिष्ट शक्ति एवं प्रतिष्ठा समाप्त हो गई। उसने देश को बर्बाद कर दिया और एक करोड़ रुपये से अधिक मूल्य का मयूर सिंहासन अपने साथ फारस ले गया। उसके सेनापति अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर सात बार आक्रमण किया और देश को खूब लूटा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त कारणों से ही मुगल साम्राज्य का पतन हो गया।

मुगल साम्राज्य के पतन में औरंगजेब का उत्तरदायित्व

मुगल साम्राज्य के पतन के अनेक कारण थे किन्तु उसके पतन में औरंगजेब का सबसे अधिक उत्तरदायित्व था। उसने अपने जीवनकाल में ही अपने कार्यों एवं नीतियों से मुगल साम्राज्य की नींव खोखली कर दी। संक्षेप में, औरंगजेब निम्नलिखित कारणों से मुगल साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी कहा जा सकता है :

(1) औरंगजेब की हिन्दूओं के प्रति नीति– औरंगजेब ने हिन्दूओं के प्रति जो

भेदभाव की नीति अपनायी वह मुगल साम्राज्य के पतन में पर्याप्त रूप से सहायक सिद्ध हुई। उसकी इस नीति का वर्णन निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है :

(अ) हिन्दुओं के मन्दिरों को ध्वंस करना– औरंगजेब ने हिन्दुओं के मन्दिरों को ध्वंस करके प्रजा के बहुसंख्यक हिन्दू समुदाय को अपना कट्टर शत्रु बना लिया। प्रजा एक बार अपने कुटुम्बियों के वध करने वाले को क्षमा कर सकती है, किन्तु धर्म पर आघात करने वाले को वह कभी क्षमा नहीं कर सकती। औरंगजेब ने 1669 में एक आदेशानुसार सोमनाथ का दूसरा मन्दिर, बनारस का विश्वनाथ मन्दिर, मथुरा का केशवराय मन्दिर आदि ध्वस्त करा दिये। उसने नये मन्दिरों के निर्माण में रोक लगा दी थी।

मुगल-साम्राज्य के पतन में औरंगजेब का उत्तरदायित्व

1. हिन्दूओं के प्रति नीति
2. धार्मिक-नीति
3. दक्षिण-नीति
4. राजपूत-नीति
5. विशाल साम्राज्य
6. अपने पुत्रों को योग्य शिक्षा न देना
7. सिक्खों के प्रति नीति
8. मुगल पदाधिकारियों के प्रति अविश्वास
9. राजकोष का रिक्त होना
10. प्रजा-हित का कार्य न करना

(ब) जजिया लगाना– हिन्दुओं को नीचा दिखाने तथा उनको उत्पीड़ित करने के लिए 1669 में उसने उन पर पुनः जजिया लगा दिया। ऐसे अनेक हिन्दू जो यह कर अदा नहीं कर सके, मुसलमान हो गये।

(स) हिन्दुओं को माल विभाग से पृथक् करना– 1671 में उसने माल-विभाग से अधिकांश हिन्दुओं को निकाल दिया। इससे हिन्दुओं में असन्तोष पैदा हो गया और वे मुगल साम्राज्य के कट्टर शत्रु बन गये।

(द) हिन्दुओं पर सामाजिक प्रतिबन्ध– उसने हिन्दुओं पर निम्नलिखित सामाजिक प्रतिबन्ध लगा दिये थे :

(1) उसने राजपूतों के अतिरिक्त समस्त हिन्दुओं को हाथी, घोड़े तथा पालकी चढ़ने पर प्रतिबन्ध लगा दिया।
(2) हिन्दुओं के होली, दशहरा तथा दीवाली आदि त्योहारों पर प्रतिबन्ध लगा दिया।
(3) उनके तीर्थ-स्थानों पर मेला लगाना रोक दिया गया।

(य) चुंगी जारी रखना– उसने हिन्दुओं पर 5 प्रतिशत चुंगी जारी रखा जबकि मुसलमानों पर से बिल्कुल उठा ली गई।

उपर्युक्त हिन्दू-विरोधी नीति के कारण मुगल साम्राज्य का पतन अनिवार्य हो गया।

(2) औरंगजेब की धार्मिक नीति– औरंगजेब की धार्मिक नीति भी साम्राज्य के पतन का कारण बनी। उसने धार्मिक कट्टरता की नीति अपनाकर निम्नलिखित कार्य किये :

(1) उसने सिक्कों पर कलमा खुदवाना समाप्त कर दिया।
(2) उसने शराब, भाँग जैसी मादक वस्तुओं पर प्रतिबन्ध लगा दिया।
(3) भारत में मनाए जाने वाले फारस के नौरोज उत्सव पर प्रतिबन्ध लगा दिया।
(4) उसने मुगल दरबार में प्रचलित झरोखा दर्शन, तुलादान तथा तिलक प्रथा आदि को भी बंद करवा दिया।
(5) उसने हिन्दुओं के त्योहारों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। यही नहीं, उसने मुहर्रम के जुलूस को भी बंद करवा दिया।
(6) उसने हिन्दुओं के ऊपर तीर्थ-यात्रा कर तथा जजिया कर लगा दिया।

(7) उसने साधु-सन्तों या पीरों के मजार पर दीपक जलाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया।
(8) उसने दाढ़ी की लम्बाई निश्चित कर दी। निश्चित लम्बाई से अधिक रखने वालों की दाढ़ी काट दी जाती थी।
(9) उसने हिन्दू ज्योतिषियों को दरबार से निकाल दिया।
(10) मुसलमान स्त्रियों पर यह प्रतिबन्ध लगा दिया कि वे पीर या मकबरे के दर्शनार्थ न जायें।

(3) औरंगजेब की दक्षिण-नीति–यदुनाथ सरकार ने लिखा है, "जिस प्रकार स्पेन के नासूर ने नैपोलियन का विनाश कर दिया उसी प्रकार दक्षिण के नासूर ने औरंगजेब का विनाश कर दिया।" औरंगजेब ने अपने जीवन के अन्तिम 25 वर्ष दक्षिण के युद्धों में बिताये और अन्त में वहीं उसकी कब्र भी बनी। उसने बीजापुर और गोलकुण्डा की रियासतों को मुगल साम्राज्य में मिलाकर बहुत बड़ी भूल की। ये रियासतें मराठों की शक्ति पर नियन्त्रण रखती थीं। लेकिन उनको मुगल साम्राज्य में मिला लिए जाने से मराठों की शक्ति का दमन न किया जा सका। इस प्रकार औरंगजेब की दक्षिण नीति भी मुगल साम्राज्य के पतन का कारण बनी।

(4) औरंगजेब की राजपूत-नीति– औरंगजेब की कट्टर राजपूत नीति भी मुगल साम्राज्य के पतन का कारण बनी। उसने मारवाड़ तथा मेवाड़ से इतने अधिक कटु सम्बन्ध बना लिये कि उसे वीर राजपूतों का सहयोग न प्राप्त हो सका। उसने जसवन्तसिंह तथा उसके पुत्र कीरतसिंह को विष दिलाकर मरवा डाला। जसवन्तसिंह की मृत्यु के उपरान्त उसने मारवाड़ को मुगल साम्राज्य में मिला लिया। इन घटनाओं से राजपूत मुगल-साम्राज्य के कट्टर शत्रु बन गये। इनके सहयोग के अभाव में औरंगजेब को अपनी दक्षिण-नीति में भी सफलता न मिली। लेनपूल के शब्दों में, "औरंगजेब को अपनी दाहिनी बाँह खोकर दक्षिण के शत्रुओं से युद्ध करना पड़ा।"

(5) विशाल साम्राज्य– औरंगजेब की साम्राज्यवादी नीति ने मुगल साम्राज्य का इतना अधिक विस्तार कर दिया कि उस पर नियन्त्रण रखना असम्भव हो गया। उत्तर और दक्षिण भारत पर एक साथ सुचारु रूप से शासन-संचालन करना कठिन हो गया। इतने बड़े साम्राज्य पर कोई योग्य एवं प्रतिभाशाली शासक ही नियन्त्रण रख सकता था। लेकिन औरंगजेब के पश्चात् शासकों में शासकीय गुणों का सर्वथा अभाव रहा। अतः औरंगजेब की साम्राज्यवादी नीति भी मुगल साम्राज्य के पतन का कारण बनी।

(6) अपने पुत्रों को योग्य शिक्षा न देना– एक महान् शासक का कर्तव्य होता है कि वह अपने पीछे एक योग्य उत्तराधिकारी छोड़ जाय, लेकिन दुर्भाग्यवश शंकालु स्वभाव के कारण औरंगजेब ऐसा न कर सका। उसने अपने पुत्रों को कोई राजनीतिक प्रशासन की शिक्षा देने की व्यवस्था न की। वह अपने पुत्रों को सदैव संदेह की दृष्टि से देखता रहा। उसके सब लड़के उससे अत्यधिक भयभीत रहते थे। शाहजादा अकबर का विद्रोह उसके भय का ही परिणाम था।

(7) औरंगजेब की सिक्खों के प्रति नीति– औरंगजेब के शासन-काल में सिक्खों से भी कटु सम्बन्ध हो गये। उसने सिक्खों के गुरु तेगबहादुर को धार्मिक नीति का विरोध करने कारण बन्दी बनाकर कैद में डाल दिया और इस्लाम धर्म न स्वीकार करने के कारण उनका सिर काट लिया गया। उनके पुत्र गुरु गोविन्दसिंह ने खालसा सम्प्रदाय की नींव डाली। उन्होंने इस सम्प्रदाय को सैनिक दल में पूर्णतः बदल दिया और खुलेआम इस्लाम का विरोध किया। उनके दो पुत्र चमकोर की लड़ाई में मारे गये। शेष दो पुत्रों को इस्लाम धर्म स्वीकार न करने पर दीवार में जीवित चुनवा दिया गया। इस प्रकार औरंगजेब की धार्मिक नीति ने सिक्खों को अपना कट्टर शत्रु बना लिया जो मुगल साम्राज्य के पतन के कारण बने।

(8) मुगल पदाधिकारियों के प्रति अविश्वास– औरंगजेब एक शंकालु स्वभाव वाला व्यक्ति था। वह अपने पुत्रों, मंत्रियों तथा सूबेदारों को अविश्वास की दृष्टि से देखता था।

प्रान्तीय सूबेदार उसके आदेश के बिना कुछ भी करने में असमर्थ थे। अतः उसकी अनुपस्थिति में शासन-व्यवस्था में शिथिलता आ जाना स्वाभाविक था। उत्तर भारत में अव्यवस्था फैल जाने का प्रमुख कारण औरंगजेब की दीर्घ अनुपस्थिति थी। वह दक्षिण में 25 वर्षों तक युद्ध में व्यस्त रहा। इस प्रकार औरंगजेब का शंकालु स्वभाव भी मुगल साम्राज्य के पतन का कारण था।

(9) राजकोष का रिक्त होना- दक्षिण के युद्धों में धन अत्यधिक व्यय हुआ। राजकोष रिक्त हो गया। उत्तर भारत में पूरा राजस्व वसूल न होने के कारण राजकोष पर बहुत बड़ा धक्का लगा। राजकोष के रिक्त होने का ही परिणाम था कि सैनिकों को तीन-तीन वर्ष के वेतन भी न दिये जा सके। इस प्रकार औरंगजेब द्वारा रिक्त राजकोष भी मुगल साम्राज्य के पतन का एक प्रमुख कारण बना।

(10) प्रजा-हित का कार्य न करना- औरंगजेब ने प्रजा के हित के लिए कोई भी ऐसा कार्य नहीं किया जिसके कारण उसको प्रजा-पालक के रूप में याद किया जा सके। उसके काल में साहित्य और कला को भी राज्य का संरक्षण प्राप्त न हो सका। औरंगजेब ने स्वयं अपने जीवन के अन्तिम दिनों में इस बात को स्वीकार किया कि वह मुगल साम्राज्य के लिए कुछ न कर सका। उसने आजम के नाम अपने अन्तिम पत्र में लिखा था, "मैं अकेला ही आया था और अब अकेले ही जा रहा हूँ। मैं नहीं जानता कि मैं कौन हूँ और अब तक क्या करता रहा हूँ? पूजा-प्रार्थना में बीते समय के अतिरिक्त जो भी दिन मैंने यहाँ बिताये हैं उनसे मुझे खेद के अतिरिक्त कुछ नहीं मिला। न मैंने साम्राज्य पर ही कोई सच्चा शासन किया और न मैं अपनी प्रजा का पालन ही कर पाया और ऐसा बहुमूल्य जीवन व्यर्थ ही बीत गया।" कामबख्श के नाम उसने अपने अन्तिम पत्र में सीख देते हुए लिखा था, "इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखना कि किसान और प्रजा व्यर्थ ही बर्बाद न हों। मुसलमानों की रक्षा करना और मेरे निरर्थक व्यक्तित्व पर आँच न आने देना।"

उपर्युक्त सभी कारणों के आधार पर यह पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाता है कि औरंगजेब मुगल साम्राज्य के पतन के लिये सबसे अधिक उत्तरदायी था। उसने अपनी कब्र के साथ ही मुगल साम्राज्य की भी कब्र बना दी।

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ (Important Dates & Events)

1. 1707 ई. - मुअज्जम (बहादुरशाह) का सिंहासनारोहण।
2. 1712 ई. - बहादुरशाह की मृत्यु तथा जहाँदारशाह का सिंहासनारोहण।
3. 1713 ई. - जहाँदारशाह की मृत्यु तथा फर्रूखसियर का सिंहासनारोहण।
4. 1719 ई. - मुहम्मदशाह का सिंहासनारोहण।
5. 1739 ई. - नादिरशाह का भारत पर आक्रमण।
6. 1748 ई. - मुहम्मदशाह की मृत्यु
7. 1761 ई. - पानीपत का तृतीय युद्ध।
8. 1837 ई. - बहादुरशाह द्वितीय का सिंहासनारोहण।
9. 1862 ई. - बहादुरशाह द्वितीय की मृत्यु।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. मुगल साम्राज्य के पतन के कारणों की समीक्षा कीजिए। (1964,74,78,81,93)

2. मुगल साम्राज्य के पतन के लिए औरंगजेब कहाँ तक उत्तरदायी था? (1965,68,71,86)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "इतिहास के विद्यार्थी को इस बात पर आश्चर्य होगा कि मुगल साम्राज्य इतने दिनों तक किस तरह चलता रहा, इस बात पर नहीं कि उसका पतन क्यों हो गया।" इस कथन के आलोक में मुगल साम्राज्य के पतन के कारणों का उल्लेख कीजिए।
2. "मुगल साम्राज्य के पतन के लिए औरंगजेब उत्तरदायी था।" व्याख्या कीजिए। (1988)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. औरंगजेब के पश्चात् चार मुगल सम्राटों का परिचय दीजिए।
2. मुगल साम्राज्य के पतन के लिए औरंगजेब कहाँ तक उत्तरदायी था?
3. मुगल साम्राज्य के पतन के क्या कारण थे?

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. औरंगजेब की मृत्यु के समय उसके कितने पुत्र जीवित थे?
   औरंगजेब की मृत्यु के समय उसके तीन पुत्र– मुअज्जम, आजम तथा कामबख्श जीवित थे।
2. औरंगजेब की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार के लिए जो संघर्ष हुआ, उसमें कौन विजयी हुआ?
   उत्तराधिकार के संघर्ष में मुअज्जम विजयी हुआ और 'बहादुरशाह' प्रथम के नाम से गद्दी पर आसीन हुआ।
3. अंतिम मुगल सम्राट कौन था?
   अंतिम मुगल सम्राट बहादुरशाह द्वितीय (1837–1858) था।

बहुविकल्पीय प्रश्न

निर्देश : नीचे दिये गये प्रत्येक प्रश्न के चार विकल्पों में से सही विकल्प छाँटकर लिखिए :

1. नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण कब किया था?
   (क) 1720 ई. में, (ख) 1730 ई. में, (ग) 1739 ई. में, (घ) 1740 ई. में।
2. पानीपत का तृतीय युद्ध कब हुआ था?
   (क) 1748 ई. में, (ख) 1758 ई. में, (ग) 1761 ई. में, (घ) 1762 ई. में।
3. बहादुरशाह द्वितीय का सिंहासनारोहण कब हुआ था?
   (क) 1835 ई., (ख) 1837 ई., (ग) 1838 ई., (घ) 1850 ई.।
4. बहादुरशाह द्वितीय की मृत्यु कब हुई थी?
   (क) 1837 ई. में, (ख) 1850 ई. में, (ग) 1862 ई. में, (घ) 1864 ई. में।
5. निम्न में से मुगल वंश का अंतिम सम्राट कौन था?
   (क) बहादुरशाह प्रथम, (ख) मुहम्मदशाह,
   (ग) अहमदशाह, (घ) बहादुरशाह द्वितीय।

■

9

मराठों का उत्कर्ष

> "शिवाजी का उदय जितना व्यक्तिगत साहस व वीरता की बदौलत था, उतना ही दक्षिण की विचित्र भौगोलिक स्थिति तथा एक सूत्र में बाँधने वाले धार्मिक सूत्रों का भी, जिन्होंने 15वीं व 16वीं शताब्दियों की जनता में प्राण फूँक दिये थे और नई-नई आशाएँ जगा दी थीं।" -डॉ. ईश्वरी प्रसाद

मराठा जाति के इतिहास तथा मुगल कालीन इतिहास में शिवाजी का महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय इतिहास में वे "स्वराज्य संस्थापक' तथा 'राष्ट्र-निर्माता' के रूप में प्रसिद्ध हैं। उनका जीवन मुख्यतया तीन भागों में विभक्त किया जाता है।

(1) शिवाजी के जीवन का प्रथम भाग (1627-1659)

1. प्रारम्भिक जीवन– शिवाजी का जन्म सोमवार, 20 अप्रैल, 1627 को जुन्नर के समीप शिवनेर के पहाड़ी दुर्ग में हुआ था। उनके पिता का नाम शाहजी भोंसले व माता का नाम जीजाबाई था। दस वर्ष की अवस्था में शिवाजी को पूना भेज दिया गया। इसी समय शाहजी भोंसले ने जीजाबाई का परित्याग कर तुकाबाई नामक एक स्त्री से विवाह कर लिया। अतः शिवाजी के पालन-पोषण का पूरा उत्तरदायित्व जीजाबाई को उठाना पड़ा। उनका चरित्र बड़ा ही उच्च था। वे धार्मिक प्रकृति की महिला थीं। उनके महान् आदर्श का बालक शिवाजी पर बहुत प्रभाव पड़ा। इस सम्बन्ध में सुप्रसिद्ध विद्वान् रानाडे ने लिखा है, "यदि महान् पुरुष अपनी महानता के लिए अपनी माताओं के प्रोत्साहन के ऋणी हैं तो जीजाबाई का प्रभाव शिवाजी के निर्माण में बहुत बड़ा स्थान रखता है और वही उसकी शक्ति का प्रमुख साधन है।" दादा कोणदेव जी ने जो बड़े ही योग्य तथा दूरदर्शी व्यक्ति थे, शिवाजी को अस्त्र-शस्त्र तथा घुड़सवारी की शिक्षा दी। कोणदेव के सम्पर्क में रहने के कारण शिवाजी में हिन्दूधर्म तथा हिन्दू-जाति के प्रति प्रगाढ़ प्रेम पैदा हो गया। फलतः उन्होंने एक स्वतन्त्र हिन्दू राज्य की स्थापना करने को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया।

2. शिवाजी की प्रारम्भिक विजयें– सर्वप्रथम शिवाजी ने 1646 में बीजापुर के तोरण नामक पहाड़ी दुर्ग पर अधिकार किया। इसके बाद 1648 में उसने पुरन्दर के दुर्ग को जीत लिया। इससे अप्रसन्न होकर बीजापुर के सुल्तान ने शिवाजी के पिता शाहजी को कैद कर लिया। शिवाजी ने कूटनीति से काम लिया। उसने बीजापुर के विरुद्ध मुगलों को सहायता देने का वचन दिया। इससे बीजापुर का सुल्तान भयभीत हो गया और शाहजी भोंसले को तुरन्त मुक्त कर दिया। इसके बाद उसने 25 जनवरी, 1656 को जावली पर आक्रमण करके वहाँ के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। दुर्ग पर मराठा सरदार 'चन्द्रराव मोरे' का अधिकार था जिसका कुछ व्यक्तियों को धन देकर वध करवा दिया गया। इस विजय के सम्बन्ध में सर यदुनाथ सरकार ने लिखा है- "शिवाजी की जावली पर विजय जानबूझ कर की गई हत्या एवं संगठित छल-कपट थी। उस समय उसकी शक्ति बहुत कम थी और यह अपनी शक्ति को बढ़ाने के लिए विवेकपूर्ण साधनों को न अपना सका। उसके जीवन की इस घटना में प्रकाश की केवल एक ही किरण है

> **शिवाजी के जीवन का प्रथम भाग**
> 1. प्रारम्भिक जीवन
> 2. शिवाजी की प्रारम्भिक विजयें
> 3. कोंकण प्रदेश विजय
> 4. अफजल खाँ की हत्या (1659)

कि उसने जो अपराध किया वह पाखण्ड या लोकविवाद के लिए नहीं किया। उसने इस बात की डींग नहीं मारी कि तीन गोरे सरदारों की हत्या हिन्दू 'स्वराज्य' की भावना से की या उस विश्वासघाती शत्रु को अपने मार्ग से हटाने के लिए की गई थी, जिसने उसकी उदार सरलता का कई बार दुरुपयोग किया था।" डॉ. आशीर्वादीलाल के अनुसार, "इस विजय के उपरान्त उसके राज्य के दक्षिण-पश्चिम में विस्तार के लिए द्वार खुल गये।"

3. कोंकण प्रदेश विजय– 1657 में उत्तराधिकार का युद्ध छिड़ जाने पर औरंगजेब दक्षिण से उत्तरी भारत आ गया। इससे शिवाजी को अपने राज्य-विस्तार का अवसर मिल गया। अतः उसने कोंकण प्रदेश को जीत लिया और वहाँ अपना शासन स्थापित कर लिया। कोंकण-विजय से शिवाजी पश्चिमी समुद्र तट पर पहुँच गये और उसने नौ-सेना के निर्माण की ओर अपना ध्यान आकर्षित किया। उसने कोंकण प्रदेश के कल्याण और भिखण्डी नगरों में अपनी नौ-सेना का अड्डा बनाया।

4. अफजल खाँ की हत्या (10 नवम्बर, 1659)– शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर बीजापुर के सुल्तान ने अपने प्रधान सेनापति अफजल खाँ को शिवाजी के विरुद्ध भेजा। भरे दरबार में अफजल खाँ ने शेखी बघारी कि वह 'अपने घोड़े से बिना उतरे ही उस पहाड़ी चूहे को बन्दी बना लेगा।' इन दिनों शिवाजी प्रतापगढ़ के पहाड़ी दुर्ग में था। अतः अफजल खाँ ने भास्कर पंत नामक दूत के हाथ यह सन्धि प्रस्ताव भेजा, "मैं तुम्हें अपनी सरकार से अधिक सम्मान और सेना को सामग्री दिलवा दूँगा। यदि तुम दरबार में उपस्थित होओगे तो तुम्हारा स्वागत होगा। यदि तुम वहाँ उपस्थित होना न चाहोगे तो तुम मुक्त कर दिये जाओगे।' फलतः सन्धि की बातचीत के फलस्वरूप शिवाजी प्रतापगढ़ दुर्ग से 1.6 किमी दक्षिण पार नामक ग्राम के पास दो अंगरक्षकों के साथ अफजल खाँ से मिलने के लिए गये। उन्होंने अपनी एक सेना को वहीं पास की झाड़ी में छिपा दिया और स्वयं अपने अँगरखे के नीचे कवच धारण कर लिया तथा एक हाथ में बघनख पहन लिया। निर्धारित स्थान पर दोनों एक-दूसरे से मिले। कहा जाता है कि एक-दूसरे से आलिंगन करते समय अफजल खाँ ने शिवाजी को दबाकर तलवार से मारना चाहा। शिवाजी, जो पहले से होशियार थे तुरन्त बघनख से अफजल खाँ का वध कर दिया। इस समय छिपे हुए सैनिकों ने अफजल खाँ की सेना पर धावा बोल दिया। अफजल खाँ की सेना भाग खड़ी हुई और शिवाजी को बहुत बड़ी धन-राशि तथा युद्ध सामग्री प्राप्त हुई। इससे शिवाजी और उनके सैनिकों का साहस बहुत बढ़ गया।

(2) शिवाजी के जीवन का द्वितीय भाग (1659-1674)

(1) मुगलों से संघर्ष– शिवाजी की लगातार सफलताओं से भयभीत होकर औरंगजेब ने 1659 में अपने मामा शाइस्ता खाँ को दक्षिण का सूबेदार बनाकर शिवाजी का दमन करने के लिए भेजा। उसने बीजापुर के सुल्तान से गठबन्धन कर पूना, चाकन आदि दुर्गों पर अपना अधिकार कर लिया। वर्षा ऋतु के आने पर शाइस्ता खाँ पूना में ठहर गया। शिवाजी ने कूटनीति से काम लिया और 15 अप्रैल, 1663 को रात्रि के समय वे अपने 400 सैनिकों के साथ बरातियों के रूप में निकल पड़े और उस महल में प्रवेश कर गये जहाँ शाइस्ता खाँ निवास कर रहा था। एकाएक हमले से शाइस्ता खाँ घबड़ा गया और जल्दी में खिड़की के रास्ते भाग खड़ा हुआ। शिवाजी की तलवार के प्रहार से उसका एक अँगूठा कट गया। उसका पुत्र और अन्य मुगल सैनिक मौत के घाट उतार दिये गये। इस घटना से मुगलों की प्रतिष्ठा में बड़ा धक्का लगा। औरंगजेब ने शाइस्ता खाँ को दक्षिण से बंगाल प्रान्त भेज दिया।

(2) सूरत की प्रथम लूट (1664)– शाइस्ता खाँ को परास्त करने के उपरान्त शिवाजी ने 1664 में पश्चिमी तट पर स्थित सूरत बंदरगाह पर धावा बोलकर उसको लूटा लिया।

इस लूट में उसको ,एक करोड़ से अधिक रुपया मिला। एक अंग्रेज इतिहासकार ने लिखा है, "शिवाजी सब चीजें छोड़कर केवल सोना, चाँदी, हीरे, मोती, और वैसे ही मूल्यवान सामान ले गया।"

(3) जयसिंह का आक्रमण और पुरन्दर की सन्धि (1665)– सूरत की लूट से अत्यधिक दुखी होकर औरंगजेब ने शिवाजी का दमन करने के लिए आमेर के राजा जयसिंह को भेजा। उन्होंने पुरन्दर का घेरा डाल दिया तथा मुगल सेना ने मराठों के ग्रामों और खेतों को उखाड़ दिया। भयंकर गोलाबारी में मराठा सेनापति मुरारबाजी प्रभु अपने 600 आदमियों के साथ वीर-गति को प्राप्त हुआ। फलतः शिवाजी को जयसिंह के सम्मुख आत्म-समर्पण करना पड़ा। बातचीत के परिणामस्वरूप दोनों के बीच पुरन्दर की सन्धि हो गई। सन्धि के शर्तें निम्न प्रकार थीं :

> **शिवाजी के जीवन का द्वितीय भाग**
> 1. मुगलों से संघर्ष
> 2. सूरत की प्रथम लूट
> 3. जयसिंह का आक्रमण और पुरन्दर की सन्धि
> 4. शिवाजी का आगरा जाना
> 5. कैद से मुक्ति
> 6. मुगलों से पुनः संघर्ष

(1) शिवाजी ने 23 किले मुगलों को दे दिये और 12 किले अपने अधिकार में रखे।
(2) शिवाजी के पुत्र शम्भाजी को मुगल दरबार में 5,000 का मनसब दिया गया।
(3) शिवाजी ने बीजापुर के सुलतान के विरुद्ध मुगल सम्राट को सहायता देने का वचन दिया।

राजा जयसिंह और उनके पुत्र रामसिंह ने शिवाजी से मुगल दरबार में चलने का अनुरोध किया और उनकी सुरक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया।

(4) शिवाजी का आगरा जाना– राजा जयसिंह के अनुरोध के अनुसार शिवाजी 12 मई, 1666 को अपने पुत्र शम्भाजी के साथ मुगल दरबार में उपस्थित हुए। लेकिन वहाँ उनका आदर न हुआ और उनको पंचहजारी मनसब की श्रेणी में खड़ा किया गया। इससे शिवाजी की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उन्होंने भरे दरबार में जयसिंह को बहुत भला-बुरा कहा। फलतः शिवाजी और उनके पुत्र शम्भाजी को कैद करके रामसिंह के निवास स्थान पर रख दिया गया।

(5) कैद से मुक्ति– शिवाजी ने कैद से मुक्ति पाने के लिए बीमारी का बहाना कर लिया और स्वस्थ होने के लिए प्रतिदिन टोकरों में मिठाई भरवा कर और अपने हाथ से छूकर गरीबों में बँटवाने का कार्य प्रारम्भ कराया। प्रारम्भ में तो पहरेदार लोग इन टोकरों की जाँच करते रहे, परन्तु यह प्रतिदिन का कार्य समझकर कुछ असावधान हो गए। फलतः 19 अगस्त, को शिवाजी और उनका पुत्र शम्भाजी टोकरियों में बैठकर कैद से बाहर हो गये। पहले वे मथुरा गये। वहाँ से साधु का वेष धारण कर 12 सितम्बर, 1666 को रायगढ़ पहुँच गये।

(6) मुगलों से पुनः संघर्ष– शिवाजी और मुगलों के बीच हुई पुरन्दर-सन्धि अधिक समय तक न चल सकी। 1670 में पुनः शिवाजी तथा मुगलों का संघर्ष प्रारम्भ हो गया। शिवाजी ने सिंहगढ़ का दुर्ग मुगलों से छीन लिया तथा जुन्नर पर अधिकार कर लिया। उन्होंने सूरत पर दूसरी बार आक्रमण किया और खूब लूटा। इसके बाद1672 में उन्होंने तीसरी बार सूरत को लूटा। इस प्रकार शिवाजी अपने आक्रमणों से मुगलों को परेशान करते रहे और मुगल उनका कुछ न बिगाड़ सके।

(3) शिवाजी के जीवन का तृतीय भाग (1674-1680)

(1) शिवाजी का राज्याभिषेक (1674)– शिवाजी ने हिन्दू-रीति के अनुसार रायगढ़ में अपना राज्याभिषेक कराकर 'छत्रपति' की उपाधि धारण की। इस अवसर पर उन्होंने ब्राह्मणों तथा निर्धनों को बहुत ज्यादा दान दिया।

(2) शिवाजी की विजयें– राज्याभिषेक के समय ब्राह्मणों तथा निर्धनों को बहुत अधिक धन देने के कारण शिवाजी का राजकोष रिक्त हो गया था। अतः धन प्राप्त करने के लिए उन्होंने पुनः मुगल प्रदेशों पर अधिकार प्रारम्भ कर दिया। इस काल में उन्होंने निम्नलिखित विजयें प्राप्त कीं :

(1) शिवाजी ने मुगल सेनापति बहादुर खाँ के शिविर पर आक्रमण किया जहाँ से उनको 9 करोड़ रुपये के अतिरिक्त दो सौ उच्चकोटि के घोड़े भी प्राप्त हुए।
(2) इसके उपरान्त उन्होंने बीजापुर के 'कोली प्रदेश' पर आक्रमण किया।
(3) तत्पश्चात् बगलाना और खानदेश पर आक्रमण करके उसे बुरी तरह लूटा।
(4) कोल्हापुर पर आक्रमण करके बहुत सा धन प्राप्त किया।
(5) इसके बाद उन्होंने बीजापुर, गोलकुण्डा तथा हैदराबाद के कुछ प्रदेशों पर आक्रमण किया जहाँ से उन्हें अपार धन-राशि प्राप्त हुई।
(6) 1676 में मुगलों ने कल्याण पर आक्रमण किया, किन्तु शिवाजी ने उन्हें बुरी तरह पराजित किया।
(7) शिवाजी ने बीजापुर से सन्धि करके 3 लाख रुपये प्राप्त किये।

(3) जंजीरा के सिद्दियों से युद्ध– शिवाजी अपने राज्य की सीमा को समुद्र की ओर बढ़ाना चाहते थे। जंजीरा पर सिद्दियों का अधिकार था। जंजीरा पर अधिकार किये बिना उसका कोंकण का प्रदेश सुरक्षित नहीं रह सकता था। सिद्दी भी समुद्र तट पर अधिकार रखना जीवन-मरण का प्रश्न समझते थे, क्योंकि वह भूमि उनके भोजन तथा आय की स्रोत थी। शिवाजी ने जंजीरा पर आक्रमण कर दिया। सिद्दियों के सरदार फतह खाँ ने सन्धि करनी चाही। किन्तु अन्य सरदारों के विरोध करने पर वह सन्धि न कर सका। शिवाजी का जीवन पर्यन्त सिद्दियों से संघर्ष चलता रहा और वे जंजीरा पर अधिकार न कर सके।

शिवाजी के जीवन का तृतीय भाग
1. शिवाजी का राज्याभिषेक
2. शिवाजी की विजयें
3. जंजीरा के सिद्दियों से युद्ध
4. कर्नाटक विजय
5. शिवाजी की मृत्यु

(4) कर्नाटक विजय– जनवरी, 1677 में शिवाजी ने कर्नाटक पर आक्रमण किया और प्रमुख नगरों पर अधिकार करके पर्याप्त धन प्राप्त किया। इसके पश्चात् उन्होंने तंजौर पर आक्रमण किया और उस पर भी अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। इस प्रकार समस्त कर्नाटक पर शिवाजी का अधिकार हो गया।

(5) शिवाजी की मृत्यु– शिवाजी के अन्तिम दिन सुखद नहीं व्यतीत हुए। वे शम्भाजी के व्यवहार से अत्यधिक दुखी रहते थे। उसका दूसरा पुत्र राजाराम अल्पवयस्क था। 2 अप्रैल, 1680 को शिवाजी ज्वर से पीड़ित हो गए और अन्त में 13 अप्रैल, 1680 को उसका देहावसान हो गया।

शिवाजी की सफलता के कारण– शिवाजी की सफलता के निम्नलिखित कारण थे :

(1) महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति– शिवाजी की सफलता में महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति ने उन्हें बड़ा लाभ पहुँचाया। महाराष्ट्र एक पहाड़ी प्रदेश और बड़ा ऊँचा-नीचा है। मार्ग का कोई ठीक से पता नहीं चलता। मुगल लोग शिवाजी को पहाड़ी चूहा कहते थे। इस प्रकार प्रकृति ने शिवाजी का पूरा साथ दिया। यदि शिवाजी ने पहाड़ी प्रदेश की अपेक्षा मैदानी प्रदेशों से संघर्ष किया होता तो संभवतः उन्हें इतनी सफलता न मिली होती। डॉ. ईश्वरीप्रसाद ने ठीक ही लिखा है, "शिवाजी का उदय जितना व्यक्तिगत साहस व वीरता की बदौलत था, उतना ही दक्षिण की विचित्र भौगोलिक स्थिति की बदौलत था।"

(2) राष्ट्रीय भावना– 15वीं तथा 16वीं शताब्दी में महाराष्ट्र में एक धार्मिक लहर उठी जिसके प्रणेता गुरु रामदास और सन्त तुकाराम थे। उन्होंने महाराष्ट्र के नवयुवकों में राष्ट्रीय भावनाओं को ज़ाग्रत किया। इन नवयुवकों ने शिवाजी की शक्ति बढ़ाने में बड़ा योग दिया और जान की बाजी लगाकर अपने देश और धर्म की रक्षा की। हिन्दू-धर्म की रक्षा में इन धर्म-सुधारकों ने बड़ा योगदान दिया। रामदास जी का कहना था, "यदि धर्म का नाश हो गया तो जीने से मरना अच्छा। धर्म के ह्रास के पश्चात् जीवन से लाभ ही क्या? धर्म नहीं तो जीवन क्या? अतः ऐ मराठो! संगठित हो, धर्म का पुनरुत्थान करो अन्यथा तुम्हारे पूर्वज स्वर्ग में तुम्हारी हँसी करेंगे।"

शिवाजी की सफलता के कारण

1. महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति
2. राष्ट्रीय भावना
3. शिवाजी की रण-नीति
4. दक्षिण की शिया रियासतों की कमजोरी
5. मराठा सैनिकों में देशभक्ति की भावना
6. औरंगजेब की धार्मिक नीति
7. मराठों के योग्य सेनापति
8. औरंगजेब का शक्की स्वभाव होना
9. औरंगजेब की कठिनाइयाँ
10. शिवाजी का व्यक्तित्व

(3) शिवाजी की रणनीति– शिवाजी ने छापामार युद्धनीति अपनाई थी जिससे मुगल लोग भली-भाँति परिचित न थे। शिवाजी मुगलों की सेना पर पहाड़ी से निकलकर एकाएक छापा मारकर पुनः पहाड़ी में छिप जाते थे। फलतः मुगल सेना डटकर मराठा सैनिकों का सामना नहीं कर पाती थी। इस प्रकार छापामार युद्ध नीति भी शिवाजी की सफलता एवं मुगलों की पराजय का कारण बनी।

(4) दक्षिण की शिया रियासतों की कमजोरी– औरंगजेब की दक्षिण नीति के कारण बीजापुर और गोलकुण्डा की शिया रियासतें अत्यधिक निर्बल हो गई थीं। अतः शिवाजी को अपनी शक्ति बढ़ाने का पूर्ण अवसर प्राप्त हुआ। यदि औरंगजेब ने इन रियासतों के सहयोग से शिवाजी से टक्कर ली होती तो संभवतः शिवाजी को इतनी सफलता न मिलती जितनी उन्हें मिली। अतः दक्षिण की शिया रियासतों की कमजोरी भी शिवाजी की सफलता का कारण बनी।

(5) मराठा सैनिकों में देशभक्ति की भावना– शिवाजी ने मराठा सैनिकों में देशभक्ति, त्याग और बलिदान की भावनाएँ कूट-कूट कर भरी थीं। वे रूखा-सूखा खाकर भी उसी जोश से दुश्मन से टक्कर लेते थे जबकि मुगल भाड़े के टट्टू के समान थे। इस प्रकार मराठा सैनिकों की देश-भक्ति की भावना भी शिवाजी की सफलता का कारण बनी।

(6) औरंगजेब की धार्मिक नीति– औरंगजेब की धार्मिक नीति से मराठे बहुत असंतुष्ट थे। उसने हिन्दुओं पर बहुत अत्याचार किये थे। उनको हर प्रकार से नीचा दिखाने और अपमानित करने की नीति अपनाई थी। उसने शिया मुसलमानों के साथ भी धार्मिक असहिष्णुता की नीति अपनाई थी। इसके विपरीत शिवाजी की धार्मिक नीति अत्यन्त उदार थी। उन्होंने कभी मुसलमानों की मस्जिदों को ध्वस्त नहीं किया और न उनके धार्मिक ग्रन्थ कुरान का अपमान ही किया। इस प्रकार औरंगजेब की धार्मिक नीति ने उसके पतन का मार्ग उन्मुख किया जबकि शिवाजी की धार्मिक नीति ने उन्हें सफलता का मार्ग प्रशस्त किया।

(7) मराठों के योग्य सेनापति– शिवाजी की सेना में योग्य सेनापति थे। उनके सेनापतियों में रामचन्द्र, प्रहलाद, धन्नाजी यादव, नीलकण्ठ, नीराजी, तानाजी तथा माल सूरे आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसके विपरीत मुगल सेना में ऐसे सेनापतियों का अभाव था। फलतः शिवाजी को सफलता और औरंगजेब को असफलता मिलनी स्वाभाविक थी।

(8) औरंगजेब का शक्की स्वभाव होना– औरंगजेब शक्की स्वभाव का व्यक्ति था। वह अपने किसी पुत्र पर विश्वास नहीं करता था और न किसी सेनापति पर ही विश्वास करता था। वह सदैव राजा जयसिंह और जसवन्तसिंह को अविश्वास की दृष्टि से देखता था जो प्रसिद्ध सेनापति थे। उसके स्वभाव के कारण ही उसके पुत्र अकबर ने विद्रोह किया था।

(9) औरंगजेब की कठिनाइयाँ– औरंगजेब की कठिनाइयाँ शिवाजी के लिए वरदान सिद्ध हुईं। औरंगजेब की धार्मिक नीति के कारण उत्तरी भारत के चारों ओर विद्रोह हो रहे थे। उसके पुत्र अकबर ने विद्रोह का झण्डा खड़ा करके उसके लिए विकट समस्या उपस्थित कर दी थी। औरंगजेब की इन सब कठिनाइयों से शिवाजी ने पूरा-पूरा लाभ उठाया और एक स्वतन्त्र मराठा राज्य स्थापित करने में सफल हुए।

(10) शिवाजी का व्यक्तित्व– शिवाजी की सफलता का सबसे बड़ा कारण उनका महान् व्यक्तित्व था। उनमें एक सफल विजेता, महान् योद्धा, कुशल राजनीतिज्ञ एवं सफल संगठनकर्ता के गुण विद्यमान थे। यदुनाथ सरकार के शब्दों में, "एक जन्मजात नेता का-सा व्यक्तिगत आकर्षण शिवाजी में था और जिस किसी का भी उनके साथ परिचय हुआ, वह शिवाजी के प्रति मन्त्र मुग्ध-सा हो जाता था।" इतिहासकार रालिन्सन ने ठीक ही लिखा है, "निश्चय ही ये सब गुण साधारण नहीं हैं।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त कारणों से शिवाजी को सफलता प्राप्त हुई।

शिवाजी की शासन-व्यवस्था

शिवाजी में सैनिक योग्यता के साथ-साथ एक सफल शासक के सभी गुण विद्यमान थे। डॉ. रमेशचन्द्र मजूमदार के अनुसार, "वह केवल एक निर्भीक सैनिक तथा सफल विजेता ही न था, बल्कि अपनी प्रजा का प्रबुद्धशील शासक भी था।" अधिकांश इतिहासकार शिवाजी को विश्व के महान् शासन-प्रबन्धकों में मानते हैं। शिवाजी की शासन-व्यवस्था की रूपरेखा निम्नांकित थी –

(1) केन्द्रीय शासन– शिवाजी का केन्द्रीय शासन स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश था। किन्तु वे प्रजा की भलाई का पूरा ध्यान रखते थे। अतः उन्हें दयालु एवं निरंकुश शासक कह सकते हैं। उन्होंने शासन सम्बन्धी कार्यों में परामर्श लेने के लिए 'अष्ट प्रधान' नामक एक मंत्रि परिषद का निर्माण किया था। इसमें आठ मंत्री थे जो अपने समस्त कार्यों के लिए शिवाजी के प्रति उत्तरदायी थे। 'अष्ट प्रधान' के सदस्यों के नाम तथा कार्य निम्न प्रकार थे–

शिवाजी की शासन-व्यवस्था

1. केन्द्रीय शासन–
   (1) पेशवा, (2) अमात्य,
   (3) मंत्री, (4) सचिव,
   (5) सुमन्त, (6) सेनापति,
   (7) पंडित-राव, (8) न्यायाधीश
2. प्रान्तीय शासन
3. स्थानीय शासन
4. न्याय-व्यवस्था
5. आर्थिक व्यवस्था
6. सेना का प्रबन्ध
7. गुप्तचर-विभाग
8. दुर्गों की व्यवस्था

(1) पेशवा– यह राज्य का प्रधान मंत्री अथवा पेशवा कहलाता था। वह शासन के कार्यों पर दृष्टि रखता था। राजा की अनुपस्थिति में वही शासन के कार्यों का संचालन करता था। राजा के समस्त सरकारी पत्रों एवं आदेशों पर राजा की मुहर के नीचे उसकी मुहर लगी रहती थी।

(2) अमात्य (मजूमदार)– यह राजस्व विभाग का अध्यक्ष था। इसका कार्य राज्य के आय-व्यय के समस्त कागजों का निरीक्षण कर उन पर हस्ताक्षर करना था।

(3) मंत्री (वाकया-नवीस)– यह राजा के दैनिक कार्यों तथा गृह-प्रबन्ध की देख-भाल करता था। राजा की सुरक्षा का पूर्ण उत्तरदायित्व इसी पर था।

(4) सचिव (शुरू-नवीस)– यह सरकारी-पंत्र व्यवहार करने का कार्य करता था। परगनों के हिसाब की जाँच का उत्तरदायित्व इसी पर था।

(5) सुमन्त (दबीर)– यह वैदेशिक विभाग का मंत्री था और संधि-विग्रह के मामलों में राजा को परामर्श देता था। यह विदेशी राजदूतों तथा प्रतिनिधियों की भी देख-भाल करता था।

(6) सेनापति (सर-ए-नौबत)– यह सैन्य-विभाग का मुख्य अधिकारी था। इसका कार्य सेना की भर्ती, संगठन तथा अनुशासन बनाये रखना था। युद्ध में मोर्चा-बन्दी करना भी इसका कार्य था।

(7) पण्डितराव (सदर मुहतसिब)– यह दान विभाग का मुख्य अधिकारी था। इसका प्रमुख कार्य जनता के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाना, पाप करने वालों को दण्ड देना तथा ब्राह्मणों में दान बँटवाना था।

(8) न्यायाधीश– यह राज्य का सबसे बड़ा न्यायाधीश था। इसका कार्य न्याय की व्यवस्था करना था। वह हिन्दू-शास्त्रों के अनुसार दीवानी तथा फौजदारी के मुकदमों का निर्णय करता था। छोटी अदालतों के निर्णय के विरुद्ध यह अपीलें भी सुनता था।

2. प्रान्तीय शासन– शिवाजी का विशाल साम्राज्य चार प्रान्तों में बँटा हुआ था। प्रान्तों का शासन प्रान्ताध्यक्ष (सरे-कारकुन) के अधीन था।

(1) उत्तरी प्रान्त– इसमें सूरत से पूना तक का देश सम्मिलित था। यह भाग मोर त्र्मबक पिंगले के अधीन था।

(2) दक्षिणी प्रान्त– इसमें कोंकण, दक्षिणी मुंबई, सावन्तवाड़ी और उत्तरी कनारा का समुद्र तट सम्मिलित था। यह अन्नाजी दत्तो के अधीन था।

(3) दक्षिणी पूर्वी प्रान्त– इसमें सतारा, कोल्हापुर, बेलगाँव और धारवार के क्षेत्र सम्मिलित थे। इसका शासन दत्तोजी पन्त के अधीन था।

(4) सुदूर दक्षिणी प्रान्त– इसमें वे क्षेत्र सम्मिलित थे जो हाल में ही जीते गये थे ओर सेना के अधिकार में थे।

प्रत्येक सूबे का शासन तीन पदाधिकारियों द्वारा चलाया जाता था। हवलदार का कार्य दुर्ग की रक्षा करना था। कारकुन उस क्षेत्र की शान्ति व्यवस्था के लिए उत्तदायी था। सूबेदार का काम कर वसूलना था। यह अधिकारी प्रान्तपति (सरे-कारकुन) के अधीन होते थे। परन्तु इनकी नियुक्ति का अधिकार शिवाजी को ही था।

3. स्थानीय शासन– प्रत्येक प्रान्त को कई परगनों में तथा परगनों को ग्रामों में विभक्त किया गया था। ग्राम शासन की सबसे छोटी इकाई थी। प्रत्येक परगने में वेतन प्राप्त अधिकारी होते थे।

4. न्याय-व्यवस्था– शिवाजी की न्याय-व्यवस्था बहुत श्रेष्ठ थी। उनकी न्याय-व्यवस्था हिन्दू धर्मशास्त्रों पर आधारित थी। न्याय का प्रधान अधिकारी न्यायाधीश होता था। न्यायाधीश के पद पर केवल ब्राह्मण ही नियुक्त किये जाते थे जिन्हें धर्मशास्त्रों का अच्छा ज्ञान होता था। छोटे-छोटे झगड़ों का फैसला करने के लिए ग्राम-पंचायतें थीं।

5. आर्थिक व्यवस्था– किसानों से कुल उपज का 2/5 भाग भूमि-कर के रूप में लिया जाता था। यह नकद या गल्ले के रूप में लिया जाता था। भूमि-कर के अतिरिक्त आयात-कर, निर्यात कर तथा चुंगी-कर लिया जाता था। राज्य की आय का सबसे बड़ा साधन चौथ था। यह पड़ोसी राज्यों पर छापा मारकर वसूल किया जाता था जो उनकी आय का चौथाई भाग होता था। शिवाजी की आय का दूसरा प्रमुख साधन सरदेशमुखी था जो राज्यों की आय का 1/10 भाग होता

था। राज्य की कुल आय लगभग एक करोड़ हूण थी।

6. सेना का प्रबन्ध– शिवाजी की सेना बहुत संगठित तथा अनुशासित थी। उनकी सेना का संगठन निम्न प्रकार था :

(अ) घुड़सवार सेना– सेना का सबसे महत्वपूर्ण अंग घुड़सवार सेना थी, जिसकी संख्या 40 हजार थी। इसको निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है :

10 सिपाही = 1 नायक, 25 नायक = 1 हवलदार
5 हवलदार = 1 जुमलादार, 10 जुमलादार = 1 हजारी।

(ब) पैदल सेना– सेना में पैदल सिपाहियों का भी बड़ा महत्व था। पैदल सिपाही को पाइक कहते थे। पैदल का विभाजन निम्न प्रकार था :

9 पाइक के ऊपर 1 नायक, 5 नायकों के ऊपर 1 हवलदार, 2 या 3 हवलदारों के ऊपर 1 जुमलादार, 10 जुमलादारों के ऊपर 1 हजारी तथा सात हजारियों पर एक सर-ए-नौबत होता था। शिवाजी की पैदल सेना में 1 लाख सैनिक थे।

(स) हस्ति-सेना– शिवाजी की सेना में 1,260 हाथी थे।

(द) जल सेना– शिवाजी ने एक छोटी जल सेना का भी संगठन किया था। उनके पास 200 जहाजों का बेड़ा था।

(7) गुप्तचर विभाग– सेना में एक गुप्तचर विभाग भी था। इसका प्रमुख कार्य शत्रुओं की गतिविधियों की जानकारी रखना था।

(8) दुर्गों की व्यवस्था– शिवाजी ने दुर्गों की ओर विशेष ध्यान दिया था। उन्होंने पुराने दुर्गों की मरम्मत कराई तथा नये दुर्गों का निर्माण कराया। दुर्ग का अधिकारी हवलदार होता था। उसके अन्तर्गत सरेनौबत व सबनीस आदि अधिकारी थे। दुर्गों की सुरक्षा के लिये उनमें सेनाएँ रहती थीं। शिवाजी के अधीन 240 दुर्ग थे। रालिन्स महोदय के अनुसार, "लोगों को यह सिखलाया जाता था कि वे दुर्ग को अपनी माता समझें और वास्तव में यह ठीक भी था, क्योंकि आक्रमण के समय पास-पड़ोस के ग्रामवासियों को वहाँ शरण मिलती थी।"
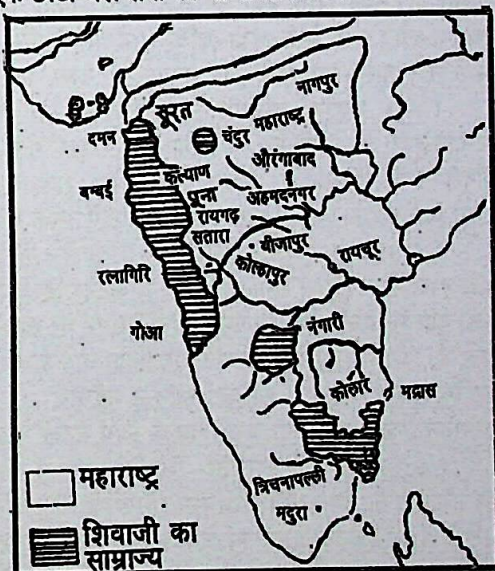
शिवाजी का चरित्र एवं कार्यों का मूल्यांकन

शिवाजी के चरित्र एवं कार्यों की इतिहासकारों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। यद्यपि आँग्ल इतिहासकारों ने उसको लुटेरा, दगाबाज, हत्यारा, विश्वासघाती कहा है, किन्तु आज के इतिहासकार इन मतों से सहमत नहीं हैं। औरंगजेब के अनुसार, 'शिवाजी एक पहाड़ी चूहा था।' एक बार उसने स्वयं कहा था, "मेरे विरुद्ध जितने व्यक्तियों ने स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने का प्रयास किया, उनमें किसी को सफलता नहीं मिली। एकमात्र शिवाजी ही अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने में सफल हो सका।" शिवाजी के चरित्र को समझने के लिए विभिन्न पहलुओं को दृष्टिगत करना होगा।

(1) उच्च आदर्श– शिवाजी का व्यक्तिगत जीवन आदर्शमय था। वे अपनी माता के आज्ञाकारी पुत्र थे। अनेक विवाह होने पर भी उनको स्त्रियों एवं पुत्रों से बहुत प्रेम था। दीन-दुखियों के वे मित्र थे। डॉ. आशीर्वादीलाल के अनुसार, "उनमें असाधारण प्रतिभा थी। वे पक्के धर्मात्मा, संयमी और सदाचारी थे। कट्टर हिन्दू होते हुए भी औरंगजेब की तरह धर्मान्ध नहीं थे।"

(2) महान विजेता– शिवाजी एक महान विजेता थे। उन्होंने मराठा जाति में राष्ट्रीय भावना पैदा करके औरंगजेब से संघर्ष किया। उन्होंने मुगल सेना व बीजापुर की सेनाओं के बड़े-बड़े सेनापतियों को मार दिया। था। उन्होंने मुगलों के अनेक दुर्गों पर अधिकार कर लिया था। इस प्रकार विजेता एवं योद्धा के रूप में उन्होंने एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की।

(3) महान शासक– शिवाजी एक कुशल शासक भी थे। शासन को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए "अष्ट प्रधान" मंत्रि-परिषद् की स्थापना की थी। उनका शासन हिन्दू धर्मशास्त्रों पर आधारित था। उन्होंने जागीरदारी प्रथा को समाप्त कर दिया था। उनकी सेना में मुसलमानों को भी उच्च पद प्राप्त थे। निरंकुश शासक होते हुए भी वे प्रजा के हित का पूरा-पूरा ध्यान रखते थे। हेग महोदय के अनुसार, "उनकी सभी प्रजा उन तक पहुँच सकती थी और साधारण लोग उन्हें ऐसी श्रद्धा-भक्ति से देखते थे जैसे उनके समकालीन शासन का अन्य कोई शासक नहीं देखा जाता था।"

शिवाजी का चरित्र

1. उच्च आदर्श
2. महान विजेता
3. महान शासक
4. महान कूटनीतिज्ञ
5. हिन्दू संस्कृति के रक्षक
6. महान राष्ट्र-निर्माता

(4) महान कूटनीतिज्ञ– शिवाजी एक सफल कूटनीतिज्ञ थे। वह अपने गुप्तचर विभाग द्वारा शत्रु की गति-विधि की पूरी जानकारी रखते थे। अफजल खाँ का वध, शाइस्ता खाँ पर रात्रि में एकाएक आक्रमण और आगरा के किले से निकल भागना आदि घटनाएँ उनके महान कूटनीतिज्ञ होने की परिचायक हैं।

(5) हिन्दू-संस्कृति के रक्षक– शिवाजी ने हिन्दू-जाति, गौ और ब्राह्मण की रक्षा करने के लिए मराठा जाति को संगठित किया। वे कट्टर हिन्दू थे किन्तु उनकी धार्मिक नीति उदार थी। उनकी दृष्टि में हिन्दू और मुसलमान दोनों बराबर थे। खफी खाँ नामक मुस्लिम इतिहासकार ने लिखा है, "शिवाजी ने यह निश्चय बना लिया था कि जब कभी भी उनके साथी लूट-पाट करें, वे मस्जिद या किसी स्त्री को कोई हानि न पहुँचायें .... जब इनके सैनिक कुरान, हिन्दू या मुसलमान स्त्रियों को बन्दी बनाते तब वे स्वयं उनकी रखवाली करते थे।"

(6) महान राष्ट्र निर्माता– शिवाजी एक राष्ट्र-निर्माता थे। उन्होंने हिन्दू-मुसलमानों के साथ समानता का व्यवहार किया। मुसलमानों को भी उन्होंने सरकारी नौकरियाँ प्रदान कीं। उनकी नौ-सेना में अधिकतर मुसलमान कर्मचारी थे। उन्होंने भारत में देश-भक्ति व राष्ट्रीयता की भावना पैदा की। प्रसिद्ध इतिहासकार यदुनाथ सरकार ने लिखा है, "उन्होंने अपने उदाहरण द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि हिन्दू जाति एक राष्ट्र का निर्माण कर सकती है वे (हिन्दू लोग) अपनी रक्षा स्वयं कर सकते हैं। उन्होंने आधुनिक हिन्दुओं को अपनी उन्नति के उच्चतम स्तर तक उठने की शिक्षा दी।"

शिवाजी का मूल्यांकन– शिवाजी की शासन व्यवस्था तथा उनके चरित्र के विश्लेषण से इस कथन की पुष्टि हो जाती है, 'शिवाजी एक बड़ा वीर, योद्धा एवं सफल शासक था।' शिवाजी के चरित्र एवं उनके कार्यों के सम्बन्ध में कतिपय इतिहासकारों के विचारों को दे देना आवश्यक है:

डॉ. आशीर्वादीलाल के अनुसार– "शासक और प्रबन्धक के रूप में शिवाजी को उत्कट सफलता मिली। उन्होंने एक शक्तिशाली राज्य का निर्माण किया। उसने अच्छी शासन-व्यवस्था की और उस युग के अनुकूल प्रजा की भौतिक और नैतिक उन्नति करने का यथा संभव प्रयत्न

किया।"

यदुनाथ सरकार के अनुसार- "वह भारत का अन्तिम हिन्दू राष्ट्र-निर्माता था।"

औरंगजेब के अनुसार- "शिवाजी एक पहाड़ी चूहा था।"

विन्सेन्ट स्मिथ के अनुसार- "शिवाजी डाकू था और उसके द्वारा स्थापित किया हुआ राज्य डाकू राज्य था।"

मुखर्जी के अनुसार- "मुगल साम्राज्य के, जो उस समय अपनी कीर्ति और समृद्धि के उच्चतम शिखर पर पहुँच चुका था, खुले विरोध में हिन्दू राज्य को स्थापित करना किसी तुच्छ प्रतिभा का काम नहीं था।"

महाजन के अनुसार- "शिवाजी केवल मराठा जाति के ही निर्माणकर्त्ता न थे, अपितु वे मध्यकालीन भारतवर्ष के निर्माणकर्त्ता थे।"

अन्त में हम सर यदुनाथ सरकार के शब्दों में कह सकते हैं, "शिवाजी ने हिन्दुओं को अधिक-से-अधिक उन्नति करने की शिक्षा दी थी। उन्होंने बताया कि हिन्दुत्व का वृक्ष वास्तव में मरा नहीं है किन्तु यह सदियों की राजनीतिक पराधीनता के कारण मरा-सा दिखायी देता है। यह फिर बढ़ सकता है और इसमें नई-नई पत्तियाँ और शाखाएँ आ सकती है। यह अपना सिर आकाश तक फिर उठा सकता है।"

शिवाजी के उत्तराधिकारी

(1) शम्भाजी (1681-1689)- शिवाजी की मृत्यु के उपरान्त उनका पुत्र शम्भाजी 22 वर्ष की अवस्था में 16 जनवरी, 1681 को गद्दी पर बैठा। शम्भाजी अत्यन्त वीर और साहसी होते हुए भी अयोग्य, भ्रष्ट तथा विलासी था। उसने अपने छोटे भाई राजाराम को बन्दीगृह में डाल दिया तथा अपने विरोधियों का कठोरता से दमन किया। फलतः अनेक मराठा सरदार उसके शत्रु बन गये। उसने औरंगजेब के विरोधी पुत्र अकबर को अपना संरक्षण प्रदान किया। औरंगजेब ने अकबर को पकड़ने के लिए शाहजादा मुअज्जम तथा आजम को भेजा लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। बीजापुर और गोलकुण्डा की विजय के पश्चात् औरंगजेब ने 1689 में अचानक आक्रमण करके संगमेश्वर नामक स्थान पर शम्भाजी तथा उसके 25 साथियों को गिरफ्तार कर लिया और पन्द्रह दिन घोर कष्ट देने के पश्चात् 14 मार्च, 1689 को कोरेगाँव के समीप भीमा नदी के तट पर उसका तथा साथियों का वध करवा दिया।

शिवाजी के उत्तराधिकारी

1. शम्भाजी
2. राजाराम
3. शिवाजी द्वितीय
4. शाहू

(2) राजाराम (1689-1700)- शम्भाजी की निर्मम हत्या से मराठों की स्वतन्त्र भावना को दबाया नहीं जा सका। मराठों ने राजाराम को रायगढ़ दुर्ग से मुक्त कराकर राज-सिंहासन पर बैठाया और उसके नेतृत्व में मुगलों के विरुद्ध अपना संघर्ष जारी रखा। मुगलों ने रायगढ़ पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया। राजाराम अपनी पत्नी तथा पुत्र सहित दुर्ग से भाग कर दक्षिण चला गया और जिन्जी के दुर्ग में उसने अपनी शक्ति जमायी। औरंगजेब ने शम्भाजी की पत्नी तथा अल्पवयस्क पुत्र शाहू को बन्दी बना लिया। जब औरंगजेब ने जिन्जी के दुर्ग पर अधिकार कर लिया तो राजाराम सतारा चला गया और वहाँ से मुगलों के विरुद्ध युद्ध जारी रखा। वहाँ उसने एक नई सेना संगठित की और गुरिल्ला युद्ध-प्रणाली द्वारा मुगल सेना से टक्कर ली किन्तु दुर्भाग्यवश वह अधिक दिनों तक जीवित न रह सका और 30 वर्ष की अल्पायु में 12, मार्च, 1700 को उसकी मृत्यु हो गई।

(3) शिवाजी द्वितीय (1700-1707)- राजाराम की मृत्यु के पश्चात् उसकी पत्नी ताराबाई ने अपने अल्पवयस्क पुत्र 'शिवाजी द्वितीय' को गद्दी पर बैठाकर मराठों का नेतृत्व किया। ताराबाई एक सुयोग्य तथा बुद्धिमती महिला थी। उसके नेतृत्व में मराठों ने पुनः मुगल प्रदेशों पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया ओर कई दुर्गों पर पुनः अधिकार स्थापित कर लिया। औरंगजेब मराठों का दमन करने में सफल न हो सका और 1707 में उसकी मृत्यु हो गई।

(4) शाहू (1707-1747)- औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र आजम ने शाहू को मुक्त कर दिया और उसे दक्षिण में छः सूबों तथा गोंडवाना, गुजरात और तंजौर के प्रदेशों में 'चौथ' और 'सरदेशमुखी' वसूल करने का अधिकार भी दे दिया। जब इस आज्ञा-पत्र को लेकर शाहू महाराष्ट्र पहुँचा तो मराठा सरदारों ने उसका स्वागत किया, किन्तु ताराबाई ने उसका विरोध किया। फलतः दोनों में संघर्ष आरम्भ हो गया। बालाजी विश्वनाथ ने शाहू के एक के बाद एक शत्रु पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। ताराबाई के कई सरदार या तो पराजित कर दिए गये या शाहू से मिल गये। ताराबाई के विरुद्ध इसी समय एक षड्यंत्र रचा गया जिसके अन्तर्गत राजाराम की एक अन्य विधवा राजसबाई ने अपने पुत्र शम्भाजी द्वितीय को राजगद्दी का उत्तराधिकारी बताया। यह षड्यन्त्र सफल रहा, ताराबाई और उसके लड़के को 1711 में कैद कर लिया गया और राजसबाई ने अपने लड़के को कोल्हापुर में गद्दी दिलायी और शाहू निर्देशित प्रभाव सीमा रेखा के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया। शाहू ने लगभग 41 वर्षों तक राज्य किया और 1749 में उसकी मृत्यु हो गई। सर देसाई ने शाहू के विषय में लिखा है- "महान् संस्थापक शिवाजी के पश्चात् मराठा राज्य के विकास का सर्वाधिक श्रेय शाहूजी को है।" शाहू की विलासिता के कारण शासन की वास्तविक सत्ता पेशवा के हाथ में चली गयी थी। अतः यहाँ पर पेशवाओं के उत्थान का विवरण दे देना आवश्यक है।

पेशवा

बालाजी विश्वनाथ (1713-20)- 16 नवम्बर, 1713 को शाहू ने बालाजी विश्वनाथ को अपना पेशवा नियुक्त किया; क्योंकि उसने ताराबाई के विरुद्ध उसकी बड़ी सेवा की थी। पेशवा पद पर आसीन होने के पश्चात् उसने सर्वप्रथम आन्तरिक शान्ति तथा सुव्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया।

मराठों तथा सैयद हुसैनअली में सन्धि- सैयद भाइयों ने फर्रूखसियर को राज-सिंहासन पर बैठाकर समस्त सत्ता पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। सैयद हुसैनअली दक्षिण का सूबेदार था। जब उसे यह समाचार ज्ञात हुआ कि सम्राट फर्रूखसियर उसके भाई अब्दुल्ला के विरुद्ध षड्यन्त्र रच रहा है तो उसने मराठों से सहायता की प्रार्थना की। मराठों ने तुरन्त उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया तथा दोनों पक्षों के मध्य 1719 में सन्धि हो गई। सन्धि की शर्तें निम्न प्रकार तय हुईं :

(1) वे समस्त प्रदेश एवं दुर्ग, जो शिवाजी के स्वराज्य के अन्तर्गत थे, शाहू के अधिकार में आ जायेंगे।

(2) शाहू के नियंत्रण में वे समस्त प्रदेश आ जायेंगे जिनको मराठों ने खानदेश, बरार, गोंडवाना, हैदराबाद तथा कर्नाटक से जीता है।

(3) मराठों को छः प्रान्तों से चौथ तथा सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार प्राप्त हो जायेगा।

(4) शाहू चौथ के बदले में सम्राट को 15,000 सैनिकों की सहायता प्रदान करेगा।

(5) शाहू सरदेशमुखी के बदले में दक्षिण में शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित करने का उत्तरादायित्व अपने ऊपर लेगा।

(6) शाहू कोल्हापुर राज्य में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगा।
(7) शाहू मुगल सम्राट को 10 लाख रुपये वार्षिक भेंट के रूप में अदा करेगा।
(8) मुगल सम्राट शाहू की माता (येसूबाई), पत्नी (सावित्रीबाई), भाई मदन सिंह तथा उसके अन्य सम्बन्धियों को कैद से मुक्त कर देगा।

सन्धि के अनुसार मराठों ने हुसैनअली की सहायता की। जब हुसैनअली ने दक्षिण से उत्तर की ओर प्रस्थान किया तो पन्द्रह हजार सैनिक बालाजी विश्वनाथ तथा खण्डेराव धमादे के नेतृत्व में उसके साथ थे। सैयद भाई फर्रूखसियर को गद्दी से उतारने में सफल हो गये और नये मुगल-सम्राट ने मराठों के साथ हुई सन्धि की समस्त शर्तों को स्वीकार कर लिया। यह सन्धि बालाजी विश्वनाथ की महानता की परिचायक थी। उसने मराठों को संगठित कर मराठा संघ की स्थापना की। उसने मालगुजारी वसूल करने के लिए प्रत्येक जिले में कर्मचारियों की नियुक्ति की। उसने कृषि को भी प्रोत्साहन प्रदान किया। सात वर्षों तक पेशवा के पद को सुशोभित करने के पश्चात् 22 अप्रैल, 1720 को अचानक बालाजी विश्वनाथ का परलोकवास हो गया।

पेशवा बाजीराव प्रथम (1720-1740)– बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र बाजीराव प्रथम पेशवा के पद पर आसीन हुआ। यद्यपि उसकी नियुक्ति पर अन्य मराठा सरदारों ने घोर विरोध किया। उस समय बाजीराव की अवस्था 20 वर्ष की भी नहीं थी, किन्तु उसकी बुद्धि तथा बल से प्रभावित होकर ही शाहू ने उसे पेशवा के पद पर आसीन किया। उसमें परिस्थिति तथा वास्तविकता को पहचानने की अद्‌भुत क्षमता थी। वह मुगल साम्राज्य की निर्बलता से लाभ उठाकर मराठा साम्राज्य का विस्तार उत्तर की ओर करना चाहता था। कुछ मराठा सरदारों ने उसकी इस नीति का विरोध किया, किन्तु किसी विरोध की परवाह न करते हुए वह छत्रपति शाहू की आज्ञा प्राप्त करने में सफल हो गया।

बाजीराव की विजयें– बाजीराव ने निम्नलिखित विजयें प्राप्त कीं :

(1) मालवा पर अधिकार– नर्मदा नदी के उत्तर में मालवा प्रदेश स्थित था। वह मुगलों के अधिकार में था। इस पर अपना आधिपत्य स्थापित करने के लिए बाजीराव ने आक्रमण कर दिया और बड़ी सरलता से इस पर अधिकार कर लिया। उसने राजपूतों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किया। फ़लतः राजपूतों ने मराठों का विरोध नहीं किया। मालवा में अपने सेनापतियों को छोड़कर वह पूना वापस चला गया।

(2) गुजरात पर अधिकार– मालवा विजय के बाद उसने गुजरात की ओर ध्यान दिया और शीघ्र ही गुजरात पर उसका अधिकार स्थापित हो गया। उसने वहाँ का अधिकारी खंडेराव घमादे को नियुक्त किया। उसके सहायक गायकवाड़ ने बड़ौदा में राजवंश की स्थापना की और उसके भतीजे ने सूरत से लगभग 80 किमी दूर सोनगढ़ स्थान पर एक दुर्ग का निर्माण करवाया।

(3) बाजीराव तथा निजाम– निजाम की शक्ति से मराठे सदा भयभीत रहते थे। इसका कारण यह था कि सैयद भाइयों के पतन के उपरान्त निजाम का प्रभाव मुगल दरबार में काफी बढ़ गया था। उसने 1719 में हुई मराठों और मुगलों की सन्धि को भी अस्वीकार कर दिया था। बाजीराव ने निजाम से युद्ध करने का निश्चय किया, किन्तु निजाम ने कई मराठा सरदारों तथा शम्भाजी द्वितीय में विरोध की भावना पैदा करके उन्हें अपनी ओर मिला लिया तथा उन्हें महाराष्ट्र को अपने अधिकार में करने के लिए प्रोत्साहित कर रहा था। शाहू ने विभिन्न समयों में निजाम से तीन बार भेंट की, किन्तु उसका कोई महत्वपूर्ण परिणाम नहीं निकला।

(4) बाजीराव का कर्नाटक पर आक्रमण– बाजीराव ने निजाम से समझौता करके कर्नाटक पर आक्रमण करने की बात तय की। 1725 में बाजीराव ने कर्नाटक पर आक्रमण कर दिया, लेकिन निजाम ने उसकी सहायता नहीं की, बल्कि उसने स्वयं अपनी सेना को कर्नाटक-

विजय के लिए भेज दिया। जब बाजीराव कर्नाटक विजय में व्यस्त था, उसने महाराष्ट्र में एक कुचक्र रच कर चन्द्रसेन जाधव, उदाजी चावण एवं रावरंभा निम्बाल्कर जैसे मराठा सामन्तों को अपनी ओर मिला लिया और शम्भाजी द्वितीय तथा शाहू के दल के बीच भेदभाव पैदा करने की चेष्टा की। फलतः शाहू घबड़ा गया और उसने निजाम के साथ सन्धि करने का निश्चय किया। सन्धि होने ही वाली थी कि बाजीराव अपनी सेना सहित महाराष्ट्र वापस आ गया। निजाम ने सन्धिवार्ता स्थगित कर दी।

पालखेद का युद्ध (1728)– शाहूजी तथा बाजीराव निजाम की चालों से सचेत हो गये। शाहू की अनुमति लेकर बाजीराव ने एक विशाल सेना सहित पालखेद नामक स्थान पर निजाम को घेर लिया। निजाम ने विवश होकर सन्धि का प्रस्ताव रखा। अतः निजाम और मराठों के बीच 6 मार्च, 1728 को 'मुंगी शिव गाँव की सन्धि' हो गई।

सन्धि की शर्तें– इस सन्धि की शर्तें निम्नलिखित थीं :

(1) निजाम शाहू को चौथ और सरदेशमुखी का शेष धन प्रदान करेगा।

(2) निजाम को उन समस्त व्यक्तियों को रखना पड़ा जिन्हें मराठों ने कर वसूल करने के लिए नियुक्त किया था।

(3) निजाम ने शाहूजी को समस्त महाराष्ट्र का स्वामी स्वीकार कर लिया।

(4) निजाम् ने शम्भाजी द्वितीय को पन्हाला भेजना स्वीकार कर लिया।

सन्धि के परिणाम– मराठों के इतिहास में इस सन्धि का बहुत बड़ा महत्व है, क्योंकि सन्धि के अनुसार निजाम ने 1719 की सन्धि की समस्त शर्तों को स्वीकार कर लिया। इसके अतिरिक्त निजाम ने शम्भाजी द्वितीय की सहायता न करने की प्रतिज्ञा की, जिसके कारण शम्भाजी द्वितीय की शक्ति कमजोर हो गई। इस सन्धि ने बाजीराव की प्रतिष्ठा को और अधिक बढ़ा दिया।

इस सन्धि से निजाम के स्वाभिमान को अत्यधिक धक्का लगा। उसने कई बार मराठों के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा, किन्तु उसे सफलता नहीं प्राप्त हुई।

(5) मालवा पर पुनः आक्रमण– बाजीराव ने पुनः मालवा पर आक्रमण किया और गिरधर राव को, जो मुगलों के प्रतिनिधि के रूप में शासन कर रहा था, अमेझरा के युद्ध में पराजित किया। इस युद्ध में गिरधर राव तथा उसका चचेरा भाई दयाबंहादुर युद्ध-स्थल में काम आये। मराठों ने 1728 में मालवा पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

(6) बुन्देलखण्ड पर आक्रमण– बाजीराव ने बुन्देलखण्ड पर आक्रमण करने की योजना बनाई। इसी समय बुन्देला सरदार छत्रसाल ने बाजीराव को आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया। बाजीराव ने बुन्देलखण्ड पर आक्रमण करके वहाँ के शासक को परास्त किया और बुन्देलखण्ड छत्रसाल को प्रदान किया। छत्रसाल भी बाजीराव को पुत्रवत् समझने लगा। उसने अपने राज्य को तीन हिस्सों में विभाजित किया। एक भाग पेशवा को और शेष दो पुत्रों में बाँट दिया।

(7) दिल्ली पर आक्रमण– 1736 में बाजीराव ने दिल्ली के निकटवर्ती प्रदेशों को लूटते हुए दिल्ली पर आक्रमण कर दिया। शीघ्र ही वह मुगल सेना को परास्त करता हुआ ग्वालियर आया। तत्पश्चात् महाराष्ट्र वापस लौट गया।

(8) निजाम से पुनः युद्ध– मराठों द्वारा दिल्ली पर आक्रमण किये जाने पर मुगल सम्राट ने मुगल-साम्राज्य की रक्षा हेतु निजाम को बुलाया। निजाम शीघ्र ही दिल्ली आ पहुँचा और मराठों का दमन करने के लिए दक्षिण की ओर प्रस्थान किया, किन्तु बाजीराव ने उसकी सेना को भोपाल के निकट घेर लिया। निजाम को विवश होकर 7 जनवरी 1738 को सन्धि करनी पड़ी। यह सन्धि 'दोराहा सराय' की सन्धि कहलाती है। इस सन्धि के अनुसार–

(1) मालवा पर मराठों का अधिकार हो गया।

(2) नर्मदा तथा चम्बल नदी के मध्य का प्रदेश मराठों के अधिकार में आ गया।
(3) निजाम ने इस बात का भी वचन दिया कि वह इस सन्धि का अनुमोदन-मुगल-सम्राट से भी करवा देगा।

इस सन्धि का बहुत अधिक महत्व है, क्योंकि इसके द्वारा मराठों की धाक जम गई।

(9) कोंकण पर आक्रमण– कोंकण प्रदेश पश्चिमी घाट की पहाड़ियों और समुद्र के मध्य का उपजाऊ प्रदेश था। यहाँ तीन शक्तियाँ–आंग्रे, पुर्तगाली तथा सिद्दी थीं, जिनके मध्य निरन्तर संघर्ष चलता रहता था। पुर्तगाली मराठों के विरोधी थे और पुर्तगाली सूबेदार ने पेशवा का अपमान किया था। फलतः बाजीराव ने अपमान का बदला लेने के उद्देश्य से अपने भाई चिमनजी को कोंकण पर आक्रमण करने के लिये भेजा। उसने शीघ्र ही 1737 में थाना पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् सालसट पर मराठों का अधिकार स्थापित हो गया, किन्तु वे बेसीन पर अधिकार नहीं कर सके। अन्त में मराठों ने सुरंग लगाकर पुर्तगालियों को भयभीत कर आत्मसमर्पण के लिए बाध्य किया। इसके पश्चात् मराठों ने जंजीरा के सिद्दियों की शक्ति का अन्त किया और आंग्रे परिवार के झगड़े का निपटारा कर सम्पूर्ण कोंकण पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

उपर्युक्त विजयों के पश्चात् अप्रैल, 1740 में इस महान् पेशवा की मृत्यु हो गई।

पेशवा बालाजी बाजीराव (1740-61)– पेशवा बाजीराव की मृत्यु के पश्चात् शाहू ने उसके बड़े पुत्र बालाजी बाजीराव को पेशवा के पद पर नियुक्त किया। रघुजी भोंसले और अन्य मराठा सरदारों ने इसका विरोध किया, लेकिन शाहू ने उसके विरोध की चिन्ता नहीं की। अतः 4 जुलाई, 1740 को बालाजी बाजीराव पेशवा के रूप में कार्य करने लगा। उसके शासनकाल की प्रमुख घटनायें निम्नलिखित हैं :

(1) पेशवा और रघुजी– शाहू का निकट सम्बन्धी एवं सेनानायक रघुजी भोंसले बालाजी बाजीराव का प्रबल प्रतिद्वन्दी था। वह पेशवा से ईर्ष्या करता था। उसने बंगाल पर आक्रमण कर वहाँ के शासक अलीवर्दी खाँ से चौथ वसूल की। कुछ समय पश्चात् पेशवा से उसका संघर्ष हो गया। फलतः पेशवा ने कई बार रघुजी को पराजित किया। अन्त में शाहूजी के हस्तक्षेप के कारण दोनों में समझौता हो गया तथा दोनों के प्रभाव-क्षेत्र निश्चित कर दिये गये।

(2) पेशवा और राजपूत– 1743 में जयपुर के राजा जयसिंह की मृत्यु हो गई। उसके दोनों पुत्रों ईश्वरी सिंह और माधव सिंह में उत्तराधिकार के लिए संघर्ष शुरू हो गया। मेवाड़ के राजा जगतसिंह तथा बूँदी और कोटा के राजाओं ने माधवसिंह की सहायता की और ईश्वरी सिंह ने मराठा सरदार मल्हारराव होल्कर तथा सिन्धिया से सहायता प्राप्त करके माधवसिंह तथा उसके साथियों को कठोर दण्ड दिया। अपनी सहायता के बदले उसने मराठों को तीन लाख रुपया देने का वचन दिया था। किन्तु इस रुपये के बँटवारे पर 'सिन्धिया' तथा 'होल्कर' में संघर्ष हो गया। अब मल्हारराव होल्कर माधवसिंह की ओर मिल गया। ऐसी अवस्था में पेशवा ने होल्कर तथा सिन्धिया में समझौता करवा दिया। किन्तु पेशवा के लौटते ही मराठों के पारस्परिक संघर्ष से लाभ उठाकर ईश्वरी सिंह ने मराठों के साथ की हुई सन्धि की शर्तों को मानने से इन्कार कर दिया। इस पर होल्कर ने माधवसिंह की सहायता की और ईश्वरीसिंह को समझौता स्वीकार करने के लिए विवश किया। अन्त में ईश्वरी सिंह ने दुखी होकर आत्महत्या कर ली और उनके स्थान पर माधवसिंह गद्दी पर आसीन हुआ। मराठों ने उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। फलतः उसने बहुत से मराठों का वध करवा डाला जिससे मराठों के राजपूतों से सम्बन्ध अत्यधिक बिगड़ गये।

(3) पेशवा और निजाम– 1748 में निजाम की मृत्यु हो गई और 1749 में शाहजी का भी परलोकवास हो गया। निजाम की मृत्यु के पश्चात् उसका छोटा पुत्र नासिरजंग गद्दी पर बैठा, किन्तु कुछ दिनों के पश्चात् ही मुजफ्फरजंग ने उसका वध कर दिया। लेकिन थोड़े दिनों

बाद ही मुजफ्फरजंग का भी वध कर दिया गया। इसके पश्चात् निजाम के तृतीय पुत्र सलाबतजंग को गद्दी पर बैठाया गया। पेशवा ने सलाबतजंग के स्थान पर निजाम के सबसे बड़े पुत्र गाजीउद्दीन का पक्ष लिया। लेकिन दुर्भाग्यवश गाजीउद्दीन की एक सौतेली माँ ने गाजीउद्दीन को विष देकर मार डाला। सलाबतजंग ने पेशवा से सन्धि करके उसको बहुत-सा इलाका और चौथ वसूल करने का अधिकार दे दिया। लेकिन कुछ दिनों के उपरान्त दोनों के सम्बन्ध पुनः बिगड़ गये।

3 फरवरी, 1760 को मराठों ने निजाम को उदयगिरि नामक स्थान पर पराजित किया। विवश होकर निजाम ने मराठों के साथ सन्धि कर ली। सन्धि के अनुसार सम्पूर्ण बीजापुर का प्रान्त, औरंगाबाद, बीदर का आधा भाग तथा दौलताबाद, अहमदनगर, असीरगढ़ और बुरहानपुर आदि के दुर्ग मराठों को प्राप्त हुए।

(4) उत्तरी भारत पर विजय– उत्तरी भारत में मराठों की धाक जमाने का कार्य पेशवा ने अपने भाई रघुनाथराव को सौंपा। उसने 1757 में दिल्ली तक धावा मारा और नबीउद्दौला को परास्त कर सन्धि के लिए विवश किया। अपने मित्र इमाद-उल-मुल्क को दिल्ली का वजीर बनाकर वापस लौटा। इसके बाद उसने मल्हारराव होल्कर के साथ पंजाब पर आक्रमण किया। पंजाब अहमदशाह अब्दाली के पुत्र तैमूरशाह के अधिकार में था। मराठों ने तैमूरशाह को पराजित कर पंजाब, सरहिन्द तथा लाहौर पर अपना अधिकार कर लिया। यह सब अब्दाली के लिए असह्य था। अतः अब्दाली और मराठों में संघर्ष अनिवार्य हो गया।

पानीपत का तीसरा युद्ध (1761)– अब्दाली ने एक विशाल सेना लेकर भारत पर आक्रमण कर दिया और मराठों को पंजाब से मार भगाया। जब इस घटना की सूचना पेशवा को मिली तो उसने अपने पुत्र-विश्वासराव और चचेरे भाई सदाशिवराव भाऊ की अध्यक्षता में उसका सामना करने के लिए विशाल सेना भेजी। लतीफ के अनुसार भाऊ की सेना में 3 लाख और अब्दाली की सेना में 91 हजार सैनिक थे। गायकवाड, सिन्धिया तथा होल्कर भी अपनी सेनाओं सहित सहायतार्थ चल पड़े। पानीपत के मैदान में दोनों ओर की सेनाएँ आमने-सामने आक्रमण की प्रतीक्षा करती रहीं। अन्त में रसद के अभाव में मराठों ने 14 जनवरी, 1761 को 9 बजे सुबह अब्दाली की सेना पर आक्रमण कर दिया। कई घण्टों तक घमासान युद्ध होता रहा। 12 बजे दोपहर को पेशवा का ज्येष्ठ पुत्र विश्वासराव लड़ता हुआ मारा गया। सदाशिवराव भी हाथी से कूदकर युद्ध करने लगा और वीर-गति को प्राप्त हुआ। दोनों सेनापतियों की मृत्यु से मराठा सेना में भगदड़ मच गई और नेतृत्व के अभाव में सैनिक युद्ध-स्थल से भागने लगे। अब्दाली की सेना ने मराठा सेना का पीछा किया और उसके शिविर को बुरी तरह लूटा। इस प्रकार पानीपत के युद्ध में मराठों की पराजय हुई और विजयमाला अब्दाली के गले में पड़ी। एक इतिहासकार ने लिखा है, "पानीपत के युद्ध ने मराठों की रीढ़ तोड़ दी। महाराष्ट्र में कोई ऐसा घर नहीं बचा था, जिसका कोई लाल इस युद्ध में काम न आया हो।" पानीपत के तृतीय युद्ध में मराठों की हुई अकथनीय हानि के सम्बन्ध में पेशवा को लिखा गया, "दो अमूल्य मोती टूट गये हैं, सत्ताईस स्वर्ण मुद्राएँ खो गई हैं और नष्ट हुई चाँदी और ताबें के सिक्कों की तो गणना ही नहीं की जा सकती हैं।"

मराठों की पराजय के कारण– पानीपत के तीसरे युद्ध में मराठों की पराजय के निम्नलिखित कारण थे :

(1) छापामार रणनीति का त्याग– कुछ विद्वानों की धारणा है कि पानीपत के तीसरे युद्ध में मराठों की पराजय का प्रमुख कारण छापामार रणनीति का परित्याग था। परन्तु इतिहासकार सर देसाई इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते। उनका कथन है कि छापामार रणनीति का प्रयोग उत्तरी भारत के मैदानों में नहीं किया जा सकता था। इस नीतिं का प्रयोग केवल महाराष्ट्र के पर्वतीय प्रदेशों के लिए उपयुक्त था। अतः मराठों को विवश होकर पाश्चात्य रणनीति को ही अपनाना पड़ा जिसके

सम्बन्ध में वे पूर्ण रूप से परिचित नहीं थे। अतः उन्हें पराजय का आलिंगन करना पड़ा।

मराठों की पराजय के कारण

1. छापामार रणनीति का त्याग
2. संयुक्त मोर्चे का अभाव
3. पारस्परिक कलह
4. मराठा सेनापतियों की भूलें
5. मराठा सेना की विशालता
6. मुसलमानों का संगठन
7. राष्ट्रीयता का अभाव

(2) संयुक्त मोर्चे का अभाव– मराठों की पराजय का दूसरा कारण अब्दाली के विरुद्ध हिन्दू और मुसलमानों के संयुक्त मोर्चे का अभाव था। मराठों की बढ़ती हुई शक्ति से मुसलमान अधिक भयभीत हो उठे थे। राजपूत-वर्ग भी मराठों की नीति से असन्तुष्ट थे। इसलिए हिन्दुओं और मुसलमानों में मराठों के प्रति कोई भी सहानुभूति नहीं रह गई थी। अतः इन लोगों ने मराठों की कोई सहायता नहीं की और उन्हें युद्ध में परास्त होना पड़ा।

(3) पारस्परिक कलह– मराठों की पराजय का कारण उनकी पारस्परिक कलह थी। शाहू की मृत्यु के पश्चात् मराठों में पारस्परिक कलह प्रारंभ हो गई थी। ताराबाई ने पेशवा का विरोध किया था। सतारा और कोल्हापुर के छत्रपतियों में भी मतभेद था। राजपूत नीति पर सिन्धिया और होल्कर में मतभेद पैदा हो गया था। सारांश यह है कि मराठों की पारस्परिक कलह उसके पराजय का एक कारण बनी।

(4) मराठा सेनापतियों की भूलें– मराठा सेनापतियों की भूलें भी मराठों की पराजय का कारण बनीं। सदाशिव ने युद्ध करने में देर की। उसने आक्रमण तब किया जब उसके पास रसद का अभाव हो गया तथा सेना भूख से बेचैन थी। इसके अतिरिक्त विश्वासराव की मृत्यु के बाद सदाशिवराव हाथी से कूदकर साधारण सैनिक की भाँति युद्ध करने लगा। इससे हाथी को खाली देखकर मराठा सैनिक निराश हो गये तथा अब्दाली के सैनिकों का उत्साह बढ़ गया।

(5) मराठा सेना की विशालता– मराठों की सेना में विशालता आ गई थी जिसके कारण शीघ्रता से इधर-उधर नहीं हट सकती थी और न तेजी से शत्रु पर आक्रमण ही कर सकती थी। फलतः मराठों की सेनाओं को अब्दाली की सेना के सम्मुख पराजित होना पड़ा।

(6) मुसलमानों का संगठन– मराठा साम्राज्य की बढ़ती हुई शक्ति को मुसलमान वर्ग नष्ट करना चाहता था। इस्लाम धर्म की मान-मर्यादा बनाये रखने के लिए समस्त मुसलमानों ने संगठन करके मराठों का विरोध किया जिससे उन्हें शक्तिशाली मराठों के सम्मुख विजय प्राप्त हुई।

(7) राष्ट्रीयता का अभाव– मराठा सेना में राष्ट्रीयता का अभाव था, क्योंकि उसमें किसी एक विशेष जाति के सैनिक न होकर सभी जातियों के सैनिक थे। फलतः उन्हें अब्दाली की सेना के सम्मुख पराजित होना पड़ा।

युद्ध के परिणाम– पानीपत के तीसरे युद्ध के परिणाम भारतीय इतिहास में बड़े महत्वपूर्ण हैं। इस युद्ध के निम्नलिखित परिणाम हुए :

युद्ध के परिणाम

1. अपार जन-क्षति
2. पेशवा का निधन
3. उत्तरी भारत से मराठों के प्रभाव की समाप्ति
4. हिन्दू साम्राज्य के स्वप्न का अंत
5. मराठा संघ का अन्त
6. मुगल साम्राज्य का पतन
7. अंग्रेजों का उत्कर्ष

(1) अपार जन-क्षति– इस युद्ध में मराठों की बहुत अधिक जन-क्षति हुई। अनुमानतः मराठों के एक लाख सैनिक मारे गये। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि इस युद्ध में मराठा-जाति के एक पीढ़ी का अन्त हो गया। इस युद्ध में मराठों की जन-क्षति के सम्बन्ध में यदुनाथ सरकार ने लिखा है, "इस युद्ध में सम्पूर्ण मराठा-जाति पर विपत्ति टूट पड़ी और महाराष्ट्र में ऐसा एक भी घर नहीं था, जिसमें एक सदस्य की और कुछ में प्रधान की

क्षति पर शोक न मनाया गया हो।"

(2) पेशवा का निधन– मराठों की पराजय का आघात बालाजीराव के हृदय पर इतना अधिक लगा कि पाँच महीने के भीतर ही 23 जून, 1761 को उसका निधन हो गया।

(3) उत्तरी भारत से मराठों के प्रभाव की समाप्ति– पानीपत के तीसरे युद्ध में पराजित होने के बाद पंजाब, दोआब आदि प्रदेश मराठों के अधिपत्य से निकल गये। इस प्रकार उत्तरी भारत में मराठों के प्रभाव की समाप्ति हो गई।

(4) हिन्दू साम्राज्य के स्वप्न का अंत– इस युद्ध ने मराठों अथवा हिन्दुओं की शक्ति का अन्त ही कर दिया, जिससे बहुत समय तक के लिए हिन्दू साम्राज्य के स्थापित करने के स्वप्न का अन्त हो गया।

(5) मराठा संघ का अंत– इस युद्ध के परिणामस्वरूप मराठा संघ का अन्त हो गया तथा मराठा सरदारों में पारस्परिक कलह प्रारम्भ हो गई। सिन्धिया, होल्कर तथा गायकवाड़ आदि ने अपने-अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिये।

(6) मुगल साम्राज्य का पतन– इस युद्ध से मुगल साम्राज्य का भी पतन हो गया। मुगल सम्राट केवल नाममात्र के रह गये और चारों ओर स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गये।

(7) अंग्रेजों का उत्कर्ष– मराठों की पराजय से अंग्रेजों को अपनी शक्ति बढ़ाने का अवसर प्राप्त हो गया। मराठों और मुसलमानों के आपसी भीषण संघर्षों ने दोनों को ही निर्बल बनाकर अंग्रेजों के लिए भारतीय प्रभुसत्ता की प्राप्ति के द्वार खोल दिये।

पेशवा माधव राव प्रथम (1661-72)– बाजीराव की मृत्यु के उपरान्त उसका 16 वर्षीय पुत्र माधव राव पेशवा राज-सिंहासन पर आसीन हुआ। उसने दो बार निजाम की सेना को परास्त किया और उसे सन्धि करने के लिए विवश किया। 1722 तक मराठों ने चार बार हैदरअली को पराजित किया। 11 वर्ष पेशवा का कार्य करने के पश्चात् 18 नवम्बर, 1772 को उसकी 27 वर्ष की अवस्था में मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु से मराठा शक्ति को गहरा आघात लगा। इस सम्बन्ध में ग्राण्ड डप का कथन है, "उसकी मृत्यु मराठों के लिए पानीपत की पराजय से भी अधिक विनाशकारी सिद्ध हुई।"

पेशवा माधव राव की मृत्यु के बाद क्रमशः नारायण राव (1772-73), सवाई माधव राव द्वितीय (1774-1795), बाजीराव द्वितीय (1796-1818) पेशवा बने। 1818 में पेशवा का पद हमेशा के लिये समाप्त कर दिया गया। पेशवा बाजीराव द्वितीय को अंग्रेजों ने 8 लाख रुपये प्रतिवर्ष पेंशन देकर कानपुर के निकट बिठूर भेज दिया। बाजीराव द्वितीय की मृत्यु के बाद अंग्रेजों ने उसके पुत्र नाना साहब (धूँधू पंत) को पेंशन से वंचित कर दिया। प्रतिशोध स्वरूप नाना साहब ने 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय हिस्सा लिया। अंग्रेजों द्वारा दमन प्रक्रिया आरम्भ होने पर वह नेपाल चला गया।

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ (Important Dates & Events)

1. 1627 ई. – शिवाजी का जन्म।
2. 1659 ई. – अफजल खाँ की हत्या।
3. 1664 ई. – शिवाजी द्वारा सूरत की लूट।
4. 1666 ई. – शिवाजी का आगरा प्रस्थान।
5. 1674 ई. – शिवाजी का राज्याभिषेक।
6. 1680 ई. – शिवाजी का देहावसान तथा शम्भाजी का सिंहासनारोहण।
7. 1689 ई. – शम्भाजी की हत्या।
8. 1728 ई. – पालखेद का युद्ध।

9. 1761 ई. - अहमद अब्दाली का भारत पर आक्रमण तथा पानीपत का तृतीय युद्ध। पेशवा बालाजी बाजीराव की मृत्यु तथा पेशवा माधवराव प्रथम का सिंहासनारोहण।

10. 1772 ई. - पेशवा माधवराव प्रथम की मृत्यु।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. शिवाजी ने दक्षिण में मराठा शक्ति का संगठन किस प्रकार किया? (1966,1990)
2. शिवाजी के चरित्र एवं शासन प्रबन्ध का मूल्यांकन कीजिए। (1980,88)
3. पेशवाओं के समय मराठा साम्राज्य के उत्कर्ष का वर्णन कीजिए। (1987)
4. शिवाजी की शासन-व्यवस्था पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए। (1992)
5. शिवाजी की उपलब्धियों का विवरण दीजिए। (2000)
6. निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत शिवाजी की शासन-व्यवस्था पर प्रकाश डालिए: (क) केन्द्रीय शासन (ख) वित्तीय शासन (ग) सैन्य शासन। (2005)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "शिवाजी एक बड़ा वीर, योद्धा एवं सफल शासक भी था।" इस कथन की व्याख्या कीजिए। (1960)
2. "शिवाजी एक प्रबुद्धशील शासक था।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
3. "पानीपत के तृतीय युद्ध ने मराठों की रीढ़ तोड़ दी।" इस कथन के आलोक में मराठों के पतन के कारणों का उल्लेख कीजिए।
4. "शिवाजी भारत के प्रमुख हिन्दू राष्ट्र-निर्माता थे।" इस कथन की विवेचना कीजिए। (1985)
5. "शिवाजी हिन्दू जाति के अन्तिम रचनात्मक कार्य करने वाले योग्य व्यक्ति, शासक एवं राष्ट्र-निर्माता थे।" इस कथन के प्रकाश में शिवाजी के चरित्र तथा उपलब्धियों का उल्लेख कीजिए। (1991,93)
6. "शिवाजी की शासन-व्यवस्था जनता के लिए हितकर तथा सुखदायी थी।" इस कथन की समीक्षा कीजिए। (1995)
7. "शिवाजी एक कुशल सेनानायक और सफल प्रशासक थे।" विवेचना कीजिए। (उ.प्र.2007)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. शिवाजी किस प्रकार मुगल साम्राज्य के भीतर 'स्वराज्य' बनाने में सफल रहे?।
2. शिवाजी की शासन-पद्धति में 'अष्ट प्रधान' कौन थे?
3. पानीपत के तृतीय युद्ध में मराठों की पराजय के क्या कारण थे?
4. पानीपत के तृतीय युद्ध के परिणाम क्या हुए?
5. क्या शिवाजी हिन्दू संस्कृति के रक्षक थे?
6. पेशवा बाजीराव प्रथम ने मराठा साम्राज्य का विस्तार किस प्रकार किया?
7. शिवाजी के केन्द्रीय शासन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
8. शिवाजी के आधीन 'चौथ' एवं 'सरदेशमुखी' कर क्या थे?
9. शिवाजी का प्रान्तीय शासन कितने भागों में बँटा हुआ था? लिखिए।
10. शिवाजी का चारित्रिक मूल्यांकन कीजिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. शिवाजी का जन्म कब हुआ था?
   शिवाजी का जन्म 20 अप्रैल 1627 ई. को हुआ था।
2. औरंगजेब ने आगरा दरबार में शिवाजी के साथ कैसा व्यवहार किया?
   5,000 वाले मनसबदारों के बीच स्थान देकर शिवाजी का अनादर किया।
3. शिवाजी की किन्हीं दो विजयों का नाम बताइए।
   (1) जावली विजय (1656), तथा (2) कोंकण-प्रदेश की विजय (1657)।
4. शिवाजी के दो उत्तराधिकारियों के नाम लिखिए।
   (1) शम्भाजी, तथा (2) राजाराम।
5. औरंगजेब के विरुद्ध शिवाजी ने कौन सी युद्ध प्रणाली अपनायी थी?
   औरंगजेब के विरुद्ध शिवाजी ने छापामार युद्ध प्रणाली अपनायी थी।
6. शिवाजी द्वारा लगाये गये दो करों के नाम बाताइए।
   शिवाजी द्वारा लगाये गये कर (1) चौथ, तथा (2) सरदेशमुखी थे।
7. पुरन्दर की सन्धि कब और किस-किस के बीच हुई?
   पुरन्दर की सन्धि 1665 ई. में शिवाजी तथा राजा जयसिंह के बीच हुई थी।
8. शाइस्ता खाँ कौन था?
   शाइस्ता खाँ, औरंगजेब द्वारा नियुक्त दक्षिण का सूबेदार था।

बहु-विकल्पीय प्रश्न

निर्देश : नीचे दिये गये प्रत्येक प्रश्न के चार विकल्पों में से सही विकल्प छाँटकर लिखिए :

1. शिवाजी का जन्म कब हुआ था?
   (क) 1615 ई. में, (ख) 1627 ई. में, (ग) 1630 ई. में, (घ) 1632 ई. में।
2. अफजल खाँ की हत्या कब हुई थी?
   (क) 1650 ई. में, (ख) 1655 ई. में, (ग) 1659 ई. में, (घ) 1660 ई. में।
3. शिवाजी का राज्याभिषेक कब हुआ था?
   (क) 1670 ई. में, (ख) 1674 ई. में, (ग) 1675 ई. में, (घ) 1678 ई. में।
4. शिवाजी की मृत्यु कब हुई थी?
   (क) 1675 ई. में, (ख) 1680 ई. में, (ग) 1678 ई. में, (घ) 1679 ई. में।
5. शिवाजी की राजधानी थी–
   (क) पुरन्दर, (ख) पुणे, (ग) रायगढ़, (घ) सिंहगढ़।
6. अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर कब आक्रमण किया?
   (क) 1728 ई. में, (ख) 1750 ई. में, (ग) 1761 ई. में, (घ) 1763 ई. में।
7. शम्भा जी की हत्या किस वर्ष में हुई थी?
   (क) 1680 ई., (ख) 1685 ई., (ग) 1689 ई., (घ) 1692 ई.।
8. पेशवा पद को कब समाप्त कर दिया गया था?
   (क) 1774 ई., (ख) 1795 ई., (ग) 1818 ई., (घ) 1820 ई.।
9. पानीपत का तीसरा युद्ध कब लड़ा गया था?
   (क) 1760 ई. में, (ख) 1761 ई. में, (ग) 1762 ई. में, (घ) 1763 ई. में।

■

10

मुगलकालीन सभ्यता एवं संस्कृति

"मानव इतिहास में ऐसा दृश्य बहुत कम दिखाई देता है, जब दो इतनी विशाल तथा विकसित सभ्यताओं का, जो एक-दूसरे से इतनी भिन्न हों, जैसी कि मुसलमान और हिन्दू, इस प्रकार सम्मिलन और सम्मिश्रण हो।" -मार्शल

सामाजिक दशा

मुगलकालीन सामाजिक दशा का वर्णन निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है :

1. समाज का स्वरूप- मुगलकालीन समाज का ढाँचा सामन्तवादी आधार पर था। इस काल के समाज को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है :

(i) उच्च वर्ग- इस वर्ग के अन्तर्गत राज-परिवार तथा मनसबदार वर्ग आता था। इन लोगों के पास अतुल धन था। ये लोग आमोद-प्रमोद तथा विलासमय जीवन व्यतीत करते थे। सम्राट के 'हरम' में सहस्त्रों स्त्रियाँ रहती थीं। स्वयं अकबर के अन्तःपुर में 5,000 स्त्रियाँ रहती थीं। राज्य के उच्च पदाधिकारी भी सहस्त्रों की संख्या में स्त्रियाँ एवं नर्तकियाँ रखते थे। वे दावतों, सुरापान, भोग-विलास तथा नृत्य गायन आदि में लगे रहते थे। सम्राट और उनके दरबारी बहुमूल्य वस्त्र व आभूषण धारण करते थे। अबुल फजल के कथनानुसार अकबर के लिए प्रतिवर्ष 1,000 सूट तैयार किये जाते थे। मुगल अमीरों के रहन-सहन के सम्बन्ध में सर यदुनाथ सरकार लिखते हैं, "मुगल अमीरों का रहन-सहन ऐसा ऐश्वर्य और सुखपूर्ण हो गया था जिसका ईरान के स्वयं शाह या मध्य एशिया के सुल्तान सपना भी नहीं देख सकते थे।"

(ii) मध्यम वर्ग-इस वर्ग के अन्तर्गत राज-कर्मचारी तथा व्यापारी आदि थे। मोरलैण्ड के अनुसार, "इन लोगों का जीवन सुखी और सम्पन्न था, किन्तु वे सादा जीवन व्यतीत करते थे। उच्च वर्ग के लोगों की भाँति इस वर्ग के लोगों का जीवन विलासितापूर्ण नहीं था।" सामान्यतः व्यापारी वर्ग आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न था। इस वर्ग में कुछ ऐसे धनाढ्य व्यापारी थे जिनकी सम्पत्ति की तुलना यूरोप के व्यापारी शासकों से की जा सकती थी। उदाहरणार्थ, अब्दुल गफूर बोहरा एक ऐसा व्यापारी था जिसकी गिनती सबसे धनाढ्य व्यक्तियों में की जाती थी। 1718 में जब उसकी मृत्यु हुई तो वह अपने पीछे 55 लाख नकद और 17 जहाजों का एक बड़ा बेड़ा छोड़ गया। इसी प्रकार कारोमण्डल तट का मलय चेट्टी, काशी विरन्ना और सुनकाराम चेट्टी अपनी सम्पन्नता के लिए विख्यात थे। फ्रान्सीसी यात्री बर्नियर के अनुसार व्यापारी वर्ग अपने को गरीब दिखाने का प्रयास करता था ताकि उनकी हैसियत का पता न चले।

(iii) निम्न वर्ग- इस वर्ग के अन्तर्गत नगर के कारीगर, मजदूर तथा ग्रामीण किसान आते थे। साधारणतया इनका जीवन संघर्षमय था। इसके पास दैनिक जीवन की वस्तुएँ भी उपलब्ध न होती थीं। पलसारेट डी लाट ने जहाँगीर के काल में इनकी अवस्था का वर्णन इस प्रकार किया है, "इस वर्ग की दशा गुलामों के समान है। इसमें मजदूर, नौकर तथा दुकानदार विशेष उल्लेखनीय हैं। मजदूरों की आय बहुत ही कम है। बहुधा इनसे बेगार कराई जाती है। इन्हें दिन में केवल एक बार भोजन मिलता है उनके मकान प्रायः कच्चे हैं। नौकरों की भी आय कम है। दुकानदारों की भी दशा असन्तोषजनक है, क्योंकि राज्याधिकारियों के लिए सस्ते दामों में सामान देना पड़ता है।"

(2) मनोरंजन के साधन- मुगलकाल में मनोरंजन के अनेक साधन उपलब्ध थे।

शतरंज, चौपड़, ताश, गेंद, शिकार, पशुयुद्ध, चौगान, कुश्ती, बाजीगर, कबूतर उड़ाना आदि मनोरंजन के साधन थे। पतंग, नकल, आँखमिचौनी, लपक डण्डा खेल भी मनोरंजन के साधन थे। उच्च वर्ग की स्त्रियाँ नाटक, नृत्य तथा प्रेम व साहसिक कहानियों से अपना मनोरंजन किया करती थीं। मादक वस्तुएँ भी मनोरंजन का प्रमुख साधन थीं। एक इतिहासकार के अनुसार, "बाबर के आमोद-प्रमोद, हुमायूँ का अफीम की पिनक में बुत रहना, शराब के प्रभाव से अकबर का झक्कीपन तथा जहाँगीर का मदिरा-प्रेम आदि बातें इस कथन की पुष्टि करती हैं।"

(3) मेले व उत्सव– हिन्दू और मुसलमान दोनों के ही अनेक उत्सव तथा मेले होते थे। मुगल दरबार में अनेक उत्सव मनाये जाते थे जिनमें साधारण प्रजा भी सम्मिलित हो सकती थी। हिन्दुओं के दशहरा, दीपावली, होली, जन्माष्टमी, शिवरात्रि, रामनवमी आदि त्योहार मनाये जाते थे। मुसलमानों के मुहर्रम, शबेरात, ईदुलफितर, इदुज्जुहा, बारावफात, ईद-ए-मिराद आदि त्योहार बड़े उत्साह से मनाये जाते थे। हरिद्वार, मथुरा, प्रयाग, गढ़मुक्तेश्वर, गया, नीमसार, कुरुक्षेत्र आदि तीर्थस्थानों पर हिन्दुओं के मेले लगा करते थे। इसी प्रकार अजमेर, पानीपत, सरहिन्द तथा आजोधन मुसलमानों के तीर्थस्थान थे, जहाँ पर मेले लगते थे।

(4) स्त्रियों की दशा– मुगलकाल में स्त्रियों की दशा बहुत खराब थी। वे भोग-विलास की सामग्री समझी जाती थीं। निम्न जाति की स्त्रियों को छोड़कर हिन्दू स्त्रियाँ बाहर नहीं निकलती थीं। मुसलमानों में बहु-विवाह तथा तलाक की प्रथा प्रचलित थी। बाल-विवाह के कारण समाज में विधवाओं की संख्या बहुत अधिक बढ़ गई थी। शिया मुसलमान शरियत के अनुसार चार विवाह कर सकता था। हिन्दू समाज में दहेज-प्रथा तथा सती-प्रथा प्रचलित थी।

उपर्युक्त बुराइयों के होते हुए भी घरों में स्त्रियों को अच्छा सम्मान प्राप्त था। हिन्दू स्त्रियों में रानी दुर्गावती, रानी कर्णवती, मीराबाई तथा ताराबाई और मुसलमान स्त्रियों में नूरजहाँ, मुमताजमहल, जहाँआरा, रोशनआरा, जेबुन्निसा, गुलबदन बेगम, चाँदबीबी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने इस काल में बहुत अच्छे कार्य किये थे।

(5) खान-पान– राजपरिवार, सामन्त व अमीर वर्ग के लोग बहुत बढ़िया स्वादिष्ट भोजन करते थे। मध्यम व निम्न वर्ग के लोगों का भोजन सादा था। उच्च वर्ग के लोग रोटी, चावल, कबाब, मांस एवं दूध से बनी वस्तुओं का प्रयोग करते थे। धनी लोग खाने के लिए बुखारा व समरकन्द से सूखे मेवे तथा फल मँगाते थे। दावतों में शराब का बड़ा प्रयोग होता था। हिन्दुओं में अनेक श्रेणी के लोग शाकाहारी थे। वैष्णव व जैनमतावलम्बी मांस, लहसुन तथा प्याज से परहेज करते थे।

(6) वस्त्र, आभूषण तथा प्रसाधन– उच्च व मध्यम वर्ग के लोग अंगरखा और चूड़ीदार पाजामा पहनते थे। वैसे हिन्दुओं में धोती पहनने की प्रथा थी। मुगल बादशाह बहुमूल्य वस्त्र और जवाहरात से जड़ी हुई पगड़ी पहनते थे। हिन्दू स्त्रियाँ साड़ी तथा मुसलमान स्त्रियाँ पायजामा पहनती थीं। वे हाथ-पैरों पर महावर व आँखों में सुर्मा लगाती थीं। आभूषण पहनने का शौक हिन्दू और मुसलमान दोनों को ही था।

आर्थिक दशा

मुगलकालीन आर्थिक दशा का वर्णन निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है :

(1) कृषि– उस समय की बहुसंख्यक प्रजा का सबसे प्रमुख पेशा कृषि था। खेती करने का ढंग उस समय भी बहुत कुछ आजकल जैसा था। गेहूँ, जौ, चना, मटर, तिलहन इत्यादि उपज की प्रमुख वस्तुएँ थीं। इसके अतिरिक्त गन्ना, कपास, नील, पोस्ता, पान इत्यादि कीमती फसलें देश के विभिन्न भागों में उत्पन्न की जाती थीं। कृषि की उन्नति के लिए कुछ नहरें निकलवाई गईं तथा कुएँ व तालाब खुदवाये गये। इस काल में किसानों को अनेक प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त थीं।

(2) उद्योग-धन्धे– देश में कई प्रकार के उद्योग-धन्धे प्रचलित थे, जिनमें सबसे बड़ा

व्यवसाय सूती वस्त्र का बनाना था। बनारस, आगरा, पटना, बुरहानपुर, मुल्तान, लाहौर, बंगाल, आगरा तथा मालवा में सूती वस्त्रोद्योग उन्नत अवस्था में था। गुजरात, कश्मीर, बंगाल, आगरा तथा लाहौर के नगरों में रेशमी कपड़ा तैयार किया जाता था। लाहौर के गलीचे, फतेहपुर सीकरी, अलवर, जौनपुर के कालीन, बनारस की जरी-बूटी का काम प्रसिद्ध था। बरार, बुरहानपुर, आगरा तथा अहमदाबाद में छपे कपड़े तैयार होते थे। टेरी नामक विदेशी यात्री ने लिखा है, "कपास के कपड़े या तो रंगे जाते थे या उन पर अच्छे रंग वाले फूलों या चित्रों का छापा लगा दिया जाता था। ये फूल और चित्र कपड़े पर इस तरह अमिट बन जाते थे कि किसी तरह उन्हें धोया नहीं जा सकता था।" ढाका की मलमल विश्वविख्यात थी।

(3) व्यापार– मुगल काल में व्यापार को भी काफी प्रोत्साहन मिला था। इस काल में व्यापार देश के अन्दर तथा देश के बाहर विदेशों से होता था। भारत से मसाले, नील, अफीम, कालीमिर्च, चीनी, रेशम, नमक, हल्दी, हींग, सुहागा तथा सूत्री वस्त्र विदेशों में भेजे जाते थे। कीमती पत्थर, मखमल, रेशमी वस्त्र, किमखाब, सुगन्धित द्रव्य, हाथी-दाँत, मूँगा तथा विलास की वस्तुएँ विदेशों से मँगायी जाती थीं।

विदेशी व्यापार जल व स्थल दोनों मार्गों से होता था। इस काल में पश्चिमी समुद्र तट पर खम्भात, भड़ौच, सूरत और मालाबार के बन्दरगाह थे और पूर्वी तट पर मंछलीपट्टम और हुगली बन्दरगाह थे। पूर्वी देशों से व्यापार करने के लिये श्रीपुर, चटगाँव, सतगाँव तथा सोनारगाँव के बन्दरगाह थे। स्थल मार्ग लाहौर से काबुल व मुल्तान से कन्धार तक था।

(4) अकाल एवं महामारी– मुगलकाल में अकाल और महामारी भी भयंकर रूप से हुई थीं। अकबर के शासनकाल के प्रथम वर्ष (1555-56) में उत्तर-पश्चिम भारत में भयंकर अकाल पड़ा। इसके पश्चात् महामारी का प्रकोप हुआ था। इसी प्रकार (1573-74) गुजरात में भयंकर अकाल पड़ा था। अब्दुल हमीद लाहौरी इस काल के अकाल के सम्बन्ध में लिखता है, "एक-एक रोटी के लिए लोग अपना बच्चा बेच रहे थे, लेकिन कोई खरीदने को तैयार नहीं था। बाजारों में बकरे के मांस के नाम पर कुत्तों का मांस बिकता था और मरे हुए व्यक्तियों की हड्डियाँ पीसकर आटे में मिलाकर लोग बेचते थे।"

(5) कीमतें– अकबर के काल की कीमतों को 'आइन-ए-अकबरी' के आधार पर इस प्रकार से दिया जा सकता है :

गेहूँ	एक	रुपये	का	12 मन
जौ	"	"	"	18 मन
चावल	"	"	"	10 मन
मूँग	"	"	"	18 मन
उर्द	"	"	"	16 मन
नमक	"	"	"	17 मन
मांस	"	"	"	16 सेर
दूध	"	"	"	44 सेर
डेढ़ रुपये की एक भेड़।				

मुगलकाल में वस्तुएँ इतनी सस्ती थीं की कम-से-कम आय वाले व्यक्ति को भी न भूखों मरना पड़ता था और न उसे जीवनोपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कष्ट ही उठाना पड़ता था। वह बीसवीं शताब्दी के मनुष्यों की अपेक्षा अधिक सन्तुष्ट और ईमानदार तथा सीधा-सच्चा जीवन बिताता था। इस प्रकार मुगलकालीन भारत की आर्थिक अवस्था उन्नत थी।

सांस्कृतिक दशा

साहित्य– मुगलकाल में साहित्य की बड़ी उन्नति हुई। इस काल के सभी शासक विद्यानुरागी थे। बाबर से लेकर औरंगजेब तक सभी भाषाओं का साहित्य लिखा गया। साहित्य का निम्न प्रकार से विकास हुआ :

(1) फारसी साहित्य– मुगलकाल में फारसी साहित्य की बहुत उन्नति हुई। इस काल में फारसी के अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की गई।

बाबर– बाबर बहुत बड़ा विद्वान् था। वह तुर्की और फारसी का जन्मजात कवि तथा उच्चकोटि का लेखक था। उसने तुर्की भाषा में अपनी आत्मकथा 'तुजुक-ए-बाबरी' नाम से लिखी थी। वह 'मुबइयान' नाम की एक विशेष पद्य शैली का जन्मदाता था। 'तुजुक-ए-बाबरी' तत्कालीन भारत की राजनीतिक तथा आर्थिक अवस्था पर प्रकाश डालती है।

हुमायूँ– हुमायूँ भी उच्चकोटि का विद्वान् तथा लेखक था। उसका अपना एक विशाल पुस्तकालय था। उसके काल में निम्न प्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना हुई :

(1) गुलबदन बेगम का हुमायूँनामा, (2) खाबन्दमीर का हुमायूँनामा, (3) जौहर का तजकिरात-उल-वाकयात, (4) मिर्जा हैदर का तारीख-ए-रसीदी, (5) शेख बयाजिद का तारीख-ए-हुमायूँ, (6) ख्वाँदामीर का हुमायूँनामा।

अकबर– अकबर के शासनकाल में साहित्य का पूर्ण विकास हुआ। इस काल में अबुल फजल, फैजी, मुल्ला दाऊद, बदायूँनी, निजामुद्दीन अहमद उच्चकोटि के विद्वान् तथा साहित्यकार थे। अकबर काल के फारसी-साहित्य को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है :

(अ) ऐतिहासिक ग्रन्थ– अकबर-काल में निम्नलिखित फारसी के ऐतिहासिक ग्रन्थों की रचना की गई :

(1) अबुल फजल का अकबरनामा व आइन-ए-अकबरी, (2) निजामुद्दीन अहमद का तबकात-ए-अकबरी, (3) बदायूँनी का मुन्तखब-उल-तवारीख, (4) अब्दुल वकी का मासिर-ए-रहीमी, (5) फैज़ी सरहिन्दी का अकबरनामा, (6) मुल्ला दाऊद का तारीखी-ए-अलफी, (7) नुरुलहक का जब्बत-उल-तवारीख, (8) अहमद याद्गार का तारीख-ए-सलातीन-ए-अफगाना।

(ब) अनुवादित ग्रंथ– इस काल में अनेक ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद किया गया, जिनमें प्रसिद्ध ग्रंथ इस प्रकार हैं :

(1) रामायण– बदायूँनी द्वारा, (2) महाभारत– कई विद्वानों के सहयोग से, (3) अथर्ववेद– बदायूँनी तथा इब्राहिम सरहिन्दी द्वारा, (4) राजतरंगिणी– मौलाना शाह मुहम्म्द शैहबानी द्वारा, (5) लीलावती–फैजी द्वारा, (6) तारीख-ए-रशीदी– बदायूँनी द्वारा, (7) नल दमयन्ती– फैजी द्वारा, (8) कालीदमन– अबुल फजल द्वारा।

जहाँगीर– जहाँगीर उच्चकोटि का विद्वान् तथा आलोचक था। उसके दरबार में गियासबेग, नकीब खाँ, मोतमद खाँ, अब्दुल हक देहलवी तथा नियामत उल्लाह खाँ आदि प्रसिद्ध लेखक थे। जहाँगीर के काल की प्रसिद्ध रचनाएँ निम्नलिखित हैं :

(1) तुजुक-ए-जहाँगीरी– स्वयं जहाँगीर द्वारा, (2) इकबालनामा-ए-जहाँगीरी– मोतमद खाँ द्वारा, (3) मासिर-ए-जहाँगीरी– कामदार खाँ द्वारा, (4) तारीख-ए-फरिश्ता–

मुहम्मद कासिम फरिश्ता द्वारा।

शाहजहाँ– शाहजहाँ के काल में भी साहित्य की प्रगति हुई। उसके काल के साहित्य को निम्न भाँगों में बाँट सकते हैं

(अ) ऐतिहासिक ग्रन्थ– इस काल में निम्न ऐतिहासिक ग्रन्थों की रचना हुई–

(1) बादशाहनामा– अब्दुल लाहौरी द्वारा, **(2) बादशाहनामा–** अमीन कजवीनी द्वारा, **(3) शाहजहाँनामा–** इनायात खाँ द्वारा, **(4) अमल-ए-सालेह–** मुहम्मद सालेह खम्बू द्वारा, **(5) शाहजहाँनामा–** मुहम्मद सादिक खाँ द्वारा।

(ब) अनुवादित ग्रन्थ– शाहजहाँ के पुत्र दाराशिकोह के नेतृत्व में अनेक उपनिषद्, भगवद्गीता और योगवाशिष्ठ का अनुवाद फारसी में हुआ।

औरंगजेब– यद्यपि औरंगजेब अपने शासन काल का इतिहास लिखने का विरोधी था फिर भी उसके काल में निम्न प्रमुख ग्रन्थों की रचना हुई :

(1) मुन्तखब-उल-लुबाब– ख़ाफी खाँ द्वारा **(2) आलमगीरनामा–** मिर्जा मुहम्मद काजिम द्वारा, **(3) मासिर-ए-आलमगीरी–** ईश्वरदास द्वारा, **(4) नुस्ख-ए-दिलकुशा–** भीमसेन द्वारा, **(5) खुलासा-उत-तवारीख–** सुजानराय द्वारा।

(2) हिन्दी साहित्य– इस काल में हिन्दी साहित्य का बड़ा विकास हुआ। हिन्दी साहित्य के विकास को दो भागों–भक्तिकाल और रीतिकाल में बाँटा जाता है। भक्तिमार्गी कवियों की दो प्रधान शाखाएँ–राममार्गी तथा कृष्णमार्गी थीं। राममार्गी शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि तुलसीदास थे। उनका सर्वश्रेष्ठ एवं लोकप्रिय ग्रन्थ 'श्रीरामचरितमानस' है। रामचरितमानस के सम्बन्ध में डॉ. स्मिथ ने लिखा है– "उत्तरी भारत के हिन्दुओं के लिए तो यह काव्य साधारण ब्रिटिश ईसाइयों के लिए बाइबिल से भी अधिक पवित्र है।" कृष्णमार्गी शाखा के प्रधान कवि सूरदास थे। उनका प्रसिद्ध काव्य-ग्रंथ 'सूरसागर' है। रीतिकालीन कवियों में भूषण, बिहारी, सेनापति, केशव, देव, मतिराम आदि ने ग्रन्थों की रचना की। इनमें वीर-रस का वर्णन है।

महाकवि बिहारी ने 'सतसई' की रचना की जिसमें सात सौ दोहों का संग्रह है। केशव ने 'रामचन्द्रिका', 'कविप्रिया', 'रसिकप्रिया', 'विज्ञान गीता', 'वीरसिंह देव चरित' और 'अलंकार मंजरी' आदि काव्य-ग्रन्थों की रचना की। महाकवि देव, सेनापति तथा मतिराम भी उच्चकोटि के कवि थे। 'कवित्त रत्नाकर' सेनापति की अमूल्य कृति है। मीराबाई के पदों की रचना इसी काल की देन है।

हिन्दुओं के अतिरिक्त मुसलमान कवियों ने भी हिन्दी में रचनाएँ कीं। जायसी की 'पद्मावत' एक अमूल्य कृति है। रहीम के दोहों और रसखान के सवैयों को कौन भूल सकता है?

(3) बंगला साहित्य– इस काल में बंगला साहित्य की भी उन्नति हुई। हिंन्दी की भाँति इसमें भी भक्ति और धर्म की प्रेरणा प्रधान रही। कृष्णदास कविराज का 'चैतन्य चरितामृत', वृन्दावनदास का 'चैतन्य भागवत', जयानन्द का 'चैतन्य मंगल', त्रिलोचनदास का 'चैतन्यमंगल' तथा नरहरि चक्रवर्ती का 'भक्ति रत्नाकर' आदि उल्लेखनीय ग्रंथ हैं। इस काल में रामायण, महाभारत तथा गीता के अनेक अनुवाद किये गये जिनमें काशीरामदास का महाभारत व कृतिदास का रामायण अति प्रसिद्ध तथा सर्वप्रिय हैं।

(4) मराठी साहित्य– इस काल में मराठी साहित्य की भी उन्नति हुई। इस साहित्य के एकनाथ, रामदास, मोरोपन्त, तुकाराम और श्रीधर स्वामी आदि प्रसिद्ध कवि एवं संत हुए। रामदास का 'दासबोध', मोरोपन्त का 'केकावली', श्रीधर स्वामी के 'हरिविजय', 'पाण्डव प्रताप', 'शिवलीलामृत' आदि प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। इस प्रकार इस काल में मराठी साहित्य की भी बड़ी

उन्नति हुई।

(5) गुजराती साहित्य– इस काल में गुजराती साहित्य की भी उन्नति हुई। कवि अरवा इस काल के प्रसिद्ध कवि थे। उन्होंने 'शतपथ' 'परमपद' तथा 'कैवल्यगीता' आदि ग्रन्थों की रचना की। प्रेमानन्द भी प्रसिद्ध कवि थे। उन्होंने लगभग 36 ग्रन्थों की रचना की । साभलभट्ट के 'मदन मोहनी', 'सामल रत्नावली' आदि उल्लेखनीय ग्रंथ हैं। इन कवियों के अलावा मुकुन्द, शिवराज, देवीदास, बल्लभ, रत्नेश्वर, विश्वनाथ तथा विष्णुदास इस काल के प्रसिद्ध कवि एवं लेखक थे।

(6) संस्कृत साहित्य– इस काल में संस्कृत की भी बड़ी उन्नति हुई। इस काल के कवि जगन्नाथ और कवीन्द्र आचार्य सरस्वती संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। जगन्नाथ द्वारा रचित 'रस गंगाधर' व 'गंगा लहरी' उच्चकोटि के ग्रन्थ हैं। रूप गोस्वामी ने 'विद्‌ग्धमाधव' नामक नाटक की रचना की तथा अनेक संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद भी किया गया।

(7) उर्दू साहित्य– फारसी और भारतीय भाषाओं के समन्वय से उर्दू का जन्म हुआ। इस भाषा का प्रारम्भिक विकास दक्षिण के बीजापुर व गोलकुण्डा की शिया रियासतों के आश्रय में हुआ। वली औरंगाबादी, नुसरत बीजापुरी, हातिम, आबरू मजहर, मीर दाऊद, मीर तकी, सौदा, खान, आरजू आदि इस काल के प्रसिद्ध कवि थे। इनके अतिरिक्त गालिब, जोक, इन्शा, मुशफी इस काल के उर्दू के अन्य कवि थे।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि मुगल काल में साहित्य का बड़ा विकास हुआ। मुगलों की साहित्य के क्षेत्र में अमूल्य देन है।

स्थापत्य कला या वास्तुकला– मुगल शासकों को स्थापत्य कला से बड़ा प्रेम था। उन्होंने देश के विभिन्न भागों में जिन भवनों का निर्माण कराया वे स्थापत्य कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। इस काल की कला के स्वरूप के सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद हैं। फार्गुसन के अनुसार मुगलों की स्थापत्य कला विदेशी है, जबकि इसके विपरीत हैवेल का मत है, "मुगलकाल देशी और विदेशी शैलियों का उत्तम सम्मिश्रण है।" डॉ. ईश्वरी प्रसाद का कथन है, "भारतीय कारीगरों ने विदेशी कला के सिद्धान्तों को इस प्रकार परिवर्तित और संशोधित रूप में अपनाया कि भारतीय कला के साथ मिलकर वे देशीय से प्रतीत होते हैं। परन्तु निष्पक्ष-भाव से देखने पर ज्ञात होगा कि वास्तव में अपनी विशालता के कारण भारत ने किसी एक विशेष शैली को ही नहीं अपनाया। भिन्न-भिन्न शैलियों का प्रयोग किया गया।" डॉ. ताराचन्द्र के अनुसार, "इस युग की कला को हिन्दू-मुस्लिम स्थापत्य कला कहा जा सकता है।"

बाबर– यद्यपि बाबर का अधिकांश समय भारतीय युद्धों में व्यतीत हुआ तो भी उसने भवनों के निर्माण के लिए कुस्तुनियाँ से कारीगर बुलवाये थे। आगरा, सीकरी, धौलपुर, कोल, ग्वालियर तथा बयाना में उसने इमारतों का निर्माण कराया। उसके द्वारा बनवायी गई इमारतों में केवल दो ही विद्यमान हैं- एक पानीपत के काबुल बाग की मस्जिद और दूसरी सम्भल की जामा मस्जिद।

हुमायूँ– हुमायूँ का समस्त जीवन बड़े कष्ट में बीता। उसे आजीवन अफगानों से युद्ध करना पड़ा था। अतः उसे इमारतें बनवाने का अधिक अवसर नहीं मिला। उसने एक मस्जिद आगरा में और दूसरी पंजाब के हिसार जिले के फतहाबाद नामक स्थान पर बनवाई थी।

शेरशाह– प्रसंगवश हुमायूँ के प्रतिद्वंद्वी शेरशाह की स्थापत्य कला पर भी विचार करना आवश्यक है। उसने पंजाब, रोहतासगढ़ तथा मंकोत के दुर्गों का निर्माण कराया था। इसकी दो इमारतें-पूरन किला की मस्जिद तथा सहसराम का मकबरा अपनी सुन्दरता के लिए विशेष प्रसिद्ध हैं। सहसराम का मकबरा भारत की श्रेष्ठ इमारतों में से एक है।

अकबर– अकबर के शासन-काल में अनेक भव्य इमारतों का निर्माण हुआ। दिल्ली में हुमायूँ का मकबरा उसके काल की सबसे पहली भव्य कृति है। अकबर की सर्वोत्कृष्ट इमारतें फतेहपुर सीकरी में आज भी विद्यमान हैं। यहाँ का जोधाबाई महल, दीवान-ए-आम, दीवान-ए-खास, बीरबल महल, पंच महल, जामा मस्जिद, बुलन्द दरवाजा आदि दर्शनीय इमारतें हैं। सीकरी की अनेक इमारतों को देखने से ऐसा लगता है, मानों उन्हें किसी राजपूत राजकुमार ने निर्मित कराया हो। दीवान-ए-खास पूर्णरूपेण हिन्दू कला से प्रभावित है और पंच महल बुद्ध के मन्दिर जैसा बना हुआ है।

स्मरणीय है कि जिस फतेहपुर सीकरी को अकबर ने स्वप्न लोक की भाँति वास्तुकला से सजाया उसे एकाएक 1585 में छोड़कर वह लाहौर चला गया। उसके बाद फ़तेहपुर सीकरी कभी लौटकर नहीं आया और सीकरी सदैव के लिए उपेक्षित पड़ी रही गई।

इसके अतिरिक्त अकबर ने आगरा, इलाहाबाद, लाहौर तथा अटक में भी किले बनवाये जो अपनी मजबूती व सुन्दरता के लिए आज भी विख्यात हैं। अकबर के सम्बन्ध में समकालीन इतिहासकार अबुल फ़ज़ल अल्लामी लिखता है कि, "बादशाह सुन्दर भवनों की योजना बनाता है और अपने मस्तिष्क एवं हृदय के विचारों को पत्थर और गारे का रूप प्रदान करता है।"

अकबर के काल में मंदिरों का निर्माण– अकबर की धार्मिक सहिष्णुता के फलस्वरूप हिन्दू राजाओं ने मंदिरों का निर्माण कराया। इनमें मथुरा में गोविन्द देव का मंदिर सुविख्यात है। संयोगवश यह बचा भी रह गया। राजा टोडरमल के दान से काशी में नारायण भट्ट ने विश्वनाथ मंदिर बनवाया। यह भी बड़ा भव्य मंदिर रहा होगा, परन्तु औरंगजेब ने इसे नष्ट-भ्रष्ट कर मस्जिद का रूप दे दिया। आमेर वंश के जगतसिंह ने जगत्-शिरोमणि का मंदिर बनवाया जिसमें स्थानीय मंदिरों की परंपरा पूर्णरूप से विद्यमान है। पटना के पास फतुआ नामक स्थान पर राजा मानसिंह ने एक शिवालय वनवा ा जो अभी तक मौजूद है। इस प्रकार अकबर के काल में हिन्दुओं के धार्मिक स्थलों का निर्माण हुआ।

जहाँगीर– जहाँगीर के शासनकाल में स्थापत्य कला का बहुत कम विकास हुआ क्योंकि उसे चित्रकला से विशेष प्रेम था तो भी उसके द्वारा निर्मित मोती-मस्जिद और एतमादुद्दौला का मकबरा उल्लेखनीय इमारतें हैं। एतमादुद्दौला का मकबरा ताजमहल के बाद अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। उसमें बिल्कुल स्वच्छ संगमरमर का प्रयोग किया गया है और अनेक कीमती पत्थर जड़े गये हैं। इसके विषय में ब्राउन महोदय ने लिखा है, "एतमादुद्दौला के मकबरे को भवन-निर्माण कला का अद्वितीय योग कहिये, अथवा स्थापत्य कला में दुर्लभ कार्य-कुशलता का प्रतीक अथवा अपूर्व पितृ-भक्ति का कलात्मक उदाहरण, इसके प्रत्येक अंश से मुगलकालीन सौन्दर्य की भावना टपकती है।"

शाहज़हाँ– शाहजहाँ के शासनकाल में मुगल स्थापत्य कला अपने उच्चतम शिखर पर पहुँच गई जिसके कारण उसका काल स्थापत्य-कला का स्वर्णयुग कहलाता है। डॉ. आशीर्वादीलाल के अनुसार, "शाहजहाँ का काल केवल कला और कला में भी वास्तुकला की दृष्टि से ही स्वर्णयुग कहा जा सकता है।" स्थापत्य कला के निर्माण में वह मुगल शासकों में सबसे आगे था। इसी कारण इसे 'इन्जीनियर सम्राट' कहा जाता है। रोम का सम्राट आगस्टन गर्व से कहा करता था, "मैंने रोम के नगरों को ईंटों का पाया और संगमरमर पत्थर का बनाकर छोड़ा।" इसी प्रकार शाहजहाँ के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि उसने मुगल नगरों को पत्थर का पाया और उन्हें संगमरमर का बनाया।

शाहजहाँ द्वारा निर्मित इमारतों में ताजमहल उसकी सर्वोत्तम कृति है। इसके निर्माण में 22 वर्ष लगे और तीन करोड़ रुपया व्यय हुआ। कुछ इतिहासकारों ने ताज को 'संगमरमर का

स्वप्न' और कुछ ने 'पवित्र प्रेम का प्रतीक' कहा है। किसी ने इसे 'काल के कपोल पर अश्रु-बिन्दु' कहा है। प्रसिद्ध इतिहासकार कीन ने ताज की समीक्षा करते हुए लिखा है, "एक इमारत के रूप में वह अपने आप में सम्पूर्ण नहीं है। उसके आयतन में कोई परस्पर सम्बन्ध नहीं दिखाई देता, गुम्बज की रूप-रेखा अन्दर की गहराई का अन्दाज नहीं देती, चारों कोनों पर खड़ी मीनारें बेकार हैं और उनका कोई उपयोग नहीं, इमारत के बाहर बहुत रोशनी है, अन्दर रोशनी का अभाव है। लेकिन तो भी एक आधुनिक बाग के बीच स्थित उसकी चमकीली, भड़कीली इमारत में कुछ एक ऐसी चीज है, जो दुनिया की किसी इमारत में नहीं है, और ताजमहल का वह रहस्यमय आकर्षण सरल शब्दों में उसकी सुन्दरता है।"

शाहजहाँ ने आगरे के किले में अनेक इमारतों का निर्माण कराया जिनमें मोती मस्जिद, मुसम्मन बुर्ज, दीवान-ए-आम, दीवान-ए-खास, शीश महल, खास महल, नगीना मस्जिद आदि उल्लेखनीय इमारतें हैं। इनमें मोती मस्जिद सबसे अधिक सुन्दर एवं सौन्दर्ययुक्त है। एक कला समीक्षक ने इसे भावपूर्ण पत्थर की कविता कहा है। यह संपूर्ण इमारत श्वेत पत्थर की बनी हुई है। इसके निर्माण में 5 वर्ष लगे थे एवं 3 लाख रुपया व्यय हुआ था।

शाहजहाँ ने दिल्ली में लालकिला का निर्माण कराया। उसके अन्दर उसने रंगमहल, दीवान-ए-आम, दीवान-ए-खास आदि सुन्दर इमारतों का निर्माण कराया। इनमें दीवान-ए-खास सबसे अलंकृत इमारत है। इसकी दीवारों पर कवि अमीर खुसरो की निम्न पंक्तियाँ आज भी अंकित हैं :

"गर फिरदौस बर रूये जमीं अस्त।
यीं अस्त, यीं अस्त, यीं अस्त।।"

अर्थात् "यदि पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है तो वह यहीं है, यहीं है, यहीं है।' यह कथन तनिक भी मिथ्या नहीं मालूम पड़ता।

शाहजहाँ ने लालकिला के ही सामने पत्थर की जामा मस्जिद का निर्माण कराया। यह भारत की समस्त जामा मस्जिदों में सबसे बड़ी है। इसके निर्माण में 5 वर्ष लगे और 5 लाख रुपया व्यय हुआ। इसके अतिरिक्त उसने अजमेर में जामा मस्जिद तथा निजामुद्दीन औलिया का मकबरा बनवाया। लाहौर में उसने अपने पिता जहाँगीर का भी मकबरा बनवाया।

औरंगजेब– औरंगजेब के काल में जिन इमारतों का निर्माण हुआ वे बहुत ही घटिया किस्म की हैं। उसने रबिया-उद-दौरानी का मकबरा बनवाया। यह बहुत ही साधारण ढंग की इमारत है। उसने हिन्दुओं के अनेक मन्दिरों को तुड़वाकर उसके स्थान पर मस्जिदों का निर्माण कराया। वाराणसी के विश्वनाथ मंदिर को गिरवाकर उसने मस्जिद बनवाई। उसने लाहौर में एक मस्जिद बनवाई जो आकार में बड़ी किन्तु भद्दी है।

औरंगजेब की मृत्यु के उपरान्त स्थापत्य कला का बिल्कुल पतन हो गया। डॉ. आशीर्वादीलाल के शब्दों में, "सम्राट औरंगजेब की मृत्यु के बाद तो मुगलकालीन शिल्पकला का बिल्कुल पतन हो गया और अठ्ठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जो इमारतें बनीं वे तो मुगलकालीन शिल्पकला के डिजाइन का खोखलापन और दिवालियापन ही प्रकट करती हैं।"

मुगल स्थापत्य कला की विशेषताएँ

भारतीय स्थापत्य कला का पूर्ण विकास हमें मुगल साम्राज्य में विशेष रूप से मिलता है। क्योंकि मुगल शासकों ने इस कला तथा कलाकारों को प्रोत्साहन एवं संरक्षण देकर अपनी अभिरुचि का स्वतन्त्र रूप में प्रदर्शन किया। मुगल सम्राटों द्वारा निर्मित कराये गये भवनों में धार्मिकता, सजीवता, सौन्दर्य एवं स्वाभाविकता सहज रूप से दृष्टिगत होती है जो अन्यत्र नहीं मिलती है।

मुगल स्थापत्य कला की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

1. देशी और विदेशी शैलियों का सम्मिश्रण– मुगल युग के निर्मित भवनों में भारतीय और विदेशी अर्थात् अरबी, फारसी और तुर्की शैलियों का मिश्रण है। फर्ग्युसन महोदय का कहना है कि इस पर विदेशी प्रभाव अधिक है। किन्तु हैवेल का कहना है कि भारत में विदेशी शिल्पी थे ही नहीं, यदि थे भी तो बहुत अल्प संख्या में थे। अतः मुगल स्थापत्य पूरी तरह भारतीय है। डॉ. ईश्वरी प्रसाद का कथन है कि फारसी शैली का प्रभाव मुगल इमारतों की सजावट, उच्चकोटि की नक्काशी और सुन्दर बेलबूटों के काम में स्पष्ट झलकता है। मुगल भवनों के निकट बगीचों की स्थापना से उसको सुन्दर बनाने की चेष्टा करना भी फारस शैली से ली गई एक अनुशैली है। हिन्दू बौद्धिक शैली का प्रभाव मुगल भवनों की दृढ़ता और भव्यता से स्पष्ट परिलक्षित होता है। हुमायूँ के मकबरे और ताजमहल में उन दोनों शैलियों का मिश्रण स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है।

2. गुम्बद और मीनारें– मुगल वास्तुशिल्प की एक और विशेषता है कि मुगलकालीन भवनों में गुम्बद और मीनारों की योजना है। मुगलों से पहले के भवनों में गुम्बद का वह भव्य और मनोहर रूप नहीं दृष्टिगत होता है, जो हमें मुगलकालीन निर्मित भवनों में दृष्टिगत होता है। गयासुद्दीन तुगलक के मकबरे और हुमायूँ के मकबरे को देखकर यह अन्तर स्पष्ट हो जाता है।

3. गोल मेहराब– मुगलकाल से पूर्व की मेहराबें नुकीली नहीं होती थीं। मुगलकाल के भवनों में एक विशेषता यह दिखाई देती है कि इन नुकीली मेहराबों से ही बीच में नौ गोल छोटी–छोटी मेहराबें और डाल दी गई हैं।

4. अलंकरण (सजावट)– मुगलकालीन निर्मित भवनों में पत्थर में अलंकरण का काम बहुत सुन्दर हुआ है, विशेषतः जाली काटने का काम बहुत ही सुन्दर ढंग का है। फतेहपुर सीकरी में सलीम चिश्ती का मकबरा, दिल्ली के लाल किले में दीवान–ए–आम और दीवान–ए–खास, आगरा में ताजमहल और मोती मस्जिद इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

5. भूरे पत्थर के स्थान पर संगमरमर का प्रयोग– मुगलकाल से पहले की इमारतों में अधिकतर भूरा पत्थर लगाया गया है, जो खुरदरा है। देखने में उसका प्रभाव कुछ रुक्षता लिये हुए है। मुगलों ने उसके स्थान पर संगमरमर का अधिकाधिक प्रयोग किया, जिससे लालित्य में वृद्धि हुई। ताजमहल तो सबका सब सफेद संगमरमर का बना हुआ है, इसलिए वह अत्यधिक सुकुमार प्रतीत होता है।

6. रंगों की योजना पर विशेष ध्यान– मुगलकालीन भवनों में रंगों के चयन पर विशेष ध्यान दिया गया है। जहाँ जो रंग अधिकतम उपयुक्त हो, वहाँ उसी का प्रयोग किया गया है। इससे भवनों की सुन्दरता अद्वितीय हो गई है।

7. विशालता के साथ सुकुमारता और सौन्दर्य– मुगलकालीन भवन अपने से पहले के काल की अपेक्षा विशाल भी अधिक हैं और अधिक सुन्दर भी हैं। मुगलों का ध्यान एक ओर तो विशालता की वृद्धि की ओर रहा पर साथ ही उन्होंने सुकुमारता और सौन्दर्य की ओर भी अधिक ध्यान दिया। इस प्रकार फतेहपुर सीकरी का बुलन्द दरवाजा अत्यधिक विशाल होते हुई भी सुन्दर है। आगरा की मोती मस्जिद, दिल्ली की जामा मस्जिद और ताजमहल इन सबमें विशालता के साथ सुन्दर[illegible] का मिश्रण बहुत आकर्षक बन गया है।

8. इमारतों का [illegible]र परिवेश– केवल विशाल और सुन्दर इमारतें बनाकर ही मुगलों को सन्तोष नहीं हुआ। [illegible] प्रायः सभी जगह इन इमारतों के चारों ओर सुन्दर उद्यान बनाये, जिनमें नहरों और फव्वारों का प्रबन्ध था। इसके कारण इन भवनों की शोभा चौगुनी हो गई।

9. हिन्दू प्रभाव– मुगलकाल की कतिपय इमारतों पर हिन्दू प्रभाव स्पष्ट रूप से

परिलक्षित होता है। इसके कई कारण हैं- (1) कई जगह तो हिन्दू या जैन मन्दिरों को आधा तोड़कर ही उनको मस्जिद का रूप दे दिया गया है। ऐसी स्थिति में उनमें हिन्दू प्रभाव क्या, हिन्दू रूप ही स्पष्ट दिखाई पड़ता है। अयोध्या और मथुरा में मंदिर को तोड़कर बनाई गई मस्जिद में, बनारस (वाराणसी) में विश्वनाथ मन्दिर के स्थान पर बनी मस्जिद में यह विशेषता दिखाई पड़ती है। (2) मुगल सम्राट के अधिकांश शिल्पी भारतीय होते थे, जो वंश-परम्परा से हिन्दू शैली के भवन बनाने के अभ्यस्त थे। अतः न चाहते हुए भी उनके भवनों में हिन्दू प्रभाव आ ही जाता था। डॉ. आशीर्वादीलाल ने लिखा है कि, 'जहाँगीरी महल हिन्दू डिजाइन का है और इसमें सजावट भी हिन्दू ढंग की है। इन कारणों से यह किसी हिन्दू राजा का महल आसानी से समझा जा सकता है।"

मुगल काल में स्थापत्य कला के विकास का कारण धन की बाहुल्यता और शासकों द्वारा संरक्षण और पर्याप्त सहायता भी थी।

चित्रकला- मुगलकाल में चित्रकला की भी बहुत उन्नति हुई। लेक़िन इस काल की चित्रकला के स्वरूप के सम्बन्ध में इतिहासकारों तथा कला समीक्षकों में बड़ा मतभेद है। कुछ के अनुसार मुगल चित्रकला में भारतीय भावना निहित है। कुछ के अनुसार इस पर विदेशी प्रभाव पूर्णरूपेण दिखाई देता है। चित्रकारी पर चीनी, फारसी का पूर्ण प्रभाव दिखाई देता है। ब्राउन के अनुसार, 'चीनी और जापानी चित्रकला की विशेषताएँ उसकी रेखाएँ हैं, पर्शिया चित्रकला की विशेषताएँ उसकी रेखाएँ तथा रंग हैं, जबकि भारतीय कला की विशेषता उसका रंग ही है।"

बाबर चित्रकला का प्रेमी था। उसने इसे राजकीय संरक्षण प्रदान किया। वह मध्य एशिया से कुछ चित्रकार अपने साथ लाया था। उसके काल की चित्रकारी ईरानी ढंग की है।

हुमायूँ भी चित्रकला का प्रेमी था। उसकी राजसभा के दो चित्रकारों- मीर सैयदअली और ख्वाजा अब्दुल समद के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं। हुमायूँ तथा उसके पुत्र अकबर ने इन दोनों चित्रकारों से चित्रकला का अभ्यास किया था और उन्हें 'दास्तान-ए-अमीर हम्जा" नामक फारसी के ग्रन्थ को चित्रित करने का कार्य सौंपा गया था। इस ग्रन्थ में कुल मिलाकर 1,375 चित्र हैं।

अकबर को वास्तुकला की भाँति चित्रकला के प्रति भी अनन्य अनुराग था। वह इसको उच्चकोटि की कला मानता था। उसने 'आइन-ए-अकबरी" में चित्रकला के सम्बन्ध में अपने विचार इन शब्दों में व्यक्त किये थे, "बहुत से लोग चित्रकला से घृणा करते हैं किन्तु ऐसे लोगों को मैं नापसन्द करता हूँ। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि ईश्वर को पहचानने का चित्रकारों का अपना अलग ढंग होता है। चित्रकार जब जीवित प्राणियों के चित्र बनाता है तब अवयवों को तो एक-एक करके यथास्थान बिठा देता है किन्तु सबके अन्त में वह यह सोचे बिना नहीं रह सकता कि चित्र में प्राण डालने का काम भगवान ही कर सकते हैं। इस प्रकार चित्र बनाते-बनाते वह ईश्वर की सत्ता का ज्ञान प्राप्त कर सकता है।"

अबुल फजल ने लिखा है, "अकबर के दरबार में सौ से अधिक निपुण एवं प्रसिद्ध चित्रकार थे। उनके चित्र आशा से बहुत अधिक अच्छे होते थे। वास्तव में उनके समान संसार में बहुत कम चित्रकार थे।" फारसी शैली के चित्रकारों में केवल 4 थे- ख्वाजा अब्दुल समद, फरुख बेग, खुशरू अली तथा जमशेद आदि। भारतीय चित्रकारों में दस्वन्त, माधव, महेश, खेमकरन, तारा, सानवाला, साँवलदास, बसावन, जगन्नाथ, लाल, मुकुन्द और हरिवंश के नाम अधिक उल्लेखनीय हैं। इन चित्रकारों में दस्वन्त अपनी निपुणता के लिए अधिक विख्यात था। वह जाति का कहार था। उसकी कृतियों ने बड़ी ख्याति प्राप्त की थी। अकबर ने अनेक ग्रन्थों को चित्रित करवाया था। इनमें 'तारीख-ए-खानदाने तैमूरिया', 'रज्मनामा', (महाभारत),

'रामायण', 'वाक्याता बाबरी', 'अकबरनामा', 'अनवार-ए-सुहेली', 'तारीख-ए-रशीदी', 'खम्सा निजामी' एवं 'बहरिस्तान जामी' आदि प्रमुख चित्रित ग्रन्थ हैं।

जहाँगीर के समय में चित्रकला अपनी अन्तिम पराकाष्ठा पर पहुँच गई। वह स्वयं चित्रकला का प्रेमी, पारखी और संरक्षक था। उसने स्वयं 'तुजुक-ए-जहाँगीरी' में लिखा है, "यदि अनेक कलाकारों द्वारा एक से अधिक चित्र बनाये जायँ तो भी मैं प्रत्येक कलाकार की चित्रकारी अलग-अलग बता दूँगा। यदि एक ही चित्र अनेक चित्रकारों द्वारा बनाया जाय तो भी उस एक चित्र के भिन्न-भिन्न अंगों के बनाने वालों के नाम बता दूँगा।" उसके समय के प्रमुख चित्रकार आगा रजा और उसका पुत्र अबुल हसन, मुहम्मद नादिर, मुहम्मद मुराद और उस्ताद मन्सूर थे। हिन्दू चित्रकारों में विशनदास, मनोहर, माधव, तुलसी और गोबर्धन के नाम अग्रगण्य हैं। इस प्रकार उसके समय में इस कला की विशेष उन्नति हुई। डॉ. पर्सी ब्राउन के अनुसार, "जहाँगीर के उत्कृष्ट प्रेम और उत्साह के कारण मुगल चित्रकला अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई थी। उसने अपनी देख-रेख में चित्रकला के उस स्कूल को उन्नति की चोटी पर पहुँचा दिया जिसकी अकबर ने नींव डाली थी। वह कला का अच्छा पारखी था और उसकी अचूक परख से यह स्कूल सदा सफलता प्राप्त करता गया।" प्रशंसा के साथ ही वह यह भी लिखता है, "जहाँगीर के अवसान के साथ मुगलकालीन चित्रकला की आत्मा ही विदा हो गई। कुछ समय तक इसका बाह्य स्वरूप रह गया तो सुनहले और बहुमूल्य सजावट के रूप में अन्य मुगल सम्राटों के समय तक बना रहा किन्तु उसकी सच्ची आत्मा जहाँगीर के मुत्यु के साथ चल बसी।"

शाहजहाँ को चित्रकला की अपेक्षा वास्तुकला से अधिक रुचि थी। अतः उसके काल में चित्रकला का उतना विकास नहीं हुआ जितना जहाँगीर के काल में हुआ। उसके समय के प्रमुख चित्रकार फकीरउल्लाह, मीर हाशिम, चित्रा तथा अनूप आदि थे। रायकृष्णदास ने इस काल की कला के बारे में लिखा है- "इस युग की कला में अत्यधिक सूक्ष्मता, रंगों की दिव्यता, अंग-प्रत्यंगों के प्रदर्शन व हावभाव तथा मुद्राओं की स्पष्टता होने पर भी शाही दरबार का शिष्टाचार, जटिलता तथा शाही दबदबा इतना अधिक है कि इन चित्रों में सूनापन दिखलाई पड़ता है।"

औरंगजेब कट्टर मुसलमान होने के कारण चित्रकला को कुरान के पवित्र नियमों के विपरीत समझता था। फलतः उसके काल में चित्रकला का पतन हो गया। उसने सिकन्दरा में अकबर के मकबरे के चित्रों पर सफेदी पुतवा दी। उसके काल में योग्य चित्रकार बंगाल, मैसूर, हैदराबाद, अवध तथा अन्य स्थानों पर चले गये।

संगीत कला- मुगलकाल में संगीत कला भी अपनी चरम सीमा तक पहुँच गई थी। बाबर संगीत कला का बड़ा प्रेमी था। वह स्वयं संगीतकार था। उसने 'मुबइयान' नाम की एक विशेष पद्य शैली को जन्म दिया था।

हुमायूँ भी संगीत प्रेमी था। उसके समय दो दिन- सोमवार व बुधवार को संगीत-सभा का आयोजन होता था। वह अच्छे-अच्छे गायकों को अनेक पुरस्कार प्रदान करता था।

अकबर का काल संगीत कला की दृष्टि से मुगलकाल का स्वर्ण-युग था। वह स्वयं भी बड़ा अच्छा गायक तथा नक्कारे बजाने वाला था। अबुल फजल ने उसके बारे में लिखा है, "सम्राट संगीत पर विशेष ध्यान देते हैं और चित्ताकर्षक राग का जो अभ्यास करता है, उसकी पूरी-पूरी सहायता करते हैं। शाही दरबार में गायकों की संख्या बहुत अधिक है, इनमें ईरानी, तुरानी और कश्मीरी स्त्री व पुरुष सम्मिलित हैं।" वह पुनः लिखता है, "अकबर को संगीत विद्या का इतना ज्ञान था कि किसी शिक्षित गवैये को क्या होगा, विशेषकर वह नगाड़ा बजाने में सिद्धहस्त था।"

अबुल फजल के कथनानुसार अकबर के दरबार में 36 गायक थे। तानसेन अपने समय का सबसे बड़ा संगीतज्ञ था। तानसेन के बाद दूसरा प्रसिद्ध गायक रामदास था। इसके अतिरिक्त बैजूबावरा, अब्दुर्रहीम खानखाना भी अच्छे गायक थे।

जहाँगीर को भी अपने पिता के समान संगीत से प्रेम था। उसके दरबार में उच्चकोटि के गायकों को प्रश्रय प्राप्त था। उसके दरबार में प्रसिद्ध संगीतज्ञ–छत्रखाँ, जहाँगीर दाद, परवेज दाद, मक्खू, खुर्रम दाद, हमजाँ, विलास खाँ और तानसेन के पुत्र आदि थे। विलियम फिच ने लिखा है, "सैकड़ों गायक और नर्तकी लड़कियाँ रात-दिन दरबार में उपस्थित रहते थे और अपनी बारी के अनुसार सप्ताह में एक दिन नाचा-गाया करते थे। वे सम्राट या उसकी बेगमों को गाना सुनाने के लिए हरदम तैयार रहते थे चाहे उन्हें किसी समय भी गाना गाने के लिए महल में बुला लिया जाय। वह उनकी योग्यता के अनुसार छात्रवृत्ति देता था।"

शाहजहाँ भी संगीत-प्रेमी था। वह स्वयं एक अच्छा गायक था। उसका गला बड़ा मधुर था। उसके संगीत की प्रशंसा करते हुए यदुनाथ सरकार ने लिखा है, "अनेक शुद्धात्मा सूफी फकीर तथा संसार से संन्यास लेने वाले साधु-सन्त भी उसका गाना सुनकर सुध-बुध खो बैठते थे और परमानन्द में लीन हो जाते थे।" उसके दरबार में जगन्नाथ, रामदास, महापात्र, सुखसेन, दूरंग खाँ, लाल खाँ और मिर्जाजुलकारने आदि प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे।

औरंगजेब संगीत को कुरान के पवित्र नियमों के विपरीत समझता था। उसने संगीत पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। कहा जाता है कि कुछ संगीतज्ञों ने सम्राट तक अपनी प्रार्थना पहुँचाने के लिए संगीत की अर्थी का एक विशाल जुलूस निकाला। जुलूस शाही महल के नीचे से गुजरा। औरंगजेब के पूछने पर उसे बताया गया कि संगीतज्ञ संगीत की रानी की अर्थी लिये जा रहे हैं। यह सुनकर वह बहुत खुश हुआ और कहा कि जाकर संगीतज्ञों से कह दो, "वह संगीत को जमीन में इतना अधिक नीचे दफनाएँ कि वह फिर कभी उभर न सके।" पाठक इस घटना से संगीत के प्रति उसके दृष्टिकोण को समझ सकते हैं।

इस प्रकार औरंगजेब के काल को छोड़कर शेष मुगल शासकों के युग में चित्रकला और संगीतकला अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई थी।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. मुगलकाल में साहित्य एवं चित्रकला के विकास पर प्रकाश डालिए। (1963)
2. भारत के सांस्कृतिक जीवन की मुगलों के योगदान का संक्षिप्त विवरण दीजिए। (1965)
3. मुगल शासकों के समय की भारत की सांस्कृतिक, सामाजिक तथा आर्थिक दशा का वर्णन कीजिए। (1972)
4. मुगलकाल में साहित्य और कला की उन्नति का वर्णन कीजिए। (1973,76,79)
5. मुगल काल में साहित्य के विकास का विवरण दीजिए। (1995)
6. मुगलकालीन वास्तुकला पर निबन्ध लिखिए। (उत्तरां. 2006)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "अकबर के शासन-काल में भव्य इमारतों का निर्माण हुआ।" इस कथन के आलोक में अकबरकालीन भवनों का उल्लेख कीजिए।
2. "शाहजहाँ का शासनकाल स्थापत्य कला का स्वर्ण-युग था।" इस कथन की व्याख्या

कीजिए। (1986)

3. "मुगल शासक स्थापत्य-कला के संरक्षक थे।" उदाहरण देकर इस कथन को स्पष्ट कीजिए। (1985)
4. "मुगलकाल हिन्दी साहित्य के विकास के लिए सर्वश्रेष्ठ युग था।" इस कथन के सन्दर्भ में मुगलकाल में हिन्दी साहित्य के विकास पर प्रकाश डालिए। (1987)
5. "मुगल-शासन स्थापत्य कला का संरक्षक था।" इस कथन का विवेचन कीजिए। (1987)
6. "मुगलों ने अलौकिक जीवधारियों के समान भवन निर्माण किया और जौहरियों के समान अपनी कृतियों को सजाया।" इस कथन के आलोक में मुगल स्थापत्य की प्रमुख कलाकृतियों का वर्णन कीजिए।
7. "फतेहपुर सीकरी की वास्तुकला में विविधता है।" इस कथन के आलोक में फतेहपुर सीरी में निर्मित भवनों का उल्लेख कीजिए।
8. "मुगलकाल साहित्य के विकास के लिए प्रसिद्ध युग था।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए। (1991)
9. "जहाँगीर के शासनकाल में ललित कलाओं, मुख्यतः चित्रकला का विकास हुआ।" समीक्षा कीजिए।
10. "जहाँगीर की मृत्यु के साथ चित्रकला की आत्मा भी चली गई।" इस कथन के आलोक में जहाँगीर द्वारा मुगल चित्रकला के योगदान का विवेचनं कीजिए।
11. "मुगलकाल में कला एवं साहित्य की गतिविधियों में एक तेजी आई।" क्या इससे आप सहमत हैं? (2005)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. मुगलकालीन साहित्य के विकास पर प्रकाश डालिए।
2. मुगल स्थापत्य-कला की क्या विशेषताएँ हैं?
3. जहाँगीर के काल की चित्रकला पर प्रकाश डालिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मुगलकालीन स्थापत्य कला की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता क्या थी ?
   हिन्दू-मुस्लिम शैली का सम्मिश्रण।
2. हिन्दू-मुस्लिम कला के समन्वय को प्रदर्शित करने वाली दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण इमारतों के नाम लिखिए।
   (1) दीवान-ए-खास, तथा (2) जोधाबाई का महल।
3. मुगल चित्रकला को व्यक्त करने वाली सर्व-प्रमुख इमारत का नाम बताइए।
   एत्मादुद्दौला का मकबरा।
4. मुगलकाल के दो हिन्दी कवियों के नाम लिखिए।
   (1) सूरदास, तथा (2) तुलसीदास।
5. मुगलकाल के दो फारसी कवियों के नाम बताइए।
   (1) फैजी, तथा (2) गिजाली।
6. मुगलकाल के दो ऐतिहासिक ग्रन्थों के नाम लिखिए।
   (1) तुजुके बाबरी (बाबरनामा), तथा (2) आइने अकबरी।

7. मुगलकाल के दो इतिहासकारों के नाम बताइए।
(1) निजामुद्दीन अहमद, तथा (2) जौहर।
8. किन्हीं दो भारतीय धार्मिक ग्रन्थों के नाम लिखिए जिनका फारसी में अनुवाद हुआ।
(1) रामायण, तथा (2) अथर्ववेद।
9. मुगलकालीन संस्कृत साहित्य के दो ग्रन्थों के नाम लिखिए।
(1) रस गंगाधर, तथा (2) गंगालहरी।
10. मुगलकाल की दो प्रसिद्ध इमारतों के नाम बताइए।
(1) ताजमहल, तथा (2) मोती मस्जिद।
11. नुगलकालीन दो संगीतकारों के नाम लिखिए।
(1) तानसेन, तथा (2) अब्दुर्रहीम खानखाना।
12. फतेहपुर सीकरी में बनी किन्हीं दो इमारतों के नाम बताइए।
(1) बुलन्द दरवाजा, तथा (2) जोधाबाई का महल।
13. अकबर द्वारा निर्मित दो किलों का नाम स्थान सहित बताइए।
(1) इलाहाबाद किला (इलाहाबाद) (2) आगरा का किला (आगरा)
अथवा
(1) लाहौर का किला (लाहौर) (2) अटक का किला (अटक)
14. मुगल दरबार के चार चित्रकारों के नाम लिखिए जो मानव चित्र (पोट्रेट) बनाने में दक्ष थे :
(क) आगा रज़ा (ख) अबुल हसन (ग) मुहम्मद नादिर (घ) उस्ताद मंसूर।
15. किस स्मारक इमारत को 'द्वितीय ताजमहल' के नाम से जाना जाता है?
रबिया उद्दौरानी के मकबरे को जो औरंगाबाद में है, 'द्वितीय ताजमहल' के नाम से जाना जाता है।
16. आगरा के एतमादुद्दौला के मकबरे की एक प्रमुख विशेषता बताइए।
मकबरे के निर्माण में दोहरे गुम्मद तथा संगमरमर का प्रयोग किया गया है।

बहुविकल्पीय प्रश्न

निर्देश : नीचे दिये गये प्रत्येक प्रश्न के चार विकल्पों में से सही विकल्प छाँटकर लिखिए :

1. 'आइन-ए-अकबरी' का रचयिता कौन है?
(क) निजामुद्दीन अहमद, (ख) अबुल फजल, (ग) बदायूँनी, (घ) फैजी।
2. 'तुजुक-ए-जहाँगीरी' का रचयिता कौन है?
(क) सम्राट जहाँगीर, (ख) अबुल फजल,
(ग) इनायत खाँ (घ) अब्दुल बकी।
3. लाल किला का निर्माता कौन है?
(क) अकबर, (ख) जहाँगीर, (ग) शाहजहाँ, (घ) औरंगजेब।
4. 'बुलन्द दरवाजा' का निर्माता कौन है?
(क) हुमायूँ, (ख) अकबर, (ग) शेरशाह, (घ) शाहजहाँ।
5. 'शाहजहाँ का काल केवल कला और कला में भी वास्तुकला की दृष्टि से ही स्वर्णयुग कहा जा सकता है।' यह कथन किसका है?
(क) ब्राउन, (ख) कीन,
(ग) डॉ. आशीर्वादी लाल, (घ) डॉ. ईश्वरी प्रसाद।

6. किस मुगल सम्राट के शासन-काल में चित्रकला अपनी अन्तिम पराकाष्ठा पर पहुँच गई थी–
   (क) अकबर के शासन-काल में, (ख) जहाँगीर के शासनकाल में,
   (ग) शाहजहाँ के शासन-काल में, (घ) बहादुरशाह द्वितीय के शासन-काल में।
7. संगीत को कुरान के पवित्र नियमों के विपरीत जो मुगल सम्राट समझता था, वह था–
   (क) अकबर, (ख) जहाँगीर, (ग) शाहजहाँ, (घ) औरंगजेब।
8. 'यदि पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है तो वह यहीं हैं, यहीं है, यहीं हैं।' यह कथन किसका है?
   (क) अबुल फजल, (ख) अमीर खुसरो, (ग) गुलबदन बेगम, (घ) नूरजहाँ।
9. 'अकबरनामा' व 'आइन-ए अकबरी' किसकी रचनाएँ हैं?
   (क) बदायूँनी की, (ख) अबुल फजल की,
   (ग) निजामुद्दीन अहमद की, (घ) नुरुलहक की।
10. एतमादुद्दौला के मकबरे का निर्माण किसने कराया था?
   (क) हुमायूँ ने, (ख) अकबर ने, (ग) जहाँगीर ने, (घ) औरंगजेब ने।

■

खण्ड 2

माध्यमिक भारत-भूमि का इतिहास

आधुनिक काल : आंग्ल-काल

11

भारत में योरीपीय शक्तियों का प्रवेश

"अंग्रेजों ने भारत के लिए एक पुल का निर्माण किया जिसके द्वारा मुगलों के मध्य युग को पार करके भारत ने आधुनिक विज्ञान एवं मानववाद के युग में प्रवेश किया।"
-वी. ए. स्मिथ

प्राचीनकाल से ही भारत का पश्चिमी देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध रहा है। यह व्यापार तीन मार्गों से होता था जो इस प्रकार थे :

1. उत्तरी मार्ग- यह आक्सस नदी से होकर कैस्पियन सागर और कालासागर को पार करता हुआ यूरोप को जाता था।

2. मध्ववर्ती मार्ग- यह मार्ग सीरिया तथा भूमध्यसागर को पार करते हुए यूरोप को जाता था।

3. दक्षिण मार्ग- यह समुद्र द्वारा मिस्र पहुँचकर नील नदी के मार्ग से यूरोप को जाता था।

भारत में पुर्तगालियों का प्रवेश

पन्द्रहवीं शताब्दी में तुर्की ने कुस्तुनतुनियाँ और सिकन्दरिया पर अधिकार कर लिया। इसके अलावा बेसीन और जिनोआ के सौदागरों ने योरोप और एशिया के बीच व्यापार पर एकाधिकार कर लिया और उन्होंने पश्चिमी यूरोप के लिए नए-राज्यों विशेषकर स्पेन और पुर्तगाल को इन पुराने मार्गों से होने वाले व्यापार में कोई हिस्सा देने से इन्कार कर दिया। योरोपीय व्यापारी भारत से सम्बन्ध विच्छेद नहीं करना चाहते थे। फलतः योरोपवासियों ने अपने व्यापार के लिए नया मार्ग खोजने का प्रयत्न किया। व्यापारिक मार्ग की खोज में पुर्तगाल और स्पेन निवासियों ने सम्पूर्ण योरोप का नेतृत्व किया। स्पेन का कोलम्बस 1494 में भारत की खोज के लिए रवाना हुआ। मगर उसने भारत के बदले अमेरिका को खोज निकाला। 1498 में वास्को-डि-गामा नामक एक पुर्तगाली नाविक ने भारत जाने का एक नया समुद्री मार्ग खोज निकाला। वह दक्षिण अफ्रीका का चक्कर लगाता हुआ, उत्तमाशा अन्तरीप (केप आफ गुड होप) होकर भारत के पश्चिमी समुद्र तट के कालीकट नामक बन्दरगाह पर 1498 में उतरा। भारत के पश्चिमी तट पर कुछ व्यापार करने के पश्चात् वह 1499 में पुर्तगाल वापस चला गया। वह जो माल लेकर गया उसे बेचकर यात्रा पर हुए खर्च से साठ गुनी अधिक धन-राशि प्राप्त की।

1500 में पेड्रो अलवरक्रेबल नामक पुर्तगाली तेरह जंहाजों के एक बेड़े का नायक बनकर भारत आया। उसने भारतीय समुद्र पर पुर्तगालियों का एकाधिकार स्थापित करने के लिए, अरब व्यापारियों को तंग करना और लूटना शुरू किया।

1502 में वास्को-डि-गामा पुनः भारत आया। उसने कोचीन के राजा से मित्रता करके भारत के पश्चिमी तट से अरबवासियों के व्यापार को समाप्त कर दिया और अरब सागर पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। कालीकट और कन्नूर में पुर्तगालियों ने अपनी व्यापारिक कोठियाँ खोल दीं। आल्मीडा (1505-1509) पुर्तगाली बस्तियों का प्रथम गवर्नर बनकर भारत आया। उसने मालावार तट के उन बन्दरगाहों पर भी अधिकार कर लिया, जिनसे अभी तक

अरब वाले व्यापार करते थे। उसने अपनी सामुद्रिक शक्ति काफी सुदृढ़ कर ली तथा पुर्तगालियों की सुरक्षा के लिए कई दुर्ग बनवाए।

आल्मीडा के पश्चात् अलबुकर्क (1509-15) पुर्तगाली बस्तियों का गवर्नर बनकर भारत आया। वह एक कुशल सैनिक तथा निपुण शासक था। उसकी शासन-नीति के दो मुख्य उद्देश्य थे। प्रथम, भारत-भूमि पर पुर्तगाली शक्ति को सुदृढ़ करना और द्वितीय, भारतीय व्यापार पर एकाधिकार स्थापित करना। इन लक्ष्यों की पूर्ति में उसे पर्याप्त सफलता भी मिली। उसने 1510 में बीजापुर राज्य से गोआ छीन लिया और उसको पुर्तगाली भारत-साम्राज्य की राजधानी घोषित किया। उसने ओर्मुज पर भी अधिकार कर लिया। गुजरात के शासक बहादुरशाह ने पुर्तगालियों से सहायता प्राप्ति के उद्देश्य से उन्हें दीव का द्वीप दे दिया। इस प्रकार से भारत के पश्चिमी समुद्र तट पर पुर्तगालियों का प्रभुत्व स्थापित हो गया। पूर्वी तट पर भी उन्होंने चटगाँव तथा हुगली में अपनी व्यापारिक कोठियाँ स्थापित कर लीं।

पुर्तगालियों ने व्यापार करने के साथ-साथ ईसाई धर्म के प्रचार का भी प्रयास किया। उनके इस कार्य से अप्रसन्न होकर 1631 में मुगल सम्राट शाहजहाँ ने उन्हें हुगली स्थित अपनी बस्ती से बाहर निकाल दिया। 1661 में पुर्तगालियों ने बम्बई का टापू इंगलैण्ड के राजा चार्ल्स द्वितीय को पुर्तगाली राजकुमारी कैथरिन ऑफ ब्राजंगा से विवाह करने के समय दहेज के रूप में दे दिया। 1739 में मराठों ने बेसीन और सालसिट पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार पुर्तगालियों के उत्कर्ष का सूरज ढलने लगा। अन्ततः पुर्तगाली भारत में गोआ, दमन तथा दीव को छोड़कर अपने सभी अधिकार-क्षेत्र खो बैठे।

पुर्तगालियों की असफलता के कारण

1. धार्मिक असहिष्णुता–पुर्तगालियों ने भारत में धार्मिक असहिष्णुता का परिचय दिया। उन्होंने भारतीय जनता के सम्मुख ईसाई-धर्म या तलवार को एक दूसरे के विकल्प में रखकर बलपूर्वक धर्म-परिवर्तन कराया। जो लोग उनके धर्म को स्वीकार नहीं करते थे, उनके साथ उनका व्यवहार अत्यन्त ही निन्दनीय था। विशेषकर मुसलमान वर्ग के साथ उनका व्यवहार बड़ा ही निन्दनीय था। फलतः पुर्तगाली हिन्दू और मुसलमान दोनों की श्रद्धा तथा सहानुभूति खो बैठे। दोनों ही जातियों का यह असन्तोष उनके लिए महँगा पड़ा।

पुर्तगालियों की असफलता के कारण

1. धार्मिक असहिष्णुता
2. दोषपूर्ण शासन
3. दोषपूर्ण व्यापार प्रणाली
4. स्पेन द्वारा पुर्तगाल का विलय
5. विजयनगर साम्राज्य का विध्वंस
6. भारत में प्रभुत्व स्थापना करने हेतु योरोपीय शक्तियों का संघर्ष
7. पुर्तगालियों की निर्बल नौ-सैनिक शक्ति

2. दोषपूर्ण शासन– अलबुकर्क के समय तक पुर्तगाली शासन-व्यवस्था ठीक से चलती रही, किन्तु उसके उपरान्त उसमें शिथिलता तथा अनेक दोष उत्पन्न हो गए। कर्मचारी सदैव अनैतिक साधनों से धन कमाने में लगे रहते थे। वे शान्ति सुव्यवस्था और न्याय की ओर से पूर्णतया उदासीन थे।

3. दोषपूर्ण व्यापार प्रणाली– उनकी व्यापार-व्यवस्था में भ्रष्टाचार, बेईमानी तथा लूट-खसोट का बोलबाला था। इस सम्बन्ध में डी सोजा ने लिखा था, "पुर्तगालियों ने एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में सलीब (क्रास) लेकर भारत में प्रवेश किया, किन्तु जब उन्हें यहाँ बहुत सोना नजर आया, तो उन्होंने सलीब को अलग रखकर उस हाथ से अपनी जेबें भरनी आरम्भ कर दीं और जब उनकी जेबें इतनी भारी हो गयीं। कि ये उन्हें एक हाथ से सँभाल

न सके तो उन्होंने तलवार भी फेंक दी। इस हालत में जो लोग उनके बाद आये, वे आसानी से इन पर हावी हो सके।"

4. स्पेन द्वारा पुर्तगाल का विलय– 1580 में स्पेन ने पुर्तगाल पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर उसे अपने में मिला लिया। अन्य योरोपीय शक्तियों से संघर्षरत रहने के कारण स्पेन भारत के व्यापार की ओर समुचित ध्यान नहीं दे सका।

5. विजयनगर साम्राज्य का विध्वंस– भारत में पुर्तगालियों का मुख्य व्यापारिक केन्द्र विजयनगर साम्राज्य था। 1565 में विजयनगर के विध्वंस हो जाने के परिणामस्वरूप उनके व्यापार को बड़ा धक्का लगा।

6. भारत में प्रभुत्व स्थापना करने हेतु योरोपीय शक्तियों का संघर्ष– भारत में प्रभुत्व स्थापित करने के लिए प्रमुख योरोपीय शक्तियों में परस्पर होड़ थी, परन्तु वही योरोपीय शक्ति स्थायी शासन स्थापित करने में सफल हो सकती थी, जिसकी सैनिक शक्ति श्रेष्ठ हो। सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी में आरोप में सैनिक शक्ति की दृष्टि से पुर्तगाल पराभव पर था। अतः उसका प्रतिकूल प्रभाव भारत में पुर्तगाली साम्राज्य स्थापित करने पर भी पड़ा। अंग्रेजों की तुलना में कमजोर सैनिक शक्ति होने के कारण पुर्तगाली भारत में विशाल और स्थायी उपनिवेश बनाने में असफल रहे।

7. पुर्तगालियों की निर्बल नौ-सैनिक शक्ति– सभी योरोपीय शक्तियों ने भारत में समुद्री मार्ग से ही प्रवेश किया था। उनकी शक्ति का मूल स्रोत उनकी नौ-सैनिक शक्ति ही थी। पुर्तगालियों की नौ-सैना अन्य प्रतिद्वन्द्वी योरोपीय शक्तियों जैसे इंग्लैण्ड आदि की तुलना में कमजोर थी। फलस्वरूप कालान्तर में पुर्तगाली भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने में असफल रहे।

भारत में डचों का प्रवेश

दक्षिण-पूर्वी एशिया के मसाला दीप-पुंजों ने डच (हालैण्ड निवासी) लोगों को भी आकर्षित किया। उन्होंने 1602 में 'डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी' की स्थापना की। इसे 21 वर्षों के लिए पूर्व से व्यापार करने, युद्ध छेड़ने, सन्धि करने, भूमि प्राप्त करने तथा दुर्ग बनाने का अधिकार प्रदान किया गया। इस कम्पनी के पास प्रचुर साधन थे तथा इसके सदस्य महत्वाकांक्षी और साहसी व्यक्ति थे।

पुर्तगालियों से संघर्ष– पुर्तगालियों का पूर्वी व्यापार पर एकाधिकार था। अतः पुर्तगालियों से डचों का संघर्ष होना अनिवार्य था। 1605 में डचों ने पुर्तगालियों को पराजित कर अम्बोयना पर अधिकार कर लिया और धीरे-धीरे पुर्तगालियों के मलय जल-डमरू-मध्य तथा इण्डोनेशियायी द्वीपों से मार भगाया। 1639 में उन्होंने गोआ का घेरा डाला और दो वर्ष पश्चात् मलक्का पर भी अधिकार कर लिया। उन्होंने पश्चिम भारत में गुजरात के सूरत, भड़ौच, कैम्बे और अहमदाबाद, केरल के कोचीन, तमिलनाडु के नागापत्तम, आन्ध्र प्रदेश के मछलीपत्तम, बंगाल के चिनसुरा, बिहार के पटना और उत्तर प्रदेश के आगरा में व्यापारिक गोदाम बनाये। 1658 में उन्होंने श्रीलंका को पुर्तगालियों से जीत लिया और 1664 तक मालवार समुद्र-तटस्थ अनेक पुर्तगाली उपनिवेशों को उन्होंने हस्तगत कर लिया। डच भारत से नील, कच्चा रेशम, सूती कपड़े, शोरा और अफीम निर्यात करते थे। पुर्तगालियों की तरह ही वे भारत के लोगों के साथ क्रूर व्यवहार तथा उनका घोर शोषण करते थे।

अंग्रेजों से संघर्ष– अंग्रेजी कम्पनी का डच कम्पनी के साथ इण्डोनेशियायी द्वीपों के मसाला व्यापार के बँटवारे को लेकर झगड़ा हो गया। अन्ततः, डचों ने अंग्रेजों को मसाला द्वीपों

के व्यापार से लगभग निकाल बाहर कर दिया। अंग्रेजों को मजबूर होकर भारत पर अपना ध्यान केन्द्रित करना पड़ा, जहाँ स्थिति अपेक्षाकृत अधिक अनुकूल थी। दोनों शक्तियों के बीच भारत में रुक-रुक कर चलने वाले संघर्ष का जो सिलसिला 1654 में आरम्भ हुआ था, वह 1667 में तब समाप्त हुआ, जब अंग्रेजों ने इण्डोनेशिया के ऊपर सारे दावे छोड़ दिए और डचों ने भारत में केवल अंग्रेजी बस्तियों को रहने देना स्वीकार कर लिया। मगर अंग्रेजों ने भारतीय व्यापार से डचों को निकाल बाहर करने के प्रयास जारी रखे और 1795 तक उन्होंने डचों को भारत में उसके आखिरी अधिकार-क्षेत्र से भी बेदखल कर दिया।

डचों की असफलता के कारण

1. डच भारतीय प्रदेशों की ओर से प्रायः उदासीन रहे। उनकी मुख्य दिलचस्पी इण्डोनेशियायी द्वीपों जावा, सुमात्रा और मसाला द्वीपों में थी जहाँ मसालों का उत्पादन होता था।
2. डचों का उपनिवेशों के निवासियों के साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार था, उनकी सैनिक शक्ति भी निरन्तर ह्रासोन्मुख थी जिससे वे भारत में साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा से सक्रिय अन्य योरीपीय शक्तियों के समक्ष टिक नहीं सके।
3. डचों के पास सीमित साधन होने के कारण वे अपने साम्राज्य में सु-व्यवस्था स्थापित न रख सके। इसके अलावा डच कर्मचारियों का नैतिक स्तर भी गिर गया था।
4. अंग्रेजों की अपेक्षा डचों की सामुद्रिक शक्ति निर्बल थी।

भारत में अंग्रेजों का प्रवेश

अंग्रेज सौदागरों ने भी एशियायी व्यापार को लोभी निगाहों से देखा। पुर्तगालियों द्वारा ले जाने वाले मसालों, केलिकों, रेशम, सोना, मोतियों, औषधियों, चीनी-मिट्टी और आबनूस के भण्डारों तथा उनको प्राप्त होने वाली मुनाफे की ऊँची रकमों ने इंग्लैण्ड के सौदागरों के लोभ को उत्तेजित किया। परन्तु सोलहवीं शताब्दी के अन्त तक वे पुर्तगाल व स्पेन की नौ-सैनिक शक्ति को चुनौती देने योग्य नहीं थे। उन्होंने पच्चास से भी अधिक वर्षों तक भारत पहुँचने के लिए कोई वैकल्पिक मार्ग ढूँढ़ निकालने का असफल प्रयास किया। इसी बीच उन्होंने सामुद्रिक शक्ति जुटा ली। 1579 में ड्रेक ने समुद्री मार्ग से दुनिया की परिक्रमा की। 1588 में स्पेनिश आर्मेडा की पराजय के परिणामस्वरूप पूरब जाने के लिए अंग्रेजों के लिए समुद्री मार्ग खुल गया।

'मर्चेन्ट एडवेंचर्स' नामक सौदागरों के समूह ने 1599 में पूरब के साथ व्यापार करने के लिए एक अंग्रेज कम्पनी की स्थापना की। इस कम्पनी को रानी एलिजाबेथ ने 31 दिसम्बर, 1600 को एक शाही सनद तथा पूरब के साथ व्यापार करने का अनन्य विशेषाधिकार प्रदान किया। यह ईस्ट इंडिया कम्पनी के नाम से विख्यात हुई। आरम्भ से ही वह राजतन्त्र से सम्बद्ध थी। रानी एलिजाबेथ (1558-1603) उसके हिस्सेदारों में थीं।

अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी की ओर से पहली समुद्री यात्रा 1601 में की गई। उस साल उसके जहाज इण्डोनेशिया के मसाला द्वीप गये। कम्पनी ने 1608 में तय किया कि भारत के पश्चिमी तट पर सूरत में एक व्यापारिक कोठी खोली जाए। उस समय व्यापारिक कोठी को गोदाम या कारखाना कहते थे। शाही कृपा दृष्टि प्राप्त करने के लिए कम्पनी ने राजा जेम्स प्रथम के एक पत्र के साथ कैप्टन हॉकिन्स को मुगल सम्राट जहाँगीर के दरबार में भेजा। हॉकिन्स का मित्र की तरह स्वागत किया गया और उसे 400 का मनसब तथा एक जागीर दी गई। उसने बादशाह से सूरत में एक अंग्रेजी कम्पनी खोलने की अनुमति प्राप्त कर ली, परन्तु मुगल दरबार में पुर्तगाली प्रतिद्वन्द्वी सौदागरों के कारण वह अनुमति शीघ्र ही रद्द कर दी गई। 1611 में हॉकिन्स इंगलैण्ड लौट गया।

हॉकिन्स की वापसी के पश्चात् 1615 में जेम्स प्रथम ने कम्पनी की ओर से सर टामस रो को मुगल दरबार में भेजा। रो सम्राट जहाँगीर की कृपा पाने में सफल हुआ। वह तीन वर्ष तक एक मान्य राजदूत के रूप में अजमेर, माण्डू व इलाहाबाद में रहा। वह अपनी आशा के अनुरूप विधिवत और निश्चित सन्धि-पत्र प्राप्त करने में तो असफल रहा, परन्तु उसे कुछ नगरों में कोठियाँ स्थापित करने की आज्ञा मिल गई। फरवरी, 1619 में सर टामस रो इंगलैण्ड वापस चला गया। अंग्रेजों ने 1623 तक सूरत, भड़ौच, अहमदाबाद, आगरा और मछलीपत्तम में कोठियाँ स्थापित कर ली थीं। 1640 में उन्होंने मद्रास नगर की स्थापना की और आत्म-रक्षा के लिए वहाँ एक सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण कराया और उनका नाम 'सेंट जार्ज का किला' (फोर्ट सेंट जार्ज) रखा। 1651 में बंगाल में व्यापार-विस्तार करने के ध्येय से हुगली में भी एक कोठी खोली गई। 1661 में चार्ल्स द्वितीय ने कम्पनी को एक नया आज्ञा-पत्र प्रदान किया, जिसके आधार पर कम्पनी को मुद्रा ढालने, किला बनाने, न्याय करने तथा गैर-ईसाई राज्यों के साथ सन्धि-विग्रह करने का अधिकार मिल गया। चार्ल्स द्वितीय को पुर्तगाली राजकुमारी केथरीन से विवाह करने के उपलक्ष्य में दहेज के रूप में बम्बई का बन्दरगाह मिला था, जिसे उसने 1668 में 10 पौण्ड वार्षिक किराये पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी को दे दिया। धीरे-धीरे बम्बई व्यापार का केन्द्र हो गया और 1687 में उसने पश्चिमी तट की मुख्य व्यापारिक बस्ती के रूप में सूरत का स्थान लिया। इसके सम्बन्ध में गोआ के पुर्तगाली वाइसराय ने कहा था, "जिस दिन अंग्रेज बम्बई में बस जायेंगे उसी दिन भारत हमारे हाथ से निकल जाएगा।"

1688 में सूरत के गवर्नर सर जान चाइल्ड ने ताप्ती नदी के मुहाने पर अधिकार कर मुगलों के जहाजों को पकड़ लिया और मक्का जाने वाले जहाजों को लूटा, औरंगजेब को जब इसकी सूचना मिली तो उसने अंग्रेजों को दण्डित करने के विचार से पटना, कासिमपुर, मछलीपत्तम, विजगापत्तन और सूरत की कोठियाँ छीन लीं। यह देखकर अंग्रेज भयभीत हो गये। उन्होंने औरंगजेब से क्षमा याचना की। औरंगजेब ने यह समझकर कि अंग्रेजों के व्यापार से साम्राज्य को बड़ा लाभ हो रहा है, 17000 पौण्ड दण्ड के रूप में लेकर उन्हें क्षमा कर दिया। अंग्रेजों को इस समय यह आश्वासन देना पड़ा कि वे भविष्य में कभी इस प्रकार के अपमानजनक कार्यों में भाग न लेंगे।

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् 1715 में कम्पनी ने मुगल दरबार में जान सरमन की अध्यक्षता में एक शिष्ट-मण्डल भेजा। इसका लक्ष्य कम्पनी के लिए व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त करना था। इस शिष्ट-मण्डल में विलियम हैमिल्टन का नाम का शल्य-चिकित्सक भी था, जो मुगल सम्राट फर्रूखसियर को एक भयंकर रोग से स्वास्थ्य लाभ कराने में सफल हुआ। सम्राट ने प्रसन्न होकर पूर्व प्रचलित सुविधा को मान्यता प्रदान करते हुए कम्पनी के व्यापार को चुंगी और करों से मुक्त कर दिया तथा कलकत्ता और मद्रास के समीप कुछ गाँव भेंट स्वरूप प्रदान किये। इस प्रकार कम्पनी की स्थिति पहले से दृढ़ हो गई। उसका भारत के एक भू-भाग पर अधिकार हो गया। कम्पनी की इस उपलब्धि ने कालान्तर में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया।

भारत में फ्रांसीसियों का प्रवेश

पूर्व में व्यापारिक लाभों की प्रतिद्वन्द्विता में फ्रांसीसी सभी योरोपीय व्यापारियों से पीछे रहे। 1615 के बाद पूर्वीय व्यापार में भाग लेने के लिए कुछ प्रयास हुए जो विशेष प्रभावी सिद्ध न हुए। 1664 में राज्य के संरक्षण में एक व्यापारिक कम्पनी स्थापित हुई। इसका खर्चा फ्रांसीसी सरकार ही वहन करती थी। इस कम्पनी ने सूरत (1668) तथा मछलीपत्तन (1669)

में अपनी व्यापारिक कोठियाँ स्थापित कीं। 1674 में पाण्डिचेरी की नींव पड़ी। बंगाल में हुगली के तट पर चन्द्रनगर (1690-1692) में व्यापारिक कोठी की स्थापना हुई। पाण्डिचेरी के गवर्नर तथा भारत में फ्रांसीसी बस्तियों के डाइरेक्टर-जनरल फ्रैंको मार्टिन ने फ्रांसीसी कम्पनी की प्रतिष्ठा बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1706 में उसकी मृत्यु के पश्चात् फ्रांसीसी कम्पनी दुर्दिन की शिकार हो गई। 1720 में इसका पुनर्निर्माण हुआ। लिनो और ड्यूमा के शासन काल में फ्रांसीसी कम्पनी ने पुनः प्रतिष्ठा अर्जित की। 1721 में मारीशस, 1725 में मालाबार समुद्र तट पर स्थित माही और 1739 में कारोमण्डल तट पर कारीकल नामक स्थानों पर फ्रांसीसियों का अधिकार हो गया।

परन्तु अभी तक फ्रांसीसी कम्पनी के विचार राजनीतिक न थे। भारत में फ्रांसीसी साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न तो डूप्ले ने देखा था, जो 1742 में पाण्डिचेरी का गवर्नर बना।

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ (Important Dates & Events)

1. 1498 ई. - वास्को-डि-गामा का भारत आगमन
2. 1499 ई. - वास्को-डि-गामा का पुर्तगाल वापस जाना।
3. 1500 ई. - पेड्रो अलवर क्रेंबल का भारत आगमन।
4. 1502 ई. - वास्को-डि-गामा का पुनः भारत आगमन।
5. 1505 ई. - आल्मीडा का पुर्तगाली गवर्नर बनकर भारत आना।
6. 1509 ई. - अलबुकर्क का पुर्तगाली गवर्नर बनकर भारत आना।
7. 1510 ई. - पुर्तगालियों का गोआ पर अधिकार।
8. 1600 ई. - भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना।
9. 1608 ई. - हॉकिन्स का भारत आगमन।
10. 1615 ई. - सर टामस रो का भारत आगमन।
11. 1674 ई. - मद्रास नगर (फोर्ट सेंट जार्ज) की स्थापना व पाण्डिचेरी की नींव।

अभ्यासार्थ प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. पुर्तगाली भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने में क्यों असफल रहे?
2. सत्रहवीं शताब्दी में भारत में यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों की गतिविधियों का वर्णन कीजिए। (1994)

लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. भारत में पुर्तगालियों की असफलता के क्या कारण थे?
2. भारत में डच लोगों को किन जातियों से संघर्ष करना पड़ा? डचों की असफलता के क्या कारण थे?
3. भारत में अंग्रेजों का जिस प्रकार प्रवेश हुआ, उसका उल्लेख कीजिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में आने वाली दो योरीपीय जातियों के नाम बताइए।
   (1) अंग्रेज, तथा (2) फ्रांसीसी।
2. भारत में आने वाला प्रथम पुर्तगाली नाविक कौन था?
   वास्को-डि-गामा।

3. भारत में पुर्तगाली बस्तियों का प्रथम गवर्नर कौन था?
आल्मीडा (1505–1509)।
4. भारत में पुर्तगालियों द्वारा स्थापित दो व्यापारिक कोठियों के नाम बताइए।
(1) चटगाँव, तथा (2) हुगली।
5. भारत में पुर्तगालियों की असफलता का कोई एक कारण बताइए।
धार्मिक असहिष्णुता।
6. भारत में डचों द्वारा स्थापित दो व्यापारिक कोठियों के नाम लिखिए।
(1) सूरत, तथा (2) मछलीपत्तम।
7. भारत में डचों की असफलता का कोई एक कारण लिखिए।
सामुद्रिक शक्ति की निर्बलता।
8. सर टामस रो भारत कब आया था?
1615 ई.।
9. भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना कब हुई थी?
1600 ई.।
10. भारत में अंग्रेजों द्वारा स्थापित दो व्यापारिक कोठियों के नाम बताइए।
(1) सूरत, तथा (2) आगरा।
11. भारत में फ्रेन्च ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना कब हुई थी?
1664 ई.।
12. भारत में फ्रांसीसियों द्वारा स्थापित दो व्यापारिक कोठियों के नाम बताइए।
(1) सूरत, तथा (2) मछलीपत्तम।

बहुविकल्पीय प्रश्न

निर्देश : नीचे दिये गये प्रत्येक प्रश्न के चार विकल्पों में से सही विकल्प छाँटकर लिखिए :

1. वास्को-डि-गामा भारत कब आया था?
(क) 1490 ई. में, (ख) 1498 ई. में, (ग) 1390 ई. में, (घ) 1600 ई. में।
2. भारत में पुर्तगाली शक्ति का संस्थापक कौन था?
(क) वास्कोडिगामा, (ख) अलबुकर्क, (ग) ड्यू, (घ) इनमें से कोई नहीं।
3. अलबुकर्क पुर्तगाली कम्पनी का गवर्नर बनकर भारत कब आया?
(क) 1505 ई. में, (ख) 1507 ई. में, (ग) 1509 ई. में, (घ) 1510 ई. में।
4. पुर्तगालियों ने गोआ पर कब अधिकार किया?
(क) 1500 ई. में, (ख) 1505 ई. में, (ग) 1510 ई. में, (घ) 1610 ई. में।
5. फोर्ट सेंट जार्ज की स्थापना कब हुई?
(क) 1608 ई. में, (ख) 1615 ई. में, (ग) 1674 ई. में, (घ) 1774 ई. में।
6. भारत में 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' की स्थापना कब हुई?
(क) 1600 ई. में (ख) 1615 ई. में (ग) 1640 ई. में (घ) 1664 ई. में।
7. हाकिन्स भारत कब आया?
(क) 1510 ई. में (ख) 1590 ई. में (ग) 1600 ई. में (घ) 1608 ई. में।
8. अंग्रेजों ने भारत में अपनी पहली फैक्टरी कहाँ स्थापित की?
(क) मुम्बई (ख) सूरत (ग) बंगलौर (घ) इलाहाबाद।

■

12

सत्ता के लिए संघर्ष

"न तो सिकन्दर महान् और न नैपोलियन पाण्डिचेरी को आधार बनाकर और उस शक्ति से संघर्ष करके जिसके अधिकार में बंगाल था और जिसका नियंत्रण समुद्र पर था, भारतीय साम्राज्य को जीत सकता था।" -विसेन्ट स्मिथ

17वीं शताब्दी के अन्त तक भारत में आई हुई विभिन्न योरापीय जातियों का एकमात्र उद्देश्य व्यापार करके धन कमाना था। उन्होंने देश के राजनीतिक जीवन में कोई रुचि नहीं ली। औरंगजेब की मृत्यु (1707) के पश्चात् देश की राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन आया। केन्द्रीय सत्ता का ह्रास होने लगा। अवध, दक्षिण और बंगाल के सूबेदार लगभग स्वतन्त्र हो गये। पंजाब और राजपूताना भी मुगल साम्राज्य से अलग हो गये। दक्षिण में मराठों का अभ्युदय हुआ। अहमदशाह और नादिरशाह के आक्रमणों ने देश को चौतरफा नुकसान पहुँचाया। इस राजनीतिक उथल-पुथल का लाभ उठाकर योरोपीय जातियों ने भारत की राजनीति में हस्तक्षेप आरम्भ कर दिया।

व्यापारिक शक्ति से राजनीतिक शक्ति में परिवर्तन

भारत में व्यापारिक लाभ के लिए जो योरोपीय शक्तियाँ प्रयत्नशील थीं, उनमें पुर्तगालियों और डचों को व्यापार में कोई सफलता नहीं मिली। केवल अंग्रेजी और फ्रांसीसी कम्पनियाँ शेष रहीं। यूरोप में फ्रांस और इंग्लैण्ड में प्रायः युद्ध हुआ करते थे। अतएव भारत में भी अपने-अपने प्रभाव को बढ़ाने के लिए अंग्रेज और फ्रांसीसी व्यापारी आपस में लड़ने लगते थे।

अंग्रेज और फ्रांसीसी- भारत में पश्चिमी समुद्र तट पर मराठों का आधिपत्य था। अतः योरोपीय जातियों ने पूर्वी तट पर ही अपनी शक्ति का प्रसार किया।

ड्यूमा 1735 से 1741 तक पाण्डिचेरी का गवर्नर रहा। उसने अपने कार्यकाल में फ्रांसीसियों को दक्षिण भारत की सबसे अधिक प्रभावी शक्ति बना दिया। उसने अर्काट के नवाब दोस्तअली खाँ से मित्रता स्थापित की। तन्जौर की गद्दी के लिए होने वाले संघर्ष में हस्तक्षेप करके उसने कारीकल पर अधिकार कर लिया। 1740 में मराठों ने कर्नाटक पर आक्रमण कर नवाब दोस्तअली खाँ को मार डाला और उसके पुत्र सफदरअली खाँ को सन्धि करने के लिए बाध्य किया। सन्धि के अनुसार सफदरअली ने मराठों को एक करोड़ रुपया देने का वचन दिया। दूसरे वर्ष 1741 में मराठों ने फिर कर्नाटक में प्रवेश किया और त्रिचनापल्ली पर आक्रमण का नवाब दोस्तअली के दामाद चन्दासाहब को बन्दी बनाकर सतारा भेज दिया। दोस्तअली की विधवा बेगम और चन्दासाहब की स्त्री दोनों ने फ्रांसीसियों से मदद माँगीं। मराठा सरदार राघोजी भोंसले ने पाण्डिचेरी के गवर्नर ड्यूमा से दोनों को अपने हवाले करने को कहा। ड्यूमा ने उनकी वापसी के लिए साफ इन्कार कर दिया। इससे ड्यूमा की राजनीतिक स्थिति और दृढ़ हो गई। 1741 में ड्यूमा पद-त्याग कर स्वदेश लौट गया। ड्यूमा के पश्चात् डूप्ले 1742 में भारत में फ्रांसीसी राज्य का गवर्नर बनकर आया। डूप्ले एक प्रतिभावान् और आशावादी स्वभाव वाला व्यक्ति था। उसका विचार था कि फ्रांसीसियों को भारत में व्यापार करने के साथ-साथ राज्य स्थापित करने का भी प्रयत्न करना चाहिए। भारत में उसके प्रमुख प्रतिस्पर्धी अंग्रेज थे। उन्हें पराजित किये बिना भारत में फ्रांसीसी राज्य की स्थापना असंभव थी। इसी उद्देश्य से उसने कलकत्ता के निकट चन्द्रनगर, मद्रास के निकट पाण्डिचेरी तथा बम्बई के निकट माहीं में अपनी जड़ें मजबूती से जमाईं। पाण्डिचेरी की उसने पूरी किलेबन्दी की।

दक्षिण भारत में आंग्ल-फ्रांसीसी संघर्ष (1744-63)

1742 में कर्नाटक के नवाब सफदरअली के चचेरे भाई मुर्तजाअली ने उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचकर उसकी हत्या कर दी और गद्दी पर कब्जा कर लिया। लेकिन अर्काट की जनता ने मुर्तजाअली का स्वागत नहीं किया और विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। अतः हैदराबाद के निजाम ने उसको गद्दी से हटा दिया और सफदरअली के एक नाबालिग पुत्र सैय्यद मुहम्मद को कर्नाटक की गद्दी पर बैठा दिया तथा उसकी देख-भाल के लिए अनवरुद्दीन नामक एक अमीर को नियुक्त कर दिया। कुछ समय के उपरान्त अनवरुद्दीन के हृदय में नवाब बनने की कामना बलवती हुई। जब किसी ने उस नाबालिग की हत्या कर दी तो निजाम ने अनवरुद्दीन को कर्नाटक का नवाब घोषित कर दिया। इसी भूमिका में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के मध्य संघर्ष आरम्भ हो गया।

पहला कर्नाटक युद्ध (1744-1748)– 1740 में योरोप में आस्ट्रिया की राजगद्दी के उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर इंगलैण्ड और फ्रांस में युद्ध आरम्भ हो गया। भारत में भी अंग्रेजों तथा फ्रांसीसियों के बीच 1744 में युद्ध छिड़ गया। फ्रांसीसी गवर्नर डुप्ले ने मारीशस में नियुक्त लाबूर्दीने को अंग्रेजों पर आक्रमण करने के लिए भारत बुलाया। वह एक विशाल जहाजी बेड़ा लेकर भारत आ पहुँचा। उसने 1746 में मद्रास पर अधिकार कर लिया। किन्तु उसके पश्चात् ही डूप्ले और लाबूर्दीने में मतभेद हो गया और फ्रांस का नाविक बेड़ा लौट गया। कर्नाटक के नवाब अनवरुद्दीन ने मद्रास पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहा। डूप्ले के विरोध करने पर नवाब और फ्रांसीसियों के मध्य सैनिक संघर्ष आरम्भ हो गया। आडियार नामक स्थान पर मुट्ठी भर फ्रांसीसी सेना ने नवाब की सेना को हरा दिया। इसके पश्चात् डूप्ले ने मद्रास के निकट फोर्ट सेन्ट डेविड नामक किले पर आक्रमण किया, किन्तु अंग्रेज अफसर लारेंस की रण-कुशलता के कारण उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। अंग्रेजों ने इसके प्रत्युत्तर में पाण्डिचेरी जीतने का असफल प्रयास किया। 1748 में जब यूरोप में एलाशेपेल की सन्धि द्वारा फ्रांस और इंगलैण्ड दोनों के बीच लड़ाई बन्द हो गई, तो भारत में भी दोनों कम्पनियों के बीच युद्ध बन्द हो गया। फ्रांस ने मद्रास अंग्रेजों को वापस लौटा दिया और इसके बदले में फ्रांसीसियों को उत्तरी अमेरिका में लुईसवर्ग मिला।

दूसरा कर्नाटक युद्ध (1749-55)– 1748 में दोनों विदेशी कम्पनियों (फ्रांसीसी और अंग्रेजी) के पास सैनिक टुकड़ियाँ थीं और दोनों ही खर्चे के भार से बंचना चाहती थीं। इसलिए वे उन सेनाओं को भाड़े पर देने की इच्छुक थीं। इस कार्य में पहल अंग्रेजों ने की। 1748 में तन्जौर की गद्दी के लिए शाहजी और प्रतापसिंह दो मराठा प्रत्याशियों के मध्य संघर्ष हो रहा था। अंग्रेजों ने पहले शाहजी का समर्थन किया और बाद में अधिक धन के लोभ में दूसरे पक्ष का समर्थन किया।

1748 में हैदराबाद के निजाम-उल-मुल्क आसफजाह की मृत्यु हो गई और उसके पुत्र नासिरजंग तथा उसके पौत्र मुजफ्फरजंग में दक्षिण की सूबेदारी के लिए संघर्ष आरम्भ हो गया। इसी समय कर्नाटक के नवाब अनवरुद्दीन के विरुद्ध भूतपूर्व नवाब दोस्तअली का दामाद चंदासाहब षड्यंत्र कर रहा था। मुजफ्फरजंग और चंदासाहब ने डूप्ले से मदद माँगी। डूप्ले ऐसे ही अवसर की ताक में था। उसने इस मौके का लाभ उठाया और चंदासाहब तथा मुजफ्फरजंग के साथ एक गुप्त सन्धि की, जिसके अन्तर्गत उसने अपनी सुप्रशिक्षित फ्रांसीसी और भारतीय सेनाओं की सहायता देने का वचन दिया। उसके विरुद्ध अंग्रेजों ने नासिरजंग का समर्थन किया। डूप्ले मुजफ्फरजंग और चंदा साहब की संयुक्त सेनाओं ने अनवरुद्दीन को अगस्त, 1749 में अम्बूर के स्थान पर हरा दिया और मार डाला। अनवरुद्दीन का पुत्र मुहम्मदअली त्रिचनापल्ली भाग गया। कर्नाटक के अधिकांश भाग पर चंदा साहब का अधिकार हो गया। उसने डूप्ले को पाण्डिचेरी के निकट 80 गाँव जागीर में दिये। लेकिन दक्षिण की सूबेदारी के संघर्ष में नासिरजंग ने मुजफ्फरजंग को हरा दिया। डूप्ले ने नासिरजंग के विद्रोहियों से साँठ-गाँठ कर ली और मछलीपट्टम पर

अधिकार कर लिया। दिसम्बर, 1750 में नासिरजंग की हत्या कर दी गई। इसी बीच डूप्ले के सहयोगी बुस्सी ने जिंजी के दुर्ग पर अधिकार कर लिया तथा मुजफ्फरजंग को दक्षिण का निजाम बना दिया। मुजफ्फरजंग ने फ्रांसीसी कम्पनी को पुरस्कारस्वरूप पाण्डिचेरी के आस-पास के इलाके और मछलीपट्टम का प्रसिद्ध शहर प्रदान किया। उसने 5 लाख रुपये कम्पनी को तथा 5 लाख रुपये उसके सैनिकों को दिये। डूप्ले को 20 लाख रुपये तथा एक लाख रुपये सालाना आय की एक जागीर मिली। इसके अलावा उसे पूर्वी-तट के कृष्णा नदी और कन्याकुमारी के बीच के मुगल इलाकों का अवैतनिक गवर्नर बना दिया गया। डूप्ले ने अपने सबसे योग्य अफसर बुस्सी को एक फ्रांसीसी सेना सहित हैदराबाद में रख दिया। इस व्यवस्था का प्रत्यक्ष उद्देश्य निजाम को उसके दुश्मनों से बचाना था। मगर वस्तुतः इसका उद्देश्य उसके दरबार में फ्रांसीसी प्रभाव बनाये रखना था। मुजफ्फरजंग अपने कुछ सरदारों के हाथों मारा गया। 1751 में बुस्सी ने अत्यन्त धैर्य के साथ परिस्थिति का सामना किया और शीघ्र ही मृतक निजाम-उल-मुल्क आसफशाह के तृतीय पुत्र सलाबतजंग को गद्दी पर बैठा दिया। अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए वह सात वर्षों तक हैदराबाद में रहा। बदले में सलाबतजंग ने फ्रांसीसियों को आन्ध्र प्रदेश का वह हिस्सा दिया, जिसे उत्तरी सरकार कहा जाता था। इसमें चार जिले मुस्तफानगर, एलोर, राजामन्दी और चिकाकोल आते हैं।

1751 में दक्षिण भारत में फ्रांसीसी शक्ति अपने उच्चतम शिखर पर थी, क्योंकि दक्षिण का निजाम सलाबतजंग और कर्नाटक का नवाब चन्दा साहब उसके पूर्ण नियंत्रण में थे। फ्रांसीसियों ने अपनी योजना भारतीय राज्यों को दोस्त बनाने से आरम्भ की थी, मगर उन्होंने उन्हें अन्त में अपना आश्रित बना लिया।

अर्काट का घेरा (1751)– अनवरउद्दीन के पुत्र मुहम्मदअली ने त्रिचनापल्ली में शरण ली थी। चन्दा साहब ने डूप्ले की मदद से त्रिचन्नापल्ली का घेरा डाला। मुहम्मदअली ने अंग्रेजों से सहायता की प्रार्थना की। अंग्रेजों ने उसे सैनिक शक्ति से सहायता देना स्वीकार कर लिया। इसी समय राबर्ट क्लाइव ने जो कम्पनी की नौकरी में एक युवा क्लर्क था, सुझाया कि कर्नाटक की राजधानी अर्काट पर हमला करके ही मुहम्मदअली को फ्रांसीसी दबाव से मुक्त किया जा सकता है। प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। मेजर लारेंस ने यह कार्य स्वयं क्वाइव को ही सौंपा। क्लाइव ने केवल 200 अंग्रेज और 300 भारतीय सैनिकों की सहायता से अर्काट पर हमला किया और उस पर अधिकार कर लिया। इसका फल आशानुरूप हुआ। अपनी राजधानी अर्काट को पुनः जीतने के लिए चन्दा साहब ने जो इस समय त्रिचन्नापल्ली का घेरा डाले पड़ा था, अपने पुत्र रजा खाँ के अधीन अपनी आधी सेना भेजी। क्लाइव ने इस सेना का बड़े साहस, धैर्य तथा वीरता से सामना किया। 53 दिन तक युद्ध चलता रहा। अन्त में क्लाइव ने आक्रमणकारियों को मार भगाया। इस सफलता ने अंग्रेजों की सामरिक प्रतिष्ठा बहुत बढ़ा दी। क्लाइव ने आर्नी और काबेरीपाक भी जीत लिए और इसके बाद लारेंस और क्लाइव की संयुक्त सेना ने त्रिचनापल्ली को शत्रु के घेरे से मुक्त कराया। फ्रांसीसी सेनानायक जेकीन फ्रांसिस ला ने स-सैन्य आत्म-समर्पण कर दिया। चन्द्रा साहब को तन्जौर के राजा के सेनापति के सामने आत्म-समर्पण करना पड़ा। छलपूर्वक चन्दा साहब की हत्या कर दी गई। इसके बाद मुहम्मदअली को कर्नाटक का नवाब बनाया गया।

डूप्ले ने इस संकटमय स्थिति का जमकर सामना किया। उसने बिगड़ी हुई स्थिति को सँभालने के लिए अंग्रेजों के मित्र नरेशों के विरुद्ध षड्यंत्र रचे और मराठों की सहायता भी प्राप्त करने का निश्चय किया। किन्तु उसकी समस्त योजनाओं को अंग्रेज सेनापति लारेंस ने निष्फल कर दिया। 1752 तक अंग्रेजों ने फ्रांसीसियों के बहुत से प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। फ्रांसीसियों के पास केवल जिंजी और पाण्डिचेरी ही शेष रह गये। 1753 के अन्त में परिस्थितियों से विवश होकर डूप्ले ने डचों की एक बस्ती मद्रास में अंग्रेजों से सन्धि वार्ता चलायी, किन्तु वह असफल रही।

उक्त असफलताओं के कारण डूप्ले की मान और प्रतिष्ठा को बड़ा आघात पहुँचा और अगस्त, 1754 में फ्रांस की सरकार ने उसे वापस बुला लिया। उनके स्थान पर गोडह्यू (1754) को भारत भेजा। उसे यह आदेश दिया गया कि अंग्रेजों से सन्धि करे। भारत आकर उसने अंग्रेजी कम्पनी से सन्धि करने का प्रयत्न किया। जनवरी, 1755 में पाण्डिचेरी की सन्धि हो गई, जिसके अनुसार दोनों पक्षों ने युद्ध विराम स्वीकार कर लिया।

तीसरा कर्नाटक युद्ध (1756-63)– 1755 में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच जो सन्धि हुई थी, वह अधिक दिनों तक कायम न रह सकी। दोनों ही पक्ष भीतर ही भीतर एक-दूसरे के विरुद्ध कार्यवाही करने में संलग्न थे। फलतः 1756 में जब योरोप में सप्तवर्षीय युद्ध प्रारम्भ हुआ तो भारत में भी दोनों कम्पनियों में लड़ाई शुरू हो गई। इस समय फ्रांसीसियों की अपेक्षा अंग्रेजों की स्थिति सुदृढ़ थी। फ्रांस की सरकार ने अप्रैल, 1758 में लैली को एक शक्तिशाली सेना के साथ निम्न तीन आदेश देकर भारत भेजा। (1) वह आन्तरिक प्रदेश की विजय का प्रयास न करे, (2) भारतीय नरेशों के झगड़ों में भाग न ले, (3) अंग्रेजों द्वारा तटीय प्रदेश में किलेबन्दी किये गये स्थानों को छीन ले और उनके व्यापार को नष्ट-भ्रष्ट कर दे। लैली ने आते ही फोर्ट सेंट डेविड किले पर आक्रमण कर जून, 1758 में उस पर अधिकार कर लिया। उसके पश्चात् उसने दिसम्बर, 1758 में मद्रास पर आक्रमण किया और अपनी सहायता के लिए बुस्सी को हैदराबाद से बुला लिया। यह लैली की बहुत भारी भूल थी। बुस्सी के हैदराबाद से चले आने से फ्रांसीसियों को काफी हानि हुई। 'उत्तरी सरकार' पर भी अंग्रेजों ने अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। 22 जनवरी, 1760 को वांडिवाश की लड़ाई में अंग्रेज सेनापति सर आयरकूट ने लैली को निर्णायक रूप में परास्त किया। इस लड़ाई के सम्बन्ध में मेलसन ने लिखा है, "इसने (वांडिवाश की लड़ाई) उस विशाल इमारत को भूमि पर गिरा दिया, जिसको बनाने में मार्टिन, ड्यूमा और डूप्ले ने सहयोग किया था। इससे लैली की सम्पूर्ण आशाएँ समाप्त हो गईं और इसने पाण्डिचेरी के भाग्य का निर्णय कर दिया।" 1761 में फ्रांसीसियों का मुख्य केन्द्र पाण्डिचेरी अंग्रेजों ने जीत लिया और शीघ्र ही कारिकल, माही और अन्य फ्रांसीसी स्थानों पर भी अंग्रेजों का अधिकार हो गया। 1763 में पेरिस सन्धि से चन्द्रनगर को छोड़कर फ्रांसीसियों को वे समस्त स्थान लौटा दिय गये, जो उनके पास 1749 में थे। वह स्थान फ्रांस के पास 1947 तक रहे और भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत को लौटा दिये गये।

फ्रांसीसियों की असफलता के कारण

1. सामुद्रिक-शक्ति की निर्बलता– फ्रांसीसियों की सामुद्रिक शक्ति अंग्रेजों की अपेक्षा निर्बल थी। सामुद्रिक-प्रभुत्व के कारण अंग्रेज जब चाहते, भारत में सहायता भेज सकते थे। परिणामतः युद्ध के समय अंग्रेजों को समुद्र द्वारा सैनिक तथा रसद दोनों ही मिलते रहे, किन्तु फ्रांसीसियों को नहीं। फ्रांसीसियों की असफलता का प्रमुख कारण सामुद्रिक शक्ति की निर्बलता ही थी।

2. आर्थिक दुर्बलता– फ्रांसीसी कम्पनी की आर्थिक दशा अच्छी न थी तथा उसके व्यापार की दशा भी शोचनीय थी। इंगलैण्ड की कम्पनी के व्यापार का योग फ्रांस की कम्पनी के व्यापार के तीन गुना से भी अधिक था। संकट के समय आर्थिक कठिनाइयों को सहन करने की शक्ति अंग्रेजी

फ्रांसीसियों की असफलता के कारण

1. सामुद्रिक-शक्ति की निर्बलता
2. आर्थिक दुर्बलता
3. सरकारी नियंत्रण
4. फ्रांसीसी पदाधिकारियों में असहयोग की भावना
5. समुचित आधार का अभाव
6. गवर्नरों के साथ दुर्व्यवहार
7. योरोप में पराजय
8. डूप्ले का वापस जाना

कम्पनी में अधिक थी। इंग्लैण्ड की सरकार आवश्यकता पड़ने पर कम्पनी से ऋण लेती थी, जबकि फ्रांस की कम्पनी केवल सरकारी ऋणों और अनुदान पर ही निर्भर रहती थी।

3. सरकारी नियन्त्रण– फ्रांसीसी कम्पनी फ्रांस सरकार के नियंत्रण में थी। सरकारी नियंत्रण के कारण धनाभाव, युद्ध–नीति के फलस्वरूप व्यापार को कम प्रोत्साहन तथा कम्पनी के हिस्सेदारों को कम स्वतन्त्रता उपलब्ध थी। इसके विपरीत अंग्रेजी कम्पनी स्वतन्त्र व्यापारिक कम्पनी थी। वह अपनी इच्छानुसार नीति–निर्धारण कर सकती थी।

4. फ्रांसीसी पदाधिकारियों में असहयोग की भावना– फ्रांसीसी पदाधिकारियों में पारस्परिक सहयोग की भावना का अभाव था। डूप्ले और बुस्सी में सहयोग नहीं था। बुस्सी ने कर्नाटक के युद्धों में समुचित सहायता नहीं प्रदान की। आपत्तिकाल में बुस्सी का डूप्ले तथा लैली दोनों के साथ उदार व्यवहार न था। इस प्रकार के असहयोग का कम्पनी की नीति और उसके कार्यों पर घातक प्रभाव पड़ा तथा उसको विशेष हानि उठानी पड़ी।

5. समुचित आधार का अभाव– फ्रांसीसियों की भारत संघर्ष में एक बहुत बड़ी दुर्बलता यह थी कि उसके पास कोई समुचित आधार न था, जहाँ से युद्ध का संचालन समुचित रूप से हो पाता। केवल मारीशस ही उसका सुरक्षित आधार बन सकता था, किन्तु वह भी इतनी दूर स्थित था कि वहाँ से सुचारु रूप से युद्ध संचालन करना कठिन था। इसके विपरीत अंग्रेजों के आधिपत्य में बंगाल का धन सम्पन्न प्राप्त था जहाँ से उनकी सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती थी। प्रोफेसर सरकार और दत्त के अनुसार, "बंगाल के ही साधनों की सहायता से अंग्रेजी कम्पनी ने अपने अधिकांश युद्धों को लड़ा था और अपना राज्य स्थापित किया था।"

6. गवर्नरों के साथ दुर्व्यवहार– फ्रांस सरकार का अपने गवर्नरों के साथ अच्छा व्यवहार न था। उसने डूप्ले और लैली को पुरस्कार देने तथा सम्मानित करने के बजाय दण्डित किया। लैली को तो देश–द्रोही ठहराकर मुत्यु–दण्ड तक दे दिया गया। डूप्ले पर अभियोग चलाया गया। इस प्रकार के व्यवहार से कम्पनी के पदाधिकारी हतोत्साहित हो गये और उन्हें असफलता का मुँह देखना पड़ा।

7. योरोप में पराजय– डॉ. ईश्वरीप्रसाद लिखते हैं, "फ्रांसीसी भारत में विफल इसलिए रहे, क्योंकि वे योरोप में विफल रहे। कोई योरोपीय राष्ट्र भारत में उस समय तक अपनी सत्ता नहीं रख सकता था, जब तक योरोप में उसकी प्रमुखता स्थापित न हो जाय।" 18वीं शताब्दी से इंग्लैण्ड और फ्रांस के बीच उपनिवेश स्थापना तथा व्यापार की अभिवृद्धि के लिए जो एक महान संघर्ष चल रहा था, भारतीय संघर्ष उसका एक अभिन्न अंग था। अन्ततः इस महान संघर्ष में इंग्लैण्ड को सफलता प्राप्त हुई। वास्तव में भारतीय संघर्ष का निर्णय योरोप के रण–क्षेत्र में हुआ। जब योरोप में फ्रांस को नतमस्तक होना पड़ा, तब भारत में उनका धराशायी होना अनिवार्य था।

8. डूप्ले का वापस जाना– फ्रांस की सरकार ने डूप्ले को वापस बुलाकर भूल की। वह भारत की राजनीति से भली–भाँति परिचित था। यदि वह वहाँ रहता तो पाण्डिचेरी की संधि इतनी अपमानजनक न होती, जिसने फ्रांसीसी राज्य की भारत में स्थापना के स्वप्न का अन्त ही कर दिया। एम. मौरियन के शब्दों में, "यदि फ्रांस की सरकार उसको वापस न बुलाती तथा उसकी सेवा को पूर्ववत् रखती और उसकी नीति का समर्थन करती, तो अन्तिम घटनाओं में आमूल–चूल परिवर्तन न होता।"

डूप्ले

डूप्ले की गणना विश्व की महान् विभूतियों में की जाती है जिन्होंने असफलता प्राप्त करने के उपरान्त भी बहुत ख्याति अर्जित की। यद्यपि वह अंग्रेजों से असफल हो गया फिर भी भारतवर्ष के इतिहास में वह महान् और चमकता हुआ व्यक्ति है। वह भारत में अंग्रेजों को बाहर निकाल कर, फ्रांसीसी साम्राज्य की स्थापना करना चाहता था। एलफिन्सटन के अनुसार, "डूप्ले वह

प्रथम व्यक्ति था जिसने अनुशासनपूर्ण सैनिकों का उपयोग किया, वह प्रथम व्यक्ति था जिसने समुद्रतट के बन्दरगाहों को छोड़कर महाद्वीप (भारत) के हृदय में सैनिक अभियान किया और सबसे ऊपर वह प्रथम व्यक्ति था जिसने मुगलों की झूठी शान के भ्रम को पहचाना तथा अपने उद्देश्य की ओर ध्यान दिया।"

मैलेसन के अनुसार– "डूप्ले एक कुशल शासक और संगठनकर्ता था। उसमें अदम्य उत्साह, साहस तथा देश–भक्ति कूट–कूट कर भरी हुई थी। वह तत्कालीन परिस्थिति का बड़ा ज्ञाता था और उससे सदा लाभ उठाने का उसने प्रयत्न किया।" प्रारम्भ में वह चन्द्रनगर का गवर्नर बनाया गया था किन्तु आगे चलकर अपनी योग्यता के बल पर ही फ्रांसीसी उपनिवेशों का गवर्नर जनरल नियुक्त किया गया। उसकी नीति का अध्ययन विशेष महत्वपूर्ण है।

डूप्ले की नीति– डूप्ले की नीति का उल्लेख निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है :

डूप्ले की नीति

1. आर्थिक नीति
2. साम्राज्य स्थापना की नीति
3. अंग्रेजों के दमन की नीति
4. देशी नरेशों के झगड़ों में हस्तक्षेप की नीति
5. भारतीय सेनाओं के प्रयोग की नीति

(1) आर्थिक नीति– पांडिचेरी का गवर्नर बनने के पूर्व तक डूप्ले का उद्देश्य फ्रांस के व्यापार में वृद्धि करना था। किन्तु कुछ समय पश्चात् उसकी नीति में परिवर्तन आ गया। वह भारत में राजनीतिक सत्ता स्थापित करने की योजना बनाने लगा। इस प्रकार उसके सम्मुख व्यापारिक उद्देश्य की अपेक्षा राजनीतिक उद्देश्य अधिक था।

(2) साम्राज्य स्थापना की नीति– डूप्ले अंग्रेजों का कट्टर शत्रु था। वह भारतीय राजाओं का सहयोग प्राप्त कर अंग्रेजों को भारत से निकाल कर फ्रांसीसी साम्राज्य की स्थापना करना चाहता था।

(3) अंग्रेजों के दमन की नीति– डूप्ले यह भलीभाँति जानता था कि भारत में साम्राज्य की स्थापना का स्वप्न तब तक साकार नहीं हो सकता, जब तक कि अंग्रेजों को भारत से बाहर निकाल न दिया जाय। अतः वह भारत से अंग्रेजों को खदेड़ना चाहता था। स्वयं डूप्ले के शब्दों में, "मेरे उद्देश्य की पूर्ति तब तक नितान्त असंभव है जब तक कि मैं अंग्रेजों को भारत से न निकाल दूँ।"

(4) देशी नरेशों के झगड़ों में हस्तक्षेप की नीति– अंग्रेजों को भारत से निकाल देने की उद्देश्य पूर्ति के लिए उसने भारतीय राजाओं के व्यक्तिगत झगड़ों में हस्तक्षेप करने की नीति अपनायी। उसका यह विश्वास था कि भारतीयों पर प्रभाव स्थापित करके वह इनका प्रयोग अंग्रेजों के विरुद्ध कर सकेगा।

(5) भारतीय सेनाओं के प्रयोग की नीति– डूप्ले यह भलीभाँति जानता था कि फ्रांसीसी सेना थोड़ी है जिससे अंग्रेजों को पराजित करना असंभव है। अतः उसने भारतीय राजाओं की सेनाओं को पाश्चात्य ढंग से प्रशिक्षण देना प्रारम्भ किया। उसने भारतीयों को उच्च सैनिक पदों पर नियुक्त किया। इस प्रकार उसने एक विशाल सेना संगठित कर ली।

सर्वप्रथम डूप्ले ने हैदराबाद तथा कर्नाटक के उत्तराधिकार के झगड़ों में हस्तक्षेप किया। वह हैदराबाद में मुजफ्फरजंग और बाद में सलबतजंग को, कर्नाटक में चन्दा साहब को राज–सिंहासन दिलाने में सफल हुआ। अंग्रेज इससे अत्यधिक भयभीत हो गये। क्लाइव ने अर्काट का घेरा डालकर चन्दा साहब को पराजित किया और कर्नाटक के राज–सिंहासन पर मुहम्मदअली को बैठाया। क्लाइव की इस सफलता से डूप्ले की योजना असफल हो गई और उसकी ख्याति को घातक प्रहार लगा।

डूप्ले की नीति के दोष– डूप्ले की नीति में निम्नलिखित दोष विद्यमान थे :

(1) सुनिश्चित योजना का अभाव– डूप्ले का उद्देश्य भारत में फ्रांसीसी साम्राज्य की स्थापना करना था लेकिन इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने कोई सुनिश्चित योजना की रूपरेखा नहीं बनाई। डॉ. ईश्वरीप्रसाद ने इस सम्बन्ध में लिखा है, "वास्तव में फ्रांसीसी साम्राज्य की स्थापना हेतु उसने न कभी विवेकपूर्ण योजना ही बनाई और न उसे क्रियान्वित करने हेतु किसी सुनिश्चित नीति का अनुसरण किया। हाँ, उसके कार्यों से इतना स्पष्ट हो जाता है कि वह देशी राज्यों को अपने प्रभाव में रखना चाहता था।"

डूप्ले की नीति के दोष

1. सुनिश्चित योजना का अभाव
2. जहाजी बेड़ों का शक्तिहीन होना
3. उपहार ग्रहण करना
4. कम्पनी की शोचनीय आर्थिक स्थिति
5. धन का अत्यधिक व्यय

(2) जहाजी बेड़ों का शक्तिहीन होना– फ्रांसीसियों का जहाजी बेड़ा अंग्रेजों के जहाजी बेड़े के सामने शक्तिहीन था लेकिन डूप्ले ने अपने जहाजी बेड़े को शक्तिशाली बनाने के लिए कोई प्रयास नहीं किया। अतः ऐसी अवस्था में अंग्रेजों को पराजित करना नितान्त असंभव था।

(3) उपहार ग्रहण करना– डूप्ले देशी राजाओं से लम्बे-लम्बे उपहार ग्रहण करता था जिसके फलस्वरूप बदनाम हो गया। इसका प्रभाव उसके अधीनस्थ अफसरों पर भी पड़ा। उन्होंने भी उपहार ग्रहण करना प्रारम्भ कर दिया और अपने स्वार्थों के सम्मुख कम्पनी के स्वार्थों की उपेक्षा करने लगे।

(4) कम्पनी की शोचनीय आर्थिक स्थिति– विभिन्न राज्यों के झगड़ों में हस्तक्षेप करने के कारण डूप्ले को विभिन्न युद्धों में भाग लेना पड़ा। इससे कम्पनी की आर्थिक दशा शोचनीय हो गई। "डूप्ले को यह आशा थी कि नवीन अधिगत क्षेत्रों की आय कम्पनी के व्यापारिक क्षति की पूर्ति कर देगी परन्तु ऐसा न हो सका। उसकी आर्थिक स्थिति उत्तरोत्तर खराब होती चली गई और उसकी नीति से यह स्पष्ट हो गया था कि व्यापार और विजय साथ-साथ नहीं किये जा सकते।"

(5) धन का अत्यधिक अपव्यय– डूप्ले ने मितव्ययिता की नीति नहीं अपनाई। उसने केवल पाँच वर्षों में 60 लाख रुपया युद्ध में व्यय कर दिया और विजित प्रदेशों से इतनी आय नहीं हो पाई। अतः उसकी गृह-सरकार उसकी नीति की विरोधी हो गई।

डूप्ले की असफलता के कारण– डॉ. ईश्वरीप्रसाद के शब्दों में, "यद्यपि उसके सारे कार्य देश-भक्ति की भावना से प्रेरित थे, तथापि उनका परिणाम अच्छा न हुआ, गृह-सरकार उसे निरकुंश और स्वेच्छाचारी समझने लगी, उसके विरुद्ध आज्ञोल्लंघन का आरोप लगाया गया।" डूप्ले की असफलता के निम्नलिखित कारण बतलाये जा सकते हैं :

(1) स्वतन्त्र नीति– डूप्ले की स्वतन्त्र नीति उसके पतन का कारण बनी। उसने कम्पनी और गृह-सरकार को अपनी नीति एवं योजनाओं से अनभिज्ञ रखा। उसका दुष्परिणाम यह हुआ कि उसको अपनी असफलताओं को भी कम्पनी से छिपाना पड़ता था। उसकी स्वतन्त्र नीति ही उसकी अनेक कठिनाइयों का कारण बनी।

(2) गृह-सरकार का असहयोग– डूप्ले की असफलता का सबसे बड़ा कारण गृह-सरकार का असहयोग था। वह अमेरिका में फ्रांसीसियों के हितों के लिए इतनी अधिक चिन्तित रही कि उसने डूप्ले को यथासमय कोई सहायता नहीं प्रदान की। गृह-सरकार का यह उद्देश्य था कि व्यापार द्वारा राष्ट्रीय आय में वृद्धि की जाय। लेकिन डूप्ले इस उद्देश्य की पूर्ति में असफल रहा और गृह-सरकार के क्रोध का शिकार बना।

(3) योजना की व्यापकता– डूप्ले की असफलता का तीसरा कारण उसकी व्यापक

योजनाएँ भी थीं। वह एक कार्य को पूर्ण करने के पूर्व ही दूसरे कार्य की ओर हाथ बढ़ाने लगता था। फलतः उसे कुछ भी लाभ प्राप्त नहीं होता था। डाडबेल का कथन सत्य ही है, "बहुत चौड़ाई में अपना जाल डालकर उसने अपनी सेनाओं को बिखेर दिया।"

डूप्ले की असफलता के कारण

1. स्वतन्त्र नीति
2. गृह-सरकार का असहयोग
3. योजनाओं की व्यापकता
4. योग्य सेनानायकों का अभाव
5. सामुद्रिक शक्ति की दुर्बलता
6. व्यापार-वृद्धि की उपेक्षा

(4) योग्य सेनानायकों का अभाव- डूप्ले के पास योग्य सेनानायकों का अभाव था। उसके पास एकमात्र बुस्सी ही योग्य सेनानायक था लेकिन वह अत्यधिक स्वार्थी था। लैली निःसन्देह एक कुशल सेनापति था किन्तु वह अत्यन्त उतावला तथा हठी था। संकट-काल में नेतृत्व करने की क्षमता का उसमें अभाव था। डूप्ले स्वयं एक योग्य शासक होने पर भी एक योग्य सेनानायक नहीं था।

(5) सामुद्रिक शक्ति की दुर्बलता- अंग्रेजों की सामुद्रिक शक्ति बढ़ी-चढ़ी थी। लेकिन फ्रांसीसियों की सामुद्रिक शक्ति निर्बल थी। डूप्ले ने इस ओर कोई प्रयास नहीं किया, बल्कि स्थल शक्ति बढ़ाकर अंग्रेजों से स्थलीय युद्ध लड़ने प्रारंभ किये। वह कदाचित् यह भूल गया कि बिना सामुद्रिक शक्ति बढ़ाये अंग्रेजों से टक्कर लेना मूर्खता है।

(6) व्यापार-वृद्धि की उपेक्षा- डूप्ले ने अपने व्यापार-वृद्धि की उपेक्षा की। वह बराबर यही सोचता रहा कि जिन नये प्रदेशों को वह अपने अधीन करता जा रहा है, उनकी आय से व्यापार में होने वाली हानि की पूर्ति कर लेगा, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। उसने पाँच वर्ष के अन्दर कम्पनी का 60 लाख रुपया युद्धों में व्यय कर दिया। फलतः आय से अधिक व्यय होने पर फ्रांसीसी कम्पनी की आर्थिक व्यवस्था बड़ी शोचनीय हो गई। इससे फ्रांसीसी सरकार डूप्ले से अत्यधिक असन्तुष्ट हो गई और उसको भारत से वापस बुला लिया और उसके विरुद्ध आज्ञोल्लंघन का आरोप लगाया गया।

डूप्ले का मूल्यांकन

डूप्ले की नीति और उपलब्धियों के सम्बन्ध में विरोधी मत व्यक्त किये गये हैं। जहाँ एक ओर अंग्रेज इतिहासकारों ने क्लाइव की उपलब्धियों को बढ़ाने के लिए डूप्ले को असफल महत्वाकांक्षी बताया है वहीं दूसरी ओर फ्रांस के इतिहासकारों ने यह बताने का प्रयत्न किया है कि डूप्ले पहला फ्रांसीसी था जिसने साम्राज्य स्थापना की सबसे पहले योजना बनाई थी। डूप्ले के प्रशंसक और आलोचक दोनों ही उसे साम्राज्य की स्थापना की नीति का संयोजक कहने में सहमत हैं। वास्तव में डूप्ले की सबसे निष्पक्ष व्याख्या आलफ्रेड मारटिन्यू ने की है। उसके अनुसार, "डूप्ले की औपनिवेशिक योजना का मूल कारण यह था कि अपने व्यापारिक कार्यों की पूर्ति के लिए धनाभाव और फ्रांस सरकार की आर्थिक कठिनाइयों से मुक्ति पाने के लिए उसने भारत में ही आर्थिक साधनों को जुटा लेना अधिक उपयोगी समझा। उसके लिए एक निश्चित क्षेत्र के राजस्व को राजनीतिक सत्ता प्राप्त करके वसूल करना आवश्यक था।" इस प्रकार डूप्ले की राजनीतिक योजना आरंभ हुई। यह योजना 1750 के पूर्व डूप्ले के मन में नहीं थी।

डूप्ले के सम्बन्ध में आलफ्रेड लायल ने लिखा है, "18वीं शताब्दी में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच समुद्र तट पर साम्राज्य के लिए किये गये लम्बे और कठिन संघर्ष के संक्षिप्त

भारतीय घटनाचक्र में डूप्ले सबसे अधिक चमत्कारपूर्ण व्यक्ति था।"

एलफिन्सटन के शब्दों में, "डूप्ले पहला व्यक्ति था जिसने अनुशासित सैनिकों का पूर्ण उपयोग किया। वह पहला व्यक्ति था जो समुद्र के बन्दरगाहों को छोड़कर देश के मध्य भाग तक अपनी सेनाओं को ले गया। वह पहला व्यक्ति था जिसने मुगलों की झूठी शान को पहचाना तथा अपने उद्देश्य की ओर ध्यान दिया।"

थार्नटन के अनुसार, "डूप्ले अभिमानी तथा महत्वाकांक्षी व्यक्ति था।"

स्मिथ महोदय के अनुसार, "डूप्ले चरित्रहीन, अवसरवादी और षड्यंत्रकारी था।"

डॉ. ईश्वरीप्रसाद के शब्दों में, "उसके सारे कार्य उसके देश-भक्ति की भावना से प्रेरित थे फिर भी उनका परिणाम अच्छा न हुआ, गृह-सरकार उसे निरंकुश और स्वेच्छाचारी समझने लगी, उसके विरुद्ध आज्ञोल्लंघन का आरोप लगाया गया।"

पी.ई. राबर्ट्स के अनुसार, "परन्तु अन्तिम असफलता के बावजूद भारतीय इतिहास में डूप्ले को एक उज्ज्वल और अविस्मरणीय स्थान प्राप्त है। हम उसकी वास्तविक महत्ता की उपेक्षा नहीं कर सकते।"

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ (Important Dates & Events)

1. 1742 ई. – डूप्ले भारत में फ्रांसीसी राज्य का गवर्नर बनकर आया।
2. 1744 ई. – कर्नाटक का प्रथम युद्ध।
3. 1748 ई. – हैदराबाद के निजाम आसफशाह की मृत्यु।
4. 1749 ई. – कर्नाटक का द्वितीय युद्ध।
5. 1750 ई. – नासिरजंग की हत्या।
6. 1751 ई. – अर्काट का घेरा।
7. 1754 ई. – डूप्ले का फ्रांस वापस जाना।
8. 1756-63 ई. – कर्नाटक का तृतीय युद्ध

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. डूप्ले की नीति की व्याख्या कीजिए और उसकी असफलता के कारण बताइए। (1947,52;54,71,72)
2. डूप्ले की असफलताओं के कारणों का उल्लेख कीजिए। (1962)
3. डूप्ले की नीति का विवेचन कीजिए। भारत में फ्रांसीसी किन कारणों से असफल रहे? (1981)
4. अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के संघर्ष का संक्षिप्त वर्णन कीजिए। (1982,86)
5. भारत में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के संघर्ष में अंग्रेजों की सफलता और फ्रांसीसियों की असफलता के कारणों का विश्लेषण कीजिए। (1991)
6. भारत में साम्राज्य-स्थापना करने में अंग्रेजों की सफलता के क्या कारण थे? (1993)
7. भारत के फ्रान्सीसियों के विरुद्ध अंग्रेजों की सफलता के कारणों का परीक्षण कीजिए। (2003)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "यद्यपि डूप्ले को अन्तिम असफलता हुई, पर फिर भी वह भारतीय इतिहास में एक प्रभावशाली व्यक्ति माना जाता है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
2. "डूप्ले को अपने चरित्र तथा कार्यों में वह प्रशंसा प्राप्त नहीं हुई, जिसके लिए वह योग्य था।" इस कथन के संदर्भ में डूप्ले का मूल्यांकन कीजिए।

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों के उत्तर दीजिए।)

1. भारत में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के मध्य संघर्ष के कारण क्या थे?
2. कर्नाटक के द्वितीय युद्ध के परिणाम क्या हुए?
3. भारत में फ्रांसीसियों की असफलता के क्या कारण थे?
4. डूप्ले की असफलता के क्या कारण थे?
5. कर्नाटक के प्रथम युद्ध के कारणों की विवेचना कीजिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच संघर्ष के दो प्रमुख कारण बताइए।
(1) मुगल शक्ति का ह्रास, तथा (2) व्यापारिक एकाधिकार की आकांक्षा।

2. आसफजाह की मृत्यु के बाद हैदराबाद की गद्दी के लिए कौन दावेदार थे?
आसफजाह का पुत्र नासिरजंग और पौत्र मुजफ्फरजंग।

3. राबर्ट क्लाइव ने मुहम्मद अली की रक्षा के लिए क्या उपाय सोचा?
कर्नाटक की राजधानी अर्काट पर आक्रमण करना।

4. दो फ्रांसीसी गवर्नरों के नाम बताइए।
(1) डूप्ले, तथा (2) लैली।

5. भारत में फ्रांसीसियों की मुख्य व्यापारिक कोठियाँ कहाँ-कहाँ थीं?
भारत में फ्रांसीसियों की मुख्य व्यापारिक कोठियाँ सूरत, पाण्डिचेरी व चन्द्रनगर में थीं।

6. भारत में अंग्रेजों की मुख्य कोठियाँ कहाँ-कहाँ थीं?
भारत में अंग्रेजों की मुख्य कोठियाँ हुगली, मछलीपत्तम, कासिम बाजार, मुंबई आदि स्थानों पर थीं।

7. कर्नाटक का प्रथम युद्ध किस-किस के बीच तथा कब आरम्भ हुआ?
कर्नाटक का प्रथम युद्ध अंग्रेजों तथा फ्रांसीसियों के बीच 1744 ई. में आरम्भ हुआ।

8. लार्ड क्लाइव ने अर्काट का घेरा कब डाला?
लार्ड क्लाइव ने 1751 ई. में अर्काट का घेरा डाला था।

9. कर्नाटक का तीसरा युद्ध किस-किस के बीच तथा कब आरम्भ हुआ?
कर्नाटक का तीसरा युद्ध अंग्रेजों तथा फ्रांसीसियों के बीच 1756 ई. में आरम्भ हुआ।

10. अंग्रेजों ने फ्रांसीसियों को छीना हुआ पाण्डिचेरी कब वापस किया?
अंग्रेजों ने फ्रांसीसियों को छीना हुआ पाण्डिचेरी 1763 ई. में वापस किया।

बहुविकल्पीय प्रश्न

निर्देश : नीचे दिये गये प्रत्येक प्रश्न के चार विकल्पों में से सही विकल्प छाँटकर लिखिए :

1. कर्नाटक का दूसरा युद्ध कब हुआ?
(क) 1745 ई., (ख) 1749 ई., (ग) 1750 ई., (घ) 1752 ई.।

2. अर्काट का घेरा कब डाला गया?
   (क) 1748 ई., (ख) 1751 ई., (ग) 1752 ई., (घ) 1755 ई.।
3. पाण्डिचेरी की सन्धि कब हुई?
   (क) 1750 ई., (ख) 1753 ई., (ग) 1755 ई., (घ) 1757 ई.।
4. नासिरजंग की हत्या किस वर्ष में हुई थी?
   (क) 1748 ई., (ख) 1749 ई., (ग) 1750 ई., (घ) 1751 ई.।
5. फ्रान्स की सरकार ने डूप्ले को भारत से कब वापस बुलाया था?
   (क) 1749 ई., (ख) 1750 ई., (ग) 1751 ई., (घ) 1754 ई.।
6. कर्नाटक का तीसरा युद्ध कब प्रारम्भ हुआ?
   (क) 1750 ई. में (ख) 1756 ई. में (ग) 1758 ई. में (घ) 1760 ई. में।

13

बंगाल की नवाबी का अन्त

> "जो कार्य प्लासी के युद्ध द्वारा आरम्भ किया गया था, वह बक्सर के युद्ध द्वारा पूर्ण किया गया। प्लासी ने अंग्रेजों को खड़ा होने के लिए स्थान प्रदान किया, किन्तु बक्सर के युद्ध ने उसको बंगाल का स्वामी बना दिया।"
>
> -डॉ. सरकार और दत्त

अलीवर्दी खाँ (1740-56)- मुगल सम्राट फर्रूखसियर के काल में मुर्शिदकुली खाँ 1713 में बंगाल का नवाब बना। 1727 में उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका दामाद शुजाउद्दीन बंगाल की गद्दी पर आसीन हुआ। 1732 में उसने अलीवर्दी खाँ को बिहार का नायब नाजिम नियुक्त किया। उसने कुशल प्रशासन तथा जमीदारों पर कठोर नियन्त्रण से राज्य की आर्थिक स्थिति को सुधारा और पहले की अपेक्षा अधिक लगान वसूल किया। अपनी तत्परता और कार्यकुशलता की वजह से उसने मुगल सम्राट मुहम्मदशाह (1719-1748) को 20 लाख के स्थान पर 30 लाख रुपये वार्षिक आय के रूप में भेजना आरम्भ किया। उसके इन कार्यों से प्रसन्न होकर मुगल सम्राट ने 1740 में अलीवर्दी खाँ को बंगाल की सूबेदारी का आज्ञा-पत्र प्रदान किया। अलीवर्दी खाँ अप्रैल, 1740 में गिरिया के युद्ध में शुजाउद्दीन के पुत्र सरफराज को हराकर बंगाल का स्वतन्त्र नवाब बन गया।

1740 से 1751 तक अलीवर्दी खाँ को प्रायः प्रतिवर्ष मराठों के आक्रमण का सामना करना पड़ा। विवश होकर 1751 में उसने मराठों से सन्धि कर ली जिसमें उसे 12 लाख रुपये वार्षिक चौथ व उड़ीसा का सूबा मराठों को देना पड़ा। अलीवर्दी खाँ इस बात के लिए बहुत सचेत रहता था कि योरोपीय व्यापारिक कम्पनियों का बंगाल की राजनीति में हस्तक्षेप न हो। उसने अपने शासनकाल में उनको अपने पूर्ण नियन्त्रण में रखा। परन्तु उसने उनके व्यापार में कोई बाधा उत्पन्न नहीं की, क्योंकि उससे राज्य को पर्याप्त धन प्राप्त होता था। स्केप्टन के अनुसार, "वह योरोपियों को मधु-मक्खियों के समान समझता था, जिनसे मधु प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु उनको छेड़ने पर वे डंक भी मार सकती हैं।" अप्रैल, 1756 में अलीवर्दी खाँ की मृत्यु हो गई।

सिराजुद्दौला (1756-57)- अलीवर्दी खाँ की मृत्यु के पश्चात् उसका पौत्र मिर्जा मोहम्मद सिराजुद्दौला 23 वर्ष की अवस्था में बंगाल का नवाब बना। सिराजुद्दौला के विरुद्ध शौकतजंग (जो सिराज की मौसी का लड़का था) ने अपनी नवाबी का दावा किया। उसका समर्थन कुछ प्रभावशाली हिन्दू (राज-बल्लभ आदि) तथा घसीटी बेगम (सिराज की दूसरी मौसी) कर रहे थे। अंग्रेजों ने इस स्थिति का लाभ उठाना चाहा। सिराज ने बड़ी कुशलता से उनका सामना किया और अपने तीनों शत्रुओं घसीटी बेगम, शौकतजंग तथा अंग्रेजों को परास्त कर दिया।

अंग्रेजों से संघर्ष के कारण- सिराजुद्दौला का अंग्रेजों से संघर्ष होने के निम्नलिखित कारण थे :

(1) पैतृक वैषम्य- सिराजुद्दौला के नाना अलीवर्दी खाँ ने उसके समक्ष अंग्रेजों के

विरुद्ध द्वेष की भावना प्रकट कर दिया था। यही नहीं, अपनी मृत्यु के समय उसको निम्न चेतावनी भी दी थी–

"देश के अन्दर यूरोपीय जातियों की शक्ति पर दृष्टि रखना। यदि ईश्वर मेरी उम्र बढ़ा देता तो मैं तुम्हें इस डर से भी स्वतन्त्र कर देता। अब मेरे बेटे, यह कार्य तुम्हें करना होगा। इन तीनों यूरोपियन जातियों को एक साथ निर्बल करने का ख्याल न करना। अंग्रेजों की शक्ति बढ़ गई है..... पहले उन्हें शक्तिहीन करना। जब तुम अंग्रेजों को शक्तिहीन कर लोगे तो शेष दो जातियाँ तुम्हें अधिक कष्ट न देंगी। मेरे बेटे! उन्हें किले बनाने या फौज रखने की अनुमति न देना। यदि तुमने यह भूल की तो देश तुम्हारे हाथ से निकल जायेगा।"

(2) अंग्रेजों और हिन्दू व्यापारियों का गठबन्धन– अंग्रेजों ने हिन्दू व्यापारियों से इस प्रकार का गठबन्धन कर लिया ताकि उनको विशेष व्यापारिक सुविधाएँ प्रदान करेंगे यदि शासन की बागडोर उनके हाथ में आ गई। फलतः एक मुस्लिम साम्राज्य के लिए इस प्रकार का गठबन्धन खतरे से खाली नहीं था।

(3) नवाब के शत्रुओं को शरण प्रदान करना– अंग्रेजों ने सिराजुद्दौला के विरोधियों के नेता राजवल्लभ तथा उसके पुत्र कृष्णवल्लभ को कलकत्ता में शरण दी जबकि उन पर घसीटा बेगम के खजाने को छिपाने का आरोप लगाया गया था। अंग्रेज गुप्त रूप से सिराजुद्दौला के प्रतिद्वन्द्वी शौकतजंग को भी उसके विरुद्ध भड़का रहे थे।

(4) व्यापारिक सुविधाओं का दुरुपयोग– मुगल सम्राट फर्रूखसियर ने अंग्रेजों को 1717 में बिना चुंगी दिये व्यापार करने की सुविधा प्रदान कर दी थी। उन्होंने इस सुविधा का दुरुपयोग करना प्रारम्भ कर दिया था। वे भारतीय व्यापारियों को भी अपने 'दस्तक' देकर बिना चुंगी व्यापार करने के लिए प्रोत्साहित करते थे। इससे राज्य की आय की बहुत हानि होती थी। सिराजुद्दौला ने उनके इस कार्य का विरोध किया।

(5) किलेबन्दी करना– सिराजुद्दौला की अनुमति के बिना ही अंग्रेज और फ्रांसीसी अपने दुर्गों का निर्माण कर रहे थे। जब उसे यह समाचार मिला तो उसको बहुत क्रोध आया। उसने अंग्रेज और फ्रांसीसियों के नुमाइन्दों को दरबार में बुलाकर कहा, "तुम लोग सौदागर हो, तुम्हें किलों की क्या आवश्यकता? जब तुम मेरी संरक्षता में हो तो तुम्हें किसी दुश्मन का डर नहीं हो सकता।" फ्रांसीसियों ने तो उसके आदेश का पालन किया परन्तु अंग्रेजों ने उसके आदेश का पालन नहीं किया और अपना कार्य पूर्ववत् करते रहे। फलस्वरूप अंग्रेजों और सिराजुद्दौला में संघर्ष होना अनिवार्य हो गया।

अंग्रेजों और सिराजुद्दौला के मध्य प्रारम्भिक संघर्ष

सिराजुद्दौला अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ना नहीं चाहता था। लेकिन फोर्ट विलियम के गवर्नर ड्रेक की अवज्ञा के समक्ष अपनी प्रतिष्ठा को बचाने के लिए युद्ध के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय भी न था। विवश होकर उसने 4 जून, 1756 को कासिम बाजार पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेजों ने भयभीत होकर आत्मसमर्पण कर दिया। इसके पश्चात् उसने 16 जून, 1756 को कलकत्ता पर आक्रमण किया। उसकी विशाल सेना देखकर गवर्नर ड्रेक और सेनापति मिंचन फुल्टा द्वीप में शरण लेने भाग गये। हालवैल के नेतृत्व में अंग्रेजों ने नवाब की सेना का सामना किया, किन्तु वे पराजित हुए और कुछ अंग्रेज बन्दी बना लिए गये।

इस पराजय का बदला लेने के लिए अंग्रेजों ने मद्रास से एक शक्तिशाली नौ–सेना और पैदल सैनिक एडमिरल वाट्सन और कर्नल क्लाइव के नेतृत्व में कलकत्ता भेजी। क्लाइव ने 2 जनवरी, 1757 को कलकत्ता पर पुनः अधिकार कर लिया। सिराजुद्दौला ने विवश होकर क्लाइव से 9 फरवरी, 1757 को अलीनगर की सन्धि कर ली। इस सन्धि के अनुसार कम्पनी को बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा में बिना चुंगी दिये व्यापार करने का अधिकार मिल गया और

उसे मुद्रा-निर्माण तथा दुर्गों का जीर्णोद्धार करने का अधिकार दे दिया गया। सिराजुद्दौला ने अंग्रेजों को 3 लाख रुपये क्षति-पूर्ति के लिये दिये। इसके पश्चात् क्लाइव ने 23 मार्च, 1757 को चन्द्रनगर पर अधिकार कर लिया। इस विजय से बंगाल में अंग्रेजों की स्थिति बहुत दृढ़ हो गई।

सिराजुद्दौला के विरुद्ध अंग्रेजों का षड्यन्त्र- क्लाइव इतने से ही सन्तुष्ट होने वाला व्यक्ति नहीं था। वह तो बंगाल में अंग्रेजी साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न देख रहा था। अतः उसने नवाब के दरबार के प्रमुख व्यक्तियों के साथ साजिश और विश्वासघात का जाल बिछाया। इन प्रमुख व्यक्तियों में मीरजाफर (नवाब का सेनापति), मानिकचन्द (कलकत्ता का प्रभारी अधिकारी), अमीचन्द (एक धनी सौदागर), जगत सेठ (बंगाल का सबसे बड़ा बैंकर) और खादिम खाँ (जिसके अधीन नवाब की सेना का बहुत बड़ा भाग था) थे। इस साजिश का नेतृत्व अमीचन्द कर रहा था। उसने क्लाइव से नवाब के खजाने से धन का 5 प्रतिशत और हीरे-जवाहिरात का 25 प्रतिशत कमीशन के रूप में लेना तय किया। क्लाइव अमीचन्द को इतना अधिक धन नहीं देना चाहता था। अतः उसने मीरजाफर से होने वाली सन्धि के दो सन्धि पत्र एक वास्तविक और दूसरा जाली तैयार कराया। सफेद कागज पर लिखा हुआ सन्धि-पत्र वास्तविक तथा लाल कागज पर लिखा हुआ संधि पत्र जाली था। जाली सन्धि पत्र पर अमीचन्द को उक्त धन देने का वादा किया गया था। वास्तविक सन्धि-पत्र पर क्लाइव और वाट्सन दोनों के हस्ताक्षर होने थे। जब जाली सन्धि-पत्र पर वाट्सन ने हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया, तब क्लाइव ने स्वयं उसके जाली हस्ताक्षर बना लिये। सन्धि-पत्र में मीरजाफर ने अंग्रेजों को निम्नलिखित सुविधाएँ देने का वचन दिया :

(1) यदि वह बंगाल का नवाब हो गया तो उन्हें हर प्रकार की व्यापारिक सुविधा दे देगा।

(2) कलकत्ता पर वह उनका पूरा अधिकार मान लेगा।

(3) ढाका और कासिमबाजार में वह उन्हें दुर्ग-निर्माण का अधिकार दे देगा।

(4) वह कम्पनी को 24 परगनों की जमींदारी दे देगा।

(5) वह क्लाइव और उसके अन्य पदाधिकारियों को पर्याप्त धन देगा।

इस सन्धि को देखकर विवश होकर यह कहना पड़ता है कि मीरजाफर और अमीचन्द ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए ऐसा घृणित और निन्दनीय कार्य किया कि वे दोनों सदा देश-द्रोही के नाम से माने जायेंगे और घृणित दृष्टि से देखे जायेंगे।

प्लासी का युद्ध (1757)- साजिश के फलस्वरूप क्लाइव ने सिराजुद्दौला पर फरवरी, 1757 की सन्धि भंग करने का आरोप लगाया और 12 जून को 3,000 सैनिकों के साथ उसकी राजधानी मुर्शिदाबाद की ओर चल पड़ा। 19 जून, 1757 को उसने कटवा-(जो राजधानी का द्वार कहा जाता था) पर अधिकार कर लिया। यह समाचार पाकर नवाब भी 50,000 सैनिकों के साथ अंग्रेजों का सामना करने के लिए मुर्शिदाबाद से 32 किमी दूर प्लासी के मैदान में पहुँच गया। 23 जून, 1757 को दोनों पक्षों में मुकाबला हुआ। सिराजुद्दौला के दो सेनानायक राय दुर्लभ और मीरजाफर अपनी सेनाओं को लिए हुए निष्क्रिय रहे। नवाब के थोड़े से सैनिकों ने ही जिनका नेतृत्व मीरमदन और मोहनलाल कर रहे थे, बहादुरी के साथ जमकर दुश्मन का मुकाबला किया। अन्ततः नवाब को भागने के लिए मजबूर होना पड़ा। किन्तु वह पकड़ लिया गया और मीरजाफर के पुत्र मीरन ने उसकी हत्या कर दी। 29 जून, 1757 को क्लाइव ने मीरजाफर को बंगाल का नवाब बनाया। नवाब ने कम्पनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा में मुक्त व्यापार करने का निर्विवाद अधिकार दे दिया। उसे कलकत्ता के पास 24 परगना की जमींदारी भी मिली। षड्यन्त्र में शामिल अमीचन्द को कुछ नहीं मिला 1759-60

के बीच मीरजाफर ने लगभग 3 करोड़ रुपये रिश्वत में कम्पनी को तथा अधिकारियों को दिये।

युद्ध का महत्व

(1) अंग्रेज इतिहासकारों के अनुसार यह निर्णायक युद्ध था। इसी युद्ध में विजयी होने के फलस्वरूप क्लाइव ब्रिटिश साम्राज्य का संस्थापक कहलाने का अधिकारी बना।
(2) राजनीतिक दृष्टि से इस युद्ध का विशेष महत्व है। इसने अंग्रेजों की प्रतिष्ठा को उच्च शिखर पर पहुँचा दिया। इसके परिणामस्वरूप भारत का सबसे धनी प्रान्त बंगाल उसके प्रभुत्व में आ गया।
(3) शासन की वास्तविक सत्ता नवाब के हाथ में न रहकर अंग्रेजों के हाथ में आ गई।
(4) क्लाइव और उसके पदाधिकारियों को पर्याप्त धन-राशि मिली। क्लाइव को 30,000 पौंड वार्षिक आय की जागीर प्राप्त हुई।
(5) अंग्रेजों को यह भी मालूम हो गया कि भारत में लोग कितने धन-लोलुप और देश-द्रोही हैं।

अल्डफ्रेड लायल के अनुसार, "प्लासी में क्लाइव की सफलता ने बंगाल में युद्ध तथा राजनीति का एक अत्यन्त विस्तृत क्षेत्र अंग्रेजों के लिए खोल दिया।" निःसंदेह अंग्रेज भारतीय साम्राज्य के प्रमुख दावेदार के रूप में उभरे। बंगाल से प्राप्त भारी राजस्व ने उन्हें एक शक्तिशाली सेना संगठित करने में मदद दी। बंगाल के ऊपर नियन्त्रण ने आंग्ल-फ्रांसीसी संघर्ष में एक निर्णायक भूमिका अदा की।

मीरजाफर 1757 से 1760 तक नवाब बना रहा। उसमें शासन करने की क्षमता न थी। अंग्रेज उससे निरन्तर धन वसूल करते रहे, जिससे खजाना खाली हो गया। जैसा कि मैलेसन ने लिखा है, "कम्पनी के अधिकारियों का एक ही उद्देश्य था कि जितना हो सके, उतना हड़प लें। मीरजाफर को सोने की एक बोरी के रूप में इस्तेमाल करें और जब भी इच्छा हो उसमें अपने हाथ डालें।" इधर कम्पनी के एजेण्टों तथा दलालों ने व्यापार में अंधेर मचा रखा था। वे किसानों और शिल्पकारों को अपना माल बाजार भाव से काफी सस्ता बेचने के लिए मजबूर करते थे। इस प्रकार आर्थिक अवस्था शोचनीय हो जाने के कारण बंगाल की शासन व्यवस्था बिगड़ गई। इसका उत्तरदायी नवाब को ठहराया गया। क्लाइव फरवरी, 1760 में इंगलैण्ड वापस चला गया। मई, 1760 में अंग्रेज कम्पनी के कार्यवाहक गवर्नर होलवेल ने यह निश्चय किया, कि मीरजाफर को गद्दी से हटा दिया जाय। अन्त में कलकत्ता की कौंसिल ने मीरजाफर को हटा कर 27 सितम्बर, 1760 को उसके जामाता मीरकासिम को बंगाल का नवाब बनाया।

मीरकासिम और अंग्रेज (1760-64)

बंगाल का नवाब बनते ही मीरकासिम ने अंग्रेजों को बर्दवान, मेदिनीपुर और चटगाँव के तीन जिलों की मालगुजारी तथा 5 लाख रुपये सेना के व्यय के लिए दिये। वह एक कुशल एवं अनुभवी व्यक्ति था। उसने शीघ्र ही बंगाल के प्रशासन पर अपना नियन्त्रण स्थापित करने का प्रयत्न किया। अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए उसने सेना का पुनर्गठन किया और सैनिक प्रशिक्षण के लिए योरोपीय अधिकारी नियुक्त किये। उसने समरू नामक एक जर्मन को अपना सेनापति, नियुक्त किया।

अंग्रेजों से संघर्ष– प्रारम्भ में तो मीरकासिम और अंग्रेजों के सम्बन्ध बहुत अच्छे रहे, क्योंकि उसकी मदद के आधार पर ही उसे बंगाल की नवाबी प्राप्त हुई थी। परन्तु कालान्तर में दोनों में मनमुटाव होना प्रारम्भ हो गया। वह अधिक काल तक अंग्रेजों के हाथ का खिलौना

बनकर कार्य नहीं कर सका। इसलिए कहा जाता है कि मीरजाफर के स्थान पर मीरकासिम का परिवर्तन एक नये संघर्ष की निश्चयता साथ लाया।

संघर्ष के कारण– मीरकासिम और अंग्रेजों के बीच संघर्ष होने के निम्नलिखित कारण थे :

(1) राजधानी परिवर्तन– मीरकासिम की राजधानी मुर्शिदाबाद में अंग्रेजों का प्रभाव बहुत बढ़ गया था। अतः मुर्शिदाबाद के स्थान पर उसने मुंगेर को अपनी राजधानी बनाया और सुदृढ़ किलेबन्दी की।

(2) व्यापार के कारण मतभेद– अंग्रजों को मुगल सम्राट फर्रूखसियर के 1717 के फर्मान द्वारा निःशुल्क व्यापार करने का अधिकार प्राप्त था। किन्तु उन्होंने इसका दुरुपयोग करना प्रारंभ कर दिया था। वे भारतीय व्यापारियों से रिश्वत लेकर इसी सुविधा के आधार पर उन्हें व्यापार करवाते थे। इससे राज्य को अधिक हानि हो रही थी। उसने कलकत्ता की कौंसिल में इसकी अपील की। उसने लिखा, "कलकत्ता से ढाका, कासिम बाजार और पटना तक प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक अंग्रेज अधिकारी, उसके गुमाश्ते तथा एजेंट मेरे कर्मचारियों के स्थान पर स्वयं जमींदार, ताल्लुकेदार और लगान वसूल करने वालों का कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक जिले, नगर और गाँव में गुमाश्ते और अन्य कर्मचारी चावल, धान, मछली, तेल, बाँस, पान आदि का व्यापार करते हैं और कम्पनी की दस्तक (निःशुल्क व्यापार करने की अनुमति-पत्र) लिये हुए प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको कम्पनी से कम नहीं समझता है।" कौंसिल के सदस्यों ने अपने निजी लाभ और स्वार्थ पूर्ति के लिए इस अपील पर कोई ध्यान नहीं दिया। इस पर मीरकासिम ने विवश होकर समस्त आन्तरिक व्यापार को चुंगी से मुक्त कर दिया। अंग्रेज कर्मचारियों ने इस आज्ञा को अपने विशेषाधिकारों पर आघात समझा। फलस्वरूप अंग्रेज कम्पनी ने मीरकासिम के विरुद्ध सैनिक अभियान आरम्भ कर दिया। अंग्रेजों ने कटवा, मुर्शिदाबाद, जिरिया, सूटी, उदयनाला और मुंगेर पर मीरकासिम को हराया। फलतः उसे बंगाल छोड़कर अवध में शरण लेनी पड़ी।

बक्सर का युद्ध (1764)

मीरकासिम ने मुगल सम्राट शाहआलम और अवध के नवाब शुजाउद्दौला से मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध एक संघ बनाया। तत्पश्चात् तीनों की संयुक्त सेनाओं ने पटना की ओर प्रस्थान किया। ऐसा अनुमान किया जाता है कि तीनों की संयुक्त सेनाओं में 40 हजार से 60 हजार तक सैनिक थे। इस सेना का सामना करने के लिए अंग्रेज भी मेजर मुनरो के नेतृत्व में बक्सर के मैदान में आ गये। इनके पास 7,072 सैनिक तथा 20 तोपें थीं। 22 अक्टूबर, 1764 को दोनों पक्षों में युद्ध हुआ। मीरकासिम वीरतापूर्वक लड़ा, किन्तु परास्त हुआ और युद्ध-स्थल से भाग निकला। उसके लगभग 20 हजार सैनिक मारे गये। अंग्रेजों के 847 सैनिक मरे अथवा घायल हुए। शाहआलम को अंग्रेजों की शरण लेनी पड़ी।

बक्सर के युद्ध का महत्व– बक्सर के युद्ध का राजनीतिक महत्व प्लासी के युद्ध से कहीं अधिक है। प्रथम, इस युद्ध में अंग्रेजों ने उत्तरी भारत के उस समय के सबसे शक्तिशाली नवाब को हरा दिया। दूसरा, इस युद्ध के पश्चात् न केवल बंगाल और बिहार पर अंग्रेजों का आंधिपत्य स्थायी हो गया, बल्कि इससे अंग्रेजों का दिल्ली तक मार्ग खुल गया। तीसरे, मुगल सम्राट जो पहले भी अंग्रेजों की सैनिक सहायता चाहता था, अब और भी अधिक अंग्रेजी सहायता का इच्छुक हो गया। चौथे, बंगाल के नवाब के अधिकार अब बिल्कुल ही समाप्त कर दिये गये। पाँचवें, इस लड़ाई के पश्चात् बंगाल, बिहार, उड़ीसा की दीवानी अंग्रेजों को मिल गई।

इतिहासकारों ने बक्सर के युद्ध को बहुत महत्वपूर्ण बताया है। सर स्टीफन के विचार से, "भारत में ब्रिटिश शक्ति का प्रारम्भ बक्सर के युद्ध से ही होता है।" बूम के अनुसार, "भारत का भाग्य बक्सर के युद्ध पर निर्भर था।" रेम्जेम्योर के कथनानुसार, "बक्सर के युद्ध ने बंगाल पर कम्पनी के शासन को पूर्णरूप से लागू कर दिया।" विसेंट स्मिथ के अनुसार "यह विजय पूर्णरूप से निर्णयात्मक थी और उसने प्लासी के अधूरे कार्य को पूर्ण किया।" डॉ. के.के.दत्त ने लिखा है, "प्लासी के युद्ध की अपेक्षा बक्सर का युद्ध अपने परिणामों में अधिक निर्णयात्मक था।" एक लेखक के अनुसार, "प्लासी के युद्ध में अंग्रेजों की सफलता षड्यन्त्र और कुटिल नीति पर आधारित थी। इसके विपरीत बक्सर के युद्ध में कम्पनी द्वारा विशुद्ध सैनिक शक्ति के आधार पर विजय प्राप्त की गई थी।"

इलाहाबाद की सन्धि (1765)– 10 अप्रैल, 1765 को क्लाइव कलकत्ता का गवर्नर बनकर पुनः भारत आया। उसने इलाहाबाद जाकर मुगल सम्राट शाहआलम और अवध के नवाब शुजाउद्दौला के साथ अलग-अलग सन्धि की। 12 अगस्त, 1765 को शाहआलम ने अंग्रेजों को एक फरमान द्वारा बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी (मालगुजारी वसूल करने का अधिकार) प्रदान की। शाहआलम को कड़ा और इलाहाबाद के जिले दे दिये गये और अंग्रेजी कम्पनी ने बंगाल के नवाब द्वारा सम्राट को 26 लाख रुपये वार्षिक दिने जाने की जमानत ली। समकालीन इतिहासकार गुलाम हुसेन ने लिखा है, "इस सन्धि की शर्तों को तय करने में इतना समय नहीं लगा, जितना एक पशु अथवा गधे को खरीदने में लगता है।" 16 अगस्त, 1765 को शुजाउद्दौला के साथ भी एक सन्धि की गई, जिसके अनुसार शुजा को समस्त राज्य-क्षेत्र लौटा दिया गया। नवाब ने 50 लाख रुपये लड़ाई का हर्जाना तथा कड़ा और इलाहाबाद के जिले शाहआलम के लिए दिये। सन्धि में एक रक्षात्मक व्यवस्था का भी प्रावधान किया गया, जिसके अनुसार अवध के राज्य की सुरक्षा के लिये कम्पनी सैनिक सहायता देगी और जिसका व्यय अवध के नवाब को देना होगा। इस प्रकार मराठों के आक्रमण से सुरक्षा के लिए अवध एक अन्तस्थ राज्य बन गया।

बंगाल में मीरजाफर पुनः नवाब बनाया गया। इसके साथ अंग्रेजों ने एक नई सन्धि की, जिसके अनुसार नवाब को अपने दरबार में एक अंग्रेज रेजीडेंट रखना पड़ा। उसने 30 लाख रुपये युद्ध व्यय और 25 लाख रुपये अंग्रेज सैनिकों को पुरस्कार स्वरूप दिये। 15 फरवरी, 1765 को मीरजाफर की मृत्यु हो गई। कलकत्ता कौंसिल ने उसके सबसे बड़े जीवित पुत्र नज्मुद्दौला को नवाब बनाया और 20 फरवरी, 1765 को उससे एक नई सन्धि की, जिसके अनुसार अंग्रेजों ने बंगाल की सैनिक सुरक्षा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया, जिससे वहाँ अंग्रेजी सेना के अतिरिक्त अन्य कोई सेना न रहे। बंगाल का शासन एक डिप्टी नवाब (मुहम्मद रजाखाँ) के जरिए करना था, जिसकी नियुक्ति कौंसिल के परामर्श से ही होनी थी और उसे उसकी अनुमति के बिना अलग नहीं किया जा सकता था। इस प्रकार रक्षा-व्यवस्था, सेना, वित्तीय तथा बाह्य सम्बन्धों पर अंग्रेजों का नियन्त्रण हो गया। अंग्रेजी कम्पनी अब केवल व्यापारिक कम्पनी ही नहीं रही, बल्कि वह एक प्रकार से बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा के प्रदेशों में शासन करने लगी। प्रो. दत्त ने ठीक ही कहा है, **"फरवरी, 1765 की सन्धि ने कम्पनी को बंगाल का वस्तुतः स्वामी बना दिया था।"**

क्लाइव-भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का संस्थापक

रावर्ट क्लाइव का जन्म, 29 दिसम्बर, 1725 को इंगलैण्ड के एक साधारण परिवार में हुआ था। बचपन से ही वह बहुत अशिष्ट था। अध्ययन में उसकी अभिरुचि न थी। फलतः उसके पिता ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अन्तर्गत उसे एक साधारण क्लर्क बनवा दिया। सामरिक

प्रवृत्ति का होने के कारण वह इस कार्य से असन्तुष्ट था, पर सौभाग्य से उसे कर्नाटक के प्रथम युद्ध में भाग लेने का अवसर मिला। द्वितीय कर्नाटक युद्ध में उसने अपनी सैनिक प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया। कालान्तर में अपने कार्यों से वह भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का संस्थापक सिद्ध हुआ। उसके कार्यों का मूल्यांकन इस प्रकार किया जा सकता है :

(1) अर्काट का घेरा– कर्नाटक के द्वितीय युद्ध में फ्रांसीसियों की विजय से अंग्रेजों की स्थिति बहुत ही गम्भीर हो गई थी। ऐसी गम्भीर स्थिति में उसने अर्काट का घेरा डालकर अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया। उसने फ्रांसीसियों की योजना पर पानी फेर दिया और मुहम्मदअली को कर्नाटक का नवाब बनाया। क्लाइव की इस सफलता से अंग्रेजों का दक्षिण में प्रभाव बढ़ने लगा और फ्रांसीसियों की शक्ति के कुचक्रों से उन्हें छुटकारा मिला।

(2) प्लासी के युद्ध में विजय प्राप्त करना– 1757 में क्लाइव ने प्लासी के युद्ध में विजय प्राप्त कर भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का बीज बो दिया। इस युद्ध में उसने बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को परास्त कर मीरजाफर को बंगाल का नवाब बनाया। क्लाइव ने अंग्रेजों की प्रतिष्ठा को उच्च शिखर पर पहुँचा दिया। इसके परिणामस्वरूप भारत का सबसे धनी प्रान्त बंगाल उनके प्रभुत्व में आ गया।

क्लाइव भारत में ब्रिटिश-साम्राज्य के संस्थापक के रूप में

1. अर्काट का घेरा
2. प्लासी के युद्ध में विजय प्राप्त करना
3. अलीगौहर का आक्रमण
4. डच आक्रमण
5. बाह्य नीति–
   (i) अवध के नवाब शुजाउद्दौला के साथ संधि
   (ii) मुगल सम्राट शाहआलम के साथ सन्धि
6. आन्तरिक – सुधार–
   (1) प्रतिज्ञा-पत्र का आरम्भ
   (2) क्लाइव-कोष की स्थापना
   (3) निजी व्यापार पर नियंत्रण
   (4) कलकत्ता कौंसिल सम्बन्धी सुधार
   (5) सैनिक सुधार

(3) अलीगौहर का आक्रमण– 1757 में मुगल सम्राट आलमगीर द्वितीय के ज्येष्ठ पुत्र अलीगौहर ने अवध के नवाब शुजाउद्दौला की सहायता से बंगाल पर आक्रमण कर दिया किन्तु क्लाइव के सम्मुख उसे सफलता नहीं प्राप्त हुई और वह वापस लौट गया।

(4) डच आक्रमण– 1759 में डचों ने 300 यूरोपियनों तथा 600 मलायन सैनिकों के साथ बंगाल पर आक्रमण कर दिया। क्लाइव भी डचों का सामना करने के लिए तैयार था। 25 नवम्बर, 1759 को अंग्रेजों और डचों में चन्द्रनगर तथा चिन्सुरी के बीच बेदरा के मैदान में युद्ध हुआ जिसमें डच पराजित हुए और उनको युद्ध की भारी क्षति-पूर्ति करनी पड़ी।

(5) बाह्य नीति– बक्सर-युद्ध के पश्चात् जब क्लाइव दूसरी बार बंगाल का गवर्नर बनकर अप्रैल, 1765 में आया तो उसने मुगल सम्राट शाहआलम और अवध के नवाब शुजाउद्दौला से 'इलाहाबाद की सन्धि' की।

मुगल सम्राट से सन्धि– 12 अगस्त, 1765 को क्लाइव ने मुगल सम्राट शाहआलम से संधि की। संधि के अनुसार :

1. शाहआलम ने अंग्रेजों को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्रदान की।
2. शाहआलम को कड़ा और इलाहाबाद के जिले दिये गये।
3. अंग्रेजी कम्पनी ने बंगाल के नवाब द्वारा सम्राट को 26 लाख रुपये वार्षिक दिये जाने की जमानत ली।

अवध के नवाब से सन्धि– 16 अगस्त, 1765 को क्लाइव ने अवध के नवाब शुजाउद्दौला से संधि की। संधि के अनुसार :

1. नवाब अंग्रेजों को 50 लाख रुपया लड़ाई का हर्जाना देगा।
2. नवाब ने कड़ा और इलाहाबाद के जिले मुगल सम्राट शाहआलम को दिये।
3. अवध के राज्य की सुरक्षा के लिए कम्पनी सैनिक सहायता देगी और जिसका व्यय नवाब को देना होगा।

इस प्रकार क्लाइव की कूटनीति से बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा में अंग्रेजों की स्थिति बहुत सुदृढ़ हो गई। उनको इन प्रदेशों के राजस्व से 30 लाख पौण्ड की वार्षिक आय प्राप्त होने लगी।

(6) आन्तरिक सुधार– क्लाइव जब दूसरी बार बंगाल का गवर्नर बनकर भारत आया तो उसे समय बंगाल की दशा शोचनीय थी। क्लाइव के शब्दों में ही, "भारत पहुँचने पर मैंने देखा कि शासन का कहीं नाम तक नहीं रह गया। अत्यधिक धन मिलने के कारण पदाधिकारी लोग वैभव का जीवन बिता रहे हैं और इनके अधीनस्थ कर्मचारी भी इन्हीं का अनुसरण कर रहे हैं। सेना-विभाग में भी ऐसा ही हो रहा है और व्यवस्था तथा अनुशासन का बन्धन शिथिल हो रहा है। घूसखोरी और विलासिता के अधिक बढ़ जाने से कोई राज्य की स्थापना नहीं कर सकता है। कम्पनी के अधिकारी जनता पर अत्याचार करते हैं। मुझे भय है कि इस देश में अंग्रेजों के नाम पर ऐसा धब्बा लग रहा है जो कभी न छूटेगा।" अतः क्लाइव ने आन्तरिक सुधारों की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया। संक्षेप में, उसके सुधारों का वर्णन निम्न प्रकार किया जा सकता है :

(1) प्रतिज्ञा-पत्र का आरम्भ– क्लाइव ने कम्पनी के कर्मचारियों से प्रतिज्ञा-पत्र लिखवाए जिसके अनुसार वे किसी प्रकार की भेंट अथवा उपहार किसी से भी नहीं स्वीकार कर सकते थे।

(2) क्लाइव-कोष की स्थापना– क्लाइव-कोष की स्थापना उस धन से की गई जो बंगाल का पुराना नवाब मीरजाफर क्लाइव के लिए 50 लाख रुपया छोड़ गया था। इस कोष से उन भारतीय सिपाहियों तथा सैनिक पदाधिकारियों को आर्थिक सहायता प्रदान की जाती थी जिनका युद्ध में अंग-भंग हो जाता था और सैनिक काम के लिए अयोग्य हो जाते थे।

(3) निजी व्यापार पर नियंत्रण– कम्पनी के कर्मचारी अपना निजी व्यापार करने लग गये थे जिससे कम्पनी के व्यापार को बहुत बड़ा धक्का पहुँच रहा था। क्लाइव ने कर्मचारियों के निजी व्यापार पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

(4) कलकत्ता कौंसिल सम्बन्धी सुधार– क्लाइव ने कलकत्ता कौंसिल में सुधार के लिए आवश्यक कदम उठाये, क्योंकि उसके पदाधिकारी बड़े घूसखोर हो गये थे। उसने एक विशेष समिति की स्थापना की जिसमें चार सदस्य थे। वह स्वयं उनका अध्यक्ष बना। कौंसिल के कई सदस्यों को निकाल दिया गया। उनके स्थान पर उसने मद्रास के व्यक्तियों को नियुक्त किया, क्योंकि बंगाल के कर्मचारियों में भ्रष्टाचार फैला हुआ था।

(5) सैनिक सुधार– क्लाइव ने सैनिक सुधारों की ओर ध्यान दिया। उसने सिपाहियों को युद्धकाल में मिलने वाला दोहरा भत्ता बंद कर दिया। इससे सेना में असन्तोष फैला और बहुत से सैनिकों ने त्याग-पत्र दे दिया। लेकिन क्लाइव दृढ़ रहा और उसने रिक्त स्थानों पर नई नियुक्तियाँ कर दीं और उनके त्याग-पत्र स्वीकार कर लिये।

क्लाइव ने सेना को तीन भागों में बाँट दिया जिसका एक भाग मुंगेर, दूसरा भाग बाँकीपुर में और तीसरा भाग इलाहाबाद में रखा। प्रत्येक भाग में योरोपीय पैदल सेना, एक बन्दूकची

दस्ता, छः गुल्म सैनिक तथा एक गुल्म अश्वारोहियों का रहता था।

बंगाल का दोहरा शासन-प्रबन्ध

1765 की इलाहाबाद की सन्धि के अनुसार बंगाल में दोहरा शासन प्रबन्ध स्थापित हुआ। बंगाल के नवाब ने कम्पनी को निजामत और मुगल सम्राट शाह आलम ने बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा की दीवानी दे दी थी। किन्तु कम्पनी इस पूरे उत्तरदायित्व को भलीभाँति निर्वाह करने में असमर्थ थी। अतः क्लाइव ने शान्ति और सुव्यवस्था (निजामत का कार्य) का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व बंगाल के नये नवाब नज्मुद्दौला को सौंप दिया और सैन्य-सुरक्षा तथा मालगुजारी की वसूली अपने हाथ में रख ली। इस प्रकार बंगाल में दो शक्तियों का शासन स्थापित हो गया जिसे द्वैध या दोहरा शासन कहते हैं।

कम्पनी को शासन सम्बन्धी कार्यों का ज्ञान नहीं था। इसलिए उसने भारतीय कर्मचारियों के हाथ में मालगुजारी वसूल करने तथा न्याय करने का कार्यभार सौंप दिया। ये कर्मचारी नायब नाजिम कहलाते थे। बंगाल के लिए रजा खाँ को नायब नाजिम नियुक्त किया गया और केन्द्र मुर्शिदाबाद बनाया गया। बिहार का नायब नाजिम सिताबराय को नियुक्त किया गया और उसका केन्द्र पटना रखा गया।

नवाब के हाथ में निजामत का उत्तरदायित्व नाम-मात्र के लिये था, क्योंकि भारत में जो कर्मचारी निजामत का कार्य करते थे उनकी नियुक्ति अंग्रेजों द्वारा ही की जाती थी। इस प्रकार अंग्रेजों ने सैनिक शक्ति अपने ही हाथ में रखी। नवाब नाम-मात्र का शासक रह गया था। उसको 53 लाख रुपया वार्षिक पेंशन दे दी गई। मालगुजारी के धन में से निजामत का व्यय तथा मुगल सम्राट और नवाब की पेंशन काटकर जो धन शेष बचता था वह कम्पनी के कोष में जमा कर दिया जाता था।

द्वैध-शासन से लाभ- द्वैध-शासन से निम्नलिखित लाभ हुए :

(1) कम्पनी का कार्य-भार हल्का हो जाना- कम्पनी ने निजामत का कार्य नवाब को दे दिया और स्वयं दीवानी के कार्य अपने हाथ में रखा। इससे कम्पनी का कार्य-भार हल्का हो गया।

(2) भारतीय कर्मचारियों के सहयोग की प्राप्ति- कम्पनी ने मालगुजारी वसूल करने तथा न्याय-व्यवस्था करने के लिए भारतीय पदाधिकारियों की नियुक्ति की। इसका परिणाम यह हुआ कि उसे भारतीयों का सहयोग प्राप्त हो गया।

(3) आर्थिक स्थिति में सुदृढ़ता- द्वैध शासन व्यवस्था से कम्पनी की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो गई। उसे 1765 से 1772 के बीच बंगाल और बिहार से लगभग 3 करोड़ रुपये मालगुजारी के रूप में प्राप्त हुए।

(4) अंग्रेजी राज्य की स्थापना- द्वैध शासन व्यवस्था से भारत में अंग्रेजी राज्य की नींव पड़ गई। बंगाल का नवाब नाम का ही शासक रह गया और शासन की समस्त बागडोर अंग्रेजों के हाथ में आ गई।

द्वैध-शासन से लाभ

1. कम्पनी का कार्य-भार हल्का हो जाना
2. भारतीय कर्मचारियों के सहयोग की प्राप्ति
3. आर्थिक स्थिति में सुदृढ़ता
4. अंग्रेजी राज्य की स्थापना

द्वैध-शासन के दोष- शासन के निम्नलिखित दुष्परिणाम हुए :

(1) केन्द्रीय सत्ता का अभाव- द्वैध-शासन व्यवस्था ने बंगाल में दो शक्तियों का प्रभुत्व स्थापित कर दिया। लेकिन सुदृढ़ केन्द्रीय सत्ता का अभाव रहा। कम्पनी के कर्मचारी नवाब के आदेशों एवं कानूनों की तनिक भी परवाह नहीं करते थे। ऐसी स्थिति में नवाब की

निजामत (पुलिस और न्याय-व्यवस्था) बिल्कुल शिथिल हो गई और चारों ओर अराजकता फैल गई।

द्वैध-शासन के दोष

1. केन्द्रीय सत्ता का अभाव
2. किसानों का आर्थिक शोषण
3. कम्पनी की शोषण-नीति
4. भारतीय उद्योग-धन्धों का विनाश
5. स्वयं कम्पनी के लिए अहितकारी

(2) किसानों का आर्थिक-शोषण– मालगुलारी वसूल करने में बहुत अधिक निर्दयता से कार्य लिया जाता था। जमींदारी नीलामी द्वारा खरीदी जाती थी। जो सबसे अधिक नीलामी बोल देता था वही उसका अधिकारी बन जाता था। इन जमींदारों को अधिक मालगुजारी अदा करनी पड़ती थी। अतः वह किसानों से मनमाना लगान वसूल करते थे। फलतः किसानों की आर्थिक स्थिति बड़ी शोचनीय हो गई। कम्पनी के एक अधिकारी रिचर्ड बीचर ने 25 मई, 1766 को डायरेक्टरों की गुप्त समिति को जो पत्र लिखा था उससे अव्यवस्था का स्पष्टीकरण हो जाता है। उसने लिखा था :

"जिस अंग्रेज के पास विवेक होगा वह यह सोचकर अवश्य दुखी होगा कि कम्पनी को दीवानी मिलने के समय से इस देश के लोगों की दशा पहले से अधिक शोचनीय हो गई है। यह सुन्दर देश जो अत्यन्त निरंकुश और स्वेच्छाचारी शासक के अन्तर्गत भी समृद्ध तथा खुशहाल था, अपने विनाश की ओर बढ़ता जा रहा है।"

(3) कम्पनी की शोषण नीति– कम्पनी को प्रत्येक समय धन की आवश्यकता रहती थी। अतः वह कठोरतापूर्वक प्रजा से धन वसूल करती थी। इसके अतिरिक्त धन की आवश्यकता की पूर्ति के लिये मालगुजारी बड़ी कठोरता तथा नृशंसता से वसूल की जाती थी। इस प्रकार कम्पनी की शोषण-नीति के कारण बंगाल की जनता की दशा बड़ी दयनीय हो गई थी। गवर्नर बर्ल्सट ने ठीक ही लिखा है, "कम्पनी के नौकर बर्बरता के ऐसे कांड, जिनकी समता किसी भी देश के इतिहास में नहीं मिल सकती, करने के पश्चात् धन-राशि से लदे हुए जहाज लेकर इंग्लैण्ड लौटे हैं।"

(4) भारतीय उद्योग-धन्धों का विनाश– बंगाल में कम्पनी का प्रभुत्व स्थापित हो जाने के कारण वहाँ के व्यापार पर भी उसका एकाधिकार स्थापित हो गया। फलतः भारतीय कारीगरों को अंग्रेज़ों के हाथ माल बेचने को बाध्य किया जाता था। कम्पनी के अधिकारी ही देशी कारीगरों द्वारा बनायी हुई वस्तुओं का मूल्य निर्धारित करते थे। इस प्रकार पतित व्यापारिक नीति को अपनाकर भारतीय उद्योग-धन्धों को नष्ट कर दिया।

(5) स्वयं कम्पनी के लिए अहितकारी– बंगाल का द्वैध-शासन कम्पनी के लिये अहितकर सिद्ध हुआ। इससे कंम्पनी के कर्मचारियों के अत्याचारों में बड़ी वृद्धि हुई और भारतीय जनता को अनेक प्रकार के कष्ट सहने पड़े। गवर्नर बर्ल्सट के शब्दों में, "बंगाल की शासनकारिणी के रूप में तथा देश के सम्पूर्ण व्यापार की एकाधिकारिणी के रूप में कम्पनी के विभिन्न हित प्रत्यक्ष रूप से विरोधी दिशाओं में कार्य कर रहे हैं और वे एक दूसरे के लिए घातक सिद्ध हो रहे हैं। अतः किसी अन्य नवीन व्य .स्था के बिना दशा अवश्य ही बिगड़ती जायेगी। यदि कम्पनी को अपनी वर्तमान प्रणाली के अनुसार कार्य करने दिया गया तो वह अपना विनाश स्वयं कर बैठेगी।"

द्वैध-शासन का अन्त– द्वैध शासन के दुष्परिणामों को देखकर कम्पनी के संचालकों ने गहरी चिन्ता प्रकट की और 1772 में वारेन हेस्टिंग्ज को बंगाल का गवर्नर बनाकर भारत भेजा। वारेन हेस्टिंग्ज ने द्वैध-शासन का अन्त कर दिया।

क्लाइव का मूल्यांकन– 1767 में क्लाइव रोगग्रस्त होकर इंग्लैण्ड वापस चला गया। वहाँ पर उसके विरोधियों ने उस पर रिश्वत तथा भ्रष्टाचार के अनेक आरोप लगाकर मुकदमा चलाया। लेकिन वहाँ की पार्लियामेन्ट ने उसे निर्दोष घोषित कर दिया। अपने नाम पर लगने वाले कलंक से दुखी होकर 53 वर्ष की आयु में उसने 2 नवम्बर, 1774 को आत्म-हत्या कर ली। पी.ई. रार्बट्स के अनुसार, "भारत में अंग्रेजी राज्य के संस्थापक का अन्त इस तरह शारीरिक कष्ट और कुल कलंकित कीर्ति की दशा में ही हुआ।"

क्लाइव का इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। ईस्ट इंडिया कम्पनी जो एक व्यापारिक संस्था मात्र थी, उसे क्लाइव ने राजनीतिक संस्था में परिवर्तित करके ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना का सूत्रपात किया। अंग्रेजों ने उसके कार्यों की बड़ी प्रशंसा की है। लार्ड कर्जन ने लिखा है, "क्लाइव अंग्रेज जाति में महान् आत्मा का व्यक्ति था। वह उन व्यक्तियों में से था जो मानव के भाग्य-निर्माण के लिए इस विश्व में अवतरित होते हैं।" अल्फ्रेड लायल ने लिखा है, "अंग्रेज लोग भारत में ब्रिटिश राज्य की स्थापना के लिए इस (क्लाइव) साहसी और अजेय व्यक्ति के ऋणी हैं।" वर्क के अनुसार, "उसने भारत में बिटिश राज्य की गहरी नींव डाली। उसने स्वयं कठिनाइयाँ झेलकर आने वाले शासकों के लिए स्पष्ट मार्ग का निर्माण किया, जिस पर चलकर प्रतिभा वाले उत्तराधिकारी भी अपनी मंजिल पर पहुँच सकें।" विसेंट स्मिथ ने लिखा है, "क्लाइव ने जिस योग्यता और दृढ़ता का परिचय भारत के ब्रिटिश राज्य की नींव डालने में दिया उसके लिए वह ब्रिटिश जनता के मध्य सदैव के लिए याद किया जायेगा।" लार्ड मैकाले ने क्लाइव के सम्बन्ध में लिखा है, "हमारे द्वीप ने शायद ही कभी युद्ध-भूमि और विचार-भवन दोनों ही स्थानों पर वस्तुतः उससे अधिक महान व्यक्ति को जन्म दिया हो।"

क्लाइव की चारित्रिक विशेषताएँ भारतीय रंगमंच पर किये गये उसके अभिनय के लिए बिल्कुल उपयुक्त थीं। उसके चरित्र का रहस्य उसके दृढ़ निश्चय और ध्रुवसंकल्प में निहित था। वह तुरन्त घटना-स्थिति को भाँप लेता था, अपने लक्ष्य से भलीभाँति परिचित रहता था और फिर दृढ़तापूर्वक उस लक्ष्य की प्राप्ति में संलग्न हो जाता था।

परन्तु इन गुणों के साथ-ही साथ क्लाइव में अनेक दुर्बलताएँ थीं। उसमें धन-लोलुपता और कपट आदि के दुर्गुण विद्यमान थे। कुछ विद्वानों के विचार से क्लाइव में उच्चकोटि की सैनिक प्रतिभा का भी अभाव था। उसने प्लासी के युद्ध-संचालन में सैनिक प्रतिभा का कोई कुशल प्रमाण नहीं दिया था। प्लासी की विजय उसकी सैनिक प्रतिभा का परिणाम न थी। इसी प्रकार क्लाइव को एक योग्य शासक भी नहीं स्वीकार किया जा सकता है। ए.एम.पाणिकर के अनुसार, "1765 से 1772 तक कम्पनी द्वारा स्थापित बंगाल का राज्य एक डाकू राज्य था।"

क्लाइव द्वारा स्थापित दोहरे प्रशासन का सही मूल्यांकन करते हुए डॉ. नन्दलाल चटर्जी लिखते हैं, "अति भ्रष्ट व्यवस्था को सुधारने के अच्छे इरादे से कार्य आरम्भ करके क्लाइव ने अन्ततः खराब स्थिति को और अधिक बिगाड़ दिया। जिस व्यवस्था की उसने स्थापना की और जिस नीति का उसने अनुमोदन किया वह अदूरदर्शी अवसरवादिता से प्रभावित थी। इससे पता चलता है कि क्लाइव एक सफल कूटनीतिज्ञ नहीं था।"

बल्सर्ट (1767-69)– क्लाइव के इंग्लैण्ड वापस चले जाने के पश्चात् बल्सर्ट 1767 में बंगाल का गवर्नर नियुक्त हुआ। उसके शासन-काल की सबसे महत्वपूर्ण घटना हैदरअली का विकास तथा प्रथम मैसूर युद्ध था।

हैदरअली (1761-1782)

तालीकोट के युद्ध (1565) के पश्चात् विजयनगर राज्य छिन्न-भिन्न हो गया था।

परिणामस्वरूप मैसूर में वादियार राजतन्त्र की स्थापना हुई, जो विजयनगर राज्य का ही भाग था। इस वंश के राजा 18वीं शताब्दी के मध्य तक नाममात्र के राजा रहे थे। शासन की वास्तविक शक्ति मंत्रियों के हाथ में थी।

हैदरअली का विकास– हैदरअली का जन्म मैसूर के कोलार जिले में 1722 में हुआ था। उसका पिता फतेह मोहम्मद मैसूर के राजा के यहाँ सेना में एक उच्च पद पर नियुक्त था। हैदर की योग्यता से प्रभावित होकर मैसूर के प्रधानमंत्री नेजराज ने उसे 1755 में डिडीगल के फौजदार का पद प्रदान किया। परन्तु हैदर बड़ा महत्वाकांक्षी था। कुछ समय के बाद उसने मैसूर की राजधानी श्रीरंगपट्टम पर आक्रमण करके प्रधानमंत्री नेजराज को बन्दी बना लिया और स्वयं राजा के संरक्षक के रूप में शासन-करना आरम्भ कर दिया। 1761 में वह राजा के स्थान पर स्वयं मैसूर का शासक बन गया।

अंग्रेजों से संघर्ष– हैदरअली ने अपने साम्राज्य की सीमा को बढ़ाना आरम्भ किया। 1763 में उसने बेनदूर, साबनूर तथा धारवाड़ पर अधिकार कर लिया। हैदरअली की शक्ति से भयभीत होकर अंग्रेज उसके विरुद्ध षड्यंत्र रचने लगे। उन्होंने 1766 में निजाम और मराठों को मिलाकर एक संयुक्त मोर्चा बनाया। परन्तु हैदरअली ने बड़ी बुद्धिमानी से निजाम और मराठों को अपनी ओर मिलाकर मोर्चे को छिन्न-भिन्न कर दिया। अब उसे केवल अंग्रेजों से लोहा लेना था।

प्रथम मैसूर युद्ध (1767-1769)– 1767 में हैदर ने कन्नड़ तट पर आये एक अंग्रेजी बेड़े को नष्ट कर दिया। फलतः अंग्रेजों और हैदर के बीच युद्ध आरम्भ हो गया। इस युद्ध में पहले तो अंग्रेजों को चंगामा और त्रिनोमली नामक दो स्थानों में सफलता मिली, परन्तु बाद में हैदर ने अंग्रेजों को चारों ओर से घेरना आरम्भ किया। उसने अंग्रेजों को हराकर मंगलौर पर अधिकार कर लिया। इसके बाद उसने तीन ओर से मद्रास पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में अंग्रेजों की बड़ी हानि हुई। अन्त में 4 अप्रैल, 1769 को अंग्रेजों ने हैदर से सन्धि कर ली। सन्धि के अनुसार दोनों पक्षों ने एक दूसरे से जीते हुए भू-भाग को वापस कर दिया और एक दूसरे को परस्पर सहायता देने का वायदा किया।

कार्टियर (1769-72)– बल्सर्ट के पश्चात् कर्टियर बंगाल का गवर्नर हुआ। उसके शासन-काल में 1770 में बंगाल में भीषण अकाल पड़ा तथा महामारी फैल गई जिससे इस प्रदेश की एक-तिहाई जनता मौत की शिकार हुई। इस अकाल की भीषणता के सम्बन्ध में कम्पनी के एक अधिकारी ने लिखा है, 'कई स्थानों पर जीवित प्राणी मृतक प्राणियों को खाकर जीवित रहे।' 1772 में कार्टियर का कार्य-काल समाप्त हो गया और उनके स्थान पर वारेन हेस्टिंग्ज गवर्नर होकर भारत आया।

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ (Important Dates & Events)

1. 1722 ई. – हैदरअली का जन्म।
2. 1740 ई. – अलीवर्दी खाँ का बंगाल पर अधिकार।
3. 1756 ई. – अलीवर्दी खाँ की मृत्यु तथा सिराजुद्दौला का सिंहासनारोहण।
4. 1757 ई. – प्लासी का युद्ध तथा मीरजाफर का बंगाल का नवाब बनना।
5. 1764 ई. – बक्सर का युद्ध।
6. 1765 ई. – इलाहाबाद की संधि।
7. 1767 ई. – क्लाइव का इंगलैण्ड वापस जाना तथा मैंसूर का प्रथम युद्ध।
8. 1774 ई. – क्लाइव द्वारा आत्महत्या।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. क्या क्लाइव को भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का संस्थापक कहना उचित होगा? (1966,68)
2. क्लाइव ने बंगाल में अंग्रेजी शासन की स्थापना किस प्रकार की? (1974,85)
3. बंगाल में अंग्रेजों के शासन की स्थापना में क्लाइव के योगदान का मूल्यांकन कीजिए। (1980)
4. नवाब सिराजुद्दौला और इंग्लिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बीच झगड़े के क्या कारण थे? इसके क्या परिणाम हुए? (1984)
5. प्लासी के युद्ध के कारण एवं परिणामों का विवेचन कीजिए। (1990)
6. आधुनिक भारतीय इतिहास में बक्सर के युद्ध के महत्व पर प्रकाश डालिए। (उत्तरां. 2006)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "प्लासी का युद्ध एक निर्णायक युद्ध था।" इस कथन के आलोक में प्लासी के युद्ध व परिणामों का उल्लेख कीजिए।
2. "बक्सर के युद्ध ने प्लासी के अपूर्ण कार्य को पूर्ण किया।" इस कथन की विवेचना कीजिए। (1962, 82)
3. "मीरजाफर के स्थान पर मीरकासिम का परिवर्तन एक नये संघर्ष की निश्चयता साथ लाया।" इस कथन के प्रकाश में मीरकासिम और अंग्रेजों के मध्य संघर्ष के कारण तथा उसके परिणामों का उल्लेख कीजिए।
4. "प्लासी का युद्ध एक महान युद्ध नहीं, महान विश्वासघात था।" (1962,82)
5. "लार्ड क्लाइव ने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की आधारशिला रखी।" इस कथन की समीक्षा कीजिए। (1987,98)
6. "प्लासी के युद्ध में अंग्रेजों की सफलता षड्यंत्र और कुटिल नीति पर आधारित थी। इसके विपरीत बक्सर के रणक्षेत्र में कम्पनी द्वारा विशुद्ध सैनिक नीति के आधार पर विजय प्राप्त की गई थी।" इस कथन के आधार पर दोनों युद्धों को आलोचनात्मक दृष्टि से वर्णन कीजिए। (1991)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. सिराजुद्दौला और अंग्रेजों के मध्य संघर्ष के कारण क्या थे?
2. बक्सर युद्ध के क्या परिणाम हुए? इस युद्ध के महत्व पर प्रकाश डालिए।
3. भारत में अंग्रेजी राज्य स्थापित करने में क्लाइव कहाँ तक सफल रहा?
4. द्वैध शासन से आप क्या समझते हैं? इससे कंम्पनी को क्या लाभ हुए?
5. इलाहाबाद संधि की प्रमुख धाराओं का उल्लेख कीजिए।
6. प्लासी के युद्ध के विषय में आप क्या जानते हैं?
7. बक्सर का युद्ध किनके बीच हुआ और इस युद्ध का भारतीय इतिहास में क्या महत्व है?

8. लॉर्ड क्लाइव की प्रमुख उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।
9. लार्ड क्लाइव की प्रमुख दो सैन्य उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. प्लासी का युद्ध किसके बीच हुआ था?
   सिराजुद्दौला और अंग्रेजों (क्लाइव) के बीच हुआ था।
2. प्लासी के युद्ध का कोई एक परिणाम लिखिए।
   बंगाल के शासन की वास्तविक सत्ता नवाब के हाथ में न रहकर अंग्रेजों के हाथ में आ गई।
3. बक्कर के युद्ध का एक महत्वपूर्ण परिणाम बताइए।
   अंग्रेजों के हाथ में व्यापारिक शक्ति के अतिरिक्त राजनीतिक शक्ति भी आ गयी।
4. भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का संस्थापक कौन था?
   राबर्ट क्लाइव को भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का संस्थापक माना जाता है।
5. बंगाल के दो नवाबों के नाम लिखिए।
   (1) सिराजुद्दौला, तथा (2) मीरजाफर।
6. इलाहाबाद संधि की कोई एक शर्त बताइए।
   मुगल सम्राट शाहआलम ने बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा की दीवानी अंग्रेजों को देना स्वीकार किया।
7. बंगाल का अंतिम स्वतंत्र शासक कौन था?
   बंगाल का अंतिम स्वतंत्र शासक सिराजुद्दौला था।
8. बक्सर का युद्ध कब और किनके बीच हुआ?
   22 अक्टूबर, 1764 को मीरकासिम और अंग्रेजों के बीच हुआ।
9. अलीवर्दी खाँ कौन था? उसकी मृत्यु कब हुई?
   अलीवर्दी खाँ बंगाल का नवाब था। उसकी मृत्यु 1756 ई. में हुई।
10. क्लाइव दूसरी बार गवर्नर बनकर कब भारत आया?
    क्लाइव दूसरी बार गवर्नर बनकर 1765 ई. में भारत आया।
11. बक्सर के युद्ध में मीरकासिम के दो सहयोगी राजा कौन थे?
    बक्सर के युद्ध में मीरकासिम के दो सहयोगी राजा- (1) मुगल सम्राट शाह आलम, तथा (2) अवध का नवाब शुजाउद्दौला थे।

बहु-विकल्पीय प्रश्न

निर्देश : नीचे दिये गये प्रत्येक प्रश्न के चार विकल्पों में से सही विकल्प छाँटकर लिखिए :

1. प्लासी का युद्ध कब हुआ था?
   (क) 1755 ई. में, (ख) 1757 ई. में, (ग) 1760 ई. में, (घ) 1765 ई. में।
2. बक्सर का युद्ध कब हुआ था?
   (क) 1763 ई. में, (ख) 1757 ई. में, (ग) 1772 ई. में, (घ) 1764 ई. में।
3. इलाहाबाद की सन्धि कब हुई थी?
   (क) 1760 ई. में, (ख) 1765 ई. में, (ग) 1768 ई. में, (घ) 1770 ई. में।

4. प्लासी के युद्ध का क्या परिणाम हुआ?
   (क) अंग्रेज भारत के स्वामी हो गये,
   (ख) अब उन्हें कोई संघर्ष नहीं करना था,
   (ग) भारत में विजय द्वार अंग्रेजों के लिए खुल गया,
   (घ) इनमें से कोई नहीं।
5. द्वैध-शासन की स्थापना किसने की थी?
   (क) वारेन हेस्टिंग्ज, (ख) वेलेजली, (ग) क्लाइव, (घ) कार्नवालिस।
6. हैदरअली का जन्म कब हुआ था?
   (क) 1720 ई., (ख) 1722 ई., (ग) 1732 ई., (घ) 1740 ई.।
7. सिराजुद्दौला गद्दी पर कब बैठा?
   (क) 1740 ई., (ख) 1745 ई., (ग) 1756 ई., (घ) 1764 ई.।
8. मैसूर का प्रथम युद्ध कब लड़ा गया था?
   (क) 1765 ई., (ख) 1767 ई., (ग) 1769 ई., (घ) 1770 ई.।
9. क्लाइव ने आत्महत्या कब की?
   (क) 1768 ई., (ख) 1771 ई., (ग) 1772 ई., (घ) 1774 ई.।
10. लार्ड क्लाइव दूसरी बार भारत कब आया?
   (क) 1757 ई., (ख) 1760 ई., (ग) 1765 ई., (घ) 1767 ई.।

■

14

वारेन हेस्टिंग्ज

[1772-85]

"जब तक सत्य अवशेष है, जब तक संस्थाएँ कायम हैं, जब तक दो और दो चार होते हैं, जब तक गणित और अंकगणित की प्रतिक्रियाएँ मौजूद हैं, तब तक आने वाली आश्चर्यान्वित पीढ़ी को हेस्टिंग्ज और उसके कोप, लूटपाट और प्रपीड़न का सुस्पष्ट बोध रहेगा।" -एडमण्ड वर्क

वारेन हेस्टिंग्ज

वारेन हेस्टिंग्ज के सम्मुख मुख्य कठिनाइयाँ– वारेन हेस्टिंग्ज 1772 में कार्टियर के पश्चात् बंगाल का गवर्नर नियुक्त किया गया। इसका कारण यह था कि उसको भारतीय परिस्थितियों का अच्छा ज्ञान था। जिस समय वह बंगाल का गवर्नर नियुक्त हुआ उसके सम्मुख मुख्य कठिनाइयाँ निम्नलिखित थीं :

(1) बंगाल में अराजकता– बंगाल के चारों ओर अराजकता का राज्य था। शान्ति और सुव्यवस्था की कोई चिन्ता न तो नवाब को थी और न कम्पनी को ही। दुर्भिक्ष ने तो प्रजा की कमर तोड़ दी थी। 14 मई, 1767 को रिचर्ड बीचर ने कम्पनी के डाइरेक्टरों की गुप्त समिति को एक पत्र में बंगाल की दशा के सम्बन्ध में लिखा, "जिस अंग्रेज के पास विवेक है उसे यह सोचकर अत्यन्त शोक होगा कि जिस समय से कम्पनी को दीवानी वसूल करने का अधिकार प्राप्त हुआ है, उस समय से इस देश के लोगों की दशा पहले से कहीं अधिक शोचनीय हो गई है। यह देश जो अत्यन्त निरकुंश एवं स्वेच्छाचारी शासक के नियंत्रण में भी समृद्ध तथा धनी रहा था, अब विनाश की ओर तेजी से बढ़ता जा रहा है।"

(2) द्वैध-शासन– द्वैध शासन के कारण बंगाल की जनता की स्थिति बड़ी शोचनीय हो गई थी। द्वैध-शासन के अनेक राजनीतिक तथा आर्थिक परिणाम जनता के लिये हानिकारक सिद्ध हुए जिससे जनता-अंग्रेजों को घृणा की दृष्टि से देखती थी। इस समय की स्थिति को सँभालना नितान्त आवश्यक था अन्यथा अन्य योरोपीय जातियों की तरह अंग्रेजों को भी भारत से अपना बोरिया-बिस्तर सँभालना पड़ता।

(3) विरोधियों द्वारा उत्पन्न की गईं समस्याएँ– इस समय मराठों ने अपनी शक्ति को पुनः संचित कर लिया था और उन्होंने उत्तर तथा दक्षिणी भारत में अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। शाहआलम मराठों के संरक्षण में चला गया था। मैसूर का राजा हैदर अंग्रेजों के विश्वासघात के कारण उनका कट्टर शत्रु था। निजाम भी अंग्रेजों को संदेह की दृष्टि से देख रहा था।

वारेन हेस्टिंग्ज के सुधार

अपनी परिस्थितियों तथा समस्याओं को भली-भाँति समझने के उपरान्त हेस्टिंग्ज ने शसन-सम्बन्धी सुधारों की योजना बनाई और उसको कार्य रूप में परिणित किया। उसके सुधारों को हम निम्न पाँच वर्गों में विभक्त कर सकते हैं :

1. द्वैध-शासन का अन्त अथवा प्रशासकीय सुधार– इस सम्बन्ध में उसने

निम्नलिखित प्रशासकीय परिवर्तन किये :

(1) उसने बंगाल में द्वैध-शासन का अन्त कर दिया तथा मुहम्मद रजा खाँ और सिताबराय को नायब नाजिम पदों से हटा दिया और उन पर गबन का अभियोग लगाकर मुकदमा चलाया। किन्तु बाद में वे दोनों छूट गये।

(2) उसने दीवानी का कार्य कंपनी को सुपुर्द कर दिया। इस प्रकार कम्पनी दीवानी के रूप में कार्य करने लगी।

(3) प्रत्येक जिले में मालगुजारी वसूल करने के लिये अंग्रेज कलेक्टर नियुक्त किए।

(4) नवाब को शासन-भार से मुक्त कर दिया और उसकी पेंशन भी 32 लाख से घटाकर 16 लाख कर दी।

वारेन हेस्टिंग्ज के सुधार

1. द्वैध-शासन का अन्त अथवा प्रशासकीय सुधार
2. व्यापारिक सुधार
3. मालगुजारी सम्बन्धी सुधार
4. न्याय-सम्बन्धी सुधार
5. अन्य सुधार

(5) मुर्शिदाबाद से राजकोष हटाकर कलकत्ता में स्थापित कर दिया।

(6) बंगाल के अल्पवयस्क नवाब की संरक्षिका मीरजाफर की विधवा मुन्नी बेगम को नियुक्त कर दिया और नन्दकुमार के पुत्र गुरुदास को उसका प्रबन्धक बना दिया।

(7) उसने कुछ अनावश्यक वैतनिक पदों को समाप्त कर दिया।

2. व्यापारिक सुधार– उसने निम्नलिखित व्यापारिक सुधार किये :

(1) चुंगी में कमी– उसने नमक, पान, तम्बाकू और सुपारी के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं पर सभी भारतीयों और अंग्रेज व्यापारियों के लिए ढाई प्रतिशत चुंगी निश्चित कर दी।

(2) चौकियों का अन्त– जमींदारों ने अनेक स्थानों पर चौकियों की स्थापना कर रखी थी जो व्यापारिक माल के आने-जाने में अनेक रुकावटें डालती थीं। हेस्टिंग्ज ने उन्हें तोड़कर केवल पाँच स्थानों–कलकत्ता, हुगली, मुर्शिदाबाद, ढाका तथा पटना में चुंगी घर खोल दिये जिससे व्यापार के क्षेत्र में रुकावटें दूर हो गईं।

(3) बैंक की स्थापना– व्यापारियों को आर्थिक सुविधाएँ देने के लिए कलकत्ता में एक बैंक की स्थापना की।

(4) दस्तक प्रथा का अन्त– हेस्टिंग्ज ने दस्तक प्रथा का अन्त कर दिया। इससे चुंगी की आय सीधे कम्पनी को प्राप्त होने लगी। इस प्रथा की समाप्ति पर सर्व-साधारण को भी व्यापार करने का अधिकार मिल गया।

(5) नमक और अफीम के व्यापार पर नियन्त्रण– नमक और अफीम के व्यापार पर सरकारी नियन्त्रण लगा दिया और इनका व्यापार ठेके पर उठाया गया।

(6) व्यक्तिगत व्यापार का अन्त– कम्पनी के कर्मचारी अपना व्यक्तिगत व्यापार भी करते थे। हेस्टिंग्ज ने उस पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया।

(7) दादनी का अन्त– हेस्टिंग्ज ने दादनी प्रथा का अन्त कर दिया। इसके अनुसार पहले कम्पनी के कर्मचारी भारतीय कारीगरों को दादनी देकर उनका माल सस्ते दामों में बलपूर्वक खरीद लेते थे। इसका प्रभाव भारतीय उद्योग-धन्धों पर बहुत बुरा पड़ रहा था और वे पतनावस्था की ओर जा रहे थे।

(8) टकसाल की व्यवस्था– हेस्टिंग्ज ने कलकत्ता में एक सरकारी टकसाल की स्थापना की जिसमें एक निश्चित मूल्य और आकार की मुद्राएँ ढालने की व्यवस्था की गई।

(9) व्यापारिक सन्धियाँ– व्यापार की वृद्धि के लिए उसने भूटान, तिब्बत तथा मिस्र

से व्यापारिक सन्धियाँ कीं जिनके परिणामस्वरूप व्यापार को बड़ा प्रोत्साहन मिला।

3. मालगुजारी सम्बन्धी सुधार– जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है कि मालगुजारी व्यवस्था बड़ी दोषपूर्ण थी और किसानों का बुरी तरह शोषण हो रहा था। फलतः हेस्टिंग्ज ने इस सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रमुख सुधार किये :

(1) भूमि का पंचवर्षीय प्रबन्ध– उसने एक कमेटी द्वारा पिछले वर्षों में प्राप्त लगान के आधार पर खेतों के लगान को निश्चित करवाकर पंचवर्षीय ठेकेदारी की प्रथा प्रचलित की। लेकिन इस पंचवर्षीय व्यवस्था के बड़े भयानक दुष्परिणाम निकले। जमींदारों ने इस निश्चित काल में अत्यधिक धन किसानों से वसूल किया और उनका खूब शोषण किया।

(2) राजस्व-समिति की नियुक्ति– 1773 में कलेक्टर का पद समाप्त करके लगान वसूली के लिए एक राजस्व समिति की स्थापना की जिसमें कम्पनी के 3 सदस्य और कौंसिल के 2 सदस्य थे। राजस्व समिति की सहायता के लिये रायरायन के पद पर एक भारतीय अधिकारी नियुक्त किया गया। तीनों प्रान्तों को राजस्व की दृष्टि से छः भागों में विभक्त कर दिया गया और प्रत्येक के लिये एक प्रांतीय समिति बनाई गई और जिलों का कार्य भारतीय दीवान को सौंप दिया गया। किन्तु यह व्यवस्था ठीक सिद्ध नहीं हुई और 1781 में इस व्यवस्था में पुनः परिवर्तन किया गया जिसके अनुसार कलकत्ता को राजधानी बना दिया गया और एक नयी राजस्व समिति बनाई गई। प्रान्तीय समितियाँ समाप्त कर दी गईं और जिले में एक अंग्रेज कलेक्टर की नियुक्ति की गई जो जिले में राजस्व विभाग के अध्यक्ष के रूप में काम करता था। उसकी सहायता के लिये एक भारतीय दीवान होता था। कई जिलों के लिये के एक कमिश्नर की नियुक्ति की गई।

(3) नवाब की पेंशन में कमी– आर्थिक व्यवस्था को उन्नत करने के लिए हेस्टिंग्ज ने नवाब की पेंशन 32 लाख से घटाकर 16 लाख कर दी। ध्यान रहे कि 1765 की सन्धि के अनुसार कम्पनी नवाब को 53 लाख रुपया वार्षिक पेंशन देती थी, किन्तु 1766 में वह 41 लाख रुपया और 1769 में वह 32 लाख रह गई थी। हेस्टिंग्ज ने उसे 16 लाख कर दिया।

(4) शाहआलम की पेंशन बन्द– मुगल सम्राट शाहआलम अंग्रेजों के संरक्षण को छोड़कर मराठों के संरक्षण में चला गया था। इस कारण हेस्टिंग्ज ने कम्पनी की ओर से मिलने वाली उसकी 26 लाख रुपये वार्षिक पेंशन बन्द कर दी।

(5) इलाहाबाद और कड़ा जिले अवध के नवाब को दिये– इलाहाबाद और कड़ा के जिले शाहआलम से छीन कर अवध के नवाब के हाथ 50 लाख रुपये में बेच दिया।

4. न्याय सम्बन्धी सुधार– हेस्टिंग्ज ने न्याय सम्बन्धी सुधारों की ओर भी ध्यान दिया। इस सम्बन्ध में किये गये सुधार निम्नलिखित हैं :

(1) अदालतों का संगठन– उसने प्रत्येक जिले में एक दीवानी (मुफस्सिल अदालत) और एक फौजदारी अदालत की स्थापना की। दीवानी अदालत का अध्यक्ष कलेक्टर और फौजदारी अदालत का अध्यक्ष काजी या पण्डित होता था। स्थानीय अदालतों के ऊपर कलकत्ता में एक सदर दीवानी अदालत और एक सदर निजामत अदालत की स्थापना की गई। इन अदालतों में स्थानीय अदालतों (जिले के न्यायालयों) की अपीलें सुनी जाती थीं।

(2) न्यायाधीशों के वेतन की व्यवस्था– उसने न्यायाधीशों के वेतन निश्चित कर दिये जिससे कि वे अनुचित फीस अथवा रिश्वत न ले सकें।

(3) कानून का संकलन– उसने हिन्दू और मुसलमानों के कानून का संकलन करवाया जिससे पक्षपात रहित निर्णय हो सके।

(4) फौजदारों की नियुक्ति– अपराधियों को पकड़ने के लिये उसने प्रत्येक जिले

में फौजदारों की नियुक्ति की।

(5) न्याय-सम्बन्धी सुधार– हेस्टिंग्ज ने दीवानी और फौजदारी अदालतों के कार्य-क्षेत्र अलग-अलग कर दिये। दीवानी अदालत के अन्तर्गत सम्पत्ति, उत्तराधिकार, विवाह, जाति, ऋण एवं ब्याज आदि थे और फौजदारी अदालत के कार्य-क्षेत्र में हत्या, डकैती, जालसाजी, झगड़े आदि सम्मिलित थे।

(6) अन्य-सुधार– उपर्युक्त सुधारों के अतिरिक्त हेस्टिंग्ज ने कुछ अन्य महत्वपूर्ण सुधार किये। उसने पुलिस विभाग का संगठन किया और प्रत्येक जिले की पुलिस के लिए एक स्वतंत्र पदाधिकारी की नियुक्ति की। उसने चोरों और डाकुओं का दमन करने का प्रयत्न किया। इस कार्य में कैप्टन स्वीवार्ड से बड़ा सहयोग प्राप्त हुआ।

वारेन हेस्टिंग्ज के उक्त सुधारों का भारतीय इतिहास में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। उसके सुधारों के कारण कम्पनी की स्थिति बहुत दृढ़ हो गई। सर विलियम हन्टर के शब्दों में, "वारेन हेस्टिंग्ज ने उस नागरिक शासन-प्रणाली की भलीभाँति नींव डाली थी जिस पर कार्नवालिस ने एक विशाल भवन का निर्माण किया।"

रेग्यूलेटिंग ऐक्ट (1773)

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपने व्यापारिक कार्यों के अतिरिक्त राजनीतिक मामलों में भाग लेना आरम्भ कर दिया था जिसके कारण उसकी आर्थिक अवस्था बहुत खराब हो गई थी। अतः 1772 में कम्पनी के संचालकों ने इंग्लैण्ड की सरकार से प्रार्थना की कि कम्पनी को 90 लाख पौण्ड का ऋण प्रदान किया जाय अन्यथा उसको व्यापार करना असंभव हो जाएगा। सरकार ने कम्पनी की वास्तविक दशा की पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से 31 सदस्यों की एक विशेष समिति और 13 सदस्यों की एक गुप्त समिति नियुक्त की। उनकी रिपोर्टों द्वारा मालूम हुआ कि कम्पनी का वार्षिक व्यय बहुत बढ़ गया है। यदि इस समय उसको आर्थिक सहायता प्रदान नहीं की गई तो उसका दिवाला निकल जाएगा और भारत में कारोबार चलाना असंभव हो जाएगा।

इंग्लैण्ड को पार्लियामेंट ने बहुत वाद-विवाद के पश्चात् 1773 में दो कानून (ऐक्ट) पारित किये–

(1) प्रथम कानून के अनुसार कम्पनी को 14 लाख पौण्ड, 4 प्रतिशत ब्याज के ऊपर ऋण मिला।

(2) द्वितीय कानून रेग्यूलेटिंग ऐक्ट था। इसके द्वारा कम्पनी के शासनविधान में संशोधन किया गया और कम्पनी के कार्यों पर इंग्लैण्ड सरकार का नियंत्रण रखा गया।

रेग्यूलेटिंग ऐक्ट की धाराएँ– रेग्यूलेटिंग ऐक्ट की धाराएँ निम्नलिखित हैं :

(1) डाइरेक्टरों की कार्य-अवधि 4 वर्ष के लिए निश्चित कर दी गई और उनमें से एक चौथाई सदस्यों को प्रतिवर्ष अवकाश प्राप्त करने की व्यवस्था की गई।

(2) बंगाल प्रान्त का गवर्नर सम्पूर्ण भारत का गवर्नर जनरल बना दिया गया और उसका कार्यकाल 5 वर्ष निश्चित किया गया। मद्रास तथा बम्बई के गवर्नर उसके अधीन कर दिये गये।

(3) गवर्नर जनरल के शासन-कार्य में सहायता देने के लिए चार सदस्यों की एक कौंसिल बनाई गई। सदस्यों की अवधि 4 वर्ष रखी गई। कौंसिल में रिक्त स्थानों की पूर्ति करने का अधिकार कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स को प्रदान किया गया।

(4) गवर्नर जनरल का वेतन 25 हजार पौण्ड वार्षिक तथा कौंसिल के सदस्यों का वेतन 10 हजार पौण्ड, मुख्य न्यायाधीश का 8,000 पौण्ड वार्षिक तथा न्यायाधीशों का 6,000 पौण्ड वार्षिक निश्चित किया गया।

(5) कलकत्ता में एक सुप्रीम कोर्ट की स्थापना की गई जिसमें एक मुख्य न्यायाधीश तथा तीन अन्य न्यायाधीश नियुक्त किये गये। वे अंग्रेजी कानून के अनुसार प्रजा के मुकदमों का निर्णय करते थे। वे गर्वनर जनरल के अधीन नहीं थे। सुप्रीम कोर्ट के विरुद्ध अपील प्रिवी कौंसिल में की जा सकती थी।

(6) कम्पनी का कोई भी कर्मचारी बिना लाइसेन्स प्राप्त किए हुए निजी व्यापार नहीं कर सकता था और न किसी से भेंट तथा उपहार ग्रहण कर सकता था।

(7) कम्पनी के डाइरेक्टरों को कम्पनी के राजनीतिक तथा सैनिक कार्यों से सेक्रेटरी ऑफ स्टेट को सूचित करते रहना होगा।

(8) गवर्नर जनरल की कौंसिल में समस्त निर्णय बहुमत के आधार पर रखे गये। गवर्नर जनरल को निर्णायक मत देने का अधिकार प्रदान किया गया।

रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के दोष– रेग्यूलेटिंग ऐक्ट में निम्नलिखित दोष थे :

(1) गवर्नर जनरल का कौंसिल पर नियन्त्रण न होना– यद्यपि गवर्नर जनरल को ब्रिटिश भारत का सर्वोच्च पदाधिकारी बना दिया गया था किन्तु उसे अपनी कौंसिल के सदस्यों के बहुमत के विरुद्ध कार्य करने का अधिकार नहीं दिया गया। फलतः आगे चलकर अनेक उलझने और कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गईं। गवर्नर जनरल किसी भी कार्य को शीघ्रतापूर्वक सम्पन्न करने में अशक्त हो गया क्योंकि वह कौंसिल के बहुमत के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता था। अधिकतर कौंसिल के सदस्य उसकी राय के विरुद्ध ही अपनी राय देते थे।

रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के दोष

1. गवर्नर जनरल का कौंसिल पर नियन्त्रण न होना
2. गवर्नर जनरल और अधीनस्थ गवर्नरों के दोषपूर्ण सम्बन्ध
3. गवर्नर जनरल का सुप्रीम कोर्ट के अधीन होना
4. सुप्रीम कोर्ट का अस्पष्ट अधिकार–क्षेत्र
5. कम्पनी के कर्मचारियों की आय बढ़ाने का प्रयत्न न करना

(2) गवर्नर जनरल और अधीनस्थ गवर्नरों के दोषपूर्ण सम्बन्ध– इस कानून के अनुसार मद्रास और बम्बई के गवर्नरों को गवर्नर जनरल के अधीन कर दिया गया जिससे उनकी स्वतंत्र सत्ता का अन्त हो गया। उन्हें सन्धि-विग्रह के मामलों में गवर्नर जनरल का मुँह ताकना पड़ता था। वे उसकी अनुमति प्राप्त किये बिना किसी देशी राज्य से युद्ध या सन्धि नहीं कर सकते थे। इस प्रकार इस कानून ने प्रांतों के गर्वनरों को शक्तिहीन बना दिया।

(3) गवर्नर जनरल का सुप्रीम कोर्ट के अधीन होना– गवर्नर जनरल और उसकी कौंसिल को सुप्रीम कोर्ट के अधीन कर दिया गया। गवर्नर जनरल और उसकी कौंसिल द्वारा पारित किये समस्त कानून उस समय तक वैध नहीं माने जा सकते थे, जब तक उनको सुप्रीम कोर्ट में रजिस्टर्ड न करा लिया जाये।

(4) सुप्रीम कोर्ट का अस्पष्ट अधिकार क्षेत्र– इस ऐक्ट द्वारा यह बात स्पष्ट नहीं थी कि सुप्रीम के अधिकार-क्षेत्र की क्या सीमा है। इस न्यायालय को अंग्रेजी प्रजा के मुकदमों के करने का अधिकार प्रदान किया गया था; किन्तु यह स्पष्ट नहीं किया गया था कि अंग्रेजी प्रजा में योरोपीय एवं भारतीय दोनों ही हैं। यह भी स्पष्ट नहीं था कि सुप्रीम कोर्ट अंग्रेजी विधि द्वारा निर्णय करेगा अथवा भारतीय विधि के अनुसार निर्णय करेगा। सुप्रीम कोर्ट तथा कौंसिल के अधिकारों का भी स्पष्ट विभाजन नहीं किया गया था जिससे इन दोनों संस्थाओं में बहुत संघर्ष बढ़ गया।

(5) कम्पनी के कर्मचारियों की आय बढ़ाने का प्रयत्न न करना– इस ऐक्ट द्वारा कम्पनी के कर्मचारियों का निजी व्यापार अवैधानिक घोषित कर दिया गया और उपहार

ग्रहण करने पर रोक लगा दी गई, किन्तु उनकी आय बढ़ाने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया। फलतः छोटे कर्मचारियों के लिये यह आवश्यक हो गया कि वे उचित-अनुचित साधनों द्वारा अपनी आय बढ़ावें। फलतः भ्रष्ट्राचार और घूसखोरी और अधिक बढ़ गई।

निष्कर्षस्वरूप यह कहा जा सकता है कि, "रेग्यूलेटिंग ऐक्ट एक अधूरा कानून था और उन सब ऐक्टों में निकृष्ट था जिन्हें इंग्लैण्ड की पार्लियामेण्ट ने भारत के लिए पारित किये थे।"

वारेन हेस्टिंग्ज की वैदेशिक नीति

वारेन हेटिंग्ज की वैदेशिक-नीति के सम्यक अध्ययन के लिये हम उसे निम्न वर्गों में विभक्त कर सकते हैं :

(1) मुगल सम्राट शाहआलम के साथ अन्याय– मुगल सम्राट शाहआलम मराठा सरदार महादेव जी सिन्धिया की शरण में चला गया था। अंतः हेस्टिंग्ज ने उसकी 26 लाख रुपया वार्षिक पेंशन बन्द कर दी और उससे कड़ा और इलाहाबाद के जिले छीन लिये।

(2) अवध के नवाब शुजाउद्दौला से सन्धि– 1773 में हेस्टिंग्ज ने अवध के नवाब शुजाउद्दौला से बनारस की सन्धि की। इस सन्धि के अनुसार उसने कड़ा और इलाहाबाद के जिले उसको 50 लाख रुपये में बेच दिये। नवाब ने अपने खर्च पर ही सुरक्षा के लिए कम्पनी की एक पृथक् सेना रखना स्वीकार कर लिया और युद्ध के समय दोनों ने एक दूसरे की सहायता का वचन दिया।

(3) रुहेलों से युद्ध– रुहेलखण्ड एक उपजाऊ प्रदेश था। यहाँ एक सरदार हाफिज रहमत खाँ का अधिकार था। मराठे अक्सर इसके राज्य पर आक्रमण कर देते थे। अतः इसने अवध के नवाब वजीर से एक सन्धि कर ली जिसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि यदि मराठों ने रुहेलखण्ड पर आक्रमण किया तो नवाब वजीर रुहेलों की सहायता करेगा और रुहेले उसको 40 लाख रुपया देंगे। 1773 में मराठों ने रुहेलखण्ड पर धावा बोल दिया किन्तु नवाब वजीर तथा कम्पनी की सम्मिलित सेनाओं के भय से मराठों ने आक्रमण नहीं किया और वे वापस चले गये। नवाब वजीर ने सन्धि की शर्तों के अनुसार रुहेलों से 40 लाख रुपया माँगा किन्तु रुहेलों के सरदार हाफिज रहमत खाँ ने धन देने में आनाकानी की। फलतः नवाब वजीर ने हेस्टिंग्ज से सैनिक सहायता प्राप्त करके रुहेलखण्ड पर आक्रमण कर दिया और हाफिज रहमत खाँ को 23 अप्रैल, 1774 को मीरनपुर कटरा के युद्ध में पराजित किया। रहमत खाँ युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। इस युद्ध में लगभग 2,000 रुहेले सैनिक मारे गये और बीस सहस्र रुहेलों को अपना घर छोड़कर भागना पड़ा। रुहेलखण्ड के अधिकांश भाग को अवध राज्य में मिला लिया गया और शेष भाग पर रामपुर की रियासत स्थापित की गई, जिसको रुहेला शक्ति के संस्थापक अली मुहम्मद रुहेला के पुत्र फैजुल्ला खाँ के अधिकार में छोड़ दिया गया।

वारेन हेस्टिंग्ज की वैदेशिक नीति

1. मुगल-सम्राट शाहआलम के साथ अन्याय
2. अवध के नवाब शुजाउद्दौला से सन्धि
3. रुहेलों से युद्ध
4. नन्दकुमार को फाँसी
5. बनारस के राजा चेतसिंह के साथ दुर्व्यवहार
6. अवध की बेगमों पर अत्याचार
7. मराठों के साथ संघर्ष
8. मैसूर के सुल्तान से संघर्ष

आलोचना– बर्क, मैकाले, मिल आदि इतिहासकारों ने हेस्टिंग्ज के इस कार्य की बहुत निन्दा की है। उनके कथनानुसार, "उसने ज्ञानबूझ कर एक स्वतंत्र राष्ट्र के जीवन और स्वतंत्रता को बेच दिया। अवध के नवाब की सेना द्वारा किये गये भयंकर अत्याचारों को क्षमा कर दिया।"

डॉ. ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में, "हाफिज रहमत खाँ ऐसे सुयोग्य और शांत-प्रिय शासक के ऊपर अकारण आक्रमण करना अन्यायपूर्ण था। नवाब वजीर और रहमत खाँ में पारस्परिक झगड़ा हो सकता था, परन्तु अंग्रेजों को बिना किसी न्यायपूर्ण आधार के एक पक्ष के विरुद्ध दूसरे पक्ष का समर्थन करना नितान्त अनुचित था।" निस्संदेह हेस्टिंग्ज का यह कार्य असंगत तथा सर्वथा अन्यायपूर्ण था।

(4) नन्दकुमार को फाँसी– नन्दकुमार एक उच्च वंश का प्रतिभाशाली बंगाली ब्राह्मण था। 11 मार्च, 1775 को उसने हेस्टिंग्ज पर यह अभियोग लगाया कि उसने मीरजाफर की विधवा मुन्नी बेगम से साढ़े तीन लाख रुपया लेकर उसको नवाब की संरक्षिका बनाया है। जब कौंसिल ने हेस्टिंग्ज से इस विषय पर पूछताछ की तो उसने नन्दकुमार के सामने सफाई देने से इन्कार कर दिया और नन्दकुमार के विरुद्ध षड्यंत्र रचने का अभियोग चला दिया। इसी बीच कलकत्ता के सेठ मोहन प्रसाद ने नन्दकुमार के विरुद्ध जालसाजी का मुकदमा चलाया। 6 मई, 1775 को नन्दकुमार को गिरफ्तार कर लिया गया और उसको सुप्रीम कोर्ट के सर्वोच्च न्यायाधीश सर इलीजा इम्पे द्वारा जो कि वारेन हेस्टिंग्ज का मित्र था, प्राणदण्ड मिला। 5 अगस्त, 1775 को वह फाँसी पर लटका दिया गया।

आलोचना– मैकाले, मिल, बेंबरिज आदि विद्वानों की धारणा है कि नन्दकुमार की फाँसी में वारेन हेस्टिंग्ज का हाथ था। मैकाले के अनुसार, "मूर्खों तथा जीवनी लेखकों को छोड़कर अन्य सभी लोगों की उस समय भी यही धारणा थी और अब भी है कि इस मामले में वास्तविक संचालक हेस्टिंग्ज ही था .... इम्पे ने न्यायाधीश के पद पर बैठकर राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिये अन्याय के साथ एक आदमी को प्राण-दण्ड दे दिया।" जेम्स मिल लिखता है, "नन्दकुमार की दुःखान्त घटना से हेस्टिंग्ज की प्रतिष्ठा पर जितना गहरा कलंक लगा उतना संभवतः उसके सम्पूर्ण शासन के अन्य किसी कार्य से नहीं लगा।" बेवरिज ने मृत्यु-दण्ड को 'न्याय की हत्या' की संज्ञा दी है। निःसन्देह नन्दकुमार की फाँसी न्याय द्वारा स्वीकृत हत्या थी।

(5) बनारस के राजा चेतसिंह के साथ दुर्व्यवहार– 1775 में फैजाबाद की सन्धि के अनुसार बनारस के राजा चेतसिंह ने कम्पनी को 22.50 लाख रुपया देना स्वीकार कर लिया था। उससे अधिक धन माँगने का अंग्रेजों को अधिकार न था। किन्तु 1778 में मराठों के साथ युद्ध छिड़ते ही हेस्टिंग्ज ने राजा चेतसिंह से असाधारण युद्ध सहायता के रूप में 5 लाख रुपये माँगे जिसे राजा ने दे दिया। पुनः दूसरे वर्ष उसने फिर इतना ही धन माँगा। राजा ने उसे भी दे दिया। 1780 में हेस्टिंग्ज ने राजा से 2,000 घुड़सवारों की माँग की। इस माँग की पूर्ति में कुछ विलम्ब हुआ। फलतः हेस्टिंग्ज ने उस पर 50 लाख रुपया जुर्माना कर दिया जिसे अदा करने से चेतसिंह ने इन्कार कर दिया इस पर हेस्टिंग्ज ने 500 सैनिकों की एक छोटी-सी टुकड़ी लेकर बनारस पर आक्रमण कर दिया और चेतसिंह को गिरफ्तार कर लिया। इस पर राजा की सेना ने विद्रोह कर दिया। हेस्टिंग्ज को चुनार के किले में शरण लेनी पड़ी। इसी समय पॉकम नामक सेनापति ने हेस्टिंग्ज की सहायता की। चेतसिंह अपना खजाना लेकर ग्वालियर भाग गया। चेतसिंह को पदच्युत करके उसके स्थान पर उसके एक भतीजे को बनारस का राज्य सौंप दिया गया और उसने साढ़े 22 लाख के स्थान पर 40 लाख रुपये वार्षिक कम्पनी को देना स्वीकार किया।

आलोचना– वारेन हेस्टिंग्ज ने राजा चेतसिंह के साथ जो अशोभनीय व्यवहार किया, विद्वानों ने उसकी कटु आलोचना की है। स्मिथ ने उसके इस कार्य को 'अन्यायपूर्ण और बुद्धिमत्ता से हीन' बतलाया है। विलियम पिट ने लिखा है, "इसमें किंचित् मात्र भी संदेह नहीं कि चेतसिंह के मामले में उसका व्यवहार अत्याचार एवं अन्यायपूर्ण तथा दमनात्मक था।" कोर्ट

आफ डाइरेक्टर्स ने भी हेस्टिंग्ज के इस कार्य को 'असमर्थनीय और विवेकहीन' कहकर आलोचना की है।

(6) अवध की बेगमों पर अत्याचार- अवध के नवाब वजीर आसफुद्दौला को कम्पनी को डेढ़ करोड़ रुपया देना शेष था। उसकी माता बहू बेगम और दादी बुर्रा बेगम के पास दो करोड़ रुपये की सम्पत्ति थी जिस पर उन्होंने नवाब शुजाउद्दौला की मृत्यु के पश्चात् अधिकार कर लिया था। नवाब आसफुद्दौला उनसे बार-बार धन की माँग करता था। कलकत्ता कौंसिल के हस्तक्षेप पर उन्होंने उसको 30 लाख रुपया इस शर्त पर दिया कि वह उनसे भविष्य में पुनः धन की माँग नहीं करेगा। 1781 में आसफुद्दौला ने बेगमों से फिर रुपया की माँग की, किन्तु उन्होंने रुपया देने से इन्कार कर दिया। इस पर आसफुद्दौला हेस्टिंग्ज से मिला और कहा कि उसको बेगमों के कोष पर अधिकार करने की स्वीकृति प्रदान की जाय ताकि वह उनका ऋण भुगतान कर सके। हेस्टिंग्ज जिसे धन की आवश्यकता थी, शीघ्र ही नवाब वजीर की सहायता करने को तैयार हो गया। उसने नवाब की सहायता के लिए अंग्रेजी सेना भेज दी। सेना को भेजते सयम हेस्टिंग्ज ने लखनऊ स्थित रेजीडेण्ट मिडल्टन को आदेश दिया कि बेगमों का किसी प्रकार का लिहाज नहीं किया जाय और तब तक उन पर दबाव डाला जाय जब तक खजाना अन्दर से बाहर न आ जाय।

अंग्रेजी सेना की टुकड़ी फैजाबाद गई जहाँ बेगमें रहती थीं। उसने महलों के दरवाजे जबरदस्ती खुलवाये। बेगमों को कमरे में बन्द करके खजाने की तालियाँ देने पर बाध्य किया। जब उन्होंने तालियाँ देना स्वीकार नहीं किया तो उनके साथ अमानुषिक व्यवहार किया गया और उनके दो कर्मचारियों-बिहारअली खाँ तथा जवाहर खाँ को बन्दी बना लिया। उन्हें कई दिनों तक भूखे रखा गया और अनेक प्रकार की कठोर यातनाएँ दी गईं। विवश होकर बेगमों को झुकना पड़ा। उन्होंने एक लाख पौण्ड के जवाहरात देकर अपनी जान छुड़ाई।

आलोचना- वारेन हेस्टिंग्ज ने अवध की बेगमों पर जो अत्याचार कराया उसकी इतिहासकारों ने कटु आलोचना की है। पी.इ. राबर्ट्स ने लिखा है, "इस कार्य में हेस्टिंग्ज सबसे अधिक क्रियाशील था। अतएव बेगमों के साथ की गई क्रूरता के लिए वह पूर्णरूप से उत्तरदायी था। जो अत्याचार नारियों के साथ किया गया वह अत्यन्त पाशविक तथा लज्जाजनक था।" डॉ. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, "यह बर्बरता तथा अन्याय की पराकाष्ठा थी। असहाय महिलाओं के घर को घेरना, उनके नौकरों को बन्दी बनाना, भूखा रखना तथा यातनाएँ देना सर्वथा अति कठोर था।"

अन्त में, निष्कर्षस्वरूप कहा जा सकता है कि 'हेस्टिंग्ज के भक्त अंग्रेज लेखक उसकी इस भयंकर अनीति के समर्थन में कुछ भी कहें, इतिहास का लेखक यह कहे बिना नहीं रह सकता कि अंग्रेज गवर्नर जनरल की आज्ञा से धन के लोभ के कारण अवध की बेगमों तथा उनके बूढ़े नौकरों पर जो अत्याचार किये गये; उनकी संसार के अत्याचारियों द्वारा किये गये अत्यन्त काले कारनामों में गिनती की जायेगी।'

(7) मराठों के साथ संघर्ष : प्रथम मराठा युद्ध (1775-82)- 1772 में मराठों के पेशवा माधवराव की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका भाई नारायणराव पेशवा हुआ, परन्तु उसके चाचा राघोवा ने जो पेशवा बनना चाहता था, षड्यंत्र रचकर 30 अगस्त, 1773 को उसका वध करवा दिया और स्वयं पेशवा बन गया। अपनी स्थिति को दृढ़ करने के लिए उसने बंबई के गवर्नर से 7 मार्च, 1775 को सूरत की सन्धि कर ली। सन्धि के अनुसार उसने सालसिट और बेसिन के द्वीप देने का वचन देकर अंग्रेजों से सहायता प्राप्त कर ली।

उधर नाना फड़नवीस ने राघोवा के उत्तराधिकार का विरोध किया और नारायणराव के पुत्र माधवराव को पेशवा बना दिया और हेस्टिंग्ज से पुरन्दर की सन्धि (1776) की। सन्धि के अनुसार-

(1) अंग्रेजों ने राघोवा का साथ छोड़ दिया।
(2) उसे 3 लाख रुपये की वार्षिक पेंशन दी गई।
(3) अब वह कोई सेना नहीं रख सकता था।
(4) सालसिट पर अंग्रेजों का अधिकार रहने दिया गया।

परन्तु कम्पनी के डाइरेक्टरों ने सूरत की सन्धि को ही मान्यता प्रदान की। इसलिए हेस्टिंग्ज को भी राघोवा की सहायता करनी पड़ी। राघोवा की सहायता के लिए अंग्रेजी सेना का एक दस्ता बंबई से पूना की ओर चल पड़ा। परन्तु उसे मार्ग में ही नाना फड़नवीस ने होल्कर तथा सिन्धिया की सम्मिलित सेनाओं की मदद से 9 जनवरी, 1779 को तालेगाँव में पराजित कर दिया। बंबई सरकार को विवश होकर मराठों से 15 जनवरी, 1779 को बड़गाँव में एक अपमानजनक सन्धि करना पड़ी। सन्धि के अनुसार (1) पुरन्दर की सन्धि समाप्त कर दी गई, (2) अंग्रेजों ने राघोवा का साथ छोड़ दिया, (3) मराठा सरकार के प्रदेश उसे वापस लौटा दिये जायेंगे, (4) बंगाल से आने वाली सेनाओं को रोकने की बात भी स्वीकार की गई।

लेकिन शीघ्र ही वारेन हेस्टिंग्ज ने बड़गाँव-सन्धि को मानने से इन्कार कर दिया और युद्ध पुनः आरम्भ हो गया। हेस्टिंग्ज ने 1780 में मराठों के विरुद्ध दो सेनायें गोडार्ड और पोफम के नेतृत्व में भेजीं। गोडार्ड ने अहमदनगर पर और पोफम ने ग्वालियर के अजेय दुर्ग पर अधिकार कर लिया। अन्त में महादजी सिन्धिया की मध्यस्थता से अंग्रेजों और मराठों के बीच मई, 1782 में सालवाई की सन्धि हो गई। सन्धि के अनुसार (1) सालसिट और बेसीन अंग्रेजों को दे दिये, (2) यमुना से पश्चिम की ओर स्थित समस्त प्रदेश सिन्धिया को लौटा दिये गये, (3) अंग्रेजों ने माधवराव नारायण को पेशवा स्वीकार कर लिया, (4) पेशवा ने राघोवा को 25 हजार रुपये मासिक पेंशन देना स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार 'सालवाई' की सन्धि ने भारतीय राजनीति में एक बार फिर अंग्रेजों की प्रतिष्ठा स्थापित कर दी।

(8) मैसूर के सुल्तान से संघर्ष : मैसूर का द्वितीय युद्ध (1780-84)- अंग्रेजों ने 1769 में हैदर के साथ हुई सन्धि की शर्तों का पालन नहीं किया क्योंकि 1771 में मराठों ने मैसूर पर आक्रमण कर दिया, अंग्रेजों ने हैदरअली की मदद नहीं की। हैदर का अंग्रेजों से क्रुद्ध होना स्वाभाविक था। फलतः उसने जुलाई, 1780 में कर्नाटक पर आक्रमण कर दिया और राजधानी अर्काट पर अधिकार कर लिया। कर्नाटक का नवाब भागकर मद्रास चला गया। जब यह समाचार अंग्रेजों को मालूम हुआ, तो उन्होंने हैदर के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और उन्होंने एक सेना मुनरो की अध्यक्षता में मद्रास से और दूसरी सेना बेली की अध्यक्षता में गुंतूर से हैदर के विरुद्ध भेजी। हैदर और उसके पुत्र टीपू ने बेली की सेना को मार भगाया। बेली की पराजय सुनकर मुनरो मद्रास की ओर भाग गया। जब अंग्रेजों की पराजय का समाचार बंगाल पहुँचा, तो वारेन हेस्टिंग्ज ने सर आयरकूट की अध्यक्षता में एक सेना हैदर के विरुद्ध भेजी। कूट ने हैदर को पोर्टीनोवो और पोलीलोर के युद्धों में पराजित किया। इसी बीच 7 दिसम्बर, 1782 को हैदरअली की मृत्यु हो गई।

हैदरअली की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र टीपू (1782-99) ने युद्ध बन्द नहीं किया और 1783 में बेडनोर पर अधिकार कर लिया। जब वह समुद्र-तटवर्ती मंगलौर पर घेरा डालने के लिये आगे बढ़ रहा था। तो अंग्रेजों ने दक्षिण-पश्चिम की ओर से मैसूर पर भी आक्रमण

कर दिया। नवम्बर, 1783 में अंग्रेजों ने पालघाट और कोयम्बटूर पर अधिकार कर लिया। अन्त में मार्च, 1784 को टीपू और अंग्रेज़ों के मध्य मंगलौर की सन्धि हो गई। इस सन्धि के अनुसार दोनों पक्षों ने एक-दूसरे के जीते हुए प्रदेशों को वापस कर दिया तथा युद्ध-बन्दियों को मुक्त कर दिया।

हैदरअली का चरित्र तथा मूल्यांकन– मैसूर राज्य के इतिहास में हैदरअली का स्थान विशेष महत्वपूर्ण है। वह अपने भाग्य का निर्माता स्वयं था। एक साधारण कर्मचारी के घर जन्म लेकर अपनी बुद्धि, बल और सैन्य-कौशल से मैसूर राज्य का स्वामी बनने में सफलता प्राप्त की। संक्षेप में, उसके चरित्र में निम्नलिखित विशेषताएँ थीं :

(1) महान् शासक तथा सेनापति– हैदरअली एक महान् शासक तथा कुशल सेनापति था। उसने लगातार युद्धों में व्यस्त रहने पर भी राज्य की अव्यवस्था दूर करके शान्ति तथा सुव्यवस्था स्थापित की तथा प्रजा को सुखी-समृद्ध बनाने का अथक परिश्रम किया। उसने अपनी सेना को योरोपीय रण-प्रणाली का प्रशिक्षण देकर छापामार पद्धति का समन्वय किया। उसने एक शक्तिशाली समुद्री जहाजी बेड़े का भी निर्माण किया था।

हैदरअली का चरित्र

1. महान् शासक तथा सेनापति
2. कुशल कूटनीतिज्ञ
3. कठोर अध्यवसायी
4. उच्चकोटि का पारखी
5. विलक्षण स्मरण-शक्ति
6. कई भाषाओं का ज्ञाता
7. न्यायप्रिय शासक
8. धार्मिक सहिष्णु

(2) कुशल कूटनीतिज्ञ– हैदरअली एक कुशल कूटनीतिज्ञ था। उसने कूटनीति द्वारा ही मैसूर की शासन-सत्ता पर अधिकार किया। अपनी कुशल कूटनीतिज्ञता द्वारा ही शक्तिशाली शत्रुओं को पृथक्-पृथक् रखा।

(3) कठोर अध्यवसायी– हैदर अली कठोर परिश्रम करने वाला था। कठिन-से कठिन परिस्थितियों में भी वह निराश नहीं हुआ और उसने अपने अध्यवसाय से सफलता प्राप्त की। वह युद्ध के समय दिन-रात कार्य में व्यस्त रहता था। वह केवल 6 घंटे आराम करता था।

(4) उच्चकोटि का पारखी– हैदरअली मनुष्य के गुणों को परखने की अद्भुत शक्ति रखता था। उसने अपने जीवन में कभी अयोग्य व्यक्तियों को प्रोत्साहन नहीं दिया।

(5) विलक्षण स्मरण-शक्ति– निरक्षर होने पर भी हैदरअली की स्मरणशक्ति विलक्षण थी। कोई भी सुनी हुई बात वह सदैव याद रखता था। एक ही अवसर पर एक पत्र पढ़वाकर सुन सकता था, आज्ञाएँ दे सकता था तथा नाटक देख सकता था।

(6) कई भाषाओं का ज्ञाता– निरक्षर होते हुए भी हैदरअली को पाँच भाषाओं का ज्ञान था। वह हिन्दी, मराठी, तेलगू, तमिल तथा कन्नड़ भाषाओं को अच्छी तरह बोल सकता था।

(7) न्यायप्रिय शासक– हैदरअली एक निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी शासक होते हुए भी बड़ा न्यायप्रिय शासक था। उसने राजकीय कर्मचारियों को कठोर अनुशासन में बाँध दिया। अपने सम्पूर्ण राज्य में उसने न्याय की उचित व्यवस्था थी।

(8) धार्मिक सहिष्णु– हैदरअली की धार्मिक नीति उदार तथा सहिष्णुतापूर्ण थी। उसने सभी धर्मों को आदर तथा सम्मान प्रदान किया। ऐसा प्रमाण मिलता है कि उसने मैसूर के चामुण्डेश्वरी देवी के मन्दिर को दान दिया था। उसने अपने ताँबें तथा सोने के सिक्कों पर शिव-पार्वती तथा विष्णु की मूर्तियाँ अंकित करवाई थीं। हिन्दू तथा मुसलमानों में उसने कोई भेद-भाव नहीं किया। उसके अधिकांश मंत्री हिन्दू थे।

पिट का इण्डिया ऐक्ट (1784)– रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के दोषों को दूर करने के लिए 1784 में 'पिट का इण्डिया ऐक्ट' पारित किया गया। इस ऐक्ट को इंगलैण्ड के प्रधानमंत्री पिट

ने पास करवाया था, जो उसी के नाम पर 'पिट का इण्डिया ऐक्ट' कहलाया। इस ऐक्ट द्वारा कम्पनी के ऊपर पार्लियामेंट का नियन्त्रण स्थापित करने के लिए निम्नलिखित व्यवस्था की गई :

(1) भारतीय मामलों के लिए 6 कमिश्नरों का एक बोर्ड स्थापित किया गया, जिसका नाम 'बोर्ड आफ कन्ट्रोल' रखा गया। यह संचालक मंडल पर नियन्त्रण रखता था और यदि संचालकों के कार्यों को बोर्ड की अनुमति मिल जाती थी तो उन्हें मालिकों का मण्डल (कोर्ट आफ प्रोप्राइटर्स) समाप्त नहीं कर सकता था।

(2) बोर्ड आफ कन्ट्रोल हर महकमे के कार्यों और पत्र व्यवहार का निरीक्षण कर सकता था। वह संचालकों द्वारा भेजे जाने वाले पत्रों में संशोधन भी कर सकता था। बोर्ड के तीन सदस्यों की एक गुप्त समिति बनाई गई। बोर्ड जो गुप्त आदेश भेजता, वह इस समिति के माध्यम से भेजता था।

(3) भारत में गवर्नर जनरल की कौंसिल के सदस्यों की संख्या चार की जगह तीन कर दी गई। इनमें एक स्थान सेनाध्यक्ष को दिया गया।

(4) बंबई तथा मद्रास की कौंसिल में भी सदस्य संख्या तीन कर दी गई जिनमें से एक प्रान्तीय सेनापति रखा गया।

(5) गवर्नर तथा गवर्नर जनरल की नियुक्ति संचालक करते थे किन्तु उन्हें वापस बुलाने का अधिकार संचालक मण्डल तथा राजा (अर्थात् बोर्ड आफ कन्ट्रोल) को मिल गया।

(6) मद्रास और बंबई सरकारों को पूरी तरह से बंगाल सरकार के अधीन कर दिया गया।

(7) गवर्नर जनरल तथा उसकी कौंसिल बिना संचालकों अथवा गुप्त समिति की आज्ञा के किसी भारतीय नरेश के साथ युद्ध सन्धि नहीं कर सकते थे।

(8) भारत में साम्राज्य विस्तार और विजय की नीति को ब्रिटिश सरकार की इच्छा, प्रतिष्ठा और नीति के विरुद्ध ठहराया गया।

वारेन हेस्टिंग्ज की वापसी– वारेन हेस्टिंग्ज 1 फरवरी, 1785 को त्याग–पत्र देकर इंग्लैण्ड चला गया। वहाँ पहुँचने पर उसके विरुद्ध पार्लियामेंट में मुकदमा चलाया गया जो 1795 तक चलता रहा। अभियोग लगाने वालों में बर्क या शेरिडन प्रमुख थे, जिन्होंने हेस्टिंग्ज के कार्यों की घोर निन्दा की। अन्त में वह निर्दोष घोषित किया गया। कम्पनी ने उसे 4,000 पौण्ड वार्षिक पेंशन प्रदान की। 1818 में 85 वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हो गई।

वारेन हेस्टिंग्ज का मूल्यांकन– हेस्टिंग्ज भारत का प्रथम गवर्नर जनरल था। वह बड़ा ही योग्य तथा प्रतिभावान व्यक्ति था। अपनी असाधारण योग्यता के बल पर ही वह लिपिक के पद से ऊँचा उठकर गवर्नर जनरल के पद तक पहुँच सका था। उसने कम्पनी की जो सेवाएँ कीं वे प्रशंसनीय हैं। कम्पनी के हित में उसने नैतिक तथा अनैतिक सभी प्रकार के साधनों का प्रयोग किया। उसके प्रशासनिक सुधार प्रशंसनीय थे। उसके कार्यों को देखते हुए ब्रिटिश साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक उसी को मानना चाहिए।

लार्ड मैकाले ने हेस्टिंग्ज की प्रशंसा करते हुए लिखा है, "वारेन हेस्टिंग्ज ने दोहरी सरकार को तोड़ दिया। उसने सभी कार्यों को अंग्रेजी हाथों में सौप दिया तथा अराजकता के बावजूद उसने शांति स्थापित की।"

लार्ड कर्जन के अनुसार, "मुझे संदेह है कि सार्वजनिक मामलों के सम्पूर्ण इतिहास में किसी व्यक्ति पर इतनी निर्दयता से दोषारोपण किया गया हो, अथवा इतनी दृढ़ता से उस पर अभियोग चलाया गया हो। उसने प्रत्येक परिस्थितियों में धैर्य, सहनशीलता तथा आत्म-संयम प्रकट किया, जिसकी ऐसे चरित्र से आशा की जाती है।"

डॉ. ईश्वरी प्रसाद के मतानुसार, "इसमें संदेह नहीं कि हेस्टिंग्ज ने जो उपाय अपनाए, वे बहुत ही लज्जापूर्ण थे परन्तु जिन परिस्थितियों में उसको काम करना पड़ रहा था, वे भी कम संकटपूर्ण न थीं।"

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ (Important Dates & Events)

1. 1772 ई. - वारेन हेस्टिंग्ज का बंगाल का गवर्नर होना।
2. 1773 ई. - रेग्यूलेटिंग ऐक्ट पारित हुआ। (1985)
3. 1775 ई. - प्रथम मराठा युद्ध, पुरन्दर की सन्धि तथा नन्दकुमार को मृत्युदण्ड।
4. 1780 ई. - मैसूर का द्वितीय युद्ध।
5. 1782 ई. - सालवाई की सन्धि व हैदरअली की मृत्यु।
6. 1784 ई. - मंगलौर की सन्धि तथा पिट्स इण्डिया ऐक्ट पारित हुआ।
7. 1785 ई. - वारेन हेस्टिंग्ज की वापसी।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. रेग्यूलेटिंग ऐक्ट की मुख्य धाराओं का उल्लेख कीजिए तथा उसके दोषों की विवेचना कीजिए। (1963,67)
2. हैदरअली का जीवन चरित्र लिखिए तथा उसकी विदेशी-नीति की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए। (1964)
3. वारेन हेस्टिंग्ज के सुधारों का वर्णन कीजिए। (1969)
4. भारत में वारेन हेस्टिंग्ज के कार्यों का मूल्यांकन कीजिए। (1970)
5. महाराजा चेतसिंह, अवध की बेगमों तथा राजा नन्दकुमार के प्रति हेस्टिंग्ज की नीति का संक्षिप्त वर्णन कीजिए। (1972)
6. वारेन हेस्टिंग्ज ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रशासन को सुधारने के लिए क्या उपाय किये? (1976)
7. हैदरअली के जीवन-चरित्र तथा उपलब्धियों का विवरण दीजिए। (1980)
8. भारत में वारेन हेस्टिंग्ज के प्रयत्नों और उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए। (1981)
9. रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के प्रावधानों की विवेचना कीजिए। (1988)
10. भारत में ब्रिटिश राज्य को सुदृढ़ बनाने में वारेन हेस्टिंग्ज के योगदान का वर्णन कीजिए। (1991)
11. भारत में वारेन हेस्टिंग्ज के कार्यों एवं नीतियों की विवेचना कीजिए। (2001)
12. भारत में ब्रिटिश सत्ता की स्थापना में वारेन हेस्टिंग्स का क्या योगदान था? (2003)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "वारेन हेस्टिंग्ज की शासन नीति सराहनीय है।" इस कथन के आलोक में उसकी नीति तथा सुधारों का मूल्यांकन कीजिए।
2. "रेग्यूलेटिंग ऐक्ट एक अधूरा कानून था।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं?
3. "इसमें कोई सन्देह नहीं कि चेतसिंह तथा अवध की बेगमों के मामले में हेस्टिंग्ज ने एक गैर जिम्मेदार निरंकुश शासक का आचरण किया।" उपर्युक्त दोनों मामलों में वारेन हेस्टिंग्ज की भूमिका की विवेचना कीजिए।

4. "वारेन हेस्टिंग्ज ने भारत में आंग्ल प्रशासन की आधारशिला रखी।" इस कथन के आलोक में वारेन हेस्टिंग्ज द्वारा किये गये प्रशासनिक सुधारों का वर्णन कीजिए।

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. वारेन हेस्टिंग्ज के प्रशासकीय सुधार क्या थे?
2. रेग्यूलेटिंग ऐक्ट की मुख्य धाराएँ क्या थीं?
3. पिट्स इण्डिया ऐक्ट की मुख्य धाराएँ क्या थीं?
4. रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के दोषों की विवेचना कीजिए।
5. वारेन हेस्टिंग्ज के उन कार्य-कलापों का वर्णन कीजिए जिनके कारण उसकी आलोचना की जाती है।
6. हैदरअली की दो उपलब्धियों का विवरण दीजिए।
7. रेग्यूलेटिंग ऐक्ट की चार प्रमुख धाराओं का वर्णन कीजिए।
8. 'पुरन्दर की संधि' के महत्व की विवेचना कीजिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **रुहेलखण्ड का शासक कौन था?**
   रुहेलखण्ड का शासक हाफिज रहमत खाँ था।
2. **वारेन हेस्टिंग्ज के दो निन्दनीय कार्य बताइए।**
   (क) बनारस के राजा चेतसिंह के साथ दुर्व्यवहार, तथा
   (ख) अवध की बेगमों के साथ अत्याचार।
3. **नन्दकुमार को फाँसी दिलाने में किसका हाथ था?**
   नन्दकुमार को फाँसी दिलाने में वारेन हेस्टिंग्ज का हाथ था।
4. **ब्रिटिश भारत का प्रथम गवर्नर जनरल कौन था?**
   ब्रिटिश भारत का प्रथम गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्ज था।
5. **कलकत्ता में सुप्रीम क्रोर्ट कब स्थापित हुआ?**
   कलकत्ता में सुप्रीमकोर्ट की स्थापना 1774 ई. में हुई।
6. **हैदरअली की मृत्यु कब हुई?**
   हैदरअली की मृत्यु 7 दिसम्बर, 1782 को हुई।
7. **कलकत्ता में स्थापित सुप्रीमकोर्ट का प्रथम न्यायाधीश कौन था?**
   कलकत्ता में स्थापित सुप्रीमकोर्ट का प्रथम न्यायाधीश इलीजा इम्पे था।
8. **वारेन हेस्टिंग्ज के दो सुधार बताइए।**
   (क) प्रशासन संबंधी सुधार, तथा (ख) न्याय संबंधी सुधार।

बहुविकल्पीय प्रश्न

निर्देश : नीचे दिये गये प्रत्येक प्रश्न के चार विकल्पों में से सही विकल्प छाँटकर लिखिए :

1. **रेग्यूलेटिंग ऐक्ट कब पारित हुआ था?**
   (क) 1771 ई. में, (ख) 1773 ई. में, (ग) 1774 ई. में, (घ) 1735 ई. में।
2. **पिट का इण्डिया ऐक्ट कब पारित हुआ था?**
   (क) 1780 ई. में, (ख) 1782 ई. में, (ग) 1784 ई. में, (घ) 1785 ई. में।
3. **ब्रिटिश भारत का प्रथम गवर्नर जनरल कौन था?**
   (क) राबर्ट क्लाइव, (ख) वारेन हेस्टिंग्ज,
   (ग) कार्नवालिस, (घ) सर जॉन शोर।

4. पुरन्दर की सन्धि कब हुई थी?
   (क) 1773 ई. में, (ख) 1775 ई. में, (ग) 1776 ई. में, (घ) 1778 ई. में।
5. वारेन हेस्टिंग्ज का कार्यकाल है–
   (क) 1770–1775 ई. (ख) 1772–1780 ई.
   (ग) 1772–1785 ई. (घ) 1772–1783 ई.
6. प्रथम मराठा युद्ध कब हुआ?
   (क) 1772 ई. (ख) 1773 ई. (ग) 1775 ई. (घ) 1776 ई.
7. मैसूर का द्वितीय युद्ध कब हुआ था?
   (क) 1777 ई. (ख) 1778 ई. (ग) 1780 ई. (घ) 1782 ई.
8. हैदरअली की मृत्यु कब हुई थी?
   (क) 1778 ई. (ख) 1782 ई. (ग) 1783 ई. (घ) 1784 ई.
9. नन्दकुमार को प्राणदण्ड कब दिया गया?
   (क) 1773 ई. (ख) 1774 ई. (ग) 1775 ई. (घ) 1776 ई.
10. कलकत्ता (कोलकाता) में सुप्रीम कोर्ट की स्थापना कब हुई?
   (क) 1772 ई. (ख) 1774 ई. (ग) 1778 ई. (घ) 1778 ई.

■

15

लार्ड कार्नवालिस [1786-93] तथा सर जॉन शोर [1793-98]

"कार्नवालिस ने शासन के प्रस्तुत और बिखरे हुए अंशों को एक विशाल प्रणाली के रूप में संगठित किया। पहले हल्की तथा अस्थिर जान पड़ने वाली बातों को उसने गुरुता और स्थिरता प्रदान की। उसने आधुनिक भारतीय विधान की नींव डाली।" -डॉ. मजूमदार

लार्ड कार्नवालिस

वारेन हेस्टिंग्ज के इंग्लैण्ड चले जाने का बाद 1785 में मेक्फर्सन को गवर्नर बनाया गया, लेकिन वह अयोग्य सिद्ध हुआ। फलतः मेक्फर्सन के पश्चात् कार्नवालिस को भारत का गवर्नर जनरल बनाकर भेजा गया। उसने इस शर्त पर इस पद को स्वीकार किया कि गवर्नर जनरल के साथ-साथ वह भारत में प्रधान सेनापति भी रहेगा और आवश्यकता पड़ने पर कौंसिल के बहुमत की उपेक्षा भी कर सकेगा। अस्तु, पार्लियामेंट ने 1786 में ऐक्ट पास करके गवर्नर जनरल और सेनापति पद एक कर दिए और गवर्नर जनरल को अधिकार दे दिया कि विशेष परिस्थितियों में वह कौंसिल के बहुमत की उपेक्षा कर सकता है। इस प्रकार विशेषाधिकारों से युक्त होकर तथा हर प्रकार से शक्तिशाली होकर कार्नवालिस भारत आया।

लार्ड कार्नवालिस के सुधार

शासन-सुधार की दृष्टि से कार्नवालिस का कार्यकाल अत्यन्त महत्वपूर्ण और स्मरणीय है। उसने भारत की शासन, न्याय और राजस्व-व्यवस्था में निम्नलिखित सुधार किए :

(1) व्यापार सम्बन्धी सुधार- कार्नवालिस ने व्यापार के सम्बन्ध में निम्नलिखित सुधार किये :

(i) भारतीय जुलाहों तथा अन्य कारीगरों की सहायता के लिए यह नियम बना दिया गया कि वे उतना ही माल कम्पनी को देने के लिए बाध्य होंगे जितने माल की उनको पेशगी दी गई है। शेष माल वे दूसरे के हाथ बेच सकते हैं।

(ii) बोर्ड-ऑफ-ट्रेड के सदस्यों की संख्या 10 से घटाकर 5 कर दी गई और उसको कलकत्ता कौंसिल के नियन्त्रण में कर दिया गया।

(iii) कम्पनी के नौकरों को माल के ठेके दिये जाने की प्रथा को समाप्त कर दिया। अब उनको कमीशन एजेन्ट बना दिया गया।

(2) न्याय सम्बन्धी सुधार- लार्ड कार्नवालिस ने न्याय-विभाग में निम्नलिखित सुधार किये :

(i) निजामत अदालत को मुर्शिदाबाद से हटाकर कलकत्ता में स्थापित किया गया। इसमें अब गवर्नर जनरल की कौंसिल के सदस्य, प्रान्त का मुख्य काजी और दो मुफ्ती होते थे।

(ii) जिले की फौजी अदालतों को तोड़कर उनके स्थान पर चार प्रान्तीय अदालतों की स्थापना की गई जिनमें तीन बंगाल में तथा एक बिहार में।

(iii) जिलों में दीवानी अदालतों की स्थापना की गई। अदालतों की अपीलें सुनने के लिये मुर्शिदाबाद, कलकत्ता, पटना तथा ढाका में प्रान्तीय अदालतों की स्थापना की गई।
(iv) रेवन्यू कोर्ट भंग कर दिये गये। इनके स्थान पर जिले में रेवन्यू अदालतें स्थापित की गईं।
(v) कई पुराने कठोर दण्ड समाप्त कर दिये गये।
(vi) सब कानूनों का संग्रह करके एक कोड का निर्माण किया गया जो 'कार्नवालिस कोड' के नाम से प्रसिद्ध है। इस कोड में पुलिस, न्याय, राजस्व तथा व्यापार आदि सभी विषयों के कानून दिये गये हैं।

3. शासन-सम्बन्धी सुधार– कार्नवालिस ने शासन में निम्नलिखित महत्वपूर्ण सुधार किये :

(i) उसने योग्यता के आधार पर व्यक्तियों की नियुक्ति के नियम बनाये।
(ii) उसने कम्पनी के नौकरों का वेतन बढ़ा दिया, लेकिन उनको यह आदेश भी दिया गया कि वह अपना निजी व्यापार न करें और न रिश्वत ग्रहण करें।
(iii) कर्मचारियों के काम छोड़ने पर निर्वाह-योग्य पेंशन की प्रथा प्रचलित कर दी गई।
(iv) उसने पुलिस विभाग की ओर भी ध्यान दिया। जमींदारों के हाथ से पुलिस का कार्य छीन लिया। बंगाल प्रान्त के जिलाधीशों को यह आदेश दिया कि वे अपने-अपने जिले में प्रत्येक 32 किमी की दूरी पर एक थाना स्थापित करें, जहाँ एक दरोगा और 15-20 पुलिसमैन रखे जायँ।
(v) उसने भारतीयों को उच्च-पदों पर नियुक्त करना बंद कर दिया क्योंकि वह उन्हें बेईमान समझता था। अतः उसने सरकारी नौकरियों में दायित्वपूर्ण पदों पर अंग्रेजों तथा अन्य योरोपियनों को ही नियुक्त किया। इस सम्बन्ध में उसने घोषणा की थी, "यह बात सभी को स्वीकार करनी पड़ेगी कि योरोप के लोगों के बड़े एवं सुव्यवस्थित दल के अभाव में इन मूल्यवान प्रदेशों पर हमारा आधिपत्य अरक्षित ही रहेगा। सुधार के सभी नियम व्यर्थ एवं निष्फल हो जायेंगे, यदि हम किसी भी भारतीय पर उनको व्यवहार में लाने के लिए निर्भर रहेंगे।"

कार्नवालिस की इस नीति से भारतीयों की उन्नति का मार्ग कुछ दिनों के लिए अवरुद्ध हो गया।

4. भूमि सम्बन्धी सुधार (स्थायी-बन्दोबस्त)– वारेन हेस्टिंग्ज ने भूमि की जो व्यवस्था की थी, वह पूर्णतया असन्तोषजनक थी। हेस्टिंग्ज के कार्य-काल में सबसे अधिक कर देने वाले जमींदार अथवा ठेकेदार को पाँच वर्ष के लिए भूमि दे दी जाती थी। जोतनेवाले किसान को सदैव इस बात का सन्देह बना रहता था कि अगले वर्ष उसे भूमि मिलेगी या नहीं। इस कारण किसान भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए अपनी पूँजी लगाना उचित नहीं समझता था। फलतः राज्य की आय प्रति पाँचवें वर्ष घटती ही जा रही थी। जब कार्नवालिस गवर्नर जनरल बनकर भारत आया तो उसने बंगाल प्रान्त के जमींदारों और किसानों की दशा का भलीभाँति अध्ययन किया। उसके सम्मुख भूमि-व्यवस्था सम्बन्धी दो समस्याएं आईं। (i) भूमि के स्वामित्व की समस्या, (ii) व्यवस्था की अवधि की समस्या। कार्नवालिस चाहता था कि भूमि का स्वामित्व जमीदारों के हाथ में होना चाहिए और साथ ही यह स्थायी भी हो। अतः उसने 1793 में भूमि स्थायी रूप से जमींदारों को दे दी और लगान की दर भी सदैव के लिए एक निश्चित कर दी। इस व्यवस्था को 'इस्तमरारी बन्दोबस्त' अथवा 'भूमिकर-प्रबन्ध' कहते हैं।

भूमिकर-प्रबन्ध के पीछे निम्न उद्देश्य निहित थे :

(1) कम्पनी की आय निश्चित करना।

(2) भारत में अंग्रेजी राज्य के समर्थक के रूप में एक जमींदार वर्ग का निर्माण करना।

(3) पूर्व प्रचलित पंचवर्षीय ठेकेदारी-प्रथा को समाप्त करना।

(4) कृषि की उन्नति करना।

स्थायी प्रबन्ध के लाभ– इस व्यवस्था के निम्नलिखित लाभ थे :

(1) कृषि की उन्नति– इस व्यवस्था से कृषि की बड़ी उन्नति हुई। भूमि पर जमींदारों का स्थायी रूप से अधिकार हो जाने के कारण बंजर भूमि को भी कृषि के योग्य बनाने का प्रयास किया गया।

(2) सरकार की आय का निश्चित हो जाना– इस व्यवस्था से सरकार की आय निश्चित हो गई और उसमें घटने-बढ़ने की आशंका न रही। अब सरकार निश्चिंत होकर अपना बजट बना सकती थी।

(3) कम्पनी के व्यय में कमी– भूमि के बार-बार प्रबन्ध करने में सरकार को काफी धन खर्च करना पड़ता था तथा लगान वसूल करने के लिये अनेक कर्मचारियों को नियुक्त करना पड़ता था। जिनका वेतन उसी लगान से देना पड़ता था। इस प्रकार कम्पनी का बहुत अधिक रुपया खर्च हो जाता था। इस व्यवस्था से कम्पनी के उक्त खर्च में कमी हुई।

(4) बंगाल प्रान्त की आर्थिक उन्नति– इस व्यवस्था से बंगाल प्रान्त भारत का सबसे धनी प्रान्त हो गया। अल्फ्रेड लॉयल के शब्दों में, "इसमें संदेह नहीं कि इस व्यवस्था ने बंगाल को साम्राज्य का सबसे धनी प्रान्त बना दिया।"

(5) जमींदार वर्ग का उदय– इस व्यवस्था ने बंगाल में एक ऐसा स्थायी जमींदार वर्ग पैदा कर दिया, जो सरकार का स्वामिभक्त सिद्ध हुआ। इनसे अंग्रेजों को भारत में अपना साम्राज्य दृढ़ करने में बड़ा सहयोग मिला।

(6) कृषक वर्ग को प्रोत्साहन– इस व्यवस्था के बाद किसानों को तब तक बेदखली का भय नहीं रहता था, जब तक वे लगान अदा करते थे। लगान देने के बाद जो धन बचता था वह किसानों का होता था। इस कारण किसान अपनी भूमि पर अधिक श्रम और पूँजी लगाने लगा।

(7) व्यापार की उन्नति– कृषि की उन्नति होने पर व्यापार-क्षेत्र में भी बहुत उन्नति हुई। जमींदारों ने अपना बहुत-सा धन व्यापार में लगाया।

(8) अन्य लाभ– (i) किसानों के ऊपर से जमीदारों का आतंक समाप्त हो गया, क्योंकि अब उन्हें निश्चित लगान ही अदा करना पड़ता था। (ii) आर्थिक स्थिति अच्छी होने के कारण ललित कलाओं का विकास हुआ। (iii) इस व्यवस्था से अंग्रेजी सरकार की लोकप्रियता बढ़ गई।

स्थायी प्रबन्ध के गुणों के विषय में कुछ प्रमुख इतिहासकारों की सम्मतियाँ निम्नवत हैं :

पी.ई. राबर्ट्स के अनुसार– "स्थायी प्रबन्ध ने ब्रिटिश सरकार को लोकप्रियता तथा स्थायित्व प्रदान कर दिया और प्रान्त (बंगाल प्रान्त) को सबसे अधिक धनी बनाने में योग दिया। इसने बार-बार भूमि व्यवस्था करने के दुर्गुणों का अन्त कर दिया। जो . . . . . आर्थिक अस्थिरता, छल, धनगोपन तथा जान-बूझकर कृषि-त्याग उत्पन्न करता था।"

आर.सी.दत्त के अनुसार– "यदि स्थायी प्रबन्ध का आशय बंगाल में पूर्णरूप से राजभक्त जमींदार तथा धन-सम्पन्न किसानों का वर्ग उत्पन्न करना था, तो इस उद्देश्य में

आशातीत सफलता मिली।"

स्थायी प्रबन्ध के दोष– इस व्यवस्था में निम्नलिखित दोष थे :

(1) कृषक वर्ग का शोषण– भूमि का स्वामित्व जमींदारों के हाथ आ जाने से वे उत्तरोतर धनी होते चले गये किन्तु किसानों की स्थिति पहले से भी अधिक खराब हो गई, क्योंकि इस सम्बन्ध में कोई नियम न था कि जमींदार किसानों से कितना लगान लें। अतः जमींदार किसानों से मनचाहा धन वसूल करने लगे। इस प्रकार गरीब किसानों का जीवन जमींदारों की इच्छा पर निर्भर हो गया। वेवरिज ने ठीक ही लिखा है, "जब केवल जमींदारों के साथ ही बन्दोबस्त किया गया और जमींदारों के समान किसानों के उचित अधिकारों की पूर्ण उपेक्षा की गई तो बहुत भारी भूल और अन्याय हुआ।"

(2) जमींदारों की तात्कालिक क्षति– स्थायी प्रबन्ध का तात्कालिक प्रभाव जमींदारों पर अच्छा नहीं हुआ, क्योंकि मालगुजारी का 90 प्रतिशत भाग सरकार का स्थायी अंश निश्चित किया गया था जिसको बहुत से जमींदार अदा करने में असमर्थ रहे। फलतः उन्हें मालगुजारी का अंश अदा करने के लिए अपनी जागीरें बेचनी पड़ीं।

(3) जमींदारों का विलासी हो जाना– इस प्रबन्ध का एक दोष यह भी था कि जिन जमींदारों की आय अधिक हो गई वे विलासी जीवन व्यतीत करने लगे और बड़े बड़े नगरों में रहने लगे। उन्होंने भूमि ठेकों पर उठाना आरम्भ कर दिया।

(4) अन्य प्रान्तों पर अधिक बोझ– सरकार का व्यय निरन्तर बढ़ता जाता था, किन्तु लगान की दर निश्चित होने के कारण वह लगान नहीं बढ़ा सकती थी। फलतः राज्य के व्यय की पूर्ति के लिए दूसरें प्रान्तों पर अधिक कर लगाये गये। डॉ. स्मिथ के मतानुसार, "तीन करोड़ रुपये का वार्षिक घाटा अन्य प्रान्तों को पूरा करना पड़ता था।"

(5) राष्ट्रीय भावना को आघात– इस व्यवस्था से जमींदार वर्ग ब्रिटिश साम्राज्य के पोषक, विश्वासपात्र तथा राजभक्त बने गये। फलतः भारत की राष्ट्रीय भावना को बड़ा आघात लगा।

(6) दुर्भिक्ष के समय भी लगान में छूट न मिलना– यदि कभी दुर्भिक्ष पड़ा या अन्य किसी कारण से पैदावार में कमी हुई, तो भी लगान में किसी प्रकार की छूट नहीं दी जाती थी।

स्थायी प्रबन्ध के विपक्ष में कुछ इतिहासकारों की सम्मतियाँ नीचे दी जाती हैं :

होम्स के अनुसार– "स्थायी भूमि-प्रबन्ध एक शोकजनक भूल थी . . . . . निचले दर्जे के जमींदारों को उससे बिल्कुल लाभ न हुआ। बार-बार जमींदार लगान चुकाने में असमर्थ रहे और उनकी जागीरें सरकार के लाभ के लिए बिकती रहीं।

ई.सी. मैक्लेगन के अनुसार– "जिन इलाकों में स्थायी भूमि प्रबन्ध लागू है वहाँ 'भूमिकर' में अंग्रेजी 'भूमिकर की भाँति' कोई विशेषता नहीं है। इस समय तो उसे अधिक-से-अधिक एक 'किराया' मात्र कहा जा सकता है। भूमि का विक्रय-मूल्य घट जाने के कारण लगान का भार भी बहुत पहले ही कम हो गया है।"

तृतीय मैसूर युद्ध (1790-92)– मंगलौर की सन्धि भी 1789 में भंग हो गई। टीपू एक महत्वाकांक्षी शासक था। उसने दिसम्बर, 1789 में ट्रावनकोर पर आक्रमण कर दिया। ट्रानवकोर का राजा अंग्रेजों का मित्र था। अंतः कार्नवालिस ने टीपू के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस बार भी अंग्रेजों ने 1 जून, 1790 को मराठों के साथ तथा 4 जुलाई, 1790 को निजाम के साथ मैत्री-सन्धि कर ली जिसके अनुसार दोनों ने सैनिक टुकड़ियों के साथ सहायता करने का वायदा किया। अंग्रेजों ने युद्ध की उपलब्धियों को तीनों में बाँटने का आश्वासन दिया।

1790 में जनरल मीडोज के नेतृत्व में सेना ने मैसूर राज्य पर असफल आक्रमण किया। फलतः दिसम्बर, 1790 में स्वयं कार्नवालिस ने सैन्य-संचालन का कार्य सम्भाल लिया और राजधानी श्रीरंगपट्टम की ओर बढ़ा। यद्यपि उसने मई में एक घमासान युद्ध में टीपू को पराजित किया, परंतु युद्ध-सामग्री के अभाव में उसे पीछे हटना पड़ा। इसके पश्चात् 1791 की गर्मियों में अंग्रेजों ने देवला और ब्लीपुर के दुर्गों पर अधिकार कर लिया। जनवरी, 1792 में अंग्रेजों ने निजाम और मराठों की संयुक्त सेनाओं के साथ श्रीरंगपट्टम पर दूसरी बार आक्रमण कर नगर के बाहरी भागों पर अधिकार कर लिया। अन्त में टीपू ने आत्मसमर्पण कर दिया और दोनों पक्षों के बीच मार्च, 1792 में श्रीरंगपट्टम की सन्धि हो गई। इस सन्धि के अनुसार टीपू को 3 करोड़ रुपया लड़ाई का हरजाना तथा आधा राज्य देना पड़ा। जब तक रुपया न चुका दिया गया, टीपू के दोनों पुत्र अंग्रेजों के पास बन्धक के रूप में रखे गये। मालावार, बारामहल, कुर्ग, डिंडिगल के क्षेत्र अंग्रेजों को और उत्तर-पश्चिम में धारवाड़ मराठों को तथा उत्तर-पूर्व में कडप्पा से करनूल तक का क्षेत्र निजाम को दिया गया। तीनों सम्मिलित शक्तियों में से प्रत्येक ने हरजाने का तिहाई भाग ले लिया।

1793 का चार्टर ऐक्ट- इंग्लैण्ड की सरकार ने 1793 में एक चार्टर ऐक्ट पास किया, जिसके द्वारा कम्पनी को भारत से व्यापार के लिए 20 वर्षों का चार्टर दे दिया गया। बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल के दो सदस्यों की नियुक्ति प्रिवी कौंसिल के बाहर से की गई। बोर्ड आँफ कण्ट्रोल के सदस्यों को, जो अभी तक अवैतनिक कार्य करते थे, भारतीय कोष से वेतन देने की व्यवस्था की गई। इस ऐक्ट के द्वारा मद्रास तथा बम्बई की सरकारों पर गवर्नर जनरल का नियंत्रण और अधिक कर दिया गया। वह उन पर उसी प्रकार नियन्त्रण रख सकता था, जिस प्रकार वह बंगाल के शासन पर नियन्त्रण रखता था।

सर जॉन शोर (1793-98)- 1793 में लार्ड कार्नवालिस इंगलैण्ड वापस चला गया। उसके चले जाने के बाद सर जॉन शोर ब्रिटिश-भारत का गवर्नर जनरल बनकर आया। वह तटस्थता तथा अहस्तक्षेप की नीति का अनुयायी था। अतः जब मराठों ने 1795 में निजाम के राज्य पर आक्रमण कर दिया, तब उसने निजाम की कोई सहायता नहीं की। फलतः मराठों ने निजाम को खुर्दा के युद्ध में बुरी तरह पराजित किया। निजाम को अपने राज्य का आधा भाग मराठों को देना पड़ा। अंग्रेजों के इस कार्य से निजाम में अविश्वास की भावना पैदा हो गई कि अंग्रेजों के दिये हुए वचन का कोई मूल्य नहीं है और वह फ्रांसीसियों की ओर झुकने पर विवश हो गया।

रुहेलखण्ड-नीति- निजाम के मामले में शोर ने अहस्तक्षेप की नीति का अनुसरण किया था, लेकिन रुहेलखण्ड के मामले में हस्तक्षेप-नीति अपनाई। 1794 में रुहेलखण्ड के शासक की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्रों में उत्तराधिकार के लिए संघर्ष प्रारंभ हो गया। शोर ने एक सेना रुहेलखण्ड भेज दी जिसने रुहेलों को परास्त कर दिया। रुहेलखण्ड का राज्य फैजुल्ला वंश वालों से छीनकर पिछले नवाब मुहम्मद अली के वंश वालों को दे दिया गया।

अवध-नीति- अवध के सम्बन्ध में शोर ने हस्तक्षेप की नीति अपनायी। कार्नवालिस ने अवध के नवाब आसफुद्दौला से यह सन्धि की थी कि उससे 50 लाख रुपये वार्षिक से अधिक धन न माँगा जायेगा और न अंग्रेजी सेना की संख्या में वृद्धि की जायेगी। परन्तु सर जॉन शोर ने इस प्रतिज्ञा का पालन नहीं किया। उस समय उत्तर-पश्चिम से काबुल के शासक जमानशाह के आक्रमण किये जाने की आशंका थी। अतएव जॉन शोर ने नवाब को साढ़े पाँच लाख रुपया वार्षिक और अधिक देने के लिये बाध्य किया तथा अंग्रेज सैनिकों की संख्या भी बढ़ा दी। इसका नवाब के हृदय पर बड़ा आघात लगा और 1797 में उसकी मृत्यु हो गई।

उसके मरने के पश्चात् नवाब पद के लिये मिर्जाअली तथा सादतअली में संघर्ष प्रारम्भ हो गया। जॉन शोर ने आसफुद्दौला के तथाकथित पुत्र वजीरअली को नवाब बनाया, किन्तु जब उसे यह ज्ञात हुआ कि वजीरअली एक दासी-पुत्र है तब उसने नवाब के भाई सादतअली को अवध की गद्दी पर बैठा दिया। उसने नये नवाब से एक सन्धि की। इस सन्धि के अनुसार कम्पनी को इलाहाबाद का किला मिला और वार्षिक कर की धनराशि 50 लाख से बढ़ाकर 76 लाख रुपया कर दी गई। नवाब ने यह वचन दिया कि वह किसी विदेशी शक्ति से किसी प्रकार की सन्धि नहीं करेगा।

सर जॉन शोर के शासन-काल की अन्तिम घटना बंगाल के योरोपीय सैनिकों का विद्रोह था। सेना ने दोहरे भत्ते की माँग की, जिससे भयभीत होकर शोर ने उसकी माँगों को स्वीकार कर लिया। शोर की इस नीति से गृह-सरकार अप्रसन्न हो गई और 1798 में वह वापस बुला लिया गया और उसके स्थान पर लार्ड वेलेजली भारत का गवर्नर जनरल होकर आया।

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ (Important Dates & Events)

1. 1786 ई. – लार्ड कार्नवालिस का भारत आगमन।
2. 1790 ई. – मैसूर का तृतीय युद्ध।
3. 1793 ई. – बंगाल का बन्दोबस्त, कार्नवालिस की वापसी तथा सर जॉन शोर का भारत आगमन।
4. 1798 ई. – सर जॉन शोर की वापसी।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. इस्तमरारी बन्दोबस्त अथवा स्थायी भूमि-कर प्रबन्ध (Permanent Settlement) के क्या कारण थे? उसके गुण-दोषों का विवेचन कीजिए।
2. लार्ड कार्नवालिस ने भूमि-कर व्यवस्था एवं न्याय-व्यवस्था में जो सुधार किये, उनका संक्षिप्त विवरण दीजिए।
3. लार्ड कार्नवालिस के प्रशासकीय सुधारों की विवेचना कीजिए। (1968,77)
4. लार्ड कार्नवालिस के प्रशासनिक तथा न्यायिक सुधारों का वर्णन कीजिए। (1979)
5. लार्ड कार्नवालिस के स्थायी भूमि-प्रबन्ध के बारे में आप क्या जानते हैं? उसके गुण-दोषों को स्पष्ट कीजिए। (1984, 87)
6. लार्ड कार्नवालिस के स्थायी भूमि प्रबन्ध के प्रमुख लक्षण की विवेचना कीजिए। (1989)
7. लार्ड कार्नवालिस के सुधारों की व्याख्या दीजिए। (1997)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "बंगाल का स्थायी बन्दोबस्त एक ऐसा अभाग्यपूर्ण सुधार था जिसके द्वारा देश का विनाश हुआ।" इस कथन के प्रकाश में लार्ड कार्नवालिस की भूमि-सम्बन्धी नीति का मूल्यांकन कीजिए।
2. "लार्ड कार्नवालिस के सुधार स्मरणीय हैं।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. लार्ड कार्नवालिस के सुधारों का वर्णन कीजिए।
2. स्थायी भूमि-प्रबन्ध से गुण व दोषों का वर्णन कीजिए।
3. अवध के सम्बन्ध में सर जॉन शोर ने कैसी नीति अपनायी?

4. कार्नवालिस के किन्हीं दो सुधारों का वर्णन कीजिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. कार्नवालिस ब्रिटिश भारत का गवर्नर बनकर कब आया?
   1786 ई. में कार्नवालिस ब्रिटिश भारत का गवर्नर बनकर आया।
2. लार्ड कार्नवालिस के दो सुधार बताइए।
   (1) शासन सम्बन्धी सुधार, तथा (2) भूमि सम्बन्धी सुधार।
3. लार्ड कार्नवालिस के स्थायी भूमि-कर प्रबन्ध के दो गुण लिखिए।
   (1) कृषि की उन्नति हुई, तथा (2) सरकार की आय निश्चित हो गई।
4. कार्नवालिस के स्थायी भूमि-कर प्रबन्ध के दो दोष बताइए।
   (1) कृषक वर्ग का शोषण, तथा (2) जमींदारों का अकर्मण्य और विलासी हो जाना।
5. कार्नवालिस का भूमि-सम्बन्धी सुधार क्या कहलाता है?
   कार्नवालिस का भूमि संबंधी सुधार 'इस्तमरारी बन्दोबस्त' कहलाता है।
6. कार्नवालिस ने भारतीयों को उच्च पदों से क्यों वंचित रखा?
   कार्नवालिस भारतीयों को भ्रष्ट और बेईमान समझता था।
7. तृतीय मैसूर युद्ध किसके बीच हुआ?
   टीपू और अंग्रेजों के बीच (1790) हुआ।
8. कार्नवालिस का न्याय-सम्बन्धी कोई एक सुधार बताइए।
   निजाम अदालत को मुर्शिदाबाद से हटाकर कलकत्ता में स्थापित किया गया।

बहुविकल्पीय प्रश्न

निर्देश : नीचे दिये गये प्रत्येक प्रश्न के चार विकल्पों में से सही विकल्प छाँटकर लिखिए :

1. स्थायी भूमि-प्रबन्ध किसने किया था?
   (क) क्लाइव ने, (ख) कार्नवालिस ने, (ग) वारेन हेस्टिंग्ज ने, (घ) वेलेजली ने।
2. श्रीरंगपट्टम की संधि किसके मध्य हुई थी?
   (क) अंग्रेजों और मराठों, (ख) अंग्रेजों और टीपू,
   (ग) अंग्रेजों और नेपाल, (घ) अंग्रेजों और हैदरअली।
3. श्रीरंगपट्टम की संधि कब हुई थी?
   (क) 1786 ई. में, (ख) 1790 ई. में, (ग) 1792 ई. में, (घ) 1795 ई. में।
4. निम्नलिखित में से किस अधिनियम के तहत लार्ड कार्नवालिस को अपनी कौन्सिल के फैसलों को रद्द करने का अधिकार मिला था–
   (क) रेग्यूलेटिंग ऐक्ट (ख) 1786 का ऐक्ट
   (ग) 1793 का चार्टर ऐक्ट (घ) 1813का चार्टर ऐक्ट।
5. मैसूर का तीसरा युद्ध कब लड़ा गया था?
   (क) 1782 ई., (ख) 1785 ई., (ग) 1790 ई., (घ) 1792 ई.।

■

16

लार्ड वेलेजली

[1798-1805]

"लार्ड क्लाइव ने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का बीजारोपण किया, वारेन हेस्टिंग्ज ने शत्रु शक्तियों के विरुद्ध उसकी रक्षा की, वेलेजली ने इसे खड़ा किया तथा लार्ड हेस्टिंग्ज ने फसल काटी। कुछ हालतों में वेलेजली की सहायक सन्धियों ने एक प्रकार से संयोजन का मैदान तैयार कर दिया।" –डॉ. मजूमदार

सर जॉन शोर के पश्चात् 26 अप्रैल, 1798 को लार्ड वेलेजली भारत का गवर्नर जनरल बनकर आया। वह पूर्ण साम्राज्यवादी था। उसका उद्देश्य भारत के देशी राजाओं के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करके ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार करना तथा फ्रांस के प्रभुत्व को इस देश से समाप्त करना था।

तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति– लार्ड वेलेजली के आगमन के समय भारत की राजनीतिक स्थिति बहुत डाँवाडोल थी। अल्फ्रेड लॉयल ने उस समय की राजनीतिक स्थिति का वर्णन करते हुए इस प्रकार लिखा है :

(1) राज्यों की प्राचीन सीमाएँ ध्वस्त हो गई थीं।

(2) अराजकता और युद्धों के परिणामस्वरूप देश विभक्त और छिन्न-भिन्न हो रहा था।

(3) मैसूर में उस समय टीपू सुल्तान का शासन था। वह अंग्रेजों का कट्टर शत्रु था।

(4) निजाम भी अंग्रेजों से असन्तुष्ट था। वह उनके विरुद्ध फ्रांसीसियों से सहायता प्राप्त कर रहा था।

(5) मुगल सम्राट शाहआलम नाम-मात्र का सम्राट था। उसकी शक्ति का पूर्णतया अन्त हो चुका था।

(6) पंजाब में राजा रणजीतसिंह ने बहुत अधिक शक्ति बढ़ा ली थी, परन्तु अंग्रेजों का सामना करने का उसमें साहस न था।

(7) मराठों का उत्तर एवं मध्य भारत में विस्तार था। ग्वालियर में सिन्धिया, बड़ौदा में गायकवाड़, बरार में भोंसला तथा इंदौर में होल्कर का शासन था। परन्तु वे आपस में निरन्तर लड़ते-झगड़ते रहते थे।

(8) अर्काट का नवाब ऊपर से अंग्रेजों का मित्र था, किन्तु भीतरी रूप में वह टीपू सुल्तान से मिला हुआ था।

वेलेजली की नीति– लार्ड वेलेजली अग्रगामी और साम्राज्यवादी नीति का पूर्ण समर्थक था। उसने भारत की स्थिति को 'अत्यन्त गम्भीर' कहा। किन्तु उसके साथ-साथ उसने यह भी बतलाया कि वह विशेष 'चिन्ताजनक नहीं' है। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने सर जॉन शोर की तटस्थता की नीति का परित्याग कर अग्रगामी नीति को अपनाया। उसने निम्नलिखित कार्यों द्वारा अपनी नीति का निर्धारण किया :

(1) देशी राजाओं के साथ मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करना।

(2) देशी राज्यों को ब्रिटिश राज्य में मिलाना।
(3) युद्ध द्वारा अंग्रेजी राज्य का विस्तार करना।

सहायक सन्धि– लार्ड वेलेजली की देशी राजाओं से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करने की नीति इतिहास में 'सहायक संधि' कहलाती है। इस सन्धि को स्वीकार करने वाले देशी राज़ाओं के लिये निम्नलिखित शर्तों को मानना अनिवार्य था :

(1) इस सन्धि को स्वीकार करने वाले राजा को कम्पनी का आधिपत्य स्वीकार करना पड़ता था और अपने राज्य में अपने ही खर्च पर अंग्रेजी सेना रखनी होती थी।
(2) उसको अपने दरबार में एक रेजीडेण्ट रखना होता था।
(3) वह अंग्रेजों की आज्ञा के बिना किसी विदेशी को अपने राज्य में नौकर नहीं रख सकता था।
(4) अंग्रेजों की स्वीकृति के बिना वह किसी राज्य से युद्ध अथवा सन्धि नहीं कर सकता था।
(5) यदि सहायक-सन्धि मानने वाले राजाओं के मध्य किसी प्रकार का झगड़ा हो जाय तो उनको अंग्रेजों को मध्यस्थ बनाना पड़ता था। अंग्रेजी कम्पनी के निर्णय स्वीकार करने को वे बाध्य किये जाते थे।
(6) जो राज्य उक्त शर्तों को स्वीकार कर लेता था, उस राज्य के बाह्य आक्रमणों तथा आन्तरिक विद्रोह से रक्षा करने का उत्तरदायित्व अंग्रेज ले लेते थे।

अंग्रेजी सत्ता पर प्रभाव
या
सहायक सन्धि के गुण

सहायक-सन्धि से अंग्रेजों को निम्नलिखित लाभ हुए :

(1) कम्पनी के साधनों में वृद्धि– सहायक संधि द्वारा कम्पनी के साधनों में बड़ी वृद्धि हुई, जिसके कारण वह भारत में सर्वोच्च सत्ता बन गई। उसका देशी राज्यों की बाह्य-नीति पर पूर्ण नियन्त्रण तथा अधिकार स्थापित हो गया।

(2) सैनिक व्यय में कमी– कम्पनी का व्यय कम हो गया, क्योंकि जो सेना देशी राजाओं के राज्यों में रहती थी, उसका सम्पूर्ण व्यय या देश का कुछ भाग देशी राजाओं को देना पड़ता था। इससे कम्पनी की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो गई।

(3) कम्पनी का राज्य बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित– इस व्यवस्था के अन्तर्गत जो सेना देशी राज्यों में रहती थी, उसके कारण कम्पनी का राज्य बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित हो गया और कम्पनी को अनेक युद्धों से छुटकारा मिल गया।

(4) फ्रांसीसी प्रभाव का अन्त– इस सन्धि के मानने वाले राजा अंग्रेजों की स्वीकृति के बिना किसी विदेशी को अपने राज्य में नौकर नहीं रख सकते थे। इससे देशी राज्यों पर से फ्रांसीसी प्रभाव का अन्त होना आरम्भ हो गया।

(5) देशी राजाओं को जन-हित के कार्य करने का अवसर प्राप्त होना– इस सन्धि के अनुसार कम्पनी ने देशी राज़ाओं की सुरक्षा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया था। अतः राजाओं को जन-हित के कार्य करने का अच्छा अवसर मिल गया।

(6) वेलेजली के उद्देश्य की पूर्ति– इस सन्धि के द्वारा वेलेजली को अपनी साम्राज्यवादी नीति की पूर्ति में भी बड़ा सहायता मिली।

देशी राज्यों पर प्रभाव
या
सहायक सन्धि के दोष

इस सन्धि से निम्नलिखित हानियाँ हुईं :

(1) देशी राजाओं का शक्तिहीन हो जाना– इसके द्वारा देशी राजा शक्तिहीन हो गये। उनका अपने राज्य की बाह्य-नीति पर कोई अधिकार न रह गया, क्योंकि अब वे अंग्रेजों की आज्ञा के बिना न तो किसी से सन्धि कर सकते थे और न युद्ध ही।

(2) आर्थिक संकट– कम्पनी की सेना रखने वाले राज्यों को सेना का सम्पूर्ण व्यय देना पड़ता था। इस कारण उनको आर्थिक संकट का भी सामना करना पड़ा।

(3) बेकारी की समस्या– देशी राजाओं को अंग्रेजी सेना रखना अनिवार्य था। अतः उन्होंने अपनी स्थायी सेना के बहुत से सैनिकों को पृथक् कर दिया। इससे बहुत से सैनिक बेकार हो गये और राज्यों में बेकारी की समस्या उत्पन्न हो गई। बेकार सैनिकों ने चारों ओर विद्रोह करना प्रारम्भ कर दिया।

(4) जनता को कष्ट– देशी राजाओं के समक्ष आर्थिक संकट होने के कारण जनता को अधिक करों का बोझ वहन करना पड़ा, जिससे जनता को बड़े कष्टों का सामना करना पड़ा।

(5) देशी राजाओं का विलासी और निष्क्रिय हो जाना– इस सन्धि के फलस्वरूप देशी राजा विलासी और निष्क्रिय हो गये। वे कम्पनी पर पूर्णतया निर्भर रहने लगे, क्योंकि कम्पनी ने उनकी आन्तरिक सुव्यवस्था और बाह्य रक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया था।

देशी राजाओं द्वारा सहायक-सन्धि स्वीकार करना

(1) वेलेजली और निजाम : निजाम के साथ सन्धि– वेलेजली की साम्राज्यवादी नीति का शिकार सर्वप्रथम निजाम हुआ। 1795 में वह खुरदा के युद्ध में मराठों से पराजित होकर दुर्बल हो गया। उसने विवश होकर 1798 में अंग्रेजों से सहायक सन्धि कर ली, जिसके अनुसार–

(क) उसको अपने राज्य में स्थायी रूप से 6 बटालियन अंग्रेजी सेना रखनी पड़ी।

(ख). उसको अंग्रेजों को बिलारी और कड़ा प्रदेश देना पड़ा।

(ग) उसको फ्रांसीसी सेना को अपने राज्य से अलग करना पड़ा।

1800 में एक नई सन्धि के अनुसार निजाम के राज्य में सहायक सेना में वृद्धि कर दी गई और अंग्रेजों ने आन्तरिक विद्रोहों तथा बाह्य आक्रमणों से उसकी रक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया। इस प्रकार निजाम के आन्तरिक और बाह्य नीति पर अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हो गया और निजाम उनके अधीन हो गया।

(2) वेलेजली तथा मैसूर : मैसूर राज्य के साथ सन्धि– निजाम की शक्ति का अन्त करने के पश्चात् लार्ड वेलेजली का ध्यान मैसूर राज्य की ओर आकर्षित हुआ। अंग्रेजों ने तृतीय मैसूर युद्ध में टीपू सुल्तान की शक्ति को आघात पहुँचाया था और उसे सन्धि के लिए विवश किया था। अतः वह अंग्रेजों का कट्टर शत्रु हो गया था। उसने फ्रांसीसियों से सहायता प्राप्त करके अपनी सेना का संगठन करना आरम्भ कर दिया था और मित्र नरेशों की खोज में उसने अरब, काबुल, कुस्तुनतुनिया और मारीशस तक राजदूत भेजे थे।

चौथा मैसूर युद्ध (1799)– टीपू की गति-विधियों का अध्ययन करने के पश्चात् वेलेजली इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि टीपू के साथ युद्ध करना अनिवार्य है। 1799 में उसने टीपू के पास सहायक सन्धि का प्रस्ताव भेजा, परन्तु टीपू ने उसे अस्वीकार कर दिया। फलतः

वेलेजली ने सैनिक तैयारी बड़ी तेज गति से आरम्भ कर दी तथा मराठों और निजाम को अपनी ओर मिला लिया। इसके पश्चात् उसने फरवरी, 1799 में टीपू के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और दो ओर से टीपू पर आक्रमण कर दिया। सेना का एक भाग कैप्टन हैरिस के नेतृत्व में था। टीपू ने बड़ी वीरता से अंग्रेजी सेनाओं का सामना किया, किन्तु सदासोर तथा मलावली नामक स्थानों पर पराजित हुआ। विवश होकर टीपू ने श्रीरंगपट्टम के दुर्ग में शरण ली। अंग्रेजों ने दुर्ग का घेरा डाल दिया। दुर्ग की रक्षा करता हुआ वह वीर पुरुष 4 मई, 1799 को दुर्ग के फाटक पर मारा गया। इस प्रकार आपसी फूट के कारण मैसूर पर अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हो गया।

मैसूर का विभाजन– युद्ध में विजयी होने के पश्चात् अंग्रेजों ने मैसूर राज्य का विभाजन इस प्रकार किया :

(1) अंग्रेजों को कनारा, कोयम्बटूर, धारापुरम तथा श्रीरंगपट्टम के प्रदेश मिले।
(2) निजाम को गुटी, गुरुमकोंड तथा चितल दुर्ग के कुछ प्रदेश मिले।
(3) मराठों को मैसूर के उत्तर-पश्चिम के प्रदेश दिये गये, किन्तु उन्होंने इन्हें लेने से इन्कार कर दिया। अतः इन भागों को भी निजाम तथा अंग्रेजों ने परस्पर बाँट लिया।
(4) मैसूर राज्य का शेष भाग बादियार वंश के राजा चामराज के अल्पवयस्क पुत्र कृष्ण को दे दिया गया और उससे अंग्रेजों ने निम्न सन्धि की :
    (1) राज्य की सुरक्षा के लिये उसे अपने ही खर्चे पर एक अंग्रेजी सेना रखनी होगी।
    (2) उसके व्यय के लिये उसको 7 लाख रुपया प्रतिवर्ष देना होगा।
    (3) उसने अंग्रेजों को यह वचन दिया कि वह किसी भी विदेशी को अपने राज्य में नौकर नहीं रखेगा और न ही किसी विदेशी व्यक्ति से पत्र-व्यवहार करेगा।

युद्ध के परिणाम– मैसूर का चतुर्थ युद्ध भारत के इतिहास में एक निर्णायक युद्ध था। इसके निम्नलिखित महत्वपूर्ण परिणाम हुए :

(1) अंग्रेजों के कट्टर शत्रु टीपू का अन्त हो गया।
(2) मैसूर को छोटा तथा शक्तिहीन बना दिया गया। उसमें अंग्रेजों के विरुद्ध खड़े होने की सामर्थ्य नहीं रह गई।
(3) मैसूर की आर्थिक तथा सैनिक शक्ति पर अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हो गया।

मैसूर के इस युद्ध के परिणामों के विषय में डीन हट्टन ने सत्य ही लिखा है, "सैनिक, आर्थिक, शान्ति-स्थापना सम्बन्धी व्यवस्था के दृष्टिकोण से क्लाइव के बाद मैसूर-विजय ब्रिटिश शक्ति की शानदार सफलता है।" इस सम्बन्ध में स्वयं वेलेजली ने भी लिखा है, "यह घटना वास्तव में चमत्कारपूर्ण, यशस्वी और मेरी बड़ी-बड़ी आशापूर्ण संभावनाओं में वास्तविक रूप से अधिक लाभदायक है।"

निःसंदेह मैसूर-विजय लार्ड वेलेजली की सबसे बड़ी सफलता थी। उसके इस कार्य की बड़ी प्रशंसा की गई और उसको 'मार्किस ऑफ वेलेजली' की उपाधि प्रदान की गई। वास्तव में इस कार्य से अंग्रेजों को अत्यधिक लाभ हुआ और कम्पनी का राज्य पूर्व में कोरोमण्डल से लेकर मालावार तक फैल गया।

टीपू का मूल्यांकन– टीपू सुल्तान का भारतीय इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। उसका जन्म 20 नवम्बर, 1751 को हुआ था। वह अंग्रेजों का कट्टर शत्रु था। उसने अंग्रेजों को भारत से निकालने का पूर्ण प्रयास किया था। इसीलिए अंग्रेज इतिहासकारों ने उसकी कटु आलोचना की है। कर्क पैट्रिक ने उसके विजय में लिखा है, "उसका दृष्टिकोण बड़ा कुंठित और बर्बर था। हैदरअली ने जिस राज्य को अपने श्रम तथा शौर्य से स्थापित किया, टीपू ने

उसी राज्य को अपनी अदूरदर्शिता तथा अनीतिज्ञता के कारण समाप्त कर डाला।" कर्नल विल्सन के अनुसार, "हैदर शायद ही कभी गलती करता और टीपू शायद ही कभी ठीक रास्ते पर चलता था। उसके असीम अत्याचारों के कारण उसकी राज्य का प्रत्येक हिन्दू उसके शासन से घृणा करने लगा था। जहाँ कठोरता पाप होती थी वहाँ वह बर्बर बन जाता था और जहाँ कठोरता एक गुण होती थी, वहाँ वह अकर्मण्य बन जाता था।" टीपू अंग्रेजों के हाथ अपनी स्वतंत्रता बेचने के पक्ष में नहीं था। पी.ई. राबर्ट्स ने लिखा है, "लोग अपने गुण और अवगुण के प्रति समानुरूप नहीं होते। टीपू का ऐसा पुरुषोचित उद्देश्य अहितकर व दुराग्रहपूर्ण होते हुए भी पूर्वी शासकों में इतनी स्थिरता से नहीं प्राप्य है और इसी कारण वह अपनी भयानक बुराइयों के होते हुए भी अंग्रेजों के विरोधियों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने में सक्षम है।"

टीपू के ऊपर यह आरोप लगाया गया है कि वह गैर-मुसलमानों के प्रति पूर्णरूप से अमानवीय दृष्टिकोण अपनाता था। हो सकता है इसमें कुछ सत्य का अंश हो, लेकिन सत्य तो यह था कि पुरनैया और कृष्णराव जैसे हिन्दू टीपू के राज्य में ऊँचे स्थानों पर थे और विश्वासपात्र तथा उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य संभालते थे। हमारे मत में सत्यता का अंश तब अधिक होगा जब हम यह कहें कि टीपू अपने शत्रुओं के प्रति अधिक क्रूर था, सभी गैर-मुसलमानों के प्रति नहीं।

टीपू प्रशासन के क्षेत्र में एक कुशल प्रशासक था। 'वह विदेशों में अपने व्यापार को बढ़ाना चाहता था। जिसके लिए विदेशों में उसने दूत भेजे। उसने 9 कमिश्नरों का एक बोर्ड आफ ट्रेड स्थापित किया जो समुद्र एवं स्थल से होकर व्यापार के विकास का कार्य करते थे। उसने नाप-तौल-विधि में परिवर्तन किया, नवीन सिक्के प्रचलित किये, नया कैलेण्डर प्रारम्भ किया तथा घूसखोर अधिकारियों के विरुद्ध कठोर कार्रवाई की। उसने सेना को पुनर्गठित किया और युद्ध विधियों को संग्रहीत किया।'

टीपू कई भाषाओं का ज्ञाता था। वह विद्वानों का आदर करता था और विद्वानों को दरबार में संरक्षण देता था। उसने एक शानदार पुस्तकालय की भी स्थापना की थी।

कतिपय अंग्रेज इतिहासकारों ने टीपू की प्रशंसा भी की है। डिरों के अनुसार, "टीपू का राज्य खूब बसा हुआ था, उसके उर्वर प्रदेशों में अच्छी खेती होती थी। मैसूर राज्य की सेना का अनुशासन तथा राजभक्ति प्रशंसनीय थी। यद्यपि टीपू कठोर तथा स्वेच्छाचारी शासक था तथापि वह सदैव अपनी प्रजा के दुःख-सुख का ध्यान रखता था। उसका राज्य सुख-सम्पन्न था। व्यापार की उत्तरोत्तर उन्नति हो रही थी, बड़े-बड़े नगरों की संख्या बढ़ रही थी और प्रजा स्वतन्त्रतापूर्वक अपने-अपने व्यापारिक कार्य को करती थी।" एक सैनिक अधिकारी लेफ्टिनेन्ट मूर ने लिखा है, " जब कोई पर्यटक किसी अपरिचित देश में भ्रमण करते हुए उसको भली-भाँति खेती से भरपूर, परिश्रमी प्रजा से आबाद, नये बसाये नगरों से शोभायमान, व्यापार की उन्नति में संलग्न, नगरों की संख्या बढ़ाने में प्रयत्नशील और सर्वतोमुखी विकास से सुखी पाता है तो वह स्वभावतया इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि वहाँ का शासन प्रजा के अनुकूल है। यही उसके (टीपू) शासन-तंत्र के विषय में हमारा निष्कर्ष है।"

(3) वेलेजली और अवध : अवध के साथ सन्धि- वेलेजली ने अवध को अंग्रेजी राज्य में मिलाने की योजना बनाई। उसने नवाब पर कुशासन का आरोप लगाया तथा यह भी बहाना किया कि भारत पर जमानशाह का आक्रमण होनेवाला है। अतः उसको अपनी सेना भंग कर अंग्रेजी सेना में वृद्धि करनी चाहिये जिससे जमानशाह के आक्रमण को सफलतापूर्वक रोका जा सके। परन्तु नवाब ऐसा करने के लिए तैयार नहीं हुआ। इस पर वेलेजली ने उसको गद्दी का परित्याग करने का आदेश दिया। अन्त में बाध्य होकर 1801 में उसने सहायक सन्धि स्वीकार कर ली। इसके अनुसार-

(1) अवध की सेना का विघटन कर दिया गया और अंग्रेजी सेना में वृद्धि कर दी गई।
(2) अंग्रेजी सेना के व्यय के लिये अवध राज्य का आधा भाग अंग्रेजों को प्राप्त हुआ।
(3) नवाब के दरबार में एक अंग्रेज रेजीडेण्ट रहने लगा तथा उसको अवध के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त हो गया।

सन्धि का महत्व– यह सन्धि अंग्रेजों के लिये अत्यधिक लाभदायक सिद्ध हुई। इसके द्वारा कम्पनी का अवध पर पूर्ण अधिकार स्थापित हो गया और नवाब शक्तिहीन होकर अंग्रेजों के हाथ का कठपुतली बन गया। ओवेन ने इस सन्धि के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, "हमारी सीमा का परिशोधन तथा नवाब का प्रादेशिक पृथक्करण केवल बड़ी योजना के भाग ही नहीं थे वरन् विशेषतः ऐसी संकटमय परिस्थिति में स्वतः इन कार्यों का अत्यधिक महत्व था।" लेकिन सर लॉयल ने वेलेजली के इस कार्य की आलोचना की है। उन्होंने लिखा है, "वेलेजली ने कम्पनी के हित के समय अकेले अधीनस्थ की भावनाओं तथा स्वार्थों पर कोई ध्यान नहीं दिया और ऐसा करते समय उसने तनिक भी धैर्य, सहिष्णुता या उदारता नहीं दिखाई।"

(4) वेलेजली तथा मराठे : द्वितीय मराठा युद्ध (1802)– टीपू से निपटने के पश्चात् वेलेजली का ध्यान मराठों की ओर आकृष्ट हुआ। उसने मराठों की राजनीति में हस्तक्षेप करने का निश्चय किया। उसे इसके लिये सुअवसर भी प्राप्त हो गया। 1800 में मराठा संघ के दूरदर्शी राजनीतिज्ञ नाना फड़नवीस की मृत्यु हो गई। जब तक वह जीवित रहा मराठों के पारस्परिक कलह को रोकने में सफल रहा। परन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त मराठा संघ में कोई ऐसा व्यक्ति न था जो महत्वाकांक्षी मराठा सरदारों को एकता के सूत्र में बाँध सकता। दौलतराव सिन्धिया, जसवन्तराव होल्कर तथा पेशवा बाजीराव द्वितीय में प्रमुख शक्ति के लिए परस्पर संघर्ष आरम्भ हो गया। पेशवा तथा सिन्धिया ने होल्कर के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बनाया। अतः 25 अक्टूबर, 1802 को होल्कर ने पूना पर आक्रमण कर पेशवा तथा सिन्धिया की संयुक्त सेना को बुरी तरह परास्त कर दिया और पूना पर अधिकार कर लिया। पेशवा ने भागकर 16 दिसम्बर को बेसीन में अंग्रेजों की शरण ली। 31 दिसम्बर, 1802 को पेशवा और अंग्रेजों के बीच बेसीन की सन्धि हो गई। इस सन्धि की मुख्य शर्तें निम्न थीं :

1. पेशवा ने अंग्रेजों की पूर्ण अनुमति के बिना किसी भी राज्य से संघर्ष न करने का और अंग्रेजों ने बाजीराव के क्षेत्र को सुरक्षित रखने का वायदा किया।
2. अंग्रेजों ने अपने 60,000 सैनिकों के स्थायी रूप से बाजीराव के क्षेत्र में रखने का आश्वासन दिया। इसके खर्च के लिए बाजीराव ने 26 लाख रुपये वार्षिक आय वाला क्षेत्र अंग्रेजों को दे दिया।
3. पेशवा बाजीराव ने यह वायदा किया कि वह किसी अंग्रेज विरोधी योरोपीय जाति के सदस्यों को अपने यहाँ नौकर नहीं रखेगा।
4. निजाम तथा गायकवाड़ के विवाद में पेशवा अंग्रेजों की मध्यस्थता स्वीकार करेगा।

अन्य सहायक सन्धियों की अपेक्षा बेसीन की सन्धि अधिक महत्वपूर्ण थी, क्योंकि यह सन्धि एक राज्य के साथ न होकर राज्यों के एक संघ के साथ थी। पेशवा मराठा संघ का अध्यक्ष था। सिडनी ओवन ने लिखा है, "इस सन्धि के पूर्व भारत में एक अंग्रेजी साम्राज्य था। वह अब भारत का अंग्रेजी साम्राज्य हो गया। इस सन्धि के पश्चात् भारत के चारों प्रमुख राज्यों की राजधानियों (लखनऊ, हैदराबाद, मैसूर और पूना) में अंग्रेजी दूत एवं प्रतिनिधि रहते थे।"

युद्ध की प्रमुख घटनाएँ– बेसीन की सन्धि को सुनकर सिन्धिया और भोंसले

अत्यधिक क्रुद्ध हुए। सिन्धिया ने अपने क्रोध को व्यक्त करते हुए कहा कि बेसीन की सन्धि ने तो मेरे सिर की पगड़ी ही उतार दी है। परन्तु इस घड़ी में भी मराठा सरदारों में एकता न हुई। मराठा सरदार गायकवाड़ और होल्कर अलग ही रहे। इधर वेलेजली ने मराठों की फूट का लाभ उठाकर सिन्धिया, भोंसले के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। दक्षिण भारत में आर्थर वेलेजली के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना ने सिन्धिया और भोंसले की संयुक्त सेना को सितम्बर, 1803 में असाई के युद्ध में पराजित किया। नवम्बर, 1803 में आरगाँव के युद्ध में भोंसले की पुनः हार हुई। अन्त में विवश होकर भोंसले ने दिसम्बर, 1803 में अंग्रेजों के साथ देवगाँव की सन्धि कर ली। सन्धि के अनुसार उसे कटक तथा बालासोर के प्रदेश अंग्रेजों को देने पड़े। उसने नागपुर में ब्रिटिश रेजिडेंट रखना स्वीकार कर लिया। उसने यह भी वचन दिया कि वह किसी भी अंग्रेज विरोधी यूरोपीय जाति के सदस्यों को अपने यहाँ नौकर न रखेगा। परन्तु उसने अपने राज्य में अंग्रेजी सहायक सेना रखना स्वीकार नहीं किया।

उत्तर भारत में भी अंग्रेजों को पूर्ण सफलता मिली। जनरल लेक ने अलीगढ़, दिल्ली, मथुरा, तथा आगरा पर अधिकार कर लिया और सिन्धिया की सेना को लासवाड़ी युद्ध में बुरी तरह पराजित किया। सिन्धिया ने विवश होकर 30 दिसम्बर, 1803 को अंग्रेजों से 'सुर्जी अर्जुनगाँव' की सन्धि कर ली। सन्धि के अनुसार उसने गंगा-यमुना का दो-आब, दिल्ली-आगरा क्षेत्र, बुन्देलखण्ड का कुछ भाग, भड़ौंच और अहमदनगर का दुर्ग तथा गुजरात के कुछ जिले और गोदावरी तट का क्षेत्र अंग्रेजों को दे दिया। उसने अंग्रेज विरोधी योरोपीय राज्यों के नागरिकों को अपने यहाँ नौकरी न देने का भी वायदा किया। इस समय उसने सहायक सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं किये। अंग्रेजों ने भी उसे मजबूर नहीं किया।

इन सन्धियों का ब्रिटिश शासन के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इससे अंग्रेजों को बड़ा लाभ हुआ। इस सम्बन्ध में मुनरो ने लिखा है, "इन सन्धियों द्वारा हम पूर्णरूप से भारत के स्वामी बन गये हैं। यदि हम इसको सुदृढ़ करने के लिये उचित व्यवस्था की तलाश करें तो हमारी शक्ति का किसी भी प्रकार अन्त नहीं हो सकता है।"

जसवन्तराव होल्कर से युद्ध– सिन्धिया और भोंसले की पराजय के पश्चात् वेलेजली ने जसवन्तराव होल्कर से सहायक संधि के प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए कहा, किन्तु उसने अस्वीकार कर दिया। उसने अंग्रेजों के मित्र जयपुर राज्य में लूट-पाट करना आरम्भ कर दिया। फलतः अप्रैल, 1804 में वेलेजली ने होल्कर के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। आरम्भ में होल्कर ने अंग्रेजी सेना को बुरी तरह पराजित किया। परन्तु बाद में फर्रूखाबाद और डीग के युद्धों में उसे पराजित होना पड़ा। अन्त में होल्कर ने भरतपुर के जाट राजा के यहाँ शरण ली। लेक ने भरतपुर के दुर्ग को जीतने के लिए 9 फरवरी और 21 फरवरी, 1805 के मध्य चार बार आक्रमण किया, किन्तु उसे असफलता मिली। युद्ध चल ही रहा था कि कम्पनी के संचालकों ने 1805 में वेलेजली को वापस इंग्लैण्ड बुला लिया और द्वितीय मराठा युद्ध का अन्त हो गया।

अन्य देशी राज्यों का अपहरण– वेलेजली ने न केवल सहायक सन्धि द्वारा अनेक देशी राज्यों को कम्पनी के संरक्षण में ले लिया, बल्कि उसने अपहरण नीति द्वारा निम्न राज्यों को कम्पनी के राज्य में मिला लिया :

वेलेजली और अन्य देशी राज्य

1. कर्नाटक
2. तंजौर
3. सूरत
4. फर्रूखाबाद

(1) कर्नाटक– वेलेजली की अपहरण-नीति का सर्वप्रथम शिकार कर्नाटक का नवाब बना। वह

कम्पनी की अंग्रेजी सेना का खर्च देने में पूर्णतः असमर्थ था। अतः वेलेजली ने नवाब को पेंशन दे दी और उसके राज्य को कंपनी के राज्य में सम्मिलित कर लिया।

(2) तंजौर– वेलेजली ने तन्जौर के छोटे से मराठा राज्य को इसी प्रकार 1798 में कम्पनी के संरक्षण में ले लिया और वहाँ के राजा सर्फोजी को 40 हजार वार्षिक पेंशन दे दी गई।

(3) सूरत– 1799 में सूरत के नवाब की मृत्यु के पश्चात् उसका भाई नवाब बना।

वेलेजली के समय
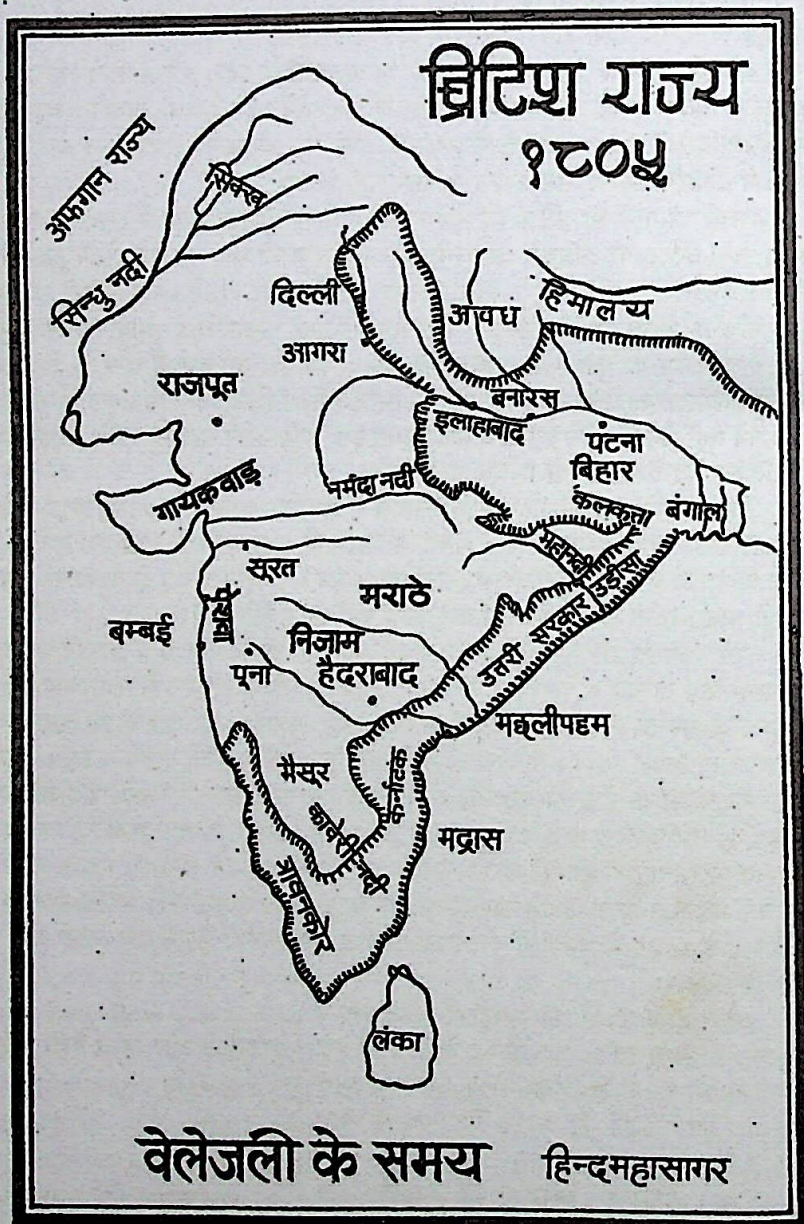
वेलेजली की इच्छानुसार वह धन न दे सका। फलतः वेलेजली ने उसे गद्दी से हटा दिया और सूरत को कम्पनी के राज्य में सम्मिलित कर दिया।

(4) फर्रूखाबाद– वेलेजली ने फर्रूखाबाद के नवाब को भी पेंशन दे दी और फर्रूखाबाद को कम्पनी के संरक्षण में ले लिया।

वेलेजली के कार्यों का मूल्यांकन– भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के निर्माताओं में वेलेजली को प्रमुख स्थान प्राप्त है। वह ब्रिटिश सत्ता को स्थापित करने के उद्देश्य से भारत आया। निःसन्देह उसे अपने उद्देश्यों में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। उसकी सहायक सन्धियाँ अंग्रेजी राज्य को सुदृढ़ करने में विशेष सहायक सिद्ध हुईं। अंग्रेजों को आन्तरिक झगड़ों और बाह्य आक्रमणों से भय न रहा। उनकी सहायक सन्धि की नीति से देशी राजा पंगु हो गये। अंग्रजों के संरक्षण में निर्भय रहकर वे पूर्णरूप से विलासी और अयोग्य हो गये। वेलेजली ने मराठों को परास्त कर अंग्रेजी शक्ति की धाक जमा दी। सैद्धान्तिक रूप में उसने सम्पूर्ण भारत में अंग्रेजों की प्रभुसत्ता स्थापित कर दी। डॉ. ईश्वरी प्रसाद के ठीक ही लिखा है, "वास्तव में इसमें संदेह नहीं कि भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना करने का बहुत कुछ श्रेय वेलेजली को है।" वेलेजली के कार्यों का मूल्यांकन करने पर अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि क्लाइव ने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना की, वारेन हेस्टिंग्ज ने उसे सुसंगठित तथा सुव्यवस्थित किया और वेलेजली ने उसे विस्तृत किया और उसकी मर्यादा तथा प्रतिष्ठा में वृद्धि की और उसे भारत की सार्वभौम शक्ति बना दिया।

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ (Important Dates & Events)

1. 1798 ई. – वेलेजली का भारत आगमन।
2. 1799 ई. – मैसूर का चतुर्थ युद्ध।
3. 1800 ई. – नाना फड़नवीस की मृत्यु।
4. 1802 ई. – द्वितीय मराठा युद्ध।
5. 1803 ई. – सुर्जी अर्जुनगाँव की सन्धि।
6. 1805 ई. – वेलेजली की वापसी।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. लार्ड वेलेजली की सहायक सन्धि प्रथा से आप क्या समझते हैं? इन सन्धियों का अंग्रेजी सत्ता और देशी शासकों पर क्या प्रभाव पड़ा? (1951)
2. लार्ड वेलेजली के आगमन के समय भारत की राजनीतिक स्थिति क्या थी? उसने किस प्रकार उसे संभाला? (1960)
3. वेलेजली की सहायक सन्धि क्या थी? उसका महत्व व्यक्त कीजिए। (1961)
4. सहायक सन्धि से आप क्या समझते हैं? भारत में ब्रिटिश राज्य के विकास में यह नीति किस प्रकार सहायक रही? (1967,69,85)
5. टीपू सुल्तान ने अंग्रेजों की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने के लिये क्या-क्या प्रयास किये? (1978)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "वास्तव में इसमें संदेह नहीं कि भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना करने का बहुत कुछ श्रेय वेलेजली को है।" इस कथन के आलोक में उसकी साम्राज्यवादी नीति का

उल्लेख कीजिए।

2. "बेसीन की सन्धि ने मराठों के पतन का मार्ग प्रशस्त किया।" इस कथन के सन्दर्भ में लार्ड वेलेजली की मराठों के प्रति नीति का उल्लेख कीजिए। (1987)
3. "वेलेजली की सहायक सन्धि ने देशी नरेशों की प्रतिष्ठा धूल में मिला दी।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
4. "लार्ड वेलेजली भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार करने के लिए दृढ़ संकल्प था।" इस कथन की पुष्टि उसकी नीति और राजनीतिक कार्यकलापों का उल्लेख स्पष्ट रूप से कीजिए। (1996)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. वेलेजली की सहायक सन्धि की नीति क्या थी?
2. सहायक सन्धि नीति के गुण एवं दोष क्या थे?
3. वेलेजली ने सहायक सन्धि नीति के अन्तर्गत किन-किन राज्यों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया?
4. टीपू सुल्तान की उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।
5. सहायक सन्धि की प्रमुख शर्तें बताइए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **सहायक सन्धि-प्रथा चलाने का श्रेय किसको है?**
   सहायक सन्धि-प्रथा चलने का श्रेय लार्ड वेलेजली को है।
2. **लार्ड वेलेजली की सहायक सन्धि की दो शर्तें बताइए।**
   (1) देशी राजा को अपने दरबार में एक अंग्रेज रेजीडेन्ट रखना होता था, तथा
   (2) अंग्रेजों की स्वीकृति के बिना देशी नरेश किसी राज्य से युद्ध अथवा सन्धि नहीं कर सकता था।
3. **सहायक सन्धि स्वीकार करने वाले दो देशी राज्यों के नाम लिखिए।**
   (1) हैदराबाद, तथा (2) अवध।
4. **सहायक सन्धि के दो गुण बताइए।**
   (1) सैनिक व्यय में कमी, तथा (2) कम्पनी का राज्य वाहरी आक्रमणों से सुरक्षित।
5. **सहायक सन्धि के दो दोष बताइए।**
   (1) देशी राजाओं का शक्तिहीन हो जाना, तथा (2) बेकारी की समस्या का उत्पन्न हो जाना।
6. **बेसीन की सन्धि किनके बीच हुई थी?**
   बेसीन की सन्धि पेशवा बाजीराव द्वितीय और अंग्रेजों के बीच हुई थी।
7. **'बेसीन की सन्धि ने तो मेरे सिर की पगड़ी उतार ली है'– यह कथन किसका है?**
   यह कथन सिन्धिया का है।
8. **लार्ड वेलेजली का शासन-काल बताइए।**
   1798 ई. से 1805 ई. तक भारत में लार्ड वेलेजली का शासन काल रहा।

बहुविकल्पीय प्रश्न

निर्देश : नीचे दिये गये प्रत्येक प्रश्न के चार विकल्पों में से सही विकल्प छाँटकर लिखिए :

1. **सहायक सन्धि के लिए कौन प्रसिद्ध है?**
   (क) कार्नवालिस, (ख) हेस्टिंग्ज, (ग) वेलेजली, (घ) क्लाइव।

2. चौथा मैसूर युद्ध कब हुआ था?
(क) 1798 ई. में, (ख) 1799 ई. में, (ग) 1800 ई. में, (घ) 1801 ई. में।

3. दूसरा मराठा युद्ध कब हुआ था?
(क) 1799 ई. में, (ख) 1800 ई. में, (ग) 1802 ई. में, (घ) 1805 ई. में।

4. 'सुर्जी अर्जुनगाँव सन्धि' किसके मध्य हुई थी?
(क) अंग्रेजों और टीपू, (ख) अंग्रजों और सिन्धिया
(ग) अंग्रेजों और होल्कर, (घ) अंग्रेजों और भोंसले।

5. 'बेसीन की सन्धि' कब हुई थी?
(क) 1801 ई. में, (ख) 1802 ई. में, (ग) 1803 ई. में, (घ) 1804 ई. में।

6. टीपू सुल्तान की मृत्यु कब हुई थी?
(क) 1770 ई. में, (ख) 1773 ई. में, (ग) 1775 ई. में, (घ) 1799 ई. में।

7. सहायक सन्धि को निम्नलिखित में से किस शासन अथवा राज्य ने स्वीकार नहीं किया था?
(क) अवध का नवाब, (ख) निजाम-हैदराबाद,
(ग) भरतपुर, (घ) पेशवा।

8. नाना फड़नवीस की मृत्यु कब हुई थी?
(क) 1798 ई., (ख) 1799 ई., (ग) 1800 ई., (घ) 1802 ई.।

■

17

कार्नवालिस, बार्लो तथा मिण्टो

[1805-1813]

"लार्ड कार्नवालिस को दूसरी बार भारत इसलिए भेजा गया कि वह उस शरारत को असफल कर सकेगा, जिसे लार्ड वेलेजली द्वारा व्याप्त समझा जाता था। वह इस निश्चय के साथ भारत आया कि वह निर्हस्तक्षेप नीति को यहाँ लागू करेगा।" –महाजन

कार्नवालिस (1805)

लार्ड वेलेजली की अग्रगामी नीति से कम्पनी का ऋण बहुत अधिक बढ़ गया था तथा साम्राज्य का बहुत अधिक विस्तार हो गया था, जिसका संगठन करना आवश्यक था। अतः कम्पनी के संचालकों ने वेलेजली को वापस बुला लिया और उसके स्थान पर कार्नवालिस को पुनः भारत का गवर्नर जनरल बनाकर भेजा। जिस समय वह भारत आया, उस समय होल्कर से युद्ध चल रहा था। कार्नवालिस ने उस युद्ध को समाप्त करने का निश्चय किया। उसने सिन्धिया तथा अन्य मराठा सरदारों से नये आधार पर सन्धि करने की इच्छा प्रकट की। सिंधिया से छीने हुए कुछ प्रदेश लौटाकर सन्धि कर ली। वह सिन्धिया को दिल्ली भी पुनः वापस देने को तैयार था किन्तु वह अपनी समस्त योजनाओं को कार्यन्वित नहीं कर पाया और 5 अक्टूबर, 1805 को गाजीपुर में उसकी मृत्यु हो गई।

सर जार्ज बार्लो (1805-07)

लार्ड कार्नवालिस की मृत्यु के पश्चात् सर जार्ज बार्लो ने गवर्नर जनरल का पद संभाला। कार्नवालिस की भाँति उसने भी तटस्थता की नीति अपनाई। उसने सिन्धिया को नवम्बर, 1805 की एक नई सन्धि के अनुसार ग्वालियर का दुर्ग तथा गोहद वापस कर दिये और उसके अधीनस्थ राजपूताना के छोटे-छोटे राज्यों जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, मारवाड़, मेवाड़ और मालवा पर से अंग्रेजों का संरक्षण हटा लिया। बार्लो ने होल्कर के साथ भी एक सन्धि की, जिसके अनुसार उसने दक्षिण के प्रदेश उसको वापस कर दिये। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि "वेलेजली के सात वर्षों के सामरिक कार्यकाल के पश्चात् सात वर्षों का शान्तिपूर्ण काल आता है जिसमें अंग्रेजों ने देशी राज्यों के साथ झगड़े मोल न लेने और उनके आपसी मामलों में तटस्थ रहने तथा अपने अधिकृत प्रदेशों में सुधार करने की नीति अपनाई।"

बेलोर का विद्रोह– बार्लो के शासनकाल की सबसे महत्वपूर्ण घटना बेलोर का विद्रोह था। बेलोर में टीपू के कुछ सम्बन्धी बन्दी थे। वहाँ के अंग्रेज सेनापति ने भारतीयों को एक नई प्रकार की पगड़ी पहनने तथा एक विशेष प्रकार की दाढ़ी रखने के लिए आदेश दिया तथा तिलक लगाने का विरोध किया। सिपाहियों ने इन कार्यों को अपने धर्म के विरुद्ध समझा। फलतः उन्होंने विद्रोह कर दिया और दुर्ग पर अधिकार करके बहुत से अंग्रेजों की हत्या कर डाली। अन्त में बार्लो ने विद्रोह का दमन कर शान्ति की स्थापना की। इस घटना से अप्रसन्न होकर

गृह-सरकार ने बार्लो के स्थान पर लार्ड मिण्टो को भारत का गवर्नर जनरल बनाकर भेजा और बार्लो को मद्रास के गवर्नर पद पर नियुक्त कर दिया।

लार्ड मिण्टो (1807-1813)

लार्ड मिण्टो तटस्थता की नीति का समर्थक न था, परन्तु आन्तरिक एवं बाह्य परिस्थितियाँ कुछ ऐसी थीं जिसके कारण उसने शान्तिमय नीति अपनाई किन्तु आवश्यकता पड़ने पर हस्तक्षेप की नीति का भी अनुसरण किया।

भारतीय राज्यों का वर्गीकरण– इस समय भारत के समस्त राज्य तीन वर्गों में विभक्त थे। प्रथम वर्ग में निजाम, पेशवा, अवध तथा मैसूर के राज्य थे, जिन्होंने सहायक सन्धि स्वीकार कर ली थी और अपनी सुरक्षा के लिए कम्पनी की सेना का व्यय वहन करते थे। द्वितीय वर्ग में कोटा, बूँदीं आदि छोटे राज्य थे जिन्हें कम्पनी का संरक्षण प्राप्त था। किन्तु सुरक्षा के लिए कम्पनी को धन नहीं देते थे। तृतीय वर्ग में सिन्धिया, भोंसले तथा होल्कर राज्य थे। इन्होंने अंग्रेजों के साथ मैत्री स्थापित कर रखी थी। प्रथम तथा द्वितीय वर्ग के राज्यों के साथ मिण्टो ने पूर्ववत् सम्बन्ध बनाये रखा। तृतीय वर्ग के राज्यों से मित्रता रखते हुए भी उनके प्रति सावधानी बरती।

आन्तरिक नीति

(1) बुन्देलखण्ड में शान्ति की स्थापना– लार्ड मिण्टो ने देशी राज्यों के साथ शांति-नीति अपनाई, किन्तु आवश्यकता पड़ने पर कार्यवाही करने में भी उसने संकोच नहीं किया। भारत आते ही जब उसे ज्ञात हुआ कि बुन्देलखण्ड में चारों ओर अव्यवस्था फैली हुई है और छोटे-छोटे राज्य आपस में संघर्ष करते रहते हैं और अंग्रेजों के विरुद्ध भी षड्यन्त्र रचने का प्रयत्न करते हैं तब उसने शांति की स्थापना और कम्पनी का आधिपत्य स्थापित करने के उद्देश्य से एक सेना भेजकर अराजकता का दमन किया और अजयगढ़ तथा कालिंजर के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार मिण्टो ने बुन्देलखण्ड में शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना की।

मिण्टो की आन्तरिक नीति
1. बुन्देलखण्ड में शान्ति की स्थापना
2. ट्रावनकोर का विद्रोह

(2) ट्रावनकोर का विद्रोह– ट्रावनकोर के राजा ने सहायक सन्धि को स्वीकार कर लिया था। उसका मंत्री वेलू तम्पी एक योग्य व्यक्ति था। वह ब्रिटिश रेजीडेन्ट के आन्तिरिक हस्तक्षेप को सहन नहीं कर सकता था। अतः रेजीडेन्ट और मंत्री के सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। जब राजा सहायक सेना के लिए समय पर धन नहीं दे सका तथा उसने अंग्रेजी सरकार से धन में कमी करने की प्रार्थना की, तो रेजीडेन्ट ने अप्रसन्न होकर मंत्री को पदच्युत करने की आज्ञा दी, जिसके कारण ट्रावनकोर में जनता ने विद्रोह कर दिया और रेजीडेन्ट के भवन पर आक्रमण कर दिया। रेजीडेन्ट भयभीत होकर अपना भवन छोड़कर भाग खड़ा हुआ, किन्तु जनता ने अनेक अंग्रेजों को मार डाला, अन्त में मिण्टो ने एक सेना भेजकर विद्रोह का दमन करा दिया और ट्रावनकोर तथा कोचीन पर अधिकार स्थापित कर लिया।

बाह्य नीति

लार्ड मिण्टो की बाह्य-नीति का आधार भारत पर फ्रांस और रूस के आक्रमण की संभावना थी। उसे इस बात का भय था कि ये दोनों उत्तरी-पश्चिमी स्थल-मार्ग से भारत पर आक्रमण कर सकते हैं। अतः इस भय को दूर करने के लिए उसने पश्चिमोत्तर सीमा पर स्थित

फारस, अफगानिस्तान, पंजाब तथा सिन्ध के शासकों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा की।

(1) लार्ड मिण्टो और फारस– इस समय फारस के शाह पर फ्रांसीसियों का प्रभाव था। अतः लार्ड मिण्टो ने फारस के शाह को अपने पक्ष में करने का निश्चय किया। उसने 1809 में फारस के शाह के पास जॉन मैलकोम को अपना राजदूत बनाकर भेजा। इसके पूर्व ही वहाँ फ्रांसीसी राजदूत पहुँच चुका था। अधिक दबाव पड़ने पर शाह ने अंग्रेजों से सन्धि कर ली। इस सन्धि के अनुसार अंग्रेजों ने शाह को आवश्यकता पड़ने पर सैनिक सहायता देने का वचन दिया। इसके बदले में शाह ने वचन दिया कि वह अंग्रेज–विरोधी किसी यूरोपीय को अपने राज्य में स्थान न देगा और फ्रांस अथवा रूस को भारत पर आक्रमण करने के लिये अपने राज्य से मार्ग नहीं देगा।

मिण्टो की बाह्य नीति

1. लार्ड मिण्टो और फारस
2. लार्ड मिण्टो और अफगानिस्तान
3. लार्ड मिण्टो और पंजाब
4. लार्ड मिण्टो और सिन्ध
5. लार्ड मिण्टो और फ्रांसीसी उपनिवेश

(2) लार्ड मिण्टो और अफगानिस्तान– 1809 में लार्ड मिन्टो ने काबुल के अमीर शाहशुजा के पास एलफिंस्टन को अपना राजदूत बनाकर भेजा। वह अमीर शाहशुजा से संधि करने में सफल हुआ, किन्तु यह सन्धि अफगानिस्तान के आन्तरिक संघर्षों के कारण अधिक समय तक स्थायी नहीं रह सकी।

(3) लार्ड मिण्टो और पंजाब– 1809 में लार्ड मिण्टो ने दिल्ली के रेजीडेन्ट मेटकॉफ को अपना राजदूत बनाकर पंजाब के राजा रणजीतसिंह के पास भेजा। रणजीतसिंह अंग्रेजों से युद्ध नहीं करना चाहता था। अतः अप्रैल, 1809 में अंग्रेजों और रणजीतसिंह के मध्य अमृतसर की सन्धि हो गई।

सन्धि की शर्तें– इस सन्धि के अनुसार–

(1) रणजीतसिंह के राज्य की सीमा सतलज नदी निश्चित कर दी गई।

(2) सतलज नदी के पूर्वी राज्यों पर अंग्रेजों का प्रभाव स्थापित हो गया। रणजीतसिंह ने जीवनपर्यन्त इस सन्धि का पालन किया।

(4) लार्ड मिण्टो और सिन्ध– सिन्ध में भी एक राजदूत भेजा गया जिसके फलस्वरूप अंग्रेजों और अमीरों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित हो गया।

(5) लार्ड मिण्टो और फ्रांसीसी उपनिवेश– 1810 में मिण्टो ने पूर्व के फ्रांसीसी उपनिवेशों की विजय के लिये जहाजी बेड़ा भेजा और बूरबों तथा मारीशस के द्वीपों पर अधिकार कर लिया।

1813 का चार्टर– 1793 में किये गये चार्टर की अवधि समाप्त होने पर 1813 में पार्लियामेन्ट ने कम्पनी को एक नया चार्टर दिया, जिसके द्वारा पुनः कम्पनी को 20 वर्षों के लिए व्यापार करने का अधिकार प्रदान किया गया। परनतु इस चार्टर के अनुसार कम्पनी का चाय के व्यापार पर एकाधिकार रह गया और अन्य वस्तुओं के व्यापार पर से उसके एकाधिकार का अन्त कर समस्त ब्रिटिश प्रजा के लिए व्यापार करने की आज्ञा प्रदान कर दी गई। चार्टर द्वारा यह भी निश्चित किया गया कि कम्पनी शिक्षा के प्रसार के लिए प्रतिवर्ष एक लाख रुपया व्यय करेगी। इस प्रकार भारत में पाश्चात्य शिक्षा की आधार-शिला रखी गई।

मिण्टो के कार्यों का मूल्यांकन– लार्ड मिण्टो अपनी आन्तरिक तथा बाह्य नीति में पूर्णरूपेण सफल रहा। बुन्देलखण्ड में छोटी-मोटी लड़ाइयों के सिवाय, देशी राजाओं के विरुद्ध तलवार उठाये बिना ही उसने भारत में एक सम्मानित शान्ति स्थापित की। फारस और अफगानिस्तान से कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित करने में उसे बहुत बड़ी सफलता प्राप्त हुई। पंजाब के राजा रणजीतसिंह तथा सिन्ध के अमीरों से की गई सन्धियाँ पूर्णरूपेण सफल रहीं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. सर जार्ज बार्लो के विषय में आप क्या जानते हैं?
2. लार्ड मिण्टो के शासन-काल की प्रमुख घटनाओं का उल्लेख कीजिए।
3. "लार्ड मिण्टो अपनी आन्तरिक तथा बाह्य नीति में पूर्णरूपेण सफल रहा।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

(ख) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. वेलोर के विद्रोह के क्या कारण थे?
2. लार्ड मिण्टो की गृह-नीति की विवेचना कीजिए।
3. लार्ड मिण्टो की बाह्य-नीति का उल्लेख कीजिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सर जार्ज बार्लो भारत में गवर्नर जनरल बनकर कब आया था?
   सर जार्ज बार्लो 1805 में भारत में गवर्नर जनरल बनकर आया था?
2. रणजीतसिंह से अमृतसर की सन्धि किस गवर्नर जनरल ने की थी?
   गवर्नर जनरल लार्ड मिण्टो ने की थी।

बहुविकल्पीय प्रश्न

निर्देश : नीचे दिये गये प्रत्येक प्रश्न के चार विकल्पों में से सही विकल्प छाँटकर लिखिए :

1. गवर्नर जनरल कार्नवालिस की मृत्यु कब हुई थी?
   (क) 1805 ई., (ख) 1806 ई., (ग) 1807 ई., (घ) 1808 ई.।
2. अंग्रेजों और रणजीत सिंह के मध्य अमृतसर की सन्धि कब हुई थी?
   (क) 1806 ई., (ख) 1807 ई., (ग) 1808 ई., (घ) 1809 ई.।

■

18

लार्ड हेस्टिंग्ज

[1813-23]

"क्लाइव ने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का बीजोरोपण किया, वारेन हेस्टिंग्ज ने शत्रु शक्तियों के विरुद्ध उसकी रक्षा की, वेलेजली ने इसे खड़ा किया तथा लार्ड हेस्टिंग्ज ने फसल काटी।" –मजूमदार

लार्ड मिण्टो के उपरान्त 1813 में लार्ड हेस्टिंग्ज भारत का गवर्नर जनरल होकर आया। वह तटस्थता की नीति का समर्थक था। उसने लार्ड वेलेजली की साम्राज्यवादी नीति की कटु आलोचना की थी, लेकिन भारत की तत्कालीन परिस्थिति को देखकर उसको अपनी नीति में परिवर्तन करना पड़ा। उसने वेलेजली की नीति का अनुसरण किया, क्योंकि जिन मराठों को वेलेजली ने परास्त किया, उन्होंने अपनी शक्ति को पुनः बढ़ा लिया था। इस समय मध्य भारत में अराजकता का बोलबाला था। जनता की सम्पत्ति, जीवन तथा धन की सुरक्षा नहीं थी।

भारत की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति– लार्ड हेस्टिंग्ज के आगमन के समय भारत की राजनीतिक स्थिति निम्न प्रकार थी :

(1) कम्पनी की स्थिति– इस समय तक कम्पनी का राज्य भारत में पर्याप्त विस्तृत हो गया था। उत्तर में गंगा नदी के मुहाने से दिल्ली के पश्चिम में हिसार तथा पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी के मुहाने से कुमारी अन्तरीप तक कम्पनी का राज्य विस्तृत था। अब कम्पनी का उद्देश्य हो गया था कि वह देश के अन्य भागों को अपने अधिकार में एक एकछत्र शासन की स्थापना करे। यदि वह ऐसा न करती तो उसके अधिकृत प्रदेशों की सुरक्षा खतरे में पड़ जाती।

(2) होल्कर राज्य– 1811 में जसवन्तराव होल्कर की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के उपरान्त मल्हारराव होल्कर उसका उत्तराधिकारी हुआ। इस समय वह अल्पवयस्क था। इस कारण शासन की बागडोर उसकी माता तुलसीबाई के हाथ में आ गई। वह स्वार्थी व्यक्तियों के प्रभाव में थी। वहाँ की सैनिक शक्ति पर पठान अमीन खाँ ने अपना अधिकार कर लिया था। फलतः उसके राज्य में दो दल बन गये थे, जिनमें प्रतिद्वन्द्विता चलती रहती थी।

(3) सिन्धिया का राज्य– इस समय दौलतराम सिन्धिया की आर्थिक स्थिति बड़ी शोचनीय थी। अतः धन प्राप्त करने के उद्देश्य से उसने अपनी सेना को लूटमार करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी जिसके कारण उसकी सेना निरंकुश और अत्याचारी हो गई।

(4) भोंसले की स्थिति– द्वितीय मराठा-युद्ध में भोंसले को बड़ी हानि उठानी पड़ी थी। अंग्रेज उसको अपने अधीन रखना चाहते थे। इस कारण वह अंग्रेजों की ओर से सदैव सशंकित रहता था।

(5) पिंडारियों के अत्याचार– पिंडारी वे सैनिक थे जो दक्षिण सेना से अलग कर दिये गये थे और उन्होंने अपना एक गुट बना लिया था। इसका प्रयोग मराठे सरदार अनियमित रूप से युद्ध के समय किया करते थे। वे वेतन के स्थान पर शत्रु के राज्य में लूट-मार करते थे। मध्य भारत में उनके अत्याचारों से अराजकता छा गई थी।

(6) गोरखे– नेपाल में गोरखों ने अपनी शक्ति बढ़ा ली थी। उन्होंने राज्य-विस्तार

के लिए 1792 में तिब्बत पर आक्रमण किया, किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसके पश्चात् उन्होंने भारत के दक्षिणी मैदान के कुछ जिलों पर अधिकार कर लिया, जिन पर कम्पनी का आधिपत्य था।

(7) राजस्थान की स्थिति– राजस्थान पर प्रायः मराठों के आक्रमण होते रहते थे। वेलेजली ने अपने शासनकाल में राजस्थान को अपने संरक्षण में ले लिया था, किन्तु बाद के गवर्नर जनरलों ने तटस्थता की नीति के समर्थक होने के कारण राजस्थान का संरक्षण छोड़ दिया था। इससे पुनः मराठों तथा पिंडारियों ने वहाँ लूट-मार मचा दी थी।

इस प्रकार लार्ड हेस्टिंग्ज के आगमन के समय लगभग सभी प्रदेशों में अराजकता छाई हुई थी।

लार्ड हेस्टिंग्ज के शासन-काल की प्रमुख घटनाएँ

गोरखा युद्ध (1814-16)– अंग्रेजों की तटस्थ नीति के कारण गोरखों ने अवध और बंगाल की सीमा पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने 1814 में बस्ती जिले के निकट शिवराम और बुटवल पर अधिकार कर लिया। हेस्टिंग्ज ने इन दोनों स्थानों को पुनः छीन लिया और गोरखों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। 34 हजार की विशाल अंग्रेजी सेना ने गोरखा राज्य पर आक्रमण कर दिया। गोरखों ने अपूर्व साहस, वीरता तथा युद्ध-कौशल का परिचय दिया। अतः आरम्भ में अंग्रेजों को सफलता नहीं मिली और कई स्थानों पर उन्हें पराजय का आलिंगन करना पड़ा। अंग्रेजों का सेनापति जिलेप्सी युद्ध में मारा गया। इसके पश्चात् जनरल आक्टर लोनी की सेना से गोरखों को टक्कर लेनी पड़ी। गोरखा सेनापति अमरसिंह थापा पराजित हो गया। अंग्रेजों ने 1815 में गोरखों के मलाऊ किले पर अधिकार कर लिया। उसके पश्चात् आक्टर लोनी गोरखों की राजधानी काठमाण्डू की ओर बढ़ा। गोरखों ने देखा कि अब आगे युद्ध करना निरर्थक है। फलतः दोनों पक्षों में सिंगौली की सन्धि (1816) हो गई। सन्धि के अनुसार गोरखों से अंग्रेजों को कुमायूँ और गढ़वाल क्षेत्र के साथ-साथ हिमालय पर्वत की तराई का विस्तृत क्षेत्र प्राप्त हुआ। गोरखों ने सिक्किम के प्रदेश पर अपना अधिकार छोड़ दिया तथा नेपाल की राजधानी काठमाण्डू में एक अंग्रेज रेडीडेन्ट रहने लगा।

सिंगौली की सन्धि अंग्रेजी के लिए बड़ी महत्वपूर्ण सिद्ध हुई। अब अंग्रेजी राज्य की उत्तर-पश्चिमी सीमाएँ हिमालय की शृंखलाओं तक विस्तृत हो गईं। पहाड़ी प्रदेश के अधिकार में आ जाने के कारण अंग्रेजों को शिमला, नैनीताल, अल्मोड़ा, रानीखेत आदि रमणीक स्थान प्राप्त हो गये। अब अंग्रेजों को अपनी सेना के लिये गोरखे सैनिक उपलब्ध होने लगे। ये गोरखे सैनिक अपनी वीरता, साहस तथा स्वामिभक्ति के लिए विश्व-विख्यात हैं।

पिंडारियों का दमन (1816-18)– सहायक सन्धि के परिणामस्वरूप भारतीय राजाओं को अपनी सेना की संख्या कम करनी पड़ी। सेना से निकाले हुए सैनिकों ने अपनी जीविका चलाने के लिए लूट-मार का पेशा अपना लिया और लुटेरों के गिरोह से जा मिले। लूट-मार करने वाले इन दलों को पिंडारी कहा जाता था। इनकी लूट-मार का क्षेत्र मुख्यतः मध्य भारत तथा उसके आस-पास का क्षेत्र था।

पिंडारियों के दल में पठान, राजपूत और मराठा लोग थे। इसके प्रमुख नेता अमीर खाँ, करीम खाँ, वासिल मुहम्मद तथा चीतू थे। इनकी युद्ध-नीति छापामार युद्ध-पद्धति थी। वे शत्रु के ऊपर अचानक आक्रमण कर देते थे और लूट-मार कर भाग जाते थे। इनके अत्याचार से सामान्य जनता बहुत त्रस्त थी। कभी-कभी मराठा सरदार भी शत्रुओं को हानि पहुँचाने के उद्देश्य से उनका प्रयोग करते थे।

अंग्रेज भी पिंडारियों को समस्या से चिन्तित हो उठे थे। तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड हेस्टिंग्ज (1813-23) ने पिंडारियों को समूल नष्ट करने का निश्चय किया। फलतः उसने एक विशाल सेना तैयार की, जिसमें 1 लाख 15 हजार सैनिक तथा 300 तोपें थीं। उसने इस सेना को दो भागों में विभक्त किया। एक भाग का नेतृत्व उसने स्वयं संभाला और दूसरे भाग का नेतृत्व उसने टामस हिसलाप को सौंपा। पिंडारियों को मालवा प्रदेश में चारों ओर से घेर लिया गया। बहुत से पिंडारी मारे गये। पिंडारियों के नेता अमीर खाँ और करीम खाँ ने आत्म-समर्पण कर दिया। अमीर खाँ को टोंक की जागीर और करीम खाँ को गोरखपुर जिले में गौशपुर की एक छोटी सी रियासत दे दी गई। वासिल मुहम्मद को गाजीपुर के कारागार में बन्द कर दिया गया और वहीं उनकी जीवन-लीला समाप्त हो गई। चीतू ने जंगल की शरण ली और वहीं पर उसे एक चीते ने खा डाला। दल के बचे-खुचे लोगों ने कृषि पेशा अपना लिया। इस प्रकार लार्ड हेस्टिंग्ज पिंडारियों का पूर्णतया दमन करने में सफल हो गया।

तृतीय मराठा युद्ध (1817-18)– पेशवा वाजीराव द्वितीय बेसीन की सन्धि से संतुष्ट न था। वह अंग्रेजों से मुक्त होने के लिए मराठा सरदारों से बातचीत कर रहा था और एक बार पुनः भारत में मराठा साम्राज्य स्थापित करने की चेष्टा कर रहा था। युद्ध का तात्कालिक कारण पेशवा और गायकवाड़ के बीच कुछ कर सम्बन्धी झगड़ा था। इस झगड़े का फैसला करने के लिए गायकवाड़ का मंत्री गंगाधर शास्त्री अंग्रेजों की ओर से सुरक्षा का आश्वासन पाकर पूना गया। परन्तु वहाँ पहुँचने पर पेशवा को इस बात के लिए विवश किया कि त्रयम्बकजी को उनके सुपुर्द कर दिया जाय। त्रयम्बक जी को बन्दी बना लिया गया, किन्तु वह जेल से भाग निकला। अंग्रेजों ने इसके लिए पेशवा को दोषी ठहराया और उसके कुछ भू-भाग पर अधिकार कर लिया। अतः पेशवा और अंग्रेजों के मध्य युद्ध आरम्भ हो गया।

युद्ध की प्रमुख घटनाएँ– पेशवा ने नवम्बर, 1817 में पूना स्थिति ब्रिटिश रेजीडेंसी पर आक्रमण कर दिया और उसे जलाकर नष्ट कर दिया। रेजीडेंट एलफिंस्टन किसी प्रकार भाग निकला। जनरल स्मिथ ने अपनी पूर्ण शक्ति के साथ पूना पर आक्रमण किया और उस पर अधिकार कर लिया। पेशवा पूना छोड़ कर सतारा की ओर चला गया। सर जान माल्कम ने उसका पीछा किया और उसको कोरगाँव (जनवरी, 1818) तथा अष्टी (फरवरी, 1818) नामक स्थानों पर पराजित किया। अन्त में विवश होकर पेशवा ने 18 जून, 1818 को माल्कम को आत्म-समर्पण कर दिया।

पेशवा के आक्रमण का समाचार पाकर अन्य मराठा सरदारों ने भी युद्ध की घोषणा कर दी। नागपुर में भोंसला अप्पाजी ने नागपुर की ब्रिटिश रेजीडेंसी पर आक्रमण कर दिया, लेकिन 27 नवम्बर, 1817 को नागपुर की रेजीडेंसी सेना ने उसे सीतावाल्डी के युद्ध में बुरी तरह पराजित किया। भोंसला भागकर पंजाब की ओर चला गया। 21 दिसम्बर, 1817 को मल्हारराव होल्कर की सेना महीदपुर नामक स्थान पर पराजित हुई।

अंग्रेज और मराठों के बीच यह अन्तिम युद्ध था।पेशवा और अंग्रेजों के बीच सन्धि हो गई। सन्धि के अनुसार पेशवा का समस्त राज्य अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। पेशवा को आठ लाख रुपया वार्षिक पेंशन देकर कानपुर के समीप विठूर नामक स्थान पर भेज दिया गया। पेशवा का पद भी समाप्त कर दिया गया। पेशवा राज्य की सतारा रियासत को शिवाजी के एक वंशज प्रतापसिंह को दे दिया गया। भोंसला के राज्य का नर्मदा-नदी के उत्तर का सम्पूर्ण भाग अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। शेष राज्य का अधिकारी रघुजी भोंसले के द्वितीय अल्प-वयस्क पौत्र को बनाया गया। जनवरी, 1818 में होल्कर ने मन्दसौर की सन्धि पर हस्ताक्षर किये, जिससे उसने राज्यों पर से अपना नियंत्रण समाप्त कर दिया।

यद्यपि सिन्धिया और गायकवाड़ ने युद्ध में भाग नहीं लिया था, फिर भी हेस्टिंग्ज ने 1818 में सिन्धिया से एक नयी सन्धि की, जिसके अनुसार उसने अंग्रेजों को अजमेर का प्रदेश दे दिया। गायकवाड़ को भी नयी सन्धि के लिए विवश किया गया। उसने भी अंग्रेजों को अहमदाबाद का प्रदेश दे दिया और अंग्रेजी सेना की संख्या बढ़ाना स्वीकार कर लिया।

तृतीय मराठा-युद्ध का महत्व– इस युद्ध का भारतीय इतिहास में बहुत महत्व है, "वेलेजली ने जो कार्य प्रारम्भ किया था; उसको हेस्टिंग्ज ने इस युद्ध में सफल होकर पूर्ण बनाया। मराठों की रीढ़ टूट गई तथा उनके संघ का अस्तित्व ही मिट गया। जिन प्रदेशों पर राजा शासन करते थे, वे संघ कम्पनी के नियंत्रण में आ गये।" इस प्रकार सतलज से कुमारी अन्तरीप तक अंग्रेजों का राज्य विस्तृत हो गया।

मराठों के पतन के कारण

मुगल-साम्राज्य के पतन के पश्चात् मराठों ने अपनी शक्ति बढ़ाकर समस्त भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। इसी समय भारत में अंग्रेजों ने डच और फ्रांसीसियों की शक्ति का अन्त कर अपने साम्राज्य की स्थापना की। फलतः अंग्रेजों और मराठों में भारत-साम्राज्य के लिये युद्ध होना अनिवार्य था। अंग्रेज यह भलीभाँति जानते थे कि मराठा-शक्ति का विनाश किये बिना भारत में उनका साम्राज्य स्थापित होना असंभव है। अतः अंग्रेज बराबर मराठों की शक्ति का विनाश करने के लिए प्रयत्नशील रहे और अन्त में उनको सफलता प्राप्त हुई।

वारेन हेस्टिंग्ज, लार्ड वेलेजली तथा लार्ड हेस्टिंग्ज के शासन-काल में अंग्रेजों के साथ मराठों के तीन युद्ध हुए। प्रथम मराठा युद्ध से कम्पनी को कोई विशेष लाभ न हुआ। द्वितीय युद्ध में मराठा-शक्ति को पर्याप्त आघात लगा और तृतीत युद्ध में मराठों की शक्ति का अन्त हो गया। किसी इतिहासकार ने ठीक ही कहा है, "पेशवा बाजीराव प्रथम (1720) की साम्राज्य की साधना लगभग सौ वर्षों बाद उसके वंशज वाजीरात्र द्वितीय (1818) के हाथों समाप्त हो गई।" संक्षेप में, मराठों के पतन के निम्नलिखित कारण बतलाये जा सकते हैं :

मराठों के पतन के कारण

1. एकता का अभाव
2. योग्य नेतृत्व का अभाव
3. सैन्य-संगठन और संचालन का अभाव
4. जागीरदारी-प्रथा
5. सुशासन और सुदृढ़ व्यवस्था का अभाव
6. मराठों की देशी राज्यों के प्रति नीति
7. तृतीय पानीपत-युद्ध में मराठा-शक्ति को आघात
8. आर्थिक कठिनाइयाँ
9. सिक्खों का अभ्युदय
10. सामुद्रिक शक्ति का अभाव

(1) एकता का अभाव– मराठा राज्य बहुत विस्तृत था, जो कालान्तर में पेशवा, सिन्धिया, भोंसला, होल्कर तथा गायकवाड़ इन पाँच राज्यों में विभक्त हो गया था। जब तक योग्य पेशवा रहे, उस समय तक इन राज्यों के सरदारों पर उनका नियन्त्रण रहा, किन्तु उनकी शक्ति के क्षीण होते ही उन्होंने स्वतन्त्र रूप से कार्य करना प्रारंभ कर दिया। इन सरदारों में प्रायः फूट रहती थी और वे सदैव एक-दूसरे को नीचा दिखाने के अभिप्राय से षड्यन्त्र रचा करते थे। सिन्धिया, होल्कर, गायकवाड़ में एकता का अभाव रहा जिसका अंग्रेजों ने खूब लाभ उठाया और उन्होंने अलग-अलग उनकी शक्ति का विनाश कर डाला।

(2) योग्य नेतृत्व का अभाव– मराठों की पराजय में योग्य नेतृत्व के अभाव का भी बहुत बड़ा हाथ रहा। जसवन्तराव होल्कर,

महादजी सिन्धिया तथा पेशवा माधवराव की मृत्यु के उपरान्त मराठों के योग्य नेताओं का अभाव हो गया। नाना फड़नवीस ने पुनः मराठा शक्ति के संगठन का प्रयास किया और उसको कुछ अंशों तक सफलता भी प्राप्त हुई। मराठों में वह सर्वश्रेष्ठ कूटनीतिज्ञ था। उसकी मृत्यु के उपरान्त तो मराठा सरदारों की सम्पूर्ण बुद्धि का ही अन्त हो गया। इसके विपरीत अंग्रेजों की ओर वेलेजली, लार्ड हेस्टिंग्ज, जनरल लेक, आर्थर वेलेजली आदि असाधारण प्रतिभा वाले नेता विद्यमान थे।
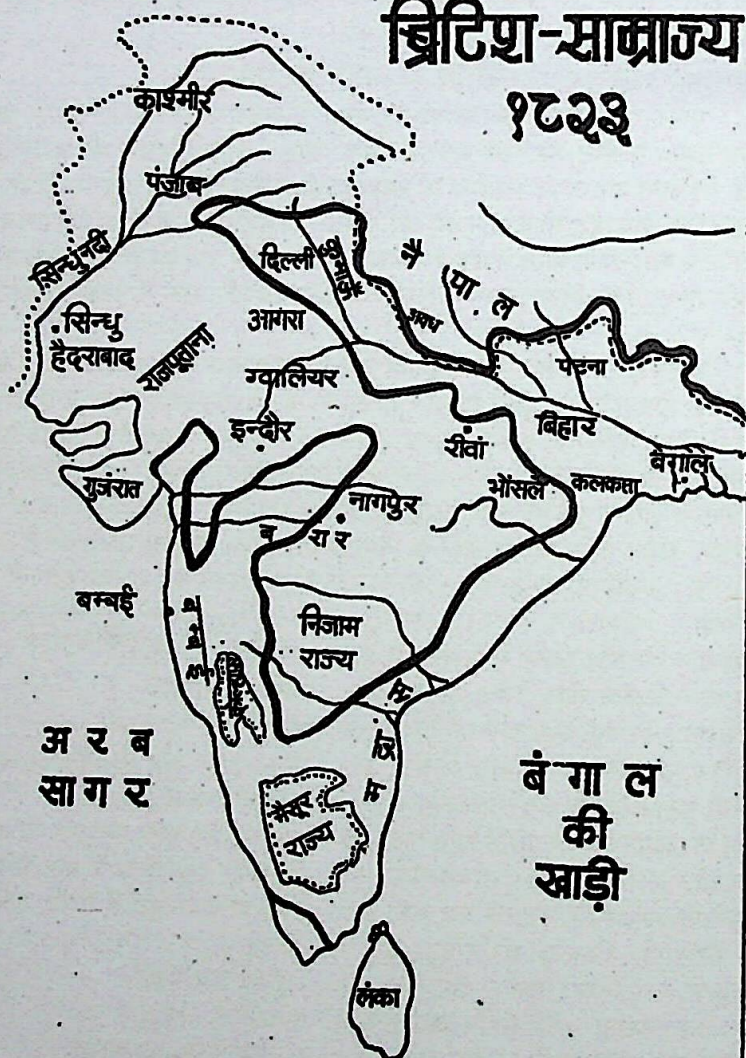
(3) सैन्य संगठन और संचालन का अभाव– मराठों की पराजय का एक प्रमुख कारण उनकी सैनिक दुर्बलता भी थी। यद्यपि उनके पास पर्याप्त सेना थी, किन्तु उनकी शिक्षा-दीक्षा व संचालन की ओर उन्होंने विशेष ध्यान नहीं दिया। उन्हें सैन्य संचालन के लिये भौगोलिक परिस्थितियों का नहीं के बराबर ज्ञान था। जब तक उनके आक्रमण पहाड़ी प्रदेशों तक ही सीमित रहे, उनकी छापामार रणनीति (गुरिल्ला युद्ध) का सामना कोई नहीं कर सका किन्तु जब उन्होंने मैदानों में युद्ध करना आरम्भ कर दिया तो अंग्रेजों की अपेक्षा वे निर्बल सिद्ध हुए।

(4) जागीरदारी प्रथा– मराठों की जागीरदारी-प्रथा भी उनके साम्राज्य के पतन का कारण बनी। शिवाजी जागीरदारी-प्रथा के विरोधी थे, किन्तु उनकी मृत्यु के उपरान्त पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने जागीरदारी-प्रथा आरम्भ कर दी थी, जो मराठा साम्राज्य का प्रधान अंग बन गई। इस प्रथा के कारण केन्द्रीय शासन निर्बल हो गया, जिसका परिणाम विनाशकारी सिद्ध हुआ।

(5) सुशासन और सुदृढ़ व्यवस्था का अभाव– मराठा सरदार अपने राज्य का ठीक ढंग से संगठन नहीं कर सके। वे चौथ और सरदेशमुखी वसूल कर निश्चिन्त हो जाते थे। उन्होंने जीते हुए प्रदेशों को संगठित करने तथा सुदृढ़ शासन-व्यवस्था स्थापित करने की ओर कभी ध्यान नहीं दिया। पर्याप्त आय के बावजूद उन्होंने लोकहित के कार्य नहीं किये, जिसके कारण वे प्रजा में लोकप्रिय न बन सके। इसके विपरीत अंग्रेज शासन-व्यवस्था की ओर अधिक सचेत थे और उनका राज्य भी नियंत्रित था।

(6) मराठों की देशी राजाओं के प्रति नीति– देशी राजाओं के प्रति मराठों की नीति अविवेकपूर्ण थी। कूटनीतिज्ञता और राजनीतिज्ञता के अभाव में उन्होंने उनसे सहयोग प्राप्त करने का प्रयास नहीं किया। यदि मराठों ने हैदरअली, टीपू और निजाम की समय पर सहायता की होती तो वे अंग्रेजों के विरुद्ध सफल हो सकते थे, परन्तु वे सदा मैसूर राज्य तथा निजाम के विरोधी बने रहे। मराठों ने राजपूतों की भी मित्रता प्राप्त करने की ओर ध्यान नहीं दिया, बल्कि शत्रुता मोल ले ली। वे अवसर पाकर बराबर राजपूत राज्यों को लूटते रहे, जिसके कारण वे अंग्रेजों के संरक्षण में चले गये।

(7) तृतीय पानीपत-युद्ध में मराठा शक्ति को आघात– पानीपत के तृतीय युद्ध में मराठों की बहुत बुरी तरह पराजय हुई। इस कारण मराठे कुछ काल के लिए बिल्कुल शक्तिहीन हो गये। इसके पश्चात् उनको निरन्तर अंग्रेजों से टक्कर लेनी पड़ी, जो युद्ध-शक्ति तथा राजनीति में मराठों से बहुत अधिक बढ़े-चढ़े थे। फलतः उन्हें अंग्रेजों के समक्ष पराजित होना पड़ा।

(8) आर्थिक कठिनाइयाँ– मराठों की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी, क्योंकि आय के साधन निश्चित नहीं थे। उनको केवल चौथ और सरदेशमुखी पर ही निर्भर रहना पड़ता था। फलतः उनको अतिरिक्त आय के लिए लूटमार और युद्ध की शरण लेनी पड़ती थी। उन्होंने व्यापार और कृषि के विकास के लिए कोई ध्यान नहीं दिया। इस कारण उन्हें सदैव आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था।

(9) सिक्खों का अभ्युदय– सिक्खों के अभ्युदय से भी मराठा शक्ति को गहरा आघात लगा। वे मराठों को शक्तिहीन बनाने में उनके विरुद्ध अंग्रेजों की सहायता करते थे।

(10) सामुद्रिक शक्ति का अभाव– मराठों के पतन का एक कारण उनकी सामुद्रिक शक्ति का सुदृढ़ न होना भी था। उन्होंने सामुद्रिक शक्ति के विकास के लिए कभी ध्यान नहीं दिया। शिवाजी अपनी सामुद्रिक शक्ति सुदृढ़ करने में बराबर सचेष्ट रहे, किन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात् मराठे इस ओर से पूर्णतया उदासीन हो गये। इसके विपरीत अंग्रेजों की सामुद्रिक शक्ति बहुत सुदृढ़ थी, जिसके कारण वे अपने विरोधियों का अन्त करने में सफल हुए।

राजपूताना तथा मध्यप्रान्त के राज्यों को संरक्षण– तटस्थता तथा हस्तक्षेप की नीति के कारण राजपूताना तथा मध्य भारत में अशान्ति तथा अराजकता फैली हुई थी। फलतः हेस्टिंग्ज ने हस्तक्षेप-नीति का परित्याग कर अग्रगामी एवं साम्राज्यवादी-नीति का अवलम्बन लिया। उसने राजपूताने को अपने संरक्षण में ले लिया। उसने कोटा, जयपुर, करौली, जोधपुर, उदयपुर, बूँदी, बीकानेर, सिरोही, जैसलमेर, प्रतापगढ़, बाँसवाड़ा तथा अन्य छोटे-छोटे राज्यों के साथ सन्धि करके उन्हें कम्पनी का संरक्षण प्रदान किया। इन राज्यों की बाह्य-नीति पर कम्पनी का पूर्ण नियन्त्रण स्थापित हो गया और उन्होंने आवश्यकता पड़ने पर सैनिक सहायता तथा कर देने का वचन दिया।

लार्ड हेस्टिंग्ज ने मध्य भारत के देशी राज्यों को भी कम्पनी का संरक्षण स्वीकार करने को बाध्य किया। 1818 में भोपाल के नवाब ने कम्पनी के साथ रक्षात्मक और अधीनतापूर्ण सन्धि कर ली। जावड़ा और टोंक के नवाबों ने भी उसका अनुसरण किया। इसके पश्चात् मालवा, देवास तथा बुन्देलखण्ड के छोटे-छोटे राज्यों ने भी कम्पनी का संरक्षण स्वीकार कर लिया। काठियावाड़ के कच्छ राज्य पर भी अंग्रेजों का नियंत्रण स्थापित हो गया। हाथरस तथा मुरसान के राज्यों ने बिना लड़े ही कम्पनी का संरक्षण स्वीकार कर लिया। इस प्रकार लार्ड हेस्टिंग्ज ने देश के विभिन्न भागों को कम्पनी का संरक्षण प्रदान करके भारत के अधिकांश भागों में शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित की।

लार्ड हेस्टिंग्ज के सुधार

साम्राज्य-निर्माता के साथ ही हेस्टिंग्ज एक कुशल शासक तथा सुधारक भी था। उसने अपने शासनकाल में भूमि, न्याय तथा शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण सुधार किये।

(1) भूमि सम्बन्धी सुधार– पंजाब तथा आगरा प्रान्त में हेस्टिंग्ज ने 'महलवाड़ी' प्रथा को लागू किया। इस प्रथा के अनुसार आगरा में 30 वर्ष के लिये तथा पंजाब में 20 वर्ष के लिये लगान का बन्दोबस्त किया गया। गाँव का प्रधान जो 'नम्बरदार' कहलाता था, गाँव के सम्पूर्ण लगान का उत्तरदायी होता था। बंगाल में कार्नवालिस द्वारा स्थापित स्थायी-प्रबन्ध से किसानों के हितों के संरक्षण की व्यवस्था नहीं हो सकी थी। फलतः हेस्टिंग्ज ने 1822 में 'बंगाल टेनेन्सी ऐक्ट' पास करवाया जिसके द्वारा मौरूसी किसान को भूमि पर अधिकार प्रदान किया गया। मद्रास में रैयतवाड़ी प्रथा को फिर से लागू किया गया, जिसमें किसान का सीधा सम्बन्ध सरकार से था। बम्बई में भी भूमि सम्बन्धी सुधार लागू किये गये, जिनके द्वारा किसानों के अधिकारों तथा लगान का निश्चय किया गया।

(2) न्याय-सम्बन्धी सुधार– हेस्टिंग्ज का दूसरा महत्वपूर्ण सुधार न्याय के क्षेत्र में था। दीवानी अदालतों की कार्य-प्रणाली को और अधिक सरल बनाया गया। न्याय-विभाग के भारतीय पदाधिकारियों के वेतन में वृद्धि की गई, जिससे वे ईमानदारी तथा सच्चाई के साथ काम कर सकें। कलेक्टर तथा मजिस्ट्रेट के पद को पुनः मिला दिया गया। बम्बई तथा मद्रास में ग्राम-पंचायतों की स्थापना की गई।

लार्ड हेस्टिंग्ज के सुधार

1. भूमि-सम्बन्धी सुधार
2. न्याय-सम्बन्धी सुधार
3. शिक्षा-सम्बन्धी सुधार

(3) शिक्षा-सम्बन्धी सुधार– लार्ड हेस्टिंग्ज ने अपने निजी कोष से अनेक पाठशालाएँ खुलवाईं ताकि भारतीय बच्चों को शिक्षित किया जा सके। उसने कलकत्ता के निकट कई वर्नाक्यूलर स्कूल खुलवाये। उसके प्रोत्साहन से कलकत्ता में एक कॉलेज खोला गया, जिसमें अंग्रेजी शिक्षा पर अधिक जोर दिया गया। लार्ड हेस्टिंग्ज के शासनकाल में देशी भाषा में पहला समाचार-पत्र प्रकाशित हुआ। प्रेस पर लगे हुए अनेक प्रतिबन्धों को हटाकर लार्ड

हेस्टिंग्ज ने समाचार-पत्रों को स्वतन्त्र कर दिया। श्रीरामपुर के ईसाई धर्म-प्रचारकों ने 'समाचार दर्पण' नामक समाचार पत्र उसी काल में प्रकाशित किया था।

लार्ड हेस्टिंग्ज का त्याग-पत्र– 'विलियम पासर एण्ड कम्पनी' नामक एक फर्म के कारण जो कि एक व्यावसायिक संस्था थी, गवर्नर जनरल की बदनामी हुई। इस कम्पनी में गवर्नर जनरल का एक सम्बन्धी भी साझीदार था। उसने हैदराबाद के निजाम को अत्यधिक ऊँची ब्याज की दर पर ऋण दिया, लेकिन पार्लियामेंट ने इस प्रकार के ऋण देने का निषेध कर दिया। इससे लार्ड हेस्टिंग्ज ने बदनाम होकर 1823 में त्याग-पत्र दे दिया।

लार्ड हेस्टिंग्ज का मूल्यांकन– भारत में ब्रिटिश राज्य सुदृढ़ करने में लार्ड हेस्टिंग्ज का बहुत अधिक योगदान रहा। निस्सन्देह वह भारत में अंग्रेजी साम्राज्य के निर्माताओं में से एक है। उसने मराठा-शक्ति का पूर्णतया अन्त कर दिया। मराठों के सहायक पिंडारियों का सफाया किया। उसने नेपाल से सन्धि की और राजपूतों की स्थायी मैत्री अर्जित की। उसके शासन-काल में ब्रिटिश साम्राज्य उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कुमारी अन्तरीप तक तथा पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी से लेकर पश्चिम में सतलज नदी तक विस्तृत हो गया था। इस प्रकार लार्ड हेस्टिंग्ज सच्चे अर्थों में ब्रिटिश साम्राज्य को सुदृढ़ करने वाला था।

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ (Important Dates & Events)

1. 1813 ई. – लार्ड हेस्टिंग्ज का भारत आगमन।
2. 1814-16 ई. – गोरखों का प्रथम युद्ध तथा सिंगौली की सन्धि।
3. 1817-19 ई. – तृतीय मराठा युद्ध।
4. 1822 ई. – बंगाल टेनेन्सी ऐक्ट पारित हुआ।
5. 1823 ई. – लार्ड हेस्टिंग्ज की वापसी।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. लार्ड हेस्टिंग्ज की मराठों के प्रति नीति की विवेचना कीजिए। (1966)
2. मराठों के पतन के कारणों का उल्लेख कीजिए। (1970,79)
3. मराठा शक्ति के ह्रास और पतन के क्या कारण थे? (1991)
4. अंग्रेजों के विरुद्ध मराठों की असफलता के कारणों का विश्लेषण कीजिए। (1990)
5. मराठों के पतन के कारणों पर प्रकाश डालिए। (1998)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "लार्ड हेस्टिंग्ज ने लार्ड वेलेजली के अधूरे कार्य को पूर्ण किया।" इस कथन के प्रकाश में लार्ड हेस्टिंग्ज की मराठों के प्रति नीति का उल्लेख कीजिए।
2. "लार्ड हेस्टिंग्ज ने भारत में ब्रिटिश राज्य को सुदृढ़ करने के लिये बहुत कार्य किया।" उसके शासन-काल की घटनाओं पर प्रकाश डालते हुए इस कथन की पुष्टि कीजिए।
3. "लार्ड हेस्टिंग्ज एक कुशल शासक तथा सुधारक था।" इस कथन के संदर्भ में उसके सुधारों का मूल्यांकन कीजिए।
4. "लार्ड हेस्टिंग्ज भारत में ब्रिटिश शासन का संस्थापक था।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं?

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. लार्ड हेस्टिंग्ज के शासन-काल की प्रमुख घटनाएँ क्या थीं?
2. तृतीय मराठा युद्ध के परिणामों का उल्लेख कीजिए।

3. लार्ड हेस्टिंग्ज के सुधारों का वर्णन कीजिए।
4. 'महलवाड़ी व्यवस्था' का स्वरूप बताइए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. गोरखा युद्ध कब और किसके बीच हुआ था?
गोरखा युद्ध 1814 में अंग्रेजों और गोरखों के बीच हुआ था।
2. सिंगौली की सन्धि किसके बीच हुई थी?
सिंगौली की सन्धि अंग्रेजों और गोरखों के बीच हुई थी।
3. तृतीय मराठा संघ में शामिल होने वाले दो मराठा सरदारों के नाम बताइए।
(1) पेशवा बाजीराव द्वितीय, तथा (2) भोंसला अप्पा जी।
4. मराठों के पतन के दो कारण बताइए।
(1) मराठों में एकता का अभाव होना, तथा (2) सामुद्रिक शक्ति का अभाव होना।
5. लार्ड हेस्टिंग्ज की दो सफलताएँ बताइए।
(1) पिंडारियों का दमन, तथा (2) मराठा संघ के अस्तित्व की समाप्ति।
6. पिंडारी कौन थे?
पिंडारी लूटमार में संलिप्त रहते थे तथा समाज के लिए अभिशाप थे।

बहु-विकल्पीय प्रश्न

निर्देश : नीचे दिये गये प्रत्येक प्रश्न के चार विकल्पों में से सही विकल्प छाँटकर लिखिए :

1. तृतीय मराठा युद्ध कब आरम्भ हुआ था?
(क) 1810 ई. में, (ख) 1815 ई. में, (ग) 1817 ई. में, (घ) 1820 ई. में।
2. तृतीय मराठा युद्ध किसके मध्य हुआ था?
(क) अंग्रेजों और गोरखों, (ख) अंग्रेजों और मराठों,
(ग) अंग्रेजों और टीपू, (घ) अंग्रेजों और मुगलों।
3. सिंगौली की सन्धि किसके मध्य हुई थी?
(क) अंग्रेजों तथा मराठों, (ख) अंग्रेजों तथा टीपू,
(ग) अंग्रेजों तथा गोरखों, (घ) अंग्रेजों तथा हैदरअली।
4. सिंगौली की सन्धि कब हुई थी?
(क) 1811 ई. में, (ख) 1816 ई. में, (ग) 1817 ई. में, (घ) 1820 ई. में।
5. 'बंगाल टेनेन्सी ऐक्ट' कब पारित हुआ था?
(क) 1820 ई. में, (ख) 1821 ई. में, (ग) 1822 ई. में, (घ) 1824 ई. में।

■

19

लार्ड एमहर्स्ट
[1823-28]

> "यह बेखटके कहा जा सकता है कि अधिक आक्रामक गवर्नर जनरल ने भी ऐसा न विचारा था कि अब से तीस वर्ष के अन्दर राज्य की लाल रेखा बिना किसी रुकावट के खाड़ी की पूर्वी दिशा की ओर उसी समान्तर में, उसी अक्षांश तक बढ़ती जाएगी, जैसी भारत के दक्षिण कोने से मदुरा तक।"
>
> –पी.ई. राबर्ट्स

लार्ड हेस्टिंग्ज के चले जाने के पश्चात् सात महीने तक जॉन ऐडम ने शासन किया। उसके स्थान पर लार्ड एमहर्स्ट भारत का गवर्नर जनरल होकर आया। लार्ड एमहर्स्ट अपने पूर्वजों–लार्ड हेस्टिंग्ज अथवा वेलेजली के समान न तो योग्य था और न ही प्रतिभाशाली। वह सामान्य योग्यता वाला व्यक्ति था। उसने अपने समय की भारतीय समस्याओं को ठीक तरह नहीं समझा।

लार्ड एमहर्स्ट के काल की प्रमुख घटनाएँ

उसके शासनकाल की प्रमुख घटनाएँ हैं : प्रथम, बर्मा का प्रथम युद्ध, द्वितीय, बैरकपुर का सैनिक विद्रोह तथा तृतीय, भरतपुर का घेरा।

(1) बर्मा का प्रथम युद्ध (1824-26)– लार्ड हेस्टिंग्ज के शासनकाल के दौरान (1819) बर्मा के राजा ने हेस्टिंग्ज को एक पत्र लिखकर चटगाँव, ढाका, मुर्शिदाबाद और कासिम बाजार पर अपने आधिपत्य का दावा किया। लेकिन हेस्टिंग्ज ने पत्र को जाली बताकर राजा को वापस कर दिया। 1823 में बर्मा की सेना ने कम्पनी से सम्बन्धित चटगाँव के दक्षिण में स्थित एक छोटे द्वीप शाहपुरी पर आक्रमण कर दिया। चूँकि इस आक्रमण से अंग्रेजों के व्यापार को हानि होती, अतः 1824 में लार्ड एमहर्स्ट (1823–28) ने बर्मा के राजा से आक्रमण रोकने के लिये कहा, परन्तु कोई सन्तोषजनक उत्तर न मिलने पर उसने 24 फरवरी, 1824 को बर्मा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

युद्ध की प्रमुख घटनाएँ– बर्मा पर आक्रमण करने के लिए अंग्रेजों की दो सेनाएँ चलीं। एक सेना असम की ओर से स्थल मार्ग से गई और दूसरी मद्रास से जहाजों द्वारा रंगून के लिये चल पड़ी। पहले बर्मा के सेनापति बांदुला ने आसाम के मोर्चे पर स्थल सेना का सामना किया और उसे रामू नामक स्थान पर बुरी तरह से पराजित किया। उधर मद्रास की सेना ने जनरल कैम्पबेल के नेतृत्व में 11 मई, 1824 को रंगून पर अधिकार कर लिया। अतः बांदुला को असम का मोर्चा छोड़कर रंगून की रक्षा के लिए जाना पड़ा। 1825 में जब कैम्पबेल रंगून से प्रोम की ओर बढ़ा तो बांदुला ने उसका यांडबू में बड़ी वीरता से एक माह तक सामना किया, किन्तु अन्त में वह पराजित हुआ और मारा गया। तीन सप्ताह पश्चात् कैम्पबेल ने दक्षिणी बर्मा

की राजधानी प्रोम पर अधिकार कर लिया। अपने सेनापति बांदुला की मृत्यु से बर्मा का राजा हताश हो गया।

अतः अगस्त, 1825 में सन्धि-वार्ता प्रारम्भ हुई, परन्तु बर्मी लोगों ने शर्तें अस्वीकार कर दीं और पुनः अंग्रेजों और बर्मा के बीच युद्ध प्रारम्भ हो गया। अन्त में दोनों पक्षों में 24 फरवरी, 1826 को यांडबू की सन्धि के द्वारा युद्ध का अन्त हुआ।

यांडबू की सन्धि– इस सन्धि की शर्तें इस प्रकार थीं :

(i) अंग्रेजों को बर्मा से आराकान तथा तेनासरीन के जिले प्राप्त हुए।
(ii) बर्मा सरकार का असम, जयन्तिया और केचर आदि प्रदेशों पर से अधिकार समाप्त हो गया।
(iii) मणिपुर को स्वतन्त्र राज्य घोषित कर दिया गया।
(iv) एक अंग्रेज रेजीडेन्ट रंगून में और एक बर्मा का राजदूत कलकत्ता में रहेगा।
(v) बर्मा के राजा को दस लाख पौण्ड क्षति के रूप में अंग्रेजों को देना होगा।

सन्धि के परिणाम– इस सन्धि के निम्नलिखित परिणाम हुए–

(i) बर्मा के तट पर अंग्रेजों का आधिपत्य स्थापित हो गया।
(ii) असम, जयन्तिया, केचर और मणिपुर प्रदेशों पर अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हो गया।
(iii) बर्मा के तट पर अंग्रेजों की अत्यधिक क्षति हुई। इस युद्ध में एक करोड़ तीस लाख पौंड व्यय हुआ। दूसरे शब्दों में पिंडारी और मराठा-युद्ध से 12 गुना अधिक व्यय हुआ।

(2) बैरकपुर का सैनिक विद्रोह (1824)– लार्ड एमहर्स्ट के शासन की सबसे अशुभ घटना बैरकपुर के सैनिकों का विद्रोह था। जब बैरकपुर की छावनी के हिन्दुस्तानी सैनिकों को समुद्र पार रंगून जाने की आज्ञा दी गई तो उन्होंने इस आज्ञा का उल्लंघन किया, क्योंकि उन्हें इस बात का भय था कि यदि उन्हें जहाज की यात्रा करनी पड़ी तो वे अपनी जाति से पृथक् कर दिये जायेंगे। जब उन्हें अस्त्र-शस्त्र समर्पित करने को कहा गया तो उन्होंने विद्रोह कर दिया। विद्रोहियों का क्रूरता से दमन किया गया। कलकत्ता से एक अंग्रेजी सेना भेजी गई जिसने विद्रोहियों को चारों ओर से घेरकर गोली चलायी, जिससे अनेक सैनिकों की मृत्यु हो गई। कुछ को प्राणदण्ड दिया गया और कुछ से अमानुषिक कार्य करवाये गये।

अंग्रजों ने जिस ढंग से इस विद्रोह का दमन किया, उसकी कटु आलोचना की जाती है। विद्रोह का रूप इतना भयंकर नहीं था कि सैनिकों को समझा-बुझाकर दबाया न जा सकता। विद्रोहियों को प्राणदण्ड देना भी सर्वथा अन्यायपूर्ण था। उन्होंने अंग्रेजों पर न तो आक्रमण किया था और न ही किसी की हत्या की थी। विद्रोह का दमन जिस नृशंसता से किया गया उसके सम्बन्ध में पी.ई. राबर्ट्स का कथन है, "विद्रोह तो केवल बगावत करने वाली रेजीमेन्ट को ब्रिटिश तोपखाने से उड़ा देने से दब गया और कवायत का मैदान बूचड़खाना बन गया। बंगाल की 47वीं देशी सेना का देशी सेना की सूची से नामोंनिशाँ मिटा दिया गया।"

(3) भरतपुर का घेरा (1826)– अलीगढ़ के निकट जाट राजा द्वारा निर्मित भरतपुर का अजेय दुर्ग था जो अंग्रेजों की आँख का काँटा बना हुआ था। भरतपुर के राजा से अंग्रेजों की बहुत दिनों से वैमनस्यता भी चली आ रही थी, क्योंकि उसने मराठों का साथ दिया था। लार्ड वेलेजली के शासन-काल में जनरल लेक ने चार बार इस दुर्ग को तोड़ने का प्रयास

किया, किन्तु मिट्टी के बने हुए इस दुर्ग पर वह अधिकार नहीं कर सका था। इससे अंग्रेजों की प्रतिष्ठा को बहुत धक्का लगा था। 1826 में भरतपुर के निःसन्तान राजा भण्डार सिंह की मृत्यु हो गई। तत्पश्चात् उसके भाई बलदेव सिंह और उसके भतीजे दुर्जनसाल में उत्तराधिकार के लिए झगड़ा प्रारम्भ हो गया, जिसका लाभ उठाकर अंग्रेजों ने बलदेव सिंह के पक्ष में अपना निर्णय दिया, किन्तु एक माह के अन्दर ही उसकी मृत्यु हो गई। अंग्रेजों ने उसकी मृत्यु के उपरान्त उसके अल्पवयस्क पुत्र का पक्ष लिया, किन्तु दुर्जनसाल ने बलपूर्वक दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया। अंग्रेजों ने सेनापति काम्बर मिअर के अधीन एक सेना भेजी। उसने जनवरी, 1826 में भरतपुर का घेरा डालकर दुर्ग पर धावा बोल दिया। अन्त में दुर्जनसाल पराजित हुआ। वह गद्दी से हटा दिया गया और उसके स्थान पर बलदेवसिंह का पुत्र गद्दी पर बैठा दिया गया।

1828 में अपने कार्य काल की अवधि समाप्त होने पर लार्ड एमहर्स्ट इंगलैण्ड वापस चला गया और उसके स्थान पर लार्ड विलियम बेंटिंक भारत का गवर्नर जनरल होकर आया, जिसका शासन-काल भारतीय इतिहास में सुधारों के काल के रूप में विख्यात है।

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ (Important Dates & Events)

1. 1824 ई. - बर्मा का प्रथम युद्ध तथा बैरकपुर का सैनिक विद्रोह।
2. 1826 ई. - यांडबू की सन्धि तथा भरतपुर का घेरा।
3. 1828 ई. - लार्ड एमहर्स्ट की वापसी।

अभ्यासार्थ प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. लार्ड एमहर्स्ट के शासनकाल की प्रमुख घटनाओं का उल्लेख कीजिए।
2. बैरकपुर के सैनिक-विद्रोह के विषय में आप क्या जानते हैं?

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. बर्मा का प्रथम युद्ध कब और किसके बीच हुआ था?
   1824 में अंग्रेज़ों और बर्मा सरकार के बीच हुआ था।
2. बैरकपुर का सैनिक विद्रोह क्यों हुआ?
   बैरकपुर की छावनी के भारतीय सैनिकों को समुद्र पार जाने की आज्ञा दी गई थी।
3. लार्ड एमहर्स्ट के काल की दो घटनाओं के नाम बताइए।
   (1) बर्मा का प्रथम युद्ध, तथा (2) बैरकपुर का सैनिक विद्रोह।
4. भरतपुर का घेरा क्यों डाला गया?
   दुर्जनसाल ने बलपूर्वक भरतपुर दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया था।

बहुविकल्पीय प्रश्न

निर्देश : नीचे दिये गये प्रत्येक प्रश्न के चार विकल्पों में से सही विकल्प छाँटकर लिखिए :

1. प्रथम बर्मा युद्ध कब आरम्भ हुआ?
   (क) 1821 ई. में, (ख) 1822 ई. में, (ग) 1824 ई. में, (घ) इनमें से कोई नहीं।
2. प्रथम बर्मा युद्ध के समय कौन गवर्नर जनरल था?
   (क) लार्ड हेस्टिंग्ज, (ख) लार्ड कार्नवालिस, (ग) लार्ड एमहर्स्ट, (घ) लार्ड डलहौजी।

3. यांडबू की सन्धि कब हुई थी?
(क) 1823 ई. में, (ख) 1826 ई. में, (ग) 1830 ई. में, (घ) 1828 ई. में।
4. बैरकपुर का सैनिक विद्रोह कब हुआ था?
(क) 1820 ई. में, (ख) 1821 ई. में, (ग) 1824 ई. में, (घ) 1825 ई. में।
5. प्रथम बर्मा युद्ध के पश्चात् निम्नलिखित में से किन भू-भागों को अंग्रेजों ने प्राप्त किया था?
(क) अराकान तथा तेनासरीन के जिले, (ख) असम व केचर,
(ग) मणिपुर व जयन्तिया, (घ) असम, केचर व मणिपुर।

■

20

लार्ड विलियम बेंटिंक

[1828-35]

"बेंटिंक ने भारत का शासन बुद्धिमत्ता, सच्चाई और सज्जनता से किया। वह कभी यह नहीं भूला कि शासक का परम लक्ष्य प्रजा का कल्याण करना है। उसने निर्दयतापूर्ण रीति-रिवाजों को दूर किया, भारतीयों को प्राप्त होने वाले अपमानजनक भेदभाव को नष्ट किया और जनता के विचारों को प्रसार की स्वतंत्रता दी।" —लार्ड मैकाले

1828 में लार्ड एमहर्स्ट के स्वदेश लौट जाने के पश्चात् लार्ड विलियम बेंटिंक भारत का गवर्नर जनरल होकर आया। उसका सात वर्षों का शासन-काल शान्ति और सुधारों का काल था। इससे पूर्व वह चार वर्ष तक मद्रास का गवर्नर रह चुका था और शासन का अच्छा अनुभव प्राप्त कर चुका था। वास्तव में वही पहला गवर्नर जनरल था जिसने इस सिद्धान्त के अनुसार कार्य किया कि " अपनी प्रजा का कल्याण ही भारत में अंग्रेजों का प्रमुख और संभवतः प्रारम्भिक कर्तव्य है।" इस सिद्धान्त के वशीभूत होकर उसने भारत में सुधारों का युग प्रारम्भ किया तथा कोई भी क्षेत्र उसके सुधारों से वंचित न रह सका।

लार्ड विलियम बेंटिंक के सुधार

लार्ड विलियम बेंटिंक के सुधारों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है :

लार्ड विलियम बेंटिंक के सुधार

1. आर्थिक सुधार
2. न्याय-सम्बन्धी सुधार
3. शिक्षा-सम्बन्धी सुधार
4. सामाजिक सुधार
5. सार्वजनिक सुधार
6. वैधानिक सुधार

(1) आर्थिक सुधार- सर्वप्रथम बेंटिंक ने आर्थिक सुधारों की ओर ध्यान दिया, क्योंकि इस समय कम्पनी की आर्थिक दशा बहुत शोचनीय थी। इसके लिये उसने कम्पनी की आय में वृद्धि और व्यय में कमी करने का निश्चय किया। उसने कम्पनी की आर्थिक दशा सुधारने के लिये निम्नलिखित महत्वपूर्ण कार्य किये :

(i) 640 किमी. की दूरी तक रहने वाले सैनिकों को दिये जाने वाले भत्ते को आधा कर दिया।

(ii) बहुत से व्यर्थ के पदों को समाप्त कर दिया।

(iii) सिविल सर्विस के नौकरों के वेतन में कमी कर दी और उनके भत्ते काट दिये। सैनिक सेवाओं में भी दोहरा भत्ता कम कर दिया।

(iv) प्रान्तों की अपील और दौरा अदालतों को समाप्त कर दिया।

(v) उसने अफीम की खेती को प्रोत्साहन दिया। अफीम के व्यापार से कम्पनी की आय में बहुत वृद्धि हो गई।

(vi) बहुत से जमींदारों को राजाओं तथा नवाबों द्वारा बहुत-सी भूमि माफी के रूप में मिली हुई थी। उस पर उनको सरकार को कोई लगान नहीं देना पड़ता था। बेंटिंक ने इस प्रकार

की भूमि के कागजों की जाँच कराई और प्रमाण-पत्रों के अभाव में बहुत-सी भूमि पर लगान लगा दिया। इससे कम्पनी के राजस्व में 30 लाख रुपये वार्षिक आय बढ़ गई।

(vii) उसने पश्चिमोत्तर प्रदेश जिसमें ब्रिटिश भारत के संयुक्त प्रदेश, आगरा व अवध सम्मिलित थें, में पुनः भूमि-प्रबन्ध कराया और तीसवर्षीय बन्दोबस्त किया। इससे कम्पनी की आय में तो वृद्धि हो गई, किन्तु किसानों की अवस्था शोचनीय हो गई, क्योंकि लगान की दर अधिक निर्धारित की गई थी।

(viii) लार्ड कार्नवालिस ने भारतीयों को सरकारी नौकरियों से वंचित कर दिया था। विलियम बेंटिंक ने निम्न पदों पर भारतीयों को नियुक्त किया जिनका वेतन अंग्रेजों की अपेक्षा बहुत कम था। इससे भी कम्पनी के व्यय में कमी हुई।

(2) न्याय सम्बन्धी सुधार– लार्ड विलियम बेंटिंक ने न्याय-व्यवस्था को उन्नत करने की ओर ध्यान दिया। इस समय न्याय-विभाग में तीन बड़े दोष थे–

(i) विलम्ब, (ii) अपव्यय, (iii) अनिश्चयता। अतः न्याय-विभाग के इन दोषों को दूर करने के लिए उसने निम्नलिखित सुधार किये :

(1) उसने प्रान्तों की अपील और दौरा अदालतें बन्द कर दीं, क्योंकि ये अदालतें उन कर्मचारियों की विश्राम-स्थली हो गई थीं जो कि अधिक उत्तरदायित्व पदों के लिए अयोग्य थे।

(2) दीवानी अदालतों का कार्य सदर अदालत के हाथ में और सेशन अदालतों का कार्य कमिश्नरों को सौंप दिया। परन्तु कमिश्नरों का कार्य सन्तोषजनक न होने के कारण उनके कार्य 1832 में डिस्ट्रिक्ट जजों को दे दिये।

(3) इलाहाबाद में बोर्ड ऑफ रेवन्यू की स्थापना की।

(4) फारसी भाषा के स्थान पर उर्दू भाषा को अदालतों की भाषा स्वीकार कर लिया।

(5) भारतीय न्यायाधीशों की संख्या बढ़ा दी और उनके वेतन में अभिवृद्धि की।

(3) शिक्षा-सम्बन्धी-सुधार– 1813 के चार्टर द्वारा कम्पनी ने शिक्षा के प्रचार के लिए एक लाख रुपया वार्षिक निर्धारित किया था। पिछले गवर्नरों ने भारतीय भाषांओं को प्रोत्साहन दिया था, किन्तु लार्ड विलियम बेंटिंक ने इस ओर विशेष ध्यान दिया। इस समय यह विवाद उठ खड़ा हुआ कि भारत में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हो अथवा भारतीय भाषाएँ। भारत की प्राचीन शिक्षा-व्यवस्था के समर्थक एच.एस.विल्सन थे और अंग्रेजी शिक्षा-व्यवस्था के समर्थक लार्ड मैकाले थे। प्रसिद्ध भारतीय विद्वान् राजा राममोहन राय ने भी मैकाले पक्ष का समर्थन किया। अन्त में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी को ही निश्चित किया गया। 1835 में विलियम बेंटिंक ने घोषित किया, "कौंसिल में गवर्नर जनरल की सम्मति है कि भारत के निवासियों में यूरोपीय साहित्य और विज्ञान की वृद्धि करना ब्रिटिश सरकार का प्रधान प्रयोजन होना चाहिए और शिक्षा के निमित्त स्वीकृत सब आर्थिक सहायता को केवल अंग्रेजी शिक्षा पर व्यय करना उसका सर्वोत्तम उपयोग होगा।" इस प्रकार भारत में अंग्रेजी शिक्षा का जन्म हुआ। इसी वर्ष कलकत्ता में मेडिकल कालेज की स्थापना की गई जहाँ अंग्रेजी माध्यम द्वारा चिकित्सा पद्धति की शिक्षा दी जाने लगी।

(4) सामाजिक सुधार– लार्ड विलियम बेंटिंक के उक्त सुधारों की अपेक्षा उसके सामाजिक सुधारों का महत्व अधिक है। उसके इन सुधारों को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत

विभाजित किया जा सकता है :

(अ) सती-प्रथा का अन्त– भारत में उन दिनों सती-प्रथा का जोर बढ़ रहा था। हिन्दुओं में पति की मृत्यु हो जाने पर उसकी चिता के साथ उसकी पत्नी को भी बलपूर्वक जला दिया जाता था। कहते हैं कि 1817 में केवल बंगाल में 700 महिलाएँ जीवित जला दी गईं थीं। राजा राममोहन राय ने इस प्रथा का विरोध किया। उनके प्रोत्साहन से बेंटिंक ने 14 दिसम्बर, 1829 को एक कानून बनाकर सती-प्रथा को अवैध घोषित कर दिया। उस समय 'ऐसी अनेक बेहूदा भविष्यवाणियाँ की गईं कि यदि इस प्रथा को बंद किया गया तो अशान्ति उत्पन्न हो जायेगी। परन्तु बेंटिंक ने जिसमें वास्तविक सुधार का साहस था, सारा उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया और जैसा कि प्राय: होता है, भविष्य-वक्ताओं की कोई भी अशुभ सूचक बात पूर्ण न हुई।'

सामाजिक सुधार
अ. सती-प्रथा का अन्त
ब. ठगों का अन्त
स. मानव-बलि का अन्त
द. बाल-हत्या का अन्त
य. प्रेसों की स्वतंत्रता

(ब) ठगों का अन्त– उचित शासन-व्यवस्था के अभाव में मध्य प्रदेश तथा अन्य जंगली एवं पहाड़ी इलाकों में ठगों की संख्या बहुत बढ़ती जा रही थी। इसमें हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही सम्मिलित थे। ये लोग काली की पूजा करते थे तथा शांत यात्रियों की हत्या करते, उन्हें लूटते हुए देश में घूमते थे। विलियम बेंटिंक ने इनके दमन का निश्चय किया। उसने कर्नल स्लीमेन की अध्यक्षता में एक नया विभाग खोला। 6 वर्ष में 2,000 से अधिक ठग पकड़े गये। उन पर मुकदमा चलाया गया जिसके परिणामस्वरूप सैकड़ों को प्राण-दण्ड मिला। उनके बच्चों आदि के लिए सरकार ने जबलपुर में एक 'औद्योगिक विद्यालय' स्थापित किया, जहाँ वे सम्मानपूर्वक जीविका के लिए कोई काम सीख सकते थे।

(स) मानव-बलि का अन्त– बेंटिंक के समय देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिये मनुष्य की बलि दी जाती थी। बेंटिंक ने इस प्रथा को अवैध घोषित कर दिया।

(द) बाल-हत्या का अन्त– राजपूताना आदि स्थानों के राजपूत कन्या जन्म को अभिशाप समझते थे। वह कन्या के विवाह के लिए मान-मर्यादा के कारण अथवा अपहरण के भय के कारण अपनी नवजात कन्याओं का वध कर देते थे। विलियम बेंटिंक ने इस कुप्रथा को अवैध घोषित कर दिया।

(य) प्रेसों की स्वतन्त्रता– लार्ड विलियम बेंटिंक ने प्रेसों को स्वतंत्रता प्रदान की जिससे जनता को स्वतंत्रतापूर्वक अपने विचारों को व्यक्त करने का अवसर प्राप्त हुआ।

(5) सार्वजनिक सुधार– बेंटिंक ने अनेक प्रजा-हितकारी कार्य सम्पन्न किये। उसने सिंचाई के लिए नहरों का निर्माण कराया। आगरा प्रान्त की सिंचाई के लिए नहरों की व्यवस्था की गई। उसने सड़कों का पुनर्निमाण कराया।

(6) वैधानिक सुधार 1833 का चार्टर ऐक्ट– 1833 में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने कम्पनी को पुन: 20 वर्षों के लिए नया चार्टर या आज्ञापत्र दे दिया। इस आज्ञापत्र के द्वारा कम्पनी का चाय पर से अधिकार समाप्त कर दिया गया। अब बंगाल का गवर्नर जनरल भारत का गवर्नर जनरल कहलाने लगा। अब तक कम्पनी के साम्राज्य में तीन प्रेसीडेन्सियाँ थीं, लेकिन इस चार्टर द्वारा आगरा की चौथी प्रेसीडेन्सी स्थापित की गई। गवर्नर जनरल को अपनी कौंसिल की सहायता से सम्पूर्ण देश के लिए कानून बनाने का अधिकार मिल गया। उसकी कौंसिल में एक चौथा

कानूनी सदस्य बढ़ा दिया गया। बम्बई तथा मद्रास की प्रेसीडेन्सियाँ पूर्णरूपेण गवर्नर जनरल के अधीन कर दी गईं। इस आज्ञापत्र से भारतीयों के लिए योग्यतानुसार उच्चपदों का द्वार खोल दिया गया। इस आज्ञापत्र की एक धारा के अनुसार दास-प्रथा का विरोध किया गया।

देशी राज्यों के प्रति लार्ड विलियम बेंटिंक की नीति– तटस्थता की नीति का समर्थक होते हुए भी आवश्यकता पड़ने पर बेंटिंक ने अग्रगामी नीति का अनुसरण किया। डॉ. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, "बेंटिंक की कोई निश्चित नीति नहीं थी। वह स्थिति के अनुसार अपनी इच्छा से कार्य करता था। सामान्यतया उसकी नीति तीन प्रकार की थी : उसने हैदराबाद, जयपुर, जोधपुर तथा भोपाल राज्यों के साथ तटस्थता की नीति अपनाई। ग्वालियर तथा इन्दौर के प्रति उसने ढुलमुल नीति का पालन किया तथा मैसूर व कुर्ग के प्रति उसने साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण किया।

नीति का क्रियात्मक स्वरूप– हैदराबाद, जयपुर, जोधपुर, तथा भोपाल के सम्बन्ध में बेंटिंक ने तटस्थता की नीति अपनाई। 1829 में हैदराबाद के निजाम सिकन्दरशाह की मृत्यु हो गई। उसके पुत्र नाजिरुद्दीन ने बेंटिक से अंग्रेज अफसरों को वापस बुला लेने की प्रार्थना की। बेंटिंक ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। 1830 में जयपुर के राजा की मृत्यु के पश्चात् वहाँ गृह-युद्ध प्रारम्भ हो गया जिसमें विधवा रानी तथा एक सामन्त की हत्या कर दी गई। परन्तु बेंटिंक ने गृह-युद्ध में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया। 1834 में जोधपुर में अशान्ति फैल गई जिसको ब्रिटिश रेजीडेण्ट की सहायता से दबा दिया गया। इन्हीं दिनों भोपाल के नवाब की मृत्यु के पश्चात् वहाँ गृह-युद्ध प्रारम्भ हो गया, परन्तु बेंटिंक तटस्थ रहा और उसने किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया।

ग्वालियर तथा इन्दौर के सम्बन्ध में बेंटिंक ने ढुलमुल नीति का अनुसरण किया। 1827 ई. में ग्वालियर के राजा दौलतराम सिन्धिया की मृत्यु के पश्चात् उसकी विधवा रानी बेजाबाई ने एक लड़के को गोद ले लिया जो जनकोजीराव के नाम से गद्दी पर बैठा। 1832 में बेजाबाई ने राज्य की वास्तविक शक्ति अपने हाथ में रखने के लिये कम्पनी से प्रार्थना की। दूसरे वर्ष उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली गई। बेंटिंक ने इन्दौर तथा बड़ौदा के राजाओं की मृत्यु के पश्चात् होने वाले गृह-युद्धों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया और तटस्थता की नीति का अनुसरण किया।

बेंटिंक ने मैसूर और कुर्ग के सम्बन्ध में साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण किया। परिस्थिति इतनी गम्भीर हो गई कि लार्ड बेंटिंक जैसे तटस्थ व्यक्ति को हस्तक्षेप करना पड़ा। कृष्णराव को पदच्युत करके मैसूर राज्य का भार अंग्रेज कमिश्नर को सौंप दिया। बेंटिंक ने कुर्ग के राजा पर कुशासन का आरोप लगाकर 1834 में उस पर आक्रमण कर दिया और उसके राज्य को कम्पनी के राज्य में मिला लिया। 1830 में कछार के राजा गोविन्दचन्द्र के निःसंतान मर जाने पर बेंटिंक ने उसके राज्य को कम्पनी के राज्य में मिला लिया। इसी प्रकार अपने जैन्तिया को भी कम्पनी के अधीन कर लिया और राजा को पेंशन दे दी गई।

लार्ड बेंटिंक के सिन्ध तथा पंजाब के साथ सम्बन्ध– इन्हीं दिनों रूस के सम्भावित आक्रमण के कारण अंग्रेजों को पश्चिमोत्तर प्रदेश की सुरक्षा की बड़ी चिन्ता हुई और उनका ध्यान पश्चिमोत्तर सीमा पर स्थित पंजाब के भीतर सिक्ख-राज्य और सिन्ध अमीरों के राज्य की ओर गया।

सिन्ध के अमीरों के साथ सन्धि– 1832 में बैंटिंक ने कर्नल पाण्टिजर को सिन्ध के अमीरों के साथ सन्धि की बातचीत करने भेजा। अमीर लोग रणजीत सिंह से भयभीत थे। अतः बाध्य होकर इन्होंने अंग्रेजों से एक व्यापारिक सन्धि कर ली। इस सन्धि के अनुसार अंग्रेजों को सिन्ध से व्यापार करने की सुविधा प्राप्त हो गई। अंग्रेजों ने अमीरों को यह वचन दिया कि सिन्ध से होकर कोई अंग्रेजी सेना अथवा युद्ध-सामग्री नहीं भेजी जायेगी और न कोई अंग्रेज स्थायी रूप से सिन्ध में निवास करेगा। इस प्रकार बैंटिंक सिन्ध को अपना मित्र बनाने में सफल रहा।

रणजीतसिंह के साथ सन्धि– बैंटिंक ने पंजाब के राजा रणजीतसिंह के पास राबर्ट्स बर्न्स को भेजकर मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किये, क्योंकि वह अत्यधिक शक्तिशाली राजा था। बैंटिंक स्वयं रणजीतसिंह से भेंट करके इस मैत्री के सम्बन्ध में आश्वस्त होना चाहता था। अतः 1833 में बैंटिंक ने सतलज नदी के किनारे रोपड़ नामक नगर में एक बहुत बड़े दरबार का आयोजन करके रणजीतसिंह का बड़ी धूम-धाम के साथ स्वागत किया और उसके साथ एक नई सन्धि की। इस सन्धि के अनुसार सिक्खों ने अंग्रेजों को सतलज नदी के मार्ग से व्यापार करने की आज्ञा दे दी। दोनों ने एक दूसरे के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध निभाने का वचन दिया। इस सन्धि से रूस के आक्रमण का भय जाता रहा। इस प्रकार सिन्ध और पंजाब से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करके बैंटिंक ने अपनी असाधारण योग्यता का परिचय दिया। 1835 में बैंटिंक का कार्यकाल समाप्त हो गया और वह इंग्लैण्ड वापस चला गया।

विलियम बेंटिंक का मूल्यांकन– विलियम बैंटिक का अपने सुधारों के कारण कम्पनी के शासकों में ऊँचा स्थान है। उसने युद्धों से दूर रहकर भारत में आर्थिक, सामाजिक तथा शासन-सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण सुधार किये। यद्यपि उसने अग्रगामी नीति का अनुसरण नहीं किया तथापि उसने मैसूर, कुर्ग, कछार, जैन्तिया आदि राज्यों को बिना युद्ध किये अंग्रेजी राज्यों में मिला लिया। निःसन्देह उसका सात वर्षों का शासन-काल भारत में सुधारों का राज्य था। अनेक विद्वानों ने बैंटिंक की मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है।

पी.ई. राबर्ट्स ने उनकी प्रशंसा करते हुए लिखा है," भारतीय जनता के हित की इच्छा, शासन प्रबन्ध में बचत और शांति स्थिर रखने की सत्य धारण के दृष्टिकोण से उसकी अपने पश्चात् आने वाले उदार गवर्नर जनरलों से रिपन से तुलना की जा सकती है।"

मार्शमैन के अनुसार, " बैंटिंक का शासन-काल लार्ड कार्नवालिस एवं लार्ड डलहौजी दोनों के मध्य सबसे अधिक स्मरणीय सुधार काल तथा भारतीय सुधारों के इतिहास का एक महत्वपूर्ण बिन्दु था।"

डॉ. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, "उसके सारे सुधार यद्यपि आर्थिक दृष्टि से किये गये थे, परन्तु उसके अधीनस्थ प्रदेशों की प्रजा को भी कम लाभ नहीं हुआ। उसने पतनोन्मुख शासन-तन्त्र में नए जीवन का संचार किया।"

लार्ड मैकाले ने उसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है, "बैंटिंक ने भारत का शासन बुद्धिमत्ता, सच्चाई और सज्जनता से किया। वह कभी यह नहीं भूला कि शासक का परम लक्ष्य शासितों का कल्याण है। उसने निर्दयतापूर्ण रीति-रिवाज़ों को दूर किया, भारतीयों के प्रति होने वाले अपमानजनक भेद-भाव को मिटाया और लोकमत की अभिव्यक्ति को स्वतंत्रता प्रदान की।"

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ (Important Dates & Events)

1. 1828 ई. – लार्ड विलियम बेंटिंक का भारत आगमन।
2. 1829 ई. – सती-प्रथा अवैध घोषित।
3. 1832 ई. – सिन्ध के अमीरों के साथ सन्धि।
4. 1833 ई. – राजा रणजीतसिंह के साथ सन्धि।
5. 1835 ई. – लार्ड विलियम बेंटिंक की वापसी।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. लार्ड विलियम बेंटिंक के सुधारों का वर्णन कीजिए। उनका क्या प्रभाव पड़ा? (1960)
2. लार्ड विलियम बेंटिंक के सामाजिक तथा प्रशासकीय सुधारों का वर्णन कीजिए। (1964)
3. लार्ड विलियम बेंटिंक के शासन-सुधारों का विस्तृत वर्णन कीजिए। (1996,98,06)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "लार्ड विलियम बेंटिंक का आगमन सुधारों के नवीन युग के शुभारम्भ का द्योतक है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए। (1984)
2. "लार्ड विलियम बेंटिंक ने भारत को शान्ति प्रदान की।" इस कथन के आलोक में उसकी नीति तथा सुधारों का वर्णन कीजिए।
3. बेंटिंक का शासन-काल लार्ड कार्नवालिस एवं लार्ड डलहौजी दोनों के मध्य सबसे अधिक स्मरणीय सुधार-काल तथा भारतीय सुधारों के इतिहास का एक महत्वपूर्ण बिन्दु था।" इस कथन के प्रकाश में लार्ड विलियम बेंटिंक की नीति तथा सुधारों का मूल्यांकन कीजिए।
4. "लार्ड विलियम बेंटिंक का शासन-काल सामाजिक सुधारों के सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण समय था।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए। (1986)
5. "लार्ड विलियम बेंटिंक ही केवल एक ऐसा गवर्नर था जिसने प्रजा के हित के सिद्धान्त को मुख्य माना।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
6. "लार्ड विलियम बेंटिंक यह कभी नहीं भूला कि शासन का लक्ष्य शासितों की प्रसन्नता है।" उक्त कथन के प्रकाश में उसके सुधारों का संक्षिप्त विवरण दीजिए। (1990)
7. "लार्ड विलियम बेंटिंक का शासनकाल साम्राज्य विस्तार की अपेक्षा शासन की सुदृढ़ता के लिये अधिक प्रसिद्ध है।" इस कथन के आलोक में बेंटिंक के सुधारों का मूल्यांकन कीजिए।

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. लार्ड विलियम बेंटिंक के आर्थिक सुधार क्या थे?
2. लार्ड विलियम बेंटिंक के सामाजिक सुधार क्या थे?
3. लार्ड विलियम बेंटिंक के न्यायिक सुधार क्या थे?
4. लार्ड विलियम बेंटिंक ने सती प्रथा को किस प्रकार समाप्त किया?
5. लार्ड बेंटिंक की उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. किस गवर्नर ने सती-प्रथा बन्द की थी?
लार्ड विलियम बेंटिंक (1829) ने सती प्रथा बंद की थी।

2. लार्ड विलियम बेंटिंक के दो प्रमुख सामाजिक सुधार बताइए।
(1) सती-प्रथा का अन्त, तथा (2) नर-बलि-प्रथा का अन्त।
3. किस गवर्नर जनरल के शासन-काल में कलकत्ता में मेडिकल कालेज की स्थापना हुई?
लार्ड विलियम बेंटिंक के शासन-काल में कलकत्ता में मेडिकल कालेज की स्थापना हुई।
4. लार्ड विलियम बेंटिंक ने बोर्ड ऑफ रेवेन्यू की स्थापना कहाँ की?
लार्ड विलियम बेंटिंक ने इलाहाबाद में बोर्ड ऑफ रेवेन्यू की स्थापना की।
5. लार्ड विलियम बेंटिंक का शासन-काल बताइए।
लार्ड विलियम बेंटिंक 1828 से 1835 तक भारत में गवर्नर जनरल रहा।

बहु-विकल्पीय प्रश्न

निर्देश : नीचे दिये गये प्रत्येक प्रश्न के चार विकल्पों में से सही विकल्प छाँटकर लिखिए :

1. भारत में सती प्रथा कब अवैध घोषित की गई थी?
(क) 1800 ई. में, (ख) 1805 ई. में, (ग) 1820 ई. में, (घ) 1829 ई. में।
2. भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी को किस गवर्नर जनरल के शासन-काल में 1833 का चार्टर (आज्ञापत्र) प्रदान किया गया था?
(क) लार्ड एमहर्स्ट, (ख) लार्ड विलियम बेंटिंक, (ग) लार्ड हेस्टिंग्ज, (घ) लार्ड वेलेजली।
3. 'बोर्ड ऑफ रेवेन्यू' की स्थापना कहाँ की गई थी?
(क) वाराणसी, (ख) मिर्जापुर, (ग) इलाहाबाद, (घ) कलकत्ता।
4. सिविल सर्विसेज प्रणाली को किसने आरम्भ किया था?
(क) वारेन हेस्टिंग्ज ने, (ख) लार्ड विलियम बेंटिंक ने,
(ग) लार्ड डलहौजी ने, (घ) लार्ड ऑकलैण्ड ने
5. विलियम बेंटिंक और सिन्ध के अमीरों के बीच सन्धि कब हुई?
(क) 1829 ई. में, (ख) 1830 ई. में, (ग) 1831 ई. में, (घ) 1832 ई. में।
6. विलियम बेंटिंक और राजा रणजीत सिंह के बीच सन्धि कब हुई?
(क) 1831 ई. में, (ख) 1832 ई. में, (ग) 1833 ई. में, (घ) 1834 ई. में।
7. कलकत्ता में मेडिकल कालेज की स्थापना कब की गई?
(क) 1832 ई. में, (ख) 1833 ई. में, (ग) 1834 ई. में, (घ) 1835 ई. में।

■

21

आकलैण्ड, एलिनबरा तथा हार्डिञ्ज

"अंग्रजों ने अफगानिस्तान में जिस पाशविकता का प्रदर्शन किया, वह एक सभ्य जाति के लिए अत्यधिक निन्दनीय था।" -डॉ. ईश्वरी प्रसाद

आकलैण्ड (1837-42)

मेटकॉफ के पश्चात् लार्ड आकलैण्ड भारत का गवर्नर जनरल बनकर आया। उसके शासन-काल की सबसे बड़ी महत्वपूर्ण घटना प्रथम अफगान युद्ध था। अफगानिस्तान का भारत के लिए बहुत अधिक महत्व है क्योंकि यह भारत तथा रूस के मध्य में स्थित है। कुछ उग्र नीति के समर्थक अंग्रेज हिन्दूकुश को भारत की प्रकृति सीमा मानते थे। अतः उनकी यह हार्दिक इच्छा थी कि अफगानिस्तान अंग्रेजी सरकार के अन्तर्गत हो जावे। आकलैंड के आने के समय अफगानिस्तान की आन्त्रिरिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। 1809 में अफगानिस्तान के शासक शाहशुजा को उसके प्रतिद्वन्द्वी दोस्त मुहम्मद ने अफगानिस्तान से मार भगाया। शाहशुजा अंग्रेजों के संरक्षण में चला गया। 1822 में अफगानिस्तान का शासक दोस्त मुहम्मद बन बैठा। शाहशुजा ने अंग्रेजों और रणजीतसिंह की सहायता से काबुल पर अधिकार करने का प्रयास किया, किन्तु वह सफल न हो सका। इसी बीच रूस अफगानिस्तान में अपना प्रभाव बढ़ाने का प्रयास कर रहा था। यह अंग्रेजों के लिए अत्यधिक चिंता का विषय था। फलतः अंग्रेजों और अफगानों में संघर्ष होना अनिवार्य हो गया।

प्रथम अफगान युद्ध (1838-42)

कारण- प्रथम अफगान युद्ध के कारण निम्नलिखित थे :

(1) जब रूस की सहायता से फारस के शाह ने हिरात पर अधिकार कर लिया तो आकलैण्ड ने चिंतित होकर अफगानिस्तान की ओर ध्यान दिया, क्योंकि रूस का आक्रमण किसी समय भी कम्पनी के साम्राज्य को क्षति पहुँचा सकता था। अतएव उसने दोस्त मुहम्मद के सम्मुख सन्धि-प्रस्ताव रखा। दोस्त मुहम्मद भी अंग्रेजों से मैत्री रखना चाहता था, लेकिन उसने इस शर्त पर कि उसे पेशावर दे दिया जाय, सन्धि करना स्वीकार कर लिया। परन्तु आकलैण्ड ने पेशावर देने में अपनी असमर्थता दिखाई, क्योंकि उस समय पेशावर महाराजा रणजीतसिंह के अधिकार में था। फलतः अंग्रेजों की ओर से निराश होकर दोस्त मुहम्मद ने रूस से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करना प्रारम्भ कर दिया। रूस भी अफगानिस्तान से मैत्री सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था। फलतः रूस ने अफगानिस्तान के साथ एक संधि कर ली और एक रूसी राजदूत काबुल में आकर रहने लगा। इससे अंग्रेजों में आतंक और उत्तेजना छा गई।

प्रथम अफगान युद्ध के कारण

1. दोस्त मुहम्मद का रूस की ओर झुकाव
2. रूस की अफगानिस्तान की ओर प्रगति
3. अंग्रेजों के व्यापारिक मिशन की असफलता
4. त्रिदलीय सन्धि

(2) अफगान-युद्ध का दूसरा महत्वपूर्ण कारण रूस की अफगानिस्तान की ओर प्रगति थी। वह बराबर दक्षिण की ओर बढ़ रहा था और अंग्रेजों को भयभीत करके उन्हें पूर्वी-समस्या से अलग करना चाहता था।

(3) दोस्त मुहम्मद और रूस के मध्य सन्धि का समाचार सुनकर आकलैण्ड ने नवम्बर, 1836 में अफगानिस्तान में एक व्यापारिक मिशन भेजा जिसका अध्यक्ष बर्न्स था। इस मिशन का व्यापारिक उद्देश्य तो नाम-मात्र का था, वास्तविक उद्देश्य अफगानों की सैनिक शक्ति का पता लगाना था। दोस्त मुहम्मद ने इस मिशन की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया और 26 अप्रैल, 1838 को बर्न्स अपने मिशन के साथ काबुल से वापस चला आया।

(4) त्रिदलीय सन्धि– अमीर दोस्त मुहम्मद के इस व्यवहार से आकलैण्ड को बहुत क्रोध आया। उसने सिक्ख राजा रणजीत सिंह की सहायता से दोस्त मुहम्मद को अफगान की गद्दी से हटाकर पदच्युत शाहशुजा को सिंहासन दिलाने का निश्चय किया। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने बर्न्स और मैकनाटन को सन्धि करने के लिए राजा रणजीत सिंह के पास भेजा। फलतः 26 जून, 1838 को अंग्रेजों, सिक्खों और शाहशुजा के मध्य एक सन्धि हुई। यह सन्धि भारतीय इतिहास में त्रिदलीय सन्धि के नाम से विख्यात है।

सन्धि की शर्तें– इस सन्धि के अनुसार यह निश्चय किया गया कि–

(1) दोस्त मुहम्मद के स्थान पर शाहशुजा को काबुल का अमीर बनाया जाय।
(2) शाहशुजा ने वचन दिया कि अफगानिस्तान पर आधिपत्य करने के उपरान्त वह सिक्खों तथा अंग्रेजों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखेगा।
(3) वह सिक्खों तथा अंग्रेजों की इच्छा के विरुद्ध किसी विदेशी शक्ति से किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित नहीं करेगा।
(4) शाहशुजा ने अफगानिस्तान में एक अंग्रेजी राजदूत रखने का वचन दिया।
(5) हिरात की स्वतंत्रता को उसने स्वीकार कर लिया।
(6) सिक्खों के द्वारा जीते हुए प्रदेशों पर उनका अधिकार स्वीकार कर लिया गया।
(7) शिकारपुर की क्षतिपूर्ति के लिए रणजीत सिंह को 20 लाख रुपये प्राप्त हुए।

इस सन्धि के पश्चात् आकलैण्ड ने 2 अक्टूबर, 1838 को अफगानिस्तान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी, जो निम्नलिखित है :

"इस घोषणा का उद्देश्य है कि अफगानिस्तान के पूर्वी प्रान्तों में एक शत्रु शक्ति के स्थान पर मित्र शक्ति की स्थापना हो और हमारी उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर आक्रमण की योजनाओं के विरुद्ध स्थायी दीवार की स्थापना हो।"

घटनाएँ– घोषणा के अनुसार अंग्रेजों ने अफगानिस्तान पर सिन्ध प्रदेश से होकर आक्रमण कर दिया। अंग्रेजी सेना ने शीघ्र ही 'भक्कर' के प्रदेश पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् अंग्रेजी सेना में भीषण कठिनाइयों को सहते हुए बोलन दर्रे को पार किया। 26 मार्च, 1839 को अंग्रेजी सेना क्वेटा पहुँची और 25 अप्रैल, 1839 को उसने कन्धार पर अधिकार कर लिया। जुलाई महीने में गजनी पर भी अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया। दोस्त मुहम्मद भय के मारे काबुल छोड़कर भाग खड़ा हुआ। 7 अगस्त, 1839 को शाहशुजा बिना किसी स्वागत के काबुल में दाखिल हुआ। काई के अनुसार राजधानी में उसका दाखिल होना मृत शरीर के जुलूस के समान प्रतीत हुआ। दोस्त मुहम्मद ने भी 2 नवम्बर, 1840 को मैकनाटन के सम्मुख आत्म-समर्पण कर दिया। उसे बन्दी बनाकर कलकत्ता भेज दिया गया और उसके स्थान पर शाहशुजा को गद्दी पर बैठाया गया।

1841-42 की दुर्घटना– शाहशुजा लोकप्रिय शासक न था। अतः उसकी रक्षा के लिए आकलैंड जनरल कोर्टन की संरक्षणता में 10,000 सैनिक रखकर भारत लौट गया। धीरे-धीरे पुनः समस्त अफगानिस्तान में दोस्त मुहम्मद के पुत्र अकबर खाँ के नेतृत्व में विद्रोह की आग भड़क उठी। नवम्बर मास में 100 अफगान विद्रोहियों ने अंग्रेजी राजदूत बर्न्स के मकान

पर आक्रमण का उसका वध कर डाला। जनरल नाटन यातायात के साधनों के अभाव में काबुल से आगे नहीं बढ़ सका और जनरल सेल ने भयभीत होकर गण्डक से जलालाबाद की ओर प्रस्थान किया। 23 नवम्बर, 1841 को अफगान सेनाओं ने अंग्रेजों को बर्म्स नामक स्थान पर बुरी तरह पराजित किया। विवश होकर जनरल मैकनाटन को 11 दिसम्बर, 1841 को अकबर खाँ के साथ एक अपमानजनक सन्धि करनी पड़ी।

सन्धि की शर्तें– सन्धि की शर्तें निम्नलिखित थीं :

(1) अंग्रेजी सेना अफगानिस्तान खाली करे।
(2) दोस्त मुहम्मद को स्वतंत्र कर दिया जाय।
(3) शाहशुजा को पेंशन दे दी जाय। उसे अफगानिस्तान में रहने अथवा वहाँ से चले जाने की छूट होगी।
(4) अकबर खाँ को अपने संरक्षण में अंग्रेजी सेना को सीमा पार कराना होगा। अंग्रेजों ने इस सन्धि की शर्तों का पालन नहीं किया। अतः 6 जनवरी, 1842 को अंग्रेजी सेना भारत वापस आ रही थी तो अफगानों ने इस पर आक्रमण कर 16 हजार सैनिकों का वध कर डाला। केवल डॉ. ब्राउन नामक एक अंग्रेज ही इस दुःखद घटना की सूचना देने के लिए भारत लौटने में समर्थ हुआ। इस दुर्घटना से आकलैण्ड की बड़ी बदनामी हुई। इंग्लैण्ड की सरकार उससे अप्रसंन्न हो गई और 1842 में उसको वापस बुला लिया गया। उसके स्थान पर लार्ड एलिनबरा गवर्नर जनरल होकर आया।

युद्ध के परिणाम– प्रथम अफगान-युद्ध के परिणाम निम्नलिखित हुए :

(1) धन-जन की हानि– इस युद्ध में अंग्रेजों को कोई लाभ नहीं हुआ, बल्कि धन तथा जन की अपार क्षति हुई। इसमें 20 हजार व्यक्ति मारे गये और 50 लाख रुपये व्यय हुए। इस विनाश के सम्बन्ध में इतिहासकार काई ने सत्य ही लिखा है, "इतिहास के पृष्ठों में इतनी असफलता का उल्लेख कहीं नहीं मिलता और न विश्व के इतिहास में इतना शानदार और प्रभावोत्पादक पाठ ही मिलता है।"

युद्ध के परिणाम

1. धन-जन की हानि
2. दोस्त मुहम्मद का पुनः शासक बनना
3. काबुल, गजनी नगरों का विनाश
4. तटस्थता की नीति का अनुसरण

(2) दोस्त मुहम्मद का पुनः शासक बनना– अंग्रेजों को अफगानों के प्रिय नेता दोस्त मुहम्मद को मुक्त करना पड़ा। वह अफगानिस्तान का शासक बनकर स्वतंत्रतापूर्वक शासन करने लगा।

(3) काबुल, गजनी नगरों का विनाश– इस युद्ध में अंग्रेजों ने काबुल व गजनी नगरों को बर्बरतापूर्वक लूटा और सुन्दर विशाल भवनों को धूल में मिला दिया। डॉ. ईश्वरी प्रसाद ने सत्य ही लिखा है, "अंग्रेजों ने अफगानिस्तान में जिस पाशविकता का प्रदर्शन किया, वह एक सभ्य जाति लिए अत्यधिक निन्दनीय था।"

(4) तटस्थता की नीति का अनुसरण– इस युद्ध में अंग्रेजों को ऐसा सबक मिला कि उन्होंने अफगानिस्तान के सम्बन्ध में तटस्थता की नीति के अनुसरण करने का निश्चय किया।

अंग्रेजों की असफलता के कारण– प्रथम अफगान-युद्ध में अंग्रेजों की असफलता के कारण निम्नलिखित थे :

(1) दोस्त मुहम्मद के विरुद्ध षड्यन्त्र– अंग्रेजों ने लोकप्रिय दोस्त मुहम्मद के विरुद्ध षड्यन्त्र रचकर उसके स्थान पर शाहशुजा को अमीर बनाने का प्रयत्न किया। शाहशुजा लोकप्रिय शासक न था। अफगान उसे घृणा की दृष्टि से देखते थे और अन्त में उसे गद्दी से

उतार कर दम लिया। इस प्रकार शाहशुजा के पीछे अंग्रेजों को अफगान जनता की सहानुभूति न मिल सकी और उन्हें विफलता का आलिंगन करना पड़ा।

(2) पहाड़ी प्रदेश– अफगानिस्तान एक पहाड़ी प्रदेश है। अतः अफगानिस्तान के पहाड़ी प्रदेश में अंग्रेजों को युद्ध करना अत्यन्त कठिन था।

(3) पंजाब से मार्ग न मिलना– रणजीतसिंह की मृत्यु के उपरान्त उसके उत्तराधिकारी खड्गसिंह ने अंग्रेजो को पंजाब होकर जाने की अनुमति नहीं दी। अतः अंग्रेजों को अफगानिस्तान से सम्बन्ध रखना कठिन हो गया था।

(4) लार्ड आकलैण्ड की अयोग्यता– लार्ड आकलैण्ड ने स्वयं परिस्थिति को समझने का प्रयास न कर अपनी अयोग्यता का परिचय दिया। इस युद्ध को वह टाल सकता था क्योंकि दोस्त मुहम्मद अंग्रेजों से मैत्री-सम्बन्ध बनाने का इच्छुक था। लेकिन आकलैण्ड ने इसकी उपेक्षा की। इसके अतिरिक्त बहुत संभव है कि रणजीतसिंह को अप्रसन्न किये बिना आकलैण्ड पेशावर को दोस्त मुहम्मद को दिलाने में सफल हो जाता और इस प्रकार दोस्त मुहम्मद अंग्रेजों का मित्र बनकर रूस की ओर आकृष्ट न होता, परन्तु आकलैंड ने इस सम्बन्ध में अपनी अयोग्यता का परिचय देकर साधारण परिस्थिति को भयंकर बना दिया। अतः उसे अफगानों के सम्मुख मुँह की खानी पड़ी।

अंग्रेजों की असफलता के कारण

1. दोस्त मुहम्मद के विरुद्ध षडयन्त्र
2. पहाड़ी प्रदेश
3. पंजाब से मार्ग न मिलना
4. लार्ड आकलैण्ड की अयोग्ता
5. अदूरदर्शी तथा अयोग्य सेनापति
6. अंग्रेजी सेना का अफ़ग़ानिस्तान में रहना

(5) अदूरदर्शी तथा अयोग्य सेनापति– जिन सेनापतियों के हाथ में अंग्रेजी सेना का नेतृत्व था, वे सब अयोग्य तथा अदूरदर्शी थे। उनमें पारस्परिक एकता तथा सहयोग की भावना का अभाव था।

(6) अंग्रेजी सेना का अफगानिस्तान में रहना– अफगान लोग अपने देश के अन्दर अंग्रेजी सेना रखना अपने स्वाभिमान के विरुद्ध समझते थे। फलतः अंग्रेजी सेना को खाद्य-सामग्री के अभाव में अनेक मुसीबतों का सामना करना पड़ा।

उपर्युक्त कारणों से अंग्रेजों को प्रथम अफगान-युद्ध में असफलता मिली। वास्तव में आकलैण्ड का यह कार्य न्याय की दृष्टि से सर्वथा अनुचित था। एक इतिहासकार ने इस युद्ध को 'एक भारी भूल और अपराध' कहा है। इस युद्ध से अंग्रेजों को कोई लाभ नहीं हुआ। इसमें 20 हजार व्यक्ति मारे गये तथा 50 लाख रुपये व्यय हुए। आकलैण्ड ने दोस्त मुहम्मद की मित्रता की उपेक्षा की, जिसका कुपरिणाम उसको भुगतान पड़ा।

शासन-सुधार– आकलैण्ड ने भारत में निम्नलिखित सुधार किए :

(1) अंग्रेजों और भारतीयों में भेद-भाव को मिटाने के लिए 'ब्लैक ऐक्ट' पारित किया गया।
(2) भारतीय विद्यार्थियों को डाक्टरी पढ़ने की व्यवस्था की गई।
(3) तीर्थयात्रा कर बन्द कर दिया गया।
(4) प्राइमरी स्कूलों में प्रान्तीय भाषाओं के माध्यम द्वारा शिक्षा देने की घोषणा की गई।
(5) सिंचाई के लिए अनेक नहरों का निर्माण किया गया।
(6) दुर्गा-पूजा पर लगे हुए प्रतिबन्ध हटा दिए गये।

लार्ड आकलैण्ड का मूल्यांकन– अफगानिस्तान के सम्बन्ध में आकलैण्ड की नीति पूर्णतया असफल रही, फिर भी प्रिसेथ के अनुसार, "इसमें बहुत से गुण थे जिसके कारण लोग

उससे स्पर्धा करते थे। आन्तरिक प्रशासन के सुधारने में उसने कोई विशेष कार्य नहीं किया तथा सामान्य-नीति में वह झिझक से कार्य कर लेता तथा निश्चय करने में भी वह अधिक सोच-विचार करता था। इसी कारण उसे गौरव प्राप्त गवर्नर जनरल नहीं माना गया। "ट्रॉटर के कथनानुसार, "कठोर वृत्तियों वाला, कम बोलने वाला, शर्मीला, अच्छे स्वभाव वाला, सब प्रकार के प्रदर्शन को पसन्द न करने वाला तथा अपने नियमित सरकारी कार्यों में प्रसन्न रहने वाला, लार्ड आकलैण्ड अपने स्वभाव तथा दीर्घ अनुभव के कारण शान्त समय के सभी कर्तव्यों को पालन करने की पूर्णरूपेण योग्यता रखता था।"

लार्ड एलिनबरा (1842-44)

प्रमुख घटनाएँ-अफगान युद्ध का अन्त- लार्ड आकलैण्ड के पश्चात् 1842 में लार्ड एलिनबरा भारत का गवर्नर जनरल बनकर आया। उसने अफगानों से बदला लेने का दृढ़ निश्चय किया। वह कम्पनी की वास्तविक शक्ति को एक बार दिखा देना चाहता था। अतएव उसने अफगानिस्तान में विद्यमान सेनानायक नाट और पौलक को इस बात का आदेश दिया कि वापस आते समय काबुल तथा गजनी पर अपना अधिकार अवश्य स्थापित करें। फलतः अंग्रेजी सेनाओं ने अफगानिस्तान में काफी अंधेर मचाया जो अत्यधिक अमानवीय तथा भीषण था। काबुल को बर्बरतापूर्वक लूट लिया गया और उसके बड़े बाजार को तोप से उड़वा दिया गया। गजनी का भी विध्वंस कर दिया गया। परन्तु अफगानों ने शाहशुजा का वध कर दिया। इस प्रकार एलिनबरा ने एक बार पुनः अंग्रेजों की प्रतिष्ठा को अफगानिस्तान में प्रतिष्ठित कर दिया। उसने दोस्त मुहम्मद को पुनः अफगानिस्तान का अमीर बना दिया। इस प्रकार प्रथम अफगान-युद्ध का अन्त हुआ।

लार्ड एलिनबरा के काल की प्रमुख घटनाएँ

1. अफगान-युद्ध का अन्त
2. सिन्ध-विजय
3. ग्वालियर के साथ युद्ध

सिन्ध विजय- सिंध मुगल साम्राज्य का सूबा था, परन्तु मुगल सत्ता निर्बल होने के पश्चात् सिंध एक स्वतंत्र राज्य बन गया था। सिंध के शासकों को 'अमीर' कहा जाता था। अमीरों की तीन शाखाएँ- हैदराबाद, मीरपुर और खैरपुर में शासन करती थीं।

प्रथम अफगान-युद्ध की पराजय की कालिमा को धोने के लिए अंग्रेज सिन्ध पर अपना अधिकार स्थापित करने के लिए किसी बहाने को ढूँढ़ने लगे। इन्हीं दिनों सिन्ध के रेजीडेंट औटरम ने अमीरों के विरुद्ध लार्ड एलिनबरा से शिकायत की। शिकायत की जाँच करने के लिए चार्ल्स नेपियर को सितम्बर, 1842 में पूर्ण सैनिक और असैनिक अधिकार देकर सिन्ध भेजा गया। नेपियर अत्यन्त अहमन्य व्यक्ति था। उसे अपनी मान्यताओं की सच्चाई पर अटूट विश्वास था। उसने शीघ्र ही घोषणा कर दी कि अमीरों के विरुद्ध जो आरोप किये गये हैं वे सिद्ध हो चुके हैं। नेपियर ने सिन्ध के अमीरों से एक नयी सन्धि का प्रस्ताव किया जिसके अनुसार सिन्ध के अमीर तीन लाख रुपये वार्षिक देने के स्थान पर सिन्ध का कुछ प्रदेश प्रदान करेंगे। सिन्धु नदी में चलने वाले ब्रिटिश जहाजों का व्यय वहन करेंगे तथा मुद्रा-निर्माण का अपना विशेषाधिकार छोड़ देंगे। इससे पूर्व कि सिन्ध के अमीर इस प्रस्ताव पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करें, नेपियर ने रोहड़ी से भावलपुर के स्थान की सीमा तक के क्षेत्र पर सैनिक अधिकार कर लिया और इमामगढ़ के दुर्ग पर आक्रमण कर उसे बारूद से उड़ा दिया। अंग्रेजों के इस कार्य से क्रोधित होकर एक भारी भीड़ ने अंग्रेज रेजीडेंट के निवास-स्थान पर आक्रमण कर दिया। औटरम को भागकर एक स्टीमर पर शरण लेने को विवश होना पड़ा।

युद्ध की प्रमुख घटनाएँ- अब नेपियर को सिन्ध विजय का अवसर मिल गया और उसने युद्ध की घोषणा कर दी। 17 फरवरी, 1843 को अंग्रेजी सेना ने मियानी के युद्ध में अमीरों

की सेना को बुरी तरह पराजित किया तथा हैदराबाद दुर्ग पर अधिकार कर उस प्रदेश को खूब लूटा और अमीरों की बेगमों को अपमानित किया। इसके पश्चात् अंग्रेजी सेना ने अमरकोट के युद्ध में खैरपुर के अमीर को भी परास्त किया। इन पराजयों से अमीरों की गतिरोध-शक्ति समाप्त हो गई और 18 फरवरी को उन्होंने आत्म-समर्पण कर दिया। केवल मीरपुर के अमीर ने समर्पण नहीं किया। इस प्रकार सिन्ध पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। अगस्त, 1843 में सिन्ध को ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बना लिया गया और उसका गवर्नर चार्ल्स नेपियर बनाया गया। उसको 70,000 पौंड और औटरम को 30,000 पौंड प्रदान किये गये।

सिन्ध-विजय की आलोचना– अंग्रेजों ने जिस धाँधली के साथ सिंध को अंग्रेजी साम्राज्य में मिलाया उसकी इतिहासकारों ने घोर निन्दा ही है। इतिहासकार इन्स का कथन है, "यदि अफगान घटना हमारे भारतीय इतिहास में सबसे अधिक विनाशकारी है तो नैतिक दृष्टि से सिन्ध की घटना और भी अधिक लज्जाजनक है।"

एलफिंस्टन महोदय ने एलिनबरा की आलोचना करते हुए लिखा है, "अफगानिस्तान से लौटने पर (सिंध में जो घटनाएँ हुई उन्हें देखकर) उस उदण्ड मनुष्य का स्मरण हो जाता था जो सड़क पर लातें खाने के पश्चात् घर जाकर अपनी मार का बदला अपनी पत्नी को मार कर लेता है।"

सिन्ध-विजय की निंदा करते हुए रम्जेम्योर ने लिखा है, "भारत में केवल सिन्ध ही अंग्रेजों की ऐसी विजय है, जिसके विषय में ईमानदारी के साथ यह कहा जा सकता है कि परिस्थितियों से बाध्य होकर यह विजय नहीं की गई है, वरन् यह आक्रमण का कार्य है।" मार्शमैन ने भी सत्य ही लिखा है, "सिन्ध में दुष्टता, लाभ से कहीं अधिक स्पष्ट है।"

इस प्रकार अंग्रेजों की सिन्ध के प्रति की गई कार्यवाही अनैतिक, अमानवीय तथा अत्यन्त लज्जापूर्ण थी।

ग्वालियर के साथ युद्ध– लार्ड एलिनबरा के शासनकाल की एक अन्य महत्वपूर्ण घटना ग्वालियर के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप था। 1843 में ग्वालियर के राजा जनकोजीराव की मृत्यु हो गई। उसकी विधवा पत्नी ताराबाई ने जिसकी अवस्था 33 वर्ष थी और सन्तानहीन थी, दरबारियों की सहायता से अपने एक सम्बन्धी के बालक को गोद लेकर जयाजीराव के नाम से गद्दी पर बैठा दिया और खासगीवाला नामक एक व्यक्ति को उसका प्रधानमंत्री बना दिया। एलिनबरा ने इसका विरोध किया, क्योंकि वह कृष्णराव को जो अंग्रेजों की ओर मिल गया था, प्रधानमंत्री बनाना चाहता था। एलिनबरा की आपत्ति पर रानी ने खासगीवाला को प्रधानमंत्री के पद से हटाकर उसके स्थान पर रामराव फलकिया को प्रधानमंत्री के पद पर आसीन किया, किन्तु कृष्णराव को प्रधानमंत्री नहीं बनाया। इस पर एलिनबरा बहुत क्रोधित हुआ और उसने बिना किसी कारण के अव्यवस्था का आरोप लगाकर ग्वालियर पर आक्रमण करने के लिए सर ह्यूगफ के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना भेज दी। दिसम्बर, 1843 में 'महाराजपुर' और 'पेनियार' के युद्धों में ग्वालियर की सेनायें परास्त हो गईं। विवश होकर ग्वालियर दरबार को अंग्रेजों से सन्धि करनी पड़ी। सन्धि के अनुसार ग्वालियर की सेना चालीस हजार से घटाकर नौ हजार कर दी गई और दस हजार अंग्रेजी सेना ग्वालियर राज्य के व्यय पर वहाँ पर रख दी गई। ग्वालियर की शासन-व्यवस्था को संचालित करने के लिए मंत्रिपरिषद् बना दी गई। ग्वालियर के प्रति एलिनबरा की नीति पूर्णतया घृणास्पद तथा साम्राज्यवादी थी। ग्वालियर राज्य में हस्तक्षेप के कारण एलिनबरा इंगलैण्ड वापस बुला लिया गया और उसके स्थान पर लार्ड हार्डिञ्ज भारत का गवर्नर जनरल होकर आया।

लार्ड हार्डिञ्ज (1844-48)

जुलाई, 1844 में लार्ड हार्डिञ्ज भारत का गवर्नर जनरल बनकर आया। उसके शासन-काल की महत्वपूर्ण घटना प्रथम सिक्ख-युद्ध था। अफगानिस्तान और सिन्ध की ओर से निश्चिन्त होने के पश्चात् अंग्रेजों ने अपना ध्यान पंजाब की ओर दिया। महाराजा रणजीतसिंह ने अपनी सूझ-बूझ, प्रशासनिक कुशलता तथा सामरिक प्रतिभा के कारण पंजाब को एक सुदृढ़ राज्य बना दिया था। आरम्भ में अंग्रेजों ने इस राज्य के प्रति मैत्री-भाव बनाये रखना ही अधिक उपयुक्त समझा। 1809 में तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड मिण्टो ने रणजीतसिंह से अमृतसर की सन्धि कर ली थी। इस सन्धि के अनुसार सतलज नदी को रणजीतसिंह के राज्य की पूर्वी सीमा माना गया था।

प्रथम सिक्ख-युद्ध (1845)- महाराजा रणजीतसिंह की 1839 में मृत्यु हो गई। शासन की वास्तविक शक्ति सेना के हाथ में आ गयी। सिक्ख सेना राजसी परिवार के जिस व्यक्ति को पसन्द करती, उसे सिंहासन पर बैठा देती। इस प्रकार एक के बाद एक कई राजकुमार गद्दी पर बैठे और हटाये गये। 1845 में सेना ने स्वर्गीय रणजीतसिंह के पंचवर्षीय पुत्र दिलीपसिंह को गद्दी पर बैठाया। राजमाता झिंदन उसकी संरक्षिका नियुक्त हुई। राजमाता ने सिक्ख सेना की शक्ति को अन्यत्र उलझाना ही अधिक लाभप्रद समझा। फलतः उसने सिक्ख सेना को सतलज पार करके अंग्रेजी राज्य पर आक्रमण करने के लिए उकसाया क्योंकि उसके लिए विजय और पराजय दोनों समान थीं। वह सोचती थीं, विजय मिलने पर सम्पूर्ण भारत पर सिक्ख साम्राज्य की स्थापना होगी और पराजय मिलने पर उद्दण्ड सिक्ख सेना की शक्ति क्षीण होगी।

युद्ध की प्रमुख घटनाएँ- 11 दिसम्बर, 1845 को सिक्ख सेना ने सतलज नदी पार करके अंग्रेजी राज्य पर आक्रमण कर दिया। सिक्ख और अंग्रेजी सेनाओं में पहला युद्ध मुदकी नामक स्थान पर हुआ। युद्ध के आरम्भ में अंग्रेजी सेना पराजित हुई, किन्तु वजीर लालसिंह और सेनाध्यक्ष तेजसिंह के विश्वासघात के कारण सिक्खों की विजय पराजय में बदल गई। सिक्ख और अंग्रेजी सेना का दूसरा युद्ध 21 दिसम्बर, 1845 को फिरोजशाह के निकट हुआ। इस युद्ध में भी तेजसिंह अंग्रेजों से मिला रहा। फलतः अंग्रेजों का भीषण संहार होने पर भी उन्हें ही विजय मिली। अंग्रेजी सेना के 103 अफसरों सहित 694 सैनिक मारे गये तथा 1721 आहत हुए। अनुमानतः आठ हजार सिक्ख खेत रहे और 73 तोपें अंग्रेजों के हाथ लगीं। 21 जनवरी, 1846 को अलीवाल नामक स्थान पर पुनः युद्ध हुआ, जिसमें सिक्ख सेना फिर पराजित हुई। सिक्ख नेता रणछोर युद्ध-स्थल छोड़कर भाग गया। 10 फरवरी, 1846 को सतलज के बायें तट पर सुबराँव गाँव के पास सिक्ख और अंग्रेजी सेनाओं में अन्तिम युद्ध हुआ। इस युद्ध में भी लालसिंह, तेजसिंह और गुलाबसिंह ने अपनी वीर जाति के साथ विश्वासघात किया और सिक्खों को पराजय का आलिंगन करना पड़ा। अन्त में सिक्खों ने विवश होकर 9 मार्च, 1846 को अंग्रेजों के साथ लाहौर की सन्धि कर ली।

लाहौर की सन्धि- इस सन्धि के अनुसार-

(1) सतलज नदी के पूर्वी प्रदेश तथा जालन्धर के दोआब और हजारों प्रदेशों पर अंग्रेजों का अधिकार मान लिया गया।

(2) सिक्खों की सेना में कमी कर दी गई। उसमें केवल 20 हजार पैदल और 12,000 घुड़सवार रहने दिए गये।

(3) लाहौर-दरबार को डेढ़ करोड़ रुपये अंग्रेजों को हर्जाना देना पड़ा था। चूँकि, दरबार के

पास इतना रुपया न था अतएव अंग्रेजों ने व्यास से सिन्ध तक का पर्वतीय प्रदेश गुलाबसिंह को एक करोड़ रुपये में बेच दिया और शेष 50 लाख रुपये सिक्ख राज-कोष से अंग्रेजों को प्रदान किया गया।

(4) लालसिंह को दिलीपसिंह का मंत्री और झिंदन को उसकी संरक्षिका बनाया गया।

(5) दिलीपसिंह की रक्षा-हेतु एक वर्ष तक लाहौर में अंग्रेजी सेना का प्रबन्ध किया गया।

(6) अंग्रेजी सेना को पंजाब से आने-जाने का अधिकार मिल गया।

(7) लाहौर में सर हेनरी लारेंस को ब्रिटिश रेजीडेन्ट नियुक्त किया।

लाहौर की सन्धि अस्थायी सिद्ध हुई। हेनरी ने राजमाता झिंदन और लालसिंह पर कश्मीर विद्रोह कराने का आरोप लगाकर पदच्युत कर दिया और सिक्खों से 16 दिसम्बर, 1846 को भैरोवाल की सन्धि की। इस सन्धि के अनुसार पंजाब का प्रशासन चलाने के लिए अंग्रेजों के समर्थक आठ सिक्ख सरदारों की एक संरक्षण समिति बनायी गयी और हेनरी लारेंस को इसका अध्यक्ष बनाया गया। एक अंग्रेजी सेना लाहौर में रखी गई, जिसके व्यय के लिए 22 लाख रुपये वार्षिक दरबार को देना निश्चित कर दिया गया तथा झिंदन को डेढ़ लाख रुपया वार्षिक पेंशन देकर बनारस भेज दिया गया। इस प्रकार अंग्रेजों ने पंजाब में अपना पूर्ण आधिपत्य स्थापित कर लिया।

1848 में लार्ड हार्डिञ्ज इंगलैण्ड वापस चला गया और उसके स्थान पर लार्ड डलहौजी भारत का गवर्नर जनरल होकर आया।

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ (Important Dates & Events)

1. 1838 ई. - प्रथम अफगान युद्ध की घोषणा।
2. 1841-42 ई. - काबुल से वापसी पर अंग्रेज सेना की अफगानों द्वारा हत्या।
3. 1843 ई. - सिन्ध का अंग्रजी राज्य में विलय।
4. 1845-46 ई. - प्रथम सिक्ख युद्ध तथा लाहौर की सन्धि।
5. 1848 ई. - लार्ड हार्डिञ्ज की वापसी।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. प्रथम अफगान-युद्ध के क्या कारण थे?
2. एलिनबरा के काल की प्रमुख घटनाओं का वर्णन कीजिए।
3. सिन्ध-विजय का वर्णन कीजिए।
4. प्रथम सिक्ख युद्ध का वर्णन कीजिए।

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "प्रथम अफगान युद्ध एक भारी भूल तथा अपराध था।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
2. "सिन्ध की विजय अंग्रेजों का एक अन्याय का कार्य था।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. प्रथम अफगान युद्ध के कारण क्या थे?
2. प्रथम अफगान युद्ध के परिणाम क्या हुए?
3. 1841 की दुर्घटना क्या थी? संक्षेप में लिखिए।
4. लार्ड हार्डिञ्ज के शासन-काल की प्रमुख घटना क्या थी?

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **दोस्त मुहम्मंद अफगानिस्तान का शासक कब बना?**
   1822 ई. में दोस्त मुहम्मद अफगानिस्तान का शासक बना।
2. **किस गवर्नर जनरल के शासन काल में प्रथम अफगान युद्ध हुआ था?**
   लार्ड आकलैण्ड के शासन काल में प्रथम अफगान युद्ध (1839) हुआ था।
3. **प्रथम सिक्ख युद्ध कब हुआ था?**
   1845 ई. में प्रथम सिक्ख युद्ध हुआ।
4. **लाहौर की सन्धि कब और किसके बीच हुई थी?**
   9 मार्च, 1846 को सिक्खों और अंग्रेजों के बीच लाहौर की सन्धि हुई थी।
5. **लार्ड हार्डिञ्ज के शासन की सबसे महत्वपूर्ण घटना कौन थी?**
   प्रथम सिक्ख युद्ध (1845), लार्ड हार्डिञ्ज के शासन की सबसे महत्वपूर्ण घटना थी।
6. **लार्ड आकलैण्ड का शासन-काल बताइए।**
   1837 से 1842 ई. तक शासन-काल रहा।
7. **लार्ड एलिनबरा का शासन-काल बताइए।**
   1842-1844 ई. तक शासन-काल रहा।
8. **लार्ड हार्डिञ्ज का शासन-काल बताइए।**
   1844-1848 ई. तक शासन-काल रहा।

बहु-विकल्पीय प्रश्न

निर्देश : नीचे दिये गये प्रत्येक प्रश्न के चार विकल्पों में से सही विकल्प छाँटकर लिखिए :

1. **प्रथम अफगान युद्ध कब हुआ था?**
   (क) 1835 ई., (ख) 1838 ई., (ग) 1839 ई., (घ) 1840 ई.।
2. **लार्ड एलिनबरा का शासन क्यों प्रसिद्ध है ?**
   (क) सिन्ध विजय, (ख) पंजाब विजय, (ग) बर्मा का युद्ध, (घ) अवध-विलय।
3. **महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु कब हुई थी?**
   (क) 1836 ई., (ख) 1839 ई., (ग) 1841 ई., (घ) 1829 ई.।
4. **लाहौर की सन्धि कब हुई थी?**
   (क) 1840 ई., (ख) 1844 ई., (ग) 1846 ई., (घ) 1850 ई.।
5. **अफगानिस्तान के प्रश्न पर जून, 1838 की त्रिदलीय सन्धि के तीन पक्ष कौन थे?**
   (क) अंग्रेज, रूस, अफगान, (ख) अंग्रेज, रूस, सिक्ख,
   (ग) रूस, सिक्ख, अफगान, (घ) सिक्ख, अफगान, अंग्रेज
6. **सिन्ध का अंग्रेजी राज्य में कब विलय किया गया?**
   (क) 1840 ई., (ख) 1842 ई., (ग) 1843 ई., (घ) 1845 ई.।

■

22

लार्ड डलहौजी

[1848-56]

"डलहौजी ने भारत पर एक ऐसा चिह्न छोड़ा, जो उसके पूर्ववर्ती किसी से भी अपेक्षाकृत कम महत्व का नहीं था। उसने ऐसी प्रसिद्धि प्राप्त की, जो केवल वारेन हेस्टिंग्ज से ही कुछ कम थी।" –लार्ड कर्जन

1848 में लार्ड डलहौजी भारत का गवर्नर जनरल होकर आया। वह साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का था। वह उचित-अनुचित तथा न्याय-अन्याय का विचार किये बिना ही अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारत में अंग्रेजी साम्राज्य के विस्तार का पूर्ण पक्षपाती था। फलतः भारत के छोटे-छोटे राज्यों का अस्तित्व समाप्त करने के लिए उसने एक नई नीति का अनुसरण किया। उसकी यह नीति 'अपहरण-नीति' के नाम से पुकारी जाती है। इस नीति का अर्थ यह था कि "जिन देशी नरेशों ने कम्पनी के साथ मित्रता की सन्धि कर रखी थी अथवा जो अंग्रेजी राज्य के अधीन थे उनके यदि कोई पुत्र न हो तो बिना अंग्रेजों की अनुमति के वे किसी को गोद नहीं ले सकते थे। यदि अंग्रेजों की स्वीकृति के बिना कोई राजा या नवाब किसी को गोद ले लेता था तो वह बालक राज्य का उत्तराधिकारी नहीं हो सकता था।" इस प्रकार उत्तराधिकारी के अभाव में राज्याधिकार का विलय सर्वोच्च सत्ता अर्थात् कम्पनी के राज्य में हो जाता था। यह कोई नई नीति नहीं थी, जिसका सूत्रपात लार्ड डलहौजी ने किया। 1834 में ही कम्पनी के डाइरेक्टरों ने निश्चय कर दिया था कि जहाँ तक संभव हो सके, गोद लेने की आज्ञा नहीं देनी चाहिए। परन्तु लार्ड डलहौजी के हाथ में राज्य हड़पने का सिद्धांत-अन्याय और अत्याचार का प्रमुख अस्त्र बन गया। अंग्रेजों की यह नीति हिन्दू-धर्म विरोधी थी। धर्म-ग्रन्थों के अनुसार हिन्दुओं को पुत्र गोद लेने का अधिकार था, यदि उनकी औरतों के पुत्र न हो। परन्तु डलहौजी की साम्राज्यवादी नीति में इस अधिकार का कोई अस्तित्व नहीं था।

डलहौजी ने अपनी इस नीति को तर्क-संगत बनाने के लिए भारतीय हिन्दू राज्यों को तीन श्रेणियों में बाँटा-स्वतंत्र, अधीनस्थ और आश्रित। प्रथम श्रेणी में वे राज्य आते थे जो कभी किसी अन्य शक्ति के अधीन नहीं रहे थे। उन्हें आन्तरिक प्रभुता प्राप्त थी। दूसरी श्रेणी में वे राज्य आते थे जो अंग्रेजों को खिराज देते थे और जो पहले मुगल-सम्राट अथवा मराठा पेशवा को सार्वभौम मानते थे। तीसरी श्रेणी में वे हिन्दू राज्य थे, जिन्हें अंग्रेजों ने सनद द्वारा बनाया था। पहली श्रेणी के राज्यों को गोद लेने का अधिकार था। दूसरी श्रेणी के राज्यों को अंग्रेज गोद लेने से वंचित करने का अधिकार रखते थे। तीसरी श्रेणी के राज्यों को गोद लेने का अधिकार नहीं था।

साम्राज्य-विस्तार

लार्ड डलहौजी ने दो उपायों से ब्रिटिश-साम्राज्य का विस्तार किया। प्रथम अपहरण नीति द्वारा और द्वितीय विजय द्वारा। इन दोनों का क्रमशः अलग-अलग वर्णन किया जायेगा।

अपहरण-नीति द्वारा साम्राज्य-विस्तार– इस सिद्धांत के आधार पर उसने निम्नलिखित राज्यों का अपहरण किया :

(1) सतारा (1849)– अपहरण नीति का पहला शिकार सतारा राज्य हुआ। 1848 में सतारा का राजा अप्पा साहब पुत्रहीन मर गया। मरने के पूर्व उसने एक बालक को गोद लिया था परन्तु डलहौजी ने उसके राज्याधिकार को यह कर अस्वीकार कर दिया कि राजा ने उसकी स्वीकृति अंग्रेजों से प्राप्त नहीं की। इस प्रकार उसने सतारा को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित कर लिया।

(2) नागपुर– 1854 में नागपुर के महाराजा रघुजी भोंसला तृतीय की मृत्यु हो गई। उसके कोई पुत्र नहीं था। अपनी पत्नी को यशवन्तराव को गोद लेने को कहा था। अतः पति के आदेशानुसार विधवा रानी ने यशवन्तराव को गोद लिया और उसके संबंध में अंग्रेजों की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए पत्र भेजा गया, परन्तु डलहौजी ने उसको अस्वीकृत कर नागपुर-राज्य को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया।

अपहरण-नीति द्वारा साम्राज्य विस्तार

1. सतारा
2. नागपुर
3. झाँसी
4. बरार
5. अवध
6. अन्य राज्य
7. उपाधियों तथा पेंशनों की समाप्ति

(3) झाँसी (1854)– झाँसी का राजा गंगाधर राव 20 नवंबर, 1853 को पुत्रहीन मर गया। अपनी मृत्यु के कुछ दिन पूर्व ही उसने आनन्दराव नामक एक बालक को गोद ले लिया था परन्तु डलहौजी ने मृत राजा के दत्तक पुत्र को स्वीकार नहीं किया और विधवा रानी लक्ष्मीबाई को हटाकर 27 फरवरी, 1854 को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया।

(4) बरार– यह निजाम के राज्य का एक प्रदेश था। निजाम को सहायक संधि के अनुसार अपने राज्य में अपने खर्चे पर एक अंग्रेजी सेना रखनी पड़ी थी। कुछ समय पश्चात् अंग्रेजों ने वहाँ एक अन्य अतिरिक्त सेना भी निजाम के खर्चे पर ही रख दी। निजाम उस भारी सेना का खर्च अदा नहीं कर पाया और उस पर अंग्रेजों का 7,80,000 पौंड ऋण हो गया। अतः 1853 में उस ऋण के बदले में निजाम के बरार प्रदेश पर अधिकार कर लिया गया।

(5) अवध का अंग्रेजी राज्य में मिलाया जाना– डलहौजी की दृष्टि बहुत दिनों से अवध पर लगी हुई थी। उसने 1851 में अपने लखनऊ के रेजीडेन्ट कर्नल स्लीमैन से अवध के शासन के सम्बन्ध में एक रिपोर्ट माँगी जिससे उसे कोई बहाना मिल जाय और वह अवध की स्वतंत्रता का अपहरण कर सके। स्लीमैन डलहौजी की नीति का समर्थक था। उसने लिखा कि अवध की दशा अत्यन्त शोचनीय है और अब इसमें सुधार की कोई आशा नहीं है। 1854 में नये रेजीडेण्ट आउटरम ने भी स्लीमैन की रिपोर्ट का समर्थन किया। अतः डलहौजी ने आउटरम को लिखा कि नवाब को 12 लाख रुपया वार्षिक पेंशन देकर शासन से पृथक् कर दिया जाय और अवध को अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित कर दिया जाय। परन्तु नवाब ने इस योजना को अस्वीकार कर दिया। फलतः डलहौजी ने सेना की सहायता ली। 13 फरवरी, 1856 को उसने घोषणा की, "ब्रिटिश सरकार भगवान और मनुष्य दोनों की निगाह में अपराधी बन जायगी, यदि उसने इतने अत्याचारपूर्ण और अव्यवस्थित शासन को जो लाखों लोगों के लिए यातनाओं से भरा हुआ है और अधिक चलने दिया।" इस प्रकार उसने सैनिक शक्ति द्वारा अवध को अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया। अवध के नवाब वाजिद अलीशाह को कलकत्ता में नजरबंद कर दिया गया और जीवन-यापन के लिए उसे 12 लाख रुपया वार्षिक पेंशन दे दी गई।

डलहौजी के इस कार्य की इतिहासकारों ने कटु आलोचना की है। डॉ. ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है कि "वास्तव में डलहौजी का यह कार्य अत्यन्त गर्हित था। अवध राज्य को हस्तगत

करने के लिए उसने जिस अनीति और अत्याचार का प्रदर्शन किया उसकी समता समस्त इतिहास में बहुत कम मिलेगी।"

(6) अन्य राज्य– इसी अपहरण नीति का शिकार उड़ीसा की संभलपुर, बघाट, उदयपुर और करौली आदि रियासतें हुई। डलहौजी ने उन्हें ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। बघाट और उदयपुर को उसके उत्तराधिकारी लार्ड केनिंग ने तथा करौली को कम्पनी की संचालक-समिति ने पुनः कुछ दिनों बाद मुक्त कर दिया।

(7) उपाधियों तथा पेंशनों की समाप्ति– डलहौजी की अपहरण नीति का एक दूसरा रूप देशी राजाओं की उपाधियों और पेंशनों की समाप्ति थी। उसने घोषित किया कि उपाधियाँ तथा पेंशनें व्यक्तिगत वस्तुएँ होती हैं। यह आवश्यक नहीं है कि यदि वे एक व्यक्ति को प्राप्त हैं तो उसके उत्तराधिकारी को भी प्राप्त होंगी। अतः उसने राजाओं की उपाधियों तथा पेंशनों का अंत कर डाला।

(i) इस नीति का पहला शिकार नाना साहब हुआ। 1851 में पेशवा बाजीराव द्वितीय की मृत्यु हो गई। उनका नानासाहब दत्तक पुत्र था। उसकी आठ लाख रुपया वार्षिक पेंशन बन्द कर दी गई जो अंग्रेज बाजीराव को देते थे।

(ii) उसने तंजौर तथा कर्नाटक के राजाओं की उपाधियों का अपहरण कर लिया।

(iii) उसकी यह भी योजना थी कि मुगल सम्राट बहादुरशाह की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों को सम्राट की पदवी धारण करने आज्ञा न दी जाय, किन्तु डाइरेक्टरों ने इसे अस्वीकार कर दिया।

परिणाम– डलहौजी की इस नीति का परिणाम बड़ा ही भयंकर सिद्ध हुआ। इससे भारतीय जनता में भारी असंतोष उत्पन्न हुआ जो डलहौजी के जाने के एक वर्ष पश्चात् ही 1857 की क्रान्ति के रूप में प्रकट हुआ।

विजय द्वारा साम्राज्य विस्तार– लार्ड डलहौजी एक साम्राज्यवादी व्यक्ति था। उसका शासनकाल कम्पनी के इतिहास में साम्राज्य-वृद्धि का महत्वपूर्ण काल था। डॉ. ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में, "अनेक राज्य विजित हुए, प्राचीन राजवंशों का अन्त हुआ और आधुनिक भारत का जन्म हुआ। डलहौजी के शासन-काल के आठ वर्षों के इतिहास को दो शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है– "साम्राज्य विस्तार तथा आन्तरिक सुधार।"

डलहौजी को साम्राज्य विस्तार के लिए सिक्खों और बर्मा से युद्ध करना पड़ा।

द्वितीय सिक्ख युद्ध (1848)– प्रथम सिक्ख युद्ध में सिक्खों की पराजय के कारण उनके विश्वासघाती सेनानायक थे। अतः सिक्ख सेना प्रथम युद्ध की पराजय को हृदय से स्वीकार नहीं करती थी। जहाँ एक ओर सिक्ख सेना इस पराजय को स्वीकार करने को तैयार न थी, वहीं दूसरी ओर अंग्रेजों ने भी सिक्खों की शक्ति को क्षीण करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था। लाहौर दरबार के रेजीडेंट हेनरी लारेंस ने सिक्ख सेना को बड़ी संख्या में भंग करना आरम्भ किया। जनवरी, 1848 तक 10,000 सैनिकों की सेवाओं को समाप्त कर दिया गया, साथ ही प्रशासन के महत्वपूर्ण पदों से सिक्खों को हटाकर अंग्रेज अफसरों की नियुक्ति की गई। इतना ही नहीं, अंग्रेज रेजीडेंट ने लाहौर दरबार के मुल्तान के गवर्नर मूलराज से 1 करोड़ रुपये की भेंट देने के लिए विवश किया। मूलराज के द्वारा यह विपुल धनराशि न दे पाने पर उसे त्याग-पत्र देने पर विवश किया गया और मुल्तान के दुर्ग पर अधिकार कर लिया गया। इस घटना से क्षुब्ध होकर सिक्ख सैनिकों ने विद्रोह कर दिया। इसी विद्रोह ने अन्त में द्वितीय सिक्ख युद्ध का रूप धारण कर लिया।

युद्ध की प्रमुख घटनाएँ– लार्ड डलहौजी ने सिक्खों के आक्रमण का सामना कर उन्हें

पूरी तरह दबाने का निश्चय किया। लार्ड गफ के नेतृत्व में अंग्रेजों की एक सेना ने रावी को पार कर चिनाव नदी के किनारे रामनगर में 22 नवंबर, 1848 को सिक्खों से टक्कर ली। इस युद्ध में हार-जीत का निर्णय नहीं हुआ। 13 दिसंबर को सादुलपुर में सिक्खों की अंग्रेजों से पुनः मुठभेड़ हुई, जिसमें सिक्ख सेना पीछ हट गई, लेकिन युद्ध का निर्णय अस्पष्ट रहा। इसके पश्चात् 13 जनवरी, 1849 को झेलम के तट पर चिलियाँवाला स्थान पर भीषण युद्ध हुआ, जिसमें सिक्खों की विजय हुई। इस युद्ध में अंग्रेजों को भारी क्षति उठानी पड़ी। इसके पश्चात् 21 जनवरी, 1849 को चिनाब के किनारे गुजरात में जो युद्ध हुआ, उसमें सिक्खों की पराजय हुई। अंग्रेजी सेना ने सिक्ख सेना का 24 किमी तक पीछा किया। अन्त में सिक्ख सेना ने समर्पण कर दिया। 29 मार्च, 1849 को लार्ड डलहौजी ने पंजाब को अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया। मूलराज पर मुकदमा चलाकर उसे मृत्यु-दण्ड दे दिया गया और दिलीपसिंह को पाँच लाख रुपया वार्षिक पेंशन देकर इंग्लैण्ड भेज दिया गया।

बर्मा का द्वितीय युद्ध (1852)– 1826 की यांडबू की सन्धि स्थायी सिद्ध न हो सकी। इस सन्धि के बाद अनेक अंग्रेज व्यापारी वर्मा के दक्षिणी तट पर बस गये। इन व्यापारियों ने बर्मी सरकार के नियमों का उल्लंघन करना आरम्भ कर दिया और सरकार द्वारा दण्डित किये जाने पर 1851 में डलहौजी से शिकायत की। डलहौजी तो ऐसे अवसर की ताक में ही था। उसने नवम्बर, 1851 में बर्मी सरकार से व्यापारियों के लिए क्षति-पूर्ति की माँग करने के लिए कोमोडोर लैमबर्ट के नेतृत्व में तीन युद्ध-पोत रंगून भेज दिये। रंगून पहुँचने पर लैमबर्ट ने आवा दरबार से 9,000 रुपये तथा रंगून के गवर्नर को पदच्युत करने की माँग रखी। आवा दरबार ब्रिटिश शक्ति के प्रदर्शन से भयभीत हो गया और रंगून के गवर्नर को वापस बुलाने तथा ब्रिटिश शिकायतों की जाँच करने के लिए तैयार हो गया। मगर अहंकारी लैमबर्ट कृत-संकल्प था कि झगड़ा शुरू किया जाए। उसने रंगून की नाकेबंदी शुरू कर दी और हमला करके बंदरगाह में 150 से अधिक छोटे जहाजों को नष्ट कर दिया। डलहौजी ने लैमबर्ट के इस कार्य की निन्दा नहीं की, वरन् उसने आवा दरबार को एक अन्तिम संदेश भेजा कि वह 1 अप्रैल, 1852 तक एक लाख पौण्ड क्षति-पूर्ति के रूप में अदा कर दे। उत्तर की प्रतीक्षा के साथ-साथ युद्ध की तैयारियाँ भी हो रही थीं। जब आवा दरबार से 1 अप्रैल तक कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ तो सेनापति गाडविन तथा एडमिरल के नेतृत्व में सेनाएँ रंगून भेज दीं गईं।

युद्ध की प्रमुख घटनाएँ– 2 अप्रैल, 1852 को युद्ध आरम्भ हो गया। अंग्रेजी सेना ने मर्तवान पर तत्काल अधिकार कर लिया। 14 अप्रैल को रंगून पर अधिकार कर लिया गया। एक महीने बाद बेसीन का पतन हो गया। सेनापति गाडविन ने प्रोम की घेरा-बन्दी के लिए एक सैनिक टुकड़ी भेजी, लेकिन अपने संचारण प्रबन्धों को खतरे में पड़ने के भय से वह उधर प्रगति न कर सका। सितम्बर में डलहौजी स्वयं कलकत्ता से रंगून गया और युद्ध का संचालन किया। अंग्रेज सेना आगे बढ़ती रही और उसने 9 अक्टूबर को प्रोम पर अधिकार कर लिया। पेगू पर पहले ही अधिकार हो चुका था, परन्तु बर्मा के सैनिकों ने उसे घेर रखा था। अन्ततः नवम्बर में उसे मुक्त कर दिया गया और इस प्रकार सैन्य हलचलें समाप्त हो गईं। सन्धि के यत्नों का कोई परिणाम न निकलता देखकर डलहौजी ने 20 दिसम्बर, 1852 को पेगू अथवा उत्तर बर्मा को अंग्रेजी राज्य में मिलाने की घोषणा कर दी। यद्यपि बर्मियों ने औपचारिक रूप से इस प्रदेश के विलय को स्वीकार नहीं किया, परन्तु वे इतने अधिक भयभीत हो चुके थे कि उसका सशस्त्र विरोध न कर सके।

इतिहासकारों ने लार्ड डलहौजी के इस कार्य की कटु आलोचना की है। उनका यह कहना है कि बर्मा के राजा के साथ जो नीति अपनाई गई वह पूर्णतया अन्यायपूर्ण और असंगत थी।

प्रसिद्ध इतिहासकार आरनल्ड का कहना है, "बर्मा का यह युद्ध न तो अपने प्रबन्ध के लिए न्यायमुक्त था और न उस युद्ध को न्याय के आधार पर ही लड़ा गया था। इस युद्ध का एकमात्र ध्येय ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार करना था और वह हो भी गया।"

डॉ. ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है, "साम्राज्यवाद का उद्देश्य केवल साम्राज्य की विजय करना ही है। उस विजय के लिए न्याय या अन्याय जैसी कोई बात नहीं होती। इसलिए उसकी आलोचना करना केवल अन्धे को अन्धा कहने के समान है।"

डलहौजी के प्रशासकीय सुधार

डलहौजी एक साम्राज्यवादी होने के साथ-साथ एक महान शासन-सुधारक भी था। उसके प्रशासकीय सुधार इस देश के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। उन्हीं सुधारों के कारण उसकी गणना भारत के आधुनिक निर्माताओं में की जाती है। उसने ब्रिटिश हित के लिए भारत में बहुत परिश्रम किया। एक योग्य से योग्य आदमी के लिए जितना काम कर सकना सम्भव है उसने उससे भी अधिक कार्य किया। उसके सुधारों और साम्राज्यवादी नीति से भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना हुई। वह सच्चे अर्थों में भारत में ब्रिटिश राज्य का निर्माता था। उसके अधीन काम करने वालों में से एक सर रिचर्ड टैम्मल कहता है, "एक शाही शासक के रूप में इंगलैण्ड ने जिन योग्य व्यक्तियों को शासन-प्रबन्ध के लिए भारत भेजा, उनमें से कोई भी उसका अतिक्रमण न कर सका और शायद ही कोई कभी उसकी समानता कर सका।" उसने निम्नलिखित सुधार किये :

(1) सेना सम्बन्धी सुधार– डलहौजी ने सेना सम्बन्धी सुधार किये, क्योंकि उसकी साम्राज्यवादी नीति की सफलता सेना-संगठन पर ही निर्भर थी। उसने शिमला को प्रमुख सैनिक केन्द्र बनाया। कलकत्ता के तोपखाना को हटाकर मेरठ लाया गया। पश्चिमोत्तर सीमा की सुरक्षा के लिए उपयुक्त सैनिक व्यवस्था की। डलहौजी भारतीय सैनिकों को अविश्वास की दृष्टि से देखता था। इस कारण उसने देशी सैनिकों को अलग-अलग स्थानांतरण करने तथा विभाजित टोलियों में रखने की नीति अपनाई ताकि वे सैनिक मिलकर किसी प्रकार का खतरा उत्पन्न न कर सकें। उसने अंग्रेजी सेना के बढ़ाने पर जोर दिया, लेकिन कंपनी के डाइरेक्टरों ने उसकी बात नहीं मानी।

डलहौजी के प्रशासकीय सुधार

1. सेना सम्बन्धी-सुधार
2. रेल तथा तार
3. डाक-व्यवस्था को उन्नत करना
4. व्यापारिक-सुधार
5. सार्वजनिक निर्माण विभाग की स्थापना
6. शिक्षा-सम्बन्धी सुधार

(2) रेल तथा तार– भारत में रेल तथा तार की व्यवस्था का प्रारंभ सर्वप्रथम डलहौजी ने किया। यह व्यवस्था सैनिक दृष्टिकोण से शीघ्र यातायात एवं सन्देशवाहन के लिए तथा व्यापारिक दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण थी। सर्वप्रथम 1853 में बम्बई से थाना तक पहली रेलवे लाइन का निर्माण हुआ। दूसरे वर्ष हावड़ा से रानीगंज तथा 1856 में मद्रास से अरकोनम तक तथा अन्य रेलवे लाइनों का निर्माण किया गया। उसके शासन-काल के अन्त तक लगभग 480 किमी तक रेलवे लाइन का निर्माण हुआ। उसने तार की लाइनें बनवाईं। कलकत्ता और पेशावर तथा बम्बई और मद्रास आदि नगरों का एक दूसरे से संपर्क स्थापित हुआ। 1857 की क्रांति का दमन करने में रेल तथा तार आदि साधनों से अंग्रेजों को बड़ी सहायता मिली थी। क्रांति के एक सेनानी ने तार की ओर संकेत करते हुए सत्य ही कहा था, "यही वह निर्दयी रस्सी है जिसने हमें फाँसी दी।" वास्तव में यदि देखा जाय तो भारत के भौतिक विकास में इन दोनों साधनों का योगदान अपूर्व महत्व का है।

(3) डाक-व्यवस्था को उन्नत करना– डलहौजी ने डाक-व्यवस्था को उन्नत करने का प्रयत्न किया, क्योंकि भारत में डाक-प्रणाली बहुत अव्यवस्थित थी। उसने टिकट व्यवस्था आरंभ कीं और आधा तोला तक वजन के पत्र के लिए भारत के प्रत्येक भाग में दो पैसा महसूल निर्धारित किया। उसने पूरे देश में 753 डाकघर खोले। इस प्रकार की व्यवस्था से जनता को बड़ी सुविधा हो गई।

(4) व्यापारिक सुधार– डलहौजी ने व्यापार के क्षेत्र में मुक्त व्यापार (स्वतंत्र व्यापार) की नीति अपनाई और भारत के सभी बन्दरगाह सबके लिए खोल दिये गये। बन्दरगाहों की आवश्यक मरम्मत कराई गई। उसने बेसीन नदी के पास एक छोटा सा बन्दरगाह भी बनवाया। उसने कपास, कॉफी, चाय तथा जूट आदि का उत्पादन बढ़ाने के लिए भिन्न-भिन्न प्रणालियों को प्रयुक्त किया। उसके व्यापारिक सुधारों से अंग्रेजों को बहुत लाभ हुआ।

(5) सार्वजनिक निर्माण विभाग की स्थापना– डलहौजी से पहले सार्वजनिक निर्माण कार्य सैन्य विभाग के अधीन था। यह विभाग सेना की आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर ध्यान देता था और नागरिक आवश्यकताओं की उपेक्षा करता था। डलहौजी इस बात के विरुद्ध था। इसलिए उसने सार्वजनिक निर्माण विभाग की स्थापना की। ये विभाग प्रत्येक प्रेसीडेन्सी में स्थापित किये गये जिनमें एक चीफ इंजीनियर तथा उसके अधीन अन्य अधिकारी तथा कर्मचारी होते थे। इस विभाग का कार्य सड़कें बनवाना, नहरें खुदवाना तथा पुलों आदि का निर्माण करना था। इसी विभाग की सहायता से अपर गंगा नहर और अपर बारी दोआब नहर का निर्माण हुआ।

(6) शिक्षा सम्बन्धी सुधार– डलहौजी ने शिक्षा में भी महत्वपूर्ण सुधार किये। "उसका यह कार्य भारत- हितैषिता के विचार से नहीं हुआ था। वह अपने कतिपय सुकार्यों की चमक में अपने शासन-काल के बहुसंख्यक काले कारनामों को छिपाना चाहता था।" 1854 में चार्ल्स वुड ने जो बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल का प्रेसीडेन्ट था, शिक्षा के विकास के लिए एक रिपोर्ट भारत सरकार के समक्ष प्रस्तुत की। फलतः उसकी रिपोर्ट के अनुसार डलहौजी ने भारत में शिक्षा सम्बन्धी महत्वपूर्ण सुधार किये। कलकत्ता, मद्रास तथा बम्बई नगरों में एक-एक विश्वविद्यालय की स्थापना की गई। इन विश्वविद्यालयों का कार्य केवल शिक्षा देना ही नहीं, बल्कि परीक्षा लेना भी था। इन विश्वविद्यालयों के संरक्षण एवं नियंत्रण में अनेक कालेज खोले गये जिनमें इण्टरमीडिएट से डिग्री तक की शिक्षा-व्यवस्था थी। उसके नीचे हाई स्कूल, वर्नाक्यूलर, मिडिल स्कूल तथा प्राइमरी स्कूल रखे गये। गैर सरकारी शिक्षण संस्थाओं को सरकारी सहायता एवं मान्यता देकर प्रोत्साहित करने का निश्चय किया गया। प्रत्येक प्रान्त में एक-एक शिक्षा विभाग और उस विभाग को डाइरेक्टर के अधीन रखने की व्यवस्था की गई। डलहौजी ने स्त्री-शिक्षा को भी प्रोत्साहन दिया।

डलहौजी का मूल्यांकन– लार्ड डलहौजी अपने सुधारों और साम्राज्य-विस्तार के कारण ब्रिटिश भारत के इतिहास में विशिष्ट स्थान रखता है और उसकी गणना आधुनिक भारत के निर्माताओं में की जाती है। वह सामरिक व्यवस्था में महान् था, किन्तु शान्ति-व्यवस्था में महानतर था। उसमें साम्राज्यवादी और शासन सुधारक दोनों ही गुण विद्यमान थे। लार्ड कर्जन के अनुसार, "लार्ड डलहौजी ने भारत पर एक ऐसा प्रभाव छोड़ा जो उससे पूर्ववर्ती किसी से भी अपेक्षाकृत कम महत्व का नहीं था। वह युद्ध-व्यवस्था में पूर्ण सफल था, पर साथ ही शांति व्यवस्था में भी उतना ही महत्वशील था। इंग्लैण्ड आज भी भारत में ब्रिटिश-साम्राज्य की स्थापना, विस्तार एवं सुदृढ़ीकरण की दिशा में किये उसके कार्यों की प्रशंसा करता है।" पी.ई. राबर्ट्स के शब्दों में, "वह कर्तव्य के स्पष्ट आदर्श से प्रेरित था, जिसके लिए उसने अपने

स्वास्थ्य और सुविधा की भी बलि चढ़ा दी। एक योग्य से योग्य आदमी के लिए जितना काम कर सकना सम्भव है उसने उससे भी अधिक कार्य किया।"

1856 में लार्ड डलहौजी त्यागपत्र देकर इंग्लैण्ड वापस चला गया। उसके जाने के पश्चात् क्रमशः लार्ड केनिंग (1856-62), लार्ड एलगिन (1862-63), सर जॉन लारेन्स (1863-69), लार्ड मेयो (1869-72), लार्ड नार्थब्रुक (1872-76), लार्ड लिटन (1876-80), लार्ड रिपन (1880-84), लार्ड डफरिन (1884-88) लार्ड लैन्सडाउन (1888-94), लार्ड एलगिन द्वितीय (1894-99), लार्ड कर्जन (1899-1905), लार्ड मिन्टो (1905-10), लार्ड हार्डिंज द्वितीय (1910-16), लार्ड चेम्सफोर्ड (1916-21), लार्ड रीडिंग (1921-26), लार्ड इरविन (1926-31), लार्ड विलिंगटन (1931-36), लार्ड लिनलिथगो (1936-43), लार्ड वेवेल (1943-47), लार्ड माउन्टबेटन (1947-48) आदि वाइसराय होकर भारत आये। लार्ड माउन्टबेटन के पश्चात् राजगोपालाचारी भारत के प्रथम तथा अंतिम गवर्नर जनरल थे, क्योंकि उसके पश्चात् हमारे संविधान के द्वारा राष्ट्रपति ही हमारे देश के शासन का प्रधान बन गया।

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ (Important Dates & Events)

1. 1848 ई. – लार्ड डलहौजी का भारत आगमन।
2. 1848-49 ई. – द्वितीय सिक्ख युद्ध।
3. 1849 ई. – पंजाब का अंग्रेजी राज्य में विलय। (1985)
4. 1852 ई. – बर्मा का द्वितीय युद्ध।
5. 1854 ई. – सतारा व झाँसी का अंग्रेजी राज्य में मिलाया जाना।
6. 1856 ई. – अवध का अंग्रेजी राज्य में मिलाया जाना।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. भारतीय राज्यों के प्रति डलहौजी की नीति की सविस्तार व्याख्या कीजिए और उसके परिणाम बताइए। (1955)
2. डलहौजी की नीति तथा सुधारों की विवेचना कीजिए। उनका क्या परिणाम हुआ?
3. लार्ड डलहौजी के शासन सम्बन्धी सुधारों का उल्लेख कीजिए। (1987)
4. लार्ड डलहौजी के शासन सुधारों और उनके महत्व का वर्णन कीजिए। (1991)
5. 1740-1856 ई. तक अंग्रेजी कम्पनी के विस्तार की मुख्य अवस्थाओं का निरूपण कीजिए। (1992)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "लार्ड डलहौजी आधुनिक भारतवर्ष के निर्माताओं में से एक है।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं? (1966,84,94)
2. "लार्ड डलहौजी की नीति ने भारत में असन्तोष की वृद्धि की।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं? (1970)
3. "लार्ड डलहौजी एक महान् सुधारक था।" इस कथन के प्रकाश में उसके सुधारों का उल्लेख कीजिए।
4. "लार्ड डलहौजी सामरिक व्यवस्था में महान था, किन्तु शांति व्यवस्था में वह महानतर

था।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।

5. "कुछ विजेता थे, कुछ निर्माता थे, कुछ सुधारक थे, परन्तु डलहौजी सब था।" आप इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं?
6. "लार्ड डलहौजी की अपहरण नीति एक लज्जास्पद प्रकरण थी।" विवेचना कीजिए।
7. "लार्ड डलहौजी ने भारत का आधुनिकीकरण किया।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं? (1989)
8. "एक योग्य से योग्य आदमी के लिए जितना काम कर सकना सम्भव है, उसने उससे भी अधिक कार्य किया।" लार्ड डलहौजी के संदर्भ में क्या आप इस कथन से सहमत हैं?
9. "लार्ड डलहौजी ने अपने प्रशासनिक सुधारों के द्वारा भारत में ब्रिटिश शासन की नींव सुदृढ़ एवं दीर्घस्थायी बनाई।" इस कथन की व्याख्या कीजिए। (1996)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. लार्ड डलहौजी की 'अपहरण नीति' क्या थी?
2. लार्ड डलहौजी को एक महान् साम्राज्य निर्माता क्यों माना जाता है?
3. लार्ड डलहौजी के प्रशासकीय सुधार क्या थे?
4. लार्ड डलहौजी के दो प्रमुख सुधारों के बारे में लिखिए।
5. 'वुड डिस्पैच' (1854) से आप क्या समझते हैं? समझाइए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. लार्ड डलहौजी के शासन काल की दो घटनाएँ लिखिए।
   (1) द्वितीय सिक्ख युद्ध (1848), तथा (2) बर्मा का द्वितीय युद्ध (1852)।
2. लार्ड डलहौजी की दो आधुनिक देनें कौन-सी हैं?
   (1) रेल तथा तार व्यवस्था, तथा (2) डाक-व्यवस्था।
3. अपहरण नीति को प्रचलित करने वाला कौन था?
   अपहरण नीति को प्रचलित करने वाला डलहौजी था।
4. उन दो राज्यों के नाम बताइए जो लार्ड डलहौजी की अपहरण नीति के शिकार हुए?
   (1) सतारा (1849), तथा (2) झाँसी (1854)।
5. डलहौजी ने किस राज्य पर कुशासन का आरोप लगाकर उसे ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाया?
   डलहौजी ने अवध राज्य पर कुशासन का आरोप लगाकर उसे ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाया।
6. भारत में वर्तमान शिक्षा-प्रणाली किसकी देन है?
   भारत में वर्तमान शिक्षा प्रणाली लार्ड डलहौजी की देन है।
7. भारत में सर्व-प्रथम डाक-टिकट किसके शासन काल में जारी किये गये थे?
   लार्ड डलहौजी के शासन-काल में जारी किये गये थे।
8. भारत में सर्वप्रथम रेल मार्ग किसके शासन-काल में बिछाया गया था?
   लार्ड डलहौजी के शासन-काल में बिछाया गया था।

बहुविकल्पीय प्रश्न

निर्देश : नीचे दिये गये प्रत्येक प्रश्न के चार विकल्पों में से सही विकल्प छाँटकर लिखिए :

1. हड़पनीति के लिए कौन गवर्नर जनरल प्रसिद्ध है?
   (क) वारेन हेस्टिंग्ज, (ख) वेलेजली, (ग) डलहौजी, (घ) केनिंग।

2. भारत में प्रथम रेलवे लाइन कब खुली थी?
(क) 1850 ई., (ख) 1852 ई., (ग) 1853 ई., (घ) 1855 ई.।
3. भारत में डाक-विभाग की स्थापना कब हुई थी?
(क) 1852 ई., (ख) 1854 ई., (ग) 1855 ई., (घ) 1860 ई.।
4. चार्ल्स वुड की रिपोर्ट (1854) किससे संबंधित थी?
(क) सती-प्रथा विरोध, (ख) बाल विवाह-विरोध,
(ग) शिक्षा संबंधी सुधार, (घ) डाक-विभाग की स्थापना।
5. द्वितीय बर्मा युद्ध के समय कौन गवर्नर जनरल था?
(क) कार्नवालिस, (ख) डलहौजी, (ग) विलियम बेंटिंक, (घ) हेस्टिंग्ज।
6. द्वितीय सिक्ख युद्ध कब हुआ था?
(क) 1845 ई., (ख) 1848 ई., (ग) 1850 ई., (घ) 1852 ई.।
7. बर्मा का द्वितीय युद्ध कब लड़ा गया था?
(क) 1848 ई., (ख) 1849 ई., (ग) 1851 ई., (घ) 1852 ई.।
8. अवध राज्य को अंग्रेजी राज्य में कब मिलाया गया था?
(क) 1850 ई., (ख) 1852 ई., (ग) 1855 ई., (घ) 1856 ई.।
9. पंजाब का अंग्रेजी राज्य में विलय कब हुआ?
(क) 1848 ई. में (ख) 1849 ई. में (ग) 1850 ई. में (घ) 1851 ई. में।
10. सतारा और झांसी को अंग्रेजी राज्य में कब मिलाया गया?
(क) 1852 ई., (ख) 1853 ई., (ग) 1854 ई., (घ) 1855 ई.।

■

23

1857 का प्रथम स्वाधीनता संग्राम

> "भारत में 1857 ई. की क्रान्ति से अधिक सौभाग्यशाली घटना अन्य कोई नहीं घटी। इसने भारतीय गगन-मण्डल को अनेक मेघों से विमुक्त कर दिया।"
>
> -ग्रिफिन

1857 भारतीय इतिहास में एक रक्तिम पृष्ठ है, क्योंकि इस वर्ष भारत के निवासियों ने अंग्रेजी शासन का अन्त करने के लिए अकथनीय प्रयास किये, किन्तु वे पूर्णरूप से अपने मन्तव्य में सफलीभूत न हो सके। 1857 की क्रान्ति के निम्नलिखित कारण बतलाये जा सकते हैं :

(1) राजनीतिक कारण

राजनीतिक कारणों के अन्तर्गत निम्न कारणों का उल्लेख किया जा सकता है :

(1) दिल्ली सम्राट के साथ अनुचित व्यवहार- यद्यपि इस समय तक मुगल सम्राट की सत्ता समाप्त हो गई थी, परन्तु उसकी प्रतिष्ठा अब भी भारतीयों के हृदय में पहले की भाँति बनी हुई थी। अंग्रेज भी उसको अपना सम्राट मानते थे और गवर्नर जनरल मुगल सम्राट को झुक कर सलाम किया करते थे। कम्पनी की मुहरों में ये शब्द अंकित करते थे- 'दिल्ली के बादशाह का फिदबी खास' अर्थात् 'मुगल बादशाह के सेवक।' कम्पनी के समस्त सिक्कों पर मुगल सम्राट का नाम अंकित किया जाता था। किन्तु अंग्रेजों ने अपनी शक्ति के विस्तार होने पर उक्त सभी मान्यताओं का उल्लंघन करना प्रारम्भ कर दिया। इसके अतिरिक्त अंग्रेजों ने मुगल सम्राट बहादुरशाह की इच्छा के विरुद्ध कोयाश से एक इकरारनामा लिखवा लिया था कि यदि उन्होंने उसको बहादुरशाह का उत्तराधिकारी मान लिया तो वह सम्राट के स्थान पर राजकुमार की ही उपाधि धारण करेगा और वह अंग्रेजों के लिये लालकिला खाली कर देगा। इन सब कारणों से जनता और मुगल सम्राट दोनों का क्रोध भभक उठा जिसने कालान्तर में क्रांति की लपटों का रूप धारण कर लिया।

(2) अवध के नवाब व अवध की प्रजा के साथ अत्याचार- भारतीय जनता ने अपनी आँखों से देखा था कि उसके नवाब के महलों को किस प्रकार लूटा गया और महिलाओं को अपमानित किया गया तथा नवाब की इच्छा के विरुद्ध अवध राज्य को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया। असंख्य जमींदारों और ताल्लुकेदारों की पैतृक जमींदारियाँ बिना किसी कारण के छीन ली गईं। इतिहासकार जॉन लिखता है कि बहुत कम जमींदार या ताल्लुकेदार इस अन्याय से बच सके। इस कारण अवध की प्रजा ने विप्लव के अवसर पर उक्त कार्यों के प्रतिकार का प्रयास किया।

(3) डलहौजी की अपहरण नीति- लार्ड डलहौजी की साम्राज्यवादी नीति ने तो और

राजनीतिक कारण

1. दिल्ली सम्राट के साथ अनुचित व्यवहार
2. अवध के नवाब व अवध की प्रजा के साथ अत्याचार
3. डलहौजी की अपहरण-नीति
4. भारतीय राजाओं की बाह्य नीति पर प्रतिबन्ध
5. नानासाहब के साथ कम्पनी का अन्याय
6. अंग्रेज अफसरों का दुर्व्यवहार

उग्र रूप धारण किया। उसने अपहरण नीति द्वारा कुछ रियासतों को उत्तराधिकारी के अभाव में ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया जिनमें सतारा, झाँसी, नागपुर के राज्य उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त उसने बरार और अवध को कुशासन के आधार पर हड़प लिया। इन कार्यों से भारतीय राजाओं में व्यापक असंतोष फैल गया और उन्होंने 1857 की क्रान्ति में अंग्रेजों का डटकर मुकाबला किया। रियासतों के अपहरण का वर्णन करते हुए लडलो लिखता है, "निःसन्देह इस तरह के हालात में जिन नरेशों की रियासतें अंग्रेजी राज्य में मिला ली गईं, उनके पक्ष में अंग्रेजों के विरुद्ध भारतवासियों के भाव न भड़क उठते, तो भारतवासियों को मनुष्यता से गिरा हुआ कहा जाता। निःसन्देह एक भी स्त्री ऐसी न होगी जिसे इन रियासतों के अपहरण ने हमारा शत्रु न बना दिया हो, एक भी बच्चा ऐसा न होगा जिस हमारे इन कार्यों के कारण अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध आरम्भ से घृणा की शिक्षा न दी जाती हो।"

(4) भारतीय राजाओं की बाह्य नीति पर प्रतिबन्ध– जिन रियासतों को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित नहीं किया गया था उनके राजाओं की बाह्य-नीति को अंग्रेजों ने अपने पूर्ण नियन्त्रण में कर लिया था। यही नहीं, उन्होंने देशी राज्यों के आन्तरिक मामलों में भी हस्तक्षेप करना आरम्भ क़र दिया था। इस कारण देशी राजाओं में असन्तोष का बढ़ना स्वाभाविक था।

(5) नानासाहब के साथ कम्पनी का अन्याय– अंग्रेजों ने पेशवा बाजीराव द्वितीय की मृत्यु के बाद उसके दत्तक पुत्र नानासाहब की आठ लाख की वार्षिक पेंशन बन्द कर दी, जबकि कम्पनी के साथ उसके सम्बन्ध अच्छे थे। उसने इसके लिए इंग्लैण्ड की प्रिवी कौंसिल में अपील की और अपने मंत्री अजीमुल्ला को लंदन भेजा। परन्तु वहाँ पर कोई सुनवाई न हुई। इससे नानासाहब और अजीमुल्ला को बहुत क्रोध आया और उन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीय जनता को क्रान्ति के लिए आह्वान किया। कुछ विद्वानों की भी धारणा है कि सर्वप्रथम क्रान्ति का विचार इन्हीं दोनों के मस्तिष्क में आया था।

(6) अंग्रेज अफसरों का दुर्व्यवहार– क्रांति का एक राजनीतिक कारण यह भी था कि अंग्रेज अफसर भारतीय जनता के साथ दुर्व्यवहार किया करते थे। भोले-भाले किसानों का शोषण किया जाता था और व्यापारियों को अपना माल कम दामों पर बेचने के लिए बाध्य किया जाता था। अंग्रेज व्यापारी अफसरों की सहायता से भारतीयों के साथ सदैव दुर्व्यवहार करते थे।

(2) आर्थिक कारण

आर्थिक कारणों के अन्तर्गत निम्नलिखित कारण बतलाये जा सकते हैं :

आर्थिक कारण

1. भारतीय धन का इंगलैण्ड जाना
2. भारतीय व्यापार एवं उद्योगों का विनाश
3. जमींदारों तथा ताल्लुकेदारों की आर्थिक दशा का शोचनीय हो जाना

(1) भारतीय धन का इंगलैण्ड जाना– अंग्रेजों ने मुगल सम्राटों की भाँति भारत में रहकर शासन नहीं किया, बल्कि भारत में कुछ काल तक शासन करने के पश्चात् अपने साथ अपार धनराशि लेकर इंग्लैण्ड लौट जाते थे। इस प्रकार भारतीय जनता की आर्थिक दशा बिगड़ गई और अंग्रेजों पर से उनकी श्रद्धा जाती रही।

(2) भारतीय व्यापार एवं उद्योगों का विनाश– अंग्रेजों की औद्योगीकरण नीति से भारतीय व्यापार एवं उद्योग-धन्धे नष्ट हो गये। भारत से कच्चा माल इंगलैण्ड जाने लगा और वहाँ से तैयार माल भारत आने लगा। भारत का वस्त्र उद्योग तो बिल्कुल नष्ट हो गया। 1824 में केवल 10 लाख गज कपड़ा इंग्लैण्ड से भारत आया, लेकिन 1837 में साढ़े 6 करोड़ गज कपड़ा आया। इस प्रकार भारत अंग्रेजी मशीनों से तैयार माल की मण्डी बन गया। भारत में हजारों की संख्या में व्यक्ति बेकार हो गये और उनमें अंग्रेजों के विरुद्ध असन्तोष उत्पन्न हो गया।

(3) जमींदारों तथा ताल्लुकेदारों की आर्थिक दशा का शोचनीय हो जाना– कम्पनी ने बहुत से पुराने जमींदारों तथा ताल्लुकेदारों को उनके अधिकार से वंचित कर उनके गाँवों को अपने अधिकार में कर लिया। एकमात्र मनीपुर के राजा के 158 गाँवों में से 126 गाँव छीन लिये गये। एक दूसरे राजा के 138 गाँव छीन लिये गये। इतिहासकार जॉन ने लिखा है, 'असंख्य जमींदारों और ताल्लुकेदारों की पैतृक जमींदारियाँ बिना किसी कारण छीन ली गईं। इससे इन लोगों की आर्थिक दशा खराब हो गई और वे अंग्रेजों के शत्रु हो गये। उन्होंने क्रान्ति में अंग्रेजों के विरुद्ध खुलकर शस्त्रों का प्रयोग किया।"

(3) धार्मिक कारण

धार्मिक कारणों के अन्तर्गत निम्नलिखित कारणों का उल्लेख किया जा सकता है :

(1) ईसाई धर्म का प्रचार– अंग्रेजों ने भारत में ईसाई–धर्म का प्रचार करने का पूरा प्रयास किया। उन्होंने ईसाई–धर्म के प्रचारार्थ असंख्य मिशनरियाँ खोलीं और उनको गुप्त रूप से आर्थिक सहायता भी देना शुरू किया। कम्पनी के संचालकों की यह भी नीति थी कि जिस प्रकार संभव हो भारत में ईसाई–धर्म का प्रचार किया जाय। जो व्यक्ति ईसाई हो जाते उनको ऊँची नौकरियाँ दी जातीं। कुछ सैनिक तथा ईसाई पादरियों ने राम, कृष्ण, मुहम्मद तथा देवी–देवताओं की खिल्ली उड़ाई और उनको अपशब्द कहना प्रारम्भ किया।

धार्मिक कारण

1. ईसाई–धर्म का प्रचार
2. हिन्दू–धर्म के सिद्धान्तों की अवहेलना
3. डलहौजी के अप्रिय सुधार

इन बातों से जनता में संदेह पैदा होना स्वाभाविक था कि अंग्रेज भारत में ईसाई–धर्म का प्रचार करना चाहते हैं।

(2) हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों की अवहेलना– भारतीयों को अपने धर्म ग्रन्थों के अनुसार पुत्र–गोद लेने का अधिकार है। लेकिन डलहौजी ने अनेक भारतीय राजाओं के गोद लिये पुत्रों को राज्याधिकार के लिये अवैध घोषित कर दिया। इसका प्रभाव यह हुआ कि कट्टर धार्मिक हिन्दू अंग्रेजों को अपना शत्रु समझने लगे तथा अपनी पूर्ण शक्ति के साथ क्रांति में भाग लिया।

(3) डलहौजी के अप्रिय सुधार– लार्ड डलहौजी द्वारा किए गये रेल, तार तथा अन्य सुधारों के कारण जनता में यह भावना जाग्रत हुई कि उनके द्वारा अंग्रेज हमारे धर्म पर आघात पहुँचा रहे हैं। क्रांति–काल में एक आदमी ने तार की ओर संकेत करते हुए कहा था कि इसने हमें फाँसी दी है।

सामाजिक कारण

1. सामाजिक प्रथाओं पर प्रतिबन्ध
2. पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का प्रचलन
3. अंग्रेजी वस्तुओं का विरोध

(4) सामाजिक कारण

सामाजिक कारणों के अन्तर्गत निम्नलिखित कारण बतलाये जा सकते हैं :

(1) सामाजिक प्रथाओं पर प्रतिबन्ध– अंग्रेजों ने सती–प्रथा तथा बाल–विवाह पर प्रतिबन्ध लगा दिया और उनको अवैध घोषित किया। उन्होंने विधवा–विवाह को न्यायसंगत घोषित किया। भारतीय इन सामाजिक सुधारों से बहुत असन्तुष्ट और विद्रोह की भावना से प्रेरित थे।

(2) पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का प्रचलन– अंग्रेजों ने भारत में पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का भी प्रचार किया। उन्होंने भारतीय साहित्य और प्रांतीय भाषाओं की उपेक्षा की। लार्ड मैकाले ने अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाने के लिए भारतीय साहित्य की बड़ी खिल्ली

उड़ाई। उसने कहा, "पाश्चात्य साहित्य की एक आलमारी समस्त एशिया के साहित्य से श्रेष्ठतर है।" भारतीय जनता ने पाश्चात्य साहित्य और भाषा के प्रचलन का विरोध किया, क्योंकि उसकी यह धारणा थी कि अंग्रेजी के प्रचार से अंग्रेज उसे ईसाई बनाना चाहते हैं।

(3) अंग्रेजी वस्तुओं का विरोध– भारतीय ज़नता रेल, तार आदि आधुनिक आविष्कारों को घृणा की दृष्टि से देखती थी, क्योंकि वह उनको पाश्चात्य वस्तुएँ समझती थी। फलतः उसने उनका विरोध किया।

(5) सैनिक कारण

सैनिक कारणों के अन्तर्गत निम्नलिखित कारणों का उल्लेख किया जा सकता है :

सैनिक कारण
1. अंग्रेजों की भेद-नीति
2. अप्रिय सैनिक नियम
3. नये प्रकार के कारतूस

(1) अंग्रेजों की भेद-नीति– अंग्रेजों की भेद-नीति ने भारतीय सैनिक को बहुत अधिक असन्तुष्ट कर दिया था, क्योंकि भारतीय और अंग्रेज सैनिक के बीच अन्तर रखा गया था। अंग्रेजी सैनिक को भारतीय सैनिकों की अपेक्षा वेतन अधिक मिलता था। इसके अतिरिक्त उच्च पदों पर अंग्रेजों की ही नियुक्ति की जाती थी और भारतीय सैनिकों को उन पदों के लिये अयोग्य समझा जाता था।

(2) अप्रिय सैनिक नियम– 1856 में लार्ड केनिंग ने 'सर्विस इंटेलिजेन्स ऐक्ट' की घोषणा की जिसके अनुसार सैनिकों को अनिवार्य रूप से विदेश जाना होगा। परन्तु भारतीय समुद्र-पार जाना धर्म-विरुद्ध समझते थे, क्योंकि उन दिनों समुद्र पार जाने वाले व्यक्ति को धर्म तथा जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता था। एक अन्य नियम द्वारा सेना में पगड़ी बाँधने के नियम का भी निषेध कर दिया गया। पहले सैनिक को अपने पत्रों के लिए डाक-व्यय नहीं देना पड़ता था, किन्तु नये नियम के द्वारा उनको भी अपने पत्रों के लिये डाक-व्यय देना अनिवार्य कर दिया गया। इन सभी अप्रिय नियमों से सैनिकों में व्यापक असन्तोष फैला हुआ था।

(3) नये प्रकार के कारतूस– इसी समय सैनिकों को एक नये प्रकार के कारतूस दिये गये। जिनका प्रयोग करने के पहले मुँह से उनको खोलना पड़ता था। इनको चिकना करने के लिए गाय और सुअर की चर्बी का प्रयोग किया गया था। सर जॉन के शब्दों में, "इसमें कोई सन्देह नहीं कि कारतूस का चिकना मसाला तैयार करने में चर्बी का प्रयोग किया था।" लार्ड राबर्ट्स के अनुसार भी "कारतूस के प्रयोग में चिकना मसाला पड़ता था और उसमें गाय और सुअर की चर्बी का प्रयोग किया जाता था।" कारतूस के प्रयोग ने अग्नि में घी का काम किया।

क्रान्ति का संगठन– देश की अशान्तिमय परिस्थितियों का लाभ उठाकर क्रान्तिकारियों ने एक सशस्त्र क्रान्ति द्वारा भारत से अंग्रेजों को निकालने की योजना बनानी शुरू की। क्रान्ति के संगठन की पृष्ठभूमि के निर्माण का कार्य नानासाहब, तात्याटोपे[1], बादशाह बहादुरशाह, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई तथा कुंवरसिंह आदि लोगों ने आरम्भ किया। नानासाहब ने अपनी पेंशन की पुनः प्राप्ति के सम्बन्ध में अपने मंत्री अजीमुल्ला खाँ को इंगलैण्ड भेजा। वहाँ पर उसने रंगाबाबू से भेंट की जो सतारा के राज्य का वकील था। दोनों व्यक्तियों ने सशस्त्र-क्रान्ति की योजना बनाई तथा भारत लौटने पर इन लोगों ने नानासाहब से मिलकर भारतीय जनता में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह की भावनाओं का प्रसार करना प्रारम्भ किया और क्रान्ति का नेतृत्व करने के लिए मुगल बादशाह

1. तात्याटोपे का असली नाम राचचन्द्र पांडुरंग येवलेकर था। दुबला-पतला होने के कारण लोग उसे तात्या अर्थात्- एकदम तांत जैसा अकड़ा हुआ कहते थे। बाजीराव पेशवा ने उनकी सेवा से प्रसन्न होकर उसे एक अत्यन्त सुन्दर नौ हीरों जड़ित टोपी देकर पुरस्कृत किया था। धीरे-धीरे तात्या के साथ 'टोपी' भी जुड़ गया और वह 'तात्याटोपी' कहलाने लगे। यही नाम बाद में विगड़कर तात्या टोपे हो गया।

बहादुरशाह को चुना। उन्होंने दिल्ली, लखनऊ, मैसूर व अवध आदि के असन्तुष्ट राजाओं नवाबों तथा जमींदारों से पत्र-व्यवहार किया। फलतः मुगल सम्राट बहादुरशाह तथा उसकी बेगम जीनतमहल, अवध का नवाब वाजिदअली शाह तथा उसकी बेगम हजरतमहल, तात्याटोपे तथा कुँवरसिंह आदि का विशाल संगठन बन गया। क्रान्तिकारियों ने अपने विचारों के प्रयास का माध्यम
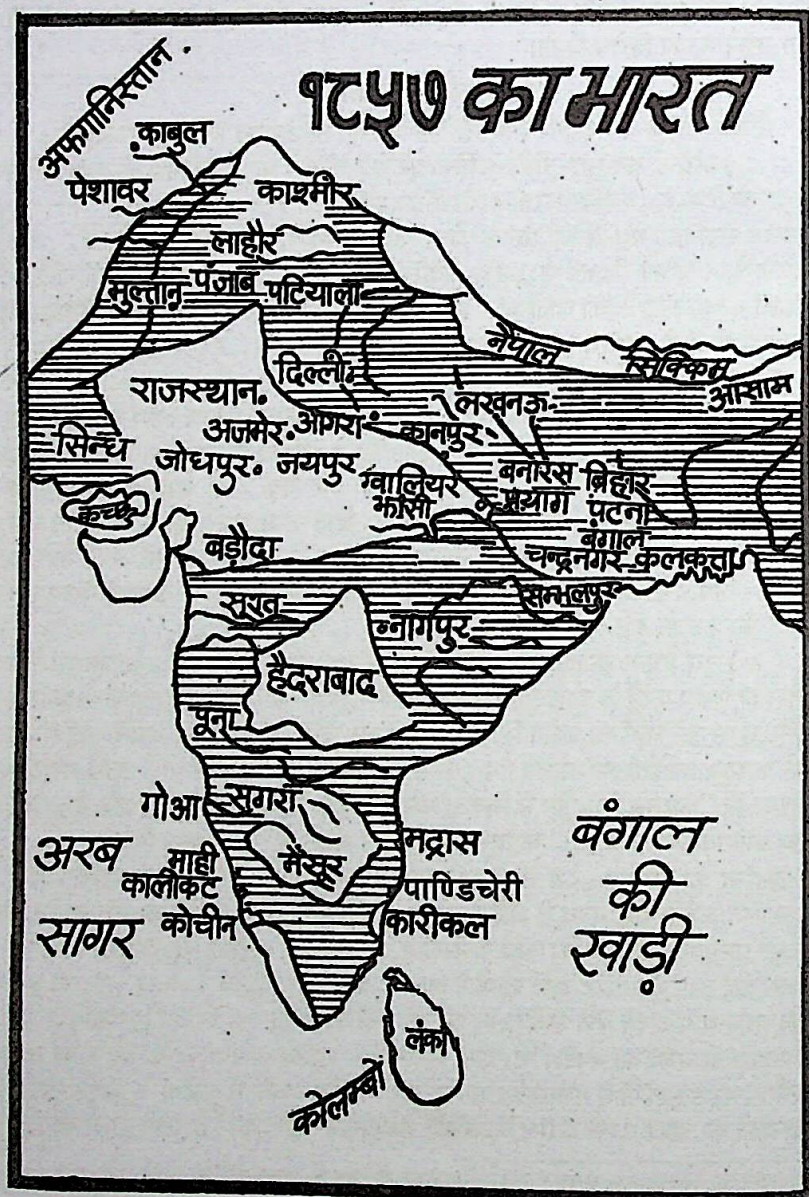
कमल का फूल और रोटी बनाया। सेना में कमल का फूल और ग्रामों में रोटी को घुमाया गया, जिसका तात्पर्य क्रान्ति का आह्वान था। नानासाहब और अजीमुल्ला खाँ ने तीर्थ-यात्रा करने के

बहाने सम्पूर्ण भारत में भ्रमण किया। हिन्दुओं ने गंगाजल और मुसलमानों ने कुरान को हाथ में लेकर सशस्त्र क्रान्ति में भाग लेने का वचन दिया। क्रान्ति की तिथि 31 मई, 1857 निश्चित की गई।

क्रान्ति का विस्फोट तथा विस्तार

बैरकपुर का विद्रोह– जैसा कि लिखा जा चुका है कि क्रान्तिकारियों ने क्रान्ति प्रारम्भ करने की तिथि 31 मई निश्चित की थी किन्तु कारतूसों की चर्चा की बात से सैनिकों का धैर्य जाता रहा और सबसे पहले बैरकपुर छावनी के सैनिकों ने चर्बी वाले कारतूसों का प्रयोग करने से इन्कार कर दिया। इस पर अंग्रेज पदाधिकारियों ने उन्हें पदच्युत करने की धमकी दी और उनसे अस्त्र छीन लिए गये। जब अंग्रेजों ने उन्हें दण्ड देने का निश्चय किया तो 29 मार्च, 1857 को मंगल पाण्डेय नामक एक सैनिक ने जोश में आकर एक अंग्रेज अफसर की हत्या कर दी। जब दूसरे अफसर ने उसे पकड़ने का प्रयास किया तो उसे भी उसकी गोली का शिकार बनना पड़ा। किन्तु अन्त में वह स्वयं घायल होकर बन्दी हो गया। उस पर अभियोग चलाया गया और 8 अप्रैल को उसे फाँसी पर लटका दिया गया। यह घटना आग की भाँति अन्य सैनिक छावनियों में फैल गई।

मेरठ में विद्रोह– इसके पश्चात् मेरठ में क्रान्ति की अग्नि भड़क उठी। यहाँ भी क्रान्ति प्रारम्भ होने का कारण चर्बी वाले कारतूस ही थे। जब सैनिकों ने चर्बी वाले कारतूसों का प्रयोग करने से इन्कार कर दिया तो उन्हें बन्दी बनाकर 10 वर्ष के लिए कारावास का दण्ड दिया गया तथा 9 मई को उन्हें परेड के मध्य अपमानित किया गया। फलतः 10 मई, रविवार के दिन भारतीय सैनिकों ने अंग्रेजों के विरुद्ध क्रान्ति कर दी और जेल पर आक्रमण कर कैदियों को मुक्त कर दिया। जो अंग्रेज जहाँ मिला वहीं मौत के घाट उतार दिया गया। क्रान्तिकारियों ने 'दिल्ली चलो' का नारा लगाकर रात्रि में दिल्ली को प्रस्थान किया।

दिल्ली पर अधिकार– 11 मई को क्रान्तिकारी दिल्ली पहुँचे। सौभाग्य से दिल्ली में कोई अंग्रेजी सेना नहीं थी। भारतीय सैनिकों ने उनका स्वागत किया और उनके साथ आकर सम्मिलित हो गये। उन्होंने अंग्रेज पदाधिकारियों की हत्या कर डाली और तोपखाने पर अधिकार करने का प्रयत्न किया, किन्तु अंग्रेजों ने तोपखाने को आग लगाकर नष्ट कर दिया। इसके पश्चात् क्रान्तिकारियों ने लालकिला पर अधिकार कर लिया और बहादुरशाह जफर को भारत का सम्राट घोषित कर दिया।

दिल्ली के निकट क्रान्ति का प्रसार– दिल्ली पर क्रांतिकारियों की सफलता का समाचार निकटवर्ती प्रान्तों में आग की तरह फैल गया। फलतः अलीगढ़, इटावा, मैनपुरी, मुरादाबाद, बरेली आदि में अंग्रेजों का वध किया गया और सरकारी खजाने पर क्रान्तिकारियों का अधिकार हो गया। ग्रामीण जनता ने सामूहिक रूप से क्रान्तिकारियों की सहायता की। इन जिलों से अंग्रेजी शासन का पूर्णतः अन्त हो गया और मुगल सम्राट बहादुरशाह का हरा झंडा फहराने लगा।

अंग्रेजों की प्रतिक्रिया– जब अंग्रेजों को उपर्युक्त समस्त समाचारों का ज्ञान हुआ तो वे अत्यधिक भयभीत हुए, किन्तु उन्होंने साहस और दृढ़ता से दमन करने का निश्चय किया। समय से पूर्व क्रान्ति हो जाने के कारण अंग्रेजों की अपनी योजना तथा शक्ति-संगठन का अवसर मिल गया। उन्होंने शीघ्र ही देशी राजाओं, जमींदारों तथा विद्रोही व्यक्तियों को धन का लालच देकर अपनी ओर मिला लिया। तत्पश्चात् अंग्रेजों ने क्रान्तिकारियों का दमन कठोरतापूर्वक करना प्रररम्भ कर दिया।

दिल्ली पर अंग्रेजों का अधिकार– क्रान्ति का दमन सर्वप्रथम दिल्ली से प्रारम्भ हुआ। दिल्ली पर अधिकार स्थापित करने के लिए सेनापति जान्सन ने एक सेना के साथ प्रस्थान किया। उसने पंजाब के कमिश्नर जॉन लारेंस का सहयोग प्राप्त किया। दिल्ली पहुँचने के पूर्व ही जान्सन

की हैजे से आकस्मिक मृत्यु हो गई। उसके स्थान पर सेना का नेतृत्व सर हेनरी बर्नार्ड ने संभाला। 4 जून को मेरठ से आर्कडेल विल्सन अंग्रेजी सेना सहित उससे आ मिला। अब अंग्रेजों और क्रान्तिकारियों के मध्य भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया। बहादुरशाह ने अंग्रेजी सेना को कई बार युद्ध में परास्त किया, किन्तु वह अंग्रेजी सेना को पूर्णतया नष्ट करने में सफल नहीं हुआ। अन्त में 14 सितम्बर को काश्मीरी दरवाजा को अंग्रेजी सेना ने बारूद से उड़ा दिया तथा 6 दिन के भीषण युद्ध के पश्चात् दिल्ली में प्रवेश करने में सफल हुई। उसने दिल्ली नगर तथा महल पर अपना अधिकार पुनः स्थापित कर लिया। अंग्रेजों के 1,450 आदमी खेत रहे। तत्पश्चात् सम्पूर्ण नगर बेरहमी के साथ लूटा गया। अंग्रेजों ने बहादुरशाह और उसके पुत्रों को बन्दी बना लिया। उसके पुत्रों को एक घुड़सवार नेता हडसन ने गोली मार दी और उसके सिरों को काटकर बहादुरशाह के पास भेज दिया गया। बहादुरशाह को आजीवन कारावास का दण्ड देकर रंगून भेज दिया गया जहाँ 7 नबम्बर, 1862 को उसकी मृत्यु हो गई।

बनारस पर अधिकार– बनारस में क्रांति का भीषण विस्फोट हो चुका था और वहाँ अनेक अंग्रेज पदाधिकारियों की हत्या कर डाली गई। तत्कालीन गर्वनर जनरल लार्ड केनिंग ने कर्नल नील को बनारस पर अधिकार करने के लिए भेजा। उसने शीघ्र ही बनारस पर अधिकार कर लिया और वहाँ पर मार्शल लॉ की घोषणा कर दी। फलतः असंख्य निरीह व्यक्तियों की हत्या कर डाली गई। गाँव के गाँव जलाकर विनष्ट कर दिये गये तथा किसानों की फसलें काट डाली गईं।

इलाहाबाद पर अधिकार– बनारस में अमानुषिक अत्याचार करने के पश्चात् जनरल नील इलाहाबाद पहुँचा जहाँ पर क्रान्तिकारियों ने अधिकार स्थापित कर रखा था। जनरल नील ने क्रांतिकारियों को पराजित कर 11 जून को नगर पर अधिकार कर लिया तथा जनता पर भीषण अमानवीय अत्याचार किये और असंख्य व्यक्तियों को मौत के घाट उतार कर क्रांति की अग्नि बुझा दी।

कानपुर– कानपुर में भी क्रांति की अग्नि भड़क उठी और बिठुर के नानासाहब ने क्रांति का नेतृत्व किया। उसने कानपुर के अंग्रेज सेनापति होलर को आत्मसमर्पण के लिए बाध्य करके 26 जून को कानपुर के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। नानासाहब ने दुर्ग में रहने वाले अंग्रेजों को यह आश्वासन दिया कि यदि वे नदी पार करके जाना चाहें तो उनके साथ कोई दुर्व्यवहार नहीं किया जायगा। किन्तु जब अंग्रेज नावों पर सवार हुए तभी भारतीय सैनिकों ने उन पर आक्रमण कर दिया। नानासाहब के अनुरोध करने पर स्त्रियों तथा बच्चों को तो सैनिकों ने छोड़ दिया, किन्तु अंग्रेज व्यक्तियों की हत्या कर डाली गई। जब कानपुर की घटनाओं का समाचार अंग्रेजों को ज्ञात हुआ तो इलाहाबाद से दो सेनाएँ जनरल हैवलॉक और जनरल रेनर्ड की अध्यक्षता में कानपुर भेजी गईं। अंग्रेजों ने फतेहपुर पर अधिकार कर वहाँ की जनता के साथ पाशविक व्यवहार किया। उसके पश्चात् सेनाएँ कानपुर की ओर बढ़ीं। नानासाहब ने बड़ी वीरता और साहस के साथ अंग्रेजी सेनाओं का सामना किया। क्रांतिकारियों ने 211 अंग्रेज बंदियों की हत्या कर उनकी लाशों को कानपुर के एक कुँए में फेंक दिया। अन्त में चार दिन के भीषण युद्ध के उपरान्त नानासाहब पराजित हुए। कानपुर पर अधिकार करके हैवलॉक ने नगर निवासियों पर अमानुषिक अत्याचार किये। स्त्रियों और बच्चों की निर्दयतापूर्ण हत्या कर डाली गई। नानासाहब और तात्याटोपे ने पुनः 28 नवम्बर को कानपुर पर अधिकार कर लिया, किन्तु दिसम्बर में कैम्पवेल ने 6 दिन के भीषण युद्ध के पश्चात् पुनः कानपुर पर अधिकार कर लिया। तात्याटोपे कालपी की ओर चला गया।

लखनऊ– क्रांति का सबसे भीषण रूप लखनऊ में था। जहाँ भी अंग्रेज मिले उन्हें मौत के घाट उतार दिया गया। इसमें जमींदारों तथा ताल्लुकेदारों ने भी क्रांतिकारियों को सहयोग दिया। क्रांतिकारियों ने रेजीडेंसी पर अधिकार करने का अथक प्रयास किया किन्तु वे सफल नहीं हुए।

हैवलॉक कानपुर से एक विशाल सेना के साथ लखनऊ गया और 23 सितम्बर को आलमबाग में क्रांतिकारियों को बुरी तरह परास्त किया। इसी समय कैम्पवेल भी लखनऊ आ पहुँचा। नेपाल से गोरखों की सेना भी अंग्रेजों के सहायतार्थ आ पहुँची तथा उसकी सहायता से 31 मार्च, 1857 को लखनऊ पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। इसके पश्चात् अंग्रेजों ने वहाँ की जनता के साथ पाशविक तथा अमानुषिक अत्याचार किये। उनके अत्याचारों के सम्बन्ध में एक इतिहासकार ने लिखा है, "दमन कार्य में अंग्रेजों ने सम्पूर्ण शिष्टता, भद्रता एवं मानवता का परित्याग कर दिया। उनकी पाशविक प्रवृत्ति पूर्णरूप से जागृत हो गई। जनरल नील और हैवलॉक की सेनाओं के अमानुषिक कृत्यों ने चंगेज खाँ और हलाकू के कारनामों को भी निम्न स्तर का बना दिया।"

बरेली तथा बिहार– रुहेलखण्ड में बरेली क्रांतिकारियों का प्रमुख केन्द्र था। यहीं अहमदशाह, नानासाहब, बेगम हजरतमहल आदि नेता एकत्रित हुए और अंग्रेजों का डटकर सामना किया। अन्त में, भीषण युद्ध के पश्चात् जनरल कैम्पवेल बरेली पर अधिकार स्थापित करने में सफल हो गया, किन्तु वह क्रान्तिकारियों को न पा सका।

बिहार में भी क्रांति की अग्नि फैल गई जिसका नेतृत्व जगदीशपुर के जमींदार कुँवरसिंह ने किया। उन्होंने आजमगढ़ में अंग्रेजी सेना से भीषण युद्ध किया और अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये। इसके पश्चात् उन्होंने जगदीशपुर को अंग्रजों से छीन लिया, लेकिन मेजर आयर ने उन्हें परास्त कर दिया। उन्होंने अपने परिवार और खजाने के साथ जगदीशपुर छोड़ दिया। अन्त में 26 अप्रैल, 1858 को उनकी मृत्यु हो गई।

झाँसी का पतन– जून मास में झाँसी में भी क्रान्ति की लपटों ने भीषण रूप धारण कर लिया। यहाँ पर रानी लक्ष्मीबाई ने क्रान्ति का नेतृत्व ग्रहण किया। उसने बुन्देलखण्ड को अपने अधिकार में कर लिया। रानी का दमन करने के लिये मार्च, 1858 में सर ह्यूरोज झाँसी की ओर बढ़ा और उसने झाँसी को सेना द्वारा घेर लिया। आठ दिन तक लगातार युद्ध होता रहा। रानी स्वयं युद्ध का संचालन कर रही थीं। रानी की सहायता के लिए ग्वालियर से तात्याटोपे भी सेना लेकर आ गया, किन्तु सर ह्यूरोज ने उसे परास्त कर दिया। झाँसी लेने के ह्यूरोज के सम्पूर्ण प्रयास असफल रहे। अन्त में, उसने कूटनीति के द्वारा कुछ विश्वासघातियों को अपनी ओर मिलाकर दुर्ग का फाटक खोलवा लिया। रानी ने अंग्रेजी सेना से भीषण युद्ध किया। अन्त में सुरक्षा का अभाव देखकर अपने बच्चे को कमर से बाँधकर शत्रु सेना के बीच से निकल कर झाँसी से बाहर निकल गई। 160 किमी की यात्रा करके रानी कालपी पहुँची। वहाँ तात्याटोपे के साथ अनेक क्रान्तिकारी नेता विद्यमान थे। ह्यूरोज भी रानी का पीछा करते हुए कालपी पहुँचा। वहाँ भी घमासान युद्ध हुआ। भीषण युद्ध के बाद रानी वहाँ से निकलने में सफल हुई। इसके पश्चात् लक्ष्मीबाई और तात्याटोपे ने ग्वालियर पर आक्रमण कर दिया। ग्वालियर का राजा जियाजीराव सिन्धिया तथा उसका मंत्री दिनकरराव जो अंग्रेजों के समर्थक थे, मैदान छोड़कर भाग गये और रानी ने ग्वालियर पर अधिकार कर लिया। ह्यूरोज रानी का पीछा करते हुए ग्वालियर आ पहुँचा। रानी ने अंग्रेजों के प्रथम आक्रमण को विफल कर दिया। अगले दिन पुनः अंग्रेजों ने दुर्ग पर आक्रमण किया। रानी ने भीषण युद्ध किया, लेकिन विजय की आशा खोकर उसने भागना ही हितकर समझा। दुर्भाग्य से सहसा उसका घोड़ा एक नाले के पास रुक गया। उसका पीछा करते हुए अंग्रेज सैनिक आ गये और रानी पर आक्रमण कर उसको घायल किया। घायल अवस्था में भी उसने कई आक्रमणकारियों का वध कर डाला। अन्त में वहीं पर गिर कर वह वीर-गति को प्राप्त हुई (18जून, 1858)। ह्यूरोज ने स्वयं इस वीरांगना की प्रशंसा की है। स्वतन्त्रता की इस वीर पुजारिन का नाम भारतीय इतिहास में सदैव अमर रहेगा। नानासाहब और अजीमुल्ला के विषय में आज तक किसी को कुछ पता नहीं है।

देशभक्त तात्याटोपे को उसके एक विश्वासपात्र मित्र ने विश्वासघात करके अलवर में पकड़वा दिया। उस पर अभियोग चलाकर 18 अप्रैल, 1859 को उसको सिद्री में मृत्युदण्ड[1] दे दिया गया। इस प्रकार अंग्रेजों ने क्रान्ति का पूर्णतया दमन कर डाला।

क्रान्ति का स्वरूप

क्या 1857 का विद्रोह भारतीय स्वाधीनता का प्रथम संग्राम था?

1857 की भारतीय क्रान्ति के स्वरूप के सम्बन्ध में विद्वानों तथा इतिहासकारों में बड़ा मतभेद है। कुछ विद्वानों की यह धारणा है कि यह क्रान्ति न होकर केवल सैनिक विद्रोह था। किन्तु कुछ आधुनिक भारतीय इतिहासकारों ने जिनमें पण्डित जवाहरलाल नेहरू, वीर सावरकर, अशोक मेहता तथा वृन्दावनलाल वर्मा के नाम उल्लेखनीय हैं, 1857 के विप्लव को 'स्वाधीनता संग्राम' की संज्ञा प्रदान की है। कुछ अंग्रेज इतिहासकारों ने भी 1857 के विप्लव को स्वाधीनता संग्राम कहा है। यहाँ हम विपक्ष एवं पक्ष में दी जाने वाली विद्वानों की सम्मतियों का उल्लेख कर रहे हैं :

विपक्ष में दी जाने वाली विद्वानों की सम्मतियाँ इस प्रकार हैं :

सर जॉन सीले के शब्दों में, "1857 की क्रान्ति पूर्णरूपेण अराष्ट्रीय एवं स्वार्थी सैनिकों का विद्रोह मात्र थी जिसको न तो जनता का सक्रिय सहयोग था और न किसी देशी सत्ता का नेतृत्व।"

सर जॉन लारेन्स के अनुसार, "यह केवल एक सैनिक विद्रोह था जिसका तत्कालीन कारण कारतूस वाली घटना थी। इसका कोई सम्बन्ध पूर्वगामी षड्यन्त्र से नहीं था। यद्यपि बाद में कुछ असन्तुष्ट व्यक्तियों ने अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए इससे लाभ उठाया।"

सर जेम्स आउटरम के अनुसार, "यह अंग्रेजों के विरुद्ध मुसलमानों का षड्यन्त्र था जो हिन्दूओं की शिकायतों के बल पर लाभ उठाना चाहते थे, कारतूस वाली घटना ने केवल विद्रोह को समय से पूर्व भड़का दिया, जबकि अभी यह भली-भाँति संगठित नहीं हुआ था और उसे लोकप्रिय राज-विद्रोह का रूप देने के लिए पर्याप्त प्रबन्ध भी नहीं किये थे।"

श्री आउटरम का यह कथन तो सर्वथा निराधार है क्योंकि क्रांति में हिन्दुओं ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी।

पक्ष में दी जाने वाली विद्वानों की सम्मतियाँ इस प्रकार हैं :

इतिहासकार सुन्दरलाल के शब्दों में, "1857 की क्रान्ति वास्तव में भारत के हिन्दू और मुसलमान नरेशों और भारतीय जनता दोनों की ओर से देश को विदेशियों की राजनीतिक अधीनता से मुक्त कराने की एक जबरदस्त और व्यापक कोशिश थी।"

जस्टिस मैकार्थी के शब्दों में, "वह युद्ध एक राष्ट्रीय और धार्मिक युद्ध था।"

अवध की ग्रामीण जनता के वीर पराक्रम को देखकर इतिहास-लेखक इन्स ने लिखा है,

---

1. तात्याटोपे की मृत्यु के सम्बन्ध में संदेह है, क्योंकि 1862 के जुलाई मास में अंग्रेजी शासन ने नानासाहब और उनके 13 साथियों को पकड़ने के लिए उनके संकेत चिह्न और अन्य विवरण प्रकाशित किये थे। उसमें तात्याटोपे का नाम भी इस रूप में अंकित था। तात्याटोपे (कैप्टन) आयु 42 वर्ष, इसमें तात्याटोपे का नाम कैसे आया, यह रहस्य है क्योंकि ब्रिटिश सरकार द्वारा उसे 18 अप्रैल, 1859 में सिद्री में फाँसी दे दी गई थी। इसी प्रकार तात्याटोपे की मृत्यु के सम्बन्ध में मध्य प्रदेश के गुना जिले के फतेहगढ़ थाने के अन्तर्गत ग्राम पड़ौन के तत्कालीन राजा मान सिंह के वंशज एवं पूर्व राजा गंगा सिंह का उपलब्ध ऐतिहासिक दस्तावेजों के आधार पर कहना है कि तात्या टोपे की मृत्यु फाँसी से नहीं, बल्कि फांसी की कथित घटना के 53 वर्ष बाद (80 वर्ष की आयु में) 1912 में हुई थी। अंग्रेजों ने जिस व्यक्ति को तात्याटोपे समझ कर फांसी दी थी, वह तात्याटोपे नहीं, बल्कि ग्वालियर निवासी जनकगंज विद्यालय के तत्कालीन अध्यापक रघुनाथ भागवत थे।

"कम से कम अवध निवासियों के संग्राम को हमें स्वाधीनता का युद्ध मानना पड़ेगा।"

लन्दन टाइम्स का विशेष प्रतिनिधि सर विलियम हरवर्ड रसेल जो 1857 की क्रान्ति के समय भारत में मौजूद था, उसके विषय में लिखता है, "वह एक ऐसा युद्ध था जिसमें लोग धर्म के नाम पर, अपनी जाति के नाम पर बदला लेने के लिए और अपनी आशाओं को पूरा करने के लिए उठे थे। उस युद्ध में सम्पूर्ण राष्ट्र ने अपने ऊपर से विदेशियों के जुएँ को फेंक कर उसकी जगह देशी नरेशों की पूरी सत्ता और देशी धर्मों का पूरा अधिकार फिर से कायम करने का संकल्प कर लिया था।"

पण्डित नेहरू ने 'भारत की खोज' में लिखा है, "यह केवल सैनिक विद्रोह नहीं था। वह भारत में शीघ्र ही फैल गया तथा इसने जन-विद्रोह और भारतीय स्वाधीनता के संग्राम का रूप धारण किया।"

इतिहासकार वीर सावरकर और अशोक मेहता ने इसको 'भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम' की संज्ञा प्रदान की है।

पक्ष में दी जाने वाली इतिहासकारों की सम्मतियों से हम पूर्णतया सहमत हैं कि 1857 का विप्लव प्रथम भारतीय स्वाधीनता संग्राम था। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित और बातें प्रमाणस्वरूप कही जा सकती हैं :

(1) यह क्रान्ति एक निश्चित सिद्धान्त के आधार पर की गई थी। इसका प्रमुख उद्देश्य अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालना था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारतीय सेना में लाल कमल का फूल घुमा कर क्रान्ति का सन्देश दिया गया था कि हमको स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए रक्त बहाना होगा।

(2) क्रान्ति में हिन्दू और मुसलमान दोनों ने ही मिलकर कार्य किया था। इसमें साम्प्रदायिकता को कोई स्थान नहीं दिया गया था।

(3) मुगल सम्राट बहादुरशाह द्वारा राजपूत राजाओं के नाम लिखित पत्र भारतीय स्वाधीनता संग्राम और अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालने की बात की पुष्टि करता है। उसने लिखा था, "मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि किसी भी प्रकार अंग्रेजों को भारत से बाहर निकाल दिया जाय तथा भारत को उनसे स्वतन्त्र किया जाय। मेरी इच्छा भारत पर शासन करने की नहीं है। अगर आप सभी देशी राजा दुश्मन को देश से बाहर निकालने के लिए लोहा लें, तो मैं अपनी शाही शक्ति और अधिकार देशी नरेशों के किसी संघ के हाथ सुपुर्द कर देने को तैयार हूँ।"

(4) क्रान्ति के प्रारंभ में दिल्ली के स्वाधीन होते ही सम्राट बहादुरशाह की ओर से एक घोषणा प्रकाशित हुई थी जिसमें उसने स्वाधीनता प्राप्ति के लिए भारतवासियों से अपील की थी। उसने कहा था, "हिन्दुस्तान के निवासियो! अगर हम निश्चय कर लें तो बात ही बात में दुश्मन (अंग्रेज) का अन्त कर सकते हैं। हम दुश्मन का नाश कर डालेंगे और अपने धर्म तथा देश को जो हमें प्राणों से भी अधिक प्रिय है, खतरे से बचा लेंगे। अंग्रेज हिन्दुओं और मुसलमानों में परस्पर फूट डालने का प्रयास करेंगे। अतः उनके जाल में न फँसो। अपने आन्तरिक मतभेदों को भूलकर इस समय एक झण्डे के नीचे इकट्ठे हो जाओ। जो इस राष्ट्रीय संग्राम का विरोध करेगा उसको आत्म-हत्या का पाप लगेगा।"

क्रान्ति के परिणाम– 1857 की क्रान्ति के महत्वपूर्ण परिणाम निम्नलिखित थे :

(1) क्रान्ति के बाद एक नये युग का प्रारम्भ हुआ। 1858 में 'गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट' पारित हुआ जिसके अनुसार कम्पनी के शासन का अन्त कर दिया गया और भारत का शासन सीधे इंग्लैण्ड के अधीन आ गया।

(2) देशी रियासतों के प्रति अंग्रेजों की नीति में परिवर्तन हुआ। उन्होंने भारतीय नरेशों के साथ मैत्री-सम्बन्ध करना प्रारंभ कर दिया। 1858 में महारानी विक्टोरिया के घोषणा-पत्र के

अनुसार देशी नरेशों को गोद लेने के अधिकार को दिये जाने का आश्वासन दिया गया और रियासतों को भविष्य में न मिलाने की घोषणा की गई।

(3) इस क्रान्ति के कारण अंग्रेजों और भारतीय जनता के बीच की खाई और चौड़ी हो गई। दोनों एक दूसरे को घृणा की दृष्टि से देखने लगे।

(4) इस क्रान्ति का सबसे बड़ा परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओं और मुसलमानों के सम्बन्ध उत्तरोतर बिगड़ने प्रारम्भ हो गये।

(5) इस क्रान्ति के बाद भारतीय सेना को फिर से संगठित किया गया जिसमें भारतीयों की संख्या घटा दी गई और अंग्रेज सैनिकों की संख्या बढ़ा दी गई। तोपखाना अंग्रेज सैनिकों के अधिकार में रखा गया और उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर केवल अंग्रेजों की नियुक्ति की गई।

(6) अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अंग्रेजों की प्रतिष्ठा बढ़ गई और अंग्रेजों की सैन्य-क्षमता ने सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया।

(7) भयंकर दमन के कारण भारतीयों के स्वतन्त्र विचारों को गहरा आघात लगा जिसके परिणामस्वरूप वे एक शताब्दी तक भारत को स्वतन्त्र कराने में सफल न हो सके।

(8) इस क्रान्ति से अंग्रेजों को एक गम्भीर चेतावनी मिल गई। अंग्रेज इतिहासकार फॉरेस्ट लिखता है, "1857 की क्रान्ति हमें इस बात की याद दिलाती है कि हमारा साम्राज्य एक पतले छिलके के ऊपर कायम है जिसके किसी भी समय सामाजिक परिवर्तनों और धार्मिक क्रान्ति की प्रचण्ड ज्वालाओं द्वारा टुकड़े-टुकड़े हो जाने की संभावना है।"

क्रान्ति की असफलता के कारण– 1857 की क्रान्ति की असफलता के निम्नलिखित कारण थे :

(1) समय से पूर्व क्रान्ति का प्रारम्भ– क्रान्ति के प्रारम्भ करने की तिथि 31 मई निश्चित की गई थी, परन्तु आवेश में आकर सैनिकों ने 10 मई को ही प्रारंभ किया। इस प्रकार निर्धारित समय से पूर्व क्रान्ति प्रारम्भ हो जाने पर क्रान्तिकारियों को बहुत हानि उठानी पड़ी।

(2) क्रान्ति का सीमित क्षेत्र– इस क्रान्ति का क्षेत्र सर्वव्यापी न होकर सीमित था। यह क्रान्ति दिल्ली से लेकर कलकत्ता तक सीमित रही। पंजाब, राजस्थान, सिन्ध तथा पूर्वी बंगाल में अंग्रेजी सत्ता का अन्त करने के लिए तनिक भी प्रयत्न नहीं किया गया, बल्कि पंजाब, राजपूताना, ग्वालियर, इन्दौर आदि के नरेशों ने अंग्रेजों की सहायता की। इस प्रकार क्रान्ति का क्षेत्र सीमित होने के कारण अंग्रेजों की विजय हुई और क्रान्ति असफल रही। सर डब्ल्यू. रसेल ने ठीक ही लिखा है, "यदि सारे देशवासी, सर्वतोभाव से अंग्रेजों के विरुद्ध हो गये होते, तो अपने साहस के रहते भी अंग्रेज पूर्णतया नष्ट कर दिये गये होते।"

(3) संगठन का अभाव– क्रान्तिकारी नेताओं में संगठन का सर्वथा अभाव था। प्रत्येक की नीति अलग-अलग थी और प्रत्येक के समर्थक अपने ही नेता के अन्तर्गत काम करना चाहते थे। डॉ. ईश्वरी प्रसाद ने ठीक ही लिखा है, "यदि शिवाजी या बाबर जैसा नेता होता तो वह अपने चुम्बकीय व्यक्तित्व से क्रान्ति के विभिन्न वर्गों को एक कर लेता, परन्तु ऐसे नेता के अभाव में

क्रान्ति की असफलता के कारण

1. समय से पूर्व क्रांति का प्रारम्भ
2. क्रान्ति का सीमित क्षेत्र
3. संगठन का अभाव
4. एक लक्ष्य का अभाव
5. कुछ भारतीयों की अंग्रेजों के प्रति स्वामिभक्ति
6. सफल नेतृत्व का अभाव
7. साधनों का अभाव
8. अंग्रेजों के पास पर्याप्त साधन
9. रचनात्मक कार्यक्रमों का अभाव
10. अंग्रेजों के वीभत्स और क्रूर अत्याचार

विभिन्न लोगों के व्यक्तिगत ईर्ष्या-द्वेष सामूहिक कार्य के बीच आते रहे।"

(4) एक लक्ष्य का अभाव– क्रान्तिकारियों का कोई एक लक्ष्य न था। वे भिन्न-भिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लड़ रहे थे। नानासाहब पेंशन चाहते थे, लक्ष्मीबाई गोद लेने का अधिकार चाहती थी, बहादुरशाह अपनी बादशाहत चाहता था।

(5) कुछ भारतीयों की अंग्रेजों के प्रति स्वामिभक्ति– क्रान्ति की विफलता का एक प्रमुख कारण यह था कि कुछ भारतीय नरेशों ने अंग्रेजों ने प्रति स्वामिभक्ति प्रदर्शित की। उन्होंने क्रान्तिकारियों का साथ नहीं दिया। पटियाला, जींद, ग्वालियर, हैदराबाद आदि के नरेशों ने अंग्रेजों का साथ दिया और क्रान्ति का दमन कराने में सहायता की। गोरखों और पंजाब के सिक्खों ने भी क्रान्ति का दमन करने में अंग्रेजों का साथ दिया।

(6) सफल नेतृत्व का अभाव– क्रान्ति के नेताओं में कोई कुशल तथा अनुभवी नेता नहीं था। बहादुरशाह तथा कुँवरसिंह वृद्ध थे। सूबेदार बख्त खाँ तथा तात्याटोपे वीर होते हुए भी साधारण कोटि के व्यक्ति थे। रानी लक्ष्मीबाई वीरांगना होते हुए भी स्त्री थीं। नानासाहब में रणनीतिज्ञता का अभाव था। इसका परिणाम यह हुआ कि क्रान्ति की विभिन्न शक्तियों का यथेष्ट समीकरण न हो सका। इसके विपरीत अंग्रेजों की ओर नील, हैवलॉक, रोज आदि कुशल सेनापति एवं कुशल राजनीतिज्ञ थे।

(7) साधनों का अभाव– क्रान्तिकारियों के पास साधनों का अभाव था। उनके पास धन तथा आधुनिक ढंग से अस्त्र-शस्त्र की कमी थी। इस कारण वे अंग्रेजों का ठीक प्रकार से प्रतिरोध नहीं कर पाये और अन्त में उनको परास्त होना पड़ा।

(8) अंग्रेजों के पास पर्याप्त साधन– अंग्रेजों को इंगलैण्ड से सैनिक और युद्ध सामग्री बराबर मिलती रही। यातायात के साधनों– रेल, तार आदि पर भी उनका अधिकार था। अतः वे सरलापूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान पर शीघ्रता से आ-जा सकते थे तथा संदेश भेज सकते थे। परन्तु क्रान्तिकारियों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने में तथा संदेश भेजने में पर्याप्त समय लगता था।

(9) रचनात्मक कार्यक्रमों का अभाव– क्रान्तिकारियों ने जनता के समक्ष कोई रचनात्मक कार्यक्रम नहीं रखा। इतिहासकार विनायक दामोदर सावरकर ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास" में लिखा है, "यदि लोगों के सम्मुख सुस्पष्ट रूप से एक नया आदर्श रखा गया होता जो इतना मोहक होता कि उनके हृदयों को आकृष्ट कर सकता तो क्रान्ति का विकास और अन्त भी उतना ही महान् और सफलतापूर्वक होता जितना कि उसका आरम्भ। जहाँ तक विध्वंसात्मक पक्ष का सम्बन्ध है, विद्रोह को सफल तरीके से चलाया गया। किन्तु जहाँ सृजन का समय उपस्थित हुआ तो उदासीनता, पारस्परिक भय एवं अविश्वास का उदय हो गया।"

(10) अंग्रेजों के वीभत्स और क्रूर अत्याचार– अंग्रेजों के वीभत्स और क्रूर अत्याचार भी क्रान्ति की असफलता के कारण बने। उनके वीभत्स एवं क्रूर अत्याचारों से भारतीय जनता इतनी अधिक भय-ग्रसित हो गई कि उसका मनोबल गिर गया और वह क्रान्तिकारियों को समुचित सहयोग नहीं दे सकी। अंग्रेजों द्वारा किये गये कुछ वीभत्स अत्याचारों का उल्लेख किये बिना इस अन्तिम कारण का स्पष्टीकरण अधूरा रहेगा।

अकेले इलाहाबाद के इलाके में नील नामक अंग्रेज सेनापति ने इतने भारतवासियों का वध किया जितने अंग्रेज पुरुष, स्त्रियों और बच्चों का समस्त भारत के अन्दर भी क्रान्तिकारियों ने नहीं किया। इलाहाबाद में हुए नर-संहार के विषय में इतिहास लेखक होम्स दुःख के साथ लिखता है, "बूढ़े आदमियों ने हमें कोई नुकसान नहीं पहुँचाया था, असहाय स्त्रियों से जिनकी गोद में दूध पीते बच्चे थे, हमने (अंग्रेजों ने) उसी प्रकार बदला लिया, जिस प्रकार बुरे अपराधियों से।" सर जार्ज कैम्पवेल लिखता है, "और मैं जानता हूँ कि इलाहाबाद में बिल्कुल बिना किसी तमीज के

कत्लेआम किया गया था . . . . . . और इसके बाद नील ने वे काम किये जो कत्लेआम से भी भयंकर मालूम होते थे। उसने लोगों को जानबूझ कर इस तरह की यातनाएँ देकर मारा, जिस तरह की यातनाएँ जहाँ तक हमें प्रमाण मिलते हैं, भारतवासियों ने कभी किसी को नहीं दीं।"

एक अंग्रेज अफसर, जो लोगों को तोप से उड़ाये जाने के समय मौजूद था उस दृश्य का वर्णन करते हुए लिखता है, "उस दिन की परेड का दृश्य विचित्र था। परेड पर लगभग नौ हजार सिपाही थे . . . . एक चौरस मैदान के तीन ओर फौज खड़ी कर दी गई और चौथी ओर से तोपें थीं। . . . . पहले दस कैदी तोपों के मुँह से बाँध दिये गये, इसके बाद तोपखाने के अफसर ने तलवार हिलाई, तुरन्त तोपों की गरज सुनाई दी और धुँए के ऊपर हाथ, पैर और सिर हवा में चारों ओर उड़ते हुए दिखाई देने लगे। यह दृश्य चार बार दोहराया गया।"

इतिहास लेखक जॉन लिखता है, "यद्यपि मेरे पास बहुत से पत्र मौजूद हैं, जिनमें यह वर्णन किया गया है कि अफसरों ने किस तरह की वीभत्स और क्रूर यातनाएँ लोगों को पहुँचाईं, फिर भी मैंने उनके सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं लिखता ताकि यह विषय ही अब संसार के सामने न रहे।"

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ (Important Dates & Events)

1. 1857 ई.– प्रथम स्वाधीनता संग्राम।
2. 1858 ई.– जगदीशपुर के जमींदार कुँवर सिंह की मृत्यु।
3. 1859 ई.– देशभक्त तात्याटोपे को मृत्युदण्ड।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. 1857 की क्रान्ति के क्या कारण थे? उसके परिणामों का उल्लेख कीजिए। (1963)
2. 1857 के विप्लव के क्या कारण थे? क्या हम उसे स्वाधीनता संग्राम का प्रथम युद्ध कह सकते हैं? (1971)
3. 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के क्या कारण थे? इसमें क्यों विफलता हुई है? (1974)
4. 1857 के स्वतंन्त्रता संग्राम के कारणों का विवेचन कीजिए। (1984)
5. 1857 की क्रान्ति को क्या प्रथम स्वतन्त्रता संघर्ष कहा जा सकता है? (1986)
6. 1857 के विद्रोह के असफल होने के कारणों की समीक्षा कीजिए। (1994)
7. 1857 के विद्रोह के कारणों की विवेचना कीजिए। (2000)
8. 1857 का भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन क्यों असफल रहा? (2001)
9. क्या 1857 का विप्लव भारत को अंग्रेजी आधिपत्य से विमुक्त करने का सच्चा प्रयास था? इस विप्लव के क्या परिणाम हुए? (2003)
10. भारत के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के कारणों की विवेचना कीजिए। (2006)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "1857 का विप्लव भारतीय स्वाधीनता का प्रथम संग्राम"–इस कथन के प्रकाश में क्रान्ति के स्वरूप की समीक्षा कीजिए।
2. "1857 ने भारत का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम देखा था।" समीक्षा कीजिए। (1991)
3. "1857 की क्रान्ति भारत का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम था।" इस क्रान्ति के कारणों एवं परिणामों की व्याख्या कीजिए। (1997)
4. "1857 में लड़ा गया भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम मात्र सिपाही विद्रोह नहीं था।" क्या

आप इससे सहमत हैं? तर्क दीजिए। (2004)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. 1857 की क्रान्ति के राजनीतिक कारण क्या थे ?
2. 1857 की क्रान्ति के धार्मिक कारण क्या थे ?
3. 1857 की क्रान्ति के सैनिक कारण क्या थे ?
4. 1857 की क्रान्ति की असफलता के चार कारणों का उल्लेख कीजिए।
5. 1857 की क्रान्ति के परिणाम क्या हुए ?
6. 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में नाना साहब के योगदान की विवेचना कीजिए।
7. 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में रानी लक्ष्मीबाई के योगदान की समीक्षा कीजिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 1857 की क्रान्ति की शुरुआत कहाँ से हुई थी?
1857 की क्रान्ति की शुरुआत बैरकपुर छावनी (बंगाल) से हुई थी।

2. 1857 की क्रान्ति कब आरम्भ हुई थी?
1857 की क्रान्ति 10 मई, 1857 को आरम्भ हुई थी।

3. बुन्देलखण्ड में क्रान्ति का नेतृत्व किसने किया था?
बुन्देलखण्ड में क्रान्ति का नेतृत्व रानी लक्ष्मीबाई ने किया था।

4. 1857 की क्रान्ति के समय भारत का सम्राट कौन था?
1857 की क्रान्ति के समय भारत का सम्राट बहादुरशाह द्वितीय 'जफर' था।

5. 1857 की क्रान्ति के समय भारत का गवर्नर जनरल कौन था?
1857 की क्रान्ति के समय भारत का गवर्नर जनरल लार्ड कैनिंग था।

6. 1857 की क्रान्ति के दो प्रमुख नायकों के नाम बताइए।
(1) रानी लक्ष्मीबाई, तथा (2) नाना साहब या (1) तात्याटोपे, तथा (2) कुँवर सिंह।

7. 1857 की क्रान्ति में किस मुस्लिम महिला शासिका ने भाग लिया था?
1857 की क्रान्ति में बेगम हजरत महल ने भाग लिया था।

8. 1857 की क्रान्ति की असफलता के दो कारण लिखिए।
(1) समय से पूर्व क्रान्ति का आरम्भ होना, तथा (2) साधनों का अभाव।

9. 1857 की क्रान्ति के दो महत्वपूर्ण परिणाम बताइए।
(1) 1858 का भारतीय अधिनियम पारित हुआ, तथा
(2) भारतीय सेना का पुनगर्ठन किया गया।

10. मंगल पाण्डेय कौन था?
मंगल पाण्डेय एक ब्राह्मण सैनिक था जिसने बैरकपुर छावनी से क्रान्ति का झण्डा खड़ा किया।

11. 'सन् 1857 का विद्रोह भारतीय स्वतंत्रता का प्रथम संग्राम था।' इस कथन के पक्ष में विचार व्यक्त करने वाले किन्हीं दो इतिहासकारों के नाम लिखिए।
(1) सुन्दरलाल (2) इन्स
अथवा
(1) वीर सावरकर (2) अशोक मेहता

बहुविकल्पीय प्रश्न

निर्देश : नीचे दिये गये प्रत्येक प्रश्न के चार विकल्पों में से सही विकल्प छाँटकर लिखिए :

1. 1857 की क्रान्ति में सर्वप्रथम कौन शहीद हुआ था?
   (क) तात्याटोपे, (ख) कुँवर सिंह, (ग) मंगल पाण्डेय, (घ) नाना फड़नवीस।
2. 1857 की क्रान्ति का राष्ट्रीय नेता कौन था?
   (क) तात्याटोपे, (ख) कुँवर सिंह, (ग) मंगल पाण्डेय, (घ) कोई राष्ट्रीय नेता नहीं।
3. रानी लक्ष्मीबाई वीरगति को कब प्राप्त हुई?
   (क) 1857 ई., (ख) 1858 ई., (ग) 1859 ई., (घ) 1860 ई.।
4. निम्नलिखित में से कौन-सा 1857 की क्रान्ति की असफलता का कारण नहीं है?
   (क) क्रान्ति का सीमित क्षेत्र, (ख) समय से क्रान्ति का आरम्भ
   (ग) संगठन का अभाव, (घ) एक लक्ष्य का अभाव।
5. तात्याटोपे को मृत्युदण्ड कब दिया गया?
   (क) 1857 ई. (ख) 1858 ई. (ग) 1859 ई. (घ) 1860 ई.
6. क्रान्ति का नेतृत्व करने वाले कुँवर सिंह की मृत्यु कब हुई?
   (क) 1858 ई. (ख) 1859 ई. (ग) 1962 ई. (घ) 1963 ई.

■

24

धर्म तथा समाज-सुधार आन्दोलन

'मेरे धर्म की शक्ति का सार शक्ति है। वह धर्म जो मेरे हृदय में शक्ति का संचार नहीं करता, वह मेरे लिए धर्म नहीं, चाहे वह उपनिषदों, गीता अथवा भागवत का ही क्यों न धर्म हो। शक्ति धर्म से भी बढ़कर है। शक्ति से महान् अन्य कोई वस्तु नहीं है।' –स्वामी विवेकानन्द

विश्व इतिहास में 19वीं शती अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस शती ने भारत में ऐसी अनेक महान् आत्माओं को जन्माया जिनके आदर्श जीवन और अनवरत प्रयासों के कारण भारत अपनी खोई हुई आत्मा को पुनः प्राप्त कर सका। आधुनिक भारत की नींव इस काल में रखी गयी। यद्यपि इस युग में भारत राजनीतिक दृष्टि से पराधीन था, किन्तु अनेक सामाजिक, धार्मिक, आन्दोलनों के परिणामस्वरूप धार्मिक, सामाजिक, बौद्धिक क्षेत्रों में एक नवीन जागरण की लहर स्पष्ट दिखाई पड़ती है। आधुनिक युग में अंग्रेजी शासकों और मिशनरियों ने भारतीय जीवन-पद्धति को पुनः चुनौती दी तो राजा राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द, एनीबेसेन्ट आदि का प्रादुर्भाव हुआ और भारत-भूमि शक्ति पुंज बन गई। यही था 19वीं शताब्दी का भारतीय धार्मिक और सामाजिक सुधार आन्दोलन।

ब्रह्म-समाज (राजा राममोहन राय)

धार्मिक तथा सामाजिक सुधार आन्दोलन में सबसे पहला स्थान ब्रह्म-समाज का था जिसकी स्थापना राजा राममोहन राय ने की थी। इनका जन्म 22 मई, 1772 को बंगाल के हुगली जिले में राधा नगर नामक ग्राम में एक कुलीन ब्राह्मण के घर हुआ था। इनके पिता रमाकान्त राय तथा माता तारणी देवी वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी थे। वह बारह वर्ष की अवस्था में विद्याध्ययन के लिए पटना गये, जहाँ पर उन्होंने अरबी और फारसी भाषा का अध्ययन किया। फारसी में सूफी कवियों की, विशेषकर हाफिज तथा मौलाना रूमी की कविताओं ने इन्हें बहुत प्रभावित किया। इसके पश्चात् वे संस्कृत के अध्ययन के लिए काशी गये जहाँ पर उन्होंने पुराण, स्मृति एवं उपनिषदों का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। बौद्ध धर्म का तात्विक ज्ञान प्राप्त करने के लिए वे तिब्बत भी गये।

1803 में उन्होंने अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् फारसी में एक पुस्तक लिखी, जिसमें उन्होंने मूर्ति-पूजा का खण्डन किया और एकेश्वरवाद की प्रशंसा की। कुछ समय पश्चात् उन्होंने ईस्ट इण्डिया कम्पनी में नौकरी कर ली। अपनी इस नौकरी काल में उन्होंने अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। इस प्रकार आपको अरबी, फारसी, संस्कृत और अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान प्राप्त हो गया।

राजा राममोहन राय प्रारम्भ से ही स्वतन्त्र विचारों के पोषक थे। वे प्रत्येक सामाजिक तथा धार्मिक विचार को अपनी तर्क की कसौटी पर कसकर ही स्वीकार करते थे। इस विचार-स्वातन्त्र्य के कारण, माता, यहाँ तक कि उनकी पत्नी ने भी, जिनसे बढ़कर और कोई उनका स्नेह-भाजन न हो सकता था, उनके साथ रहने से इन्कार कर दिया। समाज का धर्मभीरु वर्ग उन्हें 'नास्तिक' कहा करता था।

राजा राममोहन राय के कार्य

धार्मिक क्षेत्र में कार्य- 1814 में कम्पनी की नौकरी से त्याग-पत्र देकर वे कलकत्ता आ बसे। भारतीय धर्म और समाज में प्रचलित अन्धविश्वास, कर्मकाण्डों और ऊँच-नीच आदि कुरीतियों ने आपको बहुत व्यथित कर दिया। फलतः 1815 में उन्होंने अपने निवास-स्थान पर एक 'आत्मीय सभा' स्थापित की। इसकी बैठक सप्ताह में एक बार होती थी। इस सभा में वेद-पाठ तथा ब्रह्म संगीत होता था। यह सभा चार वर्ष तक कार्य करती रही। 1819 में उन्होंने वेदान्त सूत्रों का सार बंगला और अंग्रेजी में प्रकाशित कराया। अगले वर्ष उन्होंने बाइबिल के आधार 'शान्ति व आनन्द की पथ-प्रदर्शक ईसा की शिक्षाएँ' नामक पुस्तक प्रकाशित की जिसके कारण उन्हें तत्कालीन ईसाई पादरियों का कोपभाजन बनना पड़ा। घर का तिरस्कार, सामाजिक निन्दा और पादरियों का विरोध उनको अपने पथ से विचलित न कर सका। 20 अगस्त, 1828 को उन्होंने ब्रह्म-सभा की स्थापना की, जिसने आगे चलकर 'ब्रह्म-समाज' का रूप धारण कर लिया। बंगाल में इस समाज की धूम मच गई। इस सम्बन्ध में प्रशंसा करते हुए सुभाष चन्द्र बोस ने लिखा है, 'राजा राममोहन राय धार्मिक, पुनरुत्थान के अग्रदूत थे। वे वेदान्तवाद के मौलिक सिद्धान्तों की ओर बढ़ना चाहते थे और हिन्दू-धर्म में प्रवृत्त सभी धार्मिक अशुद्धियों का निराकरण करना चाहते थे।'

ब्रह्म-समाज के सिद्धान्त

ब्रह्म-समाज के निम्नलिखित सिद्धान्त हैः-

(1) ब्रह्म-समाज के अनुयायी एकेश्वरवादी होते हैं। उनकी दृष्टि में ईश्वर सम्पूर्ण सद्गुणों का केन्द्र और भंडार है।
(2) ईश्वर सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी, अजन्मा, सृष्टिकर्ता तथा सृष्टि का रक्षक है।
(3) ब्रह्म-समाजी प्रार्थना में विश्वास करते हैं। उनकी दृष्टि में प्रेम और सच्चे मन से की गई प्रार्थना को ईश्वर अवश्य सुनता है।
(4) ब्रह्म-समाजी मूर्ति पूजा के विरोधी हैं। उनकी दृष्टि में सभी वर्ग के मनुष्य परमात्मा की आराधना कर सकते हैं तथा उनके लिए किसी मन्दिर आदि की आवश्यकता नहीं है।
(5) ब्रह्म-समाजी आत्मा की अमरता में विश्वास करते हैं तथा उनकी दृष्टि में सत्य ही धर्म है।
(6) ब्रह्म-समाजी कर्म-फल में विश्वास करते हैं तथा उनकी दृष्टि में कार्य का फल अवश्य भोगना पड़ता है।
(7) ब्रह्म-समाजी किसी ग्रन्थ को दैवी कृति नहीं मानते। उनकी दृष्टि में सभी ग्रन्थ त्रुटिपूर्ण हैं।
(8) ब्रह्म-समाजियों की दृष्टि में पाप का त्याग ही मोक्ष का एकमात्र साधन है।
(9) ब्रह्म-समाजी मानसिक ज्योति तथा विशाल प्रकृति को परमात्मा के ज्ञान का साधन मानते हैं।
(10) ब्रह्म-समाजियों की दृष्टि में सभी धर्मों तथा उपदेशों की शिक्षाओं को ग्रहण करना चाहिए।

राजा राममोहन राय की मृत्यु (1833) के पश्चात् देवेन्द्र नाथ टैगोर, केशवचन्द्र सेन ने ब्रह्म-समाज का नेतृत्व किया और उसमें नवीन चेतना का संचार किया। 1866 में ब्रह्म-समाज दो दलों में विभक्त हो गया- आदि ब्रह्म-समाज तथा साधारण ब्रह्म-समाज। आदि ब्रह्म समाज के नेता देवेन्द्रनाथ टैगोर तथा साधारण ब्रह्म-समाज के नेता केशवचन्द्र सेन थे। बी0 मजूमदार के शब्दों में, 'देवेन्द्र का ब्रह्म-समाज कल्पना में समन्वयवादी होने पर भी वास्तविक रूप में विशुद्ध हिन्दू- समाज था।' केशवचन्द्र का ब्रह्म-समाज ईसाई मत के अधिक निकट था। जन-साधारण की सेवा के लिए उन्होंने रात्रि पाठशालायें, औद्योगिक

विद्यालय, कलकत्ता कालेज, भारतीय नारियों के लिए नार्मल स्कूल, नारी सहायता समिति, भारतीय समाज-सुधार समिति आदि संस्थाओं की स्थापना की थी।

सामाजिक क्षेत्र में कार्य- राजा राममोहन राय केवल एक धार्मिक सुधारक ही नहीं थे, बल्कि वे एक समाज सुधारक भी थे। उन्होंने उस समय फैली हुई समस्त सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध आवाज उठाई। उन्होंने यह प्रमाणित किया कि सती-प्रथा शास्त्र के विरुद्ध है और 1829 में उन्होंने इसे रोकने के लिए लार्ड विलियम बेंटिंक को सहयोग प्रदान किया। उन्होंने बाल-विवाह और बहु-विवाह के विरुद्ध भी आवाज उठाई। इसी प्रकार विधवा-विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, भारतीय एकता, हिन्दू-मुस्लिम एकता आदि के लिए जी-तोड़ कार्य किया। आप पहले व्यक्ति थे जिन्होंने स्त्रियों के पैतृक सम्पत्ति के अधिकार का समर्थन किया और स्त्री-शिक्षा को प्रोत्साहन प्रदान किया। इस प्रकार उनके **'बौद्धिक और सामाजिक विचारों ने उन्हें बंगाल में पुनर्जागरण का पथ-प्रदर्शक बना दिया।'**

शिक्षा के क्षेत्र में कार्य- शिक्षा के क्षेत्र में राजा राममोहन राय ने अकथनीय एवं प्रशंसनीय कार्य किया। वे हिन्दू शिक्षा को योरीपीय शिक्षा के वैज्ञानिक आदर्श पर संगठित करना चाहते थे। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने भूगोल, ज्योतिषशास्त्र, ज्यामिति और व्याकरण आदि विषयों पर बंगला में पाठ्यपुस्तकें लिखीं। आपने सन् 1819 में पाश्चात्य शिक्षा को अपना समर्थन प्रदान करने के लिए कलकत्ता में 'हिन्दू कॉलेज' की स्थापना की। इस कॉलेज की प्रबन्ध समिति के वे सदस्य बने। 1830 में जब ईसाई प्रचारक डफ भारत आये तो वे पहले राजा राममोहन राय से मिले। वे भारत में अंग्रेजी स्कूलों की स्थापना करना चाहते थे। उनकी बातों से राजा राममोहन राय बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने ब्रह्म-समाज वाला मकान स्कूल खोलने के लिए डफ महोदय को दे दिया। रवीन्द्रनाथ टैगोर के पिता देवेन्द्रनाथ टैगोर इसी स्कूल में विद्यार्थी थे। इस प्रकार राजा राममोहन राय ने आधुनिक भारत की आधार-शिला रखी।

राजनीतिक क्षेत्र में कार्य- राजनीतिक क्षेत्र में, देशवासियों के लिए स्वतन्त्रता की माँग करके राजा राममोहन राय ने अपने को एक देश-भक्त के रूप में प्रदर्शित किया। 1819 में उन्होंने **'संवाद-कौमुदी'** नामक एक बंगाली समाचार-पत्र की स्थापना की जो कि भारतीय समाचार-पत्रों का जनक है। उसके बाद ही उन्होंने एक फारसी पत्र और वैदिक विज्ञान के लिए **'वेद-मन्दिर'** नामक एक पत्र का संचालन प्रारम्भ किया। 1831 में जब वे इंग्लैण्ड गये तो ब्रिटिश मंत्रिमंडल द्वारा उनका भव्य-स्वागत किया गया। वहाँ उन्होंने कम्पनी सरकार के 'बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल' को एक माँग-पत्र दिया जिसमें उन्होंने भारतीय प्रशासन में निम्नलिखित सुधार की प्रार्थना की :

(1) भारत के शिक्षित व्यक्तियों को भी उच्च पदों पर नियुक्त किया जाय।
(2) भारतीयों को सैनिक शिक्षा देकर फौजी स्वयं-सेवक-दल में भर्ती किया जाय।
(3) न्याय तथा प्रशासन विभाग को पृथक् -पृथक् किया जाय।
(4) न्याय-विभाग में भारतीयों को भर्ती किया जाय।
(5) न्याय-विभाग में पंचायत पद्धति एवं जूरी पद्धति को अपनाया जाय।
(6) सदर दीवानी अदालत में बन्दी-प्रत्यक्षीकरण पत्र का अधिकार भारतीयों को प्रदान किया जाय।
(7) जमींदारों द्वारा लगान वसूल करने की दर कम की जाय।
(8) किसानों को मौरूसी हक दिया जाय।
(9) कानून का संहिताकरण (Codification) किया जाए।
(10) फारसी के स्थान पर अंग्रेजी को सरकारी भाषा घोषित किया जाय।

(11) आई0सी0एस0 में भर्ती की आयु 22 वर्ष रखी जाय।
(12) भारतीय नागरिकों को शिक्षा दी जाय।

इस प्रकार राजा राममोहन राय ने धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्रों में अकथनीय योगदान प्रदान किया। इसलिए उन्हें 'भारत का अग्रदूत' कहा जाता है। मैकनिकोल के शब्दों में, 'वे एक नूतन युग के प्रवर्तक थे और उन्होंने जो ज्योति जलायी वह आज तक अनवरत एवं निर्बाध रूप से जल रही है।' विपिनचन्द्र पाल के अनुसार, 'वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने भारत को राजनीतिक स्वतन्त्रता का सन्देश दिया।' एनी बेसेन्ट के शब्दों में, 'वे एक असाधारण लौहपुरुष तथा अविजित शक्ति के प्रतीक थे। उनकी वीरता ने अकेले ही हिन्दू कट्टरपन का मुकाबला किया और उन्होंने स्वतन्त्रता का बीजारोपण किया।'

प्रार्थना-समाज

ब्रह्म-समाज का सबसे अधिक प्रभाव महाराष्ट्र में पड़ा जिसके फलस्वरूप 1867 में केशवचन्द्र सेन के नेतृत्व में प्रार्थना-समाज की स्थापना हुई। इसके प्रमुख सदस्य- न्यायाधीश महादेव गोविन्द रानाडे, सर आर0जे0 भंडारकर तथा नारायण चन्द्रावरकर थे। प्रार्थना-समाज के पाँच उद्देश्य थे :

(1) अछूतोद्धार को प्रोत्साहन देना।
(2) जाति-प्रथा का बहिष्कार करना।
(3) विधवा-विवाह को प्रोत्साहन देना।
(4) स्त्री-शिक्षा को प्रोत्साहन देना।
(5) बाल-विवाह का विरोध करना।

इस सभा के प्रयास से रात्रि-पाठशालाएँ, अनेक अनाथालय तथा विधवाश्रम आदि की स्थापना हुई। जनता की शिक्षा के लिए अनेक पाठशालाओं की स्थापना की गई। प्रार्थना-समाज के प्रमुख कार्यकर्ताओं ने 'सुबोध-पत्रिका' नामक पत्र भी निकाला जिसके द्वारा उनके विचार सफलतापूर्वक शिक्षित जनता के मध्य प्रसारित हो सकें। इस सभा द्वारा शूद्र-वर्ग की दशा सुधारने का प्रयास किया गया। प्रार्थना- समाज की सफलता का अत्यधिक श्रेय महादेव गोविन्द रानाडे को है।

आर्य-समाज (स्वामी दयानन्द सरस्वती)

भारतीय पुनरुत्थान में योग देने वाला दूसरा धार्मिक सुधार आन्दोलन आर्य-समाज का था। इसके संस्थापक दयानन्द सरस्वती थे। आपका जन्म 1824 में काठियावाड़ (गुजरात) में मोरवी नगर में हुआ था। इनके पिता पं. अम्बाशंकर शिवजी के अनन्य भक्त थे। यही कारण था कि उन्होंने स्वामी जी का नाम मूलशंकर रखा। अम्बाशंकर, मूलशंकर (स्वामी दयानन्द) को अपने ही समान धर्म-निष्ठ और शंकर भक्त बनाना चाहते थे। 14 वर्ष की छोटी सी आयु में मूलशंकर ने संस्कृत-व्याकरण का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। वेदों के मन्त्र भी उन्हें कंठस्थ हो गये थे।

मूलशंकर को एक छोटी-सी घटना ने स्वामी दयानन्द बना दिया। शिवरात्रि-पर्व के अवसर पर रात्रि-जागरण के समय जबकि पिता और पुजारी खर्राटे भर

भारत के प्रमुख धार्मिक तथा सामाजिक सुधार-आन्दोलन

1. ब्रह्म-समाज
2. प्रार्थना-समाज
3. आर्य-समाज
4. रामकृष्ण मिशन
5. थियोसोफिकल सोसायटी
6. राधास्वामी सत्संग

रहे थे, मूलशंकर ने देखा कि शिव-लिंग पर चूहे कूद रहे हैं और उस पर चढ़े हुए प्रसाद को खा रहे हैं। इससे मूलशंकर के विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। पौराणिक धर्म तथा मूर्ति-पूजा से बालक का विश्वास हट गया।

आर्य-समाज की स्थापना– 20वर्ष की आयु में विवाह-बन्धन से बचने के लिए वे चुपचाप घर छोड़कर ज्ञान और सत्य की खोज में निकल पड़े और सद्गुरु की खोज में भ्रमण करने लगे। 1848 में दण्डी स्वामी परमानन्द से उन्होंने दीक्षा ली और उनका नाम दयानन्द सरस्वती पड़ा। इसके पश्चात् वे मथुरा में नेत्र-विहीन विरजानन्द का सन्देश लेकर वैदिक ज्ञान के सनातन सत्यों के प्रचार में लग गये।

स्वामी जी ने विभिन्न स्थानों पर भाषण, तर्क, शास्त्रार्थ और मौलिक युक्तियों से वैदिक ज्ञान को फैलाना आरम्भ किया। शीघ्र ही उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई। स्वामी जी कलकत्ता भी गये, जहाँ ब्रह्म-समाज के नेता देवेन्द्रनाथ ठाकुर तथा केशवचन्द्र सेन उनके विचारों से प्रभावित हुए। 1874 में उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथ की रचना की, जिसमें उन्होंने मूर्ति-पूजा, जाति-प्रथा तथा छुआ-छूत आदि के विरोध में अपने विचार व्यक्त किये। स्वामी जी प्रयाग से बम्बई पहुँचे, जहाँ पर उन्होंने 10 अप्रैल, 1875 को आर्य-समाज की स्थापना की। इसके पश्चात् अन्य स्थानों में भी इसकी स्थापना हुई। 1877 से 1883 तक स्वामी दयानन्द ने उत्तरी भारत, राजपूताना, गुजरात, उत्तर प्रदेश और सबसे अधिक प्रिय भूमि पंजाब में आर्य-समाज का एक जाल बिछा दिया। अपने पूर्ण यौवन में ही एक वेश्या द्वारा उनकी हत्या कर दी गई। एक महाराज की रखैल ने, जिसकी स्वामी जी ने कठोर भर्त्सना की थी, उन्हें विष दे दिया जिससे 30 अक्टूबर, 1883 को इस महारथी का देहावसान हो गया।

स्वामी दयानन्द के कार्य

धार्मिक क्षेत्र में कार्य–स्वामी जी ने 10 अप्रैल, 1875 में बम्बई में आर्य-समाज की स्थापना की। इसके पश्चात् इसकी शाखाएँ देश के कोने-कोने में फैल गईं। आर्य-समाज का आदर्श है, 'सत्यमेव जयते नानृतम्' अर्थात् 'सदैव सत्य की विजय होती है।' आर्य-समाज के नियमों में सत्य का पालन करना, वेदाध्ययन कर यज्ञ और हवन करना, सन्ध्या और ज्ञान संचय करना तथा समाज की सेवा करना आदि है।

आर्य-समाज के सिद्धान्त– आर्य-समाज के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं–

(1) ईश्वर एक है। वह सत्य तथा विद्या का मूल स्रोत है।

(2) ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्व-शक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, सर्वव्यापक, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है।

(3) वेद सत्य ज्ञान के ग्रन्थ हैं। उनका पठन-पाठन प्रत्येक आर्य का परम कर्तव्य है।

(4) प्रत्येक व्यक्ति को सत्य को ग्रहण करने और असत्य का त्याग करने के लिए सदा प्रस्तुत रहना चाहिए।

(5) प्रत्येक व्यक्ति को सत्य और असत्य का विचार करके कार्य करना चाहिए।

(6) समस्त समाज का प्रथम व मुख्य उद्देश्य मनुष्य जाति की शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक उन्नति द्वारा समस्त विश्व का कल्याण साधन करना है।

(7) पारस्परिक सम्बन्ध का आधार प्रेम, न्याय और धर्म होना चाहिए।

(8) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि होनी चाहिए।

(9) प्रत्येक व्यक्ति को अपनी भलाई से ही सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए, बल्कि सबकी भलाई में ही अपनी भलाई समझनी चाहिए।

(10) प्रत्येक व्यक्ति को व्यक्तिगत मामलों में आचरण की स्वतन्त्रता होनी चाहिए, परन्तु सर्व-हितकारी, नियम पालन में सर्वोपरि होना चाहिए।

आर्य समाज के द्वारा स्वामी जी ने हिन्दू समाज में फैली हुई मूर्ति पूजा का खण्डन किया। उन्होंने इस्लाम और ईसाई धर्म की भी कटु आलोचना की।

सामाजिक क्षेत्र में कार्य–स्वामी दयानन्द न केवल एक धार्मिक सुधारक ही थे बल्कि वे समाज सुधारक भी थे। उन्होंने परम्परागत जाति-व्यवस्था का विरोध किया तथा दलित जातियों के उद्धार के लिए सक्रिय प्रयास किया। उन्होंने तर्क देकर सिद्ध किया कि वेदों में कहीं छुआ-छूत का उल्लेख नहीं है। उन्होंने अनाथालय तथा विधवाश्रमों की स्थापना की। वे विधवाओं की दैन्य दशा देखकर बड़े दुखी थे। उन्होंने विधवा-विवाह को प्रोत्साहन दिया। उन्होंने बाल-विवाह, बहु-विवाह, अनमेल विवाह तथा दहेज-प्रथा आदि का घोर विरोध किया। वह चाहते थे कि विवाह के समय लड़कों की अवस्था 25 वर्ष और लड़कियों की अवस्था 16 वर्ष हो, साथ ही योग्य युवक साहस करके बिना दहेज के विवाह करें, भले ही उनको माता-पिता का विरोध करना पड़े।

शिक्षा के क्षेत्र में कार्य–शिक्षा के क्षेत्र में स्वामी दयानन्द ने अकथनीय एवं प्रशंसनीय कार्य किया। उनके द्वारा स्थापित आर्य-समाज ने अनेक शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना की। 1886 में लाहौर में दयानन्द एंग्लो वैदिक कालेज की स्थापना हुई, जहाँ संस्कृत, हिन्दी, फारसी और अंग्रेजी भाषाओं के साथ पूर्वी व पाश्चात्य दर्शन शास्त्र, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, विज्ञान, कला एवं शिल्प की शिक्षा दी जाती है। पंजाब व उत्तर प्रदेश में अनेक डी0 ए0 वी0 कालेज तथा स्कूल हैं, जहाँ विद्यार्थियों को आधुनिक शिक्षा प्रदान की जाती है। गुरुकुल कांगड़ी आर्य-समाज की प्रमुख संस्था है जहाँ विद्यार्थियों को सोलह वर्ष तक त्याग, ब्रह्मचर्य-संयम व अनुशासन का जीवन व्यतीत करने का व्रत लेना पड़ता है। इस विद्यालय का उद्देश्य नैतिक शक्ति द्वारा हिन्दू दर्शनशास्त्र व साहित्यिक संस्कृति को पुनर्जागृत करके आर्यों के चरित्र का निर्माण करना है। पंजाब में स्त्री-शिक्षा के लिए एक कालेज है जिसमें संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी इन तीन भाषाओं व अन्य मानसिक विकास करने वाले विषयों की शिक्षा के साथ स्त्रियोपयोगी विषयों और गृहस्थ अर्थनीति की शिक्षा प्रदान की जाती है।

राजनीतिक क्षेत्र में कार्य– आर्य समाज की स्थापना कर स्वामी दयानन्द ने अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रवाद को बढ़ावा दिया। इस संस्था में ब्रिटिश शासन के कुकृत्यों की खुलकर आलोचना की जाती थी। वे संभवतः पहले भारतीय थे जिन्होंने 'स्वदेशी' और 'भारत भारतीयों के लिए' का संदेश सुनाया। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में निर्भीकतापूर्वक लिखा है, 'विदेशी शासन की तुलना में जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि एवं उत्तम होता है।' भारत की प्राचीन संस्कृति के गौरवमय चित्र उपस्थित करके उन्होंने देशवासियों में विदेशी शासन के प्रति घृणा की भावना भर दी। उन्होंने स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग के लिए बड़ा जोर दिया तथा स्वयं स्वदेशी कपड़े का व्यवहार प्रारम्भ कर दिया। वे जोधपुर के महाराज से मिले और उनसे स्वदेशी कपड़ों के संरक्षण की बात कही। उन्होंने स्वामी जी की बात मानकर स्वदेशी कपड़ों का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार समस्त राज्य में स्वदेशी वस्तुओं का खूब प्रचार हुआ। स्वामी जी के राष्ट्रवादी विचारों की प्रशंसा करते हुए रोम्यॉ रोला ने लिखा है, 'स्वामी जी जनता के महान् उद्धारक थे। आर्य-समाज उस समय राष्ट्रीय पुनर्जागरण के महत्वपूर्ण कार्य में महत्वपूर्ण शक्ति थी। स्वामीजी ने राष्ट्रीय संगठन एवं पुनर्निर्माण के लिए एक महान् कार्य किया। उनके आर्य समाज ने 1905 के बंगाल के राष्ट्रवादी आन्दोलन के लिए मार्ग प्रशस्त किया। यद्यपि इसकी स्थापना इस लक्ष्य को लेकर

नहीं की गई थी।' एक अन्य लेखक ने कहा है, 'स्वामी दयानन्द पुनर्निर्माण तथा राष्ट्रीय चेतना के एक दूत थे।'

इस प्रकार स्वामी दयानन्द ने धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में अकथनीय योगदान प्रदान किया। इसलिए उन्हें भारत का 'राष्ट्रीय चेतना का दूत' कहा जाता है।

रामकृष्ण मिशन (रामकृष्ण परमहंस)

रामकृष्ण परमहंस भारत की महान् विभूतियों में एक थे। आपका जन्म 18 फरवरी, 1834 को बंगाल प्रांत के हुगली जिले में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनका बचपन का नाम गदाधर चटर्जी था। आगे चलकर यह रामकृष्ण परमहंस के नाम से विख्यात हुए। वे अपने भाई के साथ बेलूर के मन्दिर में काली देवी की पूजा करते थे। आपका सभी धर्मों की सत्यता में अटूट विश्वास था। उनका मानव जाति के लिए संदेश था कि 'भाई को प्रेम करने की बात मत कहो, उसे अमल में लाओ। मतवाद व धर्म को लेकर वाद-विवाद मत करो। सब धर्म एक ही हैं। सारी नदियाँ समुद्र की तरफ जाती हैं। तुम भी उसी तरफ बहो और दूसरों को भी बहने दो।'

स्वामी रामकृष्ण ने किसी व्यक्ति को कभी निराश नहीं किया। वे कहते थे–'यदि किसी एक व्यक्ति की सहायता के लिए मुझे बार-बार जन्म धारण करना पड़े और चाहे वह कुत्ते की योनि में ही क्यों न हो, तो मुझे पुनः पुनः जन्म लेने दो।... मैं केवल एक व्यक्ति की सहायता के लिए भी ऐसे बीसों हजार शरीर त्याग कर सकता हूँ। एक व्यक्ति की मदद कर सकना भी कितना गौरवास्पद है।

रामकृष्ण जी वाद-विवादों के सम्बन्ध में कहा करते थे– 'शून्य पात्र में जल भरते हुए भक-भक की आवाज होती है। परन्तु जब पात्र भर जाता है, तब कोई आवाज सुनाई नहीं देती। जिस मनुष्य ने भगवान को नहीं पाया है वह केवल भगवान की सत्ता और उसके प्रयोजन को लेकर निरर्थक तर्क करता है। परन्तु जिसने पा लिया है वह मौन रहकर दिव्य आनन्द का भोग करता है।' इनके धार्मिक उत्साह से प्रभावित होकर अनेक व्यक्ति इनके अनुयायी बन गये, जिनमें नरेन्द्रनाथ दत्त का नाम विशेष उल्लेखनीय है। यही आगे चलकर स्वामी विवेकानन्द के नाम से विख्यात हुए। स्वामी रामकृष्ण की मृत्यु गले में कैंसर हो जाने के कारण 15 अगस्त, 1886 में हुई।

रामकृष्ण परमहंस के धार्मिक विचार– स्वामी रामकृष्ण के अपने धार्मिक विचार थे, जिनका संक्षेप में उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है–

(1) स्वामी जी काली माँ को जगत् की माता कहते थे। उनका कहना था कि तुम्हें पूर्ण समर्पण द्वारा माता की गोद में जाना चाहिए। माँ तुम्हें ज्ञान, विज्ञान तथा सब कुछ प्रदान कर देगी।

(2) उनका कहना था कि ब्रह्म निराकार है, अगम्य है तथा अव्यक्त है पर भक्ति और ज्ञान तुम्हें ब्रह्मानुभूति को कराने में साधक हो सकते हैं।

(3) उनका कहना था कि सभी धर्म ईश्वर तक पहुँचाने में विभिन्न धर्म मार्गों का काम करते हैं। प्रत्येक धर्म के द्वारा ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है। ईश्वर, अल्लाह, राम, रहीम उसी ब्रह्मानुभूति को कहते हैं।

(4) स्वामी जी ईश्वर को प्राप्त करने का माध्यम मूर्ति-पूजा को मानते थे। मूर्ति-पूजा के बल पर ही उन्होंने काली माँ का दर्शन किया था।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द ने कहा था, 'परमहंस किसी नवीन धर्म का प्रतिपादन करने के लिए अवतीर्ण नहीं हुए थे। वे तो शाश्वत सत्य का दर्शन कराने को प्रकट हुए थे। वे भारत के प्राचीन धार्मिक परम्परा के प्रतीक थे। रामकृष्ण परमहंस का जीवन जितना उज्ज्वल, महिमापूर्ण है वैसा किसी भी महापुरुष का न होगा, ऐसी मेरी धारणा है।'

स्वामी विवेकानन्द

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के प्रिय शिष्य विवेकानन्द का जन्म 12 फरवरी, 1863 को कलकत्ता के एक संभ्रांत कायस्थ परिवार में हुआ था। उनकी माता भुवनेश्वरी एक उच्च शिक्षित महिला थीं। स्वामी विवेकानन्द का मूल नाम नरेन्द्र दत्त था। उनके शरीर में सिंह का सौन्दर्य व मृगशावक की चंचलता थी। वे कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातक थे। उन्होंने पाश्चात्य दर्शन का खूब अध्ययन किया। 1880 में इनकी भेंट रामकृष्ण परमहंस से हुई और वे उनके शिष्य हो गये। 1886 में इन्होंने भारत भ्रमण करने के लिए प्रस्थान किया और अपने गुरु स्वामी रामकृष्ण के संदेश को केवल भारत में ही नहीं वरन् योरोप तथा अमेरिका तक फैलाया तथा अपनी विद्वत्ता, चातुर्य, आत्मिक शक्ति एवं आश्चर्यजनक व्यक्तित्व से प्रत्येक को प्रभावित किया। जब 11 सितम्बर से 27 सितम्बर, 1893 तक अमेरिका स्थित शिकागो में 'विश्व धर्म सम्मेलन' हुआ तब स्वामी जी ने उसमें भाग लिया। उन्होंने हिन्दू धर्म तथा वेदान्त दर्शन की बड़ी योग्यतापूर्वक व्याख्या की। उनके भाषण का श्रोताओं पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि इन्हें 'दैवी शक्ति-सम्पन्न वक्ता' कहकर पुकारा गया। 'न्यूयार्क हेराल्ड' समाचार-पत्र ने स्वामी जी का परिचय देते हुए लिखा, "असंदिग्ध रूप से वे विश्व धर्म सम्मेलन में सबसे महान् थे। उन्हें सुनने के बाद लगा कि हम कितने मूर्ख हैं, जो इस संन्यासी के देश में धर्म की शिक्षा देने के लिए मिशनरी भेजते हैं।" इन्होंने इंग्लैण्ड में सिस्टर निवेदिता को अपनी प्रमुख शिष्या बनाया। 14 जुलाई, 1902 को इस महान् देश-भक्त का देहावसान हो गया।

स्वामी विवेकानन्द ने राष्ट्रीय भावना को बढ़ावा दिया। उनके धार्मिक उपदेशों में राष्ट्रवाद की प्रबल भावना निहित रहती थी। उन्होंने भारतीयों को चेतावनी देते हुए कहा था 'स्मरण रखो, यदि तुम आध्यात्मिकता का परित्याग करके पश्चिम की भौतिकवादी सभ्यता के पीछे दौड़ोगे, तो परिणाम यह होगा कि तीन पीढ़ियों में तुम्हारी जाति का अन्त हो जायेगा, क्योंकि राष्ट्र की रीढ़ की हड्डी टूट जायेगी, वह आधार जिस पर कि राष्ट्रीय भवन का निर्माण हुआ है वह हिल उठेगा और परिणाम होगा सर्वनाश।'

स्वामी जी मूर्ति-पूजा के समर्थक थे। उन्होंने दयानन्द सरस्वती और राजा राममोहन राय आदि सुधारकों की तरह मूर्ति-पूजा की निन्दा नहीं की। उनका विश्वास था कि श्रद्धा और भक्ति से भगवान् को प्रतीक मानकर आराधना की जाय तो सिद्धि की प्राप्ति निश्चय हो सकती है। मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में उन्होंने उपदेश देते हुए कहा था, 'आजकल यह साधारण बात हो गई है कि सभी लोग अनायास ही इस बात को स्वीकार करते हैं कि मूर्ति-पूजा ठीक नहीं। मैं भी ऐसा ही कहता और सोचता था। उसके दण्डस्वरूप मुझे एक ऐसे महापुरुष के पैरों तले बैठकर शिक्षा ग्रहण करनी पड़ी, जिन्होंने मूर्ति-पूजा से ही सब कुछ पाया था। मैं स्वामी रामकृष्ण परमहंस की बात कह रहा हूँ। अगर मूर्ति पूजा द्वारा इस तरह रामकृष्ण परमहंस जैसे आदमी बन सकते हैं तो हजारों मूर्तियों की पूजा करो।'

स्वामी जी ने जाति-प्रथा और कर्मकाण्ड, समारोहों और अन्ध-विश्वासों की निन्दा की तथा लोगों से स्वतंत्रता, समानता एवं मुक्त चिंतन की भावना को आत्मसात करने की अपील

की। उन्होंने तीखे शब्दों में कहा, ''हमारे धर्म के हमारे रसोई घर में प्रवेश करने का खतरा है। हममें से अधिकतर अभी न वेदान्ती हैं न पुराणपंथी और न ही तांत्रिक हैं। हम केवल 'छुओ नहीं वाले' हैं। हमारा धर्म रसोईघर में है। हमारा ईश्वर खाना पकाने के बर्तन में है और हमारा धर्म है –मुझे छुओ मत, मैं पवित्र हूँ। अगर यह एक शताब्दी तक और चलता रहा तो हम सब पागलखाने में होंगे।''

स्वामी विवेकानन्द ने जिन ग्रन्थों की रचना की, वे हैं--'राजयोग', 'ज्ञानयोग', 'प्रेम-योग', 'कर्मयोग', 'देववाणी', 'धर्मविज्ञान', 'हिन्दू धर्म', 'प्राची और पाश्चात्य', 'परिव्राजक', 'भारतीय व्याख्यान,' 'मेरे गुरुदेव', 'हमारा भारत', 'वर्तमान भारत', 'व्यावहारिक जीवन में वेदान्त', 'शिक्षा', 'धर्म', 'रहस्य', 'चिन्तनीय बातें', 'विधि प्रसंग' तथा 'पत्रावली' (भाग : 1 व भाग : 2) आदि।

भारत के धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय जागरण में स्वामी विवेकानन्द का अभूतपूर्व योगदान रहा है। रवीन्द्रनाथ टैगोर लिखते हैं, 'यदि कोई भारत को समझना चाहता है तो उसे विवेकानन्द को पढ़ना चाहिए।'

रामकृष्ण मिशन के सिद्धान्त– स्वामी विवेकानन्द ने 1897 में कलकत्ता के 'बेलूर' नामक स्थान पर अपने गुरु के नाम पर 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना की जिसने समाज-सेवा के बड़े प्रशंसनीय कार्य किये।

रामकृष्ण मिशन के प्रमुख सिद्धान्त इस प्रकार हैं–

(1) सभी धर्मों के मूल सिद्धान्तों में सत्य का अंश विद्यमान है। इसलिए व्यक्ति को अपने धर्म का परित्याग न कर अपने ही धर्म में रहना चाहिए।
(2) ईश्वर अजन्मा, अजेय तथा सर्वव्यापक है।
(3) आत्मा ईश्वरीय अंश है।
(4) भारतीय संस्कृति अन्य संस्कृतियों से प्राचीन व श्रेष्ठ है। भारत सदैव से ही विश्वगुरु के पद पर प्रतिष्ठित रहा है।
(5) प्रत्येक हिन्दू का कर्तव्य है कि वह हिन्दू धर्म की पाश्चात्य सभ्यता से रक्षा करे।
(6) मूर्ति-पूजा ईश्वर की उपासना का प्रमुख साधन है।

थियोसोफिकल सोसायटी (श्रीमती एनी बेसेंट)

इस संस्था की स्थापना 7 सितम्बर, 1875 को अमेरिका के न्यूयार्क नगर में हुई थी। इसके संस्थापक मैडम ब्लैवट्सकी तथा कर्नल अल्कौट थे। भारत में इसकी स्थापना श्रीमती एनी बेसेंट द्वारा हुई। वह एक आयरिश महिला थीं। सन् 1893 में वह भारत आयीं और हिन्दू धर्म को स्वीकार कर लिया। इन्होंने वेदों व उपनिषदों की महानता को स्वीकार किया और भारतीय संस्कृति को सर्वश्रेष्ठ घोषित किया। इस महिला के प्रयास से इस संस्था की उन्नति हुई। इन्होंने बनारस में 'सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल' की स्थापना की जो कालान्तर में हिन्दू विश्वविद्यालय के रूप में परिणत हुआ। इस संस्था ने भारतीय स्कूलों की स्थापना के लिए, विशेष रूप से लंका में प्रयास किया और अछूतों के लिए भी स्कूल खोलने के साहसिक कदम उठाये। इससे भारत की राष्ट्रीय, धार्मिक व सामाजिक जागृति को बड़ा प्रोत्साहन मिला।

श्रीमती एनी बेसेंट भारत और हिन्दुत्व को एक-दूसरे का पर्याय मानती थीं। उन्हीं के शब्दों में, 'भारत और हिन्दुत्व की रक्षा भारतवासी और हिन्दू ही कर सकते हैं। हम बाहरी लोग आपकी चाहे जितनी प्रशंसा करें, किन्तु आपका उद्धार आपके ही हाथ है। आप किसी भी प्रकार के भ्रम में न रहें। हिन्दुत्व के बिना भारत के सामने कोई भविष्य नहीं

है। हिन्दुत्व वह मिट्टी है, जिसमें भारत का मूल गड़ा हुआ है। यदि वह मिट्टी हटा ली गई तो भारतरूपी वृक्ष सूख जायेगा।... भारत के इतिहास को देखिए, उसके साहित्य, कला और स्मारकों को देखिए, सब पर हिन्दुत्व स्पष्ट रूप से अंकित है।'

एनी बेसेंट किसी प्रकार के बन्धन को स्वीकार नहीं करती थीं। वे स्वतंत्रता की समर्थक थीं। स्वतंत्रता के सम्बन्ध में उनका मत था–"स्वतन्त्रता अमर और शाश्वत है। उसकी विजय निश्चित है, विलम्ब कितना ही हो जाए।"

थियोसोफिकल सोसायटी ने हिन्दू धर्म का गहन अध्ययन ही नहीं किया, बल्कि विदेशों में उसका प्रचार भी किया और भारत में हिन्दू धर्म के माध्यम से विभिन्न व्यक्तियों के मध्य सद्भावना और भाई-चारे की भावना को बढ़ाने का प्रयास भी किया।

इस सोसायटी ने बाल-विवाह, दहेज-प्रथा, अस्पृष्यता, जातिवाद आदि की कटु आलोचना की और इसे भारतीय समाज की भयंकर कुरीतियों की संज्ञा दी। इस सोसायटी ने अनेक स्थानों पर स्कूल, कालेज तथा छात्रावास को भी स्थापित कर शिक्षा के क्षेत्र में यश प्राप्त किया।

सोसायटी के प्रमुख सिद्धान्त– इस संस्था के प्रमुख सिद्धान्त इस प्रकार हैं–

(1) इस संस्था के अनुयायी आत्मा और परमात्मा के अस्तित्व में विश्वास करते हैं।
(2) प्रकृति-पूजा तथा मूर्तिपूजा को वैज्ञानिक मानते हैं।
(3) उनके अनुसार आत्मा परमात्मा का अंश है तथा समस्त आत्माएँ समान हैं।
(4) इस संस्था के अनुयायियों को विश्वास है कि इस लोक के अतिरिक्त एक और लोक है जहाँ आत्माएँ निवास करती हैं।
(5) वे जाति-पाँति के भेदभाव को निरर्थक समझते हैं।
(6) भ्रातृत्व प्रेम आवश्यक है। प्रत्येक मनुष्य को एक-दूसरे से भाई के समान प्रेम करना चाहिए।

मुस्लिम धार्मिक आन्दोलन

मुस्लिम समाज में भी अनेक अन्धविश्वास तथा कुरीतियाँ पैदा हो गई थीं। समय का प्रभाव समाज पर भी पड़े बिना न रह सका। अतः मुसलमानों ने भी धर्म और सामाजिक सुधार के लिए कई महत्वपूर्ण आन्दोलन किये जिनका संक्षेप में विवरण इस प्रकार है–

(1) बहावी आन्दोलन–सर्वप्रथम सैयद अहमद बरेलवी (1786-1831) का ध्यान मुस्लिम समाज की ओर आकर्षित हुआ। उन्होंने बहावी आन्दोलन चलाया। जनसाधारण के प्रयोग के लिए उन्होंने कुरान का उर्दू अनुवाद किया। उन्होंने ईश्वर की एकता पर अधिक बल दिया और प्रत्येक मुसलमान को कुरान की व्याख्या करने का अधिकार प्रदान किया। उन्होंने पाश्चात्य सभ्यता तथा शिक्षा का विरोध किया। इस आन्दोलन को उस समय कोई विशेष सफलता न मिल सकी।

(2) अलीगढ़ आन्दोलन– मुस्लिम सुधार के सर्वश्रेष्ठ सुधारक सर सैयद अहमद खाँ थे। इन्होंने अलीगढ़ आन्दोलन चलाया। इनका जन्म 1816 और मृत्यु 1893 में हुई। इन्होंने मुसलमानों में जागृति लाने का प्रयास किया। इन्होंने पाश्चात्य सभ्यता एवं शिक्षा का पूर्ण समर्थन किया और मुसलमानों को पाश्चात्य सभ्यता अपनाने का उपदेश दिया। शिक्षा, राजनीति और धर्म के क्षेत्र में इन्होंने महत्वपूर्ण सुधार करने का सराहनीय कार्य किया। 1875 में उन्होंने अलीगढ़ में 'मुहम्मडन ऐंगलो ओरियण्टल कालेज' की स्थापना की जो कालान्तर में मुस्लिम विश्वविद्यालय के रूप में परिणत हुआ। इन्होंने 'मुस्लिम शिक्षा सम्मेलन' की भी स्थापना की और प्रतिवर्ष उसके अधिवेशन की व्यवस्था की। वे पर्दा-प्रथा के विरोधी तथा स्त्री-जाति की शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। वे हिन्दू और मुसलमानों की एकता के भी पक्षपाती थे। हिन्दुओं

और मुसलमानों में एकजुट होने की अपील करते हुए, उन्होंने 1883 में लिखा–

"हम दोनों (हिन्दू और मुसलमान) भारत की हवा पर जिन्दा हैं, हम गंगा और यमुना का पवित्र जल पीते हैं। हम दोनों भारतीय भूमि की पैदावार खाकर जीवित हैं। हम जीवन-मरण में एक दूसरे के साथ हैं, भारत में रहते हुए हमारे शरीर का रंग एक जैसा हो गया है, हिन्दुओं ने आचार संबंधी अनेक मुस्लिम विशेषताओं को ग्रहण कर लिया है, मुसलमानों ने अनगिनत हिन्दू रीतियों को अपना लिया है, हम इतने घुलमिल गये हैं कि हमने नई भाषा उर्दू को विकसित किया है जो न तो हमारी भाषा है और न हिन्दुओं की ... हम दोनों एक ही देश के हैं, हम एक राष्ट्र हैं, और देश की प्रगति, हमारी एकता पारस्परिक सहानुभूति और प्रेम पर निर्भर है जबकि हमारी पारस्परिक असहमति, जिद और विरोध तथा दुर्भावना हमारा विनाश निश्चित रूप से कर देगी।"

सैयद अहमद ने जीवन भर परंपरा के अंधानुकरण, रिवाज पर निर्भरता, अज्ञान और अविवेकशीलता के विरुद्ध संघर्ष किया। उनको निष्ठावान अनुयायियों के एक समूह से मदद मिली, जिन्हें सामूहिक रूप से 'अलीगढ़ स्कूल' कहा जाता है।

'अलीगढ़ स्कूल' के विशिष्ट नेताओं में चिराग अली, अल्फात हुसेन (उर्दू कवि), नजीर अहमद और मौलाना शिब्ली नूमानी आदि थे।

(3) अहमदिया आन्दोलन–इस आन्दोलन को चलाने का श्रेय मिर्जा गुलाम मुहम्मद को प्राप्त है। इनका जन्म 1839 में गुरुदास जिले के अन्तर्गत 'कठियान' नामक ग्राम में हुआ था। ये योग्य तथा प्रभावशाली व्यक्ति थे। इनका देहावसान 1908 में हुआ। ये अपने को ईसामसीह, मुसलमानी मेंहदी तथा विष्णु का अवतार मानते थे। ये पर्दा-प्रथा, तलाक-प्रथा, बहु-विवाह की प्रथा के समर्थक थे। हिन्दू, मुसलमान तथा ईसाई तीनों धर्मों को श्रेष्ठ मानते थे। इनके समर्थकों की संख्या बहुत कम थी। इन्हें 'नबी' के नाम से पुकारा जाता था।

सुधार आंदोलनों का राजनीतिक तथा राष्ट्रीय जीवन पर प्रभाव

9वीं सदीं के धार्मिक और सामाजिक सुधार आन्दोलनों ने राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न करने की दिशा में अपूर्व कार्य किया। विदेशी शासन में भारत तीव्र गति से अधःपतन की ओर बढ़ रहा था। सुधार आन्दोलन ने पतन की इस प्रवृत्ति को रोका और भारतीय समाज की मानसिक तथा आध्यात्मिक दुर्बलता दूर कर नव-जागरण का संदेश दिया।

इन सुधार आन्दोलनों ने भारतीय समाज में व्याप्त अन्धविश्वास को दूरकर भारतीय समाज की प्रत्येक वस्तु तर्क, विज्ञान और विवेक के प्रकाश में देखना सिखाया।

इन सुधार आन्दोलनों ने यूरोपीय विद्वानों को भारत के प्राचीन साहित्य की खोज की ओर आकर्षित किया। उन्होंने देश-विदेशों से मूल प्रतियों को प्राप्त किया, उनका प्रकाशन कराया और यूरोप की भाषा में उनका अनुवाद किया। न केवल भारतीयों को ही अपने धर्म, दर्शन, ज्ञान और राष्ट्र में श्रद्धा उत्पन्न हुई, बल्कि पश्चिमी देशों में भारत का सम्मान बढ़ा।

सुधार आन्दोलनों के परिणामस्वरूप 'यह राष्ट्र महान् था' इस भावना से 'यह राष्ट्र हमारा है' यह भावना पैदा हुई। सुधार आन्दोलनों के नेता चाहे वे धर्म या समाज सुधारक थे अथवा साहित्यकार या कलाकार, सभी राष्ट्रप्रेमी थे। लोगों में इस प्रकार के सवाल उठने लगे कि यह देश मेरा है, यह विदेशियों का गुलाम क्यों है? भारतीयों को आत्मविश्वास, आत्म-गौरव और दृढ़ता प्रदान करके उसने उनको राजनीतिक आन्दोलन के योग्य बनाया।

इस प्रकार इन सुधार आन्दोलनों ने भारतीयों को राष्ट्रप्रेम का पुनीत पाठ पढ़ाया और राष्ट्रीय जागरण की पृष्ठभूमि तैयार की। इस सम्बन्ध में डॉ0 जकारिया ने लिखा है, 'भारत की पुनर्जागृति मुख्यतः आध्यात्मिक थी तथा एक राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप धारण

करने के पूर्व इसने अनेक धार्मिक और सामाजिक आन्दोलनों का सूत्रपात किया।'

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ (Important Dates & Events)

1. 1772 ई. – राजा राममोहन राय का जन्म।
2. 1824 ई. – स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म।
3. 1833 ई. – राजा राममोहन राय की मृत्यु।
4. 1836 ई. – स्वामी रामकृष्ण परमहंस का जन्म।
5. 1863 ई. – स्वामी विवेकानन्द का जन्म।
6. 1875 ई. – मुहम्मडन एंग्लो-ओरियंटल कालेज की स्थापना।
7. 1883 ई. – स्वामी दयानन्द सरस्वती की मृत्यु।
8. 1886 ई. – स्वामी रामकृष्ण परमहंस की मृत्यु।
9. 1893 ई. – सर सैयद अहमद खाँ की मृत्यु।
10. 1902 ई. – स्वामी विवेकानन्द की मृत्यु।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. उन्नीसवीं शताब्दी में भारतवर्ष में प्रमुख सुधारवादी आन्दोलनों का विवरण प्रस्तुत कीजिए।
2. उन्नीसवीं शताब्दी में जो समाज-सुधार तथा धर्म-सुधार के आन्दोलन हुए उनका वर्णन कीजिए। (1976)
3. ब्रह्म-समाज और आर्य-समाज के प्रमुख सुधार क्या थे? (1966)
4. आधुनिक भारत के पुनर्जागरण में स्वामी दयानन्द के योगदान का मूल्यांकन कीजिए। (1989)
5. 19वीं शताब्दी में सामाजिक चेतना के अभ्युदय में प्रमुख सुधारकों के योगदान का विवरण दीजिए। (1992)
6. भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक और धार्मिक सुधार आन्दोलनों के प्रभावों की विवेचना कीजिए। (1993)
7. उन्नीसवीं शताब्दी में भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक जागरण में राजा राममोहन राय के योगदान का मूल्यांकन कीजिए। (1994)
8. ब्रह्म-समाज के संस्थापक कौन थे? इसके मुख्य सिद्धान्त क्या थे? (1996)
9. उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक एवं धार्मिक सुधारों पर एक निबन्ध लिखिए। (2003)
10. भारतीय नवजागरण में राजा राममोहन राय की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए। (2005)
11. शिक्षा के क्षेत्र में आर्य समाज के योगदान का मूल्यांकन कीजिए। (उत्तरां. 2006)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में धर्म-सुधार की एक बड़ी उग्र लहर उठी।" इस कथन पर प्रकाश डालिए। (1953)
2. "राजा राममोहन राय भारत के अग्रदूत थे।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
3. "राजा राममोहन राय महान् समाज सुधारक तथा भारत में आधुनिक युग के प्रवर्तक थे।" विवेचना कीजिए।
4. "विवेकानन्द युवा शक्ति के प्रतीक थे।" इस कथन के आलोक में उनके कार्यों का उल्लेख कीजिए। (2001)
5. "राजा राममोहन राय भारतीय पुनर्जागरण के जनक थे।" इस कथन की विवेचना कीजिए। (2005,06)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. ब्रह्म-समाज के सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
2. आर्य-समाज के सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
3. नवभारत के निर्माण में स्वामी दयानन्द का क्या योगदान था?
4. आर्य समाज का भारतीय नव-जागरण में क्या योगदान है?
5. स्वामी रामकृष्ण परमहंस पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
6. थियोसोफिकल सोसाइटी के विषय में आप क्या जानते हैं?
7. स्वामी विवेकानन्द की प्रसिद्धि के क्या कारण थे?
8. धार्मिक सुधार के क्षेत्र में आर्य समाज की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **समाज-सुधारकों का 'अग्रदूत' किसे कहा जाता है?**
   समाज-सुधारकों का अग्रदूत राजा राममोहन राय को कहा जाता है।
2. **ब्रह्म समाज की स्थापना किसने की?**
   ब्रह्म समाज की स्थापना राजा राममोहन राय ने की।
3. **राजा राममोहन राय द्वारा स्थापित दो समाचार-पत्रों के नाम बताइए।**
   राजा राममोहन राय द्वारा स्थापित दो समाचार-पत्र– 'संवाद कौमुदी' तथा 'वेद मंदिर' थे।
4. **प्रार्थना समाज की स्थापना कब हुई तथा किसने की?**
   प्रार्थना समाज की स्थापना 1867 में केशवचन्द्र सेन ने की।
5. **आर्य समाज का संस्थापक कौन था?**
   आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती थे।
6. **'सत्यार्थ प्रकाश' नामंक ग्रन्थ के रचयिता का नाम बताइए।**
   'सत्यार्थ प्रकांश' नामक ग्रन्थ के रचयिता स्वामी दयानन्द सरस्वती थे।
7. **रामकृष्ण मिशन की स्थापना का वर्ष बताइए।**
   रामकृष्ण मिशन की स्थापना 1897 ई. में हुई।
8. **'वेदों के युग में लौट जाओ' यह उद्घोष किसका था?**
   यह उद्घोष स्वामी दयानन्द सरस्वती का था।
9. **थियोसोफिकल सोसाइटी का मुख्यालय भारत में कहाँ खोल गया?**
   थियोसोफिकल सोसाइटी का मुख्यालय भारत में मद्रास के निकट अड्यार में खोला गया।
10. **प्रार्थना समाज के दो नेताओं के नाम लिखिए।**
    (1) महादेव गोविन्द रानाडे, (2) रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर।
11. **सर सैयद अहमद खाँ ने किस शिक्षा-केन्द्र की स्थापना की?**
    सर सैयद अहमद खाँ ने 1875 ई. में अलीगढ़ में 'मुहम्मडन ऐंग्लो ओरियण्टल कालेज (वर्तमान अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय) की स्थापना की।
12. **अहमदिया आन्दोलन किसके द्वारा प्रारम्भ किया गया?**
    अहमदिया आन्दोलन मिर्जा गुलाम मुहम्मद द्वारा प्रारम्भ किया गया।
13. **भारत में 'नवजागरण का जनक' किसे कहा जाता है?**
    राजा राममोहन राय 'नवजागरण के जनक' कहे जाते हैं।

बहुविकल्पीय प्रश्न

निर्देश : नीचे दिये गये प्रत्येक प्रश्न के चार विकल्पों में से सही विकल्प छाँटकर लिखिए :

1. **रामकृष्ण परमहंस किससे संबंधित हैं?**
   (क) आर्य समाज, (ख) रामकृष्ण मिशन,
   (ग) प्रार्थना समाज, (घ) थियोसोफिकल सोसाइटी।

2. स्वामी दयानन्द के बचपन का नाम क्या था?
(क) शिवशंकर, (ख) मूलशंकर, (ग) रविशंकर, (घ) रमाशंकर।
3. आर्य समाज की स्थापना कब हुई थी?
(क) 1848 ई. में, (ख) 1872 ई. में, (ग) 1875 ई. में, (घ) 1877 ई. में।
4. ब्रह्म समाज की स्थापना कब हुई थी?
(क) 1820 ई. में, (ख) 1828 ई. में, (ग) 1836 ई. में, (घ) 1840 ई. में।
5. राजा राममोहन राय की मृत्यु कब हुई थी?
(क) 1830 ई. में, (ख) 1833 ई. में, (ग) 1835 ई. में, (घ) 1836 ई. में।
6. स्वामी दयानन्द सरस्वती की मृत्यु कब हुई थी?
(क) 1878 ई., (ख) 1880 ई., (ग) 1883 ई., (घ) 1885 ई.।
7. स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो के 'विश्व-धर्म-सम्मेलन' में कब भाग लिया था?
(क) 1863 ई. में, (ख) 1890 ई. में, (ग) 1883 ई. में, (घ) 1895 ई. में।
8. स्वामी विवेकानन्द की मृत्यु कब हुई थी?
(क) 1886 ई. में, (ख) 1900 ई. में, (ग) 1902 ई. में, (घ) 1905 ई. में।
9. 'विदेशी राज्य चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों न हो, स्वदेशी राज्य की तुलना में कभी अच्छा नहीं हो सकता।' यह कथन किसका है?
(क) लोकमान्य तिलक (ख) गोपाल कृष्ण गोखले
(ग) दयानन्द सरस्वती (घ) महात्मा गांधी।
10. 'यदि कोई भारत को समझना चाहता है तो उसे विवेकानन्द को पढ़ना चाहिए।' यह कथन किसका है?
(क) देवेन्द्र नाथ टैगोर, (ख) केशवचन्द्र सेन,
(ग) रवीन्द्रनाथ टैगोर, (घ) एनीबेसेंट।
11. मुहम्मडन ऐंग्लो ओरियंटल कालेज की स्थापना कब हुई थी?
(क) 1835 ई., (ख) 1863 ई., (ग) 1875 ई., (घ) 1883 ई.।
12. सर सैयद अहमद खाँ की मृत्यु कब हुई थी?
(क) 1882 ई., (ख) 1885 ई., (ग) 1890 ई., (घ) 1893 ई.।
13. 'संवाद कौमुदी' नामक बंगाली समाचार-पत्र का संस्थापक कौन था?
(क) स्वामी दयानन्द सरस्वती (ख) राजा राममोहन राय
(ग) स्वामी विवेकानन्द (घ) सर सैयद अहमद खाँ
14. ब्रह्म समाज का संस्थापक कौन था?
(क) स्वामी दयानन्द, (ख) स्वामी विवेकानन्द,
(ग) राजा राममोहन राय (घ) ऐनीबेसेंट।
15. 'अलीगढ़ आन्दोलन' किसने चलाया था?
(क) सैयद अहमद बरेलवी, (ख) सरसैयद अहमद खाँ,
(ग) मिर्जा गुलाम मुहम्मद, (घ) नज़ीर अहमद।
16. सती प्रथा का उन्मूलन किस वर्ष हुआ था?
(क) 1827 ई. में, (ख) 1828 ई. में, (ग) 1829 ई. में, (घ) 1830 ई. में।

25

भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन

> "क्रांतिकारियों का फाँसी चढ़ जाना इस बात का सबूत है कि खुदगर्जी उनको इस रास्ते पर नहीं लाई। वे देश में सच्ची स्वतन्त्रता स्थापित करना चाहते थे। उन्होंने जो कुछ भी किया उसकी सारी जिम्मेदारी अंग्रेजी सल्तनत पर है।"
>
> –महामना मदनमोहन मालवीय

1857 में भारतीयों ने अंग्रेजों के कुशासन को समाप्त करने का प्रयास किया था, किन्तु पारस्परिक फूट, व्यक्तिगत स्वार्थों तथा अंग्रेजों के अमानवीय अत्याचारों ने स्वाधीनता के प्रथम संग्राम को असफल बना दिया था। इससे कुछ समय के लिए राष्ट्रीयता का विकास मन्द पड़ गया। 19वीं शताब्दी में देश में धार्मिक और सामाजिक सुधार के अनेक आन्दोलन किये गए जिनसे राष्ट्रीय जागरण की भावना के विकास को पर्याप्त बल मिला।

राष्ट्रीय जागरण के उत्तरदायी तत्व

राष्ट्रीय जागरण के उत्तरदायी तत्वों का वर्णन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है :

(1) पाश्चात्य शिक्षा की भूमिका– भारत में राष्ट्रीय जागरण का प्रथम कारण पाश्चात्य शिक्षा का प्रचार था। लार्ड मैकॉले के प्रयास से देश में अंग्रेजी का प्रसार हुआ। पाश्चात्य शिक्षा के सम्बन्ध में उसने कहा था, "भारतीयों को यदि सदैव के लिए गुलाम बनाना है, तो उनमें पश्चिमी शिक्षा एवं संस्कृति का प्रचार और प्रसार तेजी से किया जाय। भारतीयों को शारीरिक बल से वश में नहीं किया जा सकता है। उन्हें पश्चिमी संस्थाओं पर इतना आश्रित कर दिया जाय कि उनका जीवन उनके बिना न चल सके।" निःसन्देह लार्ड मैकाले को अपने उद्देश्य में पर्याप्त सफलता मिली। पाश्चात्य शिक्षा का प्रचार बढ़ने पर भारतीय नवयुवक हजारों की संख्या में अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण करने लगे। गोखले तथा तिलक पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त नवयुवक थे। महाराष्ट्र में राष्ट्रवाद के प्रचार में इनका प्रमुख हाथ रहा। पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त कर विवेकानन्द, अरविन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, विपिनचन्द्र पाल तथा चितरंजन दास ने बंगाल में तथा लाला हरदयाल, स्वामी रामतीर्थ, लाला लाजपत राय ने पंजाब में राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व किया। पाश्चात्य शिक्षा के माध्यम से ही भारतीयों को पाश्चात्य जातियों और उनकी संस्कृति का ज्ञान प्राप्त हुआ। डॉ. जकारिया ने लिखा है, "अंग्रेजों ने सौ वर्ष पूर्व शिक्षा का जो कार्य आरम्भ किया उससे अधिक हितकर और कोई कार्य उन्होंने भारत में नहीं किया।" इस प्रकार पाश्चात्य शिक्षा ने राष्ट्रीय भावना के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

(2) धार्मिक तथा सामाजिक पुनर्जागरण– 19वीं शताब्दी में देश में जो धार्मिक तथा सामाजिक आन्दोलन हुए, उनसे राष्ट्रीय जागरण के विकास में बड़ा योग मिला। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, सरसैयद अहमद खाँ आदि ने भारतीयों के हृदय में देशभक्ति तथा स्वतन्त्रता के भावों को जाग्रत किया। राजा राममोहन ने हिन्दू रूढ़िवाद को ललकारा, उन्होंने तत्कालीन गवर्नर लार्ड विलियम बेंटिंक से मिलकर 1829 में सती-प्रथा के विरुद्ध एक कानून पारित कराया। स्वामी दयानन्द ने उद्घोषित किया, "भारत भारतीयों के लिए है" साथ ही उन्होंने कहा, 'जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है।'

स्वामी विवेकानन्द ने देश-भक्ति के भावों की प्रेरणा प्रदान की। उन्होंने उद्घोषणा की, "हमारे देश को आज ऐसे पुरुषों की आवश्यकता है जिनका शरीर लोहे का बना हो जिसकी इच्छा-शक्ति इतनी बलवती हो कि जिसका प्रतिरोध ही न किया जा सके।" सर सैयद अहमद खां ने मुसलमानों की आर्थिक और सामाजिक दुर्दशा को दूर करने के लिए लेख और वाणी द्वारा जोरदार प्रचार किया। उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन में भी खुलकर भाग लिया। पाश्चात्य महिला श्रीमती एनी बेसेन्ट ने 'थियोसाफिकल सोसाइटी' द्वारा भारतीयों को स्वतन्त्रता एवं देश-प्रेम की शिक्षा दी तथा उन्हें स्वतन्त्रता प्राप्त करने की ओर प्रेरित किया। उन्होंने कहा, "स्वतन्त्र व्यक्ति ही स्वतन्त्र देश का निर्माण कर सकते हैं।"

(3) समाचार पत्रों तथा साहित्य का प्रभाव– राष्ट्रीय जागरण के निर्माण में भारतीय समाचार पत्रों तथा साहित्य का अमूल्य योगदान है। अंग्रेजी तथा प्रान्तीय भाषाओं में भारतीयों ने जो समाचार पत्र प्रकाशित किये उनसे राष्ट्रीयता तथा देश-प्रेम के भाव जाग्रत करने की दिशा में बड़ा योग मिला। उस समय के भारतीय समाचार पत्रों में 'बंगदूत', 'अमृत बाजार पत्रिका', 'अल-हिलाल', अलबलाग़', 'हमदर्द', 'कामरेड', 'जमीदार', 'पायनियर' और 'ट्रिव्यून' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसी काल में विष्णु कृष्ण चिपलंकर, बंकिम चन्द्र, रवीन्द्रनाथ टैगोर, डॉ. मुहम्मद इकबाल[1], सरला देवी तथा रजनीकान्त सेन जैसे साहित्यिक कवि और लेखकों ने जन्म लिया। उन्होंने देशभक्ति से ओत-प्रोत साहित्य को जन्म देकर भारतीय जनता में राष्ट्रीय भावना को जाग्रत किया। प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य में बंकिमचन्द्र चटर्जी के 'आनन्दमठ' और 'दुर्गेशनन्दिनी' के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

राष्ट्रीय जागरण के उत्तरदायी तत्व

1. पाश्चात्य शिक्षा की भूमिका
2. धार्मिक तथा सामाजिक पुनर्जागरण
3. समाचार पत्रों तथा साहित्य का प्रभाव
4. आर्थिक असन्तोष
5. आवागमन के साधनों की उन्नति
6. शिक्षित भारतीयों में असन्तोष
7. अंग्रजों की जाति-विभेद की नीति
8. विदेशी घटनाओं का प्रभाव
9. लार्ड लिटन के मूर्खतापूर्ण कार्य

(4) आर्थिक असन्तोष– आर्थिक असन्तोष ने राष्ट्रीय आन्दोलन को अत्यधिक प्रोत्साहन प्रदान किया। अंग्रेज भारत में व्यापार करने के उद्देश्य से आये थे, किन्तु कालान्तर में देश का शासक बनकर भारतीय जनता का शोषण करने लगे। बंगाल में मुर्शिदाबाद तथा ढाका के जो उद्योग-धन्धे बढ़े-चढ़े थे, वे अंग्रेजों द्वारा नष्ट कर दिये गये। लार्ड लिटन के शासन काल में आयात-कर को समाप्त कर 'मुक्त व्यापार की नीति' (Free Trade Policy) अपनाई गई। मुक्त व्यापार की नीति में अंग्रेजों का असली उद्देश्य भारत में उत्पादन को मदद पहुँचाना नहीं वरन् ब्रिटिश आयात को बढ़ावा देना था। इसी नीति के परिणामस्वरूप भारतीय उद्योग-धन्धे और भी अधिक बरबाद हो गये तथा बेरोजगारी का प्राबल्य हो गया। उद्योग-धन्धों के बरबाद हो जाने के फलस्वरूप बेरोजगार व्यक्ति कृषि की ओर झुके लेकिन शासन ने कृषि की उन्नति की ओर भी कोई ध्यान नहीं दिया। फलतः किसानों की भी आर्थिक अवस्था शोचनीय हो गई। इस सम्बन्ध में सर विलियम हण्टर ने लिखा है, "सम्पूर्ण ब्रिटिश साम्राज्य में सबसे अधिक दयनीय दशा भारत के किसानों की है क्योंकि उनके स्वामियों ने उनके साथ अन्याय किया है।" तत्कालीन पुरी

1. डा. मुहम्मद इकबाल उर्दू के प्रसिद्ध कवि थे। उन्होंने 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा' गीत लिख कर देश-भक्त होने का परिचय दिया। बैरिस्टरी पास करने के लिए जब वह इंगलैंड गये तो वहाँ कुछ ऐसा चमत्कार हुआ कि वह पूरे साम्प्रदायिकता के रंग में रंग हुए लौटे। भारत वापस आकर उन्होंने जो नई कविताएँ लिखीं, वे पाकिस्तान रूपी विष- वृक्ष के बीज का कार्य करने वाली बनीं।

(उड़ीसा) के सिविल सर्जन के अनुसार, "गरीब तबके के लोगों को न तो खाना ठीक से मिलता है, न कपड़ा। वे मुश्किल से पालक की बिना तेल की सब्जी और मोटा चावल पर जीते हैं। आमतौर पर उन्हें दिन में एक बार से ज्यादा खाना नहीं मिलता।" इस प्रकार देश के आर्थिक असन्तोष ने राष्ट्रीय आन्दोलन का मार्ग प्रशस्त किया।

(5) आवागमन के साधनों की उन्नति– रेल, तार आदि आवागमन के साधनों में उन्नति हो जाने के कारण देश के राष्ट्रीय जागरण में पर्याप्त सहायता मिली। आवागमन की सुविधाओं के कारण बड़े-बड़े नेतागण देश भर का दौरा करके सार्वजनिक भाषणों का अयोजन कर सके। आवागमन के साधनों के अभाव में ऐसी बातें असम्भव थीं। नेताओं के आपस में बार-बार मिलने तथा देश के विभिन्न भागों में उनके जनता के साथ सीधे सम्पर्क के कारण देश में राष्ट्रीय आन्दोलन को शीघ्र प्रगति प्राप्त हुई। इस प्रकार राष्ट्रीयता की भावनाओं के विकास में आवागमन के सुगम साधनों ने अत्यधिक सहयोग प्रदान किया।

(6) शिक्षित भारतीयों में असन्तोष– यद्यपि 1858 की घोषणा में किये हुए महारानी विक्टोरिया के वायदों को कार्यान्वित करने के लिए 1870 में एक अधिनियम बना, जिससे गवर्नर जनरल को यह अधिकार मिला कि वह प्रतियोगिता परीक्षा लिए बिना सिविल सर्विस में भारतीयों को नामजद कर सके। लेकिन व्यवहार में ऐसा नहीं किया गया। भारतीय नागरिक सेवा (I.C.S.) की परीक्षा इंग्लैण्ड में होने के कारण भारतीयों के लिए उच्च पद प्राप्त करना बहुत कठिन था। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने सिविल सर्विस परीक्षा की प्रतियोगिता में सफलता पायी थी, परन्तु उन्हें तुच्छ कारणों से नौकरी से निकाल दिया गया। इसके अतिरिक्त 1877 में नागरिक सेवा में प्रवेश की आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दी गई जिसके फलस्वरूप सामान्य भारतीयों के लिए उसमें बैठना असम्भव ही हो गया। भारतीय शिक्षित वर्ग ने इसका विरोध किया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के शब्दों में, "यह कार्य भारतीय विद्यार्थियों को इस नौकरी से जान-बूझ कर वंचित रखने की एक चाल थी।" 1877 में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने भारत भर का दौरा किया जिससे जबरदस्त जनमत उत्पन्न हो, सभी प्रान्तों के शिक्षित भारतीय एक होकर राजनीतिक अधिकारों की मांग करें और हिन्दुओं तथा मुसलमानों में मित्रता बढ़े। इस दौरे में उन्होंने उत्तर-प्रदेश (वाराणसी, इलाहाबाद, कानपुर, लखनऊ, आगरा, अलीगढ़, मेरठ, दिल्ली) पंजाब (अमृतसर और लाहौर), बम्बई प्रेसिडेन्सी (सिन्ध, अहमदाबाद, पूना) और मद्रास की यात्रा की। इस प्रकार पहली बार 'विभिन्न नस्लों और धर्मों वाले भारत को एक उद्देश्य से एक मंच पर लाया गया।' बनर्जी के इस कार्य से भारतीयों में राजनीतिक चेतना जाग्रत हुई और उन्होंने संगठन के महत्व को समझा।

(7) अंग्रेजों की जाति-विभेद की नीति– अंग्रेजों की जाति-विभेद की नीति से भारतीयों को बड़ी ठेस लगी। अंग्रेजों ने सेना, पुलिस तथा अन्य महत्वपूर्ण पदों से भारतीयों को दूर ही रखा। किसी दरबार तथा अन्य उत्सवों में एक निश्चित सीमा के भीतर ही भारतीयों को अपने देशी जूते उतार देना अनिवार्य था। केवल अंग्रेज जूते पहनकर कहीं भी आ-जा सकता था। रेलवे के प्रथम श्रेणी के डिब्बे में भारतीयों को यात्रा करना मना था। यदि कोई भारतीय हिम्मत करके प्रथम श्रेणी के डिब्बे में बैठता भी था तो उसे बाद में आने वाला अंग्रेज यात्री उसके साथ अपमानजनक व्यवहार करके उसे डिब्बे से उतार देता था। एक बार किसी नरेश को प्रथम श्रेणी के डिब्बे में एक अंग्रेज यात्री के जूतों के फीते खोलने पड़े थे और उसके पाँव दबाने पड़े थे। इस प्रकार के कार्यों से भारतीयों के सम्मान को गहरी चोट लगी।

(8) विदेशी घटनाओं का प्रभाव– कुछ विदेशी घटनाओं ने भी भारतीयों की राष्ट्रीय भावना को अत्यधिक प्रोत्साहन प्रदान किया। सन् 1860 तथा 1885 के बीच जर्मनी, इटली, रूमानिया और सर्विया ने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्त की। फ्रांस में तीसरे जनतन्त्र की स्थापना हुई।

इसके अतिरिक्त स्पेन में वैधानिक राजसत्ता की स्थापना हुई और रूस के जार तक ने अपने शासन में सुधार किये। इन्हीं दिनों इंग्लैण्ड में सुधार आन्दोलन के फलस्वरूप द्वितीय तथा तृतीय सुधार-कानून पारित किये गये। इन सब घटनाओं का भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

(9) लार्ड लिटन के मूर्खतापूर्ण कार्य– "बुरे शासक प्रायः अनजाने में जनता के लिए वरदान बन जाते हैं।' सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का यह कथन भारतीय राष्ट्रीयता के विकास पर अक्षरशः चरितार्थ होता है। लार्ड लिटन के कई मूर्खतापूर्ण कार्यों ने भारतीयों की राष्ट्रीय भावनाओं को प्रोत्साहन प्रदान किया। 1877 में जबकि दक्षिण भारत का कुछ भाग दुर्भिक्ष का शिकार बना हुआ था, लार्ड लिटन ने महारानी विक्टोरिया के सम्मान में दिल्ली में दरबार किया और पानी के समान रुपया व्यय किया गया। दरबार के सम्बन्ध में कलकत्ता के एक पत्रकार ने स्पष्ट शब्दों में टिप्पणी की थी, "जब रोम जल रहा था तब नीरो (Roman Emperor) बंशी बजा रहा था।" लिटन के शासनकाल में अफगानिस्तान पर आक्रमण भी किया गया जिसके खर्च का भार देश की भूखी-निर्धन जनता पर पड़ा। इसके अतिरिक्त लिटन ने वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट पारित करा कर भारतीय समाचार पत्रों की स्वतन्त्रता को समाप्त कर दिया। लिटन के इन मूर्खतापूर्ण कार्यों का यह परिणाम हुआ कि भारतीयों में असन्तोष की भावना चरम सीमा पर पहुँच गई और उनकी राष्ट्रीय भावना के विकास में बड़ा योगदान मिला।

राष्ट्रीय आन्दोलन का सूत्रपात

नील के उपद्रव– 1858 के प्रारम्भ से ही भारतीयों और अंग्रेजों में संघर्ष होने लगे थे। इनमें से सर्वप्रथम संघर्ष नील बागान के मालिकों के अत्याचारों के कारण हुआ। झगड़े का कारण भारतीय किसानों के प्रति नील-बागान के मालिकों का अमानवीय व्यवहार था। 1780 ई. के करीब ईस्ट-इण्डिया कम्पनी ने नील की खेती शुरू की थी। प्रारम्भ में इसने वेस्टइण्डीज से नील-बागान का काम जानने वाले लोगों को बुलाया था और नील की खेती को प्रोत्साहन देने के लिए उन्हें बहुत काफी धन अग्रिम दे दिया जाता था। नील-बागान के मालिक कानून के खिलाफ कार्य करते थे। नील की खेती स्वयं करने के बजाय उन्होंने इस काम में स्थानीय किसानों को लगा लिया। जो किसान उनसे अग्रिम धन ले लेता था वह एक तरह से उनका गुलाम हो जाता था। इस प्रकार नील-बागान के मालिक इन दासों से जबरदस्ती और बेईमानी से फसल प्राप्त करते थे। इस स्थिति पर प्रकाश डालते हुए मैकाले ने कहा था, "इनमें बड़े अन्याय किये जाते हैं, बहुत से रैयतों को कुछ गैर-कानूनी तरीकों से गुलामी की हालत में डालकर जबरदस्ती नील की खेती करायी जाती है।" अन्त में जब कष्ट और यंत्रणा बिल्कुल असहनीय हो गई तो 1859 में किसानों ने नील-बागान के मालिकों के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया। उन्होंने नील उगाने के लिए अग्रिम धन लेने से इन्कार कर दिया और मालिकों के घरों और दफ्तरों पर आक्रमण कर दिया। नील के खेत उजाड़ दिये तथा नील-कारखाने लूटे और जला दिये। सरकार ने उपद्रवों को शान्त करने के लिए बहुत उपाय किये। अनुभवी अफसरों को नदिया जिले में तैनात किया गया और स्थिति पर रिपोर्ट देने के लिए एक जाँच आयोग की नियुक्ति की गई। आयोग ने यह रिपोर्ट दी कि रैयत से जिस शर्त पर खेती करायी जाती है वह उसके लिए लाभकारी नहीं है। इससे किसानों की स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है और वह ऐसी खेती करने पर मजबूर हो जाता है जिसमें उपयुक्त मजदूरी नहीं मिलती है। आयोग ने सिफारिश की कि बागान मालिकों का अत्याचार रोकना चाहिए। सरकार ने यह परामर्श मान लिया और धमकी व डर के द्वारा नील की खेती की पद्धति को बन्द कर दिया।

शस्त्र-सम्बन्धी अधिनियम (Arms Act) का विरोध– लार्ड लिटन ने 1878 में शस्त्र-सम्बन्धी अधिनियम पारित कराकर भारतीयों की भावनाओं को गहरा आघात पहुँचाया।

इस अधिनियम के अनुसार बिना सरकारी लाइसेन्स के भारतीय हथियार लेकर नहीं चल सकते थे, जबकि यूरोपियनों को स्वतन्त्रतापूर्वक शस्त्र रखने की अनुमति प्रदान की गई थी। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के मतानुसार शस्त्र-अधिनियम के द्वारा, "हम पर जातीय तुच्छता का एक बिल्ला थोप दिया गया।" भारतीयों का निःशस्त्र हो जाना देश का घोर अपमान था। फलतः जनता ने जगह-जगह इस कानून के विरुद्ध प्रदर्शन किया।

वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट का विरोध-1858 के बाद भारतीय समाचार पत्रों ने काफी प्रगति की। उनका दृष्टिकोण अधिकाधिक आलोचनात्मक, यहाँ तक कि सरकार की आँखों में 'राजद्रोहात्मक' हो गया था। भारतीय भाषाओं में प्रकाशित पत्रों को ऐसे लोग पढ़ते थे जो अंग्रेजी नहीं जानते थे और चूँकि वे उन अंग्रेजी पत्रों को नहीं पढ़ते थे जिनमें सरकारी दृष्टिकोण पेश किया जाता था। इसलिये यह समझा जाता था कि देशी पत्रों में प्रकाशित प्रशासन की आलोचना से सरकार के स्थायित्व को बहुत बड़ा खतरा है। फलतः 1878 में लार्ड लिटन ने अत्यधिक अलोकप्रिय 'देशी भाषा समाचार पत्र अधिनियम' (वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट) पास कराया जिसका उद्देश्य था-'देशी पत्रों की बढ़ती हुई उग्रता को रोकना जो अब विद्रोह की प्रवृत्ति को भड़का रही थी।' इस अधिनियम के अनुसार जिलाधीश को यह अधिकार था कि वह किसी भी पत्र-सम्पादक से अंग्रेजी में यह शर्तनामा लिखवा ले कि वह अपने पत्र में कोई ऐसी बात नहीं लिखेगा जिससे सरकार के विरुद्ध उत्तेजना अथवा असन्तोष और विभिन्न जाति तथा धर्मों के लोगों में घृणा का प्रचार हो। ऐसा न करने पर जिलाधीश उसके प्रेस को जब्त कर सकता था और उसके विरुद्ध किसी भी न्यायालय में अपील नहीं हो सकती थी। भारतीयों ने कानून का प्रतिरोध किया और इसे 'बलात्कारी संविधि' (Gagging Act) की संज्ञा प्रदान की। इस कानून की निन्दा करने के लिये जगह-जगह पर सभायें की गयीं। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के नेतृत्व में कलकत्ता में एक बड़ी सार्वजनिक सभा हुई जिसमें ब्रिटिश संसद से यह अपील की गयी कि इस कानून को वापस लिया जाय। यह विरोध तब तक चलता रहा जब तक कि रिपन ने 1882 में इस कानून को रद्द नहीं कर दिया।

इलबर्ट विधेयक विवाद- लार्ड लिटन के बाद लार्ड रिपन वाइसराय हुए। भारत में आते ही उन्होंने वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट को रद्द कर दिया और देश में स्थानीय स्वराज्य की संस्थाओं की स्थापना की। उसने अफगानिस्तान के अमीर के साथ एक सम्मानपूर्ण सन्धि करके अफगान-युद्ध का अन्त कर दिया। इस प्रकार उसने देश को युद्ध के भारी अर्थ-भार से मुक्त कर दिया। रिपन ने न्याय-व्यवस्था में भी सुधार करना चाहा। 1883 में उसके कानूनी सदस्य सी.पी.इलबर्ट ने केन्द्रीय कौंसिल में एक विधेयक प्रस्तुत किया जिसका उद्देश्य भारतीय न्यायाधीशों को योरोपीय अपराधियों के मुकदमें सुनने का अधिकार देकर न्याय-विधान के क्षेत्र में जातीय भेदभाव को दूर करना था। लेकिन यह विधेयक एक भीषण विवाद का कारण बन गया, क्योंकि भारत में रहनेवाले अंग्रेजों ने यह अपनी जाति का अपमान समझा कि 'काले' न्यायाधीश उनके मुकदमों का निर्णय करें। इस विधेयक के विरोध में आन्दोलन करने के लिये उन्होंने एक लाख से भी अधिक रुपये का चन्दा किया, साथ ही भारत और इंगलैण्ड में आन्दोलन का संगठन करने के लिये उन्होंने 'यूरोपियन डिफेंस' नामक संस्था का निर्माण किया। शीघ्र ही इस आन्दोलन ने प्रबल रूप धारण कर लिया। विधेयक का डटकर विरोध करने के लिये सभायें की गई। और यह आवाज उठाई गई कि अब अंग्रेजी शासन की नींव हिल उठेगी। चेतावनी स्वरूप यह भी कहा गया गया कि गोरी जाति का अपमान करने के लिए भारतीय काले न्यायाधीश अंग्रेजों को सख्त सजाएँ देंगे और उनकी गोरी औरतों को अपने घर में रखेंगे। इस आन्दोलन ने लार्ड रिपन को बहुत बदनाम कर दिया और उसे विधेयक को मूल रूप में वापस लेना पड़ा। केवल भारतीय जिलाधीशों और

सेशन जजों को ही यूरोपियन अपराधियों का निर्णय करने का अधिकार दिया गया। लेकिन यूरोपियन अपराधी अपने मुकदमों में जूरी बैठाने की माँग रख सकते थे जिसमें कम-से-कम आधे सदस्य यूरोपीय हों।

अखिल भारतीय राजनीतिक आन्दोलन का सूत्रपात–यद्यपि इलबर्ट विधेयक पारित न हो सका परन्तु उससे भारतीयों की आँखें खुल गईं। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के अनुसार, "कोई भी स्वाभिमानी भारतीय अब आँख मूँदकर सुस्त नहीं बैठा रह सकता था। जो इलबर्ट बिल विवाद को समझते थे उनके लिये वह देशभक्ति की पुकार थी।" भारतीयों ने यह महसूस किया कि एक ऐसी संस्था बनायी जानी चाहिये जिसके द्वारा आन्दोलन किया जाय और देश के सामने वे महान उद्देश्य तथा लक्ष्य रखे जायँ जिनसे हमारे देशवासियों का स्थायी कल्याण हो। साथ ही यह भी अनुभव किया गया कि एक कोष इकट्ठा किया जाए जिससे भारत और इंग्लैण्ड में एक साथ आन्दोलन चलाया जा सके। इस कोष के उद्देश्यों में एक यह था कि देश के विभिन्न भागों से आये हुए प्रतिनिधियों का एक वार्षिक सम्मेलन हो जिससे सार्वजनिक प्रवृत्ति बढ़े और देश में जनमत का निर्माण हो।

1883 में 28 से 30 दिसम्बर तक कलकत्ता के इलबर्ट-हॉल में पहला राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। इसमें प्रतिनिधि परिषद, साधारण तथा तकनीकी शिक्षा, न्याय से प्रशासन का अलगाव, फौजदारी न्याय की व्यवस्था आदि प्रश्नों पर विचार हुआ। सम्मेलन में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और आनन्दमोहन बसु दोनों उपस्थित थे। इस सम्मेलन के सम्बन्ध में अम्बिकाचरण मजूमदार ने लिखा है, "सम्मेलन का दृश्य अद्वितीय था। मेरी आँखों के सामने उस समय के तीनों दिन के उल्लास और लगन का हुबहू चित्र आज भी खड़ा है। जब सम्मेलन समाप्त होने लगा तो मानो हरेक आदमी को, जो उसमें मौजूद था, एक नयी रोशनी और एक अद्‌भुत स्फूर्ति प्राप्त हो रही थी।"

अखिल भारतीय संगठन की दिशा में पहला निश्चित कदम दिसम्बर, 1884 में उठाया गया जब देश के विभिन्न भागों से बहुत से प्रतिनिधि मद्रास में थियोसाफिलकल सोसायटी के वार्षिक अधिवेशन में भाग लेने आये। अधिवेशन के बाद रघुनाथ राव के निवास-स्थान पर दादाभाई नौरोजी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि 17 प्रमुख भारतीयों की एक बैठक हुई। इस बैठक में एक अंग्रेज पेंशन-भोगी राज-कर्मचारी ए.ओ.ह्यूम ने प्रमुख भाग लिया। वे 1882 में भारतीय असैनिक सेवा से त्यागपत्र देने के बाद से भारत में उठते हुए जन-आन्दोलन को वैधानिक सीमाओं में बाँधने के प्रयत्न में लगे थे। मार्च, 1883 में उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातकों को एक पत्र लिखकर 'मातृभूमि की मानसिक, नैतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक उन्नति के लिए प्रयत्न करने को ललकारा।' उन्होंने उन्हें इन शब्दों में चेतावनी दी– " हमारी यह छोटी-सी सेना अनुशासन और साज-सज्जा में बेजोड़ हो। सीधा प्रश्न तो यह है कि आपमें से कितने अपनी विद्या के अलावा वह निःस्वार्थ भावना, नैतिक साहस, आत्मसंयम और सक्रिय उपकार वृत्ति रखते हैं जो उन सबके लिए जरूरी है, जो इस सेना में भर्ती होना चाहते हैं।' उन्होंने और भी लिखा- "प्रत्येक राष्ट्र को वैसी ही सरकार मिलती है, जिसके कि वह योग्य है। यदि आप जैसे चुने और राष्ट्र के सबसे उच्च शिक्षित लोग अपनी तथा अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए संकल्पबद्ध संग्राम न कर सकें, तो कम-से-कम इस समय तो प्रगति की सारी आशा छोड़ देनी होगी।"

इंडियन नेशनल कांग्रेस का जन्म (1885)

कांग्रेस की स्थापना के पूर्व भारत में 'इंडियन एसोसिएशन', 'महाजन सभा' तथा 'बाम्बे प्रेसिडेन्सी एसोसिएशन' संस्थाएँ थीं, परन्तु इनमें कोई भी संस्था सम्पूर्ण भारत का प्रतिनिधित्व करने वाली नहीं थी। इस दिशा में श्री ए.ओ. ह्यूम ने सन् 1884 में 'इंडियन नेशनल यूनियन' नामक एक संस्था की स्थापना की जिसका आगे जाकर 'इंडियन नेशनल कांग्रेस'

नाम रखा गया। इस संस्था की स्थापना में मि. ह्यूम का प्रारम्भिक विचार प्रमुख भारतीय लोगों के द्वारा देश की सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में विचार करना था। इस संस्था की कार्य-प्रणाली के सम्बन्ध में जब ह्यूम महोदय ने लार्ड डफरिन से सलाह ली, जो कि हाल में ही वाइसराय बनकर आये थे तो उन्होंने सुझाव दिया कि प्रस्तावित संस्था वह कार्य करे जो साम्राज्ञी का विरोधी दल इंग्लैण्ड में करता है। लार्ड डफरिन की इच्छा थी कि 'भारतीय राजनीतिज्ञ वर्ष में एक बार इकट्ठे हों तथा सरकार का ध्यान आकर्षित करें कि प्रशासन के कार्यों में क्या दोष है तथा उन्हें किस प्रकार सुधारा जा सकता है।" ह्यूम ने लार्ड डफरिन की इच्छानुसार यह निश्चय किया कि संस्था का नाम बदल देना चाहिये। और उसे एक सामाजिक सम्मेलन संस्था मात्र न बनाकर ऐसी संस्था बनाना चाहिये जिसका अपना राजनीतिक तथा आर्थिक कार्यक्रम भी हो। जब ह्यूम ने यह निश्चय कलकत्ता, बम्बई, मद्रास और दूसरी जगहों के राजतनीतिज्ञों के सामने रखा तो उन्होंने इस निश्चय को एक स्वर से पसन्द कर लिया। लार्ड डफरिन ने मि. ह्यूम से यह शर्त करा ली थी कि जब तक मैं इस देश में हूँ तब तक इस सलाह के बारे में मेरा नाम कहीं न लिया जाय। मि. ह्यूम ने इसका पूरी तरह पालन भी किया। इस प्रकार दिसम्बर, 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म हुआ।

राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास

राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास कांग्रेस तथा ब्रिटिश सरकार के संघर्ष का इतिहास है। यह संघर्ष 1885 ई. से प्रारम्भ होकर 1947 में समाप्त हुआ। इन बासठ वर्षों के स्वतन्त्रता अर्थात् राष्ट्रीय आन्दोलन को निम्न पाँच चरणों में विभक्त किया गया है :

प्रथम चरण (1885-1905)

इण्डियन नेशनल कांग्रेस के प्रारम्भिक वर्ष

"हम कांग्रेस का झण्डा फहराते हैं जिसके ऊपर स्वर्ण अक्षरों में लिखा है- भारत के लिए प्रतिनिधित्वपूर्ण संस्थाएँ।" —श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी

जैसा कि हम देख चुके हैं कि कांग्रेस का जन्म वास्तव में परिस्थितियों का परिणाम था। इसकी जड़ें पूर्वगामी सार्वजनिक संस्थाओं तथा 'वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट', 'आर्म्स ऐक्ट', 'भारतीय असैनिक सेवाओं की आयु कम किये जाने' और 'इलबर्ट बिल विवाद' आदि विषयों में सन्निहित थीं। कांग्रेस के संस्थापकों ने मार्च, 1885 में यह निश्चित किया कि बड़े दिन की छुट्टियों में देश के सब भागों के प्रतिनिधियों का पूना में पहला अधिवेशन किया जाय। अधिवेशन के लिए एक उद्देश्य पत्र निकाल कर यह घोषणा की गई कि- '25 से 31 दिसम्बर, 1885 तक पूना में इण्डियन नेशनल यूनियन की एक परिषद की जायगी। इसमें बंगाल, बम्बई और मद्रास प्रदेशों के राजनीतिज्ञ जो अंग्रेजी भाषा भली प्रकार जानते हैं, सम्मिलित होंगे। इस परिषद के प्रत्यक्ष उद्देश्य यह होंगे : (1) राष्ट्र की प्रगति के कार्य में जी-जान से लगे हुए लोगों का एक-दूसरे से परिचय हो जाना और (2) इस वर्ष कौन-कौन से राजनीतिक कार्य अंगीकार किए जायँ, इसकी चर्चा करके निर्णय करना।

लेकिन निश्चित समय से कुछ पूर्व पूना में हैजा फैल जाने के कारण संयोजकों ने अधिवेशन का स्थान बदल कर बम्बई कर दिया। इस प्रकार 28 दिसम्बर, 1885 को दिन के 12 बजे बम्बई के गोकुलदास तेजपाल संस्कृत पाठशाला के भवन में कांग्रेस का पहला अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में देश के सभी भागों से आये 72 प्रतिनिधियों ने भाग लिया जिसमें मि.ह्यूम,

दादाभाई नौरोजी, महादेव गोविन्द रानाडे, दीनशाह बाचा, फिरोजशाह मेहता, के.टी.तैलंग, एस. सुब्रह्मण्यम अय्यर, रघुनाथ राव तथा आर.एम.स्याणी आदि प्रमुख महापुरुष थे। ह्यूम साहब ने व्योमेशचन्द्र बनर्जी के सभापतित्व का प्रस्ताव उपस्थित किया और एस. सुब्रह्मण्यम अय्यर ने उसका समर्थन तथा के.टी.तैलंग ने उसका अनुमोदन किया। अध्यक्ष-पद से भाषण करते हुए बनर्जी जी ने कहा, "हमारी आकांक्षा का सार यह है कि शासन की आधारशिला विस्तृत हो तथा जनता को उचित भाग मिले।" कांग्रेस की गुरुता की ओर प्रतिनिधियों का ध्यान दिलाते हुए अध्यक्ष महोदय ने कांग्रेस का उद्देश्य इस प्रकार बतलाया :

(क) साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागों में देश-हित के लिए लगन से काम करने वालों की आपस में घनिष्ठता और मित्रता बढ़ाना।

(ख) समस्त देश-प्रेमियों के अन्दर प्रत्यक्ष मैत्री व्यवहार के द्वारा पूर्व-दूषित संस्कारों को मिटाना और राष्ट्रीय एकता का पोषण करना।

(ग) महत्वपूर्ण और आवश्यक सामाजिक प्रश्नों पर भारत के शिक्षित लोगों में अच्छी तरह चर्चा करने के बाद जो परिपक्व सम्मतियाँ प्राप्त हों उनका प्रामाणिक तथ्य संग्रह करना।

(घ) उन उपायों और दिशाओं का निर्णय करना जिनके द्वारा भारत के राजनीतिज्ञ देश-हित के कार्य करें।

कांग्रेस ने अपने प्रथम अधिवेशन में निम्नलिखित प्रस्तावों पर अधिकार जोर दिया :

(1) भारत-मंत्री की इण्डिया कौंसिल तोड़ दी जाय।
(2) व्यवस्थापिका परिषद का सुधार तथा विस्तार किया जाय।
(3) भारतीय शासन विधान की जाँच के लिए राजकीय कमीशन की नियुक्ति की जाय।
(4) इण्डियन सिविल सर्विस की प्रवेश-परीक्षा इंगलैण्ड और भारत दोनों जगह एक साथ हो।
(5) कपास पर आयात-कर की पुनर्स्थापना की जाय, तथा
(6) भारत के सैनिक-व्यय में कटौती की जाय।

सरकार की प्रतिक्रिया– आरम्भ में सरकार और कांग्रेस के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण रहे। कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन 1886 में कलकत्ता में दादाभाई नौरोजी के सभापतित्व में हुआ जिसमें भाग लेने वाले प्रतिनिधियों की संख्या 72 से बढ़कर 436 हो गई। वाइसराय लार्ड डफरिन ने कांग्रेस के प्रतिनिधयों के सम्मान में प्रीतिभोज दिया। इसी प्रकार का सम्मान 1887 में मद्रास के गवर्नर ने किया। 1887 में कांग्रेस का तीसरा सम्मेलन बदरुद्दीन तैयबजी की अध्यक्षता में मद्रास में हुआ। इस सम्मेलन में 607 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। कांग्रेस की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर सरकार की इस संस्था के प्रति दृष्टि बदल गई। कलकत्ता के सेंट एण्ड्रूज क्लब में एक भोज के अवसर पर भाषण करते हुए लार्ड डफरिन ने कहा, "कांग्रेस का झुकाव राजद्रोह की ओर हो गया है।" श्रीमती एनी बेसेन्ट के अनुसार जब 1887 में एक प्रतिनिधि ने अपने जिला-अधिकारी की आज्ञा का उल्लंघन कर कांग्रेस के तीसरे अधिवेशन के भाग लिया तो उसे शान्ति बनाये रखने के लिए 10,000 रुपये की जमानत देनी पड़ी। कांग्रेस का चौथा अधिवेशन 1888 में इलाहाबाद में हुआ। लेकिन इस अधिवेशन में कांग्रेस को विशेष आपत्ति का सामना करना पड़ा। उसे पाण्डाल तक के लिए जगह नहीं मिली। अन्त में दरभंगा के महाराजा लक्ष्मेश्वरसिंह ने सरकारी भवन के सामने एक 'लाउथर दुर्ग' नामक भवन खरीद कर कांग्रेस की सहायता की, तब कहीं जाकर अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन के सभापति कलकत्ता के प्रसिद्ध व्यापारी मिं. जार्ज यूल थे। यह अधिवेशन अत्यन्त सफल रहा और इसमें लगभग 1,248 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। बम्बई में होने वाले सन् 1889 ई. के चौथे अधिवेशन में 1889 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस अधिवेशन में ब्रिटिश लोकसभा के एक सदस्य चार्ल्स ब्रैडला सम्मिलित हुए तथा सर विलियम

वैडरबर्न ने अधिवेशन का सभापतित्व किया। उन्होंने भाषण करते हुए कहा, "मैं जनता को छोड़कर किसके लिए कार्य करूँ? जनता में उत्पन्न होकर जनता द्वारा विश्वास किया जाकर मैं जनता के लिए ही मरूँगा।" 1890 में सरकार का विरोध बहुत बढ़ गया और इसी वर्ष एक आज्ञापत्र निकाल कर यह हिदायत कर दी कि कोई भी सरकारी अफसर कांग्रेस अधिवेशन में शामिल न हो। यहाँ तक कि दर्शक बनकर भी न जाय। कांग्रेस से सरकारी कर्मचारी तो अलग हो गये, परन्तु कांग्रेस की लोकप्रियता बढ़ती ही गई।

1892 का भारतीय कौन्सिल कानून– कांग्रेस के बढ़ते हुए जन-आन्दोलन को देखकर लार्ड डफरिन ने भी परिस्थिति की गम्भीरता का अनुभव किया। उसने कौंसिलों के सुधार का प्रयत्न आरम्भ किया, जिसके परिणामस्वरूप 1892 का 'भारतीय कौन्सिल कानून' पारित हुआ। लेकिन भारतीयों को इस कानून से संतोष न हुआ क्योंकि इस कानून में निम्न चार असन्तोषजनक बातों का समावेश था :

(1) इस कानून में निर्वाचन के सिद्धान्त की स्वीकृति नहीं थी और निर्वाचन प्रणाली अत्यन्त जटिल थी।

(2) पूरक प्रश्नों के पूछने की कोई व्यवस्था न थी।

(3) पंजाब प्रान्त को केन्द्रीय अथवा स्थानीय कौन्सिलों में कोई प्रतिनिधित्व नहीं प्रदान किया गया था।

(4) कुछ वर्गों से प्रतिनिधित्व छीनकर अन्य वर्गों को अनुपात में अधिक अधिकार प्रदान किया गया था।

1893 के कांग्रेस अधिवेशन में गोखले ने 1892 के कौंसिल कानून की कटु आलोचना की और कहा, "व्यवस्थापिका सभाओं के विषय में जो कानून पारित किये गये हैं उनमें सुधार-योजना का उद्देश्य ही जानबूझ कर नष्ट कर दिया गया है।"

लार्ड डफरिन के बाद लार्ड लैन्सडाउन तथा लार्ड एलगिन द्वितीय क्रमशः वाइसराय हुए। ये दोनों ही अत्यन्त साधारण स्तर के व्यक्ति थे। लार्ड एलगिन द्वितीय के शासन-काल में 1896 में भारत के विभिन्न भागों में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। सरकार ने अकाल पीड़ितों के सहायता की जो व्यवस्था की वह केवल दिखावा-मात्र ही थी। दुर्भिक्ष के साथ-ही-साथ अगस्त, 1896 में महामारी का प्रसार बम्बई से हुआ। इस महामारी ने गाँव-के-गाँव उजाड़ दिये तथा असंख्य व्यक्तियों को इस रोग के कारण अपने प्राण गँवाने पड़े। इस महामारी को रोकने के लिए सरकार की ओर से कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया। फलतः इससे इतना असन्तोष बढ़ा कि उसी वर्ष अधिकारी रैंड और आयर्स्ट की पूना में हत्या कर दी गई। इस घटना के फलस्वरूप तिलक तथा अन्य राजनीतिक नेताओं पर राज-द्रोह का अभियोग लगाकर उन्हें दीर्घ-कालीन कारावास का दण्ड दे दिया गया। तीन महीने पश्चात् अमरावती कांग्रेस के अधिवेशन में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने कहा, "देश की आँखों में आँसू हैं। मेरे हृदय में तिलक के लिए पूरी सहानुभूति है। भारतीय पत्रों की ओर से मैं कह सकता हूँ कि हमें विश्वास है कि तिलक निर्दोष हैं।"

1899 में लार्ड कर्जन वाइसराय होकर भारत आया। उसे भारतीयों की भावनाओं के साथ किसी प्रकार की सहानुभूति न थी। उसने पूर्णरूपेण भारतीयों की उपेक्षा की। उसने 'कलकत्ता कारपोरेशन ऐक्ट' तथा 'भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम' पारित कराये जिनका उद्देश्य इन संस्थाओं को सरकारी नियन्त्रण के अन्तर्गत लाना था। उसके काल की सबसे अवांछित घटना बंगाल का विभाजन (1905) था। इससे सारे भारत की जनता को अत्यधिक क्षोभ हुआ। लेकिन लॉर्ड कर्जन का कार्य भारत के लिए वरदान भी सिद्ध हुआ। उसके इस कार्य ने भारतीय जनता को अभूतपूर्व शक्ति प्रदान की। बंगाल विभाजन की विस्तृत विवेचना हम अगले पृष्ठों में करेंगे।

उदार राष्ट्रवादियों की मनोवृत्ति एवं कार्य-प्रणाली– 1885 से लेकर 1905 तक कांग्रेस के उदार राष्ट्रवादियों का एकाधिकार रहा जो अपनी माँगों में नम्र थे। उन्हें अंग्रेज जाति की न्यायप्रियता में पूर्ण विश्वास था। वे समझते थे कि जिस दिन अंग्रेज जाति को यह विश्वास हो जायगा कि भारतीयों में शासन–क्षमता आ गई है, उसी दिन वह भारत को राजनीतिक स्वतन्त्रता प्रदान कर देगी। वे अपना कार्य सार्वजनिक वाद–विवाद, आन्दोलनों, प्रदर्शनों, प्रार्थना–पत्रों तथा प्रतिनिधिमण्डलों के माध्यम से करते थे। उन्हें प्रार्थनाओं तथा अपीलों में अटूट विश्वास था। उनकी कार्य–प्रणाली को 'राजनीतिक भिक्षावृत्ति' की संज्ञा प्रदान की गई है। श्री गुरमुख निहाल सिंह के कथनानुसार, "प्रारम्भिक दिनों की कांग्रेस ने अपनी स्वामिभक्ति की घोषणाओं के साथ मध्यम मार्ग तथा अपील के स्वर को ही नहीं, प्रार्थना के स्वर को अपनाया तथा उन दिनों राष्ट्रीय जागृति वाली राजनीतिक शिक्षा के सम्बन्ध में पर्याप्त वास्तविक कार्य किया। साथ ही उसने भारतीयों को संगठित करने तथा उसमें समान भारतीय राष्ट्रीयता की जागृति की भावना उत्पन्न करने में भी पर्याप्त योग दिया।"

द्वितीय चरण (1905–1919)

संघर्ष के पथ पर

"स्वतंन्त्रता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा।" –तिलक

बंग–भंग (बंगाल विभाजन)– 1905 में लार्ड कर्जन ने वह मूर्खतापूर्ण कदम उठाया जिसने भारत के राजनीतिक आकाश में भयंकर तूफान ला दिया। उसका यह कदम था– बंग-भंग अर्थात् बंगाल के दो टुकड़े कर देना। उस समय के बंगाल में आज के पश्चिम बंगाल, बंगला देश, बिहार और उड़ीसा शामिल थे। उसकी आबादी 8 करोड़ थी जिसमें बंगालियों की संख्या तीन करोड़ थी। उस समय बंगाल राजनीतिक जागरण और आन्दोलन का प्रमुख केन्द्र था।

राजनीतिक जागरण और आन्दोलन के इस केन्द्र को कमजोर करने के उद्देश्य से कर्जन ने उसके दो टुकड़े कर दिये। पूर्व बंगाल को असम के साथ मिलाकर एक प्रान्त बना दिया और उसकी राजधानी ढाका में रखी। पश्चिम बंगाल, बिहार और उड़ीसा को मिलाकर एक प्रान्त बनाया, उसकी राजधानी कलकत्ता में ही रही। लार्ड कर्जन की इस योजना में हिन्दुओं की शक्ति को कम करने और मुसलमानों को प्रोत्साहन देने की नीति छिपी थी, लेकिन दलील यह दी गई थी कि यह कार्य प्रशासन की सुविधा के लिए किया गया है। ज्योंही भारतीयों को लार्ड कर्जन की इस योजना का पता लगा उन्होंने इसका घोर विरोध किया। बंगाल के लोगों ने इसे 'बंगाल की पनपती हुई राष्ट्रीय एकता के लिए धूर्ततापूर्ण आक्रमण' समझा। हजारों सभाओं का आयोजन करके यह माँग की गई कि बंगाल का विभाजन न किया जाय। ब्रिटिश सरकार के भारतीय विभाग के सचिव से अनुरोध किया गया कि कर्जन के प्रस्ताव पर अपनी सम्मति न दें। 70 हजार भारतीयों ने हस्ताक्षर कर एक आवेदन–पत्र ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के पास भेजा कि वह कर्जन के इस अनुचित कार्य को रोके। लेकिन कहीं कोई सुनवाई न हुई और अन्ततः 1 सितम्बर, 1905 को बंगाल विभाजन की घोषणा कर दी गई और 16 अक्टूबर को उस घोषणा को व्यावहारिक रूप दे दिया गया। बंगाल विभाजन से भारतीयों को अत्यधिक दुःख हुआ। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने इस सम्बन्ध में लिखा,– "बंगाल विभाजन की योजना एक बम के गोले की भाँति गिरी। हमें ऐसा लगा कि हम अपमानित, उपेक्षित और प्रवंचित कर दिये गये हैं। कलकत्ता के अंग्रेजी पत्र 'स्टेट्समैन' ने विभाजन की तीव्र आलोचना करते हुए लिखा– "स्पष्ट है कि यह निष्प्रयोजन और मूर्खतापूर्ण नीति का पालन करके सरकार ने बड़ी भारी भूल की है जिसका परिणाम यही होगा कि शीघ्र ही देश

पर मर-मिटने वालों की एक पूरी सेना उठ खड़ी हो जायेगी।"

बहिष्कार और स्वदेशी आन्दोलन- 16 अक्टूबर, 1905 को सम्पूर्ण बंगाल में भूख-हड़ताल की गई। प्रातःकाल से ही शहरों की सड़कें 'बन्देमातरम्' के नारों से गूँज उठीं। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों से लड़ने के लिए कांग्रेस के उग्रपक्ष ने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का आन्दोलन प्रारम्भ किया। इसके साथ ही साथ स्वदेशी वस्तुओं के इस्तेमाल का नारा दिया गया। बहिष्कार और स्वदेशी प्रचार के कार्यक्रम में विद्यार्थियों ने प्रमुख रूप से भाग लिया। उन्होंने विदेशी माल की होलियाँ जलायीं और विदेशी माल की दुकानों पर धरना दिया। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार एक धार्मिक प्रतिज्ञा बन गई और यह प्रत्येक बंगाली की जबान पर था कि "ईश्वर को साक्षी करके हम प्रतिज्ञा करते हैं कि जहाँ तक सम्भव और व्यावहारिक हो सकेगा हम देश का बना हुआ माल ही प्रयोग करेंगे और विदेशी माल का बहिष्कार करेंगें। भगवान हमारी सहायता करे।" सरकारी स्कूलों का भी बहिष्कार किया गया और राष्ट्रीय विद्यालय खोले गये। केवल पूर्वी बंगाल में 24 राष्ट्रीय हाई स्कूल खुल गये और भूतपूर्व न्यायाधीश गुरुदास बनर्जी के नेतृत्व में राष्ट्रीय शिक्षा के प्रसार के लिए 'बंगजातीय परिषद' की स्थापना की गई। बाबू विपिनचन्द्र पाल ने सम्पूर्ण देश में घूम-घूमकर राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचार किया। इसी प्रकार देश का तूफानी दौरा करते हुए तिलक ने देशवासियों से कहा, "हमारे पास हथियार नहीं है और हमें हथियारों की जरूरत भी नहीं है। हमारा बहिष्कार ही जबर्दस्त राजनीतिक हथियार है। हर अंग्रेज जानता है कि वे इस देश में मुट्ठी भर लोग हैं और उनमें से हर आदमी हमें बेवकूफ बनाकर यह विश्वास कराता है कि तुम कमजोर हो और वे ताकतवर हैं। हमारा दल यही चाहता है कि मात्र इस बात को महसूस करें कि आपका भविष्य आपके हाथों में है।"

जहाँ एक ओर देश में राष्ट्रीय एवं क्रान्तिकारी आन्दोलन उग्र रूप ले रहा था, दूसरी ओर नरम दल वालों ने हिंसा का विरोध किया। 1906 से कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में उग्र तथा उदार दलों के बीच काफी संघर्ष हुआ और फूट पड़ते-पड़ते बची। इसका श्रेय दादाभाई नौरोजी को है जिन्हें इंगलैण्ड से इस अधिवेशन का सभापतित्व करने के लिए विशेष रूप से बुलाया गया था। गोखले ने उग्रदल वालों को चेतावनी देते हुए कहा, "ब्रिटिश सरकार के पास शक्ति का कितना संचय है, यह आप समझ नहीं पा रहे हैं। यदि आपकी बात मानकर आज कांग्रेस कोई कार्य प्रारम्भ करती है तो सरकार को पाँच मिनट के भीतर हमारा गला घोंट देने में तनिक भी कठिनाई नहीं होगी।" इस चेतावनी के बावजूद भी उग्रदल निम्न चार प्रस्तावों को पारित कराने में सफल हो गया :

(1) विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार,
(2) स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार,
(3) राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति का प्रचलन तथा
(4) स्वराज्य की प्राप्ति।

इस अधिवेशन में सर्व-प्रथम 'स्वराज्य' की माँग की गई और बंगाल-विभाजन के विरुद्ध बहिष्कार और स्वदेशी आन्दोलन को न्यायसंगत माना गया। दादा भाई नौरोजी ने भी उग्रवादी विचारधारा का पूर्णतया विरोध करना मूर्खता समझा और अति विनम्र तथा संवैधानिक दृष्टिकोण त्याग कर अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए कहा, "स्वतन्त्रता हमारे जीवन की श्वास है। हम स्वतन्त्रता चाहते हैं . . . . . हम दया की भीख नहीं माँगते। हम केवल न्याय चाहते हैं। ब्रिटिश साम्राज्य के नागरिक होने के नाते अपने अधिकारों का और अधिक विभाजन की अपेक्षा आज हम पूरे प्रश्न को एक शब्द- 'स्वराज्य' में व्यक्त कर सकते हैं, उसी प्रकार का स्वराज्य, जैसा इंगलैण्ड तथा अन्य उपनिवेशों में प्रचलित है।"

सूरत-विच्छेद (1907)– अगले वर्ष (1907) सूरत में कांग्रेस का अधिवेशन गर्म वातावरण में आरम्भ हुआ। उग्रवादी चाहते थे कि अध्यक्ष पद पर उनके दल का कोई व्यक्ति हो ताकि कलकत्ता अधिवेशन के प्रस्तावों की पुष्टि की जा सके। परन्तु नरम दल के नेता रासबिहारी घोष अध्यक्ष निर्वाचित हो गये। उग्रवादियों ने जो तिलक को अध्यक्ष बनाना चाहते थे, उनका घोर विरोध किया और अशान्ति उत्पन्न कर दी। मंच पर बैठे नेताओं पर कुर्सियाँ, जूतों और चप्पलों की वर्षा की गयी तथा लाठियों का खुला प्रयोग किया गया। इस प्रकार अधिवेशन स्थगित कर दिया गया और कांग्रेस ने पूर्णरूपेण दो दल हो गये अर्थात् उग्रदल तथा नरम दल।

सूरत की फूट के बाद नरमदल वालों के नेताओं ने 18 अप्रैल, 1908 को इलाहाबाद में एक कन्वेन्शन में एकत्र होकर राष्ट्रीय कांग्रेस के लिए एक नया संविधान तैयार किया जिसका उद्देश्य कांग्रेस की कार्यप्रणाली को सुचारु रूप से संचालित करना था। संविधान की प्रथम धारा के अनुसार यह निश्चय किया गया कि "राष्ट्रीय कांग्रेस का उद्देश्य भारतवासियों के लिए उस प्रकार की शासन-व्यवस्था प्राप्त करना है जैसी ब्रिटिश साम्राज्य के स्वयं-शासित उपनिवेशों में है। साथ-ही-साथ वह साम्राज्य के अधिकारों तथा उत्तरदायित्वों में उन्हीं की भाँति भारत को भी भाग दिलाना चाहती है, इन ध्येयों की प्राप्ति का प्रयत्न वैधानिक उपायों द्वारा शासन की वर्तमान प्रणाली में धीरे-धीरे सुधार, राष्ट्रीय एकता तथा धन-सेवा की भावना के विकास तथा देश की बौद्धिक, आर्थिक और औद्योगिक देन के संगठन द्वारा होगा।"

क्रान्तिकारी आन्दोलन– क्रान्तिकारी आन्दोलन भारत सरकार की दमनकारी नीति का स्वाभाविक परिणाम था। भारत के उपमंत्री मि. मान्टेग्यू ने 1910 में स्वीकार किया कि 'पेनल कोड की सजाओं ने और चाकू चलाने की नीति' ने साधारण और बिगड़े नवयुवकों को शहीद बनाया और विप्लवकारी पत्रों की संख्या बढ़ा दी। अब हम देश के विभिन्न भागों में क्रांतिकारी आन्दोलन के विकास और कार्यों पर विचार करेंगे।

बंगाल– बंगाल क्रान्तिकारी आन्दोलन का प्रमुख केन्द्र था। वहाँ श्री अरविन्द के भाई वारीन्द्र कुमार घोष और स्वामी विवेकानन्द के भाई भूपेन्द्रनाथ दत्त ने क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार किया। इन दोनों ने 1906 में 'युगान्तर' नामक समाचार पत्र आरम्भ किया। यह पत्र इतनी जल्दी प्रसिद्ध हो गया कि इसकी ब्रिकी 50,000 से ऊपर हो गई। इस पत्र द्वारा जनता में राजनीतिक तथा धार्मिक शिक्षा का प्रचार किया गया। एक लेख में उन्होंने अपने क्रान्तिकारी विचारों को प्रस्तुत करते हुए कहा है, "जब धर्म की ग्लानि और अधर्म की उन्नति होगी तब ही साधुओं की रक्षा और पापियों के नाश के लिए भगवान अवतार ग्रहण करेंगे।" आगे उन्होंने कहा, "भारतवासियो डरो मत! ईश्वर चुप नहीं बैठा रहेगा। वह अपना वचन पूरा करेगा। भगवान के वचन पर दृढ़ विश्वास करते हुए उसकी शक्ति का आह्वान करो। जब मनुष्यों के हृदय में ईश्वरीय शक्ति की ज्योति चमकती है तब वह असम्भव कार्य भी कर डालते हैं।"

बंगाल के क्रान्तिकारियों ने एक कार्यक्रम बनाया जिसमें निम्न छः प्रमुख बातें अन्तर्निहित थीं : (1) भारत के शैक्षिक वर्ग में दासता के विरुद्ध घृणा उत्पन्न करने के लिए समाचार-पत्रों में प्रबल प्रचार किया जाय। (2) बेकारी और भुखमरी का भय भारतीयों के दिल से निकाला जाय और राष्ट्रीयता तथा मातृभूमि के प्रति उनमें प्रेम पैदा किया जाय। (3) सरकार को बन्देमातरम् के जुलूसों और स्वदेशी सम्मेलनों तथा बहिष्कार के द्वारा काम में लगाये रखा जाय। (4) नवयुवकों की भर्ती करके उन्हें शस्त्रों के चलाने की शिक्षा दी जाय, साथ ही उन्हें नेताओं की आज्ञानुसार चलने की शिक्षा प्रदान की जाय। (5) हथियारों का निर्माण किया जाय, साथ ही उन्हें विदेशों से खरीद कर लाया जाय। (6) क्रान्तिकारी आन्दोलन को संचालित करने के लिए छापे और डकैतियाँ डाल कर धन प्राप्त किया जाय। बंगाल के नवयुवकों का इन शब्दों में

आह्वान किया गया– "क्या शक्ति के उपासक बंगाली रक्तपात से हिचकिचायेंगे? इस देश में अंग्रेजों की संख्या डेढ़ लाख से अधिक नहीं है और हर जिले में कितने थोड़े अफसर हैं। यदि आपका दृढ़ निश्चय हो तो एक ही दिन में ब्रिटिश हुकूमत समाप्त कर सकते हैं। अपना जीवन दे दो और उससे पहले एक जीवन खत्म कर दो। यदि आप बिना खून किये स्वतन्त्रता की वेदी पर अपना बलिदान कर देंगे तो देवी की पूजा पूरी नहीं होगी।"

श्री वारीन्द्र घोष और भूपेन्द्रनाथ दत्त की अपील का परिणाम यह हुआ कि अनेक क्रान्तिकारी समितियाँ बन गईं जिनमें एक 'अनुशीलन समिति' थी। इस समिति की गाँवों और नगरों में 500 शाखाएँ थीं। इसने पूर्ण आतंकवादी कार्यक्रम आरम्भ किया। इस समिति का मूल मंत्र था– 'खून के बदले खून और जान के बदले जान'। सरकार की दमन नीति का प्रत्युत्तर देने के लिए 9 दिसम्बर, 1907 को बंगाल के गवर्नर ऐन्ड्रूज फ्रेयर की ट्रेन को नष्ट करने का प्रयास किया गया। इसी महीने की 23 तारीख को ढाका के भूतपूर्व जिलाधीश ऐलेन महोदय को फरीदपुर जिले के स्टेशन पर पीठ में गोली मारी गई, किन्तु भाग्यवश उनके प्राण बच गये। राष्ट्रवादियों ने किंग्सफोर्ड को मारने का निश्चय किया, क्योंकि वह स्वदेशी कार्यकर्ताओं को कठोर से कठोर दण्ड देता था। उसे मारने के लिए एक उपाय सोचा गया किन्तु वह सफल नहीं हुआ। आतंकवादियों ने उससे एक पुस्तक लेकर उसमें एक बम रख दिया। यह सोचकर कि बम फट जायेगा और वह सदैव के लिएं सो जायगा, किन्तु किंग्सफोर्ड को पुस्तक खोलने की आवश्यकता न पड़ी। इस योजना के असफल होने पर खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी को किंग्सफोर्ड की हत्या करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया। जब वे किंग्सफोर्ड के बंगले की ओर जा रहे थे तब उन्हें एक बग्घी आती हुई दिखायी दी। उन्होंने यह सोचकर कि बग्घी में किंग्सफोर्ड होगा, उस पर बम फेंक दिया। दुर्भाग्य से उसमें किंग्सफोर्ड नहीं था बल्कि उसमें श्रीमती केनेडी और कुमारी केनेडी थीं, जिन्हें अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। प्रफुल्ल चाकी को मोकामा स्टेशन पर पुलिस ने घेर लिया। पुलिस के हाथ से बचने के लिए उसने स्वयं को गोली मार ली, किन्तु खुदीराम बोस पकड़ा गया और उस पर मुकदमा चलाकर उसे 11 अगस्त, 1908 को फाँसी दे दी गई। इस बलिदान पर प्रकाश डालते हुए शिरोल ने लिखा है, 'बंगाल के राष्ट्रवादियों के लिए वह शहीद और अनुकरणीय वीर हो गया। विद्यार्थियों ने और अन्य बहुत से लोगों ने उसके लिए शोक मनाया और उसकी स्मृति में स्कूल दो-तीन दिन बन्द रहे। उसके चित्र बहुत अधिक बिके और धीरे-धीरे नौजवान लोग ऐसी धोतियाँ पहनने लगे, जिनकी किनारी में खुदीराम बोस का नाम खुदा होता था।"

पंजाब– बंगाल के अतिरिक्त पंजाब में भी क्रान्तिकारी आन्दोलन फैल गया था। इस प्रान्त में सरकार के 'उपनिवेशीकरण विधेयक' (Colonisation Bill)के कारण किसानों में व्यापक असन्तोष फैला हुआ था। इस विधेयक का उद्देश्य भूमि की चकबन्दी को हतोत्साहित करना तथा सम्पत्ति के विभाजन के अधिकारों में हस्तक्षेप करना था। इस विधेयक के परिणामस्वरूप लाहौर और रावलपिण्डी में किसानों के दंगे हुए जिसके फलस्वरूप लाला लाजपतराय और सरदार अजीत सिंह को गिरफ्तार कर बर्मा ले जाया गया और वहाँ मांडले के किले में कैद कर दिया गया। 'पंजाबी' पत्र के मालिक जसवन्त राव और सम्पादक अठावले को छः छः महीने की सजा दी गई और क्रमशः 1,000 रुपये तथा 200 रुपये जुर्माना किया गया। पंजाब के कुछ क्रान्तिकारियों द्वारा भारत के गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिन्ज की जान लेने की कोशिश की गई।

महाराष्ट्र– बंगाल, पंजाब के अतिरिक्त महाराष्ट्र में भी क्रान्तिकारी आन्दोलन फैल गया था। यहाँ के लोगों को तिलक द्वारा सम्पादित 'केसरी' पत्र से प्रेरणा मिलती थी, जिसकी 1907 में प्रति सप्ताह 20,000 प्रतियाँ छापी जाती थीं। सरकार का दमनचक्र महाराष्ट्र में भी तेज चल रहा था। 1908 के प्रारम्भ में बम्बई प्रान्त के चार देशी भाषा के पत्रों पर राजद्रोह के मुकदमें

चलाये गये। मराठी दैनिक 'कला' के सम्पादक परांजपे को गिरफ्तार कर लिया गया। 24 जून, 1908 को लोकमान्य तिलक को गिरफ्तार किया गया और 'केसरी' में प्रकाशित लेखों को लेकर उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। उन्हें छः साल के देश-निकाले की सजा दी गई और बर्मा के माण्डले जेल में ले जाकर बन्द कर दिया गया। तिलक को दी गई इस सजा के प्रतिवाद में बम्बई में मजदूरों की जबर्दस्त हड़ताल हुई जो 6 दिनों तक जारी रही। हड़ताल के दौरान कई स्थानों पर मजदूरों पर गोलियाँ चलाई गईं जिससे 14 व्यक्ति मारे गये और 30 घायल हुए, किन्तु गैर सरकारी सूत्रों के अनुसार मारे जाने वालों की संख्या 30 और घायलों की संख्या 100 थी। समाचार-पत्रों ने भी इस विरोध में साथ दिया। मान्चेस्टर गार्जियन ने लिखा- "जब तक तिलक के मुकदमें और उसमें उन्हें मिली सजा की याद लोगों में बनी रहेगी, तब तक भारतीयों और अंग्रेजों के बीच कटुता दूर न होगी और ऐसा पारस्परिक विश्वास पैदा न होगा जिसके बिना अंग्रेजों द्वारा अच्छा शासन संचालन बिल्कुल असम्भव और सभी सुधार व्यर्थ होंगे।"

क्रान्तिकारियों का प्रमुख केन्द्र नासिक था। यहाँ उन्होंने 'अभिनव भारत' नामक संस्था की स्थापना की थी। इस संस्था का प्रमुख उद्देश्य आतंकवादी कार्यों से सरकार को नष्ट करना था। गणेश सावरकर इस संस्था के प्रमुख व्यक्ति थे। 9 जून, 1909 को उनको कालेपानी की सजा दी गई। नासिक के जिलाधीश मि. जेक्सन को जिन्होंने उनके मुकदमें का फैसला किया था, 21 दिसम्बर, 1909 को उन्हें के विदाई सम्मान में आयोजित एक समारोह में गोली मार दी गई। इस सम्बन्ध में संस्था के अनेक सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया गया जिनमें से 27 को लम्बी और कठोर सजाएँ दी गई। उनमें से तीन को फाँसी भी दी गयी। सरकार का भी दमनचक्र बड़ी तेजी से चल रहा था। उसने प्रेसों, समाचार-पत्रों, सभाओं, जुलूसों आदि पर कठोर प्रतिबन्ध लगाने के लिए 'विस्फोटक पदार्थ कानून' तथा 'समाचार-पत्र कानून' पारित किए। इन्हें बड़ी कठोरता से लागू किया गया। लेकिन दमन-चक्र की उपेक्षा करता हुआ क्रान्तिकारी आन्दोलन चलता रहा और अहमदाबाद में लार्ड मिण्टो की सवारी पर दो बम फेंके गये, लेकिन ठीक समय पर विस्फोट न होने के कारण वाइसराय महोदय के प्राण बच गये।

क्रान्तिकारी आन्दोलन की असफलता के कारण- क्रान्तिकारी आन्दोलन की असफलता के निम्नलिखित कारण थे: (1) यह आन्दोलन केवल मध्यवर्ग के शिक्षित नवयुवकों तक ही सीमित रहा। इसे उच्च वर्ग की सहानुभूति और सामान्य जनता का समर्थन प्राप्त न था। (2) आन्दोलनकारियों का कोई केन्द्रीय संगठन न था जो विभिन्न प्रान्त के क्रान्तिकारी नेताओं के कार्यक्रम में सामंजस्य स्थापित करता। (3) आन्दोलन के नेताओं को अस्त्र-शस्त्र की प्राप्ति में बड़ी कठिनाई होती थी। (4) सर आशुतोष मुखर्जी और एस.एन.बनर्जी जैसे उच्च वर्ग के नेताओं ने क्रान्तिकारियों के विरुद्ध सख्त कार्यवाही करने की सलाह भी दी। (5) सरकार की भयानक कार्यवाहियों ने भी आन्दोलन को शिथिल करने में सहायता पहुँचायी। (6) राष्ट्रीवादी आन्दोलन का नेतृत्व गाँधी जी के हाथ में आ जाने से क्रान्तिकारी आन्दोलन धीरे-धीरे समाप्त हो गया।

मार्ले-मिन्टो सुधार- शीघ्र ही सरकार ने अनुभव किया कि केवल दमनचक्र से काम नहीं चल सकता। फलतः उसने नरम दल वालों, मुसलमानों, जमींदारों और देशी नरेशों को अपने पक्ष में करने के उद्देश्य से सुधारवादी नीति का अनुसरण किया, जिसके फलस्वरूप भारत सचिव मार्ले के प्रयत्न से सन् 1909 का 'मार्ले-मिन्टो अधिनियम' पारित किया गया। इस अधिनियम द्वारा भारतमंत्री की परिषद् (India Council) तथा वाइसराय की कार्यकारिणी में एक-एक भारतीय सदस्य और बढ़ा दिया गया, केन्द्रीय व्यवस्थापिका और प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं में गैर सरकारी भारतीयों का बहुमत कर दिया गया, व्यवस्थापिकाओं में निर्वाचित तथा मनोनीत

दोनों प्रकार के सदस्यों को स्थान दिया गया। मुसलमानों को पृथक निर्वाचन क्षेत्र प्रदान किया गया। नरम-दल ने इस विधान को स्वीकार कर लिया किन्तु गरम दल ने अस्वीकार कर दिया क्योंकि अंग्रेजों ने हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए अलग-अलग निर्वाचन क्षेत्रों की व्यवस्था की थी। यही निर्वाचन-प्रणाली देश के लिए घातक सिद्ध हुई और आगे चलकर 1947 में देश का विभाजन हुआ तथा पाकिस्तान का निर्माण हुआ।

उग्र और नरम दलों में समझौता– 1914 में प्रथम विश्व युद्ध प्रारंभ हो गया। ब्रिटेन ने घोषणा की कि 'यह युद्ध संसार को जनतन्त्रवाद के लिए सुरक्षित बनाने के उद्देश्य से लड़ा जा रहा है।' इस घोषणा के बाद नरम और गरम दोनों दलों ने अपना स्वतन्त्रता आन्दोलन स्थगित कर दिया। थोड़े ही समय उपरान्त तिलक को जेल से मुक्त कर दिया गया। गरम और उग्र दोनों दलों ने सोचा कि युद्ध में इंगलैण्ड की यथाशक्ति सहायता की जाय। 27 अगस्त, 1914 को तिलक ने अपने एक वक्तव्य में कहा, 'ऐसे संकट के समय हर भारतीय चाहे वह छोटा हो या बड़ा, अमीर हो या गरीब, उसका कत्तर्व्य है कि ब्रिटिश सरकार की भरसक सहायता करे।"

1915 में गोपालकृष्ण गोखले की मृत्यु हो गयी और कांग्रेस का नेतृत्व तिलक ने संभाला। उन्होंने हिन्दु-मुसलमानों में मेल कराने का प्रयत्न किया। 1916 में ए.सी. मजूमदार के सभापतित्व में लखनऊ कांग्रेस का अधिवेशन हुआ जिसमें मुहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में कांग्रेस और मुस्लिम लीग में समझौता हो गया। इतिहास में यह समझौता 'लखनऊ समझौता' के नाम से प्रसिद्ध है। इसी अधिवेशन में श्रीमती एनी बेसेन्ट के प्रयत्न से कांग्रेस के दोनों दलों में मेल हो गया। लखनऊ अधिवेशन में सर्व सम्मति से स्वराज्य की निश्चित माँग की गयी, साथ ही हिन्दुओं और मुसलमानों ने भी एक स्वर से स्वराज्य की माँग की।

स्वशासन (होमरूल) आन्दोलन– गृह शासन अथवा स्वशासन की प्राप्ति के लिए 28 अप्रैल, 1916 को बेलगाँव में औपचारिक रूप से तिलक ने 'होमरूल लीग' की स्थापना की जिसका उद्देश्य "ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत सारे वैधानिक तरीकों से स्वशासन प्राप्त करना और इस दिशा में जनमत तैयार करना था।" उन्होंने होमरूल लीग के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए कहा था, "होमरूल स्वशासन का मतलब केवल अपने घर का प्रबन्ध अपने हाथों में लेना है।" होमरूल स्वशासन की एक बहुत भी सरल परिभाषा, जिसे एक अनपढ़ किसान भी समझ सकता है, यह है कि "किसी अंग्रेज को अपने देश इंगलैण्ड में जो स्थान प्राप्त है, वही स्थान मुझे अपने देश में प्राप्त होना चाहिए।" श्रीमती एनी बेसेन्ट ने भी सितम्बर, 1916 को मद्रास में 'होमरूल लीग' की स्थापना की। इन दोनों संस्थाओं ने मिलकर देश में तात्कालिक स्वराज के लिए जोरदार आन्दोलन चलाया। 1917 में यह आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। सरकार ने भी इस आन्दोलन को दबाने का निश्चय किया। तिलक और श्रीमती एनी बेसेन्ट पर कड़ी नजर रखी जाने लगी। तिलक को एक वर्ष तक कोई राजनीतिक कार्य न करने का आदेश दिया गया। उन्होंने इस आदेश के विरूद्ध हाईकोर्ट में अपील की और तब यह आदेश वापस ले लिया गया। श्रीमती एनी बेसेन्ट द्वारा प्रकाशित 'कामनविल' तथा 'न्यू इण्डिया' नामक पत्रों से 20,000 रुपये की जमानत माँगी गई और वह जब्त भी कर ली गई। तत्पश्चात् सरकार ने तिलक, बेसेन्ट, अरण्डेल और एनी वाडिया साहब को बन्दी बना लिया और होमरूल आन्दोलन का अन्त कर दिया।

माण्टेग्यू की घोषणा– 1917 में प्रथम विश्व महायुद्ध काफी भीषण रूप धारण कर चुका था और इंगलैण्ड के लिए यह संकटमय काल था। इस समय भारत में भी राष्ट्रीय आन्दोलन बड़ी तेजी से चल रहा था। वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्ड ने भारत-मंत्री माण्टेग्यू को भेजी गयी एक गुप्त रिपोर्ट में लिखा– "तिलक, ऐनी बेसेन्ट और अन्य लोग तुरन्त स्वशासन प्राप्त करने के लिए बड़े जोर-शोर से आन्दोलन चला रहे हैं और इस बारे में यदि भारत सरकार द्वारा नीति विषयक

कोई निश्चित घोषणा तुरन्त न की गई तो अब तक जो बहुत से लोग इस बारे में कम जागरूक थे, वे भी इस आन्दोलन की लपेट में आ जायेंगे।" इस प्रकार की परिस्थितियों से विवश होकर ब्रिटिश सरकार ने भारत सम्बन्धी नीति में परिवर्तन करने का निश्चय किया। 20 अगस्त, 1917 को भारत-मंत्री माण्टेग्यू ने 'हाउस ऑफ कामन्स' में एक महत्वपूर्ण घोषणा की। यह घोषणा इस प्रकार थी :

"ब्रिटिश सरकार की यह नीति है कि प्रशासन की हर शाखा में भारतीयों को अधिकाधिक संख्या में सम्मिलित किया जाए और धीर-धीरे स्वशासी संस्थाओं को विकसित किया जाए, ताकि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के एक अभिन्न अंग के रूप में उत्तरदायी सरकार स्थापित हो सके।" उन्होंने आगे यह भी कहा है कि, "इस दिशा में प्रगति क्रमशः धीरे-धीरे ही हो सकती है और सरकार ही यह निर्णय करेगी कि कब और कितनी प्रगति हुई।"

इसके पश्चात् माण्टेग्यू ने सम्पूर्ण देश का भ्रमण करके 'माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट' प्रकाशित की। इस रिपोर्ट में सुधार के मोटे-मोटे प्रश्नों पर विचार किया गया था।

(1) स्थानीय स्वशासन के क्षेत्र में, यथासम्भव जनता का पूर्ण नियन्त्रण हो और स्थानीय संस्थाओं को बाह्य नियन्त्रण से अधिक से अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो।
(2) उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की क्रमिक प्राप्ति का पहला कदम प्रान्तों के क्षेत्र में उठाया जाय। थोड़ी मात्रा में उत्तरदायित्व अविलम्ब दे दिया जाना चाहिए और परिस्थितियों के अनुकूल होते ही ब्रिटिश सरकार को उद्देश्यपूर्ण उत्तरदायित्व देना होगा।
(3) भारत सरकार पूर्णरूपेण ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के प्रति उत्तरदायी हो और इस उत्तरदायित्व के अतिरिक्त उसका अधिकार सभी आवश्यक विषयों पर उस समय तक निर्विवाद बना रहे जब तक प्रान्तों में प्रचलित होने वाले परिवर्तनों के अभाव का ज्ञान प्राप्त न हो जाय।
(4) जैसे-जैसे उपर्युक्त परिवर्तन लागू होते जाँय, उसी अनुपात में भारत सरकार और प्रान्तीय सरकारों पर से भारत-मंत्री का नियन्त्रण भी कम कर दिया जाय।

आलोचना स्वरूप इस रिपोर्ट में औपनिवेशिक स्वराज्य की कोई चर्चा नहीं की गई थी। प्रान्तों में केवल द्वैध शासन लागू करने की व्यवस्था की गई और केन्द्रीय सरकार को पहले की भाँति निरंकुश और गैरजिम्मेदार रहने दिया गया था– यहाँ तक कि प्रान्तों में भी गवर्नरों को आरक्षण (रिजर्व) शक्तियाँ प्राप्त थीं जो जनता द्वारा निर्वाचित मंत्रियों के ऊपर तलवार की भाँति लटक रही थीं।

रौलट एक्ट– राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने के लिए 1918 में सरकार ने रौलट एक्ट पारित किया। भारतीयों ने इस एक्ट का घोर विरोध किया क्योंकि इस एक्ट द्वारा पुलिस अधिकारों में अभिवृद्धि कर दी गई थी। वह बिना वारण्ट सन्दिग्ध व्यक्तियों को गिरफ्तार कर बिना मुकदमा चलाये जेल में डाल सकती थी। घोर विरोध के बावजूद भी इसे 21 मार्च, 1919 को लागू कर दिया गया। महात्मा गाँधी ने इस कानून को 'काला कानून' की संज्ञा प्रदान की और उन्होंने इसके विरोध में 30 मार्च का दिन देशव्यापी हड़ताल तथा व्रत, प्रार्थना और आत्मशुद्धि के लिये निश्चित किया। बाद में यह तिथि बदलकर 6 अप्रैल कर दी गई। इस तिथि परिवर्तन की सूचना दिल्ली नहीं पहुँच सकी। वहाँ 30 मार्च को ही जुलूस निकाले गये और हड़ताल हुई। सत्याग्रह का नेतृत्व स्वामी श्रद्धानन्द ने किया। पुलिस ने गोली चलायी जिसके फलस्वरूप 5 व्यक्ति मारे गये तथा अनेक घायल हुए। 10 अप्रैल को अमृतसर के डिप्टी कमिश्नर ने डॉ. सत्यपाल और डॉ. किचलू को धोखे से गिरफ्तार करके इन दोनों को फौजी गाड़ी में धर्मशाला भेजकर नजरबन्द कर दिया। महात्मा गाँधी को भी पंजाब जाते समय बंदी बना लिया गया और उन्हें वापस बम्बई ले जाया गया। नेताओं की गिरफ्तारी का समाचार सारे शहर में फैल गया। नेताओं को मुक्त कराने के उद्देश्य

से 11 अप्रैल को नागरिकों का एक जुलूस डिप्टी कमिश्नर के पास जा रहा था। किसी के पास कोई हथियार नहीं था। रेल के फाटक के पास इस जुलूस को रोका गया और 'महात्मा गांधी की जय', 'हमारे नेताओं को रिहा करो' के शान्त नारे लगाने वाले जुलूस पर पुलिस ने गोली चलायी। 20 व्यक्ति मारे गये और सैकड़ों घायल हुए। क्रुद्ध भीड़ ने नेशनल बैंक में आग लगा दी तथा उसका अंग्रेज मैनेजर भी मार डाला गया। टाउनहाल व अन्य सरकारी इमारतों में आग लगा दी गई। गवर्नर माइकेल ओडायर ने समझा कि स्थिति काबू से बाहर हो गई है, उसने तुरन्त सेना बुला लिया और अमृतसर का शासन जनरल डायर की अध्यक्षता में सेना को सुपुर्द कर दिया। उसने शहर में ढिंढोरा पिटवाकर सभा, जुलूस आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

जलियाँवाला बाग का नृशंस हत्याकाण्ड (1919)– गोली कांड की निन्दा करने के उद्देश्य से 13 अप्रैल, 1919 को अमृतसर की 20,000 जनता ने जलियाँवाला बाग में एक सार्वजनिक सभा की। जब सभा में हंसराज का भाषण हो रहा था जनरल डायर ने 50 अंग्रेज तथा 100 भारतीय सैनिकों के साथ सभा को चारों ओर से घेर लिया और बिना उचित चेतावनी दिये मशीनगनों द्वारा जनता पर अन्धाधुन्ध गोलियाँ चलाने की आज्ञा दे दी। बाग से बाहर जाने का एक ही मार्ग था लेकिन वहाँ भी सैनिक डटे हुए थे। फलतः जनता बाग से बाहर निकल नहीं पाई। लोग प्राण बचाने की दृष्टि से जमीन पर लेट गये। इस पर जनरल डायर ने पुनः आदेश दिया कि 'ऊपर नहीं नीचे चलाओ।' चारों ओर लाशों को ढेर लग गया। मार्ग में एक कुआँ था, घबड़ाए लोग उसमें कूद पड़े। बाग के पास रहने वाले परिवारों की स्त्रियों ने लोगों को बचाने के लिए रस्सियाँ डालीं तो उन्हें चढ़ने नहीं दिया गया और गोली मार दी गई। दस मिनट के अन्तर 1,650 राउण्ड गोलियाँ चलायी गईं। अंग्रेजों के कथनानुसार 337 आदमी 41 बच्चे मारे गये और 1,500 घायल हुए जबकि इसके विपरीत मरने वालों की संख्या लगभग 1,000 से कम नहीं थी। घायलों को निर्दयतापूर्वक असहाय अवस्था में उसी स्थान पर छोड़ दिया गया था।

जनरल डायर ने उक्त सारी कार्यवाही बदले की भावना से ही की थी। यदि वह चाहता तो बाग के मार्ग पर कुछ सिपाही खड़ा करके सभा-स्थल पर जनता को जाने से रोक सकता था किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। जब हण्टर कमीशन (इस काण्ड की जाँच के लिए सरकार ने नियुक्त किया था।) के एक सदस्य ने डायर से पूछा कि "क्या यह आतंक का एक रूप नहीं था?" उसने निर्भिकता से उत्तर दिया कि" नहीं, यह बहुत भयानक कर्त्तव्य था जो मुझे पूरा करना था। मैंने सोचा कि मुझे गोलियाँ अच्छी तरह और ठीक निशाने पर चलानी चाहिए, जिससे मुझे और किसी दूसरे व्यक्ति को दुबारा गोली चलाने की आवश्यकता न पड़े। मैं समझता हूँ मैं भीड़ को बिना गोली चलाए तितर-बितर कर सकता था। परन्तु हो सकता था कि लोग दुबारा एकत्रित हो जाते और मेरी हँसी उड़ाते और मैं स्वयं बेवकूफ बनता। अगर मेरे पास और गोलियाँ होतीं तो मैं और चलाता। मैंने 1,650 गोलियाँ चलवाई क्योंकि मेरे पास और गोलियाँ नहीं थीं।"

स्मरणीय है कि जनरल डायर द्वारा किये गये जलियाँवाला बाग के हत्याकांड को पंजाब के गवर्नर माइकेल ओडायर ने इन शब्दों में अनुमोदन किया था, "आपकी कार्यवाही सही है। लेफ्टीनेन्ट गवर्नर उसका अनुमोदन करता है।" यही नहीं, ब्रिटिश संसद के उच्च सदन 'हाउस ऑफ लार्ड्स' ने जनरल डायर के अपराधों की लीपापोती कर दी और इंगलैण्ड की जनता ने चंदा करके उसे थैली भेंट की। पंजाब की घटना के फलस्वरूप रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने अपनी 'सर' की पदवी वापस कर दी और शंकर नायक ने गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी परिषद से इस्तीफा दे दिया।

खिलाफत आन्दोलन– तुर्की का सुल्तान जो खलीफा भी था, इस्लामी जगत का धार्मिक नेता माना जाता था। प्रथम विश्व युद्ध में वह जर्मनी का पक्ष लेकर ब्रिटेन के विरुद्ध युद्ध में शामिल हुआ था। भारतीय मुसलमानों को यह भय था कि युद्धोपरान्त तुर्की से अंग्रेज अवश्य बदला लेंगे।

भारतीय मुसलमानों से युद्ध में पूरी सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से इंगलैण्ड के प्रधानमंत्री लायड जार्ज ने घोषणा की थी कि तुर्की के साथ किसी भी प्रकार का अन्याय नहीं किया जाएगा। युद्ध में जर्मनी की पराजय के साथ तुर्की की भी हार हो गयी। 11 नवम्बर, 1918 को विश्व युद्ध समाप्त हुआ और 20 जून, 1919 को 'बर्साय की संधि' हुई। संधि के अनुसार तुर्की के साम्राज्य को मित्र राष्ट्रों ने आपस में बांट लिया। इस प्रकार तुर्की का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। इससे भारतीय मुसलमान बहुत ही क्षुब्ध हो उठे। उन्होंने बर्साय संधि का विरोध किया। उन्होंने संधि की शर्तों को बदलवाना चाहा, लेकिन वे असफल रहे। मित्र राष्ट्रों ने खलीफा का अपमान किया और इस्लाम की पवित्र भूमि पर अवांछनीय अधिकार स्थापित कर लिया। यही खिलाफत आन्दोलन का प्रमुख कारण था।

नवम्बर, 1919 में महात्मा गांधी द्वारा हिन्दुओं और मुसलमानों का एक संयुक्त सम्मेलन खिलाफत के प्रश्न पर विचार करने के लिए दिल्ली में बुलाया गया। सम्मेलन के सामने प्रस्तुत प्रश्न मुस्लिम विरोध का रूप निश्चित करना था जिससे हिन्दू भी उसमें भाग ले सकें। अन्त में यह कार्य गांधी जी ने तय किया। उन्होंने कहा कि जब ब्रिटिश सरकार अपने वादे से मुकर गयी है तो यह आवश्यक है कि हिन्दू और मुसलमान सरकार से सहयोग करना बन्द कर दें।

जुलाई, 1921 में करांची में अखिल भारतीय खिलाफत सम्मेलन हुआ। सम्मेलन में मौलाना मुहम्मद अली ने सभापति के आसन से घोषणा की, 'आज से किसी भी ईमानदार मुसलमान के लिए फौज में नौकर रहना या उसकी भर्ती में नाम लिखाना या उसमें मदद करना हराम है।" राजद्रोह की संभावना से अली बन्धु और डॉ. किचलू आदि गिरफ्तार कर लिए गये। गांधी जी ने जब यह खबर सुनी तो उन्होंने मुहम्मद अली का भाषण ज्यों का त्यों दोहराया और संपूर्ण देश में वह भाषण दोहराया गया। महात्मा गांधी ने खिलाफत आन्दोलन को लेकर देश का दौरा किया। खान अब्दुल गफ़्फ़ार खां ने इस आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाई।

खिलाफत आन्दोलन का अन्त– खिलाफत आन्दोलन का हल तुर्की ने स्वंय कर लिया। नवम्बर, 1922 में मुस्तफा कमाल पाशा के नेतृत्व में तुर्की में एक क्रान्ति हुई। कमाल पाशा ने सुल्तान को जो खलीफा भी थे, गद्दी से उतार दिया और एक सरकार का गठन किया। तुर्की को एक धर्म-निरपेक्ष राज्य घोषित करके खलीफा के पद को समाप्त कर दिया तथा मित्र राष्ट्रों के साथ नयी संधि कर ली। सुल्तान एक अंग्रेजी जहाज में छिपकर माल्टा चला गया। इसके बाद भारत में खिलाफत आन्दोलन का अंत हो गया। खिलाफत आन्दोलन का भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में इस बात को लेकर विशेष महत्व है कि इसने असहयोग आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार कर दी।

तृतीय चरण (1919-1930)

असहयोग आन्दोलन और स्वराज्य दल

"मेरे शरीर पर पड़ी एक-एक लाठी की चोट ब्रिटिश साम्राज्य के कफन की एक-एक कील होगी।" –लाला लाजपत राय

असहयोग आन्दोलन

खिलाफत दिवस के थोड़े ही दिनों के बाद 1920 में 4 से 9 सितम्बर तक कलकत्ता में लाला लाजपत राय के सभापतित्व में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन का प्रमुख उद्देश्य आगामी कार्यक्रम की रूप-रेखा निर्धारित करना था। यह पहला अवसर था जबकि कांग्रेस वैधानिक संघर्ष के मार्ग को छोड़कर असहयोग के मार्ग को अपना रही थी। अधिवेशन

में महात्मा गाँधी ने स्वयं असहयोग का प्रस्ताव पेश किया। यह प्रस्ताव 873 के विरुद्ध 1855 के बहुमत से पास हो गया। असहयोग आन्दोलन में जो बातें निश्चित की गईं, वे इस प्रकार थीं :

(1) सरकारी उपाधियों एवं अवैतनिक पदों को त्याग दिया जाय।
(2) स्थानीय संस्थानों की सरकारी सदस्यता से त्याग-पत्र दे दिया जाय।
(3) सरकारी दरबारों तथा उत्सवों में, जिनका आयोजन सरकारी अधिकारियों द्वारा या उनके सम्मान में हुआ हो, भाग न लिया जाय।
(4) सरकारी या सहायता प्राप्त स्कूलों और कॉलेजों का बहिष्कार किया जाय।
(5) वकील तथा न्यायार्थी दोनों ही अंग्रेजी सरकार के न्यायालय का बहिष्कार करें।
(6) सैनिक कर्मचारी तथा श्रमिक वर्ग मेसोपोटामिया जाकर नौकरी करने से इन्कार कर दें।
(7) नये सुधारों के अन्तर्गत निर्मित कौंसिलों के अभ्यर्थी अपने नाम वापस ले लें और यदि कुछ लोग कांग्रेस का परामर्श न मानकर निर्वाचन के लिए खड़े ही हों तो मताधिकारी उन्हें अपना मत न दें।
(8) विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया जाय।

उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त कांग्रेस ने अपना कुछ रचनात्मक कार्यक्रम भी घोषित किया :

(1) स्वदेशी माल का प्रयोग अधिक-से-अधिक किया जाय।
(2) चर्खे, कताई-बुनाई का व्यापक प्रचार किया जाय।
(3) सरकारी स्कूलों के स्थान पर विभिन्न प्रान्तों में राष्ट्रीय विद्यालयों एवं महाविद्यालयों की स्थापना की जाय।
(4) आपसी झगड़ों का निर्णय करने के लिए जनता की पंचायतें बनायी जायँ।
(5) हिन्दू-मुस्लिम एकता को पक्का किया जाय तथा
(6) अस्पृश्यता को दूर किया जाय।

असहयोग आन्दोलन बड़ी तीव्र गति से बढ़ने लगा। आन्दोलन के कार्यक्रम को जनप्रिय बनाने के लिए महात्मा गाँधी ने देश का व्यापक दौरा किया। उन्होंने स्वयं सर्वप्रथम अपनी 'कैसरे हिन्द' उपाधि को वापस कर दिया। इसका प्रभाव यह हुआ कि सैकड़ों व्यक्तियों ने अपनी उपाधियाँ त्याग दीं। वकीलों ने अपनी वकालत छोड़ दी। कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन के पश्चात् ही चित्तरंजन दास ने अपनी वकालत छोड़कर विद्यार्थियों को आन्दोलन में भाग लेने के लिए आह्वान किया। इस आह्वान के फलस्वरूप सुभाषचन्द्र बोस तथा प्रफुल्लचन्द्र घोष इन आन्दोलन में सम्मिलित हो गये। उत्तर प्रदेश में पंडित जवाहरलाल नेहरू आन्दोलन के नेता थे। सहस्रों विद्यार्थियों ने कालेजों का बहिष्कार कर दिया और देश के प्रत्येक भाग में राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना हुई। इनमें काशी विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ, महाराष्ट्र विद्यापीठ, बंगाल के राष्ट्रीय विश्वविद्यालय आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त पंचायतों की स्थापना हुई। खद्दर और स्वदेशी का खूब प्रचार हुआ। कांग्रेस में 40 लाख स्वयंसेवक भर्ती किये गये तथा 20 हजार चरखे बनवाये गये। मादक द्रव्यों का बहिष्कार किया गया और लगभग 30,000 व्यक्ति जेल गये। 1921 में असहयोग आन्दोलन अपनी अन्तिम पराकाष्ठा पर पहुँच गया।

इसी समय (1921) लार्ड रीडिंग वाइसराय होकर भारत आये। उनके आते ही दमन-चक्र प्रारम्भ हो गया और पंडित मोतीलाल नेहरू, चित्तरंजन दास, लाला लाजपत राय, मौलाना आजाद, डॉ. अन्सारी, राजगोपालाचारी, बाबू राजेन्द्र प्रसाद, सरदार पटेल आदि बड़े-बड़े नेता बन्दी बना लिये गये। गाँधी जी की नीति अहिंसात्मक थी। उनके दो अमोघ अस्त्र-सत्य और अहिंसा थे। गाँधी जी का विश्वास था कि यदि सब लोग अहिंसात्मक ढंग पर असहयोग आन्दोलन चलावें तो एक ही वर्ष में भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हो जायगी। परन्तु सरकार के दमन-चक्र के सम्मुख अहिंसा व्रत का पूर्ण-रूप से पालन करना सम्भव न था। आन्दोलन उसी गति से पूर्ववत् चल

रहा था। मद्य-निषेध आन्दोलन में भाग लेने वाले सहस्त्रों भारतीयों को जेल में डाल दिया गया। जब नवम्बर, 1921 में प्रिन्स ऑफ वेल्स ने भारत की यात्रा की तो उनका सब स्थानों पर काले झण्डों से स्वागत किया गया और 'प्रिन्स ऑफ वेल्स वापस जाओ' के नारे लगाये गये।

दिसम्बर, 1921 में अहमदाबाद में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हकीम अजमल खाँ की अध्यक्षता में हुआ जिसमें असहयोग नीति का पुनः एक बार समर्थन किया गया। इसके उपरान्त जनवरी, 1922 में देश के नेताओं का एक सम्मेलन बम्बई में हुआ। इसमें कांग्रेस की ओर से केवल महात्मा गाँधी सम्मिलित हुए। इस सम्मेलन में असहयोगियों तथा अन्य बन्दियों को छोड़ने का प्रस्ताव पारित हुआ तथा सरकार की दमनपूर्ण नीति का विरोध किया गया। इसके अतिरिक्त एक गोलमेज सम्मेलन बुलाने की माँग की गई जिसके द्वारा पंजाब हत्याकाण्ड, खिलाफत तथा स्वराज्य का प्रश्न हल किया जा सके। कांग्रेस कार्यकारिणी ने इस प्रस्तावों को पारित कर लिया किन्तु वाइसराय ने इन प्रस्तावों को मानने से इन्कार कर दिया।

चौरीचौरा काण्ड और असहयोग आन्दोलन का स्थगन– इस पर 1 फरवरी, 1922 को महात्मा गाँधी ने वाइसराय लार्ड रीडिंग को एक पत्र लिखकर सूचित किया कि मेरा विचार बारदोली में सामूहिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू करने का और मंतूर में चल रहे टैक्स विरोधी आन्दोलन को स्वीकृति दे देने का है। किन्तु यदि सभी अहिंसक असहयोगियों को छोड़ दिया जाय और सरकार अहिंसक कार्यों में तनिक भी हस्तक्षेप न करने की घोषणा करे तो वह सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित करने को तैयार है। उन्होंने ये माँगें स्वीकार करने के लिये सरकार को सात दिन का समय दिया। परन्तु सात दिन की अवधि समाप्त होने के पूर्व ही 5 फरवरी चौरीचौरा नामक स्थान पर पुलिस ने एक जुलूस को अस्त्र-बल पर भंग करना चाहा। फलतः जनता ने क्रोध में आकर थाने में आग लगा दी जिससे एक थानेदार व 21 सिपाही जल मरे। इस दुर्घटना से गाँधी जी को बहुत कष्ट हुआ और उन्होंने आन्दोलन स्थगित कर दिया। गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन के स्थगन के निश्चय का सभी नेताओं ने विरोध किया। पंडित मोतीलाल नेहरू और लाला लाजपत राय ने जेल से ही लम्बे-लम्बे पत्र लिखे। उन्होंने गाँधी जी की किसी एक स्थान के पाप के कारण सारे देश को दण्ड देने के लिए आड़े हाथों लिया। पं. जवाहरलाल नेहरू ने कहा, "हम सबको बड़ा दुख हुआ जब हमने सुना कि हमारी लड़ाई उस समय बन्द कर दी गई जब हम सफलता की ओर बढ़ रहे थे।" सी.आर.दास ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा, "गाँधी जी आन्दोलन को बहुत साहस से प्रारम्भ करते हैं, कुछ समय तक कुशलता से चलाते हैं, परन्तु अन्त में साहस खोकर बहक जाते है।" सुभाषचन्द्र बोस ने कहा, "उस समय जनता का उत्साह बहुत ऊँचा था, तब पीछे हटने का आदेश देना राष्ट्रीय संकट से कुछ कम नहीं था।" नेताओं की इस प्रकार की आलोचना से लाभ उठाकर सरकार ने 31 मार्च, 1922 को गाँधी जी को बन्दी बना लिया और 6 वर्ष का कारावास का दण्ड देकर जेल भेज दिया। परन्तु स्वास्थ्य खराब होने के कारण 6 मई, 1922 को उन्हें छोड़ दिया गया।

स्वराज्य दल

स्वराज्य दल के गठन के कारण– असहयोग आन्दोलन की समाप्ति के बाद कांग्रेस में फूट पड़ गई। देश बन्धु चित्तरंजन दास तथा मोतीलाल नेहरू कांग्रेस से अलग हो गये। उनका विचार था कि केन्द्रीय और प्रान्तीय सभाओं से अलग होना बुद्धिमानी नहीं है। उसमें भाग लेकर अड़ंगा नीति के द्वारा सरकारी नीतियों की आलोचना कर सरकारी कार्यों में अवरोध करना आवश्यक है। इसी विचार से इन दोनों नेताओं ने 1922 में इलाहाबाद में स्वराज्यं दल की स्थापना की। देशबन्धु चित्तरंजन दास उसके अध्यक्ष बने। मोतीलाल नेहरू दल के सचिवों में से प्रमुख थे।

स्वराज्य दल के उद्देश्य– श्री चित्तरंजन दास ने 1925 में बंगाल की विधान सभा में

दल के उद्देश्यों की व्याख्या करते हुए कहा था- "हम उस परिस्थिति को नष्ट करना चाहते हैं, अथवा उससे मुक्त होना चाहते हैं जो हमारे लिए हितकर नहीं है और न हो सकती है। हम भारत-विरोधी परिपाटी को नष्ट कर के एक ऐसी परिपाटी को जन्म देना चाहते हैं जो भारत के लिए स्वराज्य प्राप्त करने में सहायक हो।" दूसरे शब्दों में, स्वराज्य दल के दो प्रमुख उद्देश्य थे : (1) भारत को स्वराज्य प्राप्ति में योग देना और (2) ब्रिटिश साम्राज्यवादी परिपाटी का अन्त करना।

स्वराज्य दल के सिद्धान्त- स्वराज्य दल के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित थे :

1. चुनाव लड़ना- स्वराज्य दल के समर्थकों का कहना था कि हमें विधान मण्डलों के चुनाव में भाग लेना चाहिए और अपने अधिक-से अधिक सदस्यों को चुनाव में जिताकर कौंसिल में भेजना चाहिए ताकि सरकार के स्वेच्छाचारी तरीकों पर नियन्त्रण स्थापित कर सकें।

2. सरकार की आलोचना करना- स्वराज्यवादियों का दूसरा सिद्धान्त सरकार के कार्यों की कटु आलोचना करना था। उनका विश्वास था कि सरकार के कार्यों की कटु आलोचना करके वे सरकार को ऐसे कार्यों को करने से रोक सकते हैं जिनसे देश का अहित और शोषण होता हो।

3. धीरे-धीरे कौंसिलों पर अधिकार करना- स्वराज्यवादियों का विश्वास था कि वह शान्तिपूर्वक तरीकों से चुनावों में भाग लेकर तथा अधिक-से-अधिक सदस्यों को कौंसिलों में भेजकर धीर-धीरे कौंसिलों पर अपना नियन्त्रण कर लेंगे ताकि नौकरशाही का पतन हो सके।

स्वराज्य दल का कार्यक्रम- स्वराज्य दल के कार्यक्रय का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है :

(1) विधान-मण्डलों में बजट को स्वीकार करना।
(2) उन समस्त कानूनों और प्रस्तावों का विरोध करना जिनके द्वारा ब्रिटिश शासन को दृढ़ बनाया जा सकता था।
(3) सरकारी समितियों में भाग लेना और वहाँ पर साम्राज्यवादी नीतियों में बाधा डालना।
(4) आवश्यकता पड़ने पर विधान-मण्डलों की सदस्यता से त्याग-पत्र देना।
(5) विधान-मण्डलों के बाहर कांग्रेस के रचनात्मक कार्यों में भाग लेकर देश को स्वतन्त्र बनाने में योग देना।

स्वराज्य दल की सफलता- 1923 के चुनाव में स्वराज्य दल को आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई। बंगाल और मध्य प्रान्त में उसे पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ। केन्द्रीय विधान-मण्डल में उसे 145 स्थानों में से 45 स्थान मिले। बंगाल के विधान-मण्डल में इस दल के नेता चित्तरंजन दास थे और केन्द्रीय विधान-मण्डल में इस दल के नेता पं. मोतीलाल नेहरू थे। उन्होंने अपने प्रभाव व योग्यता से कुछ राष्ट्रवादियों एवं स्वतन्त्र सदस्यों को अपने साथ मिलाकर अपना बहुमत बना लिया था।

स्वराज्यवादियों के विधान-मण्डलों में कार्य

1. 1919 के अधिनियम में संशोधन- केन्द्रीय विधान-मण्डल में स्वराज्य दल के नेताओं ने अपने प्रयास से 8 फरवरी, 1924 को 1919 के अधिनियम में संशोधन करने हेतु अपना निम्नलिखित प्रस्ताव पारित कराया :

'यह असेम्बली (केन्द्रीय विधान-मण्डल) गवर्नर जनरल को भारत के लिये उत्तरदायी सरकार स्थापित करने की दृष्टि से 1919 के अधिनियम में परिवर्तन करने का परामर्श देती है और आग्रह करती है कि निकट भविष्य में भारत के लिये एक संविधान का निर्माण करने हेतु, जिसमें अल्पसंख्यक जातियों के हितों का उचित ध्यान रखा जाय, भारत के प्रतिनिधियों का एक गोलमेज सम्मेलन बुलाया जाय। इस केन्द्रीय विधान-मण्डल को भंग करके नये केन्द्रीय विधान-मण्डल के समक्ष इस नव-निर्मित संविधान को स्वीकृति के लिए रखा जाय और फिर अधिनियम

का रूप देने के लिए ब्रिटिश संसद के समक्ष रखा जाय।"

2. बजटों की माँगों की अस्वीकृति– उपर्युक्त प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने के बाद भी सरकार ने इसे अस्वीकार कर दिया तो ऐसी दशा में स्वराज्य दल के नेताओं को दूसरे दल के सदस्यों के साथ मिलकर सरकार का विरोध करना पड़ा और 1924-25, 1925-26, 1926-27 ई. के बजटों की माँगों को अस्वीकार कर दिया। इनको स्वीकार करने के लिए गवर्नर जनरल को अपने विशेषाधिकार का प्रयोग करना पड़ा।

3. सरकारी अधिनियमों का विरोध– स्वराज्य दल ने उन सभी सरकारी अधिनियमों का विरोध करना आरम्भ किया जो सरकार ने आन्दोलन का दमन करने के लिए बनाये थे। सरकारी निमन्त्रणों का बहिष्कार और राजनीतिक नेताओं को मुक्त कराने की माँग के प्रस्ताव पारित किये गये। सरकार को अनेक स्थानों पर मुँह की खानी पड़ी।

4. 'वाक आउट' करने की नीति का प्रयोग– स्वराज्यवादियों ने निश्चय किया कि वे सरकारी कार्यों में असहयोग करेंगे। उन्होंने विधान-मण्डलों में अपना विरोध प्रकट करने के लिए 'वाक आउट' नीति का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। वे विधान-मण्डल के अन्दर आते और तुरन्त ही बाहर चले जाते थे। इस नीति को सर तेज बहादुर सप्रू ने 'उत्कृष्ट देश-भक्ति' का नाम दिया। इस नीति के सम्बन्ध में श्री सी०आई० चिन्तामणि ने लिखा है, 'मार्च, 1926 से विधान मण्डल की समाप्ति तक के बीच में यह एक आम दृश्य था कि कांग्रेसी स्वराज्यवादी व्यवस्थापिका सभाओं में जाते थे और तुरन्त ही बाहर चले जाते थे।"

प्रान्तों में भी स्वराज्य दल ने महत्वपूर्ण कार्य किये। बंगाल और मध्य प्रान्त में तो इस दल ने द्वैध-शासन को निष्फल बना दिया। बंगाल में अपना बहुमत होने पर भी इसने मन्त्रि-मण्डल नहीं बनाया। तीन-चार वर्ष तक कांग्रेस की नीति पर इस दल का जोर रहा। यहाँ तक कि बेलगाँव कांग्रेस (1924) के बाद स्वराज्य दल का कार्यक्रम ही कांग्रेस का कार्यक्रम हो गया था।

स्वराज्य दल का पतन– 1925 में चित्तरंजन दास की मृत्यु हो जाने के बाद दल का एक गुट सरकार से सहयोग करने की सोच रहा था और दूसरा गुट असहयोग करना चाहता था। बी०जी०पटेल जैसे प्रमुख स्वराज्यवादी नेता ने केन्द्रीय विधान-मण्डल का अध्यक्ष पद स्वीकार कर लिया। इसी प्रकार ए०बी० ताँबे गवर्नर की कार्य-कारिणी परिषद के सदस्य हो गये। 1926 के चुनाव में इस दल को आशातीत सफलता नहीं मिली और उसकी शक्ति क्षीण हो गई। स्वराज्य दल के कार्यों का मूल्यांकन करते हुए डॉ. जकारिया ने लिखा है, "स्वराज्य दल ऐसे लोगों का दल था जो अपनी रोटी को सुरक्षित भी रखना चाहता था और साथ-ही-साथ उसको खाना भी चाहता था। अपनी लोकप्रियता को बनाये रखने के लिए वे असहयोग की बातें करते थे, किन्तु साथ-ही-साथ व्यवस्थापिका के कार्यों में भाग लेने को भी तैयार रहते थे।"

साइमन कमीशन का आगमन और उसका बहिष्कार– 1927 में सरकार ने भारत की राजनीति का अध्ययन करने के लिए साइमन की अध्यक्षता में 'साइमन कमीशन' की नियुक्ति की। यह कमीशन 3 फरवरी, 1928 को बम्बई पहुँचा। इसके सातों सदस्य अनुदार विचार के अंग्रेज थे। उसमें एक भी भारतीय को स्थान नहीं दिया गया था। इस कमीशन का उद्देश्य यह पता लगाना और ब्रिटिश संसद को रिपोर्ट करना था कि ब्रिटिश भारतीय प्रान्तों में शासन-प्रणाली किस प्रकार चल रही है, शिक्षा की वृद्धि और प्रतिनिधि संस्थाओं का विकास कहाँ तक हुआ, क्या उत्तरदायी शासन के सिद्धान्त की स्थापना आवश्यक है अथवा नहीं, यदि है तो किस सीमा तक उत्तरदायी शासन की मात्रा में वृद्धि की जाय। इस कमीशन का देश के प्रत्येक स्थान पर बहिष्कार किया गया। जनता ने 'साइमन वापस जाओ' के नारे लगाये और उसे काले झण्डे दिखाये। सरकार

ने भी कठोरता से प्रदर्शनकारियों का दमन किया। 10 अक्टूबर, 1928 को पंजाब केशरी लाला लाजपत राय पुलिस की लाठियों से बुरी तरह घायल हुए और 17 नवम्बर को उनका देहान्त हो गया। इस लाठी-प्रहार पर उन्होंने कहा, 'मेरे शरीर पर पड़ी एक-एक लाठी की चोट ब्रिटिश साम्राज्य के कफन की एक-एक कील होगी।'[1] पंडित गोविन्दवल्लभ पन्त तथा पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने भी लखनऊ के जुलूस में लाठियाँ खायीं।

साइमन कमीशन की रिपोर्ट- अनेक कठिनाइयों के बाद मई, 1930 में साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। इस रिपोर्ट की प्रमुख सिफारिशें इस प्रकार थीं :

(1) कमीशन ने सिफारिश की कि 1919 के अधिनियम के अनुसार जो द्वैध शासन प्रान्तों में लागू किया गया है वह असफल सिद्ध हुआ है। अतः प्रान्तों में द्वैध शासन को समाप्त कर पूर्ण उत्तरदायी शासन (Provincial Autonomy) की स्थापना हो।

(2) प्रान्तों में उत्तरदायी शासन की सफलता के लिए कमीशन ने सिफारिश की कि कम से कम 10 से 15 प्रतिशत वयस्क लोगों को मताधिकार प्रदान किया जाय, किन्तु चुनाव का आधार साम्प्रदायिकता हो।

(3) कमीशन ने सुझाव दिया कि विधान-मण्डल का पुनर्गठन किया जाय। केन्द्रीय विधान-मण्डल में दो सदन हों। निचले सदन का नाम संघीय सभा और उच्च सदन का नाम राज्य परिषद हो। दोनों निर्वाचन प्रान्तीय विधान-मण्डलों द्वारा हों। प्रथम सदन में प्रान्तों के स्थान जनसंख्या के आधार पर निश्चित किये जायँ और उच्च सदन में प्रत्येक प्रान्त को तीन-तीन स्थान दिये जायें।

(4) विधान-मण्डल की संख्या में वृद्धि के सम्बन्ध में कमीशन ने सिफारिश की कि अधिक महत्वपूर्ण प्रान्तों में विधान-मण्डलों की सदस्य संख्या 200 से 250 तक की जाय और उनमें सरकारी सदस्य एक भी न हों। मनोनीत गैरसरकारी सदस्यों की संख्या विधान-मण्डल के समस्त सदस्यों की संख्या के दसवें भाग से अधिक नहीं होनी चाहिए। कमीशन ने यह भी सुझाव दिया कि जिन प्रान्तों में मुसलमानों के प्रतिनिधियों की संख्या कम हो वहाँ मुसलमानों का प्रतिनिधित्व बढ़ाया जाय।

(5) सेना के सम्बन्ध में कमीशन ने यह सुझाव दिया कि अभी उस पर ब्रिटेन का भी नियन्त्रण बना रहना चाहिए परन्तु उसका व्यय भारत को वहन करना चाहिए। प्रतिरक्षा विभाग के लिए गवर्नर को ही उत्तरदायी रहना चाहिए और वह इस कार्य में सर्वोच्च सेनापति से परामर्श लेगा।

(6) कमीशन ने इस बात पर जोर दिया कि प्रत्येक दस वर्ष बाद जाँच करने के लिए 'संविधान आयोग' की नियुक्ति के तरीके को समाप्त कर दिया जाय और भारत के लिए एक ऐसा लचीला संविधान बनाया जाय जो स्वयं ही आवश्यकतानुसार विकसित हो सके।

(7) कमीशन ने सुझाव दिया कि गवर्नन जनरल को अल्पसंख्यक जातियों के हितों का विशेष ध्यान रखने का अधिकार दिया जाय।

(8) कमीशन ने सिफारिश की कि भविष्य में संघीय शासन की स्थापना के उद्देश्य से भारत के लिए एक कौंसिल की स्थापना की जाय जिसमें ब्रिटिश प्रान्त और देशी रियासतों के प्रतिनिधि हों। कौंसिल सामान्य हित के समस्त प्रश्नों पर विचार करे।

साइमन कमीशन की उपर्युक्त रिपोर्ट भारतीयों को सन्तुष्ट नहीं कर सकी क्योंकि इसमें भारत को 'औपनिवेशिक स्वराज्य' देने की कोई चर्चा नहीं की गयी थी।

1. "The Lathi" blows that are hurled on me will one day prove as nails in the coffin of the British Empire."

—Lala Lajpat Ray

बारदोली सत्याग्रह– 1928 की एक दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना बारदोली किसानों का सत्याग्रह था जिसे श्री बल्लभ भाई पटेल के नेतृत्व में चलाया गया। सरकार ने बारदोली के किसानों के लगान में 25 प्रतिशत वृद्धि कर दी थी। पटेल ने इस वृद्धि का तीव्र विरोध किया, साथ ही किसानों के सत्याग्रह आन्दोलन का नेतृत्व किया। सरकार ने भी साम्प्रदायिकता को उभारने की पूर्ण चेष्टा की तथा कठोर दमन–नीति को अपनाया। अन्त में इस आन्दोलन के सम्मुख सरकार को ही झुकना पड़ा और सत्याग्रहियों की विजय हुई। लगान की वृद्धि रोक दी गयी। इस आन्दोलन की सफलता के उपहार–स्वरूप श्री वल्लभ भाई पटेल को 'सरदार' की पदवी मिली।

नेहरू रिपोर्ट (1928)– भारतीयों के प्रबल विरोध के कारण सरकार ने भारतीय नेताओं को स्वयं अपने लिये एक संविधान का निर्माण करने की चुनौती दी। कांग्रेस ने इस चुनौती को स्वीकार कर लिया और उसने 28 फरवरी, 1928 को दिल्ली में एक 'सर्वदलीय सम्मेलन' बुलाया। इस सम्मेलन में 29 संस्थाओं के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में प्रारम्भिक विचार–विमार्श के बाद बम्बई में 19 मई को पुनः सम्मेलन हुआ। इसमें भारतीय संविधान का मसविदा तैयार करने के लिए पं. मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक आठ सदस्यी समिति की नियुक्ति की गयी। इस समिति ने तीन माह के भीतर 19 बैठकों में संविधान का मसविदा तैयार किया। यही संविधान का मसविदा इतिहास में 'नेहरू रिपोर्ट' के नाम से प्रसिद्ध है। सब दलों के प्रतिनिधियों ने इस रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया। इसे डॉ. जकरिया ने 'एक परिपक्व तथा राज़मर्मज्ञ रिपोर्ट ("A masterly and stateman like report.") कहा है।

नेहरू–रिपोर्ट की मुख्य बातें– नेहरू–रिपोर्ट की मुख्य बातें इस प्रकार हैं :

1. केन्द्र और प्रान्तों में पूर्ण उत्तरदायी शासन– नेहरू–रिपोर्ट में सर्वप्रथम इस बात पर जोर दिया गया कि केन्द्र और प्रान्तों में पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना की जाय और कार्यकारिणी को विधान–मण्डलों के प्रति पूर्णतया उत्तरदायी बनाया जाय।

2. प्रान्तों में स्वराज्य– नेहरू–रिपोर्ट में सिफारिश की गयी कि प्रान्तों को स्वराज्य प्रदान किया जाय और प्रान्तों में कानून बनाने के लिए एक सदन की स्थापना की जाय तथा प्रान्तों की कार्यकारिणी कौंसिलें भी प्रान्तीय विधान–सभाओं के प्रति उत्तरदायी हों।

3. प्रान्तों और केन्द्रों में शक्ति विभाजन– नेहरू–रिपोर्ट ने इस बात की सिफारिश की कि केन्द्र और प्रान्तों की सरकार के बीच संघीय व्यवस्था के आधार पर शक्तियों का विभाजन किया जाय और अवशिष्ट शक्तियाँ केन्द्र के पास रक्खी जायँ ताकि वह शक्तिशाली रहे।

4. साम्प्रदायिक चुनाव पद्धति का अन्त– नेहरू–रिपोर्ट में सिफारिश की गयी कि साम्प्रदायिक चुनाव–पद्धति का अन्त किया जाय और इसके स्थान पर संयुक्त चुनाव पद्धति को अपनाया जाय। साथ–ही–साथ इस बात की भी सिफारिश की गई कि अल्पसंख्यकों के लिए स्थान सुरक्षित किये जायँ और उनको अतिरिक्त सीटों पर चुनाव लड़ने की स्वतन्त्रता प्रदान की जाय।

5. नये प्रान्तों का निर्माण– भारतीय मुसलमानों की माँग थी कि सिन्ध को बम्बई से पृथक कर दिया जाय और उत्तरी–पश्चिमी प्रान्त को अन्य प्रान्तों की भाँति अधिकार प्रदान किये जायँ। नेहरू रिपोर्ट में मुसलमानों की इन दोनों भागों को स्वीकार कर लेने की सिफारिश की गयी।

6. भारतीय रियासतें– नेहरू–रिपोर्ट में भारतीय रियासतों के सम्बन्ध में विचार किया गया और सिफारिश की गयी कि भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना के बाद केन्द्रीय सरकार का नियन्त्रण भारतीय रियासतों पर रहेगा, साथ ही भारतीय रियासतों के झगड़ों का फैसला सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किया जायेगा।

7. केन्द्रीय कार्यकारिणी– नेहरू–रिपोर्ट में कहा गया कि गवर्नर जनरल की एक कार्यकारिणी परिषद होगी जिसमें एक प्रधानमंत्री और 6 अंन्य मंत्री होंगे। प्रधानमंत्री की नियुक्ति

गवर्नर जनरल करेगा और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति गवर्नर जनरल प्रधानमंत्री के परामर्श पर करेगा। यह मन्त्रिमण्डल संसद के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगा।

8. प्रतिरक्षा– प्रतिरक्षा के सम्बन्ध में रिपोर्ट में कहा गया कि एक सुरक्षा समिति बनायी जाय जिसमें दो सैनिक विशेषज्ञों के अतिरिक्त प्रधानमंत्री, प्रतिरक्षा मंत्री, प्रधान सेनापति, वायु-सेना के सेनापति सम्मिलित होंगे, साथ ही यह भी कहा गया कि भारतीय सेनाओं के सम्बन्ध में सभी नियम इस समिति के सुझावों के आधार पर बनाये जायँ।

9. सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना– नेहरू-रिपोर्ट में भारत के लिए एक सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना पर जोर दिया गया जिससे कि इंग्लैण्ड की प्रिवी कौंसिल में अपील भेजने की समस्या समाप्त हो जाय। यह भी सुझाव दिया गया कि भारत का यह सर्वोच्च न्यायालय संविधान की व्याख्या करेगा और प्रान्तों के झगड़ों का निर्णय करेगा।

10. मौलिक अधिकार– नेहरू–रिपोर्ट में नागरिकों के कुछ मौलिक अधिकारों की आवश्यकता पर जोर दिया गया, जैसे,

(क) प्रभुसत्ता जनता के पास रहनी चाहिए।
(ख) राज्य का कोई धर्म नहीं होगा और लोगों के साथ धर्म पर कोई भेद–भाव नहीं किया जायगा।
(ग) स्त्री–पुरुषों को समान अधिकार प्रदान किये जायँ।
(घ) अल्पसंख्यकों को धार्मिक, भाषायी और सांस्कृतिक स्वतन्त्रता दी जाय।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि नेहरू–रिपोर्ट पूर्णरूप से बुद्धिमत्तापूर्ण थी और उसने सरकार की चुनौती का समुचित उत्तर दिया था। इस रिपोर्ट की महत्ता तो इसी बात से स्पष्ट है कि इस रिपोर्ट के अधिकांश उपबन्ध आज के भारतीय गणतन्त्र के संविधान में मौजूद हैं।

कांग्रेस का अल्टीमेटम–1928 में कांग्रेस का अधिवेशन पं. मोंतीलाल नेहरू के सभापतित्व में कलकत्ता में हुआ। अधिवेशन में नेहरू–रिपोर्ट के सम्बन्ध में मतभेद पैदा हो गया। कारण यह था कि रिपोर्ट में भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग प्रस्तुत की गयी थी जबकि सुभाषचन्द्र बोस तथा पण्डित जवाहरलाल नेहरू जो कि युवक दल का नेतृत्व कर रहे थे, पूर्ण स्वतन्त्रता के समर्थक थे। गाँधीजी के प्रयास स्वरूप पं. मोतीलाल नेहरू की उपर्युक्त सिफारिसें कांग्रेस ने स्वीकार कर लीं। परन्तु इसके साथ–ही–साथ गाँधी जी ने पं. जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस की इच्छानुसार दूसरा प्रस्ताव भी कांग्रेस से पारित करा दिया जिसमें सरकार को अल्टीमेटम दिया गया कि यदि वह 31 दिसम्बर, 1929 तक नेहरू-रिपोर्ट को स्वीकार नहीं करती तो फिर पूर्ण स्वराज्य ही कांग्रेस का लक्ष्य होगा।

पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग– दिसम्बर 1929 में कांग्रेस का अधिवेशन पं. जवहारलाल नेहरू के सभापतित्व में लाहौर में रावी के तट पर हुआ। 31 दिसम्बर की अर्द्धरात्रि तक सरकार की ओर से कांग्रेस के अल्टीमेटम का कोई सन्देश प्राप्त न हुआ। फलतः उसी समय लाहौर में रावी नदी के तट पर पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने पूर्ण स्वतन्त्रता का झण्डा फहराते हुए घोषणा की– "कांग्रेस के संविधान की प्रथम धारा में 'स्वराज्य' शब्द का अभिप्राय पूर्ण स्वतन्त्रता से है।" कांग्रेस ने लाहौर अधिवेशन में ही निश्चय किया कि प्रतिवर्ष 26 जनवरी को स्वतन्त्रता दिवस मनाया जाय। अतः 26 जनवरी, 1930 को सम्पूर्ण देश में प्रथम स्वतन्त्रता दिवस मनाया गया। यह तिथि भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखी जायेगी। इसी दिन भारत की जनता ने घोषणा की :

'भारत में ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों की केवल स्वतन्त्रता का ही अपहरण नहीं किया है, इसने जनता के शोषण पर अपने शासन का प्रासाद खड़ा किया है और भारत का आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक सत्यानाश किया है . . . . . जिस शासन ने हमारे देश

का इस प्रकार चतुर्मुखी सत्यानाश किया हो, उसे अधिक समय तक सहन करना हम ईश्वर तथा मानवता के प्रति भारी अपराध समझते हैं। . . . . हमारा दृढ़ विश्वास है कि यदि हम स्वेच्छापूर्वक इसकी सहायता न करें और अपना सहयोग न दें तो इस अमानुषिक शासन का अन्त निश्चित है। अतः हम यह शपथपूर्वक निश्चय करते हैं कि समय-समय पर निकलने वाले कांग्रेस के आदेशों का पूरा पालन करेंगे, जिससे पूर्ण स्वराज्य की स्थापना हो सके।" यही शपथ प्रतिवर्ष दोहरायी जाती रही और 26 जनवरी को स्वाधीनता दिवस के रूप में 1947 तक मनाया जाता रहा और आज भी 26 जनवरी को गणतन्त्र दिवस के रूप में मनाया जाता है।

जिन्ना की चौदह शर्तें– नेहरू-रिपोर्ट के बाद मुस्लिम लीग के नेता मि. जिन्ना ने रिपोर्ट की बहुत सी बातों को मुसलमानों के हित के विरुद्ध समझा। अतएव उन्होंने, दिसम्बर, 1929 में मुसलमानों के हितों और अधिकारों के लिए अपनी चौदह सूत्री योजना पेश की, जिसे 'जिन्ना की चौदह शर्तें' भी कहते हैं। यह 14 शर्तें इस प्रकार थीं :

(1) भारत के नये संविधान का रूप संघात्मक हो जिसमें अविशिष्ट शक्तियाँ प्रान्तों को प्रदान की जायँ।
(2) समस्त प्रान्तों को एक जैसा स्वराज्य प्रदान किया जाय।
(3) समस्त प्रान्तों के विधान-मण्डलों में अल्पसंख्यको को पर्याप्त प्रतिनिधित्व मिले परन्तु ऐसा करते हुए किसी भी प्रान्त में बहुसंख्यकों को अल्पसंख्यकों के स्तर पर न लाया जाय।
(4) केन्द्रीय विधान-मण्डल में मुसलमानों का प्रतिनिधत्व कम-से-कम एक तिहाई हो।
(5) साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली को स्वीकृत किया जाय।
(6) सभी सम्प्रदायों के लोगों को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की जाय।
(7) किसी भी विधान-सभा में कोई ऐसा विधेयक अथवा प्रस्ताव पारित नहीं किया जाना चाहिए जिसका किसी सम्प्रदाय के तीन-चौथाई सदस्य विरोध करें।
(8) सिन्ध को बम्बई प्रान्त से अलग किया जाय।
(9) प्रान्तों की सीमाओं में परिवर्तन करते समय पंजाब, बंगाल और उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त में मुसलमानों का बहुमत वहाँ समाप्त नहीं कर देना चाहिए।
(10) अन्य प्रान्तों में जिस प्रकार के सुधार किये जायें उसी प्रकार के सुधार सीमा प्रान्त और बिलोचिस्तान में भी किया जाय।
(11) अल्पसंख्यकों की शिक्षा, संस्कृति और भाषा की संविधान में रक्षा की जाय।
(12) केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय मंत्री-मण्डल में कम-से-कम एक-तिहाई मंत्री मुसलमान रहें।
(13) सरकारी नौकरियों में योग्यता के अनुसार मुसलमानों को उचित प्रतिनिधित्व दिया जाय।
(14) संघीय संविधान में कोई भी परिवर्तन केन्द्रीय विधान-मण्डल द्वारा प्रान्तों की सहमति से किया जाना चाहिए।

आगे हम देखेंगे कि मि. जिन्ना ने उपर्युक्त माँगों को इंगलैण्ड में प्रथम गोलमेज सम्मेलन के समक्ष पेश किया। जिन्ना की इन माँगों में से अधिकांश माँगें अगस्त, 1933 में मि. मैकडोनल्ड के 'साम्प्रदायिक निर्णय' में स्वीकार कर ली गयीं। इस सम्बन्ध में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा है, "इन शर्तों का केवल इसलिए महत्व है कि रम्जे मैकडोनल्ड ने इनके आधार पर भारत के लिए साम्प्रदायिक निर्णय का सिद्धान्त बनाया था।"

चतुर्थ चरण (1930-1939)

सविनय अवज्ञा आन्दोलन और उसके उपरान्त

"भारतीयों ने अभी तक केवल एक ही कानून जाना है और वह है गोरे शासक की इच्छा। राष्ट्र केवल एक प्रकार की सार्वजनिक शान्ति व्यवस्था से परिचित है और वह है सार्वजनिक कारागृह की शान्ति।" —महात्मा गाँधी

संघर्ष को टालने की दिशा में महात्मा गाँधी के प्रयत्न– सरकार ने आन्दोलन को कुचलने के लिए दमन-नीति का आश्रय लिया। साथ ही स्थान-स्थान पर काँग्रेसी नेताओं को गिरफ्तार करना आरम्भ किया। आन्दोलन प्रारम्भ करने के पूर्व महात्मा गाँधी ने लार्ड इरविन तथा रैम्जे मैकडौनल्ड के सम्मुख अपना प्रसिद्ध ग्यारह शर्तों का प्रस्ताव रखा। इस प्रस्ताव में उन्होंने निम्नलिखित माँगें प्रस्तुत कीं : (1) मद्य-निषेध लागू किया जाय, (2) रुपये और पौंड के आनुपातिक मूल्य में कमी हो, (3) भूमि कर घटा दिया जाय, (4) नमक-कर उठा लिया जाय, (5) सैनिक-व्यय में यथेष्ट कमी की जाय, (6) अधिक वेतन पाने वाले सरकारी पदाधिकारियों की संख्या घटायी जाय, (7) विदेशी कपड़े पर विशेष आयात कर लगाया जाय, (8) तटवर्ती आरक्षण विधेयक पास किया जाय ताकि भारतीय समुद्रतट केवल भारतीय जहाजों के लिए सुरक्षित रहे। (9) राजनीतिक बन्दियों को कारावास से मुक्त किया जाय (10) गुप्त-सूचना विभाग (C.I.D.) तोड़ दिया जाय अथवा जनता के प्रतिनिधियों के अनुशासन में रखा जाय, और (11) आत्म-रक्षा के लिए शस्त्रास्त्र रखने के अनुमति-पत्र जनता को स्वतन्त्रतापूर्वक दिये जायँ। परन्तु सरकार ने उनकी उक्त माँगों की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया और देश में गिरफ्तारियों का क्रम पूर्ववत् चलता रहा। फलतः 14 फरवरी, 1930 को साबरमती में कांग्रेस कार्यकारिणी की एक आवश्यक बैठक बुलायी गई जिसमें महात्मा गाँधी के नेतृत्व में सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाने का निर्णय लिया गया। परन्तु सविनय अविज्ञा आन्दोलन आरम्भ करने के पूर्व महात्मा गाँधी ने अपनी माँगों को मनवाने के सम्बन्ध में वाइसराय को एक पत्र लिखा। वाइसराय ने पत्र का संक्षिप्त उत्तर देते हुए कहा कि आप द्वारा प्रस्तावित कार्यक्रम से देश में अव्यवस्था एवं अशान्ति फैलने की आशंका है।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन– अब कांग्रेस के समक्ष संघर्ष के अतिरिक्त और कोई विकल्प न था। अतः 2 मार्च, 1930 को गाँधी ने वाइसराय इरविन को एक ऐतिहासिक पत्र लिखकर कहा कि वह शीघ्र की कानून को तोड़कर सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ करेंगे। वाइसराय को चेतावनी देने के पश्चात् 12 मार्च, 1930 को प्रातःकाल महात्मा गाँधी ने नमक कानून तोड़ने के उद्देश्य से साबरमती आश्रम से 79 अनुयायियों के साथ डाँडी यात्रा प्रारम्भ की। प्रस्थान के समय गाँधी जी ने अपनी यह ऐतिहासिक घोषणा की थी– 'यदि स्वराज्य न मिला तो या रास्ते में मर जाऊँगा यां आश्रम के बाहर रहूँगा। नमक पर कर न उठा सका तो आश्रम लौटने का भी इरादा नहीं है।" उन्होंने 5 अप्रैल को डाँडी पहुँच कर 6 अप्रैल को नमक का कानून तोड़ा। 9 अप्रैल को गाँधी जी ने अनुयायियों के लिए निम्न कार्यक्रम तैयार किया :

(क) प्रत्येक गाँव गैरकानूनी नमक लाए या बनाए। (ख) बहनों को मादक पदार्थों की दुकानों, अफीम के अड्डों तथा विदेशी कपड़ों की दुकानों पर धरना देना चाहिए। (ग) प्रत्येक घर में बूढ़े व युवक सभी तकली चलाकर सूत कातें और प्रतिदन काफी मात्रा में सूत बुनने के लिए दें। (घ) विदेशी वस्त्र जला दिये जायें। (ङ) हिन्दू छुआछूत की भावना का त्याग करें।

(च) विद्यार्थी सरकारी स्कूल कॉलेजों को छोड़ दें और (छ) सरकारी कर्मचारी अपने पदों से त्याग-पत्र देकर अपना जीवन जनता की सेवा में अर्पण करें। शीघ्र ही हम देखेंगे कि स्वतन्त्रता द्वार खड़ी हमारा आह्वान कर रही है।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन आँधी की भाँति सारे देश में फैल गया। सम्पूर्ण देश में नमक का कानून तोड़ा गया। स्थान-स्थान पर सरकार के विरोध में सभाओं का आयोजन किया गया। सहस्रों स्त्री-पुरुष जेल गये। 14 अप्रैल को पंडित जवाहरलाल नेहरू और दूसरे प्रभावशाली नेताओं को बन्दी बना लिया गया। 6 मई को गाँधी जी को बन्दी बनाकर यरवदा जेल भेज दिया गया। 21 मई को धरसना में 2,500 सत्याग्रहियों ने नमक के गोदाम पर चढ़ाई कर दी। जनता ने चटगाँव के सरकारी शस्त्रागार पर धावा बोल दिया और शोलापुर में 5 थानों को जला दिया। पेशावर में जनता का अधिकार हो गया और संयुक्त प्रान्त के किसानों ने सरकार को भूमि-कर देना बन्द कर दिया। सरकार ने भी तेरह अध्यादेश जारी करके असंख्य व्यक्तियों को जेलों में ठूँस दिया और उन पर अमानुषिक अत्याचार किये गये। पंडित मोतीलाल नेहरू को भी गिरफ्तार कर 6 माह का कारावास दण्ड दिया गया। बंगाल में आन्दोलन ने संगठित आतंकवाद का रूप धारण कर लिया। सभी स्थानों पर पुलिस ने भयंकर अत्याचार किए-सभाएँ भंग की गईं, लाठियों से घातक प्रहार किये गये, सहस्रों की संख्या में नौजवान पकड़े गये और उन्हें तरह-तरह की घोर असहनीय यातनाएँ दी गईं। देश भर में लगभग 100 व्यक्ति गोलियों के शिकार हुए और असंख्य व्यक्ति घायल हुए, परन्तु आन्दोलन उग्र रूप धारण करता गया। एक पत्रकार के अनुसार, "मानव जाति के हृदय में देश-प्रेम की लहर इतनी तीव्र कभी नहीं उठी थी, जितनी इस महान् अवसर पर। भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में इसे एक महान आन्दोलन का महान् प्रारम्भ कहा जायेगा।"

प्रथम गोलमेज सम्मेलन का बहिष्कार– प्रथम गोलमेज सम्मेलन का अधिवेशन 12 नवम्बर, 1930 को लन्दन में हुआ। परन्तु कांग्रेस ने इस अधिवेशन में भाग नहीं लिया। 19 जनवरी 1931 तक यह अधिवेशन चलता रहा। इसकी अध्यक्षता ब्रिटेन के प्रधान मंत्री श्री रैम्जे मैकडोनल्ड ने की। सम्मेलन में 85 प्रतिनिधियों ने भाग लिया और निम्नलिखित प्रस्ताव रखे गये जिन्हें सभी दलों ने स्वीकार कर लिया :

(1) प्रान्तों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना की जायेगी और प्रान्तों को आंतरिक मामलों में पूर्ण स्वराज्य दे दिया जायेगा।
(2) अल्पसंख्यक जातियों के हितों की रक्षा के लिए गवर्नर को विशेषाधिकार प्रदान किये जायेंगे।
(3) केन्द्र में द्वैध-शासन की स्थापना की जायेगी।
(4) गवर्नर जनरल को केन्द्र में विशेष शक्तियाँ प्रदान की जायेंगी।
(5) केन्द्र में संघ शासन की स्थापना की जायेगी जिसमें भारतीय रियासतों तथा ब्रिटिश भारत के प्रान्तों के प्रतिनिधि सम्मिलित होंगे।

उपर्युक्त सभी बातों को सभी प्रतिनिधियों ने स्वीकार कर लिया था, किन्तु फिर भी साम्प्रदायिक समस्याओं को यह सम्मेलन हल करने में असफल रहा। मि. जिन्ना अपनी चौदह शर्तों पर अड़े रहे। इसी प्रकार डॉ. अम्बेडकर ने हरिजनों के प्रतिनिधित्व की माँग की।

गाँधी-इरविन समझौता– इसी बीच तेज बहादुर सप्रू, डॉ. जयकर, नवाब भोपाल तथा श्रीनिवास शास्त्री ने सरकार और कांग्रेस के बीच समझौता कराने का प्रयास किया। फलतः लार्ड इरविन तथा महात्मा गाँधीजी में 17 फरवरी और 4 मार्च के बीच अनेक भेटें हुईं। अन्त में 5 मार्च, 1931 को गाँधी जी और इरविन के बीच समझौता हो गया। इस समझौते को 'गाँधी-इरविन

समझौता कहा जाता है।

समझौते की शर्तें– सरकार की ओर से–

(1) उन राजनीतिक बन्दियों को छोड़कर जिन पर हिंसात्मक कार्यों के दोष हैं, शेष सभी को रिहा कर दिया जायगा।
(2) सभी अध्यादेशों और अपूर्ण अभियोगों के मामलों को वापस ले लिया जायगा।
(3) कांग्रेस व उनके अभियोगों के मामलों को वापस ले लिया जायगा।
(4) समुद्र–तट के आस–पास रहने वाले लोगों को नमक बनाने व एकत्रित करने को छूट होगी।
(5) शराब, अफीम व विदेशी शस्त्रों की दुकानों पर शान्तिपूर्ण धरना (Picketing) देने की अनुमति भारतीयों को दी गई।

गाँधी ने कांग्रेस की ओर से निम्न शर्तों को स्वीकार किया–

(1) सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर दिया जायेगा।
(2) भारत की संवैधानिक प्रगति के लिए निकट भविष्य में होने वाले गोलमेज सम्मेलन में भाग लिया जायेगा।
(3) पुलिस द्वारा किये गये अत्याचारों की न्यायिक जाँच कराने की माँग की जायेगी।
(4) नमक कानून के उन्मूलन की माँग वापस ले ली जायेगी।
(5) बहिष्कारों को वापस ले लिया जायेगा।

गाँधी–इरविन समझौते के सम्बन्ध में देश में मिली–जुली प्रतिक्रिया व्यक्त की गई। देश की जनता ने इसे कांग्रेस की बहुत बड़ी विजय माना और कहा कि कांग्रेस ने सरकार की भावी दमन–नीति से लोगों को बचा लिया। कांग्रेस भविष्य में सरकार से संघर्ष करने के लिए अधिक मजबूत हो गई। इस समझौते के सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए रजनी पाम दत्त ने सत्य ही कहा था, "गाँधी–इरविन समझौते में कांग्रेस की कोई माँग पूरी नही हुई। (नमक–कर तक नहीं हटाया गया)। सविनय अवज्ञा आन्दोलन वापस ले लिया गया। कांग्रेस ने उस गोलमेज सम्मेलन में भाग लेना स्वीकार कर लिया, जिसका बहिष्कार करने की उसने शपथ ली थी। स्वराज्य की दिशा में भी कोई निश्चित पग नहीं उठाया गया।"

25 मार्च, 1931 को कांग्रेस के कराँची अधिवेशन में गाँधी जी ने उपर्युक्त समझौता काँग्रेस से पास करा लिया। परन्तु अधिक दिनों तक इस समझौते का पालन नहीं किया जा सका, क्योंकि इसी समय सरदार भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव को विधान–मण्डल में बम फेंकने और पुलिस अधिकारी साण्ड्र्स की हत्या करने के अपराध में फाँसी की सजा दी गई (23 मार्च, 1931)। गाँधी जी के अथक प्रयास करने पर भी इस सजा को कम न करवाया जा सका।

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन– द्वितीय गोलमेज में काँग्रेस का प्रतिनिधत्व गाँधीजी ने किया। यह सम्मेलन 7 सितम्बर से 1 दिसम्बर, 1931 तक हुआ। गाँधी जी 10 सितम्बर को लन्दन पहुँचे। पण्डित मदनमोहन मालवीय और श्रीमती सरोजिनी नायडू भी इंगलैण्ड गये। परन्तु वहाँ समझौता नहीं हो सका, क्योंकि वहाँ साम्प्रदायिकता का पक्ष लिया गया। जिन्ना ने अल्पसंख्यकों के लिए विशेष अधिकारों की माँग की। राजाओं और महाराजाओं ने भी संघ में सम्मिलित होने का विरोध किया। उसी समय वहाँ के आम–चुनाव में मजदूर दल के स्थान पर ब्रिटिश मंत्रि–मण्डल में अनुदार दल का बहुमत हो गया था तथा उससे किसी प्रकार की आशा करना व्यर्थ था। अतः बिना किसी निर्णय के द्वितीय गोलमेज सम्मेलन का अधिवेशन समाप्त हो गया। इरविन के स्थान पर लार्ड विलिंगटन भारत के वाइसराय नियुक्त होकर आये। उन्होंने भी कठोर नीति का अनुसरण करना प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा कि वह छः सप्ताह के अन्दर कांग्रेस को कुचल देंगे।

गाँधी जी के भारत लौटने पर कांग्रेस ने पुनः अहिंसात्मक आन्दोलन चलाने का निश्चय किया। गाँधी जी ने वाइसराय से भेंट करने का प्रयास किया, किन्तु वाइसराय ने उनसे मिलने से इन्कार कर दिया। अतः ऐसी स्थिति में पुनः आन्दोलन प्रारम्भ होने के पूर्व ही गाँधी जी तथा कांग्रेस कार्यकारिणी के अन्य बचे सदस्यों को बन्दी बनाकर जेल में डाल दिया गया तथा कांग्रेस संस्था को अवैध घोषित कर दिया गया। सभी कांग्रेस कार्यालयों की सम्पत्ति जब्त कर ली गयी और उनमें सरकारी ताले डाल दिये गये। सभाओं, समितियों तथा जुलूसों पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। सरकार ने जनता पर अमानवीय तथा असह्य अत्याचार किये। गाँवों में बलात्कार, सामूहिक जुर्माना और नृशंस अत्याचार साधारण बात हो गई। संदेहयुक्त देशभक्तों को अण्डमान भेजने का दण्ड भी साधारण घटनाएँ हो गईं। स्मरणीय है कि उस समय मुस्लिम लीग के नेताओं ने सरकार का साथ दिया। बम्बई में मौलाना शौकत अली ने बहिष्कार आन्दोलन का खुला विरोध किया। उनके इस कार्य से आगे चलकर हिन्दु-मुस्लिम दंगों को प्रोत्साहन मिला।

साम्प्रदायिक निर्णय– इस समय इंगलैण्ड के प्रधानमंत्री मेकडानल्ड थे। भारत में हिन्दू और मुसलमानों के साम्प्रदायिक प्रश्न का निर्णय उन्हीं के हाथों में छोड़ दिया गया था। 16 अगस्त, 1932 को उन्होंने अपना निर्णय दिया जो 'साम्प्रदायिक निर्णय' (Communal Award) कहलाता है। इसकी प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं :

(1) इसके अनुसार प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं की संख्या बढ़ाकर दुगुनी कर दी गई।

(2) मुसलमान, सिक्ख तथा भारतीय ईसाई अल्पसंख्यकों के लिए पृथक् निर्वाचन का विधान किया गया।

(3) अछूतों को अल्पसंख्यक मानकर उन्हें भी पृथक् निर्वाचन तथा प्रतिनिधत्व का अधिकार प्रदान किया गया।

(4) सीमा-प्रान्त को छोड़कर शेष प्रान्तों में व्यवस्थापिका सभा की तीन प्रतिशत सीटें स्त्रियों के लिए सुरक्षित की गईं।

पूना-समझौता– उक्त निर्णयों की प्रमुख विशेषता यह थी कि मुसलमानों और यूरोपियनों की ही भाँति अछूतों को हिन्दुओं से अलग कर पृथक् निर्वाचन तथा पृथक् प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। इस निणर्य से गाँधी जी के हृदय को बड़ी ठेस लगी। उन्होंने 20 सितम्बर, 1932 को आमरण अनशन आरम्भ कर दिया। अन्त में प्रधान मंत्री ने गाँधी जी से समझौता कर लिया जो भारतीय इतिहास में 'पूना समझौता' के नाम से प्रसिद्ध है। इससे अछूतों का पृथक् निर्वाचन बदल दिया गया। इसके पश्चात् गाँधी जी ने आत्मशुद्धि के लिए 8 मई, 1933 में 21 दिन का उपवास किया। इसी तिथि को भारत सरकार ने गाँधी जी को कारागृह से मुक्त कर दिया। जुलाई में कांग्रेस ने सविनय अवज्ञा के जन-आन्दोलन को व्यक्तिगत आन्दोलन का स्वरूप देने का निश्चय किया। सरकार ने व्यक्तिगत सत्याग्रहियों के विरुद्ध अपना दमन और अधिक कठोर कर दिया। गाँधी जी पुनः गिरफ्तार कर लिये गये और अगस्त, 1933 में उन्हें एक वर्ष के कारावास का दण्ड मिला, क़िन्तु एक माह के भीतर ही उन्हें कारगृह से मुक्त कर दिया गया। कांग्रेस का व्यक्तिगत सत्याग्रह सभी प्रान्तों के अबाध गति से चलता रहा और सैकड़ों सहयोगियों ने हँस-हँस कर कठोर यातनाएँ सहीं। इस प्रकार अगस्त 1933 से अप्रैल, 1934 तक आन्दोलन अनवरत रूप से चलता रहा। मई, 1934 में आकर इस आन्दोलन का अन्त हुआ।

तृतीय गोलमेज सम्मेलन– 17 नवम्बर, 1932 को तीसरा गोलमेज सम्मेलन आरम्भ हुआ और 24 दिसम्बर, 1932 तक चलता रहा। यह कोई विशेष महत्व का सम्मेलन नहीं था। इस सम्मेलन में केवल पिछले दो सम्मेलनों की रही-सही पूर्ति भर ही की गई। इसमें केवल 46 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। काँग्रेस ने इस सम्मेलन में भाग नहीं लिया। उसकी अनुपस्थिति में

प्रतिक्रियावादी तत्वों का ही बोलबाला रहा। सम्मेलन के प्रस्तावों के आधार पर एक 'श्वेत-पत्र' प्रकाशित हुआ। इसी के आधार पर 1935 का भारतीय अधिनियम पारित हुआ।

1937 का निर्वाचन– 1935 के अधिनियम के अन्तर्गत 1937 में प्रान्तीय विधान-सभाओं के लिए निर्वाचन हुए, जिसमें कांग्रेस को आश्चर्यजनक सफलता मिली। मद्रास, संयुक्त प्रान्त, मध्यप्रदेश, बरार, बिहार और उड़ीसा में उसे पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ। बंगाल, बम्बई, असम और सीमाप्रान्त में भी उसके ही सबसे अधिक सदस्य विधान सभाओं के लिए निर्वाचित हुए। केन्द्रीय व्यवस्थापिका में भी वह बड़े दल के रूप में चुनी गई। इन चुनावों को देखकर सरकार भी समझ गयी कि बिना कांग्रेस के सहयोग से कोई विधान सब प्रान्तों में लागू करना असम्भव सा ही होगा। प्रारम्भ में कांग्रेस ने उन प्रान्तों में जहाँ उसका बहुत था, मंत्रिमण्डल बनाना अस्वीकार कर दिया और सरकार से यह आश्वासन माँगा कि गवर्नर अपने विशेषाधिकारों को मंत्रिमण्डल के विरोध में प्रयोग न करेंगे। जुलाई, 1937 में तत्कालीन वाइसराय लार्ड लिनलिथगो ने अपने एक वक्तव्य में यह आश्वासन दिया कि साधारणतः गवर्नर मंत्रिमण्डल के कार्य में कोई बाधा न उपस्थित करेंगे। फलतः कांग्रेस ने 9 प्रान्तों में जहाँ उसका बहुमत था, मन्त्रिमण्डल बनाना स्वीकार कर लिया और कुछ समय के पश्चात् उसने सिन्ध, उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त और असम में सम्मिलित मन्त्रिमण्डल बनाये। 1939 तक ये मन्त्रिमण्डल कार्य करते रहे।

पंचम चरण (1939-1947)

'भारत छोड़ो' आन्दोलन तथा स्वतन्त्रता की प्राप्ति

"मैं स्वतन्त्रता के आने की अब अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकता। यदि मैं और रुकूँगा, तो ईश्वर मुझे दण्ड देगा। यह मेरे जीवन का अन्तिम संघर्ष है।"

–महात्मा गाँधी

कांग्रेस और द्वितीय महायुद्ध– 1939 में यूरोप में द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो गया। वाइसराय लार्ड लिनलिथगो ने भारतीय विधान-मण्डल की सहमति के बिना भारत को भी इस युद्ध में सम्मिलित कर दिया और देश में आपातस्थिति (State of Emergency) की घोषणा कर दी। इसके अतिरिक्त 'भारत रक्षा अध्यादेश' भी घोषित कर दिया गया जिसके द्वारा केन्द्रीय सरकार को सभाएँ रोकने, बिना वारण्ट के गिरफ्तारी करने तथा कानून तोड़ने के अपराध में आजन्म कालापानी तथा मृत्यु-दण्ड तक देने का अधिकार मिल गया। कांग्रेस ब्रिटिश सरकार के पक्ष में थी, किन्तु वह भारतीयों की इच्छा के प्रतिकूल देश को युद्ध में सम्मिलित कराने की नीति की विरोधी भी थी। 14 सितम्बर को कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने युद्ध-परिस्थिति पर एक प्रस्ताव पास किया जिसमें इंगलैण्ड से अपने युद्ध उद्देश्यों की घोषणा करने की माँग की गई। कांग्रेस चाहती थी कि सरकार जनवाद, साम्राज्यवाद और नयी व्यवस्था के सम्बन्ध में अपने भाव स्पष्ट शब्दों में प्रकट करे। 10 अक्टूबर को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने माँग की कि युद्ध-उद्देश्यों की स्पष्ट घोषणा की जाय और सरकार इन उद्देश्यों को भारत में किस प्रकार लागू करेगी। उसने यह भी माँग की कि भारत की स्वतन्त्रता घोषित की जाय और उस स्वतन्त्रता को यथाशीघ्र व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया जाय।

कांग्रेस की उपर्युक्त माँगों के सम्बन्ध में सरकार का रुख उपेक्षाजनक ही रहा। वाइसराय महोदय ने भविष्य में औपनिवेशिक स्वराज्य देने का पुराना आश्वासन पुनः दोहराया और 17 अक्टूबर को उन्होंने घोषणा करते हुए कहा– "युद्ध समाप्त होने पर भारत की विभिन्न जातियों,

दलों, वर्गों तथा देशी नरेशों के प्रतिनिधियों के साथ, 1935 के सुधार-कानून में आवश्यक परिवर्तन करने के प्रयत्न में उनका सहयोग प्राप्त करने के उद्देश्य से, परामर्श करने में सरकार को बड़ी प्रसन्नता होगी।" कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने इस वक्तव्य को पूर्णरूपेण असन्तोषजनक कहकर अस्वीकार कर दिया। फलतः महात्मा गाँधी के परामर्श से 15 नवम्बर, 1939 को कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने त्याग पत्र दे दिया।

मुक्ति-दिवस– 22 नवम्बर को 8 प्रान्तों में मंत्रिमण्डलों के त्याग-पत्र पर मुस्लिम लीग ने मुक्ति-दिवस (Day of Deliverance) मनाया। उसने ऐसा इसलिए किया, क्योंकि कांग्रेस ने चुनावों के बाद अपने बहुमत वाले प्रान्तों में मुस्लिम लीग के साथ संयुक्त मंत्रिमंडल बनाना अस्वीकार कर दिया था। इससे कांग्रेस और मुस्लिम लीग में कटुता उत्पन्न हो गई थी। इसी कटुता के परिणाम स्वरूप 1937 व 1938 में बिहार, संयुक्त प्रान्त, सीमाप्रान्त, तथा मद्रास के अनेक स्थानों पर साम्प्रदायिक दंगे भी हुए।

संविधान सभा की माँग– अप्रैल, 1940 में कांग्रेस का अधिवेशन मौलाना अब्दुल कलाम आजाद की अध्यक्षता में रामगढ़ में हुआ। इस अधिवेशन में कांग्रेस ने स्पष्ट घोषणा कर दी थी कि भारत की जनता पूर्ण स्वतन्त्रता से लेशमात्र भी कम स्वीकार करने को तैयार नहीं है और प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर निर्मित संविधान सभा ही भारतीयों के भाग्य का निर्णय कर सकती है। इसी समय सुभाषचन्द्र बोस वामपन्थी तत्वों को संगठित करने में संलग्न थे। वह चाहते थे कि कांग्रेस इंग्लैण्ड को अन्तिम चेतावनी दे दे और यदि वे इतने पर भी भारत को स्वतन्त्र न करे तो पुनः देशव्यापी सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ कर दे।

पुनः सविनय अवज्ञा आन्दोलन– परिणामतः नवम्बर, 1940 में गाँधी जी ने पुनः सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ करने का आदेश दिया। इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री चर्चिल और भारत सचिव एमरी ने आन्दोलन को निर्दयतापूर्वक कुचलने का निश्चय किया। चर्चिल ने घोषणा की कि "वे सम्राट के प्रधानमंत्री इसलिए नहीं बने हैं कि उनकी देखरेख में ब्रिटिश साम्राज्य का विलय हो।" सर्वप्रथम आचार्य विनोबा भावे ने आन्दोलन का श्रीगणेश किया। उन्होंने वर्धा से 11 किलोमीटर दूर पवनार नामक गाँव में एक भाषण दिया और जनता से युद्ध में अंग्रेजों को किसी प्रकार की सहायता न करने को कहा। चार दिन तक विनोबा भावे युद्ध-विरोधी भाषण देते रहे और पाँचवें दिन उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। पण्डित जवाहर लाल नेहरू को सत्याग्रह आरम्भ करने के पूर्व ही बन्दी बना लिया गया और उनको चार वर्ष का कठोर कारावास का दण्ड दिया गया। सरदार पटेल, चक्रवर्ती राजगोपालचारी, अब्दुल कलाम आजाद तथा अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के सदस्य बड़ी संख्या में गिरफ्तार कर लिये गये। 25-30 हजार कार्यकर्ताओं के बन्दी होने पर भी आन्दोलन तीव्र गति से चलता रहा। सन 1941 में जापान ने भारत पर आक्रमण करने की योजना बनायी। ऐसे संकटकाल में भारतीयों का सहयोग प्राप्त करना अंग्रेजों के लिए अनिवार्य हो गया।

क्रिप्स-मिशन– जापान की बढ़ती हुई शक्ति ने मित्र-राष्ट्रों का ध्यान भारत की ओर आकृष्ट किया। अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा चीन आदि देशों ने ब्रिटिश सरकार पर भारत को स्वराज्य प्रदान करने के लिए दबाव डाला, जिसके परिणामस्वरूप प्रधानमंत्री चर्चिल ने 11 मार्च, 1942 को घोषणा की कि सर स्टुअर्ट क्रिप्स शीघ्र की भारत जायेंगे। 23 मार्च को भारत की राजनीति का अध्ययन करने के लिए क्रिप्स दिल्ली आए। आते ही विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं के साथ वार्तालाप करने में जुट गये। उन्होंने महात्मा गाँधी, पंडित नेहरू, मौलाना आजाद, मि. जिन्ना, सरदार बलदेव सिंह आदि नेताओं के साथ विचार-विनिमय किया और 29 मार्च को उन्होंने अपना प्रस्तावित घोषणा-पत्र प्रकाशित किया। घोषणा-पत्र की मुख्य बातें निम्नलिखित थीं :

(1) युद्ध के उपरान्त एक ऐसे स्वतन्त्र भारतीय संघ (India Union) के निर्माण का प्रयत्न वांछनीय है जिसे पूर्ण उपनिवेश का स्तर प्राप्त होगा। इसे ब्रिटिश राष्ट्र-संघ से अपना सम्बन्ध-विच्छेद करने का भी अधिकार होगा।

(2) युद्ध के पश्चात् प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं के निम्न आगारों (Lower Houses) द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व के आधार पर एक संविधान-निर्मात्री सभा का निर्माण होगा जो देश के लिए संविधान बनायेगी। देशी राज्यों को भी अपनी जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधि नियुक्त करने का अधिकार होगा।

(3) ब्रिटिश सरकार निम्नलिखित शर्तों पर इस संविधान को स्वीकार करेगी :

(अ) यदि ब्रिटिश भारत का कोई प्रान्त अथवा कोई भी देशी राज्य भारतीय संघ में न सम्मिलित होना चाहे तो उसे नये संविधान को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होगी।

(ब) ब्रिटिश सरकार और भारतीय संविधान सभा एक ऐसे सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर करेंगे जिसमें अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा आदि विषयों की व्यवस्था होगी।

(4) नये भारतीय संविधान के पूर्ण होने तक भारत की रक्षा का उत्तरदायित्व ब्रिटिश सरकार पर रहेगा।

कांग्रेस ने इस योजना को अस्वीकार कर दिया, क्योंकि प्रान्तों को भारतीय संघ में सम्मिलित होने या न होने की स्वतन्त्रता का तात्पर्य यह था कि परोक्ष रूप से पाकिस्तान की माँग स्वीकार कर ली गई। इसके अतिरिक्त राज्यों के प्रतिनिधियों को निर्वाचन करने का अधिकार वहाँ की जनता को न प्रदान कर राजाओं को मनोनीत करने का अधिकार प्रदान किया गया था। मुस्लिम लीग भी इस बात को लेकर असन्तुष्ट थी कि पाकिस्तान की माँग को स्पष्ट रूप से स्वीकार नहीं किया गया था। जब क्रिप्स योजना को कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग दोनों ने ही अस्वीकार कर दिया तो क्रिप्स महोदय ने 11 अप्रैल को इन प्रस्तावों को वापस लेने की घोषणा कर दी।

1942 का 'भारत छोड़ो' आन्दोलन– क्रिप्स के वापस जाने के बाद भारतीयों को ऐसा अनुभव हुआ कि ब्रिटिश सरकार ने उनके प्रति विश्वासघात किया और उन्हें अपने देश की रक्षा का अवसर भी नहीं दिया। युद्ध-परिस्थिति गंभीर होती जा रही थी। जापान ने सिंगापुर, मलाया और बर्मा पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था और वह भारत की ओर बढ़ रहा था। इस गम्भीर परिस्थिति पर विचार करने के लिए 27 अप्रैल, 1942 को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की एक आवश्यक बैठक इलाहाबाद में हुई जिसमें यह निश्चय किया गया कि यदि जापान की सेनाएँ भारत के भीतर प्रविष्ट होती हैं तो कांग्रेस उनके साथ शान्तिपूर्वक असहयोग की घोषणा कर देगी। भारतीय जनता किसी दशा में उनके सम्मुख झुकेगी नहीं। गाँधी जी का कहना था कि अंग्रेजों का भारत छोड़कर चले जाना ही देश के लिए हितकर है। 14 जुलाई को वर्धा प्रस्ताव द्वारा कांग्रेस की कार्यकारिणी ने भी इस दृष्टिकोण का समर्थन किया। जनता में दिन-प्रतिदिन यह भावना जोर पकड़ती जा रही थी कि कांग्रेस शीघ्र ही किसी न किसी रूप में जन-आन्दोलन आरम्भ करेगी। 1 अगस्त को तिलक दिवस पर इलाहाबाद में बोलते हुए पण्डित नेहरू ने कहा, "हम आग के साथ खेलने जा रहे हैं। हम दोधारी तलवार का प्रयोग करने जा रहे हैं, जिसकी चोट उल्टे हमारे ऊपर पड़ सकती है।" इसी समय राजेन्द्र बाबू ने अपने एक भाषण में जनता को सचेत करते हुए कहा, "हमें इस बार गोली खाने और तोप का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए।" बम्बई में भाषण करते हुए सरदार पटेल ने कहा, "इस बार का आन्दोलन थोड़े दिनों का है किन्तु बहुत ही भयानक होगा।" नेताओं के इस प्रकार के भाषणों ने आने वाले भयानक संघर्ष की पृष्ठ-भूमि की पुष्टि कर दी। इस समय राजगोपालचारी ने गाँधी जी को एक पत्र लिखते

हुए इस बात का परामर्श दिया कि कांग्रेस के मुस्लिम लीग की पाकिस्तान सम्बन्धी माँग एक अनिवार्य बुराई के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए। इसी समय कम्युनिस्ट पार्टी ने भी कांग्रेस को संघर्ष न छेड़ने की सलाह दी।

8 अगस्त, 1942 का 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव– जनता के व्यापक असन्तोष को देखकर 8 अगस्त, 1942 को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने अपने बम्बई के ऐतिहासिक अधिवेशन में प्रसिद्ध 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। 9 अगस्त को प्रातःकाल जबकि समस्त बम्बई नगर सो रहा था, महात्मा गाँधी के साथ कांग्रेस कार्यकारिणी के सब सदस्यों को गिरफ्तार करके एक अज्ञात स्थान में नजरबंद कर दिया गया। महात्मा गाँधी को पूना के आगा खाँ महल में और कार्यकारिणी के सदस्यों को अहमदनगर के किले में रखा गया। नेताओं की अनुपस्थिति में जनता ने सरकार की चुनौती का डटकर उत्तर दिया। सरकार ने भी आन्दोलन का दमन करने के लिए दमनात्मक नीति का अनुसरण किया। प्रदर्शन तथा सभाओं को लाठियाँ चलाकर भंग किया गया। स्थान–स्थान पर पुलिस तथा सेना ने गोलियाँ चलायीं जिससे सैकड़ों निर्दोष व्यक्ति मारे गये। समाचार–पत्रों की स्वतन्त्रता समाप्त कर दी गई तथा कांग्रेस को अवैध घोषित कर दिया गया। जनता भी क्रोधाग्नि से पागल हो उठी तथा उसने भी हिंसात्मक कार्य प्रारम्भ कर दिये। उसने तार–टेलीफोन के खम्भे उखाड़ना, तार काटना, रेलगाड़ियाँ उलटना, स्टेशनों, थानों तथा सरकारी भवनों को जलाना और सरकारी अधिकारियों को मारना आरम्भ कर दिया। बलिया, बिहार, बंगाल तथा सतारा आदि स्थानों पर जनता ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए जो कुछ किया उसको क्या हमारे राष्ट्रीय इतिहास में गर्व के साथ नहीं लिखा जायेगा? बलिया में तो जनता ने अंग्रेजों की सत्ता ही समाप्त कर दी और बलूची सेना आने तक वहाँ जनता का शासन चलता रहा। परन्तु बलूची सेना ने आकर वहाँ जो तांडव नृत्य किया वह सर्वथा अमानुषिक था। आन्दोलन का दमन करने के लिए उत्तर प्रदेश के दो–तीन स्थानों में वायुयान से भी गोलियाँ चलायी गईं। इसी बीच समाजवादी नेता जयप्रकाश नारायण हजारीबाग की जेल से भाग निकले, किन्तु उन्हें लाहौर के निकट पुनः बन्दी बना लिया गया और लाहौर के दुर्ग में उन्हें अकथनीय यातनाएँ दी गईं। यहाँ यह स्मरणीय है कि आन्दोलन में देश की कम्युनिस्ट पार्टी और मुस्लिम लीग ने कोई भाग नहीं लिया। सरकार की अत्याचार नीति के विरोध में महात्मा गाँधी ने 21 दिनों का अनशन 19 फरवरी, 1943 को प्रारम्भ कर दिया। गाँधी जी जेल में बीमार पड़ गये। अतः अस्वस्थता के कारण 6 मई, 1944 को उन्हें जेल से मुक्त कर दिया गया।

आजाद हिन्द सेना का संघर्ष– बाबू सुभाषचन्द्र बोस उग्र नीति के समर्थक थे। इसी समय उन्होंने कांग्रेस की नीति से असन्तुष्ट होकर 'फारवर्ड ब्लाक' नामक एक उग्र दल का निर्माण किया। उन्होंने कांग्रेसी नेताओं से कहा था कि "आप लोग जो बड़े–बड़े बँगलों में रहते हैं, आपको नहीं मालूम कि बमबाजी का क्या असर होता है? आप नहीं जानते कि जिस समय आपके सिरों पर ब्रिटिश जहाज मँडरा रहे हों, आपकी इमारतें चकनाचूर हो रही हों, आपके हाथ भर के फासले पर मशीनगन की सनसनाती हुई गोलियाँ उड़ रही हों, बच्चे मर रहे हों, औरतें अस्त–व्यस्त भाग रही हों, खून बह रहा हो, पसलियाँ टूट रही हों, मुर्दे सड़कों पर बिछ रहे हों, उस समय का अनुभव कितना गहरा होता है। . . . . . हम समझौते की ओर नजर उठाकर भी देख सकेंगे? नहीं, कभी नहीं, भारतीय खून इतना पतला नहीं होता।" सरकार ने उन्हें उनके कलकत्ता के एलगिन रोड स्थित निवास–स्थान में नजरबंद कर दिया किन्तु वे अवसर पाकर भारत से भाग निकले और अफगानिस्तान, इटली और जर्मनी होते हुए अन्त में जापान पहुँचे। उन्होंने सिंगापुर में 60 हजार भारतीय सैनिकों की संगठित 'आजाद हिन्द फौज'[1] का नेतृत्व संभाल लिया। अप्रैल, 1944 में इस सेना ने भारत की सीमा पर आक्रमण करके अंग्रेजों को पीछे हटाकर कोहिमा पर आक्रमण

1. आजाद हिन्द फौज की स्थापना कैप्टन मोहन सिंह ने सितम्बर, 1941 में की थी।

कर दिया। इस प्रकार प्रारम्भ में अंग्रेजों के विरुद्ध इस सेना को पर्याप्त सफलता मिली। किन्तु अन्त में युद्ध-सामग्री की कमी तथा भीषण वर्षा के कारण पीछे हटना पड़ा। जापान की पराजय के बाद आजाद हिन्द सेना ने भी अंग्रेजों के सम्मुख आत्म-समर्पण कर दिया और 14 अगस्त 1945 को टोकियो जाते हुए वायुयान दुर्घटना में फारमोसा द्वीप में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की मृत्यु हो गई।

1943 में लार्ड वेवेल भारत के वाइसराय बनकर आये। उनके आगमन से देश की राजनीतिक परिस्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। 1944 के मध्य गाँधी जी को जेल से मुक्त कर दिया गया और जून, 1945 में कांग्रेस के अन्य नेतागण भी जेल से मुक्त कर दिये गये। पं. नेहरू ने जनता को उनके वीरतापूर्ण कार्यों के लिए बधाई दी। उन्होंने कहा, "सतारा, बिहार, मिदनापुर तथा बंगाल और संयुक्त प्रान्त के अन्य स्थानों पर जो घटनाएँ घटीं, उन्होंने स्वतन्त्रता संघर्ष के इतिहास में गौरवशाली गाथा जोड़ी है।" नेताओं ने साम्यवादियों को आन्दोलन का विरोध करने के कारण घोर निन्दा की। 1945 में आजाद हिन्द सेना के तीन वीर नायकों- सहगल, ढिल्लन तथा शाहनवाज पर दिल्ली के लालकिले में राजद्रोह का अभियोग चला गया। परन्तु जनता की सहानुभूति उनके साथ थी और उसी बल पर 3 जनवरी, 1946 को उनके मुक्त होने के पश्चात् ही सम्पूर्ण देश ने सन्तोष की साँस ली।

राजा जी की योजना– जैसा कि पहले बताया चुका है कि राजगोपालाचारी ने महात्मा गाँधी के सम्मुख लीग से समझौता करने का प्रस्ताव रखा था परन्तु उसे कांग्रेस कार्य समिति ने अस्वीकार कर दिया था। वे बराबर कांग्रेस और मुस्लिम लीग के समझौते के प्रयत्न में लगे रहे। 10 जुलाई, 1944 को गाँधी जी की स्वीकृति से उन्होंने कांग्रेस और मुस्लिम लीग के समझौते की एक योजना प्रकाशित की, जिसकी मुख्य-मुख्य बातें निम्नलिखित थीं :

(1) 'मुस्लिम लीग' स्वतन्त्रता की माँग का समर्थन करे तथा अस्थायी सरकार निर्माण में कांग्रेस के साथ सहयोग करे।

(2) युद्ध की समाप्ति पर भारत के उत्तरी-पश्चिमी तथा पूर्वी भागों के समीप स्थित मुस्लिम बहुसंख्यक क्षेत्रों की सीमा निर्धारित करने के लिए एक कमीशन नियुक्त किया जाय। तत्पश्चात् वयस्क मताधिकार प्रणाली के अनुसार इन क्षेत्रों के निवासियों को मतगणना करके भारत से उनके सम्बन्ध-विच्छेद के प्रश्न का निर्णय किया जाय। यदि ये क्षेत्र भारत से अलग होना चाहें तो उन्हें अलग कर दिया जाय।

(3) मत-गणना के पूर्व सब राजनीतिक दलों को अपने दृष्टिकोण के प्रचार की पूर्ण स्वतन्त्रता हो।

(4) सम्बन्ध-विच्छेद की दशा में रक्षा, यातायात तथा अन्य विषयों में पारस्परिक समझौते की व्यवस्था हो।

(5) निवासियों की अदल-बदल उनकी स्वेच्छा पर हो।

(6) उपर्युक्त शर्तें उसी दशा में मान्य होंगी, जब ब्रिटिश सरकार भारतीयों को पूर्ण स्वतन्त्रता तथा उत्तरदायित्व देना स्वीकार कर ले।

लेकिन जिन्ना साहब ने गाँधी जी के उपर्युक्त प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। वे मुस्लिम जनसंख्या वाले सभी 6 प्रान्त पूरे-के पूरे चाहते थे। इसके अतिरिक्त वे रक्षा, यातायात तथा अन्य आवश्यक विषयों में सम्मिलित व्यवस्था के भी विरुद्ध थे।

भूलाभाई देसाई तथा लियाकत अली समझौता– यद्यपि गाँधी जी और जिन्ना की वार्ता असफल हो चुकी थी तथापि कांग्रेस के नेता यह चाहते थे कि वाइसराय को अपने सामने झुकाये रखने के लिए मुस्लिम लीग और कांग्रेस में समझौता होना आवश्यक है। फलतः कांग्रेस दल के नेता श्री भूलाभाई देसाई ने मुस्लिम लीग के नेता लियाकत अली से 1945 में भेंट-

वार्ता की और कुछ सुझाव स्वरूप जो समझौता किया वह 'भूला भाई देसाई तथा लियाकत अली समझौता' कहलाता है।

समझौते की मुख्य बातें– समझौते की मुख्य बातें इस प्रकार हैं :

(1) यह निश्चय किया गया कि अस्थायी सरकार का निर्माण कांग्रेस और लीग के बराबर प्रतिनिधियों द्वारा किया जायगा।

(2) अस्थायी सरकार के मनोनीत सदस्यों को केन्द्रीय विधान-मण्डल का सदस्य होना आवश्यक नहीं होगा।

(3) हरिजनों तथा सिक्खों आदि के अल्पमतों को विशेष स्थान दिया जायगा।

(4) कार्यकारिणी परिषद को वाइसराय के नियन्त्रण से मुक्त करने की व्यवस्था की जायगी।

(5) अस्थाई सरकार सर्वप्रथम कांग्रेस कार्य-समिति के सदस्यों की कारामुक्ति के सम्बन्ध में कार्य करेगी।

साम्प्रदायिक समस्या के कारण उक्त समझौते का प्रयत्न भी असफल रहा क्योंकि मुस्लिम लीग पूर्ण पाकिस्तान की चर्चा किये बिना किसी समझौते को मानने के लिए तैयार न थी। इस प्रकार कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच कोई समझौता नहीं हो सका।

वेवेल योजना और शिमला-समझौता– 1945 में मित्र-राष्ट्रों की सफलता के साथ द्वितीय महायुद्ध समाप्त हो गया। 21 मार्च, 1945 को वेवेल अचानक लन्दन गये और वहाँ पर प्रधानमंत्री चर्चिल और भारत-मंत्री एमरी से परामर्श करने के बाद 4 जून, 1945 को भारत लौटे तथा भारतीयों के समक्ष एक नयी योजना रखी, जिसे 'वेवेल योजना' कहते हैं।

योजना की मुख्य बातें– वेवेल-योजना की मुख्य बातें इस प्रकार हैं :

(1) योजना में कहा गया कि ब्रिटिश सरकार भारत की समस्या को सुलक्षा कर उसे स्वशासन के लक्ष्य की दिशा में अग्रसर करना चाहती है।

(2) वाइसराय की कार्यकारिणी-परिषद का पुनर्गठन किया जायगा और उसमें सभी दलों को प्रतिनिधित्व दिया जायगा। परिषद में वाइसराय और मुख्य सेनापति को छोड़कर, शेष सभी सदस्य भारतीय होंगे। प्रतिरक्षा-विभाग वाइसराय के पास ही रहेगा।

(3) कार्यकारिणी-परिषद में मुसलमानों को सवर्ण हिन्दुओं के बराबर ही स्थान दिये जायेंगे।

(4) योजना में यह कहा गया कि कार्यकारिणी-परिषद एक अन्तरिम राष्ट्रीय सरकार के समान होगी और गवर्नर जनरल अकारण ही निषेधाधिकार का प्रयोग नहीं करेगा।

(5) नयी कार्यकारिणी-परिषद के निम्न तीन मुख्य कार्य बताये गये :

(क) जापान की पराजय तक उसके विरुद्ध पूरी शक्ति से युद्ध करना।

(ख) नये संविधान बनने व उसके लागू होने तक ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत का शासन चलाना और

(ग) उन उपायों पर विचार करना जिनके द्वारा संवैधानिक समझौता हो सके।

(6) कांग्रेसी नेताओं को जेल से रिहा कर दिया जायगा और शीघ्र शिमला में भारत के सभी दलों का एक सम्मेलन बुलाया जायगा।

(7) युद्ध की समाप्ति के बाद भारतीय अपने देश के संविधान का निर्माण स्वयं ही करेंगे।

शिमला सम्मेलन– योजनानुसार 16 जून, 1945 को कांग्रेस कार्यकारिणी के सभी सदस्यों को जेल से मुक्त कर दिया गया। शिमला-सम्मेलन 25 जून को प्रारम्भ हुआ। विभिन्न दलों के 22 प्रतिनिधियों ने सम्मेलन में भाग लिया। कांग्रेस की ओर से अब्दुल कलाम आजाद, पण्डित जवाहर लाल नेहरू, सरदार पटेल तथा खान अब्दुल गफ्फर खाँ ने और मुस्लिम लीग की ओर से मि. जिन्ना, नवाब इस्लाम खाँ, लियाकत खाँ और अब्दुल रब निश्तर ने भाग लिया। सम्मेलन का आरम्भ बड़े ही आशामय वातावरण में हुआ था किन्तु शीघ्र ही साम्प्रदायिक मतभेद

के कारण निराशा में बदल गया। कार्यकारिणी-परिषद के सदस्यों की नियुक्ति के सम्बन्ध में मि. जिन्ना का कहना था कि कार्यकारिणी-परिषद में जितने भी मुसलमान होंगे, वे सब लीगी होंगे, क्योंकि काँग्रेस हिन्दुओं की तथा लीग मुसलमानों की संस्था है। जिन्ना की इस विचारधारा से कांग्रेस सहमत न थी क्योंकि वह अपने को एक राष्ट्रीय संस्था मानती थी। फलतः कांग्रेस और लीग का समझौता नहीं हो सका और 15 जुलाई, 1945 को लार्ड वेवेल द्वारा शिमला- सम्मेलन की असफलता घोषित कर दी गई।

मंत्रि-मण्डल मिशन योजना- 1945 से आम चुनाव में इंग्लैण्ड के अनुदार दल के स्थान पर उदार दल की विजय हुई और उसके नेता मि. एटली प्रधान मंत्री बने। 19 दिसम्बर, 1945 को भारत में ब्रिटिश लोकसभा का एक शिष्ट मण्डल भेजा गया। उसकी रिपोर्ट पर 19 फरवरी, 1946 को भारत में मंत्रिमण्डल मिशन भेजने की घोषणा की गई। घोषणा में कहा गया कि "भारतीय नेताओं के साथ होने वाली वार्तालाप की सफलता भारत, ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल तथा संसार की शान्ति के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। संविधान सभा की स्थापना तथा प्रमुख राजनीतिक दलों की विश्वासपात्र कार्यपालिका के निर्माण के विषय में, लार्ड वेवेल के साथ मिलकर भारतीय नेताओं से परामर्श करने के लिए शीघ्र ही मंत्रिमण्डल का एक विशेष मिशन भारत जायेगा जिसमें भारत-भंत्री लार्ड पेथिक लारेंस, व्यापार बोर्ड के सभापति सर स्टैफर्ड क्रिप्स तथा श्री ए.वी. एलेक्जेण्डर सम्मिलित होंगे।" 1 मार्च, 1946 को प्रधानमंत्री ने ब्रिटिश लोकसभा में भारत की स्वतन्त्रता सम्बन्धी माँग को स्वीकार करते हुए घोषणा की- "यह क्या कोई आश्चर्य है कि भारत जो 40 करोड़ व्यक्तियों का राष्ट्र है और जिसने दो बार स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए अपने सपूतों का बलिदान किया है, आज अपने भाग्य के निर्णय का अधिकार प्राप्त करने का दावा करता है। वर्तमान सरकार के स्थान पर कौन-सी सरकार आनी चाहिए इसका निर्णय स्वयं भारत को ही करना है, परन्तु हमारी इच्छा उसे इस निर्णय के लिए आवश्यक व्यवस्था की स्थापना में मदद प्रदान करने की है।" उन्होंने यह भी घोषणा की कि "ब्रिटिश सरकार भारत के पूर्ण स्वतन्त्रता के अधिकार को मान्यता प्रदान करती है तथा यह उसका अधिकार है कि वह ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत रहे अथवा न रहे।"

24 मार्च 1946 को मन्त्रिमण्डल-मिशन भारत आया। 1 अप्रैल से 17 अप्रैल तक वह विभिन्न दलों के नेताओं से मिला। 13 मई, 1946 को मिशन ने भारत की वैधानिक समस्या के सम्बन्ध में अपनी योजना प्रकाशित की। योजना की मुख्य-मुख्य बातें निम्नलिखित थीं :

(1) एक भारतीय संघ की स्थापना की जायेगी जिसमें ब्रिटिश भारत के प्रान्त तथा देशी राज्य दोनों ही सम्मिलित होंगे। यह संघ वैदेशिक सम्बन्ध, रक्षा तथा यातायात-विभागों की व्यवस्था करेगा।

(2) संघ में ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों के प्रतिनिधियों की एक कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका होगी। व्यवस्थापिका में किसी साम्प्रदायिक समस्या पर कोई प्रस्ताव बिना उस सम्प्रदाय के प्रतिनिधियों के बहुमत की स्वीकृति के पास न होगा।

(3) संघ-सूची के अतिरिक्त अन्य सब विषयों तथा अवशिष्ट विषयों पर प्रान्तों का अधिकार होगा।

(4) देशी राज्यों के अधिकार में वे सब विषय रहेंगे जो उन्होंने संघ शासन को नहीं दिये हैं।

(5) प्रान्तों को अपने अलग शासन सम्बन्धी वर्ग बनाने का अधिकार होगा। इस प्रकार के तीन वर्ग होंगे- (अ) वर्ग में मद्रास, बम्बई, संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त, बिहार तथा उड़ीसा; वर्ग (ब) में उत्तर पश्चिम सीमाप्रान्त, पंजाब तथा सिंध और वर्ग (स) में बंगाल तथा असम सम्मिलित होंगे। प्रत्येक वर्ग की अपनी कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका-सभा होगी और

प्रत्येक वर्ग निश्चय करेगा कि प्रान्तीय सूची में किन-किन विषयों की सम्मिलित व्यवस्था होगी।

(6) संविधान का निर्माण करने की एक संविधान सभा होगी जिसके सदस्यों की संख्या और निर्वाचन की व्यवस्था निश्चित कर दी गई थी। संविधान सभा प्रान्तीय तथा वर्गीय संविधान बनाने के लिए उपर्युक्त वर्गों के आधार पर पर विभाजित हो जायेगी। संघीय संविधान तीनों वर्गों के सदस्य सम्मिलित होकर बनायेंगे।

तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए यह योजना एक आदर्श योजना थी। महात्मा गाँधी ने इसे स्वीकार कर लिया किन्तु मंत्रिमण्डल मिशन के वापस लौट जाने के पश्चात् ही मुस्लिम लीग ने प्रत्यक्ष संघर्ष की घोषणा की। मि. जिन्ना ने अपने एक भाषण में कहा कि "अपने इस प्रत्यक्ष संघर्ष के द्वारा मुस्लिम लीग संघर्ष के वैधानिक साधनों को तिलांजलि दे रही है।"

संविधान-सभा का निर्माण- जुलाई, 1946 में मन्त्रिमण्डल-मिशन-योजना के अनुसार संविधान-सभा के निर्वाचन हुए। भारत के प्रान्तों की 296 सीटों में से 111 सीटें कांग्रेस को, 73 सीटें मुस्लिम लीग को और शेष सीटें स्वतन्त्र सदस्यों को प्राप्त हुई। 93 सीटें भारतीय रियासतों के लिए थीं, किन्तु वे पूरी भरी न जा सकीं। जिन्ना ने कांग्रेस के बहुमत को पशु बल का बहुमत बताया और उन्होंने शीघ्र ही बम्बई में मुस्लिम लीग कार्यकारिणी की एक आवश्यक बैठक बुलायी तथा उसमें पूरी सुधार-योजना पर फिर विचार करने के बाद उसे अस्वीकार कर दिया गया। 29 जुलाई, 1946 की बैठक में लीग ने पाकिस्तान की प्राप्ति के लिए मुसलमानों को प्रत्यक्ष आन्दोलन आरम्भ करने का आदेश दिया। साथ ही यह निश्चय हुआ कि 16 अगस्त को समस्त देश में 'प्रत्यक्ष आन्दोलन दिवस' मनाया जाय। इस प्रत्यक्ष आन्दोलन के फलस्वरूप कलकत्ता, पूर्वी बंगाल तथा पंजाब में साम्प्रदायिक दंगे हुए। गाँवों तथा नगरों में असहाय हिन्दुओं और सिक्खों पर मुसलमानों ने संगठित आक्रमण किये, घर लूटकर जला दिये गये। बच्चे और बूढ़े भी नहीं छोड़े गये और कहीं-कहीं तो पूरे-के-पूरे परिवारों को जीवित जला दिया गया।

अन्तरिम सरकार की स्थापना- 12 अगस्त, 1946 को लार्ड वेवेल ने पं. जवाहरलाल नेहरू को अन्तरिम सरकार का निर्माण करने के लिए आमन्त्रित किया। 3 सितम्बर, 1946 को 12 सदस्यों के साथ नेहरू मन्त्रिमण्डल ने पद की शपथ ली, जिसमें 5 कांग्रेसी हिन्दू, 1 कांग्रेसी मुसलमान तथा 2 गैर कांग्रेसी मुसलमान, 1 अकाली सिक्ख, 1 गैर कांग्रेसी भारतीय ईसाई, 1 गैर कांग्रेसी पारसी तथा 1 कांग्रेसी अनुसूचित जाति के थे। आगे चलकर लार्ड वेवेल के अनुरोध पर मुस्लिम लीग के 5 सदस्य भी उस सरकार में सम्मिलित हो गये। लेकिन लीगी सदस्यों ने अपना अलग गुट बना लिया। 9 सितम्बर को होनेवाली संविधान-सभा की पहली बैठक में मुस्लिम लीग ने कोई भाग नहीं लिया।

लन्दन-सम्मेलन- इन परिस्थितियों में ब्रिटिश सरकार ने लार्ड वेवेल के साथ पं. नेहरू, मि. जिन्ना, लियाकत अली खाँ और सरदार बलदेव सिंह को लन्दन बुलाया। इस सम्मेलन में मि. जिन्ना की मनमानी के कारण कांग्रेस और मुस्लिम लीग में समझौता नहीं हो सका।

लार्ड माउण्टबेटन और भारत-विभाजन- लार्ड वेवेल के स्थान पर लार्ड माउण्टबेटन की नियुक्ति की गई और घोषणा की गई कि अंग्रेज जून, 1948 तक अवश्य भारत से चले जायेंगे। घोषणा में यह भी बताया गया कि ब्रिटिश सरकार केवल उसी संविधान को स्वीकार करने लिए तैयार होगी जो मन्त्रिमण्डल-मिशन-योजना के अनुसार निर्मित संविधान सभा द्वारा बनाया गया हो। और, "यदि यह प्रतीत होगा कि निश्चित समय से पहले भारत के सभी प्रमुख दलों द्वारा स्वीकृत संविधान का निर्माण न हो सकेगा तो ब्रिटिश सरकार को यह निश्चय करना पड़ेगा कि निश्चित समय पर सत्ता किसे हस्तांतरित की जाये- ब्रिटिश भारत की किसी केन्द्रीय सरकार को,

प्रान्तीय सरकार को अथवा किसी अन्य शक्ति को जो भारतीयों के हित में सबसे अधिक उपयुक्त हो।" इस घोषणा से आशा की जाती थी कि सभी दल अपने मतभेद दूर कर लेंगे। परन्तु ऐसा न हुआ और घोषणा के पश्चात् मार्च-अप्रैल, 1947 में पश्चिमी पंजाब और सीमाप्रान्त में साम्प्रदायिक दंगे हुए। मुसलमानों ने हिन्दुओं पर पाशविक अंत्याचार किये। लाहौर, रावलपिंडी और मुल्तान में मार-काट की जो घटनाएँ हुई वे अत्यन्त दुःखद थीं।

भारत के अन्तिम वाइसराय लार्ड माउण्टबेटन ने 23 मार्च, 1947 को भारत आकर यहाँ की राजनीतिक स्थिति का अध्ययन किया। परामर्श के फलस्वरूप वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मुस्लिम लीग संयुक्त भारत के संविधान के निर्माण के लिए आयोजित संविधान-सभा में किसी भी प्रकार से सहयोग देने के लिए तैयार नहीं है। अतः भारत के विभाजन को छोड़कर अन्य कोई विकल्प नहीं है। वे 18 मई को ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल से आवश्यक परामर्श लेने लन्दन चले गये। वहाँ से लौटकर 3 जून को भारतवासियों के नाम रेडियों पर संदेश देते हुए एक नयी योजना की घोषणा की जिसे 'माउण्टबेटन योजना' कहा जाता है।

योजना की मुख्य बातें– माउण्टबेटेन की मुख्य बातें निम्नलिखित थीं :

(1) योजना में कहा गया कि वर्तमान परिस्थिति में भारत की समस्या का एकमात्र हल भारत का विभाजन है। अतः भारत को दो भागों- भारत और पाकिस्तान में बाँटा जायगा।

(2) बंगाल, पंजाब व असम के विधान-मण्डलों के अधिवेशन दो भागों में होंगे, एक भाग में उन जिलों के सदस्य होंगे जिनमें मुसलमान बहुमत में हैं और दूसरे में उनका जिनमें मुसलमान बहुमत में नहीं हैं। दोनों को यह निर्णय करना होगा कि वे भारत में अथवा पाकिस्तान में मिलना चाहते हैं।

(3) सिंध के विधान-मण्डल को भी अपने अधिवेशन में अपने निर्णय करने की छूट दी जायेगी।

(4) उत्तरी-पश्चिमी सीमाप्रान्त के लोग जनमत के द्वारा यह निर्णय करेंगे कि वे पाकिस्तान में मिलना चाहते हैं या भारत में ही बने रहना चाहते हैं।

(5) असम के सिलह्ट जिले के मुस्लिम बहुमत वाले क्षेत्रों को भी जनमत के द्वारा भारत या पाकिस्तान में रहने का अधिकार दिया जायगा।

(6) बंगाल, पंजाब व असम के विभाजन के लिए एक सीमा आयोग की नियुक्ति होगी जो उपर्युक्त प्रान्तों की सीमा निर्धारित करेगी।

(7) नये दोनों राज्यों का दर्जा औपनिवेशिक दर्जा (Dominion Status) होगा, परन्तु दोनों ही राज्यों को ब्रिटिश राष्ट-मण्डल से पृथक् होने की पूर्ण स्वतन्त्रता होगी।

(8) देशी रियासतों से भी 15 अगस्त, 1947 में ब्रिटिश सर्वोच्चता हटा ली जायेगी और उनको स्वतन्त्रता होगी कि वे भारत अथवा पाकिस्तान किसी भी राज्य में सम्मिलित हों अथवा अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दें।

योजना की स्वीकृति– उपर्युक्त योजना दोषपूर्ण थी। कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ही योजना से प्रसन्न नहीं थे फिर भी उन्होंने योजना को एक 'आवश्यक बुराई' के रूप में स्वीकार कर लिया। पंडित गोविन्दवल्लभ पन्त ने कहा कि, "कांग्रेस ने एकता के लिए बहुत कार्य किया है और इसके लिए अपना सब कुछ न्यौछावर किया है। परन्तु आज कांग्रेस को या तो इस योजना को स्वीकार करना है या फिर आत्महत्या करनी है।

योजना के अनुसार बंगाल और पंजाब के विधान-मण्डलों ने प्रान्तों के विभाजन के पक्ष में अपना निर्णय दिया, जिसके फलस्वरूप इन प्रान्तों के दो-दो भाग हो गये। पूर्वी बंगाल और पश्चिमी पंजाब पाकिस्तान में गये। पश्चिमी बंगाल और पूर्वी पंजाब भारत में सम्मिलित हो गये। उत्तरी-पश्चिमी सीमाप्रान्त, सिन्ध, बिलोचिस्तान और असम के सिलहट जिलों ने भी पाकिस्तान

में सम्मिलित होने का निर्णय किया।

भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम, 1947

माउण्टबेटन-योजना के आधार पर 'भारतीय स्वतन्त्रता विधेयक' ब्रिटिश संसद में 4 जुलाई, 1947 को प्रस्तुत किया गया और 18 जुलाई को वह स्वीकृत हो गया। इस अधिनियम में कुल 15 धाराएँ थीं जिनमें निम्नलिखित धाराएँ महत्वपूर्ण हैं :

1. दो अधिराज्यों की स्थापना– इस अधिनियम द्वारा भारत का विभाजन स्वीकार कर लिया गया। यह निश्चित हुआ कि 15 अगस्त, 1947 से भारत और पाकिस्तान नाम से दो अधिराज्य बना दिये जायेंगे और उसी दिन दोनों राज्यों को सत्ता सौंप दी जायगी।

2. संविधान सभाओं को सत्ता सौंपना– अधिनियम में यह कहा गया कि दोनों अधिराज्यों की संविधान सभाओं को अपने-अपने लिए संविधान बनाने की स्वतन्त्रता होगी। ये संविधान सभाएँ पूर्ण प्रभुसत्तासम्पन्न होंगी।

3. भारत मंत्री के पद का अन्त– इस अधिनियम द्वारा ब्रिटिश सरकार के अन्तर्गत भारत-मंत्री के पद का अन्त कर दिया गया।

4. राष्ट्रमण्डल छोड़ने का अधिकार– इस अधिनियम द्वारा भारत और पाकिस्तान दोनों ही देशों को यह स्वतन्त्रता दी गई कि वह चाहे तो राष्ट्रमण्डल के सदस्य बने रहें अथवा राष्ट्र-मण्डल से सम्बन्ध-विच्छेद कर लें।

5. संविधान सभा का विधान-मण्डल के रूप में कार्य करना– अधिनियम में यह भी कहा गया कि जब तक संविधान-सभाएँ अपना-अपना संविधान न बना लें तब तक यही संविधान-सभाएँ विधानमण्डल के रूप में भी कार्य करेंगी और उनकी विधायी शक्तियों पर कोई नियन्त्रण नहीं होगा। वे शक्तियाँ केन्द्रीय विधान-मण्डल को प्राप्त होंगी।

6. 1935 के भारतीय सरकार अधिनियम द्वारा शासन– अधिनियम द्वारा यह व्यवस्था की गई कि जब तक नया संविधान बनकर तैयार हो उस समय तक 1935 के भारत सरकार के अधिनियम में उचित संशोधन करके शासन-व्यवस्था को संचालित किया जाय।

7. गवर्नर जनरलों की व्यवस्था– अधिनियम में कहा गया कि दोनों अधिराज्यों के एक-एकं गवर्नर जनरल होंगे जिनकी नियुक्ति राज्यों के मंत्रि-मण्डलों के परामर्श से होगी।

8. प्रान्तीय विधान-मण्डल– अधिनियम द्वारा यह भी व्यवस्था की गई कि जब तक नये संविधान के अनुसार प्रान्तों में निर्वाचन न हो, उस समय तक पुराने विधान-मण्डल ही प्रान्तों में कार्य करते रहेंगे।

9. देशी रियासतों पर से 'सर्वोच्चता' का अन्त– इस अधिनियम द्वारा भारतीय रियासतों पर से ब्रिटिश 'सर्वोच्चता' उठा ली गई और उन्हें दोनों अधिराज्यों में से किसी में भी सम्मिलित हो जाने की स्वतन्त्रता दे दी गई।

10. अन्य उपबन्ध– स्वतन्त्रता अधिनियम द्वारा दोनों अधिराज्यों के मध्य सशस्त्र फौजों के विभाजन की भी व्यवस्था की गई। राज्य सेनाओं के सदस्यों की नौकरी की शर्तें ज्यों-की-त्यों रहने दी गईं।

इस प्रकार भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम, 1947 ने भारत में विदेशी शासन का अन्त करके 15 अगस्त को भारत और पाकिस्तान नाम के दो स्वतन्त्र अधिराज्यों की स्थापना की। 13 अगस्त को कराँची जाकर लार्ड माउण्टबेटन ने पाकिस्तान की संविधान सभा को सत्ता सौंप दी तथा 14 अगस्त को भारत को सत्ता सौंप दी।

संविधान सभा– 29 अगस्त, 1947 को भारत की संविधान सभा ने संविधान का प्रारूप बनाने के लिए एक समिति की नियुक्ति की जिसने संविधान का प्रारूप बनाकर संविधान सभा

को प्रस्तुत किया। संविधान सभा ने इस पर विचार करके अपनी स्वीकृति प्रदान की और भारतीय संविधान 26 जनवरी, 1950 को भारत में लागू हो गया। सरदार पटेल ने देशी रियासतों को भारतीय संघ में सम्मिलित कर हमेशा के लिए समस्या हल कर दी। इसी बीच पाकिस्तान से आये 70-80 लाख हिन्दुओं और सिक्खों के पुनर्वास की व्यवस्था करके सराहनीय कार्य किया गया।

निष्कर्ष स्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलन की कहानी भारतीय जनता तथा अंग्रेज सरकार के मध्य संघर्ष एवं स्वतंत्रता प्राप्ति की अविस्मरणीय गाथा है, जो भारतीय इतिहास में सदैव स्मरण रखी जायेगी। पी.ई.राबर्ट्स के शब्दों में, "इस प्रकार भारत में साढ़े तीन सौ वर्ष के व्यापारिक, दो शताब्दी के राजनीतिक प्रभुत्व और एक सौ तीस वर्ष की सर्वोच्च सत्ता के ब्रिटिश काल का अन्त हुआ।"

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में महात्मा गाँधी का योगदान

महात्मा गाँधी भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के अग्रसेनानी थे। आपका जन्म काठियावाड़ के पोरबन्दर नामक स्थान में 2 अक्टूबर, 1869 को हुआ था। उनके पिता पोरबन्दर और राजकोट के दीवान थे। 12 वर्ष की आयु में इनका विवाह कस्तूरबा से हो गया था। राजकोट और भावनगर में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् 19 वर्ष की आयु में वे बैरिस्टरी पढ़ने के लिए इंग्लैण्ड गये। वहाँ से वे बैरिस्टरी पास करके लौटे और राजकोट में वकालत करने लगे। 1893 में एक मुस्लिम फर्म के मुकदमे के सम्बन्ध में गाँधी जी को दक्षिण अफ्रीका जाना पड़ा। वहाँ पर बसे भारतीयों की दशा सुधारने के लिए उन्होंने 'सत्याग्रह' आन्दोलन आरम्भ किया और उन्हें अपने उद्देश्य में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। 1914 में वे भारत वापस लौट आये।[1] उन्होंने 1915 में कांग्रेस में प्रवेश किया और थोड़े समय में ही संस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया। उनके आते ही 'स्वराज्य' की धारणा को नया बल मिल गया। 1920 से 1947 तक का काल भारतीय इतिहास में 'गाँधी युग' के नाम से प्रसिद्ध है। उन्होंने असहयोग आन्दोलन और सविनय अवज्ञा आन्दोलन का नेतृत्व किया। उन्होंने देश के कानूनों को तोड़ा। उनके ही नेतृत्व में कांग्रेस ने 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पारित किया। उन्होंने अनशन किया, गिरफ्तार हुए और ब्रिटिश साम्राज्य की शक्ति को चुनौती दी। उन्होंने कहा था, "मैं यह समझता हूँ कि यदि ब्रिटिश-सरकार को मैं शैतानी सरकार न कहूँ, जिसने धोखा, हत्या और अकारण क्रूरता की है, जिसे अब भी कोई पछतावा नहीं है और जो अपने अपराध को छिपाने के लिए झूठा सहारा ले रही है, तो मैं सत्य से दूर होऊँगा।" उन्होंने देश को अहिंसा का संदेश दिया जिसके बल पर देश को स्वतन्त्रता मिली।

15 अगस्त, 1947 को जिस दिन सारा देश स्वतन्त्रता-प्राप्ति की खुशियाँ मना रहा था, गाँधी जी बंगाल में दंगों को समाप्त करने में लगे हुए थे। अपने 72 घंटे के उपवास से उन्होंने कलकत्ता का साम्प्रदायिक वातावरण ही बदल दिया। इस सम्बन्ध में लार्ड माउण्टबेटन ने कहा था, "जो काम 50 हजार हथियाबन्द सिपाही नहीं कर सकते थे, वह महात्मा जी ने कर दिया है। उन्होंने शान्ति कायम कर दी। वे अकेले ही सीमा-सेना हैं।" 30 जनवरी 1948 को वे देश के लिए नाथूराम गोडसे की पिस्तौल की गोली से बलिदान हो गये। उनकी मृत्यु पर पत्रकार श्री एन.पी. थैकर ने गुजराती में लिखित 'गाँधी जी' नामक पुस्तक में लिखा है- "यदि महात्मा गाँधी अधिक दिनों तक जीवित रहते अर्थात् कुछ समय तक और रह गये होते तो भारत के राजनीतिक जीवन की धारा में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया होता।"

संक्षेप में, गाँधी जी की देन का निम्न प्रकार वर्णन किया जा सकता है :

(1) कांग्रेस को सार्वजनिक संस्था बनाना- गाँधी जी के आगमन के समय कांग्रेस केवल जमींदारों, वकीलों तथा डॉक्टरों की संस्था थी। जन-साधारण के लिए उसमें कोई स्थान

1. सन् 1893 से 1913 तक गाँधी जी दक्षिण अफ्रीका में रहे पर समय-समय वह भारत आते रहे।

न था। लेकिन गाँधी जी ने कांग्रेस को जन-साधारण की संस्था बना दिया। अब कांग्रेस में किसान, मजदूर तथा स्त्रियाँ भी सम्मिलिति हो गईं।

(2) सत्य और अहिंसा के अस्त्रों का प्रयोग करना- गाँधी जी के जीवन के तीन प्रमुख सिद्धान्त थे। वे थे- सत्य, अहिंसा और साधनों की शुद्धता। इन्हीं के बल पर उन्होंने अंग्रेजों से संघर्ष किया और अन्त में सफलता प्राप्त की। सत्य को वे बहुत अधिक महत्व देते थे। सत्य के विषय में उनका कहना था, "सत्य से ऊँचा कोई ईश्वर नहीं है। और हर इंसान को सत्य की खोज करनी चाहिए। सत्य और अहिंसा को अलग-अलग नहीं किया जा सकता। जहाँ हिंसा है, वहाँ सत्य नहीं रह सकता। जो सत्य में विश्वास करता है वह दुश्मन को भी हानि नहीं पहुँचायेगा।" वे अहिंसा के पुजारी थे। वे अहिंसा को मनुष्य की अन्तर्निहित धार्मिक भावना के विकास के लिए बहुत ही आवश्यक समझते थे। गाँधी जी स्वयं कहा करते थे, "सत्याग्रही को सदा हँसते हुए, बिना प्रतिशोध के, मरने के लिए तत्पर रहना चाहिए।" गाँधी जी की अहिंसा में दुर्बलता के लिए कोई स्थान नहीं था। सत्य और अहिंसा के अस्त्रों के बल पर ही उन्होंने असहयोग आन्दोलन तथा सविनय आन्दोलनों का नेतृत्व किया।

(3) हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए प्रयास करना- गाँधी जी जीवन पर्यन्त हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए प्रयास करते रहे। उनका कहना था, "हिन्दुओं और मुसलमानों को देश में भाई-बहनों की तरह रहना चाहिए।" इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने देश के विभिन्न भागों का दौरा किया ताकि हिन्दू और मुसलमानों में परस्पर सद्भाव तथा प्रेम उत्पन्न हो सके। हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने के लिए उन्होंने 1924 में 21 दिन का अनशन किया था। 15 अगस्त 1947 को जब सारा देश स्वतन्त्रता-प्राप्ति की खुशियाँ मना रहा था, गाँधी जी पूर्वी बंगाल के नोआखाली में हिन्दू-मुसलमानों के दंगों को शान्त करने में लगे हुए थे। इसी प्रयास के लिए उन्हें प्राणों का बलिदान भी करना पड़ा। 30 जनवरी, 1948 को गोडसे नामक एक मराठा युवक ने उनको अपनी पिस्तौल की गोली का शिकार बना डाला, अहिंसा के इस पुजारी का अन्त हिंसा द्वारा हुआ। कैसी अजीब है विधि की विडम्बना।

राष्ट्रीय आन्दोलन में गाँधीजी का योगदान

1. कांग्रेस का सार्वजनिक संस्था बनाना
2. सत्य और अहिंसा के अस्त्रों का प्रयोग करना
3. हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए प्रयास करना
4. सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन करना
5. समानता के पक्षपाती
6. आदर्श राम-राज्य की कल्पना
7. स्त्रियों की स्वतन्त्रता के पक्षपाती
8. व्यावहारिक शिक्षा को प्रोत्साहन प्रदान करना
9. राजनीति में धर्म का समावेश करना
10. 'सादा जीवन उच्च विचार' सिद्धान्त के पोषक

4. सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन करना- गाँधी जी अस्पृश्यता के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने अछूत जातियों को गले लगाया और उन्हें हरिजन के नाम से पुकारा। उन्होंने हिन्दुओं से कहा कि हरिजनों के विरुद्ध पुरानी भावनाओं को छोड़ो तथा उनके पूजा के लिए मंदिर का द्वार खोलो। वे स्वयं हरिजन बस्ती में जाकर रहे। 'हरिजन' नाम से उन्होंने 'हरिजन सेवा संघ' की स्थापना की। उन्होंने 'साम्प्रदायिक निर्णय' के विरुद्ध आमरण अनशन करके हरिजनों को हिन्दू-समाज का एक अभिन्न अंग बना दिया। गाँधी जी ने मद्य-निषेध और गो-रक्षा आदि का प्रचार किया। वे यह जानते थे कि मद्य-निषेध से सरकार को करोड़ों रुपये की हानि होगी पर

वे देश के ऊँचे आदर्श को देखते हुए यह कुर्बानी करने को तैयार थे।

5. समानता के पक्षपाती– गाँधी जी समानता के पक्षपाती थे। उनका विश्वास था कि अहिंसा का आदर्श तभी पूरा हो सकता है। जब समाज के अन्दर अमीर–गरीब, ऊँच–नीच की खाई समाप्त हो जाय। गाँधी जी का कहना था, "आर्थिक समानता का अर्थ यह कभी नहीं समझना चाहिए कि हर एक के पास सांसारिक चीजें बराबर मात्रा में होंगी। पर इसका अर्थ यह अवश्य है कि हर एक के पास रहने के लिए ठीक मकान होगा, खाने के लिए काफी और सन्तुलित भोजन और शरीर ढँकने के लिए काफी खादी होगी। इसका यह भी अर्थ है कि इस समय जो भयंकर विषमता फैली हुई है, उसे पूर्णतया अहिंसक उपायों से दूर किया जायगा।"

6. आदर्श रामराज्य की कल्पना– गाँधी जी के नेतृत्व में भारत को स्वतन्त्रता मिली। देश को स्वतन्त्र कराने के लिये उन्होंने 25 वर्षों तक अकथनीय प्रयास किया और अन्त में उनको सफलता भी प्राप्त हुई। उन्होंने एक आदर्श रामराज्य की कल्पना की थी। उन्होंने इसका वर्णन इस प्रकार किया था, "धार्मिक दृष्टिकोण से इसे पृथ्वी पर ईश्वर का राज्य कहा जा सकता है, राजनीतिक दृष्टिकोण से यह जनतन्त्र है जिसमें सम्पत्ति, वर्ण, जाति, धर्म और लिंग के भेद पर आधारित सारी असमानताओं का लोप हो चुका हो। इसके अन्तर्गत धरती तथा राज्य सभी कुछ जनता का होगा। न्याय शीघ्र, पूर्ण तथा सस्ता होगा और इसके फलस्वरूप धार्मिक कार्यों, अभिव्यक्ति तथा समाचार–पत्रों की स्वतन्त्रता होगी।"

7. स्त्रियों की स्वतन्त्रता के पक्षपाती– गाँधी जी स्त्रियों की स्वतंत्रता के पक्षपाती थे। वे स्त्रियों के समर्थक थे और उन्हें पुरुषों के बराबर का दर्जा देना चाहते थे। उन्होंने भारतीय नारियों को राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने का सुअवसर प्रदान किया था। राष्ट्रीय अन्दोलन में भाग लेने वाली नारियों में कस्तूरबा गाँधी, विजय लक्ष्मी पंडित, सरोजिनी नायडू तथा राजकुमारी अमृत कौर के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। गाँधी जी नारी को अहिंसा का अवतार समझते थे। उन्होंने 'यंग इंडिया' नामक पत्र में स्त्रियों के सम्बन्ध में लिखा था, "नारी को अबला कहना एक अपमानजनक बात है, यह पुरुष का स्त्री के प्रति अन्याय है। यदि बल का अर्थ पशु–बल है तो स्त्री पुरुष की अपेक्षा कहीं अधिक श्रेष्ठ है।" गांधी जी ने बाल–विवाह और दहेज–प्रथा का विरोध किया तथा विधवा–विवाह को प्रोत्साहन प्रदान किया।

8. व्यावहारिक शिक्षा को प्रोत्साहन प्रदान करना– गाँधी जी पश्चिमी देशों की भाँति भारत में उद्योग फैलाने के पक्ष में नहीं थे। वे घरेलू उद्योग–धन्धों के फैलाने के पक्षपाती थे। उन्होंने 'वर्धा–शिक्षा–योजना' बनायी थी। कपड़े की समस्या को हल करने के लिए 'चर्खा चलाओ' आन्दोलन प्रारम्भ किया था। उन्हीं के प्रयास से खद्दर का प्रचार हुआ। दीनबन्धु एण्ड्रूज के अनुसार, 'जिन दो बातों से गाँधी जी का नाम शताब्दियों तक चलता रहेगा, वे हैं– (1) उनका खादी कार्यक्रम और (2) उनका सत्याग्रह। गाँधी जी संसार के पहले व्यक्ति थे जिनके हृदय में इस बात का अदम्य विश्वास था कि आज भी सभी प्रकार के गृह–उद्योगों की पुनर्स्थापना सम्भव है जिनके द्वारा ग्रामीणजन नैतिक तथा शारीरिक क्षुधायातना से अपनी रक्षा कर सकते हैं।"

9. राजनीति में धर्म का समावेश करना–साधारणतया धर्म और राजनीति को एक–दूसरे से पृथक् समझा जाता है, किन्तु गाँधी जी का राजनीति के प्रति धार्मिक दृष्टिकोण था। उन्होंने कहा था, "जो लोग यह कहते हैं कि धर्म का राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं, वे धर्म का अर्थ नहीं जानते। जो आदमी सच्चे धर्म को नहीं जानता वह देश–भक्ति को भी नहीं जानता। अगर मैं राजनीति में हिस्सा लेता हूँ तो उसका कारण यही है कि आज राजनीति हमें साँप की कुण्डली की तरह घेरे हुए है जिसमें से बहुत कोशिश करने पर भी निकला नहीं जा सकता। बिना धर्म की राजनीति नहीं होती, बिना धर्म की राजनीति मौत का फन्दा है क्योंकि वह आत्मा को नष्ट

कर देती है। जब से मैंने सार्वजनिक जीवन शुरू किया है, तब से जो कुछ बोला या किया है, उन सबके पीछे एक धार्मिक चेतना और सीधा धार्मिक भाव रहा है।" निस्सन्देह धर्म गाँधी जी के जीवन का प्राण था।

10. 'सादा जीवन, उच्च विचार' सिद्धान्त के पोषक–गाँधी जी के जीवन का सबसे बड़ा सिद्धान्त था– 'सादा जीवन, उच्च विचार'। उनकी आवश्यकताएँ बहुत सीमित थीं, वे सन्तों के समान साधारण वस्त्र पहनते थे और बड़ा ही सादा भोजन करते थे। उनके विचार बड़े ही उच्च थे। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सिद्धान्त गाँधी जी के जीवन का सबसे बड़ा मूलमंत्र था।

इस प्रकार गाँधी जी ने भारतीय जनता का राजनीतिक तथा आर्थिक स्तर उठाने का लगातार प्रयास किया। भारत सदैव उनकी इस देन के लिए ऋणी रहेगा। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनको सब जगह श्रद्धांजलियाँ अर्पित की गई। सी.एफ. एण्ड्रूज ने लिखा है, "जब गाँधी जी पूना के एक अस्पताल में बीमार थे तब उनके एक अंग्रेज दोस्त ने लिखा था कि यहाँ भारत का राजा लेटा हुआ है जिसका प्रभाव सम्राट की शक्ति से कहीं अधिक है। जो लोग दिल्ली के महलों में आज गवर्नर बनकर रहते हैं उनके नाम दुनिया जब भूल जायेगी, उसके भी बहुत समय बाद तक लोगों में उनके नाम की इज्जत बनी रहेगी। हिन्दुस्तान की सब माताएँ अपने बच्चों को उनका नाम बतायेंगी।" गाँधी जी की मृत्यु के तीन दिन पश्चात् भारतीय संसद में बोलते हुए पं. जवाहरलाल नेहरू ने कहा था, "आज से सैकड़ों, सम्भवतः हजारों वर्ष बाद भी, आगामी युगों में लोग हमारी इस पीढ़ी को याद करेंगे जब वह ईश्वरीय मानव इस धरती पर उतरा था।" एल्बर्ट आईन्स्टीन ने कहा था, "आने वाली पीढ़ी, संभवतः यह विश्वास शायद ही करे कि इस प्रकार के हाड़-मांस का मानव कभी इस धरती पर चला था।"

राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रमुख उदार राष्ट्रवादी नेताओं का योगदान

दादाभाई नौरोजी (1825-1917)

आधुनिक भारत के राष्ट्र-निर्माताओं में दादाभाई नौरोजी एक उच्च स्थान रखते हैं। उन्होंने देश की सेवा में अपने जीवन के 61 वर्ष निःस्वार्थ भाव से लगाये-40 वर्ष कांग्रेस की स्थापना के पहले और 21 साल उसके बाद। उनकी इस महान् अनवरत सेवा के कारण ही उन्हें सम्मानपूर्वक 'भारत के वृद्ध पितामह' (Grand oldman of India) के नाम से पुकारा जाता है। उनकी सेवाओं का उल्लेख करते हुए डॉ. पट्टाभि सीता रमैया लिखते हैं, "दादाभाई नौरोजी का नाम भारतीय देशभक्तों की सूची में सबसे पहले आता है। उनका कांग्रेस की स्थापना के समय से ही इससे सम्बन्ध रहा और अपने जीवन के अन्तिम दिन तक वह इसकी सेवा करते रहे।" गोखले के अनुसार, "अगर मनुष्य में कहीं दिव्यता हो सकती है तो वह दादाभाई नौरोजी में थी।"

दादाभाई नौरोजी का जन्म 4 सितम्बर, 1825 को बम्बई के एक पारसी परिवार में हुआ था। इनकी शिक्षा बम्बई के ही एल्फिन्सटन कालेज में हुई। शिक्षा समाप्त कर वह उसी कालेज में 1850 में गणित तथा प्राकृतिक विज्ञान के अध्यक्ष नियुक्त हो गये। एक भारतीय के लिए अंग्रेजी स्कूल में अध्यापक होना उस समय बड़े गौरव की बात थी। इस पद पर उन्होंने 6 वर्ष तक कार्य किया। अध्यापन काल में 1853 में उन्होंने 'बम्बई एसोसिएशन' (Bombay Association) की स्थापना की। कालेज से त्याग-पत्र देने के बाद 1856 में वे 'केम एण्ड सन्स' नामक पारसी कम्पनी में नौकरी करने लगे। कम्पनी के व्यापारिक कार्य की देख-भाल के लिए वे इंगलैण्ड चले गये। वहाँ उन्होंने 1867 में 'ईस्ट इंडिया एसोसिएशन (East India Association) की स्थापना की। 1874 में दादाभाई नौरोजी भारत लौटे और 1876 में बड़ौदा राज्य के दीवान पद पर नियुक्त

हो गये। इस पद पर वे तीन वर्ष तक रहे। रियासत के रेजीडेण्ट कर्नल पेरी से मतभेद हो जाने के कारण उन्हें इस पर से त्यागपत्र देना पड़ा। वे तीन बार- 1886, 1893 तथा 1906 में कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये।

राजनीतिक विचार- दादाभाई नौरोजी अपने राजनीतिक विचारों में उदारवाद के पोषक थे। उनका कहना था कि सरकार को पशु-बल पर आधारित न होकर नैतिक बल पर आधारित होना चाहिए। इन सम्बन्ध में उन्होंने कहा था, "तुम एक साम्राज्य शस्त्र-बल से तथा पशु-बल से निर्मित कर सकते हो, पर उसको स्थायी करने के लिए नैतिक शक्ति की आवश्यकता है। पशु-बल तो एक-न-एक दिन अवश्य नष्ट हो जायेगा। केवल नैतिक बल ही शाश्वत होता है।" वे ब्रिटिश शासन को भारत के लिए एक दैवी वरदान समझते थे। उनका विश्वास था कि ब्रिटिश शासन के अधीन रहकर भारत एक सभ्य देश बन जायगा। उन्हें अंग्रेजों की न्यायप्रियता में अटूट विश्वास था। 1906 के कलकत्ता अधिवेशन में उन्होंने अध्यक्षीय पद से बोलते हुए कहा था, " हमारा भविष्य हमारे अपने हाथ में है। यदि हम अपने प्रति और अपने देश के प्रति सच्चे हैं और अपनी उन्नति तथा सुधार के लिए सब कुर्बानी करते हैं तो मुझे तनिक भी संदेह नहीं कि अंग्रेजों-जैसे न्यायप्रिय लोगों के साथ हमारा व्यवहार और बातचीत व्यर्थ जायेगी। इसी विश्वास ने मुझे सब कठिनाइयों के मुकाबले सहारा दिया।" इसी अधिवेशन में सर्वप्रथम 'स्वराज्य' की माँग की गयी। इस सम्बन्ध में दादाभाई नौरोजी ने कहा था, "हम दया की भीख नहीं माँगते। हम तो केवल न्याय चाहते हैं। ब्रिटिश नागरिक के समान अधिकारों का जिक्र नहीं करते, हम स्वशासन चाहते हैं।" उन्होंने अधिवेशन में भारतीयों के निम्न तीन अधिकारों का उल्लेख किया :

(1) स्वराज्य पाने का अधिकार,
(2) उच्च सरकारी पदों पर अधिक-से-अधिक भारतीयों की नियुक्तियाँ,
(3) भारत और इंग्लैण्ड में न्यायपूर्ण आर्थिक सम्बन्ध।

इस प्रकार दादाभाई नौरोजी ने राष्ट्रीय आन्दोलन को एक नई दिशा प्रदान की। वे स्वदेशी आन्दोलन के समर्थक थे। वे राष्ट्रीय शिक्षा के प्रचार, विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार तथा औपनिवेशिक स्वराज्य के भी समर्थक थे।

आर्थिक विचार- दादाभाई नौरोजी पहले भारतीय नेता थे जिन्होंने भारतीयों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि किस प्रकार इंग्लैण्ड द्वारा भारत का आर्थिक शोषण हो रहा है। इस सम्बन्ध में उन्होंने **'निर्धनता और भारत में ब्रिटिश शासन'** नामक एक पुस्तक भी लिखी जिसमें उन्होंने लिखा, भारत का हाल बड़ा दुःखदायी है। उसकी दशा गुलामों की सी है, बल्कि उससे भी बुरी है। उसका हाल ऐसा है कि उसे लगातार लूटा जा रहा है और लूट का माल तो देश से बाहर भेज दिया जा रहा है। अंग्रेजों के आने के पहले भारत को लूटने के लिए जो हमले हुए उनमें हमलावर यहाँ से चले जाते थे और बीच में बहुत समय तक शान्ति रहती थी जिसमें देश की हालत सुधर जाती थी। पर आज यह बात नहीं है। ब्रिटिश आक्रमण लगातार जारी है और लूट भी बिना रुके चल रही है और असल में तो वह बढ़ रही है और इस तरह लूटे गये भारतीय राष्ट्र को अपनी हालत सुधारने का भी मौका नहीं है।"

इस प्रकार दादाभाई नौरोजी ने भारतीय जनता का राजनीतिक तथा आर्थिक स्तर उठाने का सराहनीय प्रयास किया। भारत सदैव उनके इस महान् योगदान के लिए ऋणी रहेगा। इनकी मृत्यु पर स्थान-स्थान पर शोक-सभाएँ हुई और देशवासियों ने उनको भाव-भीनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

हम उनके जीवन का मूल्यांकन गोखले के शब्दों में कर सकते हैं, "अगर मनुष्य में कहीं दिव्यता हो सकती है तो वह दादाभाई नौरोजी में थी।"

गोपालकृष्ण गोखले (1866-1915)

आधुनिक भारत के राष्ट्र-निर्माताओं में श्री गोपालकृष्ण गोखले का भी प्रमुख स्थान है। वे भारतमाता के सच्चे सपूत थे। उन्होंने आत्म-त्याग, सेवा-भाव तथा देश-प्रेम आदि गुणों के कारण भारतीयों से ही नहीं वरन् विदेशियों से भी प्रशंसा प्राप्त की थी। उनके राष्ट्रीय विचारों को व्यक्त करते हुए महात्मा गाँधी ने लिखा है, "यदि गोखले ने कीर्तिमान होना चाहा तो केवल देश के राजनीतिक क्षेत्र में कीर्तिमान होना चाहा। उनकी यह इच्छा इसलिए नहीं थी कि सर्व-साधारण मेरी प्रशंसा करे, बल्कि यह इच्छा इसलिए थी कि मेरे देश का लाभ हो-मेरे देश का कल्याण हो। उन्होंने सार्वजनिक प्रशंसा पाने का कभी प्रयत्न नहीं किया।"

गोपालकृष्ण गोखले का जन्म 9 मई, 1866 को कोल्हापुर राज्य के 'कंगाल' नामक ग्राम में हुआ था। उनमें दिल और दिमाग की अद्भुत योग्यताएँ थीं और उन्होंने जीवन में बड़ी तेजी से उन्नति की। आप 18 वर्ष की आयु में स्नातक हुए, 20 में प्रोफेसर हुए और 22 में बम्बई विधायी परिषद (Legislative Council) के सदस्य और 29 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सभापति हुए। आपका ज्ञान विस्तृत, विविध और यथार्थ था। चिन्तामणि के अनुसार, "गोखले बौद्धिक दृष्टि से इतने ईमानदार थे कि वे अपने-आप से अच्छी तरह जिरह किये बिना कभी कोई राय प्रकट नहीं करते थे।"

गोखले ने अपना सार्वजनिक जीवन न्यायाधीश रानाडे के अनुयायी के रूप में प्रारम्भ किया था। इस सम्बन्ध में डॉ. जकारिया ने ठीक ही कहा है, "गोखले के रूप में रानाडे को जैसा शिष्य मिला था। वैसा उपयुक्त शिष्य कभी किसी गुरु को नहीं मिला होगा।" गोखले कभी रानाडे द्वारा निर्धारित मृदुता और मधुर तर्क-संगतता के मार्ग से नहीं हटे। आप 'दक्षिण शिक्षा समाज' के सदस्य बन गये और शीघ्र की फरगुशन कालेज के प्रिंसिपल बन गये। इस पद पर आप लगभग 20 वर्ष तक रहे। आप पूना सार्वजनिक सभा के त्रैमासिक अखबार के सम्पादक बन गये। 1905 में 'भारत सेवक समाज" की स्थापना की जो आगे चलकर देश-भक्तों की संस्था सिद्ध हुई।

राजनीतिक-विचार– गोखले उदारवादी होते हुए भी सच्चे राष्ट्रवादी थे। 1907 में आप भारतीय व्यय पर 'बेलवाई कमीशन' के सम्मुख साक्षी देने इंगलैण्ड गये। नमक-कर से निर्धन मनुष्यों को जो परेशानी भुगतनी पड़ती थी, उसके कारण उन्होंने उस कर की आलोचना की। आपने देश के ऊँचे पदों पर भारतीयों को नियुक्त न करने की आलोचना की। आपने बंगाल-विभाजन की कटु आलोचना इन शब्दों में की,- 'मैं इतना ही कह सकता हूँ कि नौकरशाही के साथ जनता के हित की दृष्टि से सहयोग करने की सारी आशा सदा के लिए खत्म हो गई है।"

1905 में बनारस अधिवेशन में गोखले-कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये। उस समय उन्होंने 8 तत्कालीन माँगें प्रस्तुत कीं। वे निम्नलिखित थीं :

(1) विधान परिषदों के कम-से-कम एक तिहाई सदस्य निर्वाचित होने चाहिए तथा वार्षिक बजटों को विधान-परिषदों द्वारा पारित किया जाना चाहिए।
(2) भारत मंत्री की परिषद में कम-से-कम 3 भारतीय सदस्यों को प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए।
(3) प्रत्येक जिले में एक सलाहकार बोर्ड की स्थापना होनी चाहिए। जिला कलेक्टर को इस बोर्ड से विशेष मामलों में परामर्श लेना चाहिए।
(4) 'भारतीय नागरिक सेवा' (Indian Civil Service) में, न्याय-विभाग में नियुक्तियाँ वकालत पास व्यक्तियों की होनी चाहिए।
(5) न्यायपालिका तथा कार्यपालिका पृथक्-पृथक् होनी चाहिए।
(6) भारत के सैनिक व्यय में कटौती की जानी चाहिए।
(7) प्राथमिक शिक्षा का विस्तार किया जाना चाहिए।

(8) औद्योगिक तथा तकनीकी शिक्षा का विस्तार किया जाना चाहिए।

1905 में गोखले भारत की ओर से प्रचार करने के लिए इंग्लैण्ड गये। वे दक्षिणी अफ्रीका भी गये और वहाँ उन्होंने महात्मा गाँधी को उनके कार्य में पर्याप्त सहायता की। 1905 से 1908 की अवधि में उन्होंने देश के विभिन्न भागों की यात्रा की तथा देशवासियों से वैधानिक तरीके से लड़ने की अपील की। उन्होंने 1914 की सुधार योजना के अनुसार भारतीयों को सैनिक कमीशन देने तथा नौ सैनिक प्रशिक्षण देने पर बल दिया। 19 फरवरी, 1915 को आपका निधन हो गया।

भारत के राष्ट्रीय विकास के इतिहास में गोखले के स्थान के विषय में परस्पर विरोधी विचार हैं। गरमदल वाले उन्हें 'एक निर्बल हृदयवाला उदारवादी' कहते थे जो ब्रिटिश सरकार के हाथों में जान-बूझकर हथियार बनने को तैयार थे। दूसरी ओर प्रतिक्रियावादी उन्हें 'एक छिपा हुआ राजद्रोही' समझते थे। वास्तव में वे न तो क्रान्तिकारी थे और ही प्रतिक्रियावादी। दोनों ही मार्गों से उन्हें घृणा थी। वस्तुतः वे एक रचनात्मक नेता थे जो भारत की जनता के अधिकारों और उनकी स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करते थे। पर वे ब्रिटिश सरकार की कठिनाइयों से भी भली-भाँति परिचित थे। यह ठीक ही कहा गया है कि "गोखले जनता की आकांक्षाएँ सरकार को बताते थे और सरकार की कठिनाइयाँ कांग्रेस के सम्मुख रखते थे।" अपनी इस दोहरी नीति के कारण कभी-कभी वे जनता और सरकार दोनों की दृष्टि में अलोकप्रिय हो जाते थे। जनता उनकी उदार नीति की आलोचना करती थी और सरकार गरम नीति की बुराई करती थी।

संक्षेप में, गोखले बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में उदारदलीय विचारधारा के सच्चे प्रतीक थे। वे हृदय से देश का भला चाहते थे। वे स्वतन्त्रता की लड़ाई संसदीय संस्थाओं के माध्यम से लड़ना चाहते थे। वे अंग्रेजों के हाथ से सत्ता छीनने के लिए क्रान्तिकारी उपाय अपनाने के समर्थक नहीं थे। इसके बावजूद वे अपने जमाने में बहुत बड़े देशभक्तों में थे। तिलक के अनुसार, "गोखले भारत का हीरा, महाराष्ट्र का रत्न और मजदूरों के राजा थे।" महात्मा गाँधी के अनुसार, 'सर फिरोजशाह मुझे हिमालय की तरह अगम्य मालूम हुए, लोकमान्य महासागर की तरह लगे जिसमें आदमी आसानी से नहीं घुस सकता, पर गोखले गंगा के समान थे जो लोगों को अपने पास बुलाते थे।"

अन्त में, हम गोखले के जीवन का मूल्यांकन उन्हीं के शब्दों में- जब उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम समय में 'भारत सेवक समाज' के उपस्थित सदस्यों से कहा था, इस प्रकार कह सकते हैं, "तुम लोग मेरा जीवन-चरित्र लिखने न बैठना, मेरी मूर्ति बनवाने में भी अपना समय न लगाना। तुम लोग भारत के सच्चे सेवक होगे तो अपने सिद्धान्त के अनुसार आचरण करना अर्थात् भारत की ही सेवा करने में अपनी आयु व्यतीत करना।"भारत के प्रति उनके हृदय में कितनी श्रद्धा और भक्ति थी, यह उपर्युक्त शब्दों से प्रकट होती है। वास्तव में उन्होंने जो कुछ भी किया अथवा जो कहा वह भारत के हित के लिए ही किया।

राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रमुख उग्र राष्ट्रवादी नेताओं का योगदान

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक (1856-1920)

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक कांग्रेस के उग्रदलीय नेताओं में सर्वश्रेष्ठ नेता थे। उनकी असाधारण त्याग-तपस्या, सच्ची देश-भक्ति तथा सबल राष्ट्रीय प्रवृत्ति ने सभी देशवासियों के लिए एक आदर्श प्रस्तुत किया। उनकी महान् निःस्वार्थ सेवाओं के कारण उन्हें 'लोकमान्य' की उपाधि मिली। उन्होंने 'स्वराज्य' का जो पौधा रोपित किया था, उसी के फल को आज सारा देश खा रहा है। उनकी कर्मठता एवं देश-भक्ति की प्रशंसा करते हुए महात्मा गाँधी ने कहा था, "उनकी

देश-भक्ति उनकी प्रबल भावना थी, वे सिर्फ देश-प्रेम के अतिरिक्त कोई धर्म नहीं जानते थे।"

बालगंगाधर तिलक का जन्म 23 जुलाई, 1856 को महाराष्ट्र के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आपका परिवार देश-भक्ति के लिए प्रसिद्ध था। आपने 1876 में डेंकन कॉलेज पूना से बी.ए. की उपाधि प्रथमं श्रेणी में प्राप्त की। 1879 में आपने बम्बई विश्वविद्यालय से कानून की डिग्री प्राप्त की। 1880 में पूना में 'न्यू इंगलिश स्कूल' की स्थापना की जो धीरे-धीरे समस्त प्रेसिडेन्सी में सर्वोत्तम कालेज बन गया। 1881 में आपने आगरकर के सहयोग से 'मराठा' तथा 'केसरी' नामक दो पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इन दोनों पत्रों द्वारा राजनीतिक जागृति का कार्य प्रारम्भ किया गया। कोल्हापुर रियासत के दीवान के विरुद्ध 'मराठा' में एक लेख लिखने के अपराध में तिलक को 4 माह का कारावास दण्ड भुगतना पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि 'मराठा' पत्र की लोकप्रियता और अधिक बढ़ गई।

राजनीतिक विचार और कार्य– तिलक ने 1889 में कांग्रेस में प्रवेश किया। इस समय कांग्रेस पूर्णतया उदारवादियों के हाथ में थी। तिलक ने अपने उग्रवादी विचार कांग्रेस के सम्मुख रखे और धीर-धीरे कांग्रेस में तिलक के समर्थकों की संख्या बढ़ती गई। 1893 में उन्होंने 'केसरी' में लिखा, "भारत में अंग्रेज नौकरशाही से अनुनय-विनय करके हम कुछ प्राप्त नहीं कर सकते हैं। ऐसा प्रयास करना तो एक पत्थर की दीवार से सिर टकराने के समान है।" 1895 में उन्होंने शिवाजी आन्दोलन प्रारम्भ किया जिसका उद्देश्य भारत के नवयुवकों में राष्ट्रीय भावना भरना और शिवाजी के पद-चिह्नों पर चलना था। उन्होंने देशवासियों से कहा, "अगर हमारे मकान में चोर घुसें और हममें उन्हें भगाने की ताकत न हो तो हमें निस्संकोच उन्हें बन्द कर देना चाहिए और जिन्दा जला देना चाहिए।"

1897 और 1908 में तिलक पर राज-द्रोह के लिए मुकदमा और कारावास-दण्ड– 1897 में तिलक को राज-द्रोह के अपराध में गिरफ्तार किया गया और उन्हें 18 मास का कठोर कारावास दण्ड दिया गया। इस अवसर पर तिलक ने माफी माँगने से इन्कार कर ब्रिटिश सरकार के सम्मुख भारतीय समर्पण के अपमानजनक सिलसिले का अन्त कर दिया। उनका यह कदम ब्रिटिश सरकार के लिए खुली चुनौती और देशवासियों के लिए आत्मविश्वास और आत्म-बलिदान का प्रेरणास्रोत था। 1908 में 'केसरी' में प्रकाशित 'देश का दुर्भाग्य' नामक लेख के आधार पर तिलक पर पुनः देश-द्रोह का आरोप लगाया गया और उन्हें 6 वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड दिया गया। तिलक को 1908 से 1914 तक बर्मा की माण्डले जेल में 6 वर्ष काटने पड़े।

स्वराज्य सम्बन्धी विचार– तिलक जी 'स्वराज्य' के पक्षपाती थे। 1916 में लखनऊ अधिवेशन में उन्होंने सर्वप्रथम यह घोषणा की थी, "स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा।" (Swaraj is my birth right and I will have it.) वे इसे स्वतन्त्रता प्राप्त करने का 'पैर का पत्थर' (Stepping stone) मानते थे। स्वराज्य प्राप्ति के लिए तिलक ने चार साधन अपनाने पर जोर दिया। वे चार साधन थे- (1) स्वदेशी भावना का प्रचार, (2) विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, (3) राष्ट्रीय शिक्षा का प्रसार तथा (4) शान्तिपूर्वक सक्रिय विरोध।

महान् लेखक– तिलक जी महान् देशभक्त, महान् राजनीतिज्ञ तथा परम स्वतन्त्रता-प्रेमी होने के साथ-ही-साथ एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वान् भी थे। उन्होंने वेदों की प्राचीनता के बारे में 'दी ओरियन' (The Orion), 'दी आर्कटिक होम आफ दी वेदाज' (The Arcitic Home of the Vedas) नामक दो ग्रन्थ लिखे। इसी प्रकार तिलक की रचना 'गीता रहस्य' (Gita Rahasya) जो उन्होंने माण्डले जेल में लिखी थी, एक महान रचना है। गीता के भाष्यों में 'शंकर

भाष्य' के बाद 'तिलक भाष्य' का ही नाम आता है। इस महान् तपस्वी का 1 अगस्त, 1920 को बम्बई में देहावसान हो गया।

लाला लाजपत राय (1865-1928)

लाला लाजपत राय तिलक की भाँति एक उग्र राष्ट्रवादी विचारक थे। तिलक के बाद उनका जीवन सतत् आत्म-बलिदान और देश-सेवा का जीवन रहा। उनके हृदय में देश के लिए असीम श्रद्धा एवं भक्ति थी। डॉ. वी.पी. शर्मा के शब्दों में, "वे निश्चित रूप से महाराज रणजीत सिंह के बाद पंजाब के सबसे महान् पुरुष थे। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानायकों में उन्हें बहुत उच्च स्थान प्राप्त है।" निस्सन्देह वे न केवल पंजाब के वरन् समस्त भारत के लोकप्रिय नेता थे।

लाला लाजपत राय जिन्हें जनता 'पंजाब केशरी' कहती थी, का जन्म 28 जनवरी, 1865 को ग्राम जगराँव जिला लुधियाना (पंजाब) में हुआ था। वे प्रारम्भ से ही बड़े होनहार तथा कुशाग्र बुद्धि के थे। वकालत की परीक्षा पास करके उन्होंने हिसार में वकालत प्रारम्भ की, फिर बाद में वे लाहौर चले गये। अपने कार्य के साथ-साथ उन्होंने आर्य समाज की स्थापना में सहयोग देना प्रारम्भ कर दिया। आर्य-समाज के लिए वे लेख लिखते थे और आर्य समाजों में भाषण देते थे। उन्होंने डी.ए.वी. कॉलेज लाहौर की स्थापना की और उसकी वृद्धि में बड़ा सहयोग दिया।

राजनीतिक क्षेत्र में कार्य- लाला लाजपत राय 1888 में कांग्रेस के इलाहाबाद अधिवेशन में पहली बार शामिल हुए और अपने जीवन के अन्तिम काल तक इसके सदस्य बने रहे। 1905 में उन्हें अंग्रेज जनता के सम्मुख भारतीयों की कठिनाइयों को प्रस्तुत करने का लिए गोखले के साथ कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में इंग्लैण्ड भेजा गया। वहाँ उन्होंने अपने भाषण द्वारा भारत में ब्रिटिश शासन के बुरे प्रभावों पर प्रकाश डाला, किन्तु साम्राज्यवादी मनोवृत्ति की सरकार ने किसी बात पर ध्यान नहीं दिया। 1907 में उन्हें 'देश निकाला' का दण्ड देकर माण्डले जेल भेज दिया गया किन्तु शीघ्र ही उन्हें जेल से मुक्त कर दिया गया। 1907 के सूरत अधिवेशन में तिलक द्वारा लालाजी का नाम कांग्रेस अध्यक्ष पद के लिए प्रस्तावित किया गया, किन्तु उदारवादियों ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। लाला जी संघर्ष की स्थिति पैदा नहीं करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने अपना नाम वापस ले लिया।

1908 में लालाजी ने दक्षिणी अफ्रीका में हो रहे सत्याग्रह के लिए धन एकत्र किया और उसे गोखले को सौंप दिया। 1911 में वे दोबार इंग्लैण्ड गये और वहाँ से जापान और अमेरिका गये। 1920 में आप भारत लौटे और सितम्बर, 1920 में कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गये। इसी अधिवेशन में महात्मा गाँधी ने अपना असहयोग आन्दोलन का कार्यक्रम प्रस्तुत किया। लेकिन लालाजी इसके विरोधी थे, फिर भी उन्होंने असहयोग के समर्थन में वन्देनातरम् पत्र चलाया। जब मोतीलाल नेहरू और चित्तरंजन दास ने स्वराज्य पार्टी की स्थापना की तो मोतीलाल जी के आग्रह पर लालाजी उसमें सम्मिलित हो गये और 1923 में इस दल की ओर से केन्द्रीय सभा के सदस्य चुने गये। कुछ समय बाद उन्होंने स्वराज्य दल से त्यागपत्र दे दिया और पं. मदनमोहन मालवीय के सहयोग से नये राष्ट्रीय दल की स्थापना की। 1926 में वे पुनः केन्द्रीय विधान सभा के सदस्य चुने गये।

लालाजी राजनीतिक नेता के अतिरिक्त उच्चकोटि के धार्मिक और सामाजिक कार्यकर्ता भी थे। उन्होंने 'तिलक स्वराज्य फण्ड' के लिए लगभग 10 दिनों में 9 लाख रुपया जमा किया था। उन्होंने लाहौर में 'राष्ट्रीय कालेज' की स्थापना की। 'पंजाब बैंक लिमिटेड' और 'लक्ष्मी इन्स्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड' की स्थापना में भी उनका प्रमुख हाथ था। वे भिक्षा-वृत्ति के विरुद्ध थे। इस सम्बन्ध में उनका कहना था, "अंग्रेज भिक्षा-वृत्ति से इतनी अधिक घृणा करता है कि जितना कि अन्य चीज से नहीं करता है। मैं भी यही कहता हूँ कि भिखारी घृणा का पात्र है। इसलिए

हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि हम यह दिखा दें, हम भिखारी नहीं हैं। हमारा उद्देश्य स्वालम्बन है न कि भिक्षा-वृत्ति।" वे हिन्दू-मुस्लिम एकता के समर्थक थे, किन्तु हिन्दुओं के हितों का बलिदान करने को तैयार न थे।

महान लेखक– लालाजी राष्ट्रीय आन्दोलन के सेनानी और महान राजनीतिक होने के अतिरिक्त उच्चकोटी के विद्वान् भी थे। उन्होंने 'आर्य-समाज', 'भारत में इंग्लैण्ड का ऋण', 'यंग इण्डिया' नामक प्रसिद्ध पुस्तकों की रचना की। इन पुस्तकों के अतिरिक्त उन्होंने 'मैजिनी की जीवनी', 'गैरी बाल्डी की जीवनी', 'दयानन्द की जीवनी' तथा 'शिवाजी की जीवनी' आदि पुस्तकों की भी रचना की। उनकी इन पुस्तकों ने राष्ट्रीय आन्दोलन को बहुत अधिक बढ़ावा दिया।

निधन– लालाजी की मृत्यु 17 नवम्बर, 1928 को एक शहीद के रूप में हुई। लाहौर में जब वे साइमन कमीशन के विरोध में निकाले जा रहे जुलूस का नेतृत्व कर रहे थे तो पुलिस द्वारा लाठियाँ से भीषण प्रहार किया गया। लाठियों के प्रहार से ही उनकी मृत्यु हुई। इस लाठी प्रहार पर उन्होंने कहा था, "मेरे शरीर पर पड़ी एक-एक लाठी की चोट ब्रिटिश साम्राज्य के कफन की एक-एक कील होगी।" कहना न होगा कि पंजाब केशरी का यह कथन अक्षरशः सत्य चरितार्थ हुआ। उनकी मृत्यु के समय महात्मा गाँधी ने कहा था, "लालाजी जैसे लोग तब तक नहीं मर सकते, जब तक आसमान में सूरज चमकता है।"

अन्त में लाला लाजपत राय का संदेश और मिशन इन शब्दों में प्रकट किया जा सकता है :

'राष्ट्र मेरा धर्म है जन-सेवा मेरी पूजा है,
मेरी चेतना मेरे लिए आदेश है,
लेखनी मेरी सम्पदा है,
आर्य समाज मेरी माँ है,
मेरा ह्रदय ही मेरा मंदिर है, और
इस मंदिर में मेरी आकांक्षाएँ सदा बलवती हैं।"

विपिनचन्द्र पाल (1858-1932)

बंगाल में राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रमुख नेताओं में श्री विपिनचन्द्र पाल का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। आपका जन्म 7 नवम्बर, 1858 को ढाका में हुआ था। उनके पिता रामचन्द्र पाल ढाका के अधीनस्थ न्यायाधीश के पेशकार थे। विपिनचन्द्र पाल ने हाईस्कूल परीक्षा सिलहट के एक अंग्रेजी स्कूल से उत्तीर्ण की और उच्च शिक्षा कलकत्ता में प्राप्त की। उन्होंने अपना जीवन एक अध्यापक के रूप में प्रारम्भ किया। कुछ समय बाद वह पत्रकारिता को ओर झुके और कई समाचार-पत्रों का सम्पादन किया।

विपिनचन्द्र पाल ने जन-साधारण में राजनीतिक चेतना फैलाने में वही काम किया जो बालगंगाधर तिलक ने महाराष्ट्र में तथा लाला लालजपत राय ने पंजाब में किया। विपिनचन्द्र पाल 'बाल-लाल-पाल' (बालगंगारधर तिलक, लाला लाजपत राय और विपिनचन्द्र पाल) की प्रसिद्ध त्रिमूर्ति में से एक थे। उन्होंने कांग्रेस के गरम दल को संगठित करने का बड़ा काम किया। वे कुशल वक्ता तथा जोशीले व्यक्ति थे। 1905 में बंगाल-विभाजन के विरुद्ध आन्दोलन के दिनों में राजनीतिक मंच पर आये। उन्होंने बहिष्कार, स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा का सन्देश देश के कोने-कोने में दिया। उनके विचार तिलक से भी अधिक उग्रवादी थे। वे स्वराज्य ब्रिटिश सरकार से उपहार-स्वरूप लेने के पक्ष में नहीं थे। वे चाहते थे कि हर देशवासी स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए संघर्ष करे और हर प्रकार का कष्ट उठाये। इस सम्बन्ध में उनका कहना था, "हम देश में ऐसे कार्य करेंगे, जनता को ऐसे साधन उपलब्ध करायेंगे, राष्ट्र की शक्ति को इस प्रकार सुसंगठित

करेंगे, जनता में स्वराज्य की ऐसी भावना जागृत करेंगे कि हम किसी शक्ति को जो हमारे विरोध में खड़ी हो, परास्त करने में सफल होंगे।"

1906 में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में उन्होंने बहिष्कार के अर्थ का जो विस्तार किया उसे कांग्रेस के दूसरे सदस्यों ने स्वीकार नहीं किया। अपने उग्रवादी विचारों के कारण 1907 में उन्हें 6 मास का कारावास-दण्ड भोगना पड़ा। लार्ड मिन्टो के समय उन्हें निर्वासित किया गया। वे इंग्लैण्ड चले गये और वहाँ उन्होंने 3 वर्ष निर्वासन काल के बिताये। उन्होंने देखा कि मेरे विचार कांग्रेस के और सदस्यों के विचार से नहीं मिलते, इसलिए उन्होंने 1921 में कांग्रेस से त्यागपत्र दे दिया। इसके बाद वे फिर कांग्रेस में सम्मिलित न हो सके। आप अन्तिम बार 1928 में लखनऊ में हुए सर्वदलीय सम्मेलन में सार्वजनिक रूप से सम्मिलित हुए थे। 1932 में घोर आर्थिक कष्टों से जूझते हुए उन्होंने अपना शरीर छोड़ दिया।

सुभाषचन्द्र बोस (1897-1945)

सुभाषचन्द्र बोस जिन्हें देशवासी 'नेताजी' के नाम से पुकारते हैं, गिने-चुने राष्ट्रभक्त नेताओं में से एक हैं। उनका जन्म 23 जनवरी, 1897 को बंग-भूमि में हुआ था। उन्होंने 1913 में हाईस्कूल, 1915 में इण्टर और 1919 में बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। 24 वर्ष की आयु में वे 'भारतीय नागरिक सेवा' (Indian Civil Service) में आ गये, पर असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के लिए उन्होंने इससे त्यागपत्र दे दिया। वे शीघ्र ही चितरंजन दास के विश्वस्त सहायक बन गये और उनके द्वारा चलाये गये नेशनल कालेज के प्रिंसिपल हो गये। उन्होंने स्वराज्य-दल के कौंसिल-प्रवेश के कार्यक्रम का समर्थन किया, जिससे ब्रिटिश सरकार से विधान मण्डल के माध्यम से लड़ा जा सके। जब चित्तरंजन दास कलकत्ता में मेयर बने तब सुभाषचन्द्र को कलकत्ता महापालिका का 'मुख्य कार्यपालिका' का अधिकारी नियुक्त किया गया पर उन्हें ब्रिटिश सरकार द्वारा गिरफतार कर लिया गया और माण्ड़ले जेल भेज दिया गया। उनकी देश-भक्ति और देश-सेवा को स्वीकार करते हुए जनता द्वारा उन्हें माण्डले जेल में होने पर भी बंगाल विधान-परिषद का सदस्य चुन लिया गया। राजनीति में वे उग्रवादी विचारों के थे और वे भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का लक्ष्य 'औपनिवेशिक स्वराज्य' पसंद नहीं करते थे। वे 'आल इण्डिया यूनियन कांग्रेस' और 'यूथ कांग्रेस' के सभापति थे।

1938 में उन्हें कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया। 1939 में उन्होंने महात्मा गाँधी, सरदार पटेल और दूसरे नेताओं के विरोध के बावजूद डा. पट्टाभि सीतारमैया को पराजित कर अपने-आप को फ़िर कांग्रेस का अध्यक्ष चुनवा लिया। इस अवसर पर गाँधी जी ने कहा, "डा. पट्टाभि की हार मेरी हार है।" उच्च कांग्रेसी नेतागण गाँधीजी के विरुद्ध सुभाष का साथ न दे सके। फलतः कुछ समय बाद ही सुभाष बाबू ने कांग्रेस अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया। यही नहीं, उन्होंने, काँग्रेस की चार आने की सदस्यता से भी त्यागपत्र दे दिया। इसके बाद उन्होंने अपने ढंग से देश में प्रचार करने के लिए 'फारवर्ड ब्लाक' नाक एक नये उग्र दल का निर्माण किया।

1939 के द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ होने के साथ ही सुभाष के जीवन का लोमहर्षक तथा अविस्मरणीय अध्याय प्रारम्भ होता है। महायुद्ध के दिनों में ब्रिटिश सरकार ने उन्हें कलकत्ता के एलगिन रोड स्थित निवास-स्थान में नजरबन्द कर दिया, किन्तु वे अवसर पाकर 17 जनवरी, 1941 को भारत से भाग निकले और अफगानिस्तान, इटली और जर्मनी होते हुए अन्त में जापान पहुँचे। उन्होंने सिंगापुर में एक 'आजाद हिन्द सेना' का संगठन किया। एक सुयोग्य सेनापति के रूप में उन्होंने सेना को सम्बोधित करते हुए प्रेरक शब्दों में कहा- "बन्धुओ! मेरे सैनिको! तुम्हारा युद्ध-घोष हो- 'दिल्ली चलो!' मैं नहीं जानता कि हममें से कौन इस स्वातन्त्र्य युद्ध में जीवित

बच पायेगा, किन्तु मैं यह जानता हूँ कि अन्तिम जीत हमारी होगी और हमारा कार्य तब तक पूरा नहीं होगा, जब तक कि ब्रिटिश साम्राज्य की एक अन्य कब्रगाह पर पुरानी दिल्ली के लाल क़िले में हमारे विजयी सेनानी विजय-परेड नहीं कर लेंगे . . . . हम शत्रु सेना के मध्य से अपना मार्ग बनायेंगे यदि ईश्वर की इच्छा हुई तो बलिदानी की भाँति मृत्यु को गले लगायेंगे और मृत्यु की गोद में जाते-जाते उस मार्ग को चूम लेंगे, जो हमारी सेना को दिल्ली ले जायगा। दिल्ली का मार्ग ही स्वतन्त्रता का मार्ग है, चलो दिल्ली!" प्रारम्भ में अंग्रेजों के विरुद्ध आज़ाद हिन्द सेना को पर्याप्त सफलता मिली। वह इम्फाल तक पहुँच गई, किन्तु अन्त में उसे युद्ध-सामग्री की कमी तथा भीषण वर्षा के कारण पीछे हटना पड़ा। जापान की पराजय के बाद आजाद हिन्द सेना ने भी अंग्रेजों के सम्मुख आत्मसमर्पण कर दिया और 14 अगस्त, 1945 को टोकियो जाते हुए वायुयान-दुर्घटना में फारमोसा द्वीप में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की मृत्यु हो गई।

इस प्रकार सुभाष बाबू ने देश की स्वतन्त्रता के लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी। उनके सम्बन्ध में राष्ट्रपति राधाकृष्णन् ने कहा था, "नेताजी एक जन्मजात सेनानी थे और वे समझौतावादी नहीं थे। इस प्रकार के व्यक्ति संसार में क्रांतिकारी परिवर्तन ला देते हैं।" डॉ. पट्टाभि सीतारमैया के अनुसार, "सुभाष अपने-आप में एक महान् इतिहास थे। उनमें महान् आकर्षण विभिन्न चीजों का मिश्रण निहित था। बचपन से ही उनका जीवन तूफानी था। उनमें रहस्यवाद और वास्तविकता का मिश्रण था, गहरी धार्मिक भावना तथा व्यावहारिक कठोर बुद्धि गहरी तथा प्रभावी देश-भक्ति थी तथा दम्भ का अभाव था।"

अन्त में निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि "गाँधी जी राष्ट्रवाद के सूरज थे, जिसके चारों ओर कांग्रेस के सभी ग्रह घूमते थे, तो बोस वह तारा था जो अपनी ही कक्षा में चलता था।"

जवाहरलाल नेहरू (1889-1964)

पण्डित जवाहरलाल नेहरू उन महापुरुषों में सबसे अधिक आकर्षक और प्रभावशाली व्यक्ति थे, जिनका नाम विश्व के इतिहास में सदैव अमर रहेगा। भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में उनका योग महान् था और स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद वह भारत नवनिर्माताओं में से थे। न केवल भारत के पचास करोड़ निवासी हृदय से उनका सम्मान और प्यार करते थे वरन् विदेशों में भी उनका अत्यधिक मान था, क्योंकि वह मनुष्य मात्र की स्वतन्त्रता के प्रबल समर्थक थे। उनका त्याग, बहुमुखी प्रतिभा, अतुलनीय देश-प्रेम, सच्ची लगन, अनवरत् परिश्रम और आकर्षक व्यक्तित्व कभी भुलाया नहीं जा सकता। उन्हें बच्चों से अगाध प्रेम था। बच्चे भी उन्हें 'चाचा नेहरू' के नाम से पुकारते थे। उनके बारे में महात्मा गाँधी ने कहा था, "वे स्फटिक मणि की भाँति पवित्र हैं उनकी सत्यशीलता सन्देह से परे है। उनके हाथों में राष्ट्र सुरक्षित है। मैं जानता हूँ कि मेरी मृत्यु के बाद वे मेरी भाषा बोलेंगे।" इसी प्रकार सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने उनके विषय में लिखा है, "नेहरू हमारी पीढ़ी के महानतम व्यक्ति थे। वह एक ऐसे अद्वितीय राजनीतिज्ञ थे, जिनकी मानव-मुक्ति के प्रति सेवाएँ चिरस्मरणीय रहेंगी।"

जवाहरलाल नेहरू का जन्म 14 नवम्बर, 1889 को इलाहाबाद में हुआ था। वे पण्डित मोतीलाल नेहरू के एकलौते पुत्र थे। इनकी शिक्षा हैरो और कैम्ब्रिज में हुई थी। उन्होंने भारत में वकालत प्रारम्भ किया, किन्तु वह उनके स्वभाव के अनुकूल न थी। फलतः उन्होंने उसे छोड़ दिया। प्रारम्भ में वे तिलक और एनी बेसेन्ट के होमरूल आन्दोलनों की ओर आकर्षित हुए। असहयोग आन्दोलन के दिनों में वे जेल गये। 1923 में उन्हें कांग्रेस का जनरल सेक्रेटरी बनाया

गया और वे बहुत वर्षों तक इस पद पर रहे। वे इलाहाबाद की नगरपालिका के सभापति चुने गये। इस पद पर रहकर उन्होंने बहुत से सुधार किये और बड़ा उपयोगी काम किया।

पं. नेहरू पूर्ण स्वतन्त्रता के पक्षपाती थे। उनकी अध्यक्षता में कांग्रेस ने 1929 के दिसम्बर में लाहौर अधिवेशन में यह घोषणा की थी कि भारत का लक्ष्य पूर्ण स्वतन्त्रता है, औपनिवेशिक स्वराज्य नहीं। 1930 में उन्हें सत्याग्रह–आन्दोलन में गिरफ्तार कर लिया गया। 1931 में गाँधी–इरविन समझौते के बाद आपको कारागार से रिहा कर दिया गया, पर वे फिर एक बार गिरफ्तार कर लिये गये और 2 वर्ष का कारावास–दण्ड दिया गया। जब ब्रिटिश संसद ने 1935 का भारत अधिनियम पारित किया तो उसके अनुसार 1937 के प्रारम्भ में चुनाव हुए। तब नेहरू ने कांग्रेस अध्यक्ष के नाते सारे देश का तूफानी–दौरा किया और देश के कोने–कोने में कांग्रेस का संदेश पहुँचाया। मुख्यतः उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप 8 प्रान्तों में कांग्रेस सरकारें बनीं। अगस्त, 1942 में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास होने के बाद कांग्रेस कार्य–समिति के और सदस्यों के साथ आपको भी गिरफ्तार कर लिया गया और अहमदनगर के किले में रखा गया और 1945 तक वहाँ रहे। सितम्बर, 1946 में आपने अन्तरिम सरकार बनायी। जब 15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतन्त्र हो गया तब आप स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री बने और इस पद पर रहकर आपने 17 वर्ष तक राष्ट्र का नेतृत्व किया। प्रधानमंत्री होने के अलावा आप विदेशी मामलों के इंचार्ज रहे। कुछ समय तक आप प्रतिरक्षा मंत्रालय के भी इंचार्ज रहे। कुछ समय आप प्रधान मंत्री होते हुए भी कांग्रेस के अध्यक्ष रहे। आप योजना आयोग (**Planning Commission**) के भी अध्यक्ष थे।

27 मई, 1964 को देश के इस महान् सेनानी का देहावसान हो गया। उन्होंने मृत्यु के कुछ वर्ष पहले कहा था, "अगर कोई मुझसे पूछे कि इतिहास मेरे लिए क्या लिखे और मुझे किस रूप में याद करे तो मैं इन शब्दों में याद किया जाना पसन्द करूँगा–"

"यह वह आदमी है, जो अपने पूरे दिल और दिमाग से हिन्दुस्तान और हिंदुस्तानियों को प्यार करता था और वे भी उसे चाहते थे और बेहद प्यार करते थे।"

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ (Important Dates & Events)

1. 1885 ई. – अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना।
2. 1906 ई. – मुस्लिम लीग की स्थापना।
3. 1914 ई. – यूरोप में प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ।।
4. 1916 ई. – लखनऊ समझौता।
5. 1917 ई. – माण्टेग्यू घोषणा।
6. 1919 ई. – पंजाब के जलियाँवाला बाग का हत्याकाण्ड।
7. 1920 ई. – असहयोग आन्दोलन का प्रारम्भ।
8. 1922 ई. – चौरी–चौरा काण्ड।
9. 1923 ई. – स्वराज्य पार्टी की स्थापना।
10. 1927 ई. – साइमन कमीशन का भारत आगमन।
11. 1929 ई. – नेहरू–रिपोर्ट का प्रकाशन।
12. 1930 ई. – पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा, गाँधी जी की दाण्डी यात्रा, सविनय अवज्ञा आन्दोलन का प्रारम्भ। (1986)
13. 1931 ई. – गाँधी–इरविन समझौता।

14. 1932 ई. – साम्प्रदायिक निर्णय तथा पूना समझौता।
15. 1939 ई. – यूरोप में द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ।
16. 1941 ई. – क्रिप्स मिशन का भारत आगमन।
17. 1942 ई. – भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ।
18. 1944 ई. – आजाद हिन्द फौज का गठन।
19. 1945 ई. – वेवेल योजना।
20. 1946 ई. – मन्त्रिमण्डल मिशन योजना तथा भारत में अंतरिम सरकार की स्थापना।
21. 1947 ई. – लार्ड माउण्टबेटन योजना तथा भारत की स्वाधीनता। (1985)
22. 1948 ई. – महात्मा गाँधी की हत्या।
23. 1964 ई. – पंडित जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु।
24. 1984 ई. – श्रीमती इन्दिरा गाँधी की हत्या।
25. 1991 ई. – राजीव गाँधी की हत्या।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना किन कारणों से हुई? (1969)
2. 1919 से 1947 तक का समय गाँधी युग क्यों कहलाता है? (1978)
3. 1885-1916 के बीच हुए राष्ट्रीय आन्दोलन के कारण बताइए। गोखले तथा तिलक के योगदान पर प्रकाश डालिए।
4. 19वीं शताब्दी में भारत के राष्ट्रीय जागरण के क्या कारण थे? (1982)
5. 1919 से 1942 तक राष्ट्रीय आन्दोलन का संक्षिप्त वर्णन कीजिए। (1983)
6. सन् 1941 से 1947 की अवधि में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति का वर्णन कीजिए। (1985)
7. 1921 से 1947 तक के भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास का संक्षिप्त वर्णन कीजिए। (1987)
8. भारत की राजनीतिक जागृति में महात्मा गाँधी का क्या योगदान है? (1989, 95)
9. महात्मा गाँधी के विचारों एवं कार्यों का स्वतन्त्रता आन्दोलन में क्या महत्व था?(1992)
10. स्वाधीनता संघर्ष के प्रथम चरण में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लक्ष्य और कार्यकलापों का वर्णन कीजिए। (1993)
11. असहयोग आन्दोलन के मुख्य लक्ष्य और कार्यक्रम क्या थे? यह आन्दोलन क्यों वापस ले लिया गया? (1994,05)
12. भारत में राष्ट्रीयता की भावना और स्वदेश प्रेम के ज़ागृत होने के क्या कारण थे?(1996)
13. भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में सुभाषचन्द्र बोस तथा बाल गंगाधर तिलक के योगदानों की व्याख्या कीजिए। (1997)
14. महात्मा गाँधी को 'राष्ट्रपिता' क्यों कहा जाता है? स्पष्ट कीजिए। (1998)
15. भारत में राष्ट्रवाद के विकास के कारणों का विश्लेषण कीजिए। (2000)
16. जवाहलाल नेहरू के जीवन का संक्षिप्त परिचय दीजिए तथा राष्ट्र के प्रति उनकी सेवाओं का मूल्यांकन कीजिए। (2003)
17. भारत छोड़ो आन्दोलन के कारण एवं परिणामों की चर्चा कीजिए। (2004)
18. असहयोग आन्दोलन के प्रमुख उद्देश्य क्या थे? इस आन्दोलन के प्रभावों की समीक्षा कीजिए।

19. देशी रियासतों के विलय में सरदार वल्लभ भाई पटेल के योगदान पर प्रकाश डालिए।
20. भारत छोड़ों आन्दोलन के क्या कारण थे? वह क्यों सफल रहा? (2006)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "बंगाल का विभाजन करना लार्ड कर्जन की एक बहुत बड़ी भूल थी" क्या आप इस कथन से सहमत हैं?
2. "हमारे युग में गाँधी से बड़ा आध्यात्मिक नेता नहीं हुआ।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
3. "भावी पीढ़ियाँ सहसा यह विश्वास ही नहीं कर सकेंगी कि ऐसा हाड़-माँस का व्यक्ति कभी इस पृथ्वी पर चला था।" महात्मा गाँधी के बारे में कहे गये उक्त कथन के प्रकाश में राष्ट्र को उनकी देन का उल्लेख कीजिए।
4. "पं. जवाहरलाल नेहरू एक ऐसे अद्वितीय राजनीतिज्ञ थे जिनकी मानव-मुक्ति के प्रति सेवाएँ चिरस्मरणीय रहेंगी।" इस कथन के आलोक में राष्ट्र को उनकी देन का उल्लेख कीजिए।
5. "उनकी देश-भक्ति प्रबल भावना की थी, वे सिर्फ देश-प्रेम के अतिरिक्त कोई धर्म नहीं जानते थे।" तिलक के बारे में कहे गये उक्त कथन के प्रकाश में राष्ट्र को उनकी देन का उल्लेख कीजिए।
6. "1942 में हुए अगस्त आन्दोलन ने भारतीय जनता को पूर्ण स्वतन्त्रता का दीप प्रज्वलित करने की प्रेरणा दी।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
7. "भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का 1921 से 1947 तक का इतिहास महात्मा गाँधी पर ही केन्द्रित था।" स्पष्ट कीजिए।
8. "1919 से 1947 का काल भारतीय इतिहास में गाँधी युग कहलाता है। वास्तव में महात्मा गाँधी हर दृष्टि से आधुनिक भारत के निर्माता थे।" इस कथन को दृष्टिगत रखते हुए महात्मा गाँधी द्वारा संचालित मुख्य जन-आन्दोलनों का विवरण लिखिए।
9. "महात्मा गाँधी दलितों के मसीहा थे।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए। (1993)
10. "जवाहरलाल नेहरू आधुनिक भारत के निर्माता थे।" व्याख्या कीजिए।
11. "1947 में भारत विभाजन के लिए मुस्लिम लीग उत्तरदायी थी।" इस कथन की समीक्षा करें। क्या यह विभाजन अवश्यंभावी था? (1997)
12. "महात्मा गांधी का भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में प्रवेश नये विचारों एवं कार्यक्रमों के साथ हुआ, जिसने असहयोग आन्दोलन को जन्म दिया।" सिद्ध कीजिए। (2003)
13. "1947 में सम्प्रदायवाद भारतीय विभाजन का कारण था।" क्या आप सहमत हैं? विवेचन कीजिए। (2006)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. भारत में राष्ट्रीय जागृति के प्रमुख कारण क्या थे?
2. 1885 से 1919 तक की प्रमुख घटनाएँ क्या थीं?
3. 1919 से 1947 तक की प्रमुख घटनाएँ क्या थीं?
4. भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति में महात्मां गाँधी का क्या योगदान था?
5. स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रयास में सुभाषचन्द्र बोस का क्या योगदान था?
6. जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं?
7. क्रिप्स मिशन का उद्देश्य क्या था? यह असफल क्यों हुआ?
8. साइमन कमीशन का उद्देश्य क्या था? इस कमीशन का बहिष्कार क्यों हुआ?
9. 'चौरी चौरा' काण्ड' के संबंध में आप क्या जानते हैं?
10. भारत छोड़ो आन्दोलन के क्या कारण-थे?
11. गांधी-इरविन समझौते की समीक्षा कीजिए।
12. भारत विभाजन के चार कारणों का उल्लेख कीजिए।
13. 'काकोरी काण्ड' पर टिप्पणी लिखिए।

14. 'लाल', 'बाल', 'पाल', कौन थे? इनकी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में क्या भूमिका थी?
15. तिलक द्वारा प्रकाशित दो प्रमुख पत्रिकाओं के विषय में लिखिए।
16. सरदार पटेल की दो प्रमुख उपलब्धियों का विवेचना कीजिए।
17. महात्मा गांधी के दो अहिंसात्मक आन्दोलनों का वर्णन कीजिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म कब हुआ?**
   1885 ई. में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म हुआ।
2. **भारतीय्र राष्ट्रीय कांग्रेस के जनक का श्रेय किसे है?**
   भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के जनक का श्रेय ए.ओ.ह्यूम को है।
3. **भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन कहाँ हुआ?**
   भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन बम्बई में हुआ।
4. **भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन किसकी अध्यक्षता में हुआ?**
   भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन श्री व्योमेश चन्द्र बनर्जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ था।
5. **उदारवादी विचारों के दो नेताओं के नाम बताइए।**
   (1) गोपाल कृष्ण गोखले, (2) महादेव गोविन्द रानाडे।
6. **क्रान्तिकारी विचारों के दो नेताओं के नाम बताइए।**
   (1) लाला लाजपत राय, (2) बालगंगाधर तिलक।
7. **स्वराज्य पार्टी के संस्थापक कौन थे?**
   (1) पं. मोतीलाल नेहरू, तथा (2) चित्तरंजन दास।
8. **मुस्लिम लीग का संस्थापक कौन था?**
   मुस्लिम लीग के संस्थापक नवाब सलीमुल्ला खाँ थे।
9. **भारत के किस राष्ट्रीय नेता को 'लौह पुरुष' की उपाधि मिली?**
   भारत के राष्टीय नेता सरदार बल्लभ भाई पटेल को 'लौह परुष' की उपाधि मिली।
10. **आजाद हिन्द फौज की स्थापना किसने किया था?**
    आजाद हिन्द फौज की स्थापना कैप्टन मोहन सिंह ने सितम्बर, 1941 में किया था।
11. **भारत के बाहर रहकर क्रान्तिकारी संगठनों का संचालन करने वाले दो क्रान्तिकारियों के नाम बताइए।**
    (1) रास बिहारी बोस, तथा (2) लाला हरदयाल।
12. **महात्मा गांधी के दो रचनात्मक कार्य बताइए।**
    (1) सत्य और अहिंसा के अस्त्रों का प्रयोग तथा (2) हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए प्रयास।
13. **पूर्ण स्वतंत्रता का संकल्प कब और कहाँ लिया गया था?**
    1929 में कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्ति का संकल्प लिया गया था।
14. **'मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा', यह किस नेता का उद्घोष था?**
    यह उद्घोष सुभाष चन्द्र बोस 'नेताजी' का था।
15. **'फारवर्ड ब्लाक' के संस्थापक का नाम लिखिए।**
    'फारवर्ड ब्लाक' के संस्थापक सुभाषचन्द्र बोस थे।
16. **स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति तथा प्रथम प्रधान मंत्री का नाम बताइए।**
    स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद तथा प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरु थे।
17. **लार्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन क्यों किया?**
    लार्ड कर्जन ने हिन्दुओं की शक्ति को समाप्त करने तथा मुसलमानों को प्रोत्साहित करने के लिए बंगाल का विभाजन किया। परन्तु दलील यह दी कि बंगाल का विभाजन प्रशासन की सुविधा की दृष्टि से किया गया है।

बहुविकल्पीय प्रश्न

निर्देश : नीचे दिये गये प्रत्येक प्रश्न के चार विकल्पों में से सही विकल्प छाँटकर लिखिए :

1. 'स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है' यह किसने कहा था?
   (क) जवाहरलाल नेहरू, (ख) महात्मा गांधी
   (ग) बाल गंगाधर तिलक, (घ) सरदार पटेल।
2. भारत छोड़ो आन्दोलन कब शुरू किया गया था?
   (क) 1940 ई. में, (ख) 1941 ई. में, (ग) 1942 ई. में, (घ) 1945 ई. में।
3. दंडी यात्रा कब की गई थी?
   (क) 1932 ई. में, (ख) 1931 ई. में, (ग) 1929 ई. में, (घ) 1930 ई. में।
4. निम्नलिखित में कौन उग्रपंथी नहीं था?
   (क) बालगंगाधर तिलक,(ख) गोपालकृष्ण गोखले,(ग) मदन लाल, (घ) ऊधम सिंह।
5. चौरी-चौरा कांड कब घटित हुआ था?
   (क) 1922 ई. में, (ख) 1923 ई. में, (ग) 1925 ई. में, (घ) 1928 ई. में।
6. महात्मा गांधी ने अपनी दण्डी यात्रा कितने स्वयं सेवकों के साथ शुरू की थी?
   (क) 10, (ख) 58, (ग) 79, (घ) 108।
7. गदर पार्टी के संस्थापक कौन थे?
   (क) लाला लाजपत राय, (ख) हरदयाल,
   (ग) बालगंगाधर तिलक, (घ) सरदार बल्लभ भाई पटेल।
8. गांधी-इरविन समझौते पर हस्ताक्षर कब हुए थे?
   (क) 1931 ई. में, (ख) 1935 ई. में, (ग) 1942 ई. में, (घ) 1919 ई. में।
9. असहयोग आन्दोलन का आरम्भ कब किया गया था?
   (क) 1917 ई. में, (ख) 1920 ई. में, (ग) 1921 ई. में, (घ) 1930 ई. में।
10. 'दिल्ली चलो' का प्रेरक उद्घोष किसने किया था?
    (क) 1942 में कांग्रेस ने, (ख) जवाहरलाल नेहरू ने,
    (ग) सुभाषचन्द्र बोस ने, (घ) लाला लाजपत राय ने।
11. 'करो या मरो' का नारा किसका था?
    (क) जवाहरलाल नेहरू का, (ख) महात्मा गाँधी का,
    (ग) सुभाषचन्द्र बोस का, (घ) सरदार पटेल का।
12. भारत में होमरूल आन्दोलन किसने आरम्भ किया था?
    (क) महात्मा गाँधी व जवाहरलाल नेहरू ने (ख) एनी बेसेंट व तिलक ने
    (ग) एनी बेसेंट व गोपालकृष्ण गोखले ने (घ) सरदार पटेल व तिलक ने।
13. खुदाई खिदमतगार के नेता कौन थे?
    (क) महात्मा गांधी, (ख) जवाहरलाल नेहरू
    (ग) अब्दुल गफ्फार खाँ (घ) मोहम्मद अली जिन्ना।
14. भगत सिंह, राजगुरु तथा सुखदेव को फांसी कब दी गई थी?
    (क) मार्च, 1911 ई. में, (ख) मार्च 1921 ई. में,
    (ग) मार्च 1931 ई. में, (घ) मार्च 1941 ई. में।
15. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन कहाँ हुआ था?
    (क) दिल्ली, (ख) लाहौर, (ग) बम्बई, (घ) पटना।
16. महात्मा गांधी की हत्या किस वर्ष में हुई थी?
    (क) 1946 ई., (ख) 1947 ई., (ग) 1948 ई. (घ) 1949 ई.।
17. पं. जवाहर लाल नेहरू की मृत्यु कब हुई थी?
    (क) 1960 ई., (ख) 1963 ई., (ग) 1964 ई. (घ) 1965 ई.।

18. श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या किस वर्ष में हुई थी?
(क) 1981 ई., (ख) 1982 ई., (ग) 1983 ई. (घ) 1984 ई.।

19. राजीव गांधी की हत्या किस वर्ष में हुई थी?
(क) 1991 ई., (ख) 1992 ई., (ग) 1993 ई. (घ) 1994 ई.।

20. अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना कब हुई थी?
(क) 1881 ई., (ख) 1882 ई., (ग) 1884 ई. (घ) 1885 ई.।

21. गांधी- इरविन समझौता कब हुआ था?
(क) 1930 ई., (ख) 1931 ई., (ग) 1932 ई. (घ) 1933 ई.।

22. क्रिप्स-मिशन भारत कब आया था?
(क) 1940 ई., (ख) 1941 ई., (ग) 1942 ई. (घ) 1944 ई.।

23. साइमन कमीशन भारत कब आया?
(क) 1922 ई. में, (ख) 1924 ई. में, (ग) 1928 ई. में, (घ) 1930 ई. में।

24. स्वराज्य पार्टी की स्थापना कब हुई?
(क) 1920 ई. में, (ख) 1923 ई. में।

25. भारत में अंतरिम सरकार की स्थापना किस वर्ष में हुई?
(क) 1944 ई. में, (ख) 1945 ई. में, (ग) 1946 ई. में, (घ) 1947 ई. में।

26. मंत्रिमण्डल मिशन भारत कब आया था?
(क) 19 दिसम्बर, 1945 को, (ख) 19 दिसम्बर, 1946 को,
(ग) 24 मार्च 1946 को, (घ) 24 मार्च, 1947 को।

27. साम्प्रदायिक निर्णय की घोषणा कब की गयी?
(क) 15 अगस्त 1930 ई. में, (ख) 16 अगस्त 1932 ई. में,
(ग) 18 अगस्त 1933 ई. में, (घ) 15 अगस्त 1935 ई. में।

28. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रथम मुस्लिम अध्यक्ष कौन थे?
(क) अजमल खाँ, (ख) मोहम्मद अली जिन्ना
(ग) बदरुद्दीन तैयब, (घ) रहीमुल्ला सयानी।

29. राज्यों का पुनर्गठन कब हुआ था?
(क) 1954 ई. में, (ख) 1956 ई. में, (ग) 1958 ई. में, (घ) 1960 ई. में।

30. दिल्ली भारत की राजधानी कब बनी?
(क) 1911 ई. में, (ख) 1912 ई. में, (ग) 1913 ई. में, (घ) 1914 ई. में।

31. द्वितीय विश्व युद्ध किस सन् में शुरू हुआ?
(क) 1939 ई. में, (ख) 1940 ई. में, (ग) 1941 ई. में, (घ) 1942 ई. में।

32. प्रसिद्ध गीत "सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा" की रचना किसने की?
(क) साहिर लुधियानवी ने, (ख) सर सैयद अहमद खाँ ने,
(ग) सर मुहम्मद इकबाल ने, (घ) बहादुरशाह ज़फर ने।

33. निम्न में से किस आन्दोलन से गांधी जी संबंधित नहीं थे?
(क) असहयोग आन्दोलन, (ख) होमरूल आन्दोलन,
(ग) सविनय अवज्ञा आन्दोलन, (घ) भारत छोड़ों आन्दोलन।

34. गांधी जी ने डान्डी मार्च प्रारम्भ किया था :
(क) अंग्रेजों को भारत छोड़ने के लिए कहने हेतु (ख) नमक कानून तोड़ने के लिए
(ग) विदेशी सामानों के बहिष्कार हेतु (घ) हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए।

35. किस आन्दोलन में 'वन्दे मातरम्' भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का शीर्ष गीत बना?
(क) स्वदेशी आन्दोलन (ख) चम्पारण आन्दोलन
(ग) असहयोग आन्दोलन (घ) सविनय अवज्ञा आन्दोलन।

26
भारत में वैधानिक विकास
[1858-1947]

"1935 का अधिनियम एक प्रकार का संघ है जिसमें भारत के एक-तिहाई भाग का निर्लज्ज स्वेच्छाचारी राज्य सुरक्षित रहेगा और समय-समय पर अपनी झाँकी प्रस्तुत करता रहेगा और शेष दो-तिहाई भाग में जनमत का गला घोंटा जायेगा।" —डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन का अन्त— भारतीय इतिहास में 1857 का वर्ष महत्वपूर्ण है क्योंकि इस वर्ष भारतीयों ने अंग्रेजों की दासता से मुक्त होने के लिए स्वाधीनता संग्राम किया, किन्तु दुर्भाग्यवश उनको सफलता न मिल सकी। इस संग्राम से अंग्रेजों की आँखें खुल गईं और इंग्लैण्ड के सम्राट ने कम्पनी के हाथ से भारत की सत्ता छीन ली। 1858 में इंग्लैण्ड की पार्लियामेन्ट ने एक अधिनियम पारित किया जिसके अनुसार भारत की सत्ता कम्पनी के हाथ से निकल कर इंग्लैण्ड के 'ताज' के अधिकार में आ गई। भारतीयों की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए इंग्लैण्ड की महारानी विक्टोरिया ने अपना एक घोषणा-पत्र तैयार किया जिसे वाइसराय केनिंग के द्वारा इलाहाबाद में 1 नवम्बर, 1858 को देशी राजाओं तथा महाराजाओं के सम्मुख पढ़कर सुनाया गया।

महारानी विक्टोरिया का घोषणा-पत्र— महारानी विक्टोरिया के घोषणा-पत्र के शब्द इस प्रकार थे :

"हम भारत के देशी नरेशों के प्रति घोषणा करते हैं कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ अनेक जो समझौते अथवा सन्धियाँ हुई हैं उनको हम स्वीकार करते हैं तथा उनका विधिवत् पूर्णरूप से उसी प्रकार पालन किया जायगा जिस प्रकार कम्पनी उनका पालन करती है।"

"हम अपने आप को अपने भारतीय प्रदेशों के निवासियों के प्रति उस कर्तव्य भावना से बँधे हुए समझते हैं जिस प्रकार हम अपने प्रजाजनों के साथ बँधे हुए हैं। हम भगवान की कृपा से इन सब उत्तरदायित्वों को हृदय से तथा सच्ची कर्तव्य भावना से पूरा करने का प्रयत्न करेंगे।"

"हम घोषणा करते हैं कि हमारी यह शाही इच्छा तथा प्रसन्नता है कि हम किसी व्यक्ति को उसकी धार्मिक भावनाओं तथा विश्वासों के कारण पक्षपात, उपेक्षा, घृणा अथवा अयोग्यता की दृष्टि से नहीं देखेंगे तथा सब लोगों को समान रूप से कानून की ओर से समान तथा पक्षपात रहित सुरक्षा प्राप्त होगी तथा हम कठोरता से उन लोगों को भी आदेश देते हैं जिन पर हमारे अधीन किसी प्रकार का प्रशासनिक उत्तरदायित्व है कि वे हमारे प्रजाजनों के धार्मिक विश्वासों तथा पूजा आदि में किसी प्रकार के हस्तक्षेप से अलग रहें। हमारी यह इच्छा है कि बिना किसी जाति तथा वर्गगत भेद के हमारे प्रजाजनों को पक्षपात रहित सार्वजनिक सेवाओं के विभिन्न पदों पर प्रतिष्ठित किया जाएगा, जिन पदों के लिए उनमें तदनुसार शिक्षा, योग्यता तथा पूर्णता होगी।"

"हम जानते हैं तथा उस ममता की भावना का आदर करते हैं, जो भारत निवासी अपने पूर्वजों के द्वारा प्राप्त भूमि में रहते हैं तथा हमारी इच्छा है कि उस सम्बन्ध में उनके सब कर्तव्यों तथा अधिकारों की पूर्ण रक्षा की जाय तथा राज्य की समान माँगों का भी ध्यान रखा जाय तथा

हमारी इच्छा है कि राज्य के सामान्य नियमों तथा कानूनों का पालन करते हुए पुराने अधिकारों, प्रयोगों तथा भारतीय प्रथाओं के प्रति समुचित प्रतिष्ठा का ध्यान रखा जाय।"

घोषणा के अन्त में कहा गया था, "जब भगवान की कृपा से आन्तरिक शान्ति की स्थापना हो जायगी तब हमारी हार्दिक इच्छा यह होगी कि शान्तिपूर्ण उद्योग को प्रोत्साहन दिया जाय, सार्वजनिक उपयोगिता के कार्यों को प्रगति प्रदान की जाय तथा प्रशासन की व्यवस्था में इस प्रकार सुधार किया जाय कि जिससे हमारे देशवासी प्रजाजनों का हित हो। उनकी समृद्धि में हमारी शक्ति, उनके सन्तोष में ही हमारी सुरक्षा तथा उनकी कृतज्ञता में ही हमारा सबसे बड़ा पुरस्कार है।"

1858 ई. का अधिनियम– महारानी विक्टोरिया की घोषणा के साथ ही वैधानिक विकास का पहला कदम 1858 में उठाया गया। ब्रिटिश सरकार ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अन्त करने के लिए 1858 में गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया अधिनियम पारित किया। इस अधिनियम के अनुसार निम्नलिखित निर्णय किये गये :

1. ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अन्त कर दिया गया और उसके स्थान पर इंग्लैण्ड के 'ताज' का शासन पारित हो गया।
2. भारत में ब्रिटिश शासन की देख-भाल करने के लिए इंग्लैण्ड के मन्त्रिमण्डल में एक नया मंत्री बढ़ाया गया जो भारत-मंत्री कहलाता था। वह इंग्लैण्ड की पार्लियामेण्ट के प्रति उत्तरदायी था।
3. भारत-मंत्री की सहायता के लिए 'भारतीय कौंसिल' नामक एक समिति का निर्माण किया गया जिसमें सदस्यों की संख्या 15 निर्धारित की गई। इनमें 7 का निर्वाचन तो डाइरेक्टरों की समिति द्वारा होता था और शेष 8 सदस्यों की नियुक्ति इंग्लैण्ड के सम्राट द्वारा होती थी। कौंसिल के आधे से अधिक सदस्य वे व्यक्ति लिये जाते थे जो भारत में 10 वर्ष रहे हों तथा उन्हें नियुक्ति के समय भारत छोड़े हुए दस वर्ष से अधिक न हुए हों।
4. भारत-मंत्री को 'भारतीय कौंसिल' का अध्यक्ष बनाया गया और उसे कौंसिल के बहुमत से विरुद्ध कार्य करने के लिए अधिकार प्रदान किया गया।
5. यह निश्चित किया गया कि किसी आकस्मिक तथा आवश्यक कारण को छोड़कर भारतीय राजस्व को भारत की सीमा से बाहर किसी भी फौजी कार्यवाही में बिना संसद की स्वीकृति के व्यय नहीं किया जायगा।
6. भारत की सम्पूर्ण जल तथा थल सेना इंग्लैण्ड के सम्राट के अधीन कर दी गई।
7. भारत-मंत्री को प्रतिवर्ष भारतीय प्रशासन की रिपोर्ट संसद के समक्ष प्रस्तुत करना अनिवार्य कर दिया गया।
8. अब बंगाल का गवर्नर जनरल भारत का वाइसराय कहलाने लगा।

1861 का भारतीय कौंसिल अधिनियम– ब्रिटिश संसद ने 1861 में भारतीय अधिनियम पारित किया। इस अधिनियम द्वारा निम्नलिखित परिवर्तन किये गये :

1. इस अधिनियम द्वारा वाइसराय को अपनी कौंसिल में कम से कम 6 और अधिक से अधिक 12 सदस्यों की नियुक्ति का अधिकार प्रदान किया गया। इन सदस्यों में कम-से कम आधे गैर सरकारी सदस्य होना आवश्यक था तथा उनका कार्यकाल दो वर्ष का था।
2. बम्बई एवं मद्रास की सरकारों को एडवोकेट-जनरल तथा कानून निर्माणादि के लिए कार्यकारिणी में कम से कम चार तथा अधिक से अधिक आठ अतिरिक्त सदस्यों को मनोनीत करने का अधिकार दिया गया। इनमें से कम से कम आधे सदस्यों को गैर सरकारी होना आवश्यक था। इन सदस्यों का कार्यकाल दो वर्ष का था।
3. गवर्नर जनरल को नये प्रान्तों का निर्माण करने तथा लेफ्टिनेंट गवर्नर की नियुक्ति का

अधिकार प्रदान किया गया। साथ ही उसे प्रेसीडेन्सी प्रांत तथा प्रदेश की सीमाओं को बाँटने अथवा परिवर्तित करने का अधिकार भी दिया गया।

इस अधिनियम से भारतीयों का असन्तोष कम न हुआ, क्योंकि इसने भारतीयों को अधिकार नहीं दिया था। विधान परिषदों के अधिकार अत्यन्त कम थे। विधान-परिषदों में राजा, महाराजा या जमींदार ही मनोनीत किये जाते थे। विधान परिषदें अंग्रेजी सरकार के संकेत पर अपने कार्यों को संचालित करती थीं। प्रो. गुरुमुख निहालसिंह के अनुसार, "1861 का भारतीय कौंसिल अधिनियम दो मुख्य कारणों से वैधानिक इतिहास में महत्वपूर्ण है। प्रथम, इससे गवर्नर जनरल को कानून निर्माणकार्य में जनता का सहयोग प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हुआ तथा द्वितीय, बम्बई तथा मद्रास की सरकारों को कानून आदि बनाने के सम्बन्ध में अधिकार प्रदान किया गया तथा इससे अन्य प्रान्तों में भी इसी प्रकार की व्यवस्थापिका परिषदें बनाने के सम्बन्ध में व्यवस्था का अवसर प्राप्त हुआ। इस प्रकार उसने वैधानिक परिवर्तन की नीति की नींव रखी।"

भारत के वैधानिक विकास

1. 1858 का अधिनियम
2. 1861 का भारतीय कौंसिल अधिनियम
3. 1892 का भारतीय कौंसिल अधिनियम
4. 1909 का भारतीय कौंसिल अधिनियम
5. 1919 का अधिनियम
6. 1935 का अधिनियम
7. 1947 का अधिनियम

1892 का भारतीय कौंसिल अधिनियम– 31 वर्षों के पश्चात् यह अधिनियम हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन के परिणामस्वरूप पारित किया गया। इसके द्वारा निम्नलिखित व्यवस्था की गई :

1. केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान-परिषदों के मनोनीत किये गये सदस्यों की संख्या में वृद्धि कर दी गई। वाइसराय को कम से कम 10 तथा अधिक से अधिक 16 सदस्य मनोनीत करने का अधिकार दिया गया, जिनमें कम से कम 10 का गैर सरकारी होना आवश्यक था।
2. प्रान्तीय विधान-परिषदों के कुछ सदस्य प्रान्तीय नगरपालिकाओं, जिला-बोर्डों, व्यापार-मण्डलों, विश्वविद्यालय आदि द्वारा चुने जाने लगे।
3. केन्द्रीय विधान-परिषदों के चार सदस्य प्रान्तीय विधान-परिषदों के गैर सरकारी सदस्यों द्वारा चुने जाने लगे।
4. सभी विधान-परिषदों को बजट पर बहस करने तथा प्रश्न पूछने का अधिकार मिल गया किन्तु अभी उन्हें मत दे . का अधिकार नहीं दिया गया।

उपर्युक्त अधिनियम का यह महत्व है कि इस अधिनियम द्वारा अप्रत्यक्ष निर्वाचन प्रद्धति का आरम्भ हुआ तथा कार्यकारिणी पर विधायिका का कुछ नियन्त्रण स्थापित हो गया। पं. मदन मोहन मालवीय के कथनानुसार, "इन अधिनियमों से भारतीयों को उनके देश की शासन-व्यवस्था में कोई वास्तविक अधिकार प्राप्त न हुआ। उन्होंने अनुभव किया कि देश का प्रशासन देश की जनता के वास्तविक लाभ के लिए नहीं हो रहा है। इसके विपरीत इसमें बहुत फिजूलखर्ची हो रही है।" सी.वाई.चिन्तामणि के अनुसार, "सदस्यों को जो सुविधाएँ तथा अवसर प्राप्त थे, वे अत्यन्त सीमित थे तथा उनमें कोई भी उपयोगी सिद्ध न हुए।"

1909 का भारतीय कौंसिल अधिनियम– यह अधिनियम भी हमारे स्वाधीनता संग्राम का प्रतिफल था। उस समय लार्ड मार्ले भारत-सचिव थे। अतएव इस अधिनियम को 'मार्ले-मिण्टो-सुधार अधिनियम' भी कहते हैं। इस अधिनियम द्वारा निम्नलिखित परिवर्तन

किये गये :

1. इस अधिनियम द्वारा केन्द्रीय विधान-परिषद के सदस्यों की संख्या 16 से बढ़ाकर 60 कर दी गई। इन 60 में से 31 मनोनीत और 29 अप्रत्यक्ष तौर पर निर्वाचित रखे गये। बंगाल, उत्तर-प्रदेश, बम्बई तथा मद्रास आदि में विधान-परिषदों के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर 50 और पंजाब, असम के विधान-परिषद के सदस्यों की संख्या 30 कर दी गई।
2. विधान-परिषद के अधिकारों में भी कुछ वृद्धि की गई। कुछ विषयों के अतिरिक्त अधिकांश विषयों पर परिषदों को वाद-विवाद करने का अधिकार मिला। यद्यपि सभापति को यह अधिकार था कि वह किसी भी प्रस्ताव को अथवा उसके किसी अंश को बिना कोई कारण दिये स्वीकार करने से इन्कार कर सकता था। सामान्य सार्वजनिक हित वाले विषयों के सम्बन्ध में परिषद को वाद-विवाद करने का अधिकार प्रदान किया गया।
3. प्रान्तों में परिषद के सदस्यों को विश्वविद्यालय की सीनेटों, जमींदारों, जिला-परिषद तथा नगरपालिकाओं के द्वारा निर्वाचित करने की व्यवस्था की गई। मुसलमानों को अलग प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया तथा मुस्लिम सदस्यों का चुनाव मुसलमान ही कर सकते थे।
4. इस अधिनियम के द्वारा बम्बई, बंगाल तथा मद्रास की कार्यकारिणी परिषदों के सदस्यों की संख्या में वृद्धि कर दी गई। इसके द्वारा सरकार को यह अधिकार प्रदान किया गया कि वह उप-राज्यपाल के प्रान्त के लिये भी कार्य-पालिका का निर्माण कर सके।
5. राजनीतिक अपराधी चुनाव लड़ने के अधिकार से वंचित कर दिये गये, परन्तु सरकार के सर्वोच्च अधिकारियों द्वारा उन्हें यह अधिकार प्रदान किया जा सकता था।

मान्टेग्यू घोषणा– 1909 के अधिनियम से भारतीयों को कोई सन्तोष न हुआ। फलतः राष्ट्रीय आन्दोलन में और भी अधिक तीव्रता आ गई। तिलक ने घोषित किया, "स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, हम इसे लेकर ही रहेंगे।" 1914 में यूरोप में प्रथम महायुद्ध की ज्वालाएँ फैल गईं और ब्रिटिश सरकार भी उसकी लपेट में आ गई। उसने घोषणा की कि यह महायुद्ध साम्राज्यवाद को समाप्त करने के लिए लड़ा जा रहा है। इस युद्ध में भारतीयों का सहयोग प्राप्त करने के लिए मान्टेग्यू ने युद्ध के पश्चात् उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित करने की घोषणा की। भारतीयों ने इस विश्वयुद्ध में ब्रिटिश सरकार को पूर्ण सहयोग प्रदान किया। घोषणा के पश्चात् माण्टेग्यू तथा भारत के वाइसराय चेम्सफोर्ड ने मिलकर एक रिपोर्ट तैयार की। उन्हीं की रिपोर्ट के आधार पर 1919 का अधिनियम पारित किया गया।

1919 का अधिनियम– 1919 के अधिनियम का भारत के वैधानिक विकास में बहुत बड़ा महत्व है। इस अधिनियम के द्वारा उत्तरदायी शासन की स्थापना की गई। इस अधिनियम द्वारा निम्नलिखित महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए :

1. इस अधिनियम द्वारा भारतीय कौंसिल के सदस्यों की संख्या 8 से बढ़ाकर 12 कर दी गई। भारत-मंत्री का वेतन तथा उसके कार्यालय का कुछ व्यय ब्रिटिश सरकार के कोष से दिया जाने लगा। भारत-मंत्री के कुछ कार्य उससे लेकर भारतीय हाई कमिश्नर को दे दिये गये। वह कौंसिल स्थित गवर्नर जनरल के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता था।
2. इस अधिनियम के द्वारा एक सदन वाले केन्द्रीय-मण्डल के स्थान पर दो सदन वाले केन्द्रीय विधान-मण्डल की स्थापना की गई। दो सदनों के नाम क्रमशः केन्द्रीय विधान-सभा तथा राज्य-परिषद रखे गये। केन्द्रीय विधान-सभा में 145 सदस्य होते थे, जिसमें 103 का चुनाव होता था तथा शेष सदस्य मनोनीत होते थे। राज्य-परिषद में 60 सदस्य होते थे, जिसमें 33 का चुनाव होता था और शेष 27 गवर्नर जनरल द्वारा मनोनीत होते थे।

3. केन्द्रीय विधान सभा का कार्यकाल तीन वर्ष तथा राज्य परिषद का पाँच वर्ष रखा गया। गवर्नर जनरल इस अवधि को बढ़ा सकता था।
4. इस अधिनियम द्वारा प्रान्तों में द्वैध शासन की स्थापना की गई। इसके अनुसार प्रान्तीय सरकार के विषयों को दो भागों- 'सुरक्षित' तथा 'हस्तान्तरित' में विभक्त कर दिया गया। रक्षा, पुलिस, न्याय, जेल, वित्त, भू-राजस्व आदि महत्वपूर्ण विषय सुरक्षित तथा कृषि, शिक्षा, चिकित्सा एवं स्थानीय स्वशासन आदि विषय हस्तान्तरित थे। सुरक्षित विषयों की व्यवस्था गवर्नर अपनी कार्यकारिणी की सहायता से तथा हस्तांतरित विषयों की व्यवस्था अपने मन्त्रियों की सहायता से करता था।
5. विभिन्न प्रान्तों की विधान-परिषदों के सदस्यों की संख्या में वृद्धि कर दी गई जिसमें 70 प्रतिशत सदस्यों के निर्वाचित होने तथा 30 प्रतिशत सदस्य गवर्नर द्वारा मनोनीत किए जाने की व्यवस्था की गई। प्रान्तीय विधान-परिषदों की अवधि तीन वर्ष निश्चित की गई, किन्तु गवर्नर चाहे तो उसे तीन वर्ष से पूर्व भी स्थगित कर सकता था। वह उसके कार्यकाल में वृद्धि कर सकता था। निर्वाचन-प्रणाली प्रत्यक्ष रखी गई।
6. इस अधिनियम द्वारा नगरपालिकाओं तथा जिला बोर्डों के अधिकारों में वृद्धि कर दी गई तथा इनके सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई।
7. गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी के सदस्यों की संख्या 8 कर दी गई। गवर्नर जनरल इस संख्या को बढ़ा सकता था। कार्यकारिणी के सदस्यों में 3 भारतीय सदस्य रखे गये। गवर्नर जनरल सदस्यों का परामर्श मानने के लिए बाध्य नहीं था।
8. इस अधिनियम के अनुसार सभी विषयों को दो सूचियों- केन्द्रीय सूची तथा प्रान्तीय सूची में विभक्त किया गया। प्रान्तीय सूची के अन्तर्गत विषयों को पूर्णतया प्रान्तों के संरक्षण में रख दिया गया। प्रान्तीय आय के साधन भी केन्द्र से पृथक् कर दिये गये।
9. इस अधिनियम द्वारा केन्द्रीय विधान सभा को सम्पूर्ण भारत के लिए कानून तैयार करने, प्रचलित कानूनों में संशोधन करने तथा बजट पर वाद-विवाद करने का अधिकार प्रदान किया गया। गवर्नर जनरल को किसी भी विधेयक पर होने वाले वाद-विवाद को रोकने, विधेयक को वापस भेजने तथा उसका निषेध करने का अधिकार प्रदान किया गया।

साइमन कमीशन- 1919 के अधिनियम के शासन-व्यवस्था में जो परिवर्तन हुए, उससे भारतीयों को सन्तोष नहीं हुआ और राष्ट्रीय आन्दोलन गाँधी जी के नेतृत्व में प्रचंड गति से चलता रहा। अन्त में विवश होकर ब्रिटिश सरकार ने 1927 में साइमन कमीशन भेजा। इस कमीशन के अध्यक्ष सर जॉन साइमन के नाम पर 'साइमन' पड़ा। इसके सभी सदस्य अंग्रेज थे। भारतीयों ने इस गौरांग कमीशन का काले झंडों से स्वागत किया। साइमन कमीशन ने मई, 1930 में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित कर दी। इसमें यह विचार किया गया था कि सारे भारत का आखिरी वैधानिक ढाँचा कैसा होना चाहिए और इसमें प्रान्तों का क्या स्थान होना चाहिए। इन्हीं दिनों इंग्लैण्ड में अनुदार दल के स्थान पर मजदूर दल की सरकार बन गई। उसने लन्दन में तीन गोलमेज सम्मेलनों का आयोजन किया। परन्तु इनसे समस्या का कोई समाधान न हो सका। अन्त में ब्रिटिश संसद ने 1935 का अधिनियम पारित किया।

1935 का अधिनियम- 1935 के अधिनियम के द्वारा अखिल भारतीय संघ की

स्थापना की गई तथा प्रान्तों को स्वायत्त शासन-प्रदान किया गया। इस अधिनियम के द्वारा निम्नलिखित परिवर्तन किये गये :

1. केन्द्र में द्वैध शासन की स्थापना– इस अधिनियम के द्वारा केन्द्र में द्वैध शासन की व्यवस्था की गई। कुछ संघीय विषयों को गवर्नर जनरल के हाथ में सुरक्षित कर दिया गया जिनके सम्बन्ध में वह अधिक से अधिक तीन परामर्शदाताओं से सहायता प्राप्त कर सकता था जिनकी नियुक्ति वह स्वयं करता था। केन्द्रीय विषयों को 'सुरक्षित' और 'हस्तांतरित' विषयों में विभाजित किया गया। सुरक्षित विषय गवर्नर जनरल के अधिकार में रखे गये।

2. भारतीय कौंसिल की समाप्ति– इस अधिनियम द्वारा भारत-मंत्री की भारतीय कौंसिल को समाप्त कर उसके स्थान पर एक सलाहकार समिति की नियुक्ति की गई जिसकी सदस्य संख्या 3 से 6 तक निश्चित की गई। इस समिति की सलाह मानना भारत-मंत्री की इच्छा पर निर्भर था।

3. केन्द्रीय विधान मण्डल का संगठन– केन्द्र में द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका सभा की स्थापना की गई जिसमें एक संघीय विधान-सभा अर्थात् फेडेरल असेम्बली और दूसरी राज्य-परिषद अर्थात् कौंसिल आफ स्टेट थी। संघीय विधान सभा का कार्यकाल पाँच वर्ष था और राज्य परिषद एक स्थायी परिषद थी, जिसके एक-तिहाई सदस्यों को प्रति तीन वर्ष के पश्चात् अवकाश प्राप्त करना होता था।

4. संघीय न्यायालय व रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना– इस अधिनियम के द्वारा एक संघीय न्यायालय तथा रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना की गई। न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र रियासतों तथा प्रांतों तक व्यापक था।

5. प्रान्तों में स्वायत्त शासन की स्थापना– प्रान्तों में द्वैध-शासन का अन्त कर स्वायत्त शासन की स्थापना की गई। सुरक्षित तथा हस्तान्तरित विषयों का भेद मिटाकर सब विषय मन्त्रियों के अधिकार में कर दिये गये।

6. मताधिकार का विस्तार– इस अधिनियम के द्वारा मताधिकार पहले की अपेक्षा अधिक विस्तृत कर दिया गया। इससे 16% जनता को मताधिकार प्राप्त हो गया।

7. विषयों का विभाजन– इस अधिनियम द्वारा विषयों को संघीय सूची, प्रान्तीय सूची और संयुक्त सूची में विभक्त किया गया। संघीय सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार संघीय सरकार को और प्रान्तीय सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्रान्तीय सरकार को प्रदान किया गया। संयुक्त सूची के विषयों पर संघ सरकार और प्रान्तीय सरकार दोनों को ही कानून बनाने का अधिकार प्रदान किया गया। परन्तु संयुक्त सूची के किसी विषय पर यदि संघीय सरकार ने कोई कानून बना लिया है तो फिर उसके ऊपर प्रान्तीय सरकार को कानून बनाने का अधिकार न था। गवर्नर जनरल को यह अधिकार था कि वह किसी भी विषय को किसी सूची में रख सकता था।

8. बर्मा और बरार– इस अधिनियम द्वारा बर्मा को भारत के पृथक् कर दिया गया और बरार को मध्य प्रान्त के अधीन कर दिया गया।

यद्यपि इस अधिनियम के द्वारा भारतीयों के अधिकारों में वृद्धि कर दी गई थी किन्तु भारतीयों को संतोष नहीं हुआ। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने इस अधिनियम की आलोचना करते हुए कहा, "यह एक प्रकार का संघ है जिसमें भारत के एक-तिहाई भाग का निर्लज्ज स्वेच्छाचारी राज्य

सुरक्षित रहेगा और समय-समय पर अपनी झाँकी प्रस्तुत करता रहेगा और शेष दो-तिहाई भाग में जनमत का गला घोंटा जायेगा।" पण्डित मदनमोहन मालवीय के शब्दों में, "नया अधिनियम बाह्य रूप से कुछ प्रजातन्तात्मक प्रतीत होता है, किन्तु आन्तरिक रूप से यह पूर्ण खोखला है।" श्री फजलुल हक के अनुसार, "1935 के अधिनिमय द्वारा न हिन्दू राज्य स्थापित होता है और न मुस्लिम राज्य। इससे केवल अंग्रेजी राज्य स्थापित होता है।"

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने इस अधिनियम को दासता का एक नया चार्टर बताया। उन्होंने यह भी कहा कि यह अधिनियम उस मोटर के समान है जिसके केवल ब्रेक्स हैं, इंजिन है ही नहीं।

1937 के आम चुनाव में कांग्रेस को आठ प्रान्तों में भारी बहुमत मिला और उनके इन प्रान्तों में मन्त्रिमण्डल बन गये। इसी बीच 1939 में यूरोप में द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो गया। अंग्रेजी सरकार ने भारतीय मन्त्रिमण्डल के परामर्श बिना ही भारत की ओर से युद्ध की घोषणा कर दी। फलतः गाँधी जी के परामर्श से कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों ने त्याग-पत्र दे दिया। 1942 में कांग्रेस ने, 'भारत छोड़ो आन्दोलन, चलाया और 'करो या मरो' का नारा दिया। इस आंदोलन से अंग्रेजी सरकार की नींव हिल गई। द्वितीय महायुद्ध समाप्त हो जाने पर इंग्लैण्ड की राजनीति में परिवर्तन हो गया और वहाँ अनुदार दल के स्थान पर मजदूर दल की सरकार बनी। इस दल को भारतीयों के प्रति सहानभूति थी। अतः उसने भारत को स्वतन्त्र करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। 20 फरवरी, 1947 को इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री एटली ने संसद में भाषण देते हुए घोषित किया, "ब्रिटिश सरकार ने यह निश्चय कर लिया है कि वह जून, 1948 तक भारत को पूर्णतया स्वतन्त्र कर देगी।" फलतः जुलाई, 1947 में ब्रिटिश संसद ने भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम पारित किया।

1947 का भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम- इस अधिनियम द्वारा निम्नलिखित व्यवस्था की गई :

1. इस अधिनियम के द्वारा भारत को दो स्वतन्त्र उपनिवेशों में विभक्त कर दिया गया। एक का नाम 'भारत संघ' और दूसरे का नाम 'पाकिस्तान' रखा गया।
2. 15 अगस्त, 1947 से ब्रिटिश सरकार का भारत पर पूर्णरूपेण नियंत्रण समाप्त हो गया।
3. भारत और पाकिस्तान को अपना-अपना संविधान बनाने का अधिकार दे दिया गया किन्तु जब तक नया संविधान बन न जाय तब तक इन दोनों राज्यों का शासन 1935 के अधिनियम के अनुसार चलता रहे।
4. दोनों उपनिवेशों को यह अधिकार प्रदान किया गया कि वे अपनी इच्छानुसार ब्रिटिश-मण्डल में सम्मिलित हो सकते हैं अथवा नहीं।
5. ब्रिटिश सरकार ने देशी राजाओं के साथ जो सन्धियाँ की थीं, सब समाप्त कर दी गईं और देशी राज्यों को भारत संघ या पाकिस्तान के साथ सम्मिलित होने की स्वतन्त्रता दे दी गई।
6. भारत-मन्त्री तथा भारतीय कौंसिल को समाप्त कर दिया गया।
7. भारत और पाकिस्तान दोनों के मन्त्रिमण्डलों को अपने गवर्नर-जनरल मनोनीत करने का अधिकार दे दिया गया।
8. ब्रिटेन के सम्राट की उपाधि 'भारत सम्राट' समाप्त कर दी गई।

इस प्रकार एक लम्बे संवैधानिक विकास के पश्चात् 15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतन्त्र हो गया और अंग्रेजी सत्ता का पूर्णतया अन्त हो गया।

अधिनियम का महत्त्व– भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम, 1947 ने भारतीय इतिहास में ब्रिटिश शासन के अध्याय को सदैव के लिए समाप्त कर दिया और स्वतन्त्र भारत के नये अध्याय का आरम्भ किया। लार्ड सैलूयल ने इस अधिनियम के सम्बन्ध में कहा था, "यह इतिहास में एक अनोखी घटना है– बिना युद्ध के शान्ति की सन्धि।"

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. 1919 तथा 1935 के वैधानिक सुधारों की प्रमुख विशेषताओं का विवरण दीजिए। (1965)
2. 1919 तथा 1935 तक के भारतीय संवैधानिक विकास का वर्णन कीजिए। (1968)
3. 1909 ई. के अधिनियम की प्रमुख धाराओं एवं महत्व का वर्णन कीजिए। (2005)
4. भारत सरकार के अधिनियम 1935 के प्रमुख प्रावधानों का विवेचन कीजिए। (2006)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "1861 के अधिनियम ने संवैधानिक परिवर्तन की नीति की नींव रखी।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
2. " 1919 के अधिनियम ने भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना की।" इस कथन की पुष्टि कीजिए।
3. "1935 का अधिनियम आन्तरिक रूप से पूर्णतः खोखला था।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं? (1986)
4. "1947 के स्वतन्त्रता अधिनियम का निर्माण इतिहास में एक अनोखी घटना थी– बिना युद्ध के शान्ति की सन्धि।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
5. "1858 के भारत शासन अधिनियम ने भारतीय इतिहास में एक युग को समाप्त कर दिया और भारत में एक नये युग का आरम्भ हुआ।" इस कथन के सन्दर्भ में 1858 के भारत शासन अधिनियम के द्वारा हुए परिवर्तनों का उल्लेख कीजिए। (1991)
6. "महात्मा गाँधी के अहिंसक आन्दोलनों की भारतीय स्वतंत्रता प्राप्ति में अहम् भूमिका थी।" स्पष्ट कीजिए। (2001)
7. "1935 के अधिनियम के अन्तर्गत प्रान्तीय स्वायत्तता गवर्नरों के लिए स्वायत्तता थी, न कि प्रान्तीय विधान मण्डल और मंत्रियों के लिए।" व्याख्या कीजिए। (2003)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. 1858 के भारतीय अधिनियम की प्रमुख धाराएँ क्या थीं?
2. 1919 के भारतीय अधिनियम की प्रमुख धाराएँ क्या थीं?
3. 1935 के भारतीय अधिनियम की प्रमुख धाराएँ क्या थीं?
4. 1947 के स्वतन्त्रता अधिनियम की प्रमुख धाराएँ क्या थीं?
5. 1919 के भारतीय अधिनियम के चार प्रावधानों का विवेचन कीजिए।
6. 1935 के भारतीय अधिनियम के चार प्रावधानों का उल्लेख कीजिए।
7. 1947 के भारतीय अधिनियम के द्वारा जो व्यवस्था की गई उसके प्रमुख प्रावधानों का उल्लेख कीजिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **ब्रिटिश सरकार ने भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन का अंत करने के लिए कौन-सा अधिनियम पारित किया?**
   ब्रिटिश सरकार ने 1858 का अधिनियम पारित किया।
2. **किस अधिनियम के द्वारा अखिल भारतीय संघ की स्थापना की गई।**
   1935 के अधिनियम के द्वारा अखिल भारतीय संघ की स्थापना की गई।
3. **ब्रिटिश संसद ने भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम कब पारित किया?**
   ब्रिटिश संसद ने भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 में पारित किया।

बहुविकल्पीय प्रश्न

निर्देश : नीचे दिये गये प्रत्येक प्रश्न के चार विकल्पों में से सही विकल्प छाँटकर लिखिए :

1. **'1935 के अधिनियम द्वारा न हिन्दू राज्य स्थापित होता है और न मुस्लिम राज्य इससे केवल अंग्रेजी राज्य स्थापित होता है।' यह कथन किसका है–**
   (क) डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, (ख) फजलुल हक,
   (ग) मदन मोहन मालवीय, (घ) पं. जवाहर लाल नेहरू।
2. **भारत स्वतंत्र हुआ–**
   (क) 15 अगस्त, 1945 को, (ख) 15 अगस्त, 1947 को,
   (ग) 26 जनवरी, 1945 को, (घ) 26 जनवरी, 1950 को।
3. **ब्रिटिश संसद ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन को समाप्त करके, शासन ब्रिटिश क्राउन को सौंपने के लिए अधिनिमय कब पारित किया था?–**
   (क) 1856 ई. में, (ख) 1857 ई. में, (ग) 1858 ई. में, (घ) 1859 ई. में।
4. **निम्नलिखित में से किस अधिनियम के द्वारा प्रान्तों में द्वैध शासन की स्थापना हुई?**
   (क) 1858 के अधिनियम द्वारा (ख) 1861 के अधिनियम द्वारा
   (ग) 1919 के अधिनियम द्वारा (घ) 1935 के अधिनियम द्वारा।
5. **निम्न में से किस अधिनियम द्वारा केन्द्र में द्वैध शासन तथा प्रांन्तों में स्वायत्त शासन की स्थापना की गई?**
   (क) 1909 के अधिनियम द्वारा (ख) 1919 के अधिनियम द्वारा
   (ग) 1935 के अधिनियम द्वारा (घ) 1947 के अधिनियम द्वारा।

■

27

स्वतन्त्र भारत की उपलब्धियाँ

"भारतीय संविधान को अनमनीय बनाने वाली वस्तु यह है कि संविधान के संशोधन की विधि पेंचीदा होने के अतिरिक्त यह इतना विस्तृत है और कानून इतने बड़े क्षेत्र में फैला हुआ है कि संवैधानिक मान्यता का प्रश्न प्रायः पैदा हो जायगा।" –डॉ. जेनिंग्ज

भारतीय संविधान की विशेषताएँ

भारतीय संविधान में अनेक उल्लेखनीय विशेषताएँ है, जिनमें मुख्य निम्नलिखित हैं:

1. विस्तृत तथा व्यापक प्रलेख– भारत का संविधान विश्व के अन्य संविधानों से अत्यन्त व्यापक तथा विस्तृत प्रलेख है। यह 22 भागों में विभक्त है तथा इसमें 395 अनुच्छेद तथा 12 अनुसूचियाँ है जबकि अमेरिका के संशोधित संविधान में केवल 21 अनुच्छेद, कनाडा के संविधान में 147 अनुच्छेद, सोवियत संघ के संविधान में 146 अनुच्छेद, आस्ट्रेलिया के संविधान में 128 अनुच्छेद तथा चीन के संविधान में 106 अनुच्छेद हैं।

संविधान की व्यापकता को उचित बताते हुए डॉ. एन.पी.शर्मा ने कहा है, "भारत की जटिल परिस्थितियों तथा भारतीय जनता की राजनीतिक अनुभवहीनता को ध्यान में रखते हुए भारतीय संविधान के निर्माताओं ने यह उचित समझा कि सब बातें स्पष्ट रूप से संविधान में लिख दी जायँ और कोई खतरा न उठाया जाय।"

2. सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य– संविधान की प्रस्तावना में भारत को सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य घोषित किया गया है। सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न का तात्पर्य यह है कि भारत अपनी गृह व वैदेशिक नीति में पूर्ण स्वतन्त्र है। वह किसी बाह्य शक्ति के अधीन नहीं है। लोकतंत्रात्मक का अर्थ यह है कि राज्य की सर्वोच्च सत्ता जनता में निहित है। जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि ही कानूनों का निर्माण तथा प्रशासन करते हैं। दूसरे शब्दों में, यहाँ का शासन जनता का, जनता के लिए तथा जनता द्वारा संचालित है। गणराज्य का तात्पर्य यह है कि हमारे देश का प्रधान वंशानुगत न होकर एक निश्चित अवधि के लिए चुना हुआ राष्ट्रपति होता है।

3. संघात्मक शासन की स्थापना– संविधान ने देश में संघात्मक शासन की स्थापना की है जिसके अनुसार यहाँ पर दो समान सत्ताएँ– केन्द्र और उसी इकाइयाँ (राज्य) हैं। इनके बीच में अधिकारों का स्पष्ट विभाजन है तथा एक स्वतन्त्र सर्वोच्च न्यायालय है और संविधान को सर्वोच्चता प्रदान की गई है। जी.एन. जोशी ने लिखा है, "भारतीय-संघ में संघीय शासन की सभी विशेषताएँ हैं। एक लिखित संविधान, दोहरी शासन-व्यवस्था, संघ और राज्य सरकारों के बीच अधिकारों का विभाजन तथा एक सर्वोच्च न्यायालय।"

4. पंथ-निरपेक्ष राज्य की स्थापना– संविधान ने पंथ-निरपेक्ष राज्य की स्थापना की है। पंथ-निरपेक्ष राज्य का तात्पर्य "ऐसे राज्य से होता है, जहाँ राज्य का कोई धर्म नहीं होता और वह धार्मिक विश्वास के प्रश्नों में तटस्थ रहता है।" संविधान के अनुच्छेद 25 में कहा गया है, "सार्वजनिक व्यवस्था, सदाचार व स्वास्थ्य के अधीन रहते हुए सब नागरिकों को अन्तःकरण की तथा धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण व प्रचार करने की पूर्ण स्वतंत्रता होगी।" दूसरे शब्दों

में, भारतीय संविधान ने ऐसे पंथ-निरपेक्ष राज्य की स्थापना की है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की उनकी इच्छानुसार धर्माचरण का अधिकार दिया गया है तथा राज्य की ओर से किसी भी विशेष धर्म को राजकीय धर्म का पद नहीं दिया गया है। संक्षेप में, राज्य की दृष्टि में सभी धर्म समान माने गये हैं।

5. संसदीय शासन-प्रणाली की स्थापना– भारत में इंग्लैण्ड के समान संसदीय शासन की स्थापना की गई है। संसदीय शासन-प्रणाली में राज्य का प्रधान अधिकारी (राजा अथवा राष्ट्रपति) नाम-मात्र अथवा संवैधानिक शासक होता है। वास्तविक कार्यकारिणी शक्तियाँ मन्त्रिमण्डल में निहित होती हैं तथा मन्त्रिमण्डल अपने शासन सम्बन्धी कार्यों और नीतियों के लिए संसद के निचले सदन (लोक सभा) के प्रति उत्तरदायी होता है।

6. अपरिवर्तनशीलता तथा परिवर्तनशीलता का अपूर्व समन्वय– किसी भी संविधान का अपरिवर्तनशील या परिवर्तनशील होना उसकी संशोधन-प्रणाली पर निर्भर करता है। यदि संविधान के संशोधन की कोई विशेष प्रक्रिया है तो वैसे संविधान को अपरिवर्तनशील संविधान कहते हैं और यदि संविधान के संशोधन की प्रणाली आसान है तो उसको परिवर्तनशील संविधान कहते हैं। भारतीय संविधान में संशोधन के लिए दोनों प्रकार की प्रक्रियाओं को अपनाया गया है। इस प्रकार भारतीय संविधान में अपरिवर्तनशील तथा परिवर्तनशील का अपूर्व समन्वय है।

7. सुदृढ़ केन्द्रयुक्त संघ राज्य की स्थापना– संघात्मक संविधान होते हुए भी भारतीय संविधान ने सुदृढ़ केन्द्रयुक्त संघ राज्य की स्थापना की है। दूसरे शब्दों में, संविधान ने भारतीय संघ को 'एकात्मक' संघ बनाया है जिसमें केन्द्र शक्तिशाली रहता है। संविधान ने समवर्ती सूची के विषयों पर केन्द्र की विधि को प्राथमिकता प्रदान की है। इस प्रकार राज्यों की अपेक्षा केन्द्र को अधिक अधिकार प्रदान करके शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना की गई है। अमर नन्दी के ठीक ही लिखा है, "संविधान प्रबल केन्द्र की स्थापना करता है और कानून बनाने की अवशिष्ट शक्ति केन्द्रीय व्यवस्थापिका को प्रदान करता है जिसे संविधान में संसद के नाम से पुकारा गया है।"

8. मूल अधिकारों की व्यवस्था– भारतीय संविधान के तीसरे भाग में नागरिकों के लिए निम्नलिखित मूल अधिकारों की व्यवस्था की गई है, जिनका नागरिकों के जीवन में बड़ा महत्व है :

(1) समता का अधिकार,
(2) स्वतन्त्रता का अधिकार,
(3) शोषण के विरुद्ध अधिकार,
(4) धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार,
(5) सांस्कृतिक और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार,
(6) संवैधानिक उपचारों का अधिकार।

संविधान में यह भी कहा गया है कि राज्य कोई ऐसा कानून नहीं बना सकता जिससे किसी भी मूल अधिकार का पूर्णतः या अंशतः हनन होता हो। यदि राज्य ऐसा कोई कानून बनाता है तो वह कानून रद्द समझा जायगा। इस प्रकार संविधान में इस सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है कि 'व्यक्ति की प्रतिष्ठा व्यक्ति के रूप में की जानी चाहिए।'

9. स्वतन्त्र न्यायपालिका की व्यवस्था– अमेरिका की भाँति भारत में भी संविधान ने स्वतन्त्र न्यायपालिका की व्यवस्था की है। न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होती है। न्यायाधीशों के कार्यकाल में उनके वेतन, सुविधाओं आदि में (आपातकालीन स्थिति को छोड़कर) किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। वे व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित विधियों को अवैध घोषित कर सकते हैं। उन्हें न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार भी प्राप्त होता है।

10. नीति-निदेशक तत्वों का उल्लेख– आयरलैण्ड के संविधान की भाँति हमारे

संविधान के चतुर्थ अध्याय में राज्य के नीति निदेशक तत्वों का उल्लेख किया गया है। ये तत्व नागरिकों के आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक उन्नति की दिशा इंगित करते हैं। यद्यपि इन तत्वों के पीछे न्यायालय की कोई शक्ति नहीं है, तथापि ये देश के शासन के मूलभूत आधार हैं। संविधान के अनुच्छेद 37 में स्पष्ट कहा गया है, "नीति निदेशक तत्वों को किसी न्यायालय द्वारा बाध्यता नहीं दी जा सकेगी, फिर भी वे देश के शासन के मूलभूत आधार होंगे और उनका पालन करना राज्य का नैतिक कर्तव्य होगा।" वास्तव में इन तत्वों का मुख्य उद्देश्य भारत में आदर्श लोकतन्त्र और कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है।

कुछ प्रमुख नीति निदेशक तत्व इस प्रकार हैं :

(i) समस्त स्त्री–पुरुष नागरिकों को जीवन–यापन के लिए पर्याप्त मात्रा में साधन सुलभ कराना।
(ii) सब व्यक्तियों को समान कार्य के लिए समान वेतन प्रदान करना।
(iii) ग्रामीण क्षेत्रों में कुटीर उद्योग–धन्धों को व्यक्तिगत या सरकारी आधार पर प्रोत्साहन देना।
(iv) राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों, स्थानों और वस्तुओं की रक्षा करना।
(v) ग्राम–पंचायतों की स्थापना और उन्हें स्वशासन की प्राथमिक इकाई बनाना।
(vi) न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक् रखने का प्रयत्न करना।
(vii) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की वृद्धि के लिए प्रयत्न करना आदि।

11. लिखित तथा स्वनिर्मित संविधान– भारत का संविधान लिखित तथा स्वनिर्मित है। संघात्मक संविधान लिखित होता है, क्योंकि उसमें केन्द्र तथा उसकी इकाइयों के अधिकारों के विभाजन का स्पष्ट वर्णन होता है। चूंकि हमारा संविधान संघात्मक है, अतएव उसमें सभी बातों का लिखित स्पष्ट वर्णन है। निर्मित संविधान किसी निश्चित समय में बनाये जाते हैं। चूँकि भारत का संविधान एक निश्चित समय में भारतीयों द्वारा बनाया गया है, अतएव यह एक स्वनिर्मित संविधान है। संविधान की प्रस्तावना में यह स्पष्ट कहा गया है, "हम भारत के लोग . . . . इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।" इस प्रकार भारत का संविधान लिखित तथा जनता का, जनता के लिए तथा जनता द्वारा स्वनिर्मित संविधान है।

12. वयस्क मताधिकार– संविधान ने भारत के ऐसे बालिग स्त्री या पुरुष नागरिकों (पागल, दिवालिया, अपराधियों आदि को छोड़कर) मतदान का अधिकार प्रदान किया है, जिसकी उम्र 18 वर्ष की हो चुकी हो, चाहे वह किसी भी धर्म, समुदाय या वर्ग का हो।

13. एकल नागरिकता– भारतीय संविधान ने इकहरी अथवा एक नागरिकता की व्यवस्था की है अर्थात् समस्त भारत के लिए 'एकल नागरिकता' रखी गई है। यहाँ सभी नागरिक भारत के नागरिक हैं, अलग–अलग राज्यों के नहीं। उत्तर प्रदेश में रहने वाला व्यक्ति भारत का नागरिक है न कि उत्तर प्रदेश और भारत दोनों का। ऐसी व्यवस्था राष्ट्र की 'भावात्मक एकता' को सुदृढ़ता प्रदान करने के लिए की गई है।

14. साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्रों की समाप्ति– साम्प्रदायिकता का अन्त करने के लिए संविधान ने साम्प्रदायिक निर्वाचन–पद्धति को हटाकर सामूहिक निर्वाचन पद्धति को स्वीकार किया है। स्वतन्त्रता–प्राप्ति के पूर्व हिन्दू और मुसलमान अपने अलग–अलग प्रतिनिधि चुनते थे, जिसके फलस्वरूप दोनों जातियों में कटुता बनी रहती थी, परन्तु अब सामूहिक निर्वाचन–पद्धति में सब मिलकर एक साथ अपने प्रतिनिधि चुनते हैं। प्रो. श्रीनिवास के शब्दों में, "पूर्ण वयस्क मताधिकार की स्थापना और साम्प्रदायिक निर्वाचन व्यवस्था की समाप्ति के कारण संविधान को प्रगतिशील कहा जा सकता है। सत्य यह है कि ऊपर लिखी गई दोनों बातें ही संविधान की महान् और क्रान्तिकारी विशेषताएँ हैं।"

15. अल्पसंख्यकों तथा पिछड़े वर्ग के लोगों के अधिकारों की रक्षा– संविधान में

अल्पसंख्यकों के धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक अधिकारों को रक्षा प्रदान की गई है। पिछड़े वर्ग तथा जन-जातियों के लिए सरकारी नौकरियों एवं शिक्षा संस्थाओं में शिक्षा के लिए स्थान सुरक्षित हैं। व्यवस्थापिका-सभा में भी उनके लिए कुछ स्थान 25 जनवरी, 2010 ई. तक सुरक्षित हैं।

16. आपातिक उपबन्ध- संविधान की एक बड़ी विशेषता आपातिक उपबन्धों की व्यवस्था है, जिसके अनुसार संघात्मक शासन एकात्मक हो जाता है। राष्ट्रपति निम्नलिखित परिस्थितियों में आपातिक उद्घोषणा कर सकता है :

(i) युद्ध, बाह्य आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह होने पर (अनुच्छेद 352)
(ii) राज्यों में संवैधानिक व्यवस्था के विफल हो जाने पर (अनुच्छेद 356) तथा
(iii) वित्तीय संकट के उत्पन्न होने पर (अनुच्छेद 360)

17. लोक-कल्याणी राज्य की स्थापना- भारतीय संविधान की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसके अन्तर्गत एक लोक-कल्याणकारी राज्य की स्थापना का लक्ष्य रखा गया है जिसमें सभी नागरिकों को आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक न्याय मिलेगा, उन्हें विचार, भाषण, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की पूरी स्वतन्त्रता होगी, सभी को समान अवसर प्राप्त होंगे, किसी के श्रम अथवा स्वास्थ्य का दुरुपयोग न होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि संविधान भारत में एक 'कल्याणकारी राज्य' अथवा 'समाज-सेवक राज्य' की स्थापना करना चाहता है।

18. संसद की सर्वोच्चता- भारतीय संविधान में 'न्यायिक सर्वोच्चता' (Judicial Supermacy) के स्थान पर 'संसदीय सर्वोच्चता' (Parliamentary Supermacy) की स्थापना की गई है। गोलकनाथ बनाब पंजाब राज्य मामले में उच्चतम न्यायालय तथा संसद के मध्य विवाद उत्पन्न हो गया था। उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि संसद को मूल अधिकारों में संशोधन करने का अधिकार नहीं है। परन्तु संसद ने दो विधेयक पारित करके मूल अधिकारों में संशोधन करने का भी अधिकार प्राप्त कर लिया। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि संविधान में 'संसदीय सर्वोच्चता' की स्थापना की गई है।

19. एक राष्ट्रभाषा की व्यवस्था- संविधान ने बहुभाषाभाषी विशाल भारत के लिए एक राष्ट्रभाषा तथा एक लिपि का सिद्धान्त स्वीकार किया है। संविधान ने 'देव-नागरी' लिपि में हिन्दी भाषा को राजभाषा का पद प्रदान किया है। यह व्यवस्था राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने के लिए की गई है।

20. अस्पृश्यता का अन्त- अस्पृश्यता भारत की राष्ट्रीय एकता के लिए अभिशाप रही है, इसलिए संविधान के अनुच्छेद 17 के द्वारा अस्पृश्यता का अन्त कर दिया गया है। उसमें स्पष्ट उल्लेख है, "अस्पृश्यता का अन्त किया जाता है। यदि कोई मनुष्य किसी को अछूत समझ कर उसके किसी कार्य में बाधा डालेगा तो उसे सरकार द्वारा दण्डित किया जायगा।" राज्य स्वयं भी केवल जाति, वंश या वर्ग के आधार पर नागरिक में कोई भेद-भाव नहीं करेगा।

21. ग्राम-पंचायतों की स्थापना- संविधान में ग्राम-पंचायतों की स्थापना की व्यवस्था की गई है। ग्राम-पंचायतें स्थानीय स्व-शासन की महत्वपूर्ण आधारशिला हैं।

संविधान में उपर्युक्त विशेषताओं से स्पष्ट है कि भारतीय जनतन्त्र की सत्ता जनता के हाथों में निहित है। वास्तव में भारतीय संविधान एक अनूठा व्यावहारिक प्रलेख है।

संविधान में संशोधन

"यद्यपि हम अपने संविधान को इतना कठोर और स्थायी बनाना चाहते हैं जितना कि संभव हो सके, किन्तु फिर भी संविधान सदैव के लिए स्थायी वस्तु नहीं बन सकता . . . . किसी भी स्थिति में हम संविधान को इतना कठोर नहीं बनाना चाहते जो यह बदलती हुई स्थितियों के अनुरूप बदल न सके।"

–पं. जवाहर लाल नेहरू

"संविधान जनता की इच्छाओं का दर्पण है और उसमें संशोधन जनता की आशाओं और आकांक्षाओं के अनुरूप ही होना चाहिए।"

–श्रीमती इन्दिरा गाँधी

भारतीय संविधान में संशोधन के लिए जिन तीन प्रणालियों को अपनाया गया है, वे निम्नलिखित हैं :

1. संसद के साधारण बहुमत द्वारा संशोधन की प्रक्रिया– संविधान के कुछ अनुच्छेदों का संशोधन संसद के हर सदन के साधारण बहुमत द्वारा किया जा सकता है। जिस प्रकार एक विधि के स्वीकार हो जाने के लिए साधारण बहुमत ही पर्याप्त होता है उसी प्रकार इन अनुच्छेदों में साधारण बहुमत से संशोधन किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, संसद के हर सदन के साधारण बहुमत द्वारा पारित होने तथा राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल जाने पर किसी विधि द्वारा संविधान के इन अनुच्छेदों में संशोधन किया जा सकता है। नये राज्यों का निर्माण, राज्यों का पुनर्गठन, राज्यों के विधान-मण्डलों के द्वितीय सदन का निर्माण और समाप्ति, भारतीय नागरिकता, अनुसूचित जातियों और क्षेत्रों से सम्बन्धित व्यवस्थाएँ आदि विषय ऐसे ही अनुच्छेदों के अन्तर्गत आते हैं जिनमें संसद के साधारण बहुमत से संशोधन किया जा सकता है।

2. संसद के विशिष्ट बहुमत द्वारा संशोधन की प्रक्रिया– संविधान के कुछ अनुच्छेद ऐसे हैं जिनमें संसद के विशिष्ट बहुमत द्वारा ही संशोधन किया जा सकता है। संशोधन सम्बन्धी प्रस्ताव संसद के किसी भी सदन में प्रस्तावित किया जा सकता है। यदि यह प्रस्ताव प्रत्येक सदन में कुल सदस्यों की संख्या के बहुमत तथा उपस्थित तथा मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत द्वारा पारित हो जाता है और उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल जाती है तो संविधान उस प्रस्ताव के अनुसार संशोधित समझा जायगा। मौलिक अधिकार और राज्य की नीति के निदेशक तत्वों से सम्बन्धित अनुच्छेदों तथा अन्य अधिकांश अनुच्छेदों में संशोधन इसी प्रक्रिया से हो सकता है।

3. संसद के विशिष्ट और राज्य विधान-मण्डलों की स्वीकृति से संशोधन की प्रक्रिया– संविधान के कुछ अनुच्छेद ऐसे हैं जिनमें संशोधन के लिए संसद के विशिष्ट बहुमत तथा उपस्थित और मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से विधेयक पारित होना चाहिए तथा राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए जाने से पहले उसे राज्यों के कुल विधान-मण्डलों में से कम-से-कम आधे विधान-मण्डलों का समर्थन प्राप्त होना आवश्यक है। संविधान के निम्नलिखित उपबन्ध इस प्रक्रिया द्वारा संशोधित होते हैं :

(i) राष्ट्रपति का निर्वाचन (अनुच्छेद 54)।
(ii) राष्ट्रपति के निर्वाचन की पद्धति (अनुच्छेद 55)।
(iii) संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार (अनुच्छेद 73)।

(iv) राज्यों की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार (अनुच्छेद 162)।
(v) केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों के लिए उच्च न्यायालय (अनुच्छेद 241)।
(vi) संघीय न्यायपालिका (भाग 5 का चौथा अध्याय)।
(vii) राज्यों में उच्च न्यायालय (भाग 6 का पाँचवाँ अध्याय)।
(viii) संघ तथा राज्यों में विधायी सम्बन्ध (भाग 11 का पहला अध्याय)
(ix) सातवीं अनुसूची में से कोई भी सूची।
(x) संसद में राज्यों का प्रतिनिधित्व।
(xi) संविधान में संशोधन से सम्बन्धित उपबंध जिनका उल्लेख अनुच्छेद 368 में किया गया है।

भारतीय संविधान में संशोधन के सम्बन्ध में अपनाई गई उपर्युक्त प्रक्रियाओं से पूर्णतः स्पष्ट है कि भारतीय संविधान में नमनीयता व कठोरता के तत्वों का अद्भुत सम्मिश्रण है।

संविधान में किये गये संशोधन

अब तक भारतीय संविधान में जितने संशोधन हो चुके हैं, उनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है :

पहला संशोधन (1951)– इसका मुख्य उद्देश्य उन कठिनाइयों को दूर करना था जो कि कुछ मौलिक अधिकारों, विशेष रूप से सम्पत्ति के अधिकार, कानून के सामने समानता के अधिकार तथा भाषण की स्वतन्त्रता की क्रियान्विति के मार्ग में सामने आई थीं। इस संशोघन अधिनियम द्वारा अनुच्छेद 15,19,31,85,87,174,176,372 और 376 में संशोधन किया गया और संविधान में 9वीं अनुसूची और बढ़ा दी गई।

इस संशोधन द्वारा यह निश्चित किया गया कि जमींदारी और भागीदारी के अन्त से सम्बन्धित विधेयक मुआवजे की व्यवस्था के न होते हुए भी वैध समझे जायेंगे। इसमें यह भी घोषित कर दिया गया है कि यदि राज्य भूमि या अन्य जायदाद सम्बन्धी कोई कानून बनाता है और यदि उससे सम्पत्ति के उपर्युक्त अधिकार का पूर्ण या आंशिक खण्डन होता है, तब भी वह विधेयक मान्य समझा जायेगा। इस संवैधानिक संशोधन द्वारा विचार और भाषण की स्वतन्त्रता पर कुछ और प्रतिबन्ध लगाये गये।

दूसरा संशोधन (1952)– इस संशोधन द्वारा लोकसभा में प्रतिनिधित्व की व्यवस्था में परिवर्तन किया गया।

तीसरा संशोधन (1954)– इस संशोधन द्वारा राज्य सूची के कुछ विषयों- बाद्य सामग्री, पशुओं का चारा, रूई तथा पटसन आदि को समवर्ती सूची में कर दिया गया, जिसमें केन्द्रीय सरकार आवश्यकता के समय इन पर नियन्त्रण रख सके।

चौथा संशोधन (1955)– संविधान में की गई सम्पत्ति के मौलिक अधिकार की व्यवस्था सामाजिक प्रगति की दिशा में आगे बढ़ने में बाधक सिद्ध हो रही थी। इस संशोधन द्वारा यह निश्चित किया गया कि केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार लोक-कल्याण के लिए किसी की सम्पत्ति को क्षतिपूर्ति देकर ले सकेगी और क्षतिपूर्ति की मात्रा पर विचार करने का अधिकार न्यायालयों को न होगा।

पाँचवाँ संशोधन (1955)– इस संशोधन द्वारा राष्ट्रपति को यह अधिकार दे दिया गया कि वह एक समय निश्चित कर दे, जिनके भीतर राज्य सरकार अपने विचार लिखित रूप में केन्द्रीय सरकार के पास भेज दे। मूल विधान में समय निश्चित नहीं किया गया था।

छठवाँ संशोधन (1956)– इसके द्वारा अन्तर्राज्य व्यापार तथा उद्योग के क्रय-विक्रय कर को संघीय सूची में शामिल कर दिया गया।

सातवाँ संशोधन (1956)– इसके द्वारा अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये।

संशोधन द्वारा राज्यों का अ, ब, स और द वर्गों में विभाजन समाप्त कर उन्हें 14 राज्यों और 6 केन्द्र-शासित क्षेत्रों में विभक्त कर दिया गया। इनके द्वारा लोकसभा की अधिकतम सदस्य संख्या 520 निश्चित की गई।

आठवाँ संशोधन (1960)– इसके द्वारा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति वर्गों व आंग्ल भारतीय समुदाय के लिए विशेष प्रतिनिधित्व सम्बन्धी व्यवस्था को, जो 1960 तक के लिए थी, 10 वर्ष आगे अर्थात् 1970 तक के लिए बढ़ा दिया गया।

नवाँ संशोधन (1960)– सितम्बर 1958 में हुए नेहरू-नून समझौते के अनुसार भारत और पाकिस्तान के बीच जो प्रदेशों की अदला-बदली होनी थी, उसे प्रभावित रूप देने के लिए यह संशोधन किया गया।

दसवाँ संशोधन (1961)– इस संशोधन द्वारा पुर्तगालियों की अधीनता से मुक्त हुए क्षेत्रों-दादर और नगर हवेली को भारतीय संघ में शामिल किया गया।

ग्यारहवाँ संशोधन (1961)– इसके अनुसार उपराष्ट्रपति के चुनाव हेतु संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाने की आवश्यकता नहीं रही।

बारहवाँ संशोधन (1962)– इसके द्वारा गोवा, दमन और दीव का 20 दिसम्बर, 1961 से भारतीय संघ में एकीकरण कर दिया गया।

तेरहवाँ संशोधन (1962)– इसके द्वारा भारतीय संघ के अन्तर्गत नागालैण्ड नामक 16 वें राज्य की स्थापना की व्यवस्था की गई और 1 दिसम्बर, 1963 को इस राज्य का उद्घाटन हुआ।

चौदहवाँ संशोधन (1962)– इसके द्वारा भारतीय संघ के कुछ केन्द्र-शासित क्षेत्रों– हिमाचल प्रदेश, गोआ, दमन और दीव, पाण्डिचेरी और मणिपुर– के लिए विधान सभाओं की व्यवस्था की गई।

पन्द्रहवाँ संशोधन (1963)– इसके द्वारा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का कार्यकाल 60 वर्ष की आयु के स्थान पर 62 वर्ष की आयु कर दिया गया।

सोलहवाँ संशोधन (1963)– भारत की राजनीतिक एकता को बनाये रखने की दृष्टि से इस संशोधन द्वारा राज्यों को यह शक्ति प्रदान की गई कि वे भारत की प्रभुता तथा अखण्डता के हित में मौलिक अधिकारों के प्रयोग पर उचित प्रतिबन्ध लगाते हुए आवश्यक कानून बना सकते हैं। यह भी निश्चित किया गया कि संसद, राज्यों के विधान मण्डलों के उम्मीदवारों तथा सर्वोच्च व उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को भारत की प्रभुता व अखण्डता बनाये रखने की शपथ लेनी होगी।

सत्रहवाँ संशोधन (1964)– इसके द्वारा सरकार को बिना प्रतिकर दिये ऐसी भूमि का अर्जन करने से रोक दिया गया जिस पर कोई व्यक्ति स्वयं खेती कर रहा है और जो उस समय भूमि रखने की लागू सीमा के भीतर है।

अठारहवाँ संशोधन (1966)– इसके द्वारा पंजाब का भाषायी आधार पर पुनर्गठन करते हुए पंजाब व हरियाणा दो राज्यों का निर्माण किया गया और 1 नवम्बर, 1966 से चण्डीगढ़ के संघीय क्षेत्र का निर्माण किया गया।

उन्नीसवाँ संशोधन (1966)– इस संशोधन द्वारा 'चुनाव सम्बन्धी विवादों' का निर्णय करने के लिए स्थापित किये जाने वाले 'चुनाव अधिकरणों' (Election Tribunals) का अन्त कर दिया गया और अब चुनाव याचिकाओं की सुनवाई सीधे उच्च न्यायालय में होने लगी। यह व्यवस्था की गई कि उच्च न्यायालयों के निर्णय की अपील सर्वोच्च न्यायालय में ही की जा सकती है।

बीसवाँ संशोधन (1966)– 'चन्द्रमोहन बनाम राज्य' नामक मुकदमे में सर्वोच्च

न्यायालय ने विधान की 23वीं धारा के अन्तर्गत नियुक्त किये कुछ जिला न्यायाधीशों की नियुक्तियों को अवैध घोषित कर दिया था। इन्हीं नियुक्तियों को वैध बनाने के लिए संसद द्वारा यह संशोधन किया गया।

इक्कीसवाँ संशोधन (1966)– इस संशोधन द्वारा संविधान की आठवीं अनुसूची में सिन्धी भाषा को भी भारतीय भाषाओं के अन्तर्गत रख दिया गया।

बाईसवाँ संशोधन (1969)– इस संशोधन द्वारा संसद को यह अधिकार दे दिया गया है कि वह असम राज्य के अन्तर्गत कुछ कबायली क्षेत्रों को मिलाकर नये स्वशासित राज्य की स्थापना कर उसके लिए व्यवस्थापिका तथा मन्त्रिपरिषद् के निर्माण की व्यवस्था करे। इस नियम के अनुसार 'मेघालय' राज्य की स्थापना हुई।

तेइसवाँ संशोधन (1969)–इस संशोधन द्वारा निम्नलिखित व्यवस्थाएँ की गयीं : (1) नागालैण्ड में अनुसूचित जातियों के लिए वही व्यवस्था की गई, जो असम राज्य के लिए की गई थी। (2) राज्यपाल को विधानसभा में केवल एक आंग्ल भारतीय को मनोनीत करने का अधिकार होगा। (3) अनुसूचित जातियों के लिए संरक्षण की अवधि संविधान लागू होने से 30 वर्ष तक के लिए अर्थात् 1980 तक के लिए कर दी गई।

चौबीसवाँ संशोधन (1971)– फरवरी, 1967 में सर्वोच्च न्यायालय ने गोलकनाथ विवाद में जो निर्णय दिया था, उससे संसद की संविधान संशोधन की शक्ति सीमित हो गई थी और संसद मौलिक अधिकारों को छीनने या कम करने वाला कोई विधेयक पास नहीं कर सकती थी। 1971 में चौबीसवें संशोधन में यह कहा गया कि संसद को यह अधिकार होगा कि संविधान के किसी भी उपबन्ध में जिसमें मौलिक अधिकार सम्मिलित हैं, संशोधन कर सके।

पच्चीसवाँ संशोधन (1971)– 25वाँ संवैधानिक संशोधन सम्पत्ति के अधिकार से सम्बन्धित अनुच्छेद 31 को संशोधित कर तथा अनुच्छेद 31–ग के बाद कुछ शब्दों को जोड़कर इनकी व्यवस्था करता है कि सम्पत्ति के सार्वजनिक दृष्टि से अर्जन और उसके मुआवजे की राशि को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।

छब्बीसवाँ संशोधन (1971)– इस संवैधानिक संशोधन द्वारा भूतपूर्व देशी रियासतों के शासकों का प्रिवीपर्स समाप्त कर दिया गया।

सत्ताइसवाँ संशोधन (1971)– भारतीय संसद द्वारा उत्तरी–पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम पारित कर संविधान में 27 वाँ संशोधन किया गया। इस संशोधन द्वारा उत्तरी–पूर्वी क्षेत्र के पाँच राज्यों– असम, नागालैण्ड, मेघालय, मणिपुर और त्रिपुरा–तथा दो केन्द्र शासित क्षेत्रों– मिजोरम प्रदेश और अरुणाचल प्रदेश–का गठन किया गया। इसके साथ ही इस क्षेत्र में 5 राज्यों 2 केन्द्रशासित क्षेत्रों के प्रशासन के समन्वय और सहयोग के लिए पूर्वोत्तर सीमान्त परिषद की स्थापना की गई।

अट्ठाईसवाँ संशोधन (1972)– इस संशोधन द्वारा संविधान की धारा 312 (अ) जोड़ दी गई है और संसद को यह अधिकार दे दिया गया है कि वह परतन्त्रता काल की आई.सी.एस. सेवाओं के शर्तों में संशोधन कर सकती है। इस प्रकार आई.सी.एस. के विशेषाधिकारों को समाप्त करने का मार्ग प्रशस्त किया गया।

उन्तीसवाँ संशोधन (1972)– इस संशोधन द्वारा 1961 और 1971 में जो केरल भूमि सुधार अधिनियम पारित किये गये थे उन्हें संविधान की 9वीं अनुसूची में सम्मिलित कर दिया गया और इस प्रकार इन अधिनियमों के विरुद्ध केरल में उच्च न्यायालय और भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जो निर्णय दिये गये थे, वे अब अवैध हो गये हैं।

तीसवाँ संशोधन (1972)– इस संशोधन द्वारा अनुच्छेद 133 को संशोधित कर

सर्वोच्च न्यायालय में दीवानी विवादों की अपील के सम्बन्ध में 20 हजार रुपये की धनराशि की सीमा हटाते हुए व्यवस्था की गई कि ऐसे सभी दीवानी विवादों की अपील सर्वोच्च न्यायालय में की जा सकेगी, जिसमें उच्च न्यायालय प्रमाणित कर दे कि कानून की व्याख्या से सम्बन्धित सारपूर्ण प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है।

इकत्तीसवाँ संवैधानिक संशोधन (1974)– इसके द्वारा लोक सभा की अधिकतम सदस्य संख्या 547 निश्चित की गई है। इन 547 सदस्यों में से 545 निर्वाचित होंगे व 2 राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत। 545 निर्वाचित सदस्यों में 525 भारतीय संघ के विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधि होंगे और 20 केन्द्र शासित क्षेत्रों के प्रतिनिधि। आंग्ल भारतीय वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में राष्ट्रपति के द्वारा 2 सदस्य मनोनीत किये जा सकते हैं।

बत्तीसवाँ संवैधानिक संशोधन (1974)– 1972-73 में भारतीय संघ के एक राज्य आन्ध्र प्रदेश के दो भागों (आन्ध्र और तेलंगाना) के बीच विवाद की जो स्थिति उत्पन्न हो गई, उसे दूर कर आन्ध्र प्रदेश की एकता को बनाये रखने के लिए '6-सूत्री प्रस्ताव' रखा गया। इस 6-सूत्री प्रस्ताव को कार्यरूप में परिणत करने के लिए संविधान में 32वाँ संशोधन किया गया।

तैंतीसवाँ संवैधानिक संशोधन (1974)– इस संवैधानिक संशोधन द्वारा संविधान के दो अनुच्छेदों (अनुच्छेद 101 (3) और 190 (3)) में संशोधन करते हुए व्यवस्था की गई है कि लोकसभा के स्पीकर या विधानसभा के अध्यक्ष द्वारा स्वयं से सम्बन्धित सदन के सदस्य का त्याग-पत्र स्वीकार नहीं किया जायगा, यदि उनके द्वारा की गई जाँच के आधार पर उसे यह विश्वास हो जाए कि त्याग-पत्र वास्तविक या स्वैच्छिक नहीं है। इसके पूर्व यह व्यवस्था थी कि सदस्य अपने ही हस्तलेख से स्पीकर या अध्यक्ष को सम्बोधित करते हुए त्याग-पत्र लिखता और त्याग-पत्र स्वीकृत हो जाता। संविधान में यह 34वाँ संशोधन गुजरात और बिहार राज्य के जन-आन्दोलन में विधानसभा सदस्यों से जनता द्वारा दबाव के आधार पर जो त्याग-पत्र लिये गये, उन्हें दृष्टि में रखते हुए किया गया।

चौंतीसवाँ संवैधानिक संशोधन (1974)– इस संवैधानिक संशोधन द्वारा विभिन्न राज्यों के विधानमण्डलों द्वारा पारित 17 भूमि सुधार कानूनों को संविधान की 9वीं अनुसूची में स्थान दे दिया गया है, जिससे इन कानूनों की वैधता के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं रहे।

पैंतीसवाँ संवैधानिक संशोधन (1974)– इस संवैधानिक संशोधन द्वारा संविधान के संघात्मक स्वरूप में मूलभूत परिवर्तन कर सिक्किम को भारतीय संघ के सहराज्य का दर्जा प्रदान किया गया था।

छत्तीसवाँ संवैधानिक संशोधन (1975)– 35वें संवैधानिक संशोधन द्वारा जो व्यवस्था की गई थी, उसे सिक्किम की जनता की माँग पर 36वें संवैधानिक संशोधन द्वारा परिवर्तित किया गया और अब सिक्किम को भारतीय संघ में संघ के 22वें राज्य के रूप में प्रवेश प्रदान किया गया।

सैंतीसवाँ संवैधानिक संशोधन (1975)– इस संवैधानिक संशोधन द्वारा अरुणाचल प्रदेश में गोआ, पाण्डिचेरी व मिजोरम प्रदेश के समान ही लोकप्रिय शासन की व्यवस्था की गई।

अड़तीसवाँ संवैधानिक संशोधन (अगस्त 1975)[1] – इस संशोधन के द्वारा 1951 ई. के जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम (1974 और 1975 ई. में किए संशोधनों सहित) और अन्य चुनाव कानूनों, तस्कर विरोधी कानून तथा राज्य के 37 अन्य कानूनों को नयी सूची में शामिल

1. 38वें संवैधानिक संशोधन को सम्पूर्ण रूप में और 39वें संवैधानिक संशोधन की कुछ बातों को 44वें संवैधानिक संशोधन द्वारा निरस्त कर दिया गया। निरस्त व्यवस्थाओं को उल्लेख नहीं किया गया है।

कर उन्हें संवैधानिक वैधता प्रदान की गई।

उन्तालीसवाँ संशोधन (1975)– इस संशोधन द्वारा राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और लोकसभा के अध्यक्ष के निर्वाचन सम्बन्धी विवादों पर ऐसे अधिकारी द्वारा विचार किया जा सकेगा जो संसदीय कानून द्वारा निर्धारित किया जाए। इस संशोधन द्वारा नवीं अनुसूची के कतिपय केन्द्रीय कानूनों को भी जोड़ा गया।

चालीसवाँ संवैधानिक संशोधन (1976)– इस संवैधानिक संशोधन द्वारा केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों के 54 कानूनों को संविधान की नवीं अनुसूची में स्थान देकर संवैधानिक संरक्षण प्रदान किया गया। ये कानून भूमि सुधार, शहरी भूमि सीमाकरण, आवश्यक वस्तुओं के वितरण, बन्धक, श्रम की समाप्ति और तस्करों तथा विदेशी मुद्रा का घोटाला करने वालों के विरुद्ध कार्यवाही आदि से सम्बन्धित हैं।

इकतालीसवाँ संवैधानिक संशोधन (1976)– इस संवैधानिक संशोधन द्वारा राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की सेवा निवृत्ति की आयु 60 वर्ष के स्थान पर 62 वर्ष कर दी गयी है।

बयालीसवाँ संवैधानिक संशोधन (1976)[1]– यह भारतीय संविधान का व्यापक और सर्वाधिक विवादास्पद संवैधानिक संशोधन है। इस संवैधानिक संशोधन द्वारा संविधान के विभिन्न प्रावधानों में निम्न प्रकार के संशोधन किया गया :

प्रस्तावना– इसके द्वारा संविधान की प्रस्तावना में 'धर्म निरपेक्ष' और 'समाजवादी' शब्द जोड़े गये तथा राज्य की एकता के साथ 'अखण्डता' शब्द जोड़े गये।

मूल कर्त्तव्यों की व्यवस्था– इसके द्वारा अधिकारों के साथ-साथ कर्तव्यों की व्यवस्था करते हुए नागरिकों के 10 मूल कर्तव्य निश्चित किये गये।

निर्देशक तत्वों में कुछ नवीन तत्व जोड़े गये, यथा बच्चों को स्वस्थ रूप में विकास के लिए अवसर और सुविधाएँ प्रदान करना, समाज के कमजोर वर्गों के लिए निःशुल्क कानूनी सहायता की व्यवस्था करना, औद्योगिक संस्थाओं के प्रबन्ध में कर्मचारियों को भागीदार बनाना व देश के पर्यावरण की रक्षा तथा उसमें सुधार।

आपातकालीन उपबन्ध– प्रथम, यह व्यवस्था की गई कि अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत आपातकाल समस्त देश में लागू किया जा सकता है या देश के किसी एक या कुछ भागों के लिए।

केन्द्र-राज्य सम्बन्ध– इसके द्वारा शिक्षा, नाप, तौल, वन और जंगली जानवर तथा पक्षियों की रक्षा– ये विषय राज्य सूची से निकालकर समवर्ती सूची में रख दिये गये।

इसके अतिरिक्त प्रशासन के विभिन्न क्षेत्रों में न्यायाधिकरण की स्थापना की व्यवस्था पर भी न्यायालयों के क्षेत्राधिकार को सीमित करने का प्रयत्न किया गया।

संक्षिप्त समीक्षा– तत्कालीन शासक वर्ग के द्वारा इस संवैधानिक संशोधन के चाहे जो भी लक्ष्य और उद्देश्य बतलाये गये हों, वस्तुतः इस संवैधानिक संशोधन का सर्वप्रमुख उद्देश्य प्रधानमंत्री और कार्यपालिका के हाथ में सत्ता का अधिकाधिक केन्द्रीयकरण ही था।

छठीं लोकसभा के चुनाव के समय जनता पार्टी के द्वारा जो चुनाव घोषणा-पत्र प्रकाशित किया गया, उसके राजनीतिक कार्यक्रम के अन्तर्गत एक प्रमुख बात 42वें संवैधानिक संशोधन को रद्द करने की कही गई थी। लेकिन सत्ता प्राप्त करने के बाद 42वें संवैधानिक संशोधन के सभी प्रावधानों को रद्द करने के बजाय इस सम्बन्ध में गुणावगुण के आधार पर व्यावहारिक दृष्टिकोण

---

1. 42वें संवैधानिक संशोधन जिन बातों को 43वें और 44वें संवैधानिक संशोधन द्वारा रद्द कर दिया गया या जिसे 'मिनर्वा मिल्स विवाद' (1980) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अवैध घोषित कर दिया गया, उनका उल्लेख नहीं किया गया है।

अपनाया गया। 42वें संवैधानिक संशोधन की अनेक बातों को रद्द करने के लिए 43वें और 44वें संवैधानिक संशोधन किये गये।

43वाँ संवैधानिक संशोधन (1977)– इसके द्वारा 42वें संवैधानिक संशोधन की कुछ आपत्तिजनक व्यवस्थाओं विशेषतया न्यायपालिका से सम्बन्धित व्यवस्थाओं को रद्द कर दिया गया। प्रथम, संसद की यह शक्ति समाप्त कर दी कि वह राष्ट्र विरोधी समुदायों और गतिविधियों को नियन्त्रित-प्रतिबन्धित कर सके। वास्तव में, संसद द्वारा शासक दल के प्रभाव में इस शक्ति का दुरुपयोग किया जा सकता था। 42वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के क्षेत्राधिकार तथा शक्तियों में कमी कर दी गई थी और न्यायिक पुनर्विलोकन की प्रक्रिया को कठिन बना दिया गया था। 43वें संवैधानिक संशोधन द्वारा 42वें संवैधानिक संशोधन की उपर्युक्त व्यवस्थाओं को रद्द कर दिया गया तथा सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों की शक्ति और न्यायिक पुनर्विलोकन के सम्बन्ध में अब पुनः वही व्यवस्था हो गई जो 42वें संवैधानिक संशोधन के पूर्व थी।

44वाँ संवैधानिक संशोधन (1978)– 42वें संवैधानिक संशोधन की अनेक आपत्तिजनक बातों को रद्द करने के लिए विधि मंत्री द्वारा 14 मई, 1978 को 44वाँ संविधान संशोधन विधेयक लोकसभा में प्रस्तावित किया गया। लोकसभा से पारित होने के बाद राज्यसभा द्वारा संशोधन विधेयक को 5 संशोधनों सहित पारित किया गया। ऐसी स्थिति में लोकसभा के सामने दो मार्ग थे– प्रथम, समस्त संशोधन विधेयक को छोड़ दिया जाय या द्वितीय, राज्यसभा द्वारा विधेयक में किये गये संशोधन सहित उसे स्वीकार कर लिया जाय। लोकसभा और शासन द्वारा इस सम्बन्ध में दूसरा मार्ग अपनाया गया और 30 अप्रैल, 1979 को राष्ट्रपति द्वारा हस्ताक्षर किये जाने के बाद इसने 44वें संवैधानिक संशोधन का रूप ले लिया। इस संवैधानिक संशोधन के मुख्य प्रावधान निम्न प्रकार हैं :

मूल अधिकार– सम्पत्ति के मूल अधिकार को रद्द कर दिया गया। अब सम्पत्ति का अधिकार केवल एक कानूनी अधिकार ही है, मूल अधिकार नहीं। इस प्रकार अब भारतीय नागरिकों को 6 मूल अधिकार प्राप्त हैं। इसके साथ ही 19वें अनुच्छेद की छठीं स्वतन्त्रता (सम्पत्ति की स्वतन्त्रता) को समाप्त कर दिया गया।

इस संवैधानिक संशोधन द्वारा ऐसी व्यवस्था कर दी गई है कि 'व्यक्ति के जीवन और स्वतन्त्रता के अधिकार' (अनुच्छेद 21) को शासन के द्वारा आपातकाल में भी स्थगित या सीमित नहीं किया जा सकता।

'निवारक निरोधक कानून' (अनुच्छेद 22) से सम्बन्धित व्यवस्था में ऐसे कुछ परिवर्तन किये गये हैं, जिससे शासन के द्वारा इस कानून के आधार पर नागरिकों की स्वतन्त्रता को अनुचित रूप से और लम्बे समय तक सीमित या समाप्त न किया जा सके।

आपातकालीन प्रावधान– ऐसी व्यवस्था करने का प्रयत्न किया गया है कि संविधान के आपातकालीन प्रावधानों का शासन द्वारा दुरुपयोग न किया जा सके। प्रथम, राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत आपातकाल की घोषणा तभी की जा सकेगी जबकि मन्त्रिमण्डल लिखित रूप में राष्ट्रपति को ऐसा परामर्श दे। द्वितीय, यह आपातकाल युद्ध बाहरी आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह की स्थिति में घोषित किया जा सकेगा। तृतीय, घोषणा के एक माह के अन्दर संसद के विशेष बहुमत से इसकी स्वीकृति आवश्यक होगी। चतुर्थ, लोकसभा में उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के साधारण बहुमत से आपातकाल की घोषणा समाप्त की जा सकती है। आपातकाल पर विचार हेतु लोकसभा की बैठक लोकसभा के 1/10 सदस्यों की माँग पर अनिवार्य रूप से बुलायी जायगी। पंचम, अनुच्छेद 356 के आधार पर राज्य में संवैधानिक

व्यवस्था भंग होने की स्थिति में जो आपातकाल घोषित किया जायगा, उसे एक बार प्रस्ताव पास कर संसद 6 माह के लिए लागू कर सकेगी। संसद के द्वारा एक से अधिक वर्ष की अवधि के लिए राज्य में राष्ट्रपति शासन जारी रखने का प्रस्ताव तभी पारित किया जा सकेगा, जबकि इस प्रकार का प्रस्ताव पारित किये जाने के समय अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत संकटकाल लागू हो और चुनाव आयोग यह प्रमाणित कर दे कि वर्तमान समय में राज्य के चुनाव करवाना सम्भव नहीं है।

38वें संवैधानिक संशोधन को रद्द कर दिया गया जिसमें व्यवस्था की गई थी कि राष्ट्रपति द्वारा 352 वें अनुच्छेद के अन्तर्गत की गई संकटकालीन घोषणा को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकेगी।

राष्ट्रपति– इस संवैधानिक संशोधन द्वारा राष्ट्रपति की स्थिति को 42वें संवैधानिक संशोधन की तुलना में कुछ गौरवपूर्ण बनाने का प्रयत्न किया गया है। इसमें व्यवस्था है कि 'मन्त्रिमण्डल द्वारा राष्ट्रपति को जो भी परामर्श दिया जायेगा राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल को उस पर दोबारा विचार करने के लिए कह सकेंगे, लेकिन पुनर्विचार के बाद मन्त्रिमण्डल राष्ट्रपति को जो भी परामर्श देगा राष्ट्रपति उस परामर्श को अनिवार्यतः स्वीकार करेंगे।

39वें संवैधानिक संशोधन को रद्द करते हुए पुनः व्यवस्था की गई कि राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और लोकसभा अध्यक्ष के चुनाव विवादों की सुनवाई का अधिकार उच्च न्यायालय तथा सर्वोच्च न्यायालय को ही होगा।

लोकसभा और विधानसभाएँ– लोकसभा और राज्यों की विधानसभाओं का कार्यकाल पुनः 5 वर्ष कर दिया गया।

लोकसभा और विधानसभाओं की गणपूर्ति आदि के सम्बन्ध में पुनः वही व्यवस्था कर दी गई, जो 42 वें संवैधानिक संशोधन के पूर्व थी।

इन सबके अतिरिक्त यह व्यवस्था की गई कि अनुच्छेद 368 की प्रक्रिया को अपनाते हुए संसद और राज्य विधानसभाओं द्वारा संविधान में जो भी संशोधन किये जायेंगे, उन्हें उसी प्रकार से सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों में चुनौती दी जा सकेगी, जिस प्रकार से उन्हें 42वें संवैधानिक संशोधन के पूर्व चुनौती दी जा सकती थी।

इस प्रकार 44वें संवैधानिक संशोधन द्वारा भारतीय संविधान को पुनः सामान्य स्थिति में लाने का प्रयत्न किया गया।

45वाँ संवैधानिक संशोधन (1980)– 45वें संवैधानिक संशोधन (जनवरी 1980) द्वारा अनुसूचित जातियाँ तथा जनजाति वर्गों के लिए आरक्षण की अवधि 25 जनवरी, 1990 तक के लिए कर दी गई।

46वाँ संवैधानिक संशोधन (1982)– इस संवैधानिक संशोधन का उद्देश्य बिक्री-कर की वसूली की कमियों को दूर कर बिक्री-कर की वसूली के कार्य को सरल बनाना है। इस संवैधानिक संशोधन द्वारा कुछ वस्तुओं के सम्बन्ध में बिक्री-कर की समान दरें और वसूली की एकसमान व्यवस्था को अपनाया गया है।

47वाँ संवैधानिक संशोधन (1984)– इस संवैधानिक संशोधन द्वारा 14 और भूमि सुधार कानूनों को संविधान की नवीं अनुसूची में शामिल किया गया। इन कानूनों को संविधान की नवीं अनुसूची में इस उद्देश्य से शामिल किया गया है कि न्यायालय में इनकी वैधता को चुनौती नहीं दी जा सके।

48वाँ संवैधानिक संशोधन (1984)– यह संवैधानिक संशोधन सीमित और सामयिक राजनीतिक उद्देश्य से किया गया और केवल पंजाब राज्य तथा उसकी वर्तमान स्थिति के सम्बन्ध में है। पंजाब में 6 अक्टूबर, 1983 को राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था और 44वें

संवैधानिक संशोधन के अनुसार राष्ट्रपति शासन की अधिकतम अवधि एक वर्ष ही हो सकती है, लेकिन पंजाब की स्थिति को देखते हुए एक वर्ष के बाद भी पंजाब में राष्ट्रपति शासन बनाये रखने की आवश्यकता समझी जा रही थी। अतः संविधान के अनुच्छेद 356 की धारा 5 में परिवर्तन कर यह व्यवस्था की गई कि पंजाब में राष्ट्रपति शासन अधिकतम दो वर्ष की अवधि तक अर्थात् जरूरी होने पर 6 अक्टूबर, 1985 तक के लिए लागू रखा जा सकता है।

49वाँ संवैधानिक संशोधन (1984)– इस संवैधानिक संशोधन के आधार पर संविधान की छठीं अनुसूची के अन्तर्गत त्रिपुरा में स्वायत्तशासी जिला परिषद की स्थापना की गई है। इस संवैधानिक संशोधन के पूर्व छठीं अनुसूची असम, मेघालय और मणिपुर पर ही लागू होती थी, अब इसे त्रिपुरा तक विस्तृत कर दिया गया है। इस व्यवस्था से त्रिपुरा की जनजातियों का विकास अधिक अच्छे प्रकार से हो सकेगा।

50वाँ संवैधानिक संशोधन (1984)– इस संवैधानिक संशोधन द्वारा संविधान के अनुच्छेद 33 को संशोधित करते हुए राज्य सम्पत्ति की सुरक्षा का दायित्व निभाने वाले सुरक्षा बलों (Securty Forces), गुप्तचर संगठनों में लगे हुए व्यक्तियों और विभिन्न सैन्य बलों को, दूर संचार के कार्य में लगे हुए व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों को प्रतिबन्धित कर दिया गया है। इन सुरक्षा बलों में अधिक अनुशासन की आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुए ऐसा किया गया है।

51वाँ संवैधानिक संशोधन (1984)– इस संवैधानिक संशोधन द्वारा अनुच्छेद 330 और अनुच्छेद 332 को संशोधित किया गया है। अनुच्छेद 330 को संशोधित करते हुए मेघालय, नागालैण्ड, अरुणाचल प्रदेश और मिजोरम की अनुसूचित जनजातियों को लोकसभा में आरक्षण प्रदान कर दिया गया है। इसी प्रकार अनुच्छेद 332 को संशोधित करते हुए नागालैण्ड और मेघालय की विधान सभाओं में जनजातियों के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है।

52वाँ संवैधानिक संशोधन (1985) (दल-बदल पर कानूनी रोक)– राजनीतिक दल-बदल लम्बे समय से भारतीय राजनीति का एक रोग बना हुआ है और 1967 से ही राजनीति दल-बदल पर कानूनी रोक लगाने की बात सोची जा रही थी। अन्ततोगत्वा आठवीं लोकसभा के चुनावों के बाद संसद के दोनों सदनों में सर्वसम्मति से 52वें संवैधानिक संशोधन विधेयक पारित कर राजनीतिक दल-बदल पर कानूनी रोक लगा दी। मोटे तौर पर इस विधेयक में निम्न प्रावधान किये गये हैं :

1. निम्न परिस्थितियों में संसद-विधानसभा के सदस्य की सदस्यता समाप्त हो जायेगी :
   - (क) यदि स्वेच्छा से अपने दल से त्याग-पत्र दे दे।
   - (ख) यदि वह अपने दल या उसके द्वारा अधिक व्यक्ति की अनुमति के बिना सदन में उसके निर्देश के प्रतिकूल मतदान करे या मतदान में अनुपस्थित रहे। परन्तु यदि पन्द्रह दिन के अन्दर दल उसे इस उल्लंघन के लिए क्षमा कर दे तो उसकी सदस्यता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।
   - (ग) यदि कोई निर्दलीय निर्वाचित सदस्य किसी राजनीतिक दल में सम्मलित हो जाय।
   - (घ) यदि कोई मनोनीत सदस्य शपथ लेने के बाद 6 माह की अवधि में किसी राजनीतिक दल में सम्मिलित हो जाए।
2. किसी राजनीतिक दल के विघटन पर सदस्यता समाप्त नहीं होगी; यदि मूल दल के कम-से-कम दो-तिहाई सांसद, विधायक दल छोड़ दें।
3. इसी प्रकार विलय की स्थिति में भी दल-बदल नहीं माना जायगा, यदि किसी दल के कम-से-कम एक तिहाई सदस्य विलय की स्वीकृति दे दें।
4. दल-बदल पर उठे किसी भी प्रश्न पर अन्तिम निर्णय सदन के अध्यक्ष का होगा और किसी

भी न्यायालय को उसमें हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होगा।

5. सदन के अध्यक्ष को इस कानून की क्रियान्विति के लिए नियम बनाने का अधिकार होगा।

कानून के दूसरे और तीसरे प्रावधान से स्पष्ट है कि किसी राजनीतिक दल के विघटन या विलय की स्थिति को राजनीतिक दल-बदल की सीमा के बाहर रखा गया है।

राजनीतिक दल-बदल के पिछले लगभग 20 वर्षों के इतिहास से स्पष्ट है कि दल-बदल का कारण राजनीतिक विचारधारा या अन्तःकरण नहीं, वरन् सत्ता और पद-लोलुपता या अन्य लाभ ही रहे हैं, इस दृष्टि से दल-बदल पर लगाई गई रोक '**भारतीय राजनीति को स्वच्छ करने और राजनीति में अनुशासन लाने का एक प्रयत्न**' ही कहा जा सकता है। वस्तुतः इस कानून में अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता और दलीय अनुशासन के बीच सन्तुलित सामंजस्य बैठाया गया है।

दल-बदल रोकने की दिशा में यह विधेयक एक शुरुआत ही माना जा सकता है। दल-बदल की स्थिति के पूरे निराकरण के लिए और बहुत कुछ करना पड़ेगा। 'राजनीतिक नैतिकता' की इस स्थिति का पूर्ण निराकरण हो सकती है।

53वाँ संवैधानिक संशोधन (1985)– इस संवैधानिक संशोधन द्वारा केन्द्रशासित क्षेत्र मिजोरम को पूर्ण राज्य का दर्जा प्रदान किया गया। मिजोरम की सांस्कृतिक विशिष्टता को बनाये रखने की दृष्टि से उसे विशेष स्थिति भी प्रदान की गई।

54वाँ संवैधानिक संशोधन (1985)– इस संवैधानिक संशोधन द्वारा सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की सेवा (वेतन, भत्ते, पेंशन और सेवा निवृत्ति वेतन) में उल्लेखनीय सुधार किया गया है।

55वाँ संवैधानिक संशोधन (1986)– इस संवैधानिक संशोधन द्वारा केन्द्र शासित क्षेत्र अरुणाचल प्रदेश को भारतीय संघ के अन्तर्गत राज्य का दर्जा प्रदान कर दिया गया है। इस प्रकार अब भारतीय संघ में 24 राज्य हो गये हैं। अरुणाचल में शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने की दृष्टि से अरुणाचल राज्य के राज्यपाल को कुछ विशेष अधिकार प्राप्त होंगे।

56वाँ संवैधानिक संशोधन (1987)– गोआ जिले को दमन और दीव से अलग करके उसे पूर्ण राज्य का दर्जा प्रदान कर दिया गया है। इस प्रकार अब भारतीय संघ में 25 राज्य हो गये हैं।

57वाँ संवैधानिक संशोधन (1987)– यह संवैधानिक संशोधन गोआ राज्य की विधानसभा के सम्बन्ध में है। संवैधानिक व्यवस्था के अनुसार इसमें कम-से-कम 30 सदस्य होंगे। अन्तरिम काल में गोआ-दमन और दीव की विधानसभा में से दमन और दीव के दो सदस्य अलग हो जायेंगे और शेष विधानसभा गोआ की विधानसभा के रूप में कार्य करेगी। प्रशासनिक निर्णय के अनुसार गोआ राज्य की विधानसभा में 40 सदस्य होंगे।

58वाँ संवैधानिक संशोधन (1987)– इस संवैधानिक संशोधन द्वारा अनुच्छेद 330 और 332 को संशोधित करके हुए अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मिजोरम प्रदेश और नागालैण्ड में जनजातियों के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है। इस संवैधानिक संशोधन द्वारा की गई व्यवस्था अस्थायी है और यह व्यवस्था 2000 ई. के बाद होने वाली प्रथम जनगणना के आधार पर निर्वाचन क्षेत्रों के निर्धारण तक लागू रहेगी। यदि इन राज्यों की विधानसभाओं के सभी सदस्य जनजाति क्षेत्रों से सम्बन्धित हैं, तो एक स्थान के अतिरिक्त अन्य सभी स्थान अब जनजाति क्षेत्रों से भरे जायेंगे, अन्यथा जनजाति क्षेत्रों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में स्थान प्राप्त होंगे।

59वाँ संवैधानिक संशोधन (1988)– यह संवैधानिक संशोधन शासन को पंजाब में आपात स्थिति लागू करने का अधिकार प्रदान करता है। इसका उद्देश्य आतंकवाद को जड़ से

नष्ट करना है।

इस संवैधानिक संशोधन के आधार पर अनुच्छेद 356 को संशोधित करते हुए व्यवस्था की गई है कि पंजाब में कुल तीन वर्ष की अवधि के लिए राष्ट्रपति शासन लागू किया जा सकता है।

संशोधन विधेयक में पंजाब राज्य में आतंकवादी क्रियाकलापों पर और अधिक प्रभावी रूप से अंकुश लगाने के प्रावधान हैं। इसके अन्तर्गत पंजाब में दो वर्ष की अवधि के लिए आपात स्थिति की घोषणा की जा सकती है। आपात स्थिति लागू किये जाने पर राष्ट्रपति आदेश जारी करके संविधान में दिये गये कुल मूल अधिकारों को निलम्बित कर सकते हैं।

60वाँ संवैधानिक संशोधन (1988)– संविधान के अनुच्छेद 276 में संशोधन कर राज्यों और स्थानीय निकायों को यह अधिकार दिया गया है कि वह अधिकतम 2,500 रुपये वार्षिक तक व्यवसाय कर लगा सकें। संसद में कहा गया कि किन व्यवसायों पर कर लगाया जाय और वेतनभेगी लोगों को इसमें शामिल किया जाय या नहीं, ये बातें राज्यों को तय करनी हैं। इससे राज्यों को विकास और रोजगार कार्यक्रमों को बढ़ाने में मदद मिलेगी।

61वाँ संवैधानिक संशोधन (1989)– इसके अनुसार मताधिकार के लिए न्यूनतम आवश्यक आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दी गई है। अतः 18 वर्ष की आयु प्राप्त सभी स्त्री–पुरुषों को मताधिकार प्राप्त होगा।

62वाँ संवैधानिक संशोधन (1989)– इसके अनुसार संविधान के अनुच्छेद 334 को संशोधित करते हुए लोकसभा तथा राज्य विधान सभाओं में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए आरक्षण और आंग्ल भारतीय समुदाय के लिए नाम निर्देशन की अवधि को 19 जनवरी, 2000 ई. तक के लिए बढ़ा दिया गया।

63वाँ संवैधानिक संशोधन (1989)– इस संशोधन द्वारा पंजाब में जीवन का अधिकार छीनने वाले संविधान के 59वें संशोधन को रद्द करने का प्रावधान है।

64वाँ संवैधानिक संशोधन (1990)– अब तक स्थिति यह थी कि राष्ट्रपति शासन की अधिकतम अवधि तीन वर्ष हो सकती थी। पंजाब के प्रसंग में अवधि मई, 1990 में समाप्त हो रही थी। व्यावहारिक परिस्थितियों के कारण राष्ट्रपति शासन की अवधि बढ़ाना आवश्यक समझा जा रहा था और 64वें संवैधानिक संशोधन के आधार पर पंजाब में 6 माह के लिए राष्ट्रपति शासन की अवधि बढ़ाई गई।

65वाँ संवैधानिक संशोधन (1990)– इस संशोधन द्वारा अनुच्छेद 338 के अन्तर्गत एक उच्चस्तरीय 7 सदस्यीय 'अनुसूचित जाति और जनजाति आयोग' का गठन किया गया तथा इसे संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है।

66वाँ संवैधानिक संशोधन (1990)– इस संशोधन द्वारा विभिन्न राज्यों के 55 भूमि सुधार और भूमि सीमा कानूनों को संविधान की नवीं अनुसूची में शामिल किया गया ताकि इन कानूनों की वैधता को न्यायालय के चुनौती न दी जा सके।

67वाँ संवैधानिक संशोधन (1990)– इसके द्वारा पंजाब में राष्ट्रपति शासन की अवधि 10 नवम्बर, 1990 के बाद 6 माह के लिए बढ़ाई गई।

68वाँ संवैधानिक संशोधन (1990)– इसके द्वारा पंजाब में राष्ट्रपति शासन की अवधि 10 मई, 1991 के बाद 1 वर्ष के लिए बढ़ायी गई।

69वाँ संवैधानिक संशोधन (1991)– इस संशोधन द्वारा अब दिल्ली को 'दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र' कहा जायेगा। दिल्ली में महानगर परिषद के स्थान पर 70 सदस्यीय विधानसभा तथा 7 सदस्यों की मंत्रिपरिषद का गठन किया जायेगा। मुख्यमंत्री और मंत्रिपरिषद के सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा। दिल्ली संघीय क्षेत्र के रूप में ही बना रहेगा।

70वाँ संवैधानिक संशोधन (1992)– इस संशोधन द्वारा दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र और पाण्डिचेरी की विधान सभाओं के सदस्यों को भी राष्ट्रपति पद के चुनावों में मतदान का अधिकार प्रदान किया गया।

71वाँ संवैधानिक संशोधन (1992)– इस संशोधन द्वारा संविधान की 8वीं अनुसूची में कोंकणी, मणिपुरी तथा नेपाली भाषा को शामिल किया गया। इस संशोधन के फलस्वरूप संविधान की 8वीं अनुसूची में वर्णित भाषाओं की संख्या 18 हो गई है ।

72वाँ संवैधानिक संशोधन (1992)– इस संशोधन द्वारा त्रिपुरा विधानसभा में अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों की सख्ंया 17 से बढ़ाकर 20 कर देने का प्रावधान है ।

73वाँ संवैधानिक संशोधन (1993)– इस संशोधन द्वारा संविधान में 11वीं अनुसूची जोड़कर 'पंचायती राज व्यवस्था' को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है ।

74वाँ संवैधानिक संशोधन (1993)– इस संशोधन द्वारा संविधान में 12वीं अनुसूची जोड़कर शहरी क्षेत्र की स्थानीय स्वशासन संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है ।

75वाँ संवैधानिक संशोधन (1993)– इस संशोधन द्वारा किरायेदारों और मकान मालिकों के विवादों को सुलझाने के लिए राज्यों में ट्रिब्यूनलों के गठन की व्यवस्था की गई है ।

76वाँ संवैधानिक संशोधन (1994)– इस संशोधन द्वारा तमिलनाडु में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लिए किये गये आरक्षण को संविधान की नवीं अनुसूची में शामिल किया गया है ।

77वाँ संवैधानिक संशोधन (1995)– इस संशोधन द्वारा अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए प्रोन्नति (Promotion) में आरक्षण की व्यवस्था की गई है ।

78वाँ संवैधानिक संशोधन (1995)– इस संशोधन द्वारा सात राज्यों–बिहार, केरल, उड़ीसा, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल, राजस्थान तथा तमिलनाडु के 27 भूमि सुधार कानूनों को संविधान की नवीं अनुसूची में शामिल किया गया है, ताकि इन कानूनों को मौलिक अधिकारों का हनन बताकर न्यायालय में चुनौती न दी जा सके ।

79वाँ संवैधानिक संशोधन (2000)– इस संशोधन द्वारा लोकसभा तथा राज्य विधान सभाओं में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए आरक्षण सुविधा 25 जनवरी, 2010 तक के लिए और बढ़ा दी गई है । इसी संशोधन द्वारा लोकसभा व राज्य विधान सभाओं में आंग्ल-भारतीयों के मनोनयन प्रावधान को भी 25 जनवरी, 2010 तक के लिए और बढ़ा दिया गया है ।

88वाँ संवैधानिक संशोधन (2000)– इस संशोधन के अन्तर्गत अनुसूचित जाति एवं जनजाति वर्ग के लोगों के लिए पदोन्नति में आरक्षण की व्यवस्था की पुनः बहाली का प्रावधान है। इसके अतिरिक्त उक्त वर्गों के लिए परीक्षा में पास होने के लिए न्यूनतम अंकों में छूट का प्रावधान भी शामिल है।

89वाँ संवैधानिक संशोधन (2000)– इस संशोधन द्वारा केन्द्रीय करों से होने वाली शुद्ध आय का 29 प्रतिशत राज्यों को देने का प्रावधान है।

91वाँ संवैधानिक संशोधन (2001)– इसमें चुनाव क्षेत्र की सीमा तय करने के लिए पुनर्सीमन आयोग का गठन करने तथा 2006 तक लोकसभा व विधान सभा की सीटों की संख्या यथावत् रखने का प्रावधान है।

92वाँ संवैधानिक संशोधन (2001)– इस संशोधन द्वारा सरकारी विभागों में कार्यरत अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के कर्मचारियों को पदोन्नति में आरक्षण देने का प्रावधान है।

93वाँ संवैधानिक संशोधन (2001)– इस संशोधन द्वारा 6 से 14 वर्ष के बच्चों की शिक्षा को अनिवार्य और मौलिक अधिकार बनाने का प्रावधान है।

97वाँ संवैधानिक संशोधन (2004)– इस संशोधन द्वारा दलबदल पर पाबन्दी और मंत्रिमण्डल का आकार लोकसभा एवं विधानसभाओं की कुल सदस्य संख्या के 15 प्रतिशत से अधिक नहीं रखने का प्रावधान है। जिन राज्यों में विधानसभा सदस्यों की संख्या काफी कम है, वहाँ मंत्रिमण्डल में 15 प्रतिशत वाली शर्त नहीं लागू होगी और कम से कम 12 मंत्री शामिल किये जाएँगे।

100वाँ संवैधानिक संशोधन (2004)– इस संशोधन द्वारा आठवीं अनुसूची में बोडो, मैथिली, संथाली और डोगरी भाषाओं को शामिल किया गया है।

104वाँ संवैधानिक संशोधन (2006)– इस संविधान संशोधन के अनुसार सरकारी विद्यालयों के साथ-साथ गैर सहायता प्राप्त निजी संस्थानों में भी अनुसूचित जाति, जनजाति व अन्य पिछड़े वर्गों के विद्यार्थियों को आरक्षण उपलब्ध हों सकेगा। अल्पसंख्यकों के निजी शैक्षणिक संस्थानों को इससे मुक्त रखा गया है।

105वाँ संवैधानिक संशोधन (2006)– इस संविधान संशोधन के अनुसार छत्तीसगढ़ एवं झारखण्ड में जनजातीय मामलों के लिए अलग मंत्रालय का गठन किया जाएगा तथा बिहार में अलग मंत्रालय का गठन नहीं किया जाएगा।

भारत का राजनीतिक एकीकरण

अगस्त, 1947 में जिस समय भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई, उस समय इंग्लैण्ड के एक प्रसिद्ध प्रो0 कूपलैण्ड ने कहा था, "भारत अपने उत्तर-पश्चिम और उत्तर-पूर्व में मुसलमानों को स्वतन्त्र राज्य के रूप में बसाकर तो शायद अपना कार्य चला ले, परन्तु क्या अपने हृदय-स्थल में 600 छोटी-छोटी रियासतों को पालकर भी वह जीवित रह सकेगा?" इसी प्रकार अन्य अनेक देशी और विदेशी राजनीतिज्ञों की भी यही राय थी कि स्वतन्त्र भारत की सबसे बड़ी समस्या उसकी देशी रियासतें सिद्ध होंगी। अंग्रेज शासक भारत से जाते समय अपनी सार्वभौम सत्ता को समाप्त कर देशी रियासतों को स्वतन्त्रता प्रदान कर गये थे। उनकी धारणा थी कि स्वतन्त्र भारत छोटी-छोटी इकाइयों में बँटा रहकर इतनी शक्ति संगठित न कर सकेगा कि वह इंग्लैण्ड के सैनिक और आर्थिक चंगुल से पूर्णरूपेण मुक्त हो जाय। ऐसी विषम परिस्थिति में यदि देश को सरदार पटेल जैसे कुशल प्रशासक और पण्डित जवाहरलाल नेहरू जैसे सर्वमान्य नेता उपलब्ध न होते तो संभवतः हमारे पूर्व शासकों का यह स्वप्न साकार हो जाता और रियासतों की जटिल समस्याओं के चक्रव्यूह में पड़कर भारत अपनी स्वतन्त्रता पुनः खो बैठता।

भारतीय रियासतों के एकीकरण के लिए सरदार पटेल के नेतृत्व में केन्द्रीय सरकार के अधीन एक रियासती विभाग खोला गया। इस विभाग की ओर से सितम्बर, 1947 में भारतीय रियासतों से यह अपील की गई कि वे भारतीय संघ में सम्मिलित होने के लिए एक प्रवेश-पत्र (Instrument of Accession) पर हस्ताक्षर कर दें। आरम्भ में इस प्रवेश-पत्र में रियासतों को केवल तीन विषयों-विदेश नीति, रक्षा तथा यातायात का नियन्त्रण केन्द्रीय सरकार को सौंपना था। किन्तु कुछ ही दिन पश्चात् भारत सरकार को अनुभव हुआ कि नव प्राप्त-स्वतन्त्रता को सुदृढ़ बनाने के लिए आवश्यक है कि रियासतों और प्रान्तों के अधिकार और कम किये जाएँ और भारत में एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की स्थापना की जाय। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ऐसे नये समझौते पर हस्ताक्षर कराए गये जिसके द्वारा केन्द्रीय सरकार के रियासतों के ऊपर उनके सभी विषयों पर प्रभुत्व प्राप्त हो गया जिनका वर्णन हमारे संविधान की संघ तथा समवर्ती सूची में किया गया है।

भारतीय-संघ में सम्मिलित होने के पश्चात् देश की छोटी-छोटी रियासतों से अपील की गई कि वे भारत को एक शक्तिशाली, अविच्छिन्न राष्ट्र में संगठित करने के लिए अपने पड़ोसी प्रान्त में मिल जायँ अथवा अपना कोई संघ बना लें। इस नीति के अधीन सर्वप्रथम 1 जनवरी, 1948 को यह घोषणा की गई कि उड़ीसा प्रान्त की 23 रियासतें उसी प्रान्त में विलीन कर दी गई हैं। इसके पश्चात् मध्य प्रान्त, पंजाब, बम्बई तथा बिहार राज्यों की छोटी-छोटी रियासतों का समाहार किया गया। अन्तिम रियासत कूचबिहार को बंगाल राज्य में विलीन कर दिया गया। बहुत सी बड़ी-बड़ी रियासतों के संघ बना दिये गये। इस प्रकार दो वर्ष के अन्दर ही सामन्तशाहों के लगभग 600 गढ़ समाप्त हो गये।

भारत की 216 रियासतें प्रान्तों में विलीन कर दी गईं। ऐसी रियासतों का कुल क्षेत्रफल 1,08,739 वर्गमील तथा जनसंख्या 1,91,58,000 थी। भारत की 61 रियासतें केन्द्र के अधीन और 6 चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों में संगठित कर दी गईं। इन रियासतों में भोपाल, कच्छ, त्रिपुरा, मणिपुर, हिमाचल प्रदेश तथा विन्ध्य प्रदेश की रियासतें थीं। इन रियासतों का कुल क्षेत्रफल 63,704 वर्गमील तथा जनसंख्या 69 लाख थी। अन्त में, भारत की 275 रियासतों को 5 संघों में संगठित किया गया। इन संघों के नाम इस प्रकार थे-सौराष्ट्र, पेप्सू, मध्यभारत, राजस्थान तथा ट्रावनकोर-कोचीन। उन संघों में सम्मिलित रियासतों का क्षेत्रफल 2,15,450 वर्गमील तथा जनसंख्या 347 लाख थी।

एकीकरण के क्रम से प्रभावित न होने वाले राज्य केवल तीन थे-मैसूर, हैदराबाद और जम्मू-कश्मीर।

इस प्रकार भारत की रियासतों की केवल 14 इकाइयाँ रह गईं। इनके नाम इस प्रकार थे-

(1) सौराष्ट्र, (2) पेप्सू, (3) मध्यभारत, (4) राजस्थान, (5) ट्रावनकोर-कोचीन, (6) हिमाचल प्रदेश, (7) कच्छ, (8) भोपाल, (9) त्रिपुरा, (10) मणिपुर, (11) विन्ध्य प्रदेश, (12) मैसूर, (13) हैदराबाद और (14) जम्मू-कश्मीर।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गठित राज्य

1956 में राज्य पुनर्गठन अधिनियम के अन्तर्गत चौदह राज्यों और छह केन्द्र शासित क्षेत्रों का गठन किया गया।

राज्य- (1) आंध्र प्रदेश, (2) असम, (3) बिहार, (4) बम्बई, (5) जम्मू एवं कश्मीर, (6) केरल, (7) मध्य प्रदेश, (8) मद्रास, (9) मैसूर, (10) उड़ीसा, (11) पंजाब, (12) राजस्थान, (13) उत्तर प्रदेश और (14) पश्चिम बंगाल।

केन्द्र शासित क्षेत्र- (1) अण्डमान-निकोबार द्वीप समूह, (2) दिल्ली, (3) हिमाचल प्रदेश, (4) त्रिपुरा, (5) लक्षद्वीप मिनीकाय तथा (6) अमीनदिवी द्वीप।

1956 के बाद गठित नये राज्य

राज्य का नाम	वर्ष	जिस अधिनियम के तहत गठन हुआ
गुजरात	1960	बम्बई पुनर्गठन अधिनियम, 1960
महाराष्ट्र	1960	बम्बई पुनर्गठन अधिनियम 1960
पांडिचेरी	1962	14वाँ संविधान संशोधन, 1962
नागालैंड	1963	नागालैंड राज्य अधिनियम, 1962
पंजाब	1966	पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966
हरियाणा	1966	पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966
चंडीगढ़	1966	पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966
मेघालय	1971	पूर्वी-पश्चिमी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम, 1969

हिमाचल प्रदेश	1971	हिमाचल प्रदेश राज्य अधिनियम,	1970
त्रिपुरा	1972	पूर्वी-पश्चिमी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम,	1969
मणिपुर	1972	पूर्वी-पश्चिमी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम,	1969
सिक्किम	1975	36वाँ संविधान संशोधन,	1975
मिजोरम	1986	मिजोरम राज्य अधिनियम,	1986
अरुणाचल प्रदेश	1987	55वाँ संविधान संशोधन,	1986
गोआ	1987	56वाँ संविधान संशोधन,	1987
उत्तरांचल[1]	2000	उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम,	2000
झारखण्ड	2000	बिहार पुनर्गठन अधिनियम,	2000
छत्तीसगढ़	2000	मध्यप्रदेश पुनर्गठन अधिनियम,	2000

आर्थिक नियोजन

देश की सभी समस्याओं पर विचार करने तथा राष्ट्र के द्रुतगामी आर्थिक विकास की योजना बनाने के लिए भारत सरकार ने मार्च, 1950 में एक योजना आयोग की स्थापना की। इस आयोग का उद्देश्य यह था कि वह भारत के सीमित साधनों को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार की योजना बनाये जिससे कम-से-कम धन के व्यय से देश का अधिक से अधिक विकास हो सके। योजना आयोग के अनुसार देश के विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाएँ चालू की गईं।

भारत में पंचवर्षीय योजनाएँ

> "पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य लोकतांत्रिक तरीके से एक विकसित अर्थ-व्यवस्था का निर्माण करना और एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना है जिसमें सभी व्यक्तियों को न्याय और अवसरों की समानता मिल सके।" —योजना आयोग

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56)

भारत के स्वतन्त्र होने तथा संविधान बनाने के तुरन्त पश्चात् 1950 में स्वर्गीय प्रधान मंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में 'राष्ट्रीय योजना आयोग' की स्थापना की गई। इस आयोग ने 16 महीनों के विचार-विमर्श के पश्चात् जुलाई, 1951 में पाँच वर्ष के अन्दर किया जाने वाला एक विकास कार्यक्रम प्रस्तुत किया जो दिसम्बर, 1951 में संसद द्वारा स्वीकार कर लिया गया। इसी कार्यक्रम को हम पंचवर्षीय योजना के नाम से सम्बोधित करते हैं। इस योजना की अवधि 1 अप्रैल, 1951 से 31 मार्च 1956 तक अर्थात् 5 वर्ष की रखी गई। इस योजना का सम्पूर्ण कार्यक्रम प्रमुख रूप से निम्नलिखित उद्देश्यों के आधार पर बनाया गया था :

(1) देश में आर्थिक स्थिरता लाने के लिए ऐसी अर्थ-व्यवस्था का निर्माण करना जिससे भविष्य में देशवासी स्वयं ही उन्नति कर सकें।

(2) देश में समाजवादी अर्थ-व्यवस्था की स्थापना करना जिसमें सभी व्यक्तियों को आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में उन्नति करने के समान अवसर प्राप्त हो सकें।

(3) ग्रामीण योजना का पुनर्निर्माण करना जिससे शिक्षा, चिकित्सा, स्वास्थ्य और समाज कल्याण में अधिकाधिक वृद्धि की जा सके।

प्रथम योजना में कृषि, सिंचाई, बिजली, उद्योग, परिवहन, संचार और सामाजिक सेवाओं

1. उत्तर प्रदेश पुर्नगठन अधिनियम, 2000 द्वारा उत्तरांचल राज्य का गठन किया गया था। 2006 में संसद द्वारा उत्तर प्रदेश पुर्नगठन अधिनियम, 2000 में संशोधन कर उत्तरांचल का नाम बदल कर 'उत्तराखण्ड' कर दिया गया। 28 दिसम्बर, 2006 को राष्ट्रपति एपीजे अब्दुल कलाम ने विधेयक को स्वीकृति प्रदान कर दी। अब उत्तरांचल को 'उत्तराखण्ड' के नाम से जाना जाएगा।

के विकास पर 2,356 करोड़ रुपया व्यय किया गया अर्थात् धनराशि का 15.1 प्रतिशत कृषि पर, 28.1 प्रतिशत सिंचाई तथा बिजली पर, 7.6 प्रतिशत उद्योग और खनिज पर, 23.6 प्रतिशत परिवहन और संचार पर, 22.6 प्रतिशत समाज सेवाओं पर तथा 3 प्रतिशत दूसरे विविध कार्यों पर व्यय किया गया। व्यय का विवरण निम्न तालिका से और अधिक स्पष्ट हो जायगा।

मदें	व्यय धन-राशि (करोड़ रुपये में)	कुल धन-राशि का प्रतिशत
1. कृषि और सामुदायिक विकास	357	15.1
2. सिंचाई और बिजली	661	28.1
3. उद्योग और खनिज	159	7.6
4. परिवहन और संचार	557	23.6
5. समाज सेवायें	553	22.6
6. विविध	99	3.0

इस योजना में अनुमानित व्यय में 10 प्रतिशत व्यय कम हुआ। राष्ट्रीय आय में 18 प्रतिशत और प्रति व्यक्ति आय में 11 प्रतिशत की वृद्धि हुई। कृषि की उपज में 14 प्रतिशत और औद्योगिक उत्पादन में 40 प्रतिशत वृद्धि हुई। कपास और सूती कपड़ों के उत्पादन में हम लक्ष्य से काफी आगे निकल गये। परन्तु अन्य क्षेत्रों में आशातीत सफलता नहीं मिली। सामुदायिक विकास, शिक्षा और उद्योगों पर जिनती धनराशि खर्च करने के लिए निर्धारित की गई थी, वह खर्च नहीं हुई।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-61)

मई, 1956 में द्वितीय पंचवर्षीय योजना का कार्यक्रम संसद द्वारा स्वीकार किया गया। इस योजना की अवधि 1 अप्रैल, 1956 से 31 मार्च, 1961 तक रखी गई। इस योजना के मुख्य रूप से निम्नलिखित चार उद्देश्य थे :

(क) राष्ट्रीय आय में 25 प्रतिशत की वृद्धि करना जिससे सामान्य जनता का जीवन स्तर ऊँचा उठ सके।

(ख) औद्योगिक विकास के लिए आधारभूत उद्योगों के विकास को प्राथमिकता देना।

(ग) योजना अवधि में 1 करोड़ 20 लाख अतिरिक्त व्यक्तियों को रोजगार देना तथा

(घ) आर्थिक शक्ति के सन्तुलन के लिए आय तथा सम्पत्ति के वितरण में अधिक समानता लाना।

योजना आयोग के शब्दों में, "द्वितीय पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य ग्रामीण भारत का पुनर्निर्माण करना, औद्योगिक प्रगति की नींव दृढ़ करना, जनता के शक्तिहीन वर्ग को उन्नति के अवसर प्रदान करना और देश के समस्त भागों का सन्तुलित विकास करना है।" इस प्रकार इस योजना का प्रमुख उद्देश्य देश में समाजवादी अर्थ-व्यवस्था का निर्माण करना था।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना पर केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों द्वारा विभिन्न पदों पर 4,800 करोड़ रुपया व्यय करने का लक्ष्य निश्चित किया गया था, जिसमें कुल खर्च 4,600 करोड़ रुपया हुआ अर्थात् लक्ष्य से 200 करोड़ रुपया कम। इसके अतिरिक्त निजी क्षेत्र में 2,300 करोड़ रुपया पूँजीपतियों द्वारा लगाया जाना था। केन्द्र और राज्य-सरकारों द्वारा लगायी जाने वाली कुल पूँजी का वितरण निम्न प्रकार किया गया था :

मदें	कुल व्यय (करोड़ रुपये में)	प्रतिशत
1. खेती तथा सामुदायिक विकास	530	11
2. बड़े तथा मध्यम सिंचाई कार्य	420	9
3. बिजली	445	10
4. ग्राम तथा लघु उद्योग	175	4
5. संगठित उद्योग तथा खनिज पदार्थ	900	20
6. परिवहन तथा संचार साधन	1,300	28
7. समाज सेवाएँ तथा विविध	830	18
8. अन्य साधन	——	——
योग	4,600	100

प्रथम योजना की अपेक्षा द्वितीय योजना में सभी क्षेत्र में आशातीत सफलता प्राप्त हुई। राष्ट्रीय आय 21 प्रतिशत और प्रति व्यक्ति आय 9 प्रतिशत वृद्धि हुई। कृषि उत्पादन में लगभग 20 प्रतिशत वृद्धि हुई। सीमेंट का उत्पादन 100 प्रतिशत बढ़ गया और कोयले का उत्पादन लगभग 4 करोड़ टन से 6 करोड़ टन हो गया। रेल के इंजनों का भी उत्पादन 175 प्रतिवर्ष से 400 हो गया। शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा तथा समाज सेवा के दूसरे कार्यों में भी समुचित वृद्धि हुई।

तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961-66)

1 अप्रैल, 1961 से तृतीय पंचवर्षीय योजना का आरम्भ हुआ। यह योजना प्रथम और द्वितीय योजना की तुलना में काफी विस्तृत थी। इस योजना के निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य थे –

(i) योजना के पाँच वर्षों अर्थात् 1961 से 1966 तक राष्ट्रीय आय में कुल 25 प्रतिशत से 30 प्रतिशत तक की वृद्धि करना।

(ii) खाद्यान्नों के उत्पादन में देश को आत्मनिर्भर बनाना तथा कच्चे माल के निर्यात में वृद्धि करना।

(iii) इस्पात, ईंधन और बिजली जैसे आधार-भूत उद्योगों का विस्तार करना जिससे देश की आवश्यकताएँ देश के साधनों से ही 10 वर्ष के अन्दर पूरी की जा सकें।

(vi) रोजगार में वृद्धि करके जन-शक्ति का अधिकतम उपयोग करना।

(v) आय और सम्पत्ति की असमानता को दूर करना और आर्थिक शक्ति का अधिक समतापूर्ण वितरण करना।

तृतीय पंचवर्षीय योजना में 11,600 करोड़ रुपये खर्च करने का लक्ष्य रखा गया था जिसमें से 7,500 करोड़ रुपये सार्वजनिक क्षेत्र में तथा 4,100 करोड़ रुपये निजी क्षेत्र के लिए निर्धारित किया गया था। सार्वजनिक क्षेत्र की निर्धारित राशि में से 6,300 करोड़ रुपये की पूँजी नियोजन के लिए और 1,200 करोड़ रुपये खर्च के लिए रखे गये थे।

इस व्यय का विवरण निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट हो जायगा :

	मदें	सार्वजनिक क्षेत्र (करोड़ रुपये में)	निजी क्षेत्र (करोड़ रुपये में)	योग
1.	कृषि और सम्बन्धित क्षेत्र	1,068	800	1,868
2.	सिंचाई और बाढ़-नियन्त्रण	650	–	650
3.	बिजली	1,012	50	1,062
4.	ग्राम और लघु उद्योग	264	275	539
5.	उद्योग और खनिज	1,520	1,050	2,570
6.	परिवहन और संचार	1,486	250	1,736
7.	सार्वजनिक सेवायें और अन्य कार्यक्रम	1,300	1,075	2,375
8.	कच्चा और अर्द्ध तैयार माल	200	600	800
	कुल योग	7,500	4,100	11,600

31 मार्च, 1966 को तृतीय पंचवर्षीय योजना का कार्य-काल समाप्त हुआ। इस योजना की अवधि में विदेशी मुद्रा की कठिनाइयाँ उत्पन्न होने, सूखे के कारण फसल खराब होने और 1965 में देश पर पाकिस्तान का आक्रमण होने के कारण हम अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में बहुत कम सफल हो सके। भूतपूर्व योजना मंत्री श्री बलिराम भगत ने भी स्वीकार किया था, "योजना की प्रगति में कुछ धुँधला अंश है और वास्तविक प्राप्तियाँ असन्तोषजनक कहे जाने वाले स्तरों से काफी नीचे रही हैं।" इसके बावजूद राष्ट्रीय आय में 14 प्रतिशत की वृद्धि हुई। कृषि उत्पादन में काफी सुधार हुआ। औद्योगिक उत्पादन लगभग 10 प्रतिशत बढ़ गया तथा 130 लाख व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त हुआ।

तीन एक-वर्षीय योजनाएँ (1966-67, 67-68, 68-69)

तृतीय पंचवर्षीय योजना के पश्चात् तीन एक-वर्षीय योजनाएँ लागू की गईं क्योंकि कुछ कारणों से चौथी पंचवर्षीय योजना समय पर तैयार नहीं की जा सकी। इनमें से कुछ कारण थे- 1965 का भारत-पाक संघर्ष, 1966-67 में कृषि की पैदावार में वर्षा के अभाव के कारण निरन्तर भारी कमी, रुपये का अवमूल्यन, कीमतों में भारी वृद्धि योजना के लिए आवश्यक साधनों का अभाव। इस प्रकार 1 अप्रैल, 1966 से 31 मार्च, 1969 तक एक-एक वर्ष की तीन योजनाओं के द्वारा विकास कार्य किया गया। इन तीनों योजनाओं पर क्रमशः 2,082 करोड़, 2,246 करोड़, 2,337 करोड़ अर्थात् कुल 6,665 करोड़ रुपया व्यय किया गया।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969-74)

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना का प्रारम्भ 1969 में हुआ तथा इसका कार्य-काल 1974 तक रखा गया। आयोग ने इस योजना का प्रारूप प्रकाशित करते हुए कहा था, "चतुर्थ योजना का कार्य तीन योजनाओं में सफलताओं को मजबूत बनाना और उन्हें आगे बढ़ाना, उनकी कमियों को दूर करने और पाँचवी योजना के अन्त तक आत्मनिर्भर अर्थ-व्यवस्था की तैयारी करना है।"

इस योजना के मुख्य उद्देश्य निम्न प्रकार थे :

(i) आर्थिक विकास के लिए स्थिर वातावरण का निर्माण करके विभिन्न प्रकार की अनिश्चितताओं को समाप्त करना, कृषि उपज के उतार-चढ़ाव को कम करना तथा विदेशी सहायता की अनिश्चितता से अपनी रक्षा करना।

(ii) खनिज़, बिजली, यातायात और धातु कें क्षेत्रों में निरन्तर विकास करना।
(iii) खाद्यान्न के सम्बन्ध में आत्म-निर्भरता तथा आवश्यक उपभोक्त सामग्री की कीमतों में स्थिरता लाना।
(vi) निर्यात में 7 प्रतिशत वार्षिक की दर से वृद्धि करना और इस प्रकार विदेशी मुद्रा को अधिक से अधिक मात्रा में अर्जित करना।
(v) ग्रामीण और नगरीय क्षेत्र में रोजगार के नये अवसरों में वृद्धि करना तथा शिक्षित बेरोजगारी को समाप्त करने के प्रयत्न करना।
(vi) विभिन्न वर्गों के बीच से आय की असमानता को दूर करके पिछड़े और कमजोर वर्गों के विकास को प्रोत्साहन देना।
(vii) भवन-निर्माण के लिए अधिकाधिक सामग्री जुटाना।
(viii) परिवार नियोजन कार्यक्रम को व्यापक पैमाने पर लागू करना।

उपर्युक्त उद्देश्यों के अतिरिक्त स्थानीय योजना की व्यवस्था करना, भूमिहीन श्रमिकों के लिए भूमि का प्रबन्ध करना, सामाजिक सेवाओं में वृद्धि करना, उद्योग को संगठित करना, पंचायती राज-व्यवस्था को दृढ़ करना, सहकारिता को प्रोत्साहन देना तथा बैंकों के राष्ट्रीयकरण से आर्थिक संरचना को अधिक दृढ़ बनाना इस योजना के प्रमुख उद्देश्य थे।

चतुर्थ योजना में व्यय की कुल 24, 882 करोड़ रुपये की धनराशि रखी गई थी। इसमें से सार्वजनिक क्षेत्र के लिए 15,902 करोड़ रुपये तथा निजी क्षेत्र के लिए 8,980 करोड़ रुपये निर्धारित किये गये थे। सार्वजनिक क्षेत्र की निर्धारित राशि में से 13,655 करोड़ रुपये पूँजी नियोजन के लिए और 2,247 करोड़ रुपये चालू खर्च के लिए रख लिए गये थे।

निम्न तालिका में सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के बड़े विकास कार्यों के खर्च का विवरण दिखाया गया है :

	मदें	सार्वजनिक क्षेत्र (करोड़ रुपये में)	निजी क्षेत्र (करोड़ रुपये में)	योग
1.	कृषि तथा सामुदायिक विकास	2,728	1,600	4,328
2.	सिंचाई तथा बाढ़-नियन्त्रण	1,087	–	1,087
3.	बिजली	2,448	75	2,523
4.	ग्राम और लघु उद्योग	293	560	853
5.	उद्योग तथा खनिज	3,338	2,000	5,338
6.	परिवहन तथा संचार	3,237	920	4,157
7.	शिक्षा	823	50	873
8.	वैज्ञानिक अनुसन्धान	140	–	140
9.	स्वास्थ्य	434	–	434
10.	परिवार नियोजन	315	–	315
11.	पानी की सप्लाई और सफाई के कार्य	407	–	407
12.	आवास, नगर और क्षेत्रीय विकास	237	2,175	2,412

13.	पिछड़ी हुई जातियों की भलाई के कार्य	142	–	142
14.	समाज कल्याण	41	–	41
15.	श्रम कल्याण तथा दस्तकारी प्रशिक्षण	40	–	40
16.	अन्य कार्यक्रम	192	–	192
17.	कच्चा और अर्द्ध तैयार माल	–	1,600	1,600
	कुल योग	15,902	8,980	24,882

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-1979)

देश की पाँचवी पंचवर्षीय योजना का कार्य-काल 1 अप्रैल, 1974 से 31 मार्च, 1979 तक रखा गया। इस योजना के दो प्रमुख उद्देश्य थे – (अ) गरीबी दूर करना तथा (ब) आत्म-निर्भरता प्राप्त करना।

उपर्युक्त दो प्रमुख उद्देश्यों के अतिरिक्त नीचे लिखे कुछ अन्य उद्देश्य थे :

1. लोगों के लिए रोजगार के अवसर बढ़ाना।
2. आवश्यक वस्तुओं के निरन्तर बढ़ते मूल्यों में स्थिरता लाना।
3. विदेशी निर्भरता को कम करना। दूसरे शब्दों में, देश को हर क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाना था। इसलिए 7 प्रतिशत की दर से निर्यात में हर वर्ष वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया है।
4. देश में निरन्तर तेजी से बढ़ती जनसंख्या को रोकना। इसके लिए परिवार कल्याण कार्यक्रम को राष्ट्रीय स्तर पर चलाया जाय।
5. कार्यक्रमों के द्वारा उपभोक्ताओं की न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करना।

योजना पर परिव्यय

पाँचवीं योजना पर खर्च करने के लिए 53,411 करोड़ रुपये की धन-राशि निर्धारित की गई। इसमें सार्वजनिक क्षेत्र के लिए 37,250 करोड़ रुपये तथा निजी क्षेत्र के लिए 16,161 करोड़ रुपये रखे गये। निम्नलिखित तालिका में सार्वजनिक क्षेत्र में होने वाले व्यय का विवरण दिया गया है।

व्यय सारिणी

क्रमसंख्या	मदें	राशि (करोड़ रुपये में)
1.	कृषि	4,730
2.	सिंचाई	2,681
3.	विद्युत	6,190
4.	उत्पादन	8,939
5.	यातायात व संचार	7,115
6.	सामाजिक सेवाएँ	7,595
	योग	37,250

छठीं पंचवर्षीय योजना (1980-1985)

इस योजना की अवधि 1 अप्रैल, 1980 से 31 मार्च 1985 तक रखी गई थी। योजना के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित थे :

1. सघन ग्रामीण विकास कार्य-क्रम के अन्तर्गत 7.50 करोड़ व्यक्तियों को गरीबी की रेखा से ऊपर उठाने में विशेष सहायता उपलब्ध कराई जाएगी।
2. 60 लाख शहरवासियों को गरीबी की रेखा से ऊपर उठाया जायगा।
3. 340 करोड़ अतिरिक्त व्यक्तियों को योजनावधि में रोजगार के नये अवसर मिलेंगे।
4. दो हजार करोड़ रुपये की लागत से देश के 1.9 लाख शेष गाँवों में पेयजल की व्यवस्था की जायेगी।
5. 1,165 करोड़ की परिव्यय की परियोजनाओं के क्रियान्वयन से 20 हजार गाँवों में सभी मौसमों में उपयोग हेतु सड़कों का निर्माण किया जाएगा।
6. देश के सभी भूमिहीन श्रमिकों की आवासीय समस्याओं का समाधान किया जाएगा। इसमें से 68 लाख परिवारों को आवासीय भूमि-स्थल और 36 लाख परिवारों को आवासीय भवनों के निर्माण हेतु वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जायेगी।
7. देश के विभिन्न नगरों की झोपड़-पट्टी क्षेत्रों में पर्यावरण में सुधार हेतु 1 करोड़ झुग्गीवासियों की गन्दी बस्तियों में सुधार की योजना तैयार की जाएगी।
8. 46 हजार गाँवों का विद्युतीकरण किया जाएगा।
9. हरिजनों की अर्थ-व्यवस्था में सुधार हेतु राज्य सरकारों को 600 करोड़ रुपये विशेष केन्द्रीय सहायता के रूप में उपलब्ध कराये जाएँगे।
10. आदिवासियों के लिए 470 करोड़ रुपये की विशेष केन्द्रीय सहायता प्रदान की जायेगी।
11. 1984-85 के अन्तर्गत खाद्यान्नों का उत्पादन 15 करोड़ टन होगा।
12. 1984-85 के अन्तर्गत 34 लाख टन तिलहन के उत्पादन की व्यवस्था की गई।
13. 40 करोड़ हेक्टेयर अतिरिक्त भूमि में सिंचाई की व्यवस्था होगी।
14. दुग्ध विकास योजनाओं के अन्तर्गत 1.30 करोड़ परिवारों को लाभ पहुँचाया जाएगा।
15. 23 विभिन्न नयी तकनीक परियोजनाओं के अन्तर्गत लाखों लोगों को आर्थिक लाभ दिलाया जायगा।

छठीं पंचवर्षीय योजनावधि में देश की अर्थ-व्यवस्था में 5.2 प्रतिशत की दर से वृद्धि हेतु कुल 1,72,210 करोड़ रुपये परिव्यय करने का प्राविधान था। इसमें से 97,500 करोड़ रुपये सार्वजनिक क्षेत्र में तथा 74,710 करोड़ रुपये का परिव्यय निजी क्षेत्र में होना था।

सार्वजनिक क्षेत्र के कुल परिव्यय 97,500 करोड़ रुपये में ऊर्जा, विज्ञान और तकनीक विज्ञान को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गई। इसके विकास पर कुल व्यय का 28.5 प्रतिशत भाग व्यय किया गया। वरीयता क्रम में द्वितीय स्थान कृषि सम्बन्धी क्रियाएँ-सिंचाई एवं बाढ़ नियंत्रण का था। इस मद पर कुल व्यय का 25.4 प्रतिशत भाग व्यय किया गया। निम्न तालिका में सार्वजनिक क्षेत्र में होने वाले व्यय का विवरण दिखाया गया है :

व्यय सारिणी

	मदें	कुल व्यय (करोड़ रुपये में)	प्रतिशत
1.	उर्जा, विज्ञान और तकनीक	27,400	28.5
2.	कृषि सम्बन्धी क्रियाएँ	12,539	12.8
3.	सिंचाई और बाढ़ नियन्त्रण	12,160	12.6
4.	परिवहन और संचार	15,546	15.8
5.	उद्योग और खनिज	15,017	15.5
6.	सामाजिक सेवाएँ	14,838	14.8
	योग	97,500	100

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90)

सातवीं योजना का कार्यकाल अप्रैल, 1985 से मार्च 1990 तक था। योजना के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार थे :

(1) गरीबी रेखा के नीचे निवास करने वाली जनसंख्या की स्थिति में सुधार करना।
(2) उत्पादक रोजगारों का सृजन करना।
(3) खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना।
(4) शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, आहार, सफाई एवं आवास सुविधाओं का विकास करना।
(5) निर्यात में वृद्धि एवं आयात में कमी द्वारा आत्म-निर्भरता को प्रोत्साहन देना।
(6) उद्योगों में प्रतिस्पर्धा एवं आधुनिकीकरण को बढ़ावा देना।
(7) ऊर्जा की बचत तथा ऊर्जा के गैर-पारम्परिक स्रोतों का विकास करना।
(8) योजना के विकेन्द्रीकरण और विकास में जनता को पूर्ण भागीदारी प्रदान करना।

सातवीं पंचवर्षीय योजना अवधि के दौरान कुल मिलाकर 3,20,000 करोड़ रुपये की पूँजी निवेश की व्यवस्था की गई। यह निवेश 84-85 के मूल्यों पर आधारित था। इसमें से सार्वजनिक क्षेत्र के लिए 1,80,000 करोड़ रुपये तथा शेष 1,40,000 करोड़ रुपये निजी क्षेत्र के लिए स्वीकृत किये गये। सार्वजनिक क्षेत्र में व्यय की जाने वाली धनराशि में से केन्द्र के लिए 95,734 करोड़ रुपये, राज्यों के लिए 80,498 करोड़ रुपये और संघ शासित क्षेत्रों के लिए 3,768 करोड़ रुपयें की व्यवस्था की गई। सार्वजनिक क्षेत्र की धनराशि का उपयोग निम्न प्रकार किया जाना था :

क्रम संख्या	मदें	राशि (करोड़ रुपये में)
1.	कृषि	22,793
2.	सिंचाई	16,979
3.	ऊर्जा	54,821
4.	उद्योग और खनिज	19,708
5.	ग्रामीण और लघु उद्योग	2,753
6.	यातायात और संचार साधन	29,443
7.	समाज सेवाएँ	33,503
	योग	1,80,000

इस योजना काल में राष्ट्रीय आय में 5.0 प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया गया। कृषि उत्पादन में 4 प्रतिशत व औद्योगिक उत्पादन में 7 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य रखा गया।

आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97)

उल्लेखनीय है कि 31 मार्च, 1990 को सातवीं योजना समाप्ति के बाद आठवीं पंचवर्षीय योजना मूलतः 1 अप्रैल, 1990 को आरम्भ होनी थी। योजना आयोग ने इस संदर्भ में आठवीं योजना (1990-95) के लिए प्रारूप तैयार भी कर लिया था, किन्तु दो वर्षों के अन्तराल में केन्द्र में तीन बार सत्ता परिवर्तन के कारण इसे अन्तिम रूप नहीं दिया जा सका। दसवीं लोकसभा के निर्वाचन (1991) के बाद केन्द्र में नई सरकार का गठन हुआ। सरकार की ओर से यह निश्चित किया गया कि 1990-91 तथा 1991-92 की वार्षिक योजनाएँ कार्य करती रहेंगी और 1992-97 की अवधि के लिए आठवीं पंचवर्षीय योजना लागू की जायेगी।

आठवीं योजना का कार्यकाल अप्रैल, 1992 से मार्च 1997 तक था। योजना के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार थे :

1. **पूर्ण रोजगार**– सन् 2000 तक पूर्ण रोजगार का लक्ष्य हासिल करने के लिए रोजगार अवसरों का अधिकाधिक सृजन करना। यानी योजना के पहले दो वर्षों के दरम्यान प्रतिवर्ष 80 लाख तथा शेष में हर साल 90 लाख रोजगार के अवसर सृजित किये जायेंगे।

2. **जनसंख्या नियंत्रण**– बढ़ती हुई आबादी को रोकने के लिए जनसंख्या नियंत्रण की हर संभव कोशिश करना तथा इसके लिए एक कारगर कार्यक्रम पर अमल करना।

3. **निरक्षरता अन्मूलन**– प्राथमिक शिक्षा का व्यापक प्रसार करना तथा 15 सें 35 वर्ष के आयु वर्ग के लोगों को पूर्णतः साक्षर बनाना।

4. **स्वास्थ्य सेवा**– सुदूर ग्रामीण अंचलों पर ज्यादा जोर देते हुए संपूर्ण जनसंख्या के लिए स्वच्छ पेयजल तथा प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र उपलब्ध कराना। इसके अतिरिक्त मैला ढोने की प्रथा का उन्मूलन करना।

5. **कृषि-क्षेत्र**– खाद्यान्नों के मामले में आत्म-निर्भरता का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए कृषि क्षेत्र में समृद्धि तथा विविधता लाना।

6. **विकास प्रक्रिया**– आर्थिक ढाँचे को मजबूत बनाने के लिए विकास की प्रक्रिया को गति देना तथा उसके लिए परिवहन, संचार, ऊर्जा तथा सिंचाई सुविधाओं पर जोर देना।

7. **विज्ञान व प्रौद्योगिकी पर बल**– उत्पादन क्षमता बढ़ाने तथा सभी नागरिकों के जीवन स्तर को सुधारने के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर बल देना।

8. **आंतरिक साधनों पर निर्भरता**– पूँजी उगाहने के लिए आंतरिक संसाधनों पर पूर्णतः निर्भर होना।

9. **विश्व अर्थ-व्यवस्था से तादात्म्य**– विश्व की अर्थ-व्यवस्था के साथ सामंजस्य स्थापित करना तथा इसके लिए आधुनिकीकरण तथा व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा की भावना को बल देना।

10. **विदेशी निवेश पर जोर**– देश पर लदे विदेशी ऋण को पाटने के लिए विदेशी ऋणों के स्थान पर सीधे तौर पर विदेशी निवेश को प्रोत्साहन देना।

आठवीं योजना में औसत वार्षिक विकास की दर का लक्ष्य 5.6 प्रतिशत रखा गया था।

इसके लिए योजना में कुल 7,98,000 करोड़ रुपये का परिव्यय निर्धारित किया गया। इसमें से 3,61,000 करोड़ रुपये का निवेश सार्वजनिक क्षेत्र में किया जाना था, जो कुल योजना परिव्यय का 45.25 प्रतिशत था, तथा शेष 4,37,000 करोड़ रुपये का निवेश निजी क्षेत्र में किया जाना था। इस प्रकार मोटेतौर पर सार्वजनिक व निजी क्षेत्र का व्यय अनुपात लगभग 45:55 था। स्पष्ट है कि आठवीं पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र की तुलना में निजी क्षेत्र को कहीं ज्यादा प्रमुखता दी गई थी।

निम्न तालिका में सार्वजनिक क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र में होने वाले परिव्यय का विवरण दिखाया गया है :

व्यय सारिणी
(1991-92 के मूल्यों पर करोड़ रुपये)

	क्षेत्र	सार्वजनिक	निजी	कुल निवेश	प्रतिशत
1.	कृषि	52,000	96,800	1,48,800	18.65
2.	खाद्य व उत्खनन	28,500	11,100	39,600	4.96
3.	विनिर्माण	47,100	1,41,300	1,88,400	23.61
4.	विद्युत	92,000	10,120	1,02,120	12.80
5.	निर्माण	3,300	17,240	20,540	2.57
6.	परिवहन	49,200	38,710	87,910	11.02
7.	संचार	25,000	1,000	26,000	3.28
8.	सेवाएँ	63,900	1,20730	1,84,630	23.11
	कुल	3,61,000	4,37,000	7,98,000	100.00

नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002)

राष्ट्रीय विकास परिषद की 16 जनवरी, 1997 की बैठक में नौवीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण-पत्र को स्वीकार किया गया। नौवीं योजना का कार्यकाल 1 अप्रैल, 1997 से 31 मार्च, 2002 तक था। इस योजना के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार थे :

1. पर्याप्त उत्पादन रोजगार उत्पन्न करना तथा निर्धनता का उन्मूलन करने की दृष्टि से कृषि एवं ग्रामीण विकास को प्राथमिकता देना।
2. मूल्यों में स्थायित्व रखते हुए आर्थिक विकास की गति को तेज करना।
3. सभी के लिए, विशेष रूप से समाज के कमजोर वर्गों के लिए, भोजन एवं पोषण सम्बन्धी सुरक्षा सुनिश्चित करना।
4. स्वच्छ पेय जल, प्राथमिक स्वास्थ्य देख-रेख सुविधा, सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा एवं आवास जैसी मूलभूत न्यूनतम सेवाएँ प्रदान करना तथा समयबद्ध तरीके से आपूर्ति सुनिश्चित करना।
5. जनसंख्या वृद्धि दर को नियंत्रित करना।
6. सामाजिक मेलजोल और सभी स्तरों पर लोगों की भागीदारी के द्वारा विकास प्रक्रिया की पर्यावरणीय क्षमता को सुनिश्चित करना।
7. सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन एवं विकास के अभिकर्ता (Agent) के रूप में महिलाओं

तथा सामाजिक रूप से कमजोर वर्गों जैसे –अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों एवं अल्पसंख्यकों को शक्तियाँ प्रदान करना।

8. पंचायतीराज संस्थाओं, सहकारी समितियों एवं स्वयंसेवी वर्गों जैसी लोगों की भागीदारी वाली संस्थाओं को बढ़ावा देना और उनका विकास करना।
9. आत्म-निर्भरता प्राप्त करने के प्रयासों को सुदृढ़ करना।

नौवीं पंचवर्षीय योजना में 8,59,200 करोड़ रुपये खर्च करने का प्रावधान था। केन्द्रीय बजट सहायता 3,74,000 करोड़ रुपये थी तथा सार्वजनिक क्षेत्र का परिव्यय 2,90,000 करोड़ रुपये था, जबकि 1,95,000 करोड़ रुपये राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों से प्राप्त होने थे। केन्द्रीय योजना 4,89,361 करोड़ रुपये तथा राज्यों की योजना 3,70,000 करोड़ रुपये की थी। इस योजना में प्रधानमंत्री की विशेष कार्य योजना के मद में खर्च के लिए किया गया 22,300 करोड़ रुपये का भी प्रावधान था।

नौवीं योजना में समूची अर्थ-व्यवस्था के लिये सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर 6.5 प्रतिशत, कृषि विकास दर 3.9 प्रतिशत, आयात वृद्धि दर 10.8 प्रतिशत, निर्यात वृद्धि दर 11.5 प्रतिशत, खनन विकास दर 7.2 प्रतिशत, निर्माण क्षेत्र की विकास दर 8.2 प्रतिशत, व्यापार वृद्धि दर 6.7 प्रतिशत तथा बिजली व गैस क्षेत्र की विकास दर 9.3 प्रतिशत वृद्धि होने की परिकल्पना की गई थी।

दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-2007)

दसवीं पंचवर्षीय योजना का कार्यकाल 1 अप्रैल, 2002 से 31 मार्च, 2007 तक है। योजना के लिए स्वीकृत मसौदे के प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित हैं :

1. सकल घरेलू उत्पाद की औसत वार्षिक संवृद्धि दर 8 प्रतिशत का लक्ष्य। इस योजना के पहले वर्ष (2002-03) के लिये 6.7 प्रतिशत, दूसरे वर्ष (2003-04) के लिये 7.3 प्रतिशत, तीसरे वर्ष (2004-05) के लिये 8.1 प्रतिशत, चौथे वर्ष (2005-06) के लिये 8.7 प्रतिशत तथा पाँचवें वर्ष (2006-07) के लिये 9.2 प्रतिशत की वार्षिक संवृद्धि दर का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।
2. वर्ष 2001-2002 के मूल्यों पर आधारित सार्वजनिक क्षेत्र का परिव्यय 15,25,639 करोड़ रुपये लेकिन संसाधन 15,92,300 करोड़ रुपये निर्धारित है जिसमें से 9,21,291 करोड़ रुपये केन्द्रीय योजना परिव्यय तथा 6,71,009 करोड़ रुपये राज्यों का योजना परिव्यय शामिल है।
3. 2002-07 की अवधि में केन्द्रीय वजट से (कुल योजना परिव्यय का 44%) 7,06,000 करोड़ रुपये की बजटीय सहायता प्रदान करना।
4. सार्वजनिक उपक्रमों के पूँजी विनिवेश से 78,000 करोड़ रुपये जुटाने का लक्ष्य अनुमानित।
5. 7.5 अरब डालर का वार्षिक विदेशी प्रत्यक्ष निवेश करना।
6. बेहतर कर प्रशासन तथा कर आधार के विस्तार द्वारा कर राजस्व-सकल घरेलू उत्पाद अनुपात को 8.6 प्रतिशत से बढ़ाकर 2007 तक 10.6 प्रतिशत करना।
7. गैर-योजनागत व्यय सकल घरेलू उत्पाद के 11.3 प्रतिशत से घटाकर 2007 तक 9 प्रतिशत करना।

8. 5 करोड़ अतिरिक्त रोजगार अवसरों का सृजन करना।
9. निर्धनता अनुपात को 26.1 प्रतिशत (1999-2000) से घटाकर 21 प्रतिशत (2006-07) के स्तर पर लाना।
10. साक्षरता दर को सन् 2001 में 65 प्रतिशत से बढ़ा कर 2007 तक 75 प्रतिशत करना।
11. सन् 2007 तक सभी बच्चों को पाँच वर्ष तक की स्कूली शिक्षा प्रदान करना।
12. शिशु मृत्यु दर को सन् 2007 तक 45 प्रति एक हजार जीवित जन्म के स्तर पर लाना।
13. मातृत्व मृत्यु दर को सन् 2007 तक 2 प्रति एक हजार जीवित जन्म के स्तर पर लाना।
14. सन् 2007 तक सभी गाँवों को स्वच्छ पेयजल सुविधा प्रदान करना।
15. वनों के अन्तर्गत क्षेत्रफल को वर्ष 1999 में 19 प्रतिशत से बढ़ा कर सन् 2007 तक 25 प्रतिशत करना।
16. केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारों के संयुक्त राजकोषीय घाटे को वर्ष 2001-02 में 10 प्रतिशत से कम करके वर्ष 2006-07 तक 6.5 प्रतिशत के स्तर पर लाना।
17. केन्द्र सरकार के सकल राजकोषीय घाटे को वर्ष 2001-02 में सकल घरेलू उत्पाद के 5.8 प्रतिशत से कम करके वर्ष 2006-07 तक 4.3 प्रतिशत के स्तर पर लाना।
18. राज्यों के सकल घरेलू उत्पाद को वर्ष 2001-02 में सकल घरेलू उत्पाद को 4.5 प्रतिशत से घटाकर वर्ष 2006-07 में 2.2 प्रतिशत के स्तर पर लाना।
19. निर्यातों में 15 प्रतिशत वार्षिक की वृद्धि करना।

दसवीं पंचवर्षीय योजना का प्रस्तावित व्यय मदवार

क्रमांक	मदें	करोड़ रुपयों में	कुल व्यय का प्रतिशत
1.	सामाजिक सेवाएँ	3,47,391	22.8
2.	ऊर्जा	4,03,927	26.4
3.	परिवहन	2,25,977	14.8
4.	श्रम विकास	1,21,928	8.0
5.	सिंचाई बाढ़ नियंत्रण	1,03,315	6.8
6.	संचार	98,968	6.5
7.	उद्योग	58,939	3.9
8.	कृषि	58,933	3.9
9.	सामान्य आर्थिक सेवाएँ	38,630	2.5
10.	विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी	30,424	2.0
11.	विशेष क्षेत्र का कार्यक्रम	28,879	1.4
12.	सामान्य सेवाएँ	16,328	1.0
		15,25,639	100.0

[स्रोतः दसवीं योजना खण्ड 1 पृष्ठ 89]

भारत की विदेश नीति

"हम अन्य राष्ट्रों के साथ निकटतम सम्बन्ध स्थापित करना तथा विश्वशान्ति एवं स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए उनके साथ सहयोग करना चाहते हैं। भारत की विदेश नीति का मूल उद्देश्य विश्व के समस्त राष्ट्रों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना है।" – पं0 नेहरू

प्राचीन काल से ही भारत के अपने पड़ोसी राज्यों तथा विश्व के अन्य राज्यों के साथ आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा मानवीय सम्बन्ध रहे हैं। भारत विश्व में विस्तृत भू-भाग व विशाल जनसंख्या वाला देश होने के कारण उसकी विदेश नीति का विश्व की राजनीति पर गहरा प्रभाव पड़ता है। स्वतंत्र भारत की विदेश नीति का निर्माता पंडित जवाहरलाल नेहरू को ही माना जाता है। उन्होंने 1946 में एक प्रेस कान्फ्रेन्स में स्वतंत्र भारत की विदेश नीति के सम्बन्ध में घोषणा करते हुए कहा था, "हम गुटों की खींचातानी में नहीं पड़ेंगे। विश्व के परतंत्र राष्ट्रों के आत्म-निर्णय के सिद्धान्तों का समर्थन करेंगे तथा जातीय भेदभाव की नीति का पूरी ताकत से विरोध करेंगे। शांति का मार्ग प्रशस्त करने के लिए सभी शांति चाहने वाले राष्ट्रों के साथ सहयोग करके अन्तर्राष्ट्रीय शांति, सुरक्षा व सद्भावना तथा सहयोग के वातावरण का निर्माण करने में हम सहयोग प्रदान करेंगे।"

भारत की विदेश नीति के उद्देश्य

किसी भी देश की विदेश नीति के मुख्यतः तीन मूलभूत आधार होते हैं– राष्ट्रीय हित, क्षेत्रीय अनिवार्यताएँ तथा विश्व की समस्याएँ। इन तीनों को ध्यान में रखते हुए भारतीय विदेश नीति के आधारभूत उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. राष्ट्र का आर्थिक विकास और राजनीतिक स्थिरता, जिससे देश की एकता तथा सामाजिक, आर्थिक विकास सुनिश्चित किया जा सके।
2. राष्ट्रीय सुरक्षा, जिससे कि देश की स्वतंत्रता तथा प्रादेशिक अखण्डता पर आक्रमण अथवा आक्रमण के खतरे को रोका जा सके।
3. आत्मनिर्भरता तथा स्वपोषित औद्योगीकरण जिससे आर्थिक स्वतंत्रता की रक्षा और प्रोत्साहन सुनिश्चित किया जा सके।
4. परस्पर लाभ के लिए दक्षिण एशियाई क्षेत्र में मैत्री, सद्भाव और सहयोग को बढ़ावा दिया जाय।
5. दक्षिण एशियाई क्षेत्रों में आन्तरिक मामलों में बड़ी शक्तियों के हस्तक्षेप को रोकना।
6. हिन्द महासागर को शांति-क्षेत्र बनाने के प्रयास की संभावना को बढ़ाना और भारत के निकटस्थ समुद्री क्षेत्रों को महाशक्तियों के नौ-सैनिक टकराव की स्थिति से बचाने का प्रयास करना।
7. राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए मुक्ति आन्दोलनों व लोकतांत्रिक संघर्षों तथा आत्म-निर्णय के अधिकारों के लिए संघर्षों का समर्थन करना।
8. साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद, नस्लवाद, जातीय पृथकतावाद, निरंकुशता और सैन्यवाद का विरोध करना।
9. शस्त्रों की होड़, विशेष रूप से नाभिकीय शस्त्रों की होड़ का विरोध करना और व्यापक

एवं पूर्ण निःशस्त्रीकरण की प्रक्रिया का समर्थन करना।

10. उत्तर-दक्षिण संवाद तथा दक्षिण-दक्षिण सहयोग को गंभीरता से लेना।
11. विश्व स्तर पर विकास के कार्यों का समर्थन करना और एक ऐसी नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था का निर्माण करना जिससे न्याय, समानता तथा मानवतावाद पर आधारित विश्व का निर्माण हो सके।
12. अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा एवं आपसी मतभेदों के शांतिपूर्ण समाधान का समर्थन करना तथा एक अहिंसक एवं नाभिकीय शस्त्रविहीन विश्व की रचना करना।
13. एक लोकतांत्रिक विश्व हेतु आवश्यक दशा के रूप में मानव अधिकारों के आदर्श एवं उसके क्रियान्वयन का समर्थन करना।
14. शांतिपूर्ण सहअस्तित्व तथा पंचशील के आदर्शों को बढ़ावा देना, तथा
15. विश्वव्यापी तनाव दूर करने, परस्पर सहमति की भावना को बढ़ावा देने, सैन्य गुटबन्दी का विरोध करने तथा इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य भय, घृणा, लालच और असमता से मुक्त विश्व का निर्माण करने के लिये गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को मजबूत बनाना तथा संयुक्त राष्ट्र का समर्थन करना।

अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के प्रख्यात लेखक पामर और परकिन्स के अनुसार भारत की विदेशी नीति के उद्देश्य इस प्रकार हैं :-

1. स्वतंत्रता और असंलग्नता की नीति पर चलना ।
2. क्षेत्रीय सैनिक संधियों से अलग रहना ।
3. सह-अस्तित्व में सहयोग देते हुए अन्तर्राष्ट्रीय तनाव से मुक्ति हेतु प्रयास करना ।
4. संयुक्त राष्ट्र संघ में विश्वास ।
5. जातीय भेदभाव का विरोध करना ।
6. पड़ोसियों के साथ अच्छे संबंधों का निर्माण करना ।

भारतीय विदेश नीति के उपरोक्त उद्देश्य यह स्पष्ट करते हैं कि भारत शांति, स्वतंत्रता एवं समानता के सिद्धान्तों में अटूट विश्वास रखता है ।

भारत की विदेश नीति के आधार

भारतीय विदेश नीति के दो प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं :-

1. मुख्यतः राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा करना, तथा
2. विश्व में शांति और सहयोग का निर्माण करने में सहायक होना ।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारत ने अपने राष्ट्रीय हितों के संवर्धन हेतु लगातार प्रयास किए हैं । विश्व राज्यों के साथ व्यवहार करते समय अपने राष्ट्रीय हितों को महत्व देकर भारत ने जो विदेश नीति अपनाई उसके पहलुओं को इस प्रकार समझा जा सकता है :

1. इंडोनेशिया की स्वतंत्रता के प्रश्न पर भारत ने उसकी स्वतंत्रता का समर्थन किया ।
2. इजराइल के विरुद्ध भारत ने अरब राष्ट्रों को समर्थन दिया । इससे भारत के तेल हितों की रक्षा हुई ।
3. हंगरी व चेस्लोवाकिया के विद्रोह के समय भारत ने अपने दीर्घकालिक हितों को समझते हुए धीमे स्वर की गति अपनायी ।
4. स्वेज नहर की समस्या के समय भारत ने साम्राज्यवादी आक्रमण का विरोध करके मिस्र

का समर्थन किया, क्योंकि उसके मिस्र से व्यापारिक व आर्थिक हित जुड़े थे ।

5. गोआ मुक्ति के समय भारत ने यथार्थवादी नीति अपनायी ।

भारत समझता है कि उसके राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा करने के लिए उसे शान्तिपूर्ण विश्व की आवश्यकता है । यही कारण है कि विदेशनीति में विश्वसंस्था संयुक्त राष्ट्र के प्रति पूर्ण निष्ठा और आस्था व्यक्त की है और इसी आधार पर उसने विश्वबन्धुत्व, मैत्री व सहयोग की नीति अपनायी है ।

भारत की विदेश नीति की विशेषताएँ या लक्षण या तत्व

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत ने जो विदेश नीति अपनायी वह इस प्रकार है :

1. असंलग्नता या गुटनिरपेक्षता – भारत की विदेश नीति की प्रमुख विशेषता गुटनिरपेक्षता की नीति है । इसका तात्पर्य यह है कि भारत न तो किसी गुट में शामिल होगा और न किसी देश के साथ सैनिक सन्धि करेगा । एक अवसर पर बोलते हुए पं0 नेहरू ने कहा था, "चाहे कुछ हो जाए, हम किसी देश के साथ सैनिक संधि नहीं करेंगे । जब हम गुटनिरपेक्षता का विचार छोड़ते हैं तो हम अपना लंगर छोड़कर बहने लगते हैं । किसी दो से बँधना आत्म-सम्मान खोना है और यह अपनी बहुमूल्य नीति का विनाश है ।"

आज समस्त विश्व दो गुटों में विभाजित है । एक गुट संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का है और दूसरा सोवियत संघ का । भारत की नीति इन दोनों से पृथक् रहते हुए तथा दोनों से सम्बन्ध रखते हुए और सहायता प्राप्त करते हुए अपना विकास करना है ।

2. विश्व-शान्ति – भारत की विदेशी नीति की दूसरी विशेषता विश्व में शान्ति के क्षेत्र का प्रसार करना है । 7 सितम्बर, 1964 को पं0 नेहरू ने कहा था, "विश्व शांति की स्थापना ही हमारा मुख्य उद्देश्य है । जो देश संघर्षों को बढ़ाते हैं तथा विश्व-शान्ति के मार्ग में बाधा उपस्थित करते हैं, भारत सरकार उनकी आलोचना एवं भर्त्सना करती है ।" इसी नीति का परिणाम है कि विश्वशान्ति स्थापना की दिशा में अगस्त, 1963 में जब "परमाणविक परीक्षण रोक सन्धि" हुई तब उस पर हस्ताक्षर करने वाला पहला देश भारत था । भारत ने संसार के प्रायः समस्त देशों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किये हैं ।

3. साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का विरोध – भारत लगभग दो शताब्दियों तक ब्रिटिश साम्राज्यवाद का शिकार रहा । अतः स्वाभाविक रूप से वह साम्राज्यवाद का विरोधी है । 1949 में पं0 नेहरू ने घोषणा की थी कि भारत समस्त पराधीन देशों द्वारा उपनिवेशवाद के विरुद्ध चल रहे संघर्षों में अपनी रुचि रखता है । भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ में इण्डोनेशिया, लीबिया, ट्यूनीशिया, मलाया, हिन्द-चीन, गोलकास्ट और अलजीरिया की स्वाधीनता का प्रबल समर्थन किया । उसने साइप्रस के विभाजन का घोर विरोध किया । न्यास प्रदेशों के सम्बन्ध में भारत संयुक्त राष्ट्र संघ की नीति का समर्थक रहा है ।

4. एशियाई एवं अफ्रीकी एकता की स्थापना – लोकतन्त्र स्वतंत्रता का समर्थक होने के कारण भारत ने एशिया तथा अफ्रीका के सभी देशों के स्वतन्त्रता आन्दोलनों का समर्थन किया है । 1947 में विश्व मामलों की भारतीय परिषद ने एशिया के देशों का एक सम्मेलन बुलाया जिसमें पराधीन देशों की समस्या पर विचार-विमर्श किया गया । 1950 में पं0 नेहरू ने बोग्यो सम्मेलन बुलाया जिसमें एशियाई देशों की आर्थिक और सांस्कृतिक समस्याओं पर विचार किया गया । 1955 के वाण्डुग सम्मेलन में भारत ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की । भारत ने तटस्थ राष्ट्रों

के बेलग्रेड सम्मेलन (1961) तथा काहिरा सम्मेलन (1964) में सक्रिय भाग लिया। उसने इण्डोनेशिया की स्वाधीनता का समर्थन किया।

5. आर्थिक और सांस्कृतिक सहयोग – भारत ने विश्व के लगभग छोटे-छोटे सभी देशों के साथ आर्थिक, सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित किए। उसने लंका, इण्डोनेशिया, बर्मा, कम्बोडिया, मिस्र, पोलैण्ड, ईराक, नेपाल, सऊदी अरब, अफगानिस्तान, यूगोस्लाविया, टर्की, जापान, पूर्वी जर्मनी, पश्चिमी जर्मनी तथा पाकिस्तान आदि देशों से आर्थिक सांस्कृतिक समझौते किए हैं।

6. जातीय भेद-भाव का विरोध – भारत जातीय भेद-भाव का विशेषकर दक्षिणी अफ्रीका की नस्ली भेद-भाव की नीति का कटु आलोचक है। नवम्बर 1946 में उसने संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में दक्षिणी अफ्रीका की भेद-नीति का प्रश्न उठाया था और तब से आज तक वह दक्षिणी अफ्रीका की इस नीति का विरोधी है।

7. संयुक्त राष्ट्र संघ से सहयोग – भारत संयुक्त राष्ट्र संघ का जब से सदस्य बना लगातार अपना सहयोग प्रदान कर रहा है। अब तक भारत के अनेक व्यक्ति संयुक्त राष्ट्र संघ में अनेक महत्वपूर्ण पदों को धारण कर चुके हैं। श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा के 8वें अधिवेशन की अध्यक्ष चुनी गई थीं। 1956 में श्री आर0बी0 सेन चार वर्ष के लिए संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन के निदेशक चुने गये। श्री बी0एन0 राव कुछ समय तक अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीश रहे। 1973 में डॉ0 नगेन्द्र सिंह ने अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीश का पद धारण किया और बाद में 1986 से 1988 तक उनके द्वारा मुख्य न्यायाधीश का पद ग्रहण किया गया। 1975 में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के गवर्नर श्री एस0 जगन्नाथन द्वारा "अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा निधि" के निदेशक का पद धारण किया गया। भारत 1991 में दो वर्षों की अवधि के लिए सुरक्षा परिषद का अस्थायी सदस्य चुना गया। इसके पूर्व भारत 1950-51, 1967-68, 1972-73, 1977-78 तथा 1984-85 में सुरक्षा परिषद का सदस्य रह चुका है। 1989 में श्री रघुनन्दन स्वरूप पाठक को अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का न्यायाधीश निर्वाचित किया गया।

संयुक्त राष्ट्र संघ के शान्ति संबंधी कार्यों में भारत ने बड़ी सहायता की है। कोरिया संकट के समय भारत ने एक डाक्टरी दल वहाँ भेजा था। उसने गाजा में संयुक्त राष्ट्रीय आयाती सेवा तथा कांगो में संयुक्त राष्ट्र संघ के साथ अपनी सैनिक टुकड़ियाँ भेजी थीं। संयुक्त राष्ट्र बाल आयात कोष (UNICEF), खाद्य और कृषि संगठन (FAO) और विश्व-स्वास्थ्य संघ (WHO) के प्रादेशिक कार्यालय भारत में स्थित हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के 39वें अधिवेशन (1978) में भारत के भूतपूर्व विदेश मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने हिन्दी में भाषण देकर भारतीयों का सम्मान अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में ऊँचा किया।

8. पंचशील या शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व – पंचशील या शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व भारत की विदेश नीति की आधारशिला है। पंचशील इस प्रकार हैं :

(1) एक दूसरे की प्रादेशिक सीमा और प्रभुसत्ता का सम्मान किया जाय।
(2) अनाक्रमण नीति (Non Aggression Policy) को स्वीकार किया जाय।
(3) एक दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न किया जाय।
(4) एक-दूसरे के सहयोग से लाभ उठाया जाय।

(5) शान्तिपूर्ण सहयोग अस्तित्व की नीति पर आचरण किया जाय।

ये सिद्धान्त विश्व की शान्ति और सुरक्षा के प्रकाश स्तम्भ हैं।

नेहरू युग के पश्चात् भारत की विदेश नीति

1962 का भारत-चीन युद्ध भारतीय विदेशी नीति का परिवर्तनकारी बिन्दु था। दूसरे शब्दों में, भारत ने 1962 के पश्चात् आदर्शवादिता के स्थान पर राष्ट्रीय हितों के अनुरूप यथार्थवादी नीति अपनायी। भारतीय विदेशी-नीति की यह यथार्थवादिता जिन तथ्यों से आँकी जा सकती है उनमें कुछ इस प्रकार के हैं :

भारत-सोवियत मैत्री-सन्धि (9 अगस्त, 1971) – बंगलादेश की घटनाओं के सम्बन्ध में अमेरिका तथा चीन ने पाकिस्तान का जिस तरह पक्ष लिया और उसे भारत के विरुद्ध जिस प्रकार से प्रोत्साहित किया उससे भारत की सुरक्षा के लिए गम्भीर खतरा उत्पन्न हो गया। ऐसी स्थिति में भारत की सुरक्षा को अधिक सुदृढ़ करने के लिए सोवियत संघ और भारत के बीच 9 अगस्त 1971 को नई दिल्ली में 'भारत सोवियत मैत्री सन्धि" सम्पन्न हुई। सन्धि की सर्वाधिक महत्वपूर्ण धारा में कहा गया है, "दोनों में किसी पक्ष पर आक्रमण होने या आक्रमण का खतरा उपस्थित होने पर दोनों ही पक्ष शीघ्र ही विचार-विमर्श करेंगे ताकि ऐसे खतरे को समाप्त किया जाय तथा दोनों पक्षों की शान्ति और सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए समुचित प्रभावकारी कदम उठाये जाएँ।" इस सन्धि के फलस्वरूप ही 1971 के भारत-पाक युद्ध में अमेरिका भारत को केवल धमकियाँ देने तक ही सीमित रहा।

भारत का प्रथम अणु-परीक्षण – भारत ने अपनी यथार्थवादी विदेशी नीति का दूसरा परिचय 18 मई, 1974 को दिया जब उसने पोखरन में प्रथम सफल भूमिगत परमाणु विस्फोट किया। भारत अणुबम का परीक्षण करने वाला छठाँ देश तथा विकासशील देशों में अणुबम का परीक्षण करने वाला प्रथम देश है। भारत ने यह स्पष्ट कर दिया है कि वह अणुशक्ति का विकास और उसका प्रयोग शान्तिपूर्ण कार्यों के लिए ही करेगा।

अणु-परीक्षण के बाद भारत ने 19 अप्रैल, 1975 को "आर्य भट्ट" उपग्रह के रूप में अंतरिक्ष में पहला कदम और जून, 1979 में "भास्कर" के रूप में दूसरा कदम आगे बढ़ाया है। इसके बाद 'ऐपल' व 'इन्सेट 1-बी', 'इन्सेट 1-सी' तथा 'इन्सेट 1-डी' के रूप में प्रयत्न जारी रखे गये हैं।

प्रक्षेपास्त्र प्रक्षेपणं – 22 फरवरी, 1988 को जमीन से जमीन पर प्रहार करने वाली मिसाइल "पृथ्वी" का सफल प्रयोग श्रीहरिकोटा से किया गया। 22 मई, 1989 को 2500 किलोमीटर दूरी तक जाने में सक्षम मिसाइल "अग्नि" का सफल परीक्षण चाँदीपुर (उड़ीसा) से किया गया। इन उपलब्धियों से अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत की प्रतिष्ठा में और भी वृद्धि हुई है।

1977-83 की राजनीतिक स्थिति और गुटनिरपेक्षता

मार्च, 1977 में जब जनता सरकार ने सत्ता संभाली तो अनेक क्षेत्रों में इस बात की प्रबल आशंका की गई कि नयी सरकार गुटनिरपेक्षता की नीति पर नहीं चलेगी। लेकिन सत्ता सँभालने के कुछ ही सप्ताहों के भीतर गुटनिरपेक्ष देशों के समन्वय ब्यूरो के विदेश मन्त्रियों के सम्मेलन में जो 7 अप्रैल, 1977 को नयी दिल्ली में हुआ, नयी सरकार ने अपनी विदेश नीति को स्पष्ट कर दिया। भारतीय प्रतिनिधि मंडल के नेता तथा तत्कालीन विदेश मंत्री ने इस सम्मेलन में कहा, "हमारे लिए यह अच्छा अवसर है कि जब हम उस बात को दुहरा सकते हैं कि भारत पहले की

ही तरह गुटनिरपेक्षता की नीति का पोषक है।" 1980 में राजनीतिक स्थिति के परिवर्तन और पुनः कांग्रेस दल की सरकार की स्थापना के बाद भी यह स्थिति बनी रही। वस्तुतः भारत किसी एक महाशक्ति के प्रति अनुचित झुकाव का परिचय न देते हुए सभी देशों के साथ सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील रहा है और है।

1980 में सत्ता परिवर्तन के बाद वैदेशिक सम्बन्धों के क्षेत्र में भारत का एक महत्वपूर्ण निर्णय "स्वतन्त्र फिलिस्तीनी राष्ट्र" को मान्यता प्रदान करना है। मार्च, 1980 के अन्त में फिलिस्तीन मुक्ति मोर्चा के अध्यक्ष श्री यासर अराफात ने भारत की यात्रा की और इस यात्रा की समाप्ति पर भारत द्वारा "स्वतन्त्र फिलिस्तीनी राष्ट्र" को मान्यता प्रदान की गई। साथ ही भारत ने 4 अप्रैल, 1980 को संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद से अनुरोध किया कि परिषद "स्वतन्त्र फिलिस्तीनी राष्ट्र" को मान्यता प्रदान करें।

"अफ्रीकी दिवस" के अवसर पर 25 मई, 1986 को स्वापो के अध्यक्ष सैमनुजोमा की उपस्थिति में दिल्ली में स्वापो (दक्षिण पश्चिम अफ्रीका जन संगठन) का पहला दूतावास स्थापित किया गया। भारत का यह कार्य इस बात का परिचायक है कि भारत नामीबिया की स्वतन्त्रता के लिए कितना अधिक प्रयत्नशील रहा और अप्रैल, 1989 में नामीबिया को प्राप्त स्वतंत्रता में भारत का योगदान है।

सातवाँ गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन (7-11 मार्च, 1983) – सातवाँ गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन दिल्ली में आयोजित हुआ जिसकी अध्यक्षता इन्दिरा गाँधी ने की। उन्होंने सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए कहा, "मानव जाति एक ऐसे नाजुक कगार पर खड़ी है जहाँ विश्व की आर्थिक व्यवस्था कभी भी ढह सकती है तथा नाभिकीय युद्ध की लपटों में मनुष्य जाति का सर्वनाश हो सकता है।" उन्होंने संघर्ष और शोषण की ज़गह सह-अस्तित्व और सहयोग का आश्रय लेने पर बल दिया। नव-उपनिवेशवाद के खतरों से आगाह करते हुए निःशस्त्रीकरण, अहस्तक्षेप, रंगभेद की समाप्ति और संयुक्त राष्ट्र संघ को अधिक शक्तिशाली बनाने का आग्रह किया।

इस सम्मेलन में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका श्रीमती गाँधी की रही। उन्हें अगले तीन वर्ष (1983-85) के लिए सर्व-सम्मति से गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का अध्यक्ष चुना गया। उनकी मृत्यु (1984) के बाद शेष अवधि के लिए अध्यक्ष पद पर श्री राजीव गाँधी आसीन हुए। भारत गुटनिरपेक्ष सम्मेलन के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शान्ति बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील है। 1986 और 1989 में आयोजित आठवें और नवें गुटनिरपेक्ष सम्मेलन में भी भारत की नीति यही रही।

इस प्रकार गुट-निरपेक्षता और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व विदेश-नीति के मूल तत्व हैं। अपनी इस नीति के आधार पर ही भारतीय प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी ने दिसम्बर, 1988 में चीन और पाकिस्तान की यात्रा की। इन देशों के साथ मतभेदों को दूर करने की दिशा में प्रयत्न किये गये।

दिल्ली में छह राष्ट्रों का आणविक निरस्त्रीकरण शिखर सम्मेलन (28 जनवरी, 1985)

छह राष्ट्रों का आणविक निरस्त्रीकरण शिखर सम्मेलन दिल्ली में आयोजित हुआ जिसमें अर्जेंटीना के राष्ट्रपति राउल अल्फोसिन, यूनान के प्रधानमंत्री आंद्रेस पापांद्रिऊ, स्वीडन के

प्रधानमंत्री ओलफ पाल्म, तंजानिया के राष्ट्रपति जूलियस न्येरेरे, मेक्सिको के राष्ट्रपति मिगुएल द ला माद्रिद तथा भारत के प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी ने भाग लिया। अध्यक्षीय पद से बोलते हुए प्रधानमंत्री राजीव गाँधी ने कहा– "हमें मानव के भीतर के अंतरिक्ष में शान्ति को सुदृढ़ करना चाहिए। यह शान्ति उसके मस्तिष्क, आत्मा और भावना में सभी जगह हो। जिस प्रकार आधुनिक शस्त्र सैनिक मैत्री वाले देशों की दहलीज लाँघ रहे हैं उनसे हमें खतरा पैदा हो सकता है। ऐसा होने से कई तरह के स्थानीय और क्षेत्रीय संतुलन गड़बड़ा जायेंगे और तनाव की स्थिति पैदा होगी।"

प्रधानमंत्री राजीव गाँधी ने बड़ी शक्तियों द्वारा राष्ट्र संघ की अवहेलना और उसकी गरिमा कम करने पर भी खेद व्यक्त करते हुए कहा, "आज हालत यह है कि संयुक्त राष्ट्र संघ को भी अपनी शक्ति के तराजू में तौला जा रहा है। उसकी इकाइयों के असहयोग की भावना से अविश्वास ही बढ़ेगा, जो मानव जाति के विकास के हित में नहीं है।"

इस सम्मेलन में नये परमाणु शस्त्रों के निर्माण व परीक्षण पर रोक लगाने, वर्तमान शस्त्रों को नष्ट करने तथा रक्षा–व्यय में क्रमिक कटौती–जैसे सार्थक मुद्दे उठाकर विश्व शांति की संभावना को और बेहतर बनाने की पहल की गई।

दिल्ली में गुट–निरपेक्ष–देशों का सम्मेलन (10 अप्रैल से 21 अप्रैल, 85 तक)

नामीबिया जिस पर दक्षिण अफ्रीका ने गैरकानूनी ढंग से कब्जा कर रखा है, के सम्बन्ध में दिल्ली में निर्गुट देशों का सम्मेलन हुआ। तीन दिवसीय सम्मेलन में 81 देशों के 86 प्रतिनिधियों के अलावा 13 पर्यवेक्षकों और 18 आमंत्रितों ने एक स्वर में दक्षिण अफ्रीका की निन्दा की। सम्मेलन में दक्षिण अफ्रीका को तेल न देने से लेकर उसके साथ राजनीतिक सम्बन्ध खत्म कर देने के अतिरिक्त विदेशी पूँजी के इस्तेमाल पर रोक, हवाई और जहाजरानी सुविधाओं से उसे वंचित कर देने और खेल–कूद तथा संस्कृति के क्षेत्र में उससे कोई भी सम्बन्ध न रखने पर सहमति व्यक्त की गई। सम्मेलन में बोलते हुए भारत के प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी ने कहा, "इस सम्मेलन में एक सौ से अधिक राष्ट्रों का एक ही उद्देश्य है, इस बहादुर राष्ट्र नामीबिया के साथ एकजुटता व्यक्त करना जो कि आजादी के लिए तरस रहा है। यह एक बड़ी बात है जो हमें परस्पर एक साथ जोड़ती है। भारत ने हमेशा यह महसूस किया है कि वह अफ्रीका से बहुत निकट है। उपनिवेशवाद ने, जो इन देशों के लिए ही अभिशाप था, हमारे राजनैतिक भविष्य को एक–दूसरे से जोड़ दिया है। कोई भी चीज जो शान्ति पर दुष्प्रभाव डालती है, जो राष्ट्रों की स्वतन्त्रता को दुष्प्रभावित करती है, अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक असमताओं को बढ़ाती है, वह गुट निरपेक्ष आन्दोलन के लिए चिन्ता का विषय है.....जैसे भी हो नामीबिया जल्द आजाद होना चाहिए......।"

बदली हुई अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति (1991–95) और भारत की विदेश नीति

1991–95 में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत की विदेश नीति के मुख्य बिन्दु इस प्रकार रहे :

भारत सोवियत मैत्री संधि का नवीनीकरण (8 अगस्त, 1991) – भारत और सोवियत संघ ने शान्ति, मैत्री तथा सहयोग की ऐतिहासिक भारत–सोवियत संधि की समयावधि

बीस साल तक और बढ़ाने की घोषणा की। यह घोषणा 8 अगस्त, 1991 को मास्को और दिल्ली से एक साथ जारी की गई। वैसे इस संधि के 11वें अनुच्छेद में यह प्रावधान निहित था कि इसकी समाप्ति पर इसकी समयावधि पाँच वर्षों के लिए बढ़ जायेगी, तथापि दोनों देशों के नेतृत्व ने यह जानते हुए भी इसकी समयावधि बीस वर्षों के लिए और बढ़ाने का निश्चय किया।

भारत द्वारा सोवियत राष्ट्रकुल को राजनयिक मान्यता – दिसम्बर, 1991 में पन्द्रह गणराज्यों वाले सोवियत समाजवादी गणराज्य संघ (सोवियत संघ) अस्तित्व औपचारिक तौर पर समाप्त हो गया। इसके एस्तोनिया, लात्विया, लिथुआनिया और जार्जिया गणराज्यों को छोड़कर शेष ग्यारह गणराज्यों– रूस, बेलारूस, यूक्रेन, तुर्कमेनिया, तजाकिस्तान, उजबेकिस्तान, किरगिजिया, अजरबैजान, आर्मीनिया, मोलदाविया और कजाकिस्तान ने स्वतंत्र राज्यों का "सोवियत राष्ट्रकुल" का गठन किया। भारत ने जनवरी, 1992 में एस्तोनिया, लात्विया, लिथुआनिया को और फरवरी, 1992 में शेष गणराज्यों को राजनयिक मान्यता प्रदान की।

भारत और इजरायल में पूर्ण राजनयिक सम्बन्ध स्थापित – 20 जनवरी, 1992 को जब फिलिस्तीन के राष्ट्रपति यासर अराफात अपनी तीन दिवसीय आधिकारिक यात्रा पर भारत आये तब उन्होंने कहा कि यदि भारत चाहे तो इजरायल के साथ पूर्ण राजनयिक सम्बन्ध स्थापित कर सकता है और इससे फिलिस्तीन और भारत के सम्बन्धों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। फलतः भारत ने फरवरी, 1992 में 40 वर्ष बाद इजरायल से पूर्ण राजनयिक सम्बन्ध स्थापित किये।

भारत द्वारा दक्षिण अफ्रीका को राजनयिक मान्यता – 1993 में भारत ने दक्षिण अफ्रीका को राजनयिक मान्यता प्रदान की तथा दोनों देशों के बीच घनिष्ठ संबंधों का नया अध्याय आरम्भ हुआ।

1994–95 के दौरान भारत के चीन, अमेरिका, ब्रिटेन तथा फ्रांस के साथ द्विपक्षीय संबंधों में सुधार हुआ।

भारत की वर्तमान विदेश नीति

भारत की वर्तमान विदेश नीति निम्नलिखित लक्ष्यों को सामने रखकर चल रही है :

1. भारत अपने पड़ोसी देशों के साथ सभी क्षेत्रों में सक्रिय भागीदारी निभायेगा और यह भागीदारी आपसी बातचीत के माध्यम से तय की जायेगी।
2. पड़ोसी देशों के साथ द्विपक्षीय विवादों को सुलझाने के लिए सक्रिय प्रयास किये जायेंगे।
3. पाकिस्तान के साथ जो भी मुद्दे अनसुलझे पड़े हैं उन्हें दोनों देशों की जनता के पारस्परिक सहयोग में आड़े नहीं आने दिया जायेगा और पाकिस्तान के साथ संबंधों को दीर्घकालीन लक्ष्यों को दृष्टि में रखकर और भी मैत्रीपूर्ण बनाया जायेगा।
4. भारत अपने पड़ोसियों के साथ यथाशक्ति वित्तीय सहयोग करेगा।
5. भारत अमेरिका के साथ भी विभिन्न क्षेत्रों में सहयोग संबंध बनायेगा, लेकिन ऐसा करते हुए भी वह अपनी सम्प्रभुता एवं सुरक्षा के मामले में कोई समझौता नहीं करेगा। रूस और चीन के साथ भी सहयोग स्थापित किया जायेगा।
6. भारत किसी भी स्थिति में अपनी तरफ से पाकिस्तान के विरुद्ध परमाणु शस्त्र प्रयोग में कोई पहल नहीं करेगा।

1996 में संयुक्त मोर्चा की सरकार केन्द्र में सत्तारूढ़ हुई। 1997 में उपर्युक्त सिद्धान्तों के आधार पर मोर्चा सरकार ने अपनी विदेश नीति का जो 5 सूत्रीय प्रारूप दिया, वह प्रधानमंत्री

इन्द्र कुमार गुजराल के नाम पर 'गुजराल सिद्धान्त' नाम से जाना जाता है। इस सिद्धान्त का 5 सूत्रीय प्रारूप इस प्रकार है :-

1. भारत अपने पड़ोसियों के साथ सद्भावना एवं विश्वासपूर्ण सहयोग करते हुए उनमें किसी-भी प्रकार के प्रतिदान का आग्रह नहीं करेगा।
2. दक्षिण एशिया का कोई भी देश अन्य देश के विरुद्ध कार्यवाही के लिए अपनी भूमि का दुरुपयोग नहीं होने देगा।
3. कोई अन्य देशों के आन्तरिक मामलों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगा।
4. दक्षिण एशिया का प्रत्येक देश अन्य देश की क्षेत्रीय अखण्डता को पूरा-पूरा सम्मान देगा।
5. इस क्षेत्र में सभी देश अपने द्विपक्षीय मामले शान्तिपूर्वक परस्पर बातचीत के माध्यम से ही सुलझायेंगे।

इस नीति के फलस्वरूप नेपाल, बांग्लादेश तथा श्रीलंका के साथ द्वि-पक्षीय संबंधों में सुधार हुआ।

मार्च, 1998 में केन्द्र में सत्ता परिवर्तन हुआ और श्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में भाजपा गठबंधन की सरकार पदारूढ़ हुई। इस अवसर पर प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने स्पष्ट कहा कि भारत की वर्तमान विदेश नीति में कोई परिवर्तन नहीं होगा और वह पूर्ववत् जारी रहेगी।

परमाणु परीक्षण (1998) – भारत ने अपनी वैदेशिक नीति में यथार्थवादी नीति का तीसरा परिचय तब दिया जब उसने राजस्थान के पोखरण में 11 मई को तीन तथा 13 मई को दो सफल भूमिगत परमाणु परीक्षण किये। इस संबंध में भारत की नीति स्पष्ट है। वह परमाणु रहित विश्व में विश्वास रखता है, लेकिन यह पक्षपातपूर्ण ढंग से नहीं होना चाहिये। भारत पर पक्षपात व भेदभावपूर्ण 'अणु प्रसार निषेध संधि' (एन.टी.पी.) तथा 'व्यापक परमाणु परीक्षण प्रतिबन्ध संधि' (सी.टी.बी.टी.) समझौते पर हस्ताक्षर करने के लिए अनुचित अन्तर्राष्ट्रीय दबाव डाला जा रहा है। लेकिन भारत ने स्पष्ट कह दिया है कि किसी अनुचित दबाव के अन्तर्गत वह इन समझौतों पर हस्ताक्षर नहीं करेगा।

परमाणु नीति की घोषणा – पोखरण परमाणु विस्फोट के 13 माह पश्चात् भारत ने अपनी वैदेशिक नीति में पुनः यथार्थवादी नीति का परिचय तब दिया जब उसने 17 अगस्त, 1999 को अपनी परमाणु नीति का प्रारूप घोषित किया। प्रारूप की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं :

1. भारत को अपनी सुरक्षा के लिये परमाणु हथियारों के निर्माण तथा न्यूनतम परमाणु प्रतिरोधक क्षमता सदैव बनाये रखने का अधिकार है।
2. भारत किसी भी देश पर पहले परमाणु हथियारों से हमला नहीं करेगा और न ही उन देशों पर हमला करेगा जिनके पास परमाणु हथियार नहीं हैं।
3. भारत पर यदि परमाणु हमला किया जाता है तो वह जवाबी कार्रवाई में परमाणु शस्त्रों का प्रयोग कर सकता है।
4. भारत के पास परमाणु हथियारों का कम से कम कितना भण्डारण हो, जिससे परमाणु युद्ध की अवस्था में किसी प्रकार की कठिनाई न हो।

अक्टूबर, 1999 में केन्द्र में पुनः अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में 'राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन' की सरकार पदारूढ़ हुई। इस अवसर पर वाजपेयी जी ने कहा कि भारत अपने पड़ोसियों और विश्व के अन्य देशों के साथ अच्छे संबंध बनाने का सतत् प्रयास करता रहेगा।

मई, 2004 में 14वीं लोक सभा चुनावों के परिणामस्वरूप केन्द्र में 'राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन' के स्थान पर मनमोहन सिंह के नेतृत्व में 'संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन' की सरकार

पदारूढ़ हुई। 24 जून, 2004 को मनमोहन सिंह ने राष्ट्र के साथ अपने पहले संबोधन में विदेश नीति के बारे में कहा कि सरकार स्वतंत्र विदेश नीति कीं परम्परा पर चलती रहेगी। पाकिस्तान के साथ शांति-पूर्ण संबंधों को बनाये रखने के लिए जम्मू-कश्मीर सहित सभी विवादित मुद्दों पर बातचीत जारी रहेगी तथा चीन के साथ राजनीतिक स्तर पर सीमा-वार्ता जारी रखी जाएगी। रूस और अमेरिका के साथ संबंधों को और घनिष्ठ बनाया जायेगा।

भारत-चीन और पाक-भारत संघर्ष

> "अपने पड़ोसी देशों के साथ हम खासतौर पर अत्यन्त मित्रतापूर्ण सम्बन्ध रखने की कोशिश करेंगे और जो भी विवाद उठेंगे उन्हें शान्ति से निपटाने का प्रयत्न करेंगे।" – श्रीमती इन्दिरा गाँधी

भारत तथा चीन

1948 में च्यांक काई शेक की राष्ट्रवादी सरकार के पतन के पश्चात् चीन में साम्यवादी सरकार की प्रतिस्थापना हुई जिसे भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने शीघ्र ही मान्यता प्रदान कर दी। 1959 तक भारत और चीन के मध्य मधुर सम्बन्ध रहे।

भारत और चीन के मध्य संघर्ष के कारण

1959 के पश्चात् भारत तथा चीन के मध्य संघर्ष की स्थिति पैदा हो गई और दोनों एक दूसरे के शत्रु बन गये। भारत और चीन के मध्य संघर्ष के निम्नलिखित कारण थे :-

1. भारत द्वारा पड़ोसी राज्यों से सन्धि – स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत ने भूटान, सिक्किम तथा नेपाल के साथ मैत्रीपूर्ण सन्धियाँ कीं। सम्भवतः चीन को भारत की यह गतिविधियाँ सन्देह पूर्ण लगीं।

2. चीन द्वारा नक्शों में भारतीय क्षेत्र पर अधिकार – 1953 में चीन ने कुछ ऐसे नक्शे प्रकाशित किए जिनमें भूटान, लद्दाख और नेफा आदि उत्तर-पूर्वी सीमाओं को चीन में दिखलाया गया था और जैसे-जैसे अधिक नक्शे प्रकाशित होते गये उनमें भारत का अधिकाधिक क्षेत्र चीन का दिखाया जाता रहा। भारत द्वारा पूछे जाने पर चीनी सरकार ने उत्तर दिया कि नक्शे पुराने हैं।

3. मैकमोहन रेखा से असन्तुष्ट – दिसम्बर, 1956 में चाऊ-एन-लाई ने कहा कि भारत और चीन के मध्य सीमा के रूप में मैकमोहन रेखा मान्य नहीं है।

4. चीनियों द्वारा सड़क-निर्माण – चीन ने सिक्यांग से तिब्बत तक सड़क निर्माण का कार्य आरम्भ कर दिया। यह सड़क पूर्वी लद्दाख जो कि भारत में ही है, होकर जाती थी।

5. चीन द्वारा निर्णय का उल्लंघन – भारत और चीन के प्रतिनिधियों ने कुछ विवाद के पश्चात् यह निर्णय कर लिया था कि किसी भी देश के सैनिक दल सीमा में घुसपैठ नहीं करेंगे, लेकिन चीन ने इस निर्णय का उल्लंघन किया और भारतीय सीमा में घुसपैठ जारी रही।

1958 में चीनी सैनिक दलों द्वारा लद्दाख क्षेत्र में घुसपैठ की घटनाएँ बढ़ने लगीं। इसी दौरान चीनियों ने भारत-तिब्बत सीमा पर स्थित थप्पल और साक्यमाला में अपनी चौकियाँ बना लीं। 9 मार्च, 1959 को चीनी आक्रमणकारी ल्हासा में घुस आये। तिब्बत में चीनी सेनाओं के अमानुषिक अत्याचारों से भयभीत होकर दलाईलामा भागकर भारत आ पहुँचे। भारत ने दलाईलामा को राजनैतिक शरण प्रदान की। भारत की इस कार्यवाही से चीन अत्यधिक रुष्ट हो गया।

8 सितम्बर, 1962 को चीनी सेनाएँ अचानक मैकमोहन रेखा पार कर भारतीय सीमा में बढ़ना प्रारंभ कर दिया। 20 अक्टूबर, 1962 को उन्होंने भारतीय सीमा की पूर्वी और पश्चिमी दोनों क्षेत्रों की भारतीय चौकियों पर भीषण आक्रमण कर दिया। उस समय भारत युद्ध के लिए

तैयार न था। चीन ने भारतीय प्रदेश पर आक्रमण प्रारंभ रखा और जांग, वालों, तवांग, बोमडिला और नेफा के खिजमन नामक स्थान पर और लद्दाख में चीप चैप व चांग चेनमो घाटियों तथा पेगांग झील के क्षेत्रों में भीषण आक्रमण किया। इस युद्ध में तभी तटस्थ और पश्चिमी राष्ट्रों ने भारत की बड़ी सहायता की। अचानक 22 नवम्बर, 1962 को चीन ने एक पक्षीय युद्ध-विराम की घोषणा कर दी, क्योंकि विश्व जनमत उसके विरुद्ध हो चुका था।

कोलम्बो प्रस्ताव – 10 दिसम्बर, 1962 को श्रीलंका की प्रधानमंत्री श्रीमती भण्डारनायक ने बर्मा, कम्बोडिया, संयुक्त अरब गणराज्य और घाना का कोलम्बो में एक सम्मेलन आयोजित किया। इसका उद्देश्य भारत-चीन संघर्ष पर विचार-विमर्श करना था। शान्तिपूर्ण निपटारे का मार्ग प्रशस्त करने की दृष्टि से इस सम्मेलन ने सर्वसम्मति से निम्न प्रस्ताव पारित किये :

1. चीन पश्चिमी क्षेत्र में अपनी सैनिक चौकियाँ 20 किलोमीटर पीछे हटा ले। साथ ही भारत अपनी वर्तमान सैनिक स्थिति कायम रखे।
2. सीमा-विवाद का कोई अन्तिम फैसला होने तक चीनी सैनिकों द्वारा लिया गया क्षेत्र, विसैन्यीकृत हो और उसकी निगरानी दोनों पक्षों द्वारा नियुक्त असैनिक चौकियाँ करें।
3. पूर्वी क्षेत्र में दोनों सरकारों द्वारा मान्य नियन्त्रण रेखा युद्ध विराम का कार्य करे।
4. मध्यवर्ती क्षेत्र का समाधान शान्तिपूर्ण ढंग से किया जाय।

भारत ने कुछ स्पष्टीकरण के पश्चात् सम्पूर्ण कोलम्बो-प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। 21 जनवरी, 1963 को चीन ने कोलम्बो प्रस्ताव को सिद्धान्ततः स्वीकार कर लिया पर वास्तविकता यह थी कि उसने इन प्रस्तावों को स्वीकार न कर ठुकरा ही दिया था। अभी तक चीन ने भारत की भूमि वापस नहीं की है और न ही मैकमोहन रेखा को मान्यता दी है।

भारत तथा पाकिस्तान

भारत-पाक युद्ध (1965) – 1947 के भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम द्वारा 15 अगस्त, 1947 ई0 को भारत और पाकिस्तान दो स्वतन्त्र औपनिवेशिक राज्य बने। उस समय कश्मीर ने भारत के साथ रहना स्वीकार कर लिया था। लेकिन पाकिस्तान ने अपनी हठधर्मिता के सम्मुख इस बात को कभी स्वीकार नहीं किया कि कश्मीर भारत से मिल गया है अथवा वह उसका अभिन्न अंग है। इस प्रकार कश्मीर का प्रश्न पाक-भारत के मध्य एक समस्या बन गया। कश्मीर पर बलपूर्वक अधिकार करने के लिए पाकिस्तान ने प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया और 1949 ई0 में कश्मीर पर आक्रमण करके उसके अधिकांश भाग पर अपना अधिकार कर लिया। पाकिस्तान ने जिस भाग पर अधिकार कर लिया उसका नाम 'आजाद-कश्मीर' रखा। अन्त में कश्मीर का मामला संयुक्त राष्ट्र संघ को सौप दिया गया और दोनों पक्षों के मध्य युद्ध बन्द हो गया।

1962 में जब चीन ने भारतीय प्रदेशों पर आक्रमण किया तो भारत की संकटकालीन स्थिति से लाभ उठाकर पाकिस्तान ने पुनः कश्मीर का प्रश्न खड़ा कर दिया। लेकिन ब्रिटेन तथा अमेरिका की मध्यस्थता के कारण तत्कालीन संघर्ष टल गया तथापि दोनों देशों के बीच तनाव बना रहा। इसी बीच 27 मई, 1964 को भारत के प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू का निधन हो गया और उनके उत्तराधिकारी लालबहादुर शास्त्री हुए।

पाक-आक्रमण – प्रधानमंत्री बनने के पश्चात् शास्त्री जी को पाकिस्तान के आक्रमण

का सामना करना पड़ा। अचानक पाकिस्तान ने 5 अगस्त, 1965 को 5,000 घुसपैठिये जम्मू और कश्मीर में भेज दिये। वहाँ जाकर उन्होंने आतंक फैलाना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु कश्मीरी जनता ने इन घुसपैठियों को पकड़वाने में पुलिस एवं सेना की सहायता की। फलतः पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण कर दिया और भारत सीमा स्थित दो पुलों को नष्ट कर दिया। इसके प्रत्युत्तर में भारतीय सेनाओं ने भी कारगिल सीमा का उल्लंघन करके पाकिस्तान पर आक्रमण कर दिया तथा 3 पाकिस्तानी चौकियों पर अधिकार कर लिया। 26 अगस्त को हाजी पीर दर्रे पर भारतीयों का अधिकार हो गया।

1 सितम्बर, 1965 को एक ब्रिगेड 70 टैंकों के साथ पाकिस्तान ने 'छम्म प्रदेश' पर भीषण आक्रमण कर दिया। 5 सितम्बर को पाक सेना ने लॉरियान पर अधिकार कर अखनूर की ओर बढ़ना प्रारम्भ कर दिया। अतः भारतीय सेना ने पाकिस्तान पर स्यालकोट तथा लाहौर की ओर से आक्रमण कर दिया। भारतीय सेनाएँ इच्छोगिल नहर तक जा पहुँचीं तथा लाहौर पर तीन ओर से आक्रमण कर दिया। पाकिस्तान को लाहौर खाली करना पड़ा। भारतीय सेनाओं ने खेमकरण क्षेत्र में पाक सेनाओं को जिस तरह पराजय दी और पैटन टैंकों का जो विनाश किया वह इतिहास में सदैव स्मरणीय रहेगा।

22 सितम्बर को संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद के विशेष प्रयत्नों के परिणामस्वरूप युद्ध रोक दिया गया। इस समय यदि भारतीय सेनायें चाहतीं तो पाकिस्तान का नामोनिशाँ मिटा सकती थीं। लेकिन शास्त्री जी ने युद्ध विराम स्वीकार कर लिया। इस युद्ध में जो 49 दिनों तक चला, भारत 740 वर्ग मील और पाकिस्तान ने 280 वर्ग मील इलाके पर अधिकार किया। इस युद्ध में पाकिस्तान की अपेक्षा भारत की कम क्षति हुई, फिर भी जो हुई वह कम नहीं थी।

ताशकंद समझौता – रूस, भारत तथा पाकिस्तान के मध्य समस्त विवादों की समाप्ति चाहता था ताकि इस उपमहाद्वीप में स्थायी शान्ति स्थापित हो सके। अतः रूस के प्रधानमंत्री कोसीगिन ने भारत तथा पाकिस्तान में वार्ता कराने के लिए ताशकन्द शिखर वार्ता का आयोजन किया। 4 जनवरी 1966 को यह वार्ता प्रारम्भ हुई और 10 जनवरी, 1966 को दोनों देशों के मध्य समझौता हो गया।

ताशकन्द समझौते की मुख्य शर्तें

ताशकन्द समझौते की मुख्य शर्तें निम्नलिखित हैं :-

1. भारत के प्रधानमंत्री और पाकिस्तान के राष्ट्रपति इस पर सहमत हुए की दोनों ओर से भारत और पाकिस्तान के बीच अच्छे पड़ोसियों का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा-पत्र के अनुसार पूरे प्रयत्न किए जायेंगे।
2. दोनों पक्ष इस बात पर सहमत हुए कि दोनों देशों के सब सशस्त्र आदमी 25 फरवरी, 1966 तक उन ठिकानों पर वापस लौट जायेंगे, जहाँ वे 5 अगस्त, 1965 के पहले थे और दोनों पक्ष युद्ध विराम की शर्तों का पालन करेंगे।
3. दोनों पक्ष इस बात पर सहमत हुए कि भारत और पाकिस्तान के सम्बन्धों का आधार इस सिद्धान्त पर होगा कि एक दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं किया जायगा।
4. दोनों पक्षों ने इस बात पर भी सहमति व्यक्त की कि दोनों के उच्चायुक्त अपने पदों पर वापस चले जाएँगे और दोनों देशों में राजनयिक सम्बन्ध फिर से स्थापित किए जाएँगे।
5. दोनों पक्ष इस बात पर भी सहमत हुए कि दोनों देशों में एक-दूसरे के विरुद्ध प्रचार को

रोका जायगा और ऐसे प्रचार को बढ़ावा दिया जायगा, जिससे दोनों देशों में मित्रता का सम्बन्ध बढ़े।

6. दोनों पक्ष इस बात पर भी सहमत हुए कि अपने सम्बन्धित अधिकारियों को आदेश दें कि युद्ध-बन्दियों की अदला-बदली की जाय।
7. दोनों पक्ष इस बात पर भी सहमत हुए कि वे भारत और पाकिस्तान के आर्थिक सम्बन्ध व्यापार, संचार और सांस्कृतिक सम्पर्क को फिर से स्थापित करने की कार्रवाई पर विचार करें।
8. दोनों पक्ष शरणार्थियों, निष्कासितों, गैर कानूनी बसने वालों की समस्याओं से सम्बन्धित प्रश्नों पर विचार विनिमय जारी रखेंगे।
9. दोनों पक्ष इस बात पर भी सहमत हुए कि संघर्ष के सिलसिले में एक-दूसरे द्वारा एक-दूसरे की जिस सम्पत्ति और माल पर अधिकार कर लिया है कि उसे वापस करने के लिए विचार-विमर्श हो।
10. दोनों पक्ष इस बात पर भी सहमत हुए कि जिन मामलों का दोनों देशों से सीधा सम्बन्ध है, उन पर विचार के लिए दोनों पक्षों की सर्वोच्च और अन्य स्तरों की बैठकें होती रहेंगी तथा भारत-पाकिस्तान की संयुक्त समितियाँ नियुक्त की जायँ जो अपनी-अपनी सरकार को बतायें कि आगे और क्या कदम उठाये जायँ।

भारत-पाक युद्ध (1971) – पाकिस्तान भारत से 1965 की पराजय का बदला लेना चाहता था। पाकिस्तान के राष्ट्रपति याह्या खाँ ने 25 नवम्बर, 1971 को यह वक्तव्य दिया, "भारत के साथ दस दिन में युद्ध शुरू हो जायगा।" लेकिन एक दिन पूर्व ही 3 दिसम्बर, 1971 को पाकिस्तान ने भारत पर व्यापक आक्रमण कर दिया। प्रत्युत्तर में भारतीय सेनाओं ने आगे बढ़ना प्रारम्भ किया। अन्त में, 16 दिसम्बर, 1971 को चौदह दिन के अन्दर ही पाक-सेना ने हथियार डाल दिये। 17 दिसम्बर, 1971 को पश्चिमी मोर्चे पर भी युद्ध विराम हो गया। इस युद्ध में 93 हजार पाक सैनिक बन्दी बनाए गए। युद्ध विराम के पश्चात् दोनों पक्षों में शान्ति समझौते की प्रक्रिया शुरू हुई, अप्रैल, 1972 में भारत और पाकिस्तान के राष्ट्रपति के प्रतिनिधियों के मध्य एक उच्चस्तरीय वार्ता हुई जिसमें यह तय किया गया कि पाकिस्तान के राष्ट्रपति तथा भारत के प्रधानमंत्री जून, 1972 में मिलेंगे।

शिमला समझौता (1972) – भारत-पाक युद्ध (1971) के बाद दोनों देशों में शिमला समझौता हुआ। 28 जून से 2 जुलाई, 1972 तक शिमला में दोनों पक्षों के मध्य वार्ताएँ हुईं। अन्त में श्री भुट्टो और इन्दिरा गाँधी ने शिमला समझौते पर हस्ताक्षर किये। इस समझौते की प्रमुख बातें निम्नलिखित थीं :

1. दोनों देश आपसी मतभेद को समाप्त कर एशिया उपमहाद्वीप में शान्ति बनाये रखने का प्रयत्न करेंगे और अपने साधनों का प्रयोग जनहित के लिए करेंगे।
2. दोनों देश आपसी विवादों को द्विपक्षीय वार्ता द्वारा हल करेंगे।
3. दोनों पक्ष एक दूसरे के विरुद्ध बल का प्रयोग नहीं करेंगे और न ही राजनीतिक हस्तक्षेप करेंगे।
4. दोनों देशों द्वारा एक-दूसरे के विरुद्ध अनुचित प्रचार नहीं किया जायेगा।
5. दोनों देशों की सेनायें, अन्तर्राष्ट्रीय सीमा पर लौट जायेंगी।

6. दोनों देश संचार, व्यापार तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में एक-दूसरे के साथ सहयोग करेंगे।
7. समय-समय पर दोनों देशों के नेताओं के मध्य पुनः मैत्री वार्ताएँ की जायँगी।

शिमला समझौता सम्पन्न होने के बाद भी भारत-पाक सम्बन्धों में मधुरता नहीं आ सकी, बल्कि समय-समय पर तरह-तरह के उतार-चढ़ाव आते रहे। भारत-पाक के मध्य कुछ प्रमुख विवादित मुद्दे ऐसे हैं जिनके कारण दोनों देशों के सम्बन्धों में मधुरता नहीं आ पा रही है। इनमें कश्मीर का मामला सर्वोपरि है और इस मामले में आज तक न तो कोई सहमति बनी है और न ही फिलहाल किसी प्रकार का समझौता होने की उम्मीद है क्योंकि पाकिस्तान पूरे कश्मीर पर गिद्ध दृष्टि लगाये बैठा है। दूसरी तरफ भारतीय संसद गुलाम कश्मीर की आज़ादी के लिए बाकायदा प्रस्ताव पारित कर चुकी है। दरअसल भारत में जिस जम्मू-कश्मीर का विलय हुआ था उसमें गुलाम कश्मीर भी है और वह हिस्सा भी है जिसे पाकिस्तान व चीन में मिलाया जा चुका है।

भारत-पाक के मध्य सियाचिन ग्लैशियर दूसरा प्रमुख विवाद है। यह सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्व वाला क्षेत्र है। पाकिस्तान इसे अपने आधिपत्य में लेना चाहता है क्योंकि इससे उसकी स्थिति काफी मजबूत हो जायेगी। तीसरा मुद्दा निरस्त्रीकरण से सम्बन्धित है। पाकिस्तान की इच्छा यह है कि जब तक कश्मीर मामला सुलझ न जाय तब तक भारत प्रक्षेपास्त्रों एवं नाभिकीय हथियारों का विकास न करने पाये जबकि स्वयं पाकिस्तान भारी मात्रा में हथियारों का जखीरा एकत्र कर रहा है। इनके अतिरिक्त कुछ साधारण विवाद भी हैं जिनमें वुल्लर बैराज, सरक्रीक सीमा निर्धारण, व्यापार व सांस्कृतिक सम्बन्ध। वुल्लर बैराज, तुलबुल परियोजना है। वुल्लर बैराज से भारत ज्यादा पानी लेना चाहता है, परन्तु पाकिस्तान इसके लिए तैयार नहीं है। इसी तरह सरक्रीक सीमा निर्धारण के लिए भी पाकिस्तान तैयार नहीं हो रहा है। जहाँ तक व्यापार व सांस्कृतिक सम्बन्धों की बात है तो इस क्षेत्र में अनेक समझौते हो चुके हैं। 1997 में भारत ने वीजा नियमों में एकतरफा ढील देकर सम्बन्धों को मजबूत बनाने का कार्य किया है।

भारत-पाक मध्य लाहौर शांति-प्रक्रिया (1999)

20 फरवरी, 1999 को लाहौर बस सेवा की उद्घाटन यात्रा में भारत के प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने पाकिस्तान की ऐतिहासिक यात्रा की। नवाज शरीफ ने भारतीय प्रधानमंत्री को इस यात्रा के लिए आमंत्रित किया था। 21 फरवरी, 1999 को दोनों प्रधानमंत्रियों ने "लाहौर घोषणा-पत्र" पर हस्ताक्षर किये। घोषणापत्र में दोनों देशों ने ज़म्मू-कश्मीर और परमाणु कार्यक्रमों पर आगे बातचीत जारी रखने की प्रतिबद्धता प्रकट की। दोनों पक्षों ने 1972 के शिमला समझौते को पूरी ईमानदारी से लागू करने की प्रतिबद्धता दोहराई। घोषणापत्र में दोनों देशों की जनता की भलाई के लिए शांति और स्थायित्व पर जोर दिया गया। जनता की समृद्धि और प्रगति के लिए इस क्षेत्र में टिकाऊ शांति, सौहार्दपूर्ण संबंध और सहयोग बहुत जरूरी है, इसलिए दोनों देश अपनी ऊर्जा का इस्तेमाल बेहतर भविष्य बनाने के लिए करेंगे। घोषणापत्र में दोनों पक्षों ने एक-दूसरे के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने की बात भी स्वीकार की।

भारत-पाक सहमति-पत्र

इस यात्रा के दौरान भारत के विदेश मंत्री जसवंत सिंह और पाकिस्तान के विदेश मंत्री सरताज़ अज़ीज़ ने एक सहमति-पत्र पर भी हस्ताक्षर किए। सहमति-पत्र के प्रमुख बिन्दु इस प्रकार हैं :-

1. किसी भी संघर्ष को रोकने के उद्देश्य से दोनों पक्ष सुरक्षा के मुद्दों पर द्विपक्षीय विचार-विमर्श जारी रखेंगे ताकि परमाणु और परंपरागत हथियारों के मामले में विश्वास कायम हो सके।
2. दोनों पक्ष बैलिस्टिक मिसाइलों के परीक्षण के बारे में एक-दूसरे को अग्रिम सूचना देंगे और द्विपक्षीय सहमति के बाद ही ऐसे परीक्षण किये जायेंगे।
3. दोनों पक्ष किसी दुर्घटना के अन्तर्गत या अवैध रूप से परमाणु हथियारों के इस्तेमाल को रोकने के प्रति पूर्णतया प्रतिबद्ध रहेंगे। इस तरह की किसी भी दुर्घटना, अवैध और अनजानी घटना के तुरन्त बाद दोनों पक्ष इसकी जानकारी का आदान-प्रदान करेंगे ताकि इससे होने वाले किसी तरह के दुष्परिणाम से बचा जा सके तथा इससे दोनों देशों के बीच परमाणु युद्ध न भड़क जाये।
4. दोनों पक्ष परमाणु परीक्षण नहीं किये जाने संबंधी अपनी घोषणा पर अमल करेंगे। परन्तु यदि कोई भी पक्ष किन्हीं परिस्थितियों में इस तरह का परीक्षण करना चाहे तो उसे दूसरे पक्ष को इसकी जानकारी देनी होगी।
5. समुद्र की सतह पर घटने वाली घटनाओं को रोकने के लिए दोनों पक्षों द्वारा एक समझौते को अंतिम रूप देने का निर्णय लिया गया।
6. दोनों पक्ष वर्तमान सम्पर्क माध्यमों की समीक्षा करेंगे ताकि उन्हें विकसित और उच्चीकृत किया जा सके तथा सम्पर्क माध्यम बनाया जा सके।
7. दोनों पक्ष सुरक्षा, निरस्त्रीकरण और परमाणु अप्रसार के मुद्दों पर अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ के मुताबिक द्विपक्षीय वार्ता जारी रखेंगे।

कारगिल संघर्ष : पाकिस्तान की पराजय

फरवरी, 1999 में प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की पाकिस्तान की यात्रा से भारतीय उप महाद्वीप में एक नई आशा का संचार हुआ, किन्तु आशा को निराशा में बदलने में ज्यादा समय नहीं लगा क्योंकि जिस समय भारतीय प्रतिनिधि मण्डल पाकिस्तान में शांति बहाली पर बातचीत कर रहा था, उसी समय पाकिस्तानी घुसपैठिये कारगिल की चोटियों पर काबिज होकर लाहौर शांति वार्ता पर पानी फेरने की पृष्ठभूमि तैयार कर चुके थे।

मई, 99 की शुरुआत में भारतीय सैन्य खुफिया विभाग ने सूचना दी कि कश्मीर के कारगिल क्षेत्र में कई सौ पाकिस्तानी घुसपैठियों ने कब्जा कर लिया है। आरम्भ में भारतीय सेना स्थिति की गंभीरता को न समझ सकी, किन्तु जब थल सेना ने घुसपैठियों को हटाने के लिए अभियान चलाया तो उसे स्थिति की गंभीरता का अनुमान लगा। फलतः भारतीय सेना ने 14 मई, 1999 को सभी प्रभावित सेक्टरों में घुसपैठियों को मार भगाने के लिए 'ऑपरेशन फ्लश-आउट' शुरू किया। इस कार्यवाही में भारतीय सेना ने घुसपैठियों को चारों ओर से घेर लिया और उन्हें पूरी तरह समाप्त करने के लिए वायु सेना की मदद लेना अपरिहार्य हो गया। अतः 26 मई, 1999 को भारतीय वायु सेना ने कारगिल पाकिस्तानी सैनिकों और मुजाहिद्दीनों पर वायु सैनिक हमले शुरू किये। थल सेना और वायुसेना द्वारा संयुक्त रूप से छेड़े गये इस अभियान का नामकरण 'ऑपरेशन विजय' किया गया। पाकिस्तान ने इसे भड़काने वाली कार्यवाही की संज्ञा दी और विश्व समुदाय से हस्तक्षेप की अपील की। 27 मई, 1999 को 'ऑपरेशन विजय' में उस समय खतरनाक मोड़ आया जब भारतीय मिग-21 विमान पाकिस्तान ने मार गिराया

जबकि एक अन्य मिग-27 विमान इंजन में गड़बड़ी की वजह से क्षतिग्रस्त हो गया। इस घटना से दोनों देशों के बीच और भी तनाव बढ़ गया। जहाँ मिग-21 विमान के चालक फ्लाइट लेफ्टिनेंट के० नचिकेता को पाकिस्तान ने युद्धबंदी बना लिया वहीं क्षतिग्रस्त मिग-27 के चालक स्क्वैड्रन लीडर अजय आहूजा की पाकिस्तान में गोली मारकर हत्या कर दी गई। भारतीय वायुसेना को उस समय एक और धक्का लगा, जब 28 मई, 1999 को एक एम आई 17 हेलिकॉप्टर घुसपैठियों ने मार गिराया। इसमें सवार चार सैनिकों की मृत्यु हो गई। 30 मई, 1999 को भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव कोफी अन्नान द्वारा कारगिल संकट को समाप्त करने के लिए विशेष दूत भेजने के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। इस बीच अमेरिका और ब्रिटेन सहित विश्व के प्रमुख राष्ट्रों ने कारगिल संकट पर अपनी चिंता जाहिर की। रूस ने भारत को पूर्ण सहयोग देने का वचन दिया।

3 जून, 1999 को पाकिस्तान ने फ्लाइट लेफ्टिनेंट के० नचिकेता को रिहा करके भारत को सौंप दिया। 3 जून, को ही पाकिस्तान ने 740 किमी लम्बी वास्तविक नियंत्रण रेखा की वैधता पर प्रश्न उठाते हुए कहा कि इसका सीमांकन स्पष्ट नहीं है। 9 जून, 1999 को पाकिस्तान ने 6 भारतीय जवानों के क्षत-विक्षत शव वापस लौटाए। पाकिस्तान के विदेश मंत्री 12 जून को बातचीत के लिए भारत आए। कारगिल को विवादास्पद कश्मीर का हिस्सा बताते हुए सरताज़ अज़ीज़ ने भारतीय विदेश मंत्री जसवंत सिंह से कहा कि इसे कश्मीर समस्या से अलग हटकर नहीं देखा जा सकता। भारतीय विदेशमंत्री ने मांग रखी कि कारगिल से तुरंत घुसपैठियों को वापस बुलाया जाये व भारतीय सैनिकों के साथ बर्बर व्यवहार करने वालों को दंडित किया जाये। इन बातों का कोई नतीजा नहीं निकला और सरताज़ अज़ीज़ खाली हाथ पाकिस्तान वापस लौट गये।

'ऑपरेशन विजय' के दौरान भारतीय सेना को उस समय महत्वपूर्ण सफलता मिली जब 13 जून, 1999 को उसने महत्वपूर्ण तोलोलिंग और प्वाइंट 4590 चोटियों पर अधिकार जमा लिया। 23 जून, 1999 को भारतीय सेना ने एक अन्य महत्वपूर्ण चोटी 'प्वाइंट 5203' पर अधिकार जमा लिया। 29 जून, 99 को भारतीय सेना ने दो महत्वपूर्ण चोटियों 'प्वाइंट 4700' और 'ब्लैक रॉक' पर पुनः अधिकार जमा लिया। कारगिल मुद्दे पर पाकिस्तान को उस समय भारी धक्का लगा जब 1 जुलाई' 99 को अमेरिकी कांग्रेस के एक पैनल ने पाकिस्तान को कारगिल से तुरंत हटने को कहा। इस मुद्दे पर चीन ने भी पाकिस्तान को समर्थन देने से इंकार कर दिया। नवाज शरीफ ने जुलाई के प्रथम सप्ताह में चीन का दौरा किया। किन्तु उन्हें इस दौरे को बीच में ही समाप्त करना पड़ा। घुसपैठियों की वापसी के प्रश्न पर 4 जुलाई, 99 को नवाज शरीफ की अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन के साथ एक लिखित सहमति वाशिंगटन में हुई। अमेरिकी राष्ट्रपति ने भारतीय प्रधानमंत्री को भी बातचीत के लिए वाशिंगटन बुलाया था किन्तु उन्होंने इस निमंत्रण को अस्वीकार कर दिया।

5 जुलाई, 99 को भारतीय जवानों ने ऑपरेशन विजय के दौरान सबसे बड़ी सफलता प्राप्त करते हुए महत्वपूर्ण 'टाइगर हिल्स' चोटी पर पुनः अधिकार जमा लिया। इससे श्रीनगर-लेह राजमार्ग से खतरा पूरी तरह समाप्त हो गया। 6 जुलाई को भारतीय जवानों ने 'जुबार' पहाड़ी पर भी अधिकार कर लिया। 10 जुलाई को पाकिस्तान में आतंकवादी गुटों के संगठन 'यूनाइटेड जेहाद काउंसिल' के नेताओं ने कारगिल से मुजाहिद्दीनों को वापस बुलाने से इंकार कर दिया। इस बीच भारतीय सेना ने अपना विजय अभियान जारी रखा। 11 जुलाई को भारत व पाकिस्तान

के सैन्य ऑपरेशन के प्रमुखों की अटारी में बैठक हुई जिसमें घुसपैठियों की वापसी हेतु 16 जुलाई की समय सीमा निर्धारित की गई। भारत ने हवाई हमले स्थगित कर दिए। 14-15 जुलाई तक मश्कोह घाटी के अतिरिक्त लगभग समस्त कारगिल क्षेत्र पर भारतीय सेना का कब्जा हो चुका था। 16 जुलाई को पाकिस्तान के अनुरोध पर घुसपैठियों की वापसी की समय सीमा में एक दिन की वृद्धि कर दी गई है। 26 जुलाई, 1999 को सेना की 15वीं कोर के सेनानायक लेफ्टीनेंट जनरल कृष्णपाल ने समूचे कारगिल को पाकिस्तान सैनिकों से मुक्त घोषित कर दिया। कारगिल 'आपरेशन विजय' के दौरान लगभग 500 भारतीय सैनिक शहीद हुए।

भारत-पाक आगरा शिखर वार्ता (जुलाई 2001)

कारगिल संघर्ष के बाद 25 मई, 2001 को भारतीय प्रधान मंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने पाकिस्तान के फौजीशासक परवेज मुशर्रफ को द्वि-पक्षीय वार्ता के लिए भारत आने का निमंत्रण दिया, जिसे मुशर्रफ ने स्वीकार कर लिया। 14 जुलाई को मुशर्रफ वार्ता हेतु भारत आए। 15 व 16 जुलाई को आगरा में शिखर वार्ता का आयोजन किया गया। लेकिन अन्त में आगरा शिखर वार्ता बिना किसी सार्थक परिणाम के समाप्त हो गई।

असफलता के कारण – आगरा शिखर वार्ता की असफलता के मुख्य कारण निम्नलिखित थे-

1. शिखर वार्ता में सीमा पारीय आतंकवाद के मुद्दे को शामिल न करने की मुशर्रफ ने जिद की, जबकि भारत का कहना था कि वार्ता में आतंकवाद के मुद्दे को मुख्य रूप से शामिल किया जाय।
2. शिमला समझौता व लाहौर घोषणा-पत्र के अनुपालन में मुशर्रफ ने अनिच्छा प्रकट की। इसके विपरीत भारत का कहना था कि वार्ता शिमला समझौता व लाहौर घोषणा-पत्र की पृष्ठभूमि में ही आगे होनी चाहिए।
3. शिखर वार्ता में पाकिस्तान केवल कश्मीर के मुद्दे पर ही ध्यान केन्द्रित करना चाहता था, जबकि भारत सियाचिन में सैनिकों को कम करना, व्यापार को प्रोत्साहन देना, आतंकवादी गुटों पर नियंत्रण करना और कश्मीर में राजनीतिक प्रक्रिया शुरू करना आदि अन्य मुद्दों पर भी वार्ता करना चाहता था।
4. भारत की अनिच्छा के बावजूद पाकिस्तानी राष्ट्रपति मुशर्रफ ने हुर्रियत नेताओं से बन्द कमरे में बातचीत की।
5. भारत की स्वीकृति लिए बिना सम्पादकों व पत्रकारों के साथ राष्ट्रपति मुशर्रफ की बैठक का प्रसारण किया जाना।

इस प्रकार उपर्युक्त बातों के कारण आगरा शिखर वार्ता बिना किसी सार्थक परिणाम के समाप्त हो गई।

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ (Important Dates & Events)

1. 1962 ई.- भारत-चीन युद्ध।
2. 1965 ई.- भारत-पाक युद्ध।
3. 1971 ई.- भारत-पाक युद्ध तथा भारत-सोवियत मैत्री-सन्धि।
4. 1983 ई.- दिल्ली में सातवाँ गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन।
5. 1984 ई.- श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या।

6. 1999 ई- कारगिल संकट और पाकिस्तान की पराजय।
7. 2001 ई.- भारत-पाक आगरा शिखर वार्ता।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. भारतीय संविधान की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।(1974,86,92,99,2005)
2. स्वतन्त्र भारत की विदेश नीति की विवेचना कीजिए। (1976)
3. भारत के संविधान में उल्लिखित मुख्य मौलिक आधिकारों का उल्लेख कीजिए तथा उनके महत्व और उपयोगिता की व्याख्या कीजिए। (1991)
4. प्रारम्भ से अब तक पंचवर्षीय योजनाओं की उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए। (1998)
5. पंचशील के सिद्धान्तों की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए। (2003)
6. स्वतंत्र भारत की विदेश नीति के निर्धारण में जवाहरलाल नेहरू की भूमिका की विवेचना कीजिए। (2004,06)
7. स्वतंत्र भारत में सुनियोजित विकास के क्रम में पंचवर्षीय योजनाओं का क्या योगदान है? (2004)
8. 1909 के अधिनियम की प्रमुख धाराओं एवं महत्व का वर्णन कीजिए। (उ.प्र.2005)
9. 1935 के अधिनियम की मुख्य विशेषताएँ क्या थीं? (उ.प्र.2005)
10. भारतीय विदेश नीति की प्रमुख विशेषताएँ बताइए। क्या हम इसे सफल मान सकते हैं? (उ.प्र.2007)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "भारत-प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य है।" इस तथ्य की समीक्षा कीजिए। (1985,87)
2. "पंचशील भारत की विदेश नीति की आधारशिला है।" स्पष्ट कीजिए। (1985)
3. "भारत की विदेश-नीति का मूल उद्देश्य विश्व के समस्त राष्ट्रों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना है।" स्पष्ट कीजिए। (1986)
4. "भारतीय गणतन्त्र का संविधान एक अद्भुत दस्तावेज है।" इस कथन के आधार पर संविधान की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए। (1988)
5. "पंडित जवाहरलाल नेहरू ने स्वतंत्र भारत की विदेश नीति की आधारशिला रखी।" व्याख्या कीजिए। (1990)
6. "स्वतंत्र भारत की वैदेशिक नीति के आधार पंचशील के सिद्धान्त हैं।" स्पष्ट कीजिए। (1996)
7. "भारतीय संविधान में संशोधन की प्रक्रिया समय के साथ चलने की एक मिसाल है।" इस कथन के परिप्रेक्ष्य में भारतीय संविधान में संशोधन प्रक्रिया तथा किन्हीं चार प्रमुख संशोधनों का वर्णन कीजिए। (उ.प्र.2003)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. भारतीय संविधान की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं?
2. प्रथम पंचवर्षीय योजना का उल्लेख कीजिए।

3. द्वितीय पंचवर्षीय योजना का उल्लेख कीजिए।
4. तृतीय पंचवर्षीय योजना का वर्णन कीजिए।
5. चौथी पंचवर्षीय योजना का वर्णन कीजिए।
6. पाँचवीं पंचवर्षीय योजना का उल्लेख कीजिए।
7. छठी पंचवर्षीय योजना का उल्लेख कीजिए।
8. सातवीं पंचवर्षीय योजना का उल्लेख कीजिए।
9. आठवीं पंचवर्षीय योजना का विवरण दीजिए।
10. भारत की विदेश नीति की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं ?
11. भारत और चीन के मध्य संघर्ष के कारण क्या थे ?
12. ताशकंद समझौते की मुख्य शर्तें क्या थीं ?
13. भारत की गुट-निरपेक्ष नीति का क्या तात्पर्य है ?
14. 'पंचशील' से आप क्या समझते हैं ? इसके पाँच सिद्धान्त कौन से हैं?
15. कारगिल संकट के बारे में आप क्या जानते हैं ?

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. संविधान देश में कब लागू किया गया?
संविधान देश में 26 जनवरी, 1950 ई. को लागू किया गया।
2. भारतीय संविधान के कितने अनुच्छेद तथा अनुसूचियाँ हैं?
भारतीय संविधान में 395 अनुच्छेद तथा 12 अनुसूचियाँ हैं।
3. भारतीय संविधान की दो विशेषताएँ बताइए।
(1) समाजवादी समाज की स्थापना, तथा (2) पंथ-निरपेक्ष राज्य की स्थापना।
4. संविधान में उल्लिखित कोई एक मौलिक कर्तव्य बताइए।
भारत की प्रभुता, एकता और अखण्डता की रक्षा करना और उसे अक्षुण्ण बनाये रखना।
5. हैदराबाद का भारतीय संघ में विलय कब हुआ?
18 सितम्बर, 1948 ई. को हैदराबाद का भारतीय संघ में विलय हुआ।
6. भारतीय राज्यों का पुनर्गठन कब किया गया?
1956 ई. में भारतीय राज्यों का पुनर्गठन किया गया।
7. जम्मू-कश्मीर का भारत में विलयन का वर्ष बताइए।
1954 ई. में जम्मू-कश्मीर का भारत में विलयन हुआ।
8. स्वतंत्रता के बाद भारत में पुर्तगाली उपनिवेशों के नाम बताइए।
भारत में गोवा, दमन तथा दीव पुर्तगाली उपनिवेश थे।
9. भारत में प्रथम पंचवर्षीय योजना कब लागू की गई।
1951 ई. में प्रथम पंचवर्षीय योजना लागू की गई।
10. भारत-पाक के बीच शिमला समझौता कब हुआ?
भारत-पाक के बीच शिमला समझौता 1972 ई. में हुआ।
11. भारत की विदेशी नीति की दो विशेषताएँ लिखिए।
(1) गुटनिरपेक्षता, तथा (2) शांतिपूर्ण सह-आस्तित्व।

बहुविकल्पीय प्रश्न

निर्देश : नीचे दिये गये प्रत्येक प्रश्न के चार विकल्पों में से सही विकल्प छाँटकर लिखिए :

1. भारत-चीन युद्ध कब हुआ था?
(क) 1960 ई., (ख) 1961 ई.,
(ग) 1962 ई., (घ) 1963 ई.।

2. द्वितीय भारत-पाक युद्ध कब हुआ था?
(क) 1965 ई., (ख) 1968 ई., (ग) 1971 ई., (घ) 1972 ई.।

3. भारत-सोवियत मैत्री-संधि कब हुई थी?
(क) 1964 ई., (ख) 1967 ई., (ग) 1971 ई., (घ) 1973 ई.।

4. दिल्ली में सातवाँ गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन कब हुआ था?
(क) 1971 ई., (ख) 1980 ई., (ग) 1983 ई., (घ) 1985 ई.।

5. भारत-पाक आगरा शिखर वार्ता कब सम्पन्न हुई थी?
(क) 1984 ई., (ख) 1999 ई., (ग) 2001 ई., (घ) 2002 ई.।

6. भारत की आठवीं पंचवर्षीय योजना किस सन् में आरम्भ हुई?
(क) 1991 ई., (ख) 1992 ई., (ग) 1993 ई., (घ) 1994 ई.।

7. योजना आयोग की स्थापना किस वर्ष हुई थी?
(क) 1947 ई., (ख) 1948 ई., (ग) 1950 ई., (घ) 1952 ई.।

8. भारत-पाक के मध्य कारगिल संघर्ष किस वर्ष हुआ था?
(क) 1997 ई., (ख) 1998 ई., (ग) 1999 ई., (घ) 2000 ई.।

9. प्रथम पंचवर्षीय योजना का क्रियान्वयन वर्ष कौन-सा था?
(क) 1951 ई., (ख) 1956 ई., (ग) 1959 ई., (घ) 1961 ई.।

10. दसवीं पंचवर्षीय योजना का क्रियान्वयन वर्ष कौन-सा था?
(क) 2001 ई., (ख) 2002 ई., (ग) 2003 ई., (घ) 2005 ई.।

11. निम्नलिखित में से कौन-सी भारतीय विदेश नीति की विशेषता नहीं है?
(क) गुटनिरपेक्षता (ख) शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व
(ग) उपनिवेशवाद का समर्थन (घ) जातीय भेदभाव का विरोध।

12. भारत-पाक के मध्य 'शिमला समझौता' कब हुआ था?
(क) 1971 ई., (ख) 1972 ई., (ग) 1975 ई., (घ) 1976 ई.।

13. भारत में गणराज्य की स्थापना कब हुई थी?
अथवा
भारत का संविधान किस वर्ष लागू किया गया?
(क) 1947 ई., (ख) 1950 ई., (ग) 1952 ई., (घ) 1955 ई.।

14. भारत के प्रथम आम चुनाव कब हुए?
अथवा
लोक सभा का प्रथम आम निर्वाचन कब हुआ?
(क) 1950 ई., (ख) 1951 ई., (ग) 1952 ई., (घ) 1953 ई.।

15. किस पंचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य गरीबी हटाओ रखा गया?
(क) पाँचवी पंचवर्षीय योजना (ख) छठवीं पंचवर्षीय योजना,
(ग) चौथी पंचवर्षीय योजना, (घ) सातवीं पंचवर्षीय योजना।

■

परिशिष्ट 'क'

भारतीय इतिहास की प्रमुख तिथियाँ

(सन् 1526 ई0 से आधुनिक काल तक)

1483 ई0 – बाबर का जन्म ।
1498 " – बाबर का काबुल पर अधिकार ।
1508 " – हुमायूँ का जन्म ।
1510 " – बाबर की समरकन्द विजय ।
1519 " – बाबर का भारत पर प्रथम अभियान ।
1526 " – पानीपत का प्रथम युद्ध और मुगल वंश की स्थापना ।
1527 " – खानवा का युद्ध और राणा साँगा की पराजय ।
1529 " – घाघरा का युद्ध और अफगानों की पराजय ।
1530 " – बाबर की मृत्यु और हुमायूँ का गद्दी पर बैठना ।
1535 " – बहादुरशाह का चित्तौड़ पर अधिकार ।
1538 " – गुरुनानक देव का निधन ।
1539 " – राणा प्रताप का जन्म, चौसा का युद्ध, शेर खाँ द्वारा हुमायूँ की पराजय ।
1540 " – कन्नौज का युद्ध और हुमायूँ की दूसरी पराजय, शेरशाह का गद्दी पर बैठना ।
1542 " – अकबर का जन्म ।
1545 " – शेरशाह की मृत्यु ।
1555 " – हुमायूँ द्वारा इस्लामशाह को हराकर दिल्ली की गद्दी पर पुनः अधिकार ।
1556 " – हुमायूँ की मृत्यु, पानीपत का द्वितीय युद्ध ।
1561 " – बैरम खाँ की मृत्यु, अकबर की मालवा-विजय ।
1564 " – अकबर ने जजिया तथा हिन्दुओं पर लगे तीर्थयात्रा कर को समाप्त किया ।
1568 " – अकबर की चित्तौड़ विजय ।
1569 " – जहाँगीर का जन्म ।
1571 " – अकबर द्वारा फतेहपुर सीकरी नगर की स्थापना ।
1572 " – अकबर की गुजरात विजय ।
1575 " – अकबर की बंगाल विजय ।
1576 " – हल्दीघाटी का युद्ध ।
1577 " – अकबर द्वारा मनसबदारी प्रणाली शुरू ।
1581 " – अकबर की काबुल विजय ।
1582 " – अकबर द्वारा 'दीन-ए-इलाही' धर्म की स्थापना ।
1592 " – शाहजहाँ का जन्म ।
1595 " – अकबर की कन्धार विजय व फैजी की मृत्यु ।
1597 " – राणा प्रताप की मृत्यु ।
1600 " – अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना । चाँदबीबी की मृत्यु ।
1601 " – असीरगढ़ की विजय, डच व्यापारिक कम्पनी की स्थापना ।
1602 " – अबुल फजल का वध ।

1603 " – अकबर के पुत्र सलीम (जहाँगीर) का विद्रोह ।
1605 " – अकबर की मृत्यु, जहाँगीर का गद्दी पर बैठना ।
1606 " –खुसरो का विद्रोह, जहाँगीर के आदेश पर पाँचवें सिख गुरु अर्जुनदेव को प्राणदंड ।
1608 " – हाकिन्स का जहाँगीर के दरबार में आगमन ।
1611 " – नूरजहाँ का जहाँगीर के साथ विवाह ।
1615 " – सर टॉमस रो का जहाँगीर के दरबार में आगमन ।
1627 " – जहाँगीर की मृत्यु । शिवाजी का जन्म ।
1628 " – शाहजहाँ का गद्दी पर बैठना ।
1631 " – मुमताज बेगम की मृत्यु, ताजमहल का निर्माण शुरू ।
1645 " – नूरजहाँ की मृत्यु ।
1658 " – धरमत व सामूगढ़ का युद्ध, औरंगजेब का गद्दी पर बैठना ।
1659 " – दारा की मृत्यु, अफजल खाँ की मृत्यु ।
1664 " – सूरत की लूट ।
1666 " – शिवाजी का मुगल दरबार में आगमन, शाहजहाँ की मृत्यु ।
1674 " – शिवाजी का राज्याभिषेक ।
1675 " – नवें सिक्ख गुरु तेगबहादुर को औरंगजेब द्वारा मृत्युदंड ।
1680 " – शिवाजी की मृत्यु ।
1686 " – बीजापुर पर अधिकार ।
1687 " – गोलकुण्डा पर अधिकार ।
1689 " – शम्भाजी की हत्या ।
1691 " – ईस्ट इंडिया कम्पनी को बंगाल में सीमा शुल्क (कस्टम ड्यूटी) से छूट ।
1700 " – राजाराम की मृत्यु ।
1707 " – औरंगजेब की मृत्यु, बहादुरशाह सम्राट बना ।
1708 " – गुरु गोविन्द सिंह की मृत्यु ।
1722 " – हैदरअली का जन्म ।
1739 " – नादिरशाह का दिल्ली पर आक्रमण ।
1740 " – अलीवर्दी खाँ का बंगाल पर अधिकार ।
1742 " – नाना फड़नवीस का जन्म ।
1751 " – टीपू का जन्म ।
1756 " – अलीवर्दी खाँ की मृत्यु ।
1757 " – सिराजुद्दौला का बंगाल का नवाब बनना, प्लासी का युद्ध व मीरजाफर का नवाब होना ।
1759 " – अली गौहर का बंगाल पर आक्रमण ।
1760 " – मीर कासिम का नवाब बनना व क्लाइव का इंगलैण्ड लौटना ।
1761 " – पानीपत का तृतीय युद्ध ।
1764 " – बक्सर का युद्ध ।
1765 " – क्लाइव का दूसरी बार गवर्नर होना ।
1767 " – क्लाइव का पुनः इंग्लैण्ड वापस जाना ।
1770 " – बंगाल का भीषण अकाल ।
1772 " – वारेन हेस्टिंग्ज का बंगाल का गवर्नर होना ।
1773 " – बनारस की सन्धि, रुहेला युद्ध, रेग्युलेटिंग ऐक्ट पारित ।

1774 " – क्लाइव की मृत्यु, कलकत्ता में सुप्रीम कोर्ट की स्थापना।
1775 " – नन्दकुमार को मृत्यु दण्ड व सूरत की संधि।
1776 " – अंग्रेजों और मराठों के बीच पुरन्दर की संधि, प्रथम मराठा युद्ध।
1780 " – राजा रणजीत सिंह का जन्म।
1782 " – सालवाई की संधि और हैदरअली की मृत्यु।
1784 " – बंगलौर की सन्धि, पिट इंडिया ऐक्ट पारित।
1785 " – वारेन हेस्टिंग्ज की वापसी।
1775-82 " – मराठों की पहली लड़ाई, सालवाई की संधि।
1780-84 " – मैसूर की दूसरी लड़ाई, अंग्रेजों, द्वारा हैदरअली पराजित।
1790-92 " – मैसूर की तीसरी लड़ाई, श्रीरंगपट्टनम् की संधि।
1793 " – बंगाल का स्थायी बन्दोबस्त।
1799 " – मैसूर का चौथा युद्ध, टीपू की मृत्यु, मैसूर का विभाजन।
1800 " – नाना फड़नवीस की मृत्यु।
1802 " – पेशवा और अंग्रेजों के बीच बेसीन की संधि।
1803 " – देवगाँव और सूर्जी, अर्जुनगाँव की संधि, लार्ड कार्नवालिस की मृत्यु।
1809 " – अंग्रेजों व सिक्खों के बीच अमृतसर की संधि।
1814-1816 ई0 – गोरखों का प्रथम युद्ध।
1816 " – सिंगौली की संधि।
1817 " – कलकत्ता में हिन्दू कालेज की स्थापना, सरसैयदअहमद खाँ का जन्म।
1816-18 " – पिंडारी युद्ध।
1824-26 " – बर्मा का प्रथम युद्ध (कम्पनी व बर्मा के मध्य) बर्मा पराजित, यांडबू की संधि।
1826 " – भरतपुर का घेरा।
1829 " – सती प्रथा का अंत।
1832 " – सिंघ के अमीरों के साथ संधि।
1833 " – रणजीत सिंह के साथ संधि।
1833 " – राजा राममोहन राय की इंग्लैंड में मृत्यु।
1835 " – समाचरपत्रों को स्वतन्त्रता, रानी लक्ष्मीबाई का जन्म, वर्नाक्यूलर प्रेस पर रोक।
1837 " – हिरात का घेरा।
1839 " – रणजीतसिंह की मृत्यु।
1842 " – काबुल से अंग्रेजी सेना की वापसी।
1845-46 " – सिक्खों का प्रथम युद्ध (अंग्रेजों व सिक्खों के मध्य), लाहौर की संधि।
1848-49 " – द्वितीय आंग्ल-सिक्ख युद्ध में सिक्ख पराजित, पंजाब का ब्रिटिश साम्राज्य में विलय।
1849 " – पंजाब का अंग्रेजी राज्य में विलय।
1852 " – बर्मा का द्वितीय युद्ध, बंबई एसोसिएशन की स्थापना।
1854 " – सतारा का अंग्रेजी राज्य में मिलाया जाना।
1856 " – अवध का अंग्रेजी राज्य में मिलाया जाना। बाल गंगाधर तिलक का जन्म।
1857 " – प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम।
1858 " – ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन का अंत, रानी विक्टोरिया का घोषणापत्र, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की मृत्यु।

1862 " – बहादुरशाह द्वितीय की मृत्यु।
1863 " – स्वामी विवेकानन्द का जन्म।
1864 " – सरसैय्यद अहमद द्वारा मोहम्मडन साइंटिफिक सोसायटी की स्थापना।
1865 " – लाला लाजपत राय का जन्म।
1872 " – अजमेर में लॉर्ड मेयो की हत्या।
1875 " – स्वामी दयानन्द द्वारा आर्य समाज की स्थापना।
1877 " – दिल्ली दरबार, रानी विक्टोरिया को भारत की साम्राज्ञी की उपाधि।
1878 " – द्वितीय अफगान युद्ध, वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट पारित।
1881 " – अब्दुर्रहमान का काबुल का अमीर होना।
1884 " – डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद का जन्म, मद्रास महाजन सभा की स्थापना।
1885 " – कांग्रेस का जन्म, तृतीय आंग्ल-बर्मा युद्ध।
1888 " – डॉ0 राधाकृष्णन का जन्म।
1892 " – भारतीय परिषद् अधिनियम पारित।
1898 " – सर सैय्यद अहमद खाँ का निधन।
1900 " – भारत में भीषण अकाल।
1902 " – स्वामी विवेकानन्द का निधन।
1903 " – बंगाल में प्रथम क्रान्तिकारी संगठन अनुशीलन समिति की स्थापना।
1905 " – बंगाल का विभाजन।
1906 " – मुस्लिम लीग की स्थापना।
1908 " – खुदीराम बोस को फाँसी, लोकमान्य तिलक को 6 वर्ष कारावास।
1911 " – बंगाल विभाजन समाप्त, राजधानी का कलकत्ता से दिल्ली स्थानान्तरण।
1915 " – गोपाल कृष्ण गोखले तथा फिरोजशाह मेहता का निधन।
1919 " – जलियाँवाला बाग का हत्याकांड।
1920 " – बाल गंगाधर तिलक की मृत्यु। खिलाफत आन्दोलन शुरू।
1923 " – स्वतंत्र पार्टी की स्थापना, नमक कानून पारित।
1925 " – चित्तरंजनदास का निधन, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का निधन, लखनऊ में काकोरी के पास क्रांतिकारियों ने सरकारी खजाना लूटा।
1927 " – साइमन कमीशन का भारत आगमन, भारतीय नौ सेना ऐक्ट पारित।
1930 " – सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ।
1931 " – मोतीलाल नेहरू का निधन, गांधी-इरविन समझौता, भगतसिंह, राजगुरु व सुखदेव को मृत्युदंड।
1935 " – भारतीय शासन अधिनियम पारित।
1939 " – द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ, कांग्रेस मंत्रिमण्डलों का त्यागपत्र।
1942 " – कांग्रेस द्वारा बम्बई में अंग्रेजों 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पारित।
1945 " – शिमला का कान्फ्रेंस, सुभाषचन्द्र बोस की वायुयान दुर्घटना में मृत्यु।
1946 " – बम्बई में नौसेना का विद्रोह, कैबिनेट मिशन का भारत आगमन, पं0 जवाहरलाल नेहरू का अंतरिम सरकार का प्रधानमंत्री बनना।
1947 " – लार्ड माउण्टबेटन का गवर्नर जनरल होना, भारत विभाजन की घोषणा तथा भारत और पाकिस्तान के उपनिवेशों की स्थापना।

1948 " – महात्मा गाँधी की हत्या, राजगोपालाचारी का गवर्नर जनरल होना।
1949 " – नाथूराम गोडसे को मृत्युदण्ड।
1950 " – भारत का संविधान लागू, सरदार बल्लभ भाई पटेल की मृत्यु।
1954 " – चीन और भारत में पंचशील समझौता।
1956 " – राज्य पुनर्गठन अधिनियम पारित।
1961 " – गोवा, दमन और दीव की पुर्तगाली बस्तियों पर भारत का कब्जा तथा गोविन्दवल्लभ पंत का निधन।
1962 " – चीन का भारत पर आक्रमण।
1963 " – भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद की मृत्यु।
1964 " – पं0 जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु।
1965 " – भारत–पाक युद्ध।
1966 " – भारत और पाक के मध्य ताशकन्द समझौता, लालबहादुर शास्त्री का निधन तथा विनायक दामोदर सावरकर का निधन।
1969 " – डॉ0 जाकिर हुसैन की मृत्यु।
1971 " – भारत–पाक युद्ध, भारत–सोवियत मैत्री सन्धि।
1974 " – राजस्थान में पोखरण स्थान पर भूमिगत परमाणु विस्फोट का परीक्षण।
1975 " – डॉ0 राधाकृष्णन की मृत्यु।
1979 " – जयप्रकाश नारायण की मृत्यु।
1980 " – राष्ट्रपति वी0वी0 गिरि की मृत्यु।
1982 " – विनोबा भावे का निधन।
1983 " – दिल्ली में सातवाँ गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन।
1984 " – श्रीमती इंदिरा गाँधी की हत्या।
1985 " – भारत–रूस के मध्य व्यापारिक समझौता, दिल्ली में गुटनिरपेक्ष देशों का सम्मेलन।
1989 " – इंदिरा गांधी के हत्यारे सतवंत सिंह–केहर सिंह को मृत्युदण्ड।
1991 " – राजीव गाँधी की हत्या, पी0वी0 नरसिंह राव द्वारा प्रधानमंत्री पद की शपथ।
1992 " – अयोध्या में राम जन्म–स्थल पर निर्मित बाबरी मस्जिद कारसेवकों द्वारा ध्वस्त।
1993 " – रूसी राष्ट्रपति येल्तसिन व ब्रिटिश प्रधान मंत्री जॉन मेजर का भारत आगमन।
1994 " – ज्ञानी जैल सिंह का निधन, रूस में प्रधान मंत्री विक्टर चेर्नोमिर्दिन का भारत आगमन।
1995 " – मोरारजी देसाई का निधन।
1998 " – भारत द्वारा पोखरण में पाँच परमाणु परीक्षण।
1999 " – कारगिल संघर्ष तथा पाकिस्तान की पराजय, पूर्व राष्ट्रपति शंकर दयाल शर्मा का निधन, भारत द्वारा परमाणु नीति के प्रारूप की घोषणा।
2000 " – अमरीकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन और रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन का भारत आगमन, भारतीय प्रधान मंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की अमरीका यात्रा।
2001 " – गुजरात में भीषण भूकम्प, आगरा में भारत पाक शिखरवार्ता।
2005 " – पी.वी.नरसिंह राव व के. आर. नारायणन का निधन।

●

परिशिष्ट 'ख'

ऐतिहासिक महत्व के प्रमुख स्थल

फतेहपुर सीकरी

आगरा से 36.8 किमी की दूरी पर सीकरी नामक एक गाँव स्थित है। वहाँ पर प्रसिद्ध सूफी सन्त शेख सलीम चिश्ती रहते थे जिनके आशीर्वाद से अकबर के पुत्र का जन्म हुआ था जिसका नाम शेख सलीम चिश्ती के नाम पर सलीम रखा गया था। इस प्रकार सीकरी अकबर के लिए सौभाग्यशाली सिद्ध हुआ और इसके प्रति उसका लगाव भी बढ़ गया। उसने इस गाँव (सीकरी) को नगर का रूप प्रदान करने का निश्चय किया। गुजरात विजय के बाद 1569 ई. में उसने सीकरी के निकट एक पहाड़ी पर शेख सलीम चिश्ती की स्मृति में फतेहपुर सीकरी की नींव डाली। उसके आदेश से सीकरी में अनेक भवनों का निर्माण किया गया जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :

(1) दीवान-ए-आम – इसका निर्माण आयताकार रूप में एक ऊँची कुर्सी पर किया गया है। इसमें लाल पत्थर का प्रयोग किया गया है तथा पत्थर की ही सुन्दर जालियाँ बनायी गयी हैं, इसमें अकबर अपना दरबार किया करता था।

(2) दीवान-ए-खास – यह 13 मीटर की वर्गाकार इमारत है तथा इसका निर्माण लाल पत्थरों से किया गया है। इसमें एक डाटदार कक्ष की योजना है जिसकी छत पटी हुई है और प्रत्येक कोण पर ऊपर की ओर एक स्तम्भवाली छतरी है।

(3) जोधाबाई का महल – यह एक आयताकार विशाल भवन है। इसकी लम्बाई 96 मीटर व चौड़ाई 64.5 मीटर है तथा दीवारों की ऊँचाई 9.6 मीटर है। महल के चारों कोनों पर चपटे गुम्बद हैं। इसमें कमरों को ऋतुओं के अनुसार ठण्डा और गर्म रखने की व्यवस्था है।

(4) मरियम की कोठी – यह जोधाबाई के महल के निकट ही दो मंजिली छोटी इमारत है। इसके चारों ओर स्तम्भों पर बरामदे स्थित हैं। इन स्तम्भों को सुसज्जित एवं कलात्मक बनाने की दृष्टि से हाथी आदि पशुओं की आकृतियाँ अंकित की गयी हैं।

(5) हवा महल – जोधाबाई के महल के उत्तर में स्थित यह दो मंजिली इमारत है। इसमें हवा जाने के लिए सुन्दर जालियों की योजना है।

(6) बीरबल की कोठी – इसका निर्माण मरियम के महल की शैली पर हुआ है। यह दो मंजिली इमारत है। इसके छज्जों को कोष्ठकों पर आधारित किया गया है। इस भवन के निर्माण में स्तम्भों का स्वतंत्रतापूर्वक प्रयोग किया गया है।

(7) पंचमहल– यह पंच मंजिली इमारत है जिसका निर्माण स्तम्भों पर हुआ है। इसकी प्रत्येक मंजिल आकार में अपने नीचे की प्रत्येक मंजिल के क्रमशः छोटी होती गयी है। एक मंजिल से दूसरी मंजिल में जाने के लिए सुन्दर सीढ़ियों का निर्माण किया गया है। इस भवन के निर्माण में स्तम्भों का स्वतंत्रतापूर्वक प्रयोग किया गया है।

(8) तुर्की सुल्ताना की कोठी– यह लघु आकार की एक सुन्दर इमारत है। इसमें एक ही मंजिल है तथा स्तम्भों पर आधारित बरामदें हैं। इसकी भीतरी दीवारों को पेड़-पौधे तथा पशु-पक्षियों की आकृतियों द्वार सुसज्जित किया गया है।

(9) खास महल – यह दो मंजिला भवन है। यह अकबर का आवास-गृह था। इसके निर्माण में लाल पत्थरों के साथ संगमरमर का भी प्रयोग किया गया है। खास महल के ही ऊपरी मंजिल के एक किनारे पर 'झरोखा-ए-दर्शन' स्थित है, जहाँ से बादशाह प्रतिदिन प्रातःकाल अपनी

प्रजा को दर्शन देता था।

(10) जामा मस्जिद- यह आयताकार इमारत है। इसकी लम्बाई 162.6 मीटर तथा चौड़ाई 131.4 मीटर है। मस्जिद में एक चौड़ा सहन है जो तीन तरफ स्तम्भों से घिरा है तथा इसमें पश्चिम की ओर पूजागृह है। मस्जिद में तीन गुम्बद हैं जिनमें बीच का गुम्बद किनारे के अन्य दो गुम्बदों से बड़ा है। मस्जिद के भीतर भाग में बरामदों, कक्षों तथा आँगन की सुन्दर योजना है।

(11) शेख सलीम का मकबरा- इसकी योजना वर्गाकार है तथा इसका निर्माण जामा मस्जिद के सहन के उत्तरी कोने में किया गया है। इसको अलंकृत तथा सुसज्जित करने के लिए सुन्दर स्तम्भों तथा छज्जों का निर्माण किया गया है। निस्सन्देह यह मकबरा स्थापत्य कला का एक सुन्दर उदाहरण है।

(12) बुलंद दरवाजा- यह जामा मस्जिद के दक्षिण दीवार में निर्मित है। यह भारत का सबसे ऊँचा तथा वैभवशाली प्रवेशद्वार है। यह प्रवेशद्वार पृथ्वी की सतह से 52.8 मीटर ऊँचा है। इसके चबूतरे की ऊँचाई 12.6 मीटर है तथा चबूतरे से दरवाजे की ऊँचाई 40.2 मीटर है। इसके आगे का भाग 39 मीटर चौड़ा तथा आगे से पीछे तक की लम्बाई 36.9 मीटर है। यह दरवाजा स्वयं एक पूर्ण भवन हैं इसमें कई छोटे-बड़े कक्षों की योजना है जिनके द्वारा मस्जिद के भीतर सहन तक पहुँचा जा सकता है। अकबर ने उपर्युक्त भवनों के अतिरिक्त फतेहपुर सीकरी में अन्य भवनों का निर्माण करवाया जिनमें शाही अस्तबल, हिरन मीनार, इबादतखाना, मरियम का चमन, जनाना बाग, शफाखान (चिकित्सालय), जनाना रास्ता, दफ्तरखाना, मीना बाजार, इस्लाम खाँ का मकबरा, कोषागार, ज्योतिषी की बैठक, हकीम का महल, जौहरी बाजार, नौबतखाना, बारहदरी, लंगरखाना, कबूतरखाना, संगीन बुर्ज, मस्जिद शाहकुली तथा राजा टोडरमल का महल आदि प्रसिद्ध भवनों में से हैं।

आगरा

आगरा भारत का ही नहीं, विश्व का महत्वपूर्ण आकर्षक स्थल है। इसे मुगल सम्राटों की राजधानी होने का गौरव प्राप्त है। यहाँ निम्नलिखित ऐतिहासिक महत्व की इमारतें दर्शनीय हैं :

(1) ताजमहल- इस इमारत का निर्माण शाहजहाँ ने अपनी प्रिय पत्नी मुमताज की स्मृति में कराया था। यह यमुना नदी के तट पर स्थित है। ताजमहल की वास्तुकला सम्बन्धी विशेषता चबूतरे पर बने हुए सफेद संगमरमर के मकबरे में है। इसकी निर्माण योजना आयताकार है। सम्पूर्ण इमारत की विशेषता इसके गुम्बद में है। इसके चारों कोनों पर एक-एक मीनार स्थित है तथा प्रत्येक मीनार की ऊँचाई 41.1 मीटर है। ताज के प्रवेश द्वार पर पवित्र कुरान की सुन्दर पंक्तियाँ अंकित हैं। सफेद संगमरमर से निर्मित यह इमारत विश्व के आश्चर्यजनक वस्तुओं में से एक है।

(2) आगरा दुर्ग (फोर्ट) - आगरा की दूसरी प्रसिद्ध इमारत यहाँ का दुर्ग है। इसका निर्माण अकबर ने कराया था। दुर्ग के अन्दर अनेक इमारतों का निर्माण हुआ है जिसका संक्षेप में परिचय इस प्रकार है :

(क) दीवान-ए-आम- यह विशाल इमारत तीन तरफ से खुली हुई है। इसकी छत ऊँचे-ऊँचे स्तम्भों पर आधारित है। इसमें सम्राट के बैठने के लिए ऊँचाई पर एक मण्डप की व्यवस्था थी जहाँ 'तख्त-ए-ताऊस' (मयूर सिंहासन) पर बादशाह शोभायमान होता था।

(ख) दीवान-ए-खास- यह संगमरमर की एक आयताकार इमारत है। इसके स्तम्भों

तथा मेहराबों पर सुन्दर पच्चीकारी का काम किया गया है।

(ग) मच्छी भवन- यह दीवान-ए-आम के पीछे स्थित लाल पत्थर की आयताकार इमारत है। इसमें 54 मीटर लम्बा और 49 मीटर चौड़ा सहन है जिसके चार कोनों पर सुन्दर मीनारें हैं।

(घ) शीश महल- दीवान-ए-खास के नीचे शीश महल स्थित है। इसके द्वार तथा दीवारें शीशे, सोने तथा रंगीन पत्थर के काम से सुसज्जित हैं। शीश महल में एक कक्ष है जिसमें स्नान के लिए दो हौज हैं।

(च) खास महल- यह दीवान-ए-खास से लगा हुआ एक महल है। यह बादशाह तथा उसकी बेगमों का आवास गृह था। इस महल के नीचे का भाग लाल पत्थर से निर्मित है तथा ऊपरी भाग बरामदे, कमरे तथा मण्डप सभी सफेद संगमरमर के बने हैं।

(छ) मुसम्मन बुर्ज- इसे शाहबुर्ज भी कहते हैं। यह छः मंजिला भवन है तथा संगरमरमर से निर्मित है। इसके ऊपर एक सुन्दर तथा सुडौल गुम्बद की योजना है। यह वही स्थान है जहाँ शाहजहाँ ने कैदी के रूप में अपनी प्रेयसी मुमताज महल के स्मारक ताज को देखते हुए प्राण त्यागे थे।

(ज) नगीना मस्जिद- मच्छी भवन के उत्तर-पश्चिमी किनारे पर यह मस्जिद स्थित है। इसका निर्माण संगमरमर से हुआ है। यह मस्जिद आकार में छोटी, किन्तु सुन्दरता में श्रेष्ठ है।

(झ) मोती मस्जिद- यह आगरा दुर्ग में स्थित सबसे सुन्दर इमारत है। इसके बाह्य भाग में लाल पत्थरों का प्रयोग हुआ है तथा भीतरी भाग को सुन्दर एवं सुसज्जित बनाने के लिए संगमरमर का प्रयोग किया गया है। इसके वर्गाकार सहन में सफेद पत्थरों के टुकड़ों का प्रयोग हुआ है। मस्जिद के ऊपर भाग में सुडौल गुम्बद तथा सुन्दर मीनारों की योजना है। यह मस्जिद सादगी से संयुक्त, कला की पूर्णता का श्रेष्ठ उदाहरण है।

(ट) जहाँगीरी महल- अकबर ने अपने पुत्र तथा उत्तराधिकारी सलीम के रहने के लिए इसका निर्माण करवाया था। यह भवन वर्गाकार है तथा इसका निर्माण लाल पत्थरों से किया गया है। महल के मध्य में एक आँगन की भी योजना है। इस महल की शैली अधिकतर हिन्दू स्थापत्य शैली की ओर झुकी है। विद्वानों के अनुसार जहाँगीरी महल की शैली लगभग ग्वालियर में निर्मित हिन्दू भवनों की भाँति है।

(3) जामा-मस्जिद- यह मस्जिद आगरे के किले के उत्तर-पश्चिम में स्थित है। इसका निर्माण शाहजहाँ की ज्येष्ठ पुत्री जहाँआरा बेगम ने कराया था। मस्जिद की छत के प्रत्येक कोने पर एक-एक अठपहला गुम्बददार छतरी की योजना है। इसके ऊपरी भाग में तीन बड़े गुम्बद तथा चार सुन्दर मीनारें स्थित हैं जो मस्जिद की शोभा में वृद्धि करते हैं।

(4) एतमाद-उद्-दौला का मकबरा- इसका निर्माण जहाँगीर ने कराया था। इस मकबरे में लाल पत्थर तथा संगमरमर दोनों का प्रयोग हुआ है। यह सुन्दर बगीचे के मध्य लाल पत्थरों से घिरे हुए अहाते में स्थित है। मकबरे के ऊपर की मंजिल के चारों कोनों पर चार छोटे-छोटे मीनार स्थित हैं। इसमें सुन्दर मेहराबों का निर्माण किया गया है तथा दीवार के निर्माण में सुन्दर जालियों का प्रयोग किया गया है।

(5) अकबर का मकबरा- यह मकबरा आगरा से 8 किमी की दूरी पर दिल्ली जाने वाली सड़क पर सिकन्दरा नामक गाँव में स्थित है। इस मकबरे में पाँच मंजिलें हैं। इसकी प्रत्येक

ऊपर की मंजिल नीचे की मंजिलों से आकार में छोटी होती गयी है। मकबरे को सुन्दर जालियों के द्वारा अलंकृत किया गया है। अकबर की कब्र संगमरमर की बनी हुई है। पहली मंजिल पर बनी कब्र असली है तथा उसके ऊपर की मंजिल पर बनी कब्र नकली है। कब्र के सिरहाने 'अल्लाहु-अकबर' (ईश्वर महान है) तथा पैरों की तरफ 'जल्ले-जलालहू' (उसकी शान में वृद्धि हो) उभरे हुए अक्षरों में खुदा हुआ है। कब्र के चारों ओर ईश्वर के 99 नाम अरबी में खुदे हुए हैं। निस्सन्देह यह मकबरा उस समय की सबसे सुन्दर तथा वैभवशाली इमारत है।

उपर्युक्त इमारतों के अतिरिक्त आगरा में दयालबाग और राधास्वामी का मंदिर दर्शनीय स्थल हैं।

दिल्ली

दिल्ली यमुना नदी के तट पर स्थित है। इसे मध्यकाल से आज तक कई राजवंशों की राजधानी होने का गौरव प्राप्त है। सम्प्रति स्वतंत्र भारत की राजधानी दिल्ली ही है।

मुगलकाल में दिल्ली का वैभव चरम सीमा पर पहुँच गया था। मुगलों द्वारा निर्मित अनेक इमारतों के लिए यह नगर प्रसिद्ध है। यहाँ की प्रमुख इमारतों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :

(1) लाल किला[1]– लाल पत्थर से निर्मित दिल्ली के लाल किला का निर्माण शाहजहाँ ने कराया था। इसकी लम्बाई 930 मीटर तथा चौड़ाई 495 मीटर है। इसका मुख्य प्रवेश द्वार अथवा लाहौरी द्वार पश्चिम की ओर स्थित है। मुख्य प्रवेश द्वार की मेहराब 14 मीटर ऊँची और 8 मीटर चौड़ी है। यह प्रवेश द्वारा एक विशाल कक्ष से जुड़ा हुआ है। किले में 'नौबतखाना', 'दीवान-ए-आम' तथा 'दीवान-ए-खास' अत्यन्त प्रसिद्ध इमारतें हैं। 'दीवान-ए-खास' की दीवार पर कवि अमीर खुसरो की ये पंक्तियाँ आज भी अंकित हैं : "गर फिरदौस बर रूये जमीं अस्त। यीं अस्त, यीं अस्त, यीं अस्त"। अर्थात् 'यदि पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है, तो यहीं है, यहीं है, यहीं है।"

(2) जामा मस्जिद– दिल्ली के लाल किले के बाहर एक ऊँचे चबूतरे पर यह मस्जिद स्थित है। इसमें तीन प्रवेश द्वार हैं। इसके ऊपरी भाग पर तीन गुम्बद स्थित हैं जिनमें बीच का गुम्बद किनारे के अन्य दो गुम्बदों से बड़ा है। इसके अतिरिक्त मस्जिद के अन्दर अग्रभग में एक सुन्दर तथा सुडौल बड़े मेहराब की व्यवस्था है तथा दोनों किनारों पर दो ऊँची मीनारें स्थित हैं। इस इमारत में लाल पत्थर का प्रयोग हुआ है। निस्सन्देह वास्तुकला का यह एक सुन्दर उदाहरण है।

(3) कुतुबमीनार– कुतुबमीनार का निर्माण कार्य गुलाम वंश के प्रथम सुल्तान कुतुबद्दीन ऐबक ने प्रारम्भ कराया था और इन्तुतमिश ने इसे पूर्ण कराया। यह गोलाकार तथा पंचमंजिला मीनार है। इसकी ऊँचाई 72.6 मीटर है और नीचे से ऊपर की ओर पतली होती चली गयी है। इसके बाहरी भाग पर अरबी तथा फारसी के लेख अंकित हैं। प्रसिद्ध सूफी ख्वाजा कुतुबुद्दीन के नाम पर इसका नाम 'कुतुबमीनार' रखा गया है।

(4) मेहरौली लौह-स्तम्भ– कुतुबमीनार के निकट मेहरौली नामक स्थान पर एक लौह-स्तम्भ स्थित है जो 'मेहरौली लौह स्तम्भ' के नाम से प्रसिद्ध है। इस स्तम्भ में 'चन्द्र' नामक राजा की उपलब्धियों का उल्लेख है। इस 'चन्द्र' राजा की समानता चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य से की गई है।

---

1. लाल किला 'किला-ए-मुबारक' (भाग्यवान किला), 'किला-ए-शाहजहाँनाबाद', 'किला-ए-मुहअल्लाट (श्रेष्ठ किला) के नाम से भी जाना जाता है।

(5) इल्तुतमिश का मकबरा– यह मकबरा एक ही कक्ष का है तथा इसका निर्माण लाल पत्थरों के द्वारा हुआ है। इसकी दीवार के भीतरी भाग पर पवित्र कुरान की आयतें अंकित हैं तथा नक्काशी द्वारा दीवार को सुशोभित करने का सफल प्रयास किया गया है।

(6) अलाई दरवाजा– यह कुतुबमीनार के निकट स्थित है। इसका निर्माण लाल पत्थरों तथा संगमरमर के द्वारा हुआ है। यह एक वर्गाकार कक्ष है जिसके ऊपर एक गुम्बद निर्मित है। इस पर पवित्र कुरान की आयतें अंकित की गई हैं तथा दरवाजा को विभिन्न प्रकार से सुशोभित करने का प्रयास किया गया है।

(7) संसद भवन– संसद भवन गोलाकार है तथा व्यास लगभग 168 मीटर है। यह 8.1 मीटर ऊँचा तथा 144 खम्भों पर टिका है। यह लगभग 6 एकड़ के क्षेत्र में बना है। इस भवन के चारों ओर 12 दरवाजे हैं। सन् 1921 से 1927 यानी 6 वर्ष इसके निर्माण में लगे थे तथा उस समय इस पर लगभग 83 लाख रुपये व्यय हुए थे।

(8) राष्ट्रपति भवन– भारत के ऐतिहासिक भवनों में इसका विशिष्ट स्थान है। इस भवन की रूपरेखा प्रसिद्ध वास्तुकार सर एडविन ल्यूटिएन्स तथा हर्वर्ड बेकर ने तैयार की थी। एक करोड़ चालीस लाख रुपये लागत से बने इस भवन के निर्माण में 8 वर्ष का समय लगा था। 1929 में यह बनकर तैयार हुआ था। यह 350 एकड़ क्षेत्रफल में बनाया गया है। केवल भवन का ही क्षेत्रफल 5 एकड़ है। भवन में कुछ 345 कमरे हैं। दरबार हाल, अशोक हाल, ऊषा कक्ष, टैगोर कक्ष, द्वारका कक्ष, नालंदा हाल, हिमालय कक्ष आदि विशाल कक्ष हैं। इसमें पुस्तकालय, मुद्रणालय, कलादीर्घा एवं रंगशाला भी है। 'मुगल गार्डन' राष्ट्रपति भवन का विशिष्ट उद्यान है।

(9) अक्षरधाम मंदिर– स्वामी नारायण सम्प्रदाय का अक्षरधाम मंदिर यमुना नदी के किनारे करीब 100 एकड़ क्षेत्र में बना हुआ है। भारत की प्राचीन शिल्प स्थापत्य कलाओं पर आधारित लगभग 200 करोड़ रुपये की लागत से निर्मित इस मंदिर का निर्माण-कार्य पांच वर्षों में (अक्टूबर, 2005 में पूर्ण हुआ) पूरा हुआ। मंदिर का मुख्य मंडप 141 फुट ऊँचा, 316 फुट चौड़ा और 370 फुट लम्बा है। विशेष बात यह है कि मुख्य मंडप में लोहे की एक कील का भी इस्तेमाल नहीं किया गया है। इस मंडप के परिक्रमा-पथ पर 148 विशालकाय हाथी विशालकाय पत्थरों पर उकेरे गये हैं जिनके सहारे भारतीय पुराणों एवं पंचतंत्र की ललित कथाएँ दर्शायी गई हैं। इस मंडप में 234 स्तम्भ, नौ गुम्बद और 20 हजार से अधिक देव प्रतिमाएँ हैं। मंदिर में स्थापित स्वामीनारायण प्रतिमा की ऊँचाई 11 फुट है।

इसके अतिरिक्त दिल्ली में और भी दर्शनीय स्थल हैं जिनमें बिरला मंदिर, लोटस टेम्पुल, शान्ति वन, श्रीमती इन्दिरा गाँधी का हत्या-स्थल तथा चाँदनी चौक उल्लेखनीय हैं।

लखनऊ

नवाबों की नगरी लखनऊ उत्तर प्रदेश की राजधानी है। यह गोमती नदी के किनारे स्थित है। जनश्रुति के अनुसार इसकी स्थापना भगवान श्रीराम के अनुज लक्ष्मण ने की थी। इसी कारण इसका प्राचीन नाम लक्ष्मणपुरी है। लखनऊ अपने नवाबों के कारण प्रसिद्ध रहा है। यहाँ की प्रमुख इमारतों का परिचय इस प्रकार है:

(1) बड़ा इमामबाड़ा– लखनऊ की सबसे प्रसिद्ध इमारत बड़ा इमामबाड़ा है जिसका निर्माण नवाब आसफुद्दौला ने कराया था। यह इमारत ईंट और बहुत ही बढ़िया किस्म के चूने से

बनवाई गई थी जिसमें फर्श से लेकर छत तक लकड़ी का नाम नहीं है। इसका मुख्य अंग एक विशाल मण्डप है जो 38.6 मीटर लम्बा और 16 मीटर चौड़ा है। इसके दोनों ओर बरामदे हैं। इनमें से एक 8 मीटर और दूसरा 8.25 मीटर चौड़ा है। मण्डप के दोनों टोकों पर अष्टकोण कमरे हैं जिनमें प्रत्येक का व्यास 15.9 मीटर है। इमामबाड़े के अग्रभाग में मेहराबदार झरोखे हैं। बीच में एक बड़ा सा प्रवेश द्वार है जो एक चौकोर प्रांगण में खुलता है। मुख्य कक्ष के ऊपर भूल-भूलैया है जो अपनी पेंचदार गलियों के लिए प्रसिद्ध है। यह इमामबाड़ा अपनी भव्यता तथा विशालता में भारत ही नहीं विश्व भर में अद्वितीय नमूना है।

(2) हुसैनाबाद इमामबाड़ा (प्रकाश महल) – यह छोटी परन्तु अति सुन्दर इमारत है। इसमें तीन कमरे बने हुए हैं। कमरों की दीवारों पर भली प्रकार नक्काशी की गई है। मध्य के कमरे में मोहम्मद अली शाह का मकबरा स्थित है। इसमें चाँदी का बना हुआ ताजिया शोभित है। अंतिम कमरों में मोम के बने हुए ताजिए रखे हुए हैं, इन पर लकड़ी मढ़ी हुई है।

(3) जामा मस्जिद– यह मस्जिद हुसैनाबाद इमामबाड़े के पश्चिमी भाग में स्थित है। इसमें दो मीनारें और तीन गुम्बदें बनी हुई हैं। गुम्बदों के बीच का गुम्बद सबसे बड़ा है। यह इमारत एक ऊँचे उठे हुए चबूतरे पर बनी हुई है।

(4) छतर मंजिल– यह लखनऊ की इमारतों में सबसे अधिक सुन्दर इमारत है। इसका गुम्बद पीतल की छतरी से शोभित है। इसीलिए इसे 'छतर मंजिल' कहते हैं। यह इमारत तीन मंजिला है तथा इसके नीचे तहखाना बना हुआ है।

(5) रूमी दरवाजा– रूमी दरवाजा को तुर्की दरवाजा भी कहा जाता हैं यह दरवाजा विशाल इमामवाड़े के पश्चिमी द्वार पर स्थित है और लगभग 27 मीटर ऊँचा है।

लखनऊ की अन्य दर्शनीय इमारतों में विश्वविद्यालय, किंग जार्ज मेडिकल कालेज, रेजीडेन्सी, केसरबाग महल, रोशनउद्दौला की कोठी, केनिंग कालेज, तारावाली कोठी, खुर्शद मंजिल, लॉ मार्टीनीयर कालेज, मोती महल, विधान सभा भवन, बारादरी, घंटाघर, शहीद स्मारक आदि उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त सिकन्दर बाग, बनारसी बाग, विलायती बाग, आलम बाग, दिलखुशा, विक्टोरिया पार्क, बेगम हजरत महल पार्क, नया व पुराना अजायबघर और चिड़ियाघर उल्लेखनीय स्थल हैं।

जौनपुर

जौनपुर नगर की स्थापना फिरोज शाह तुगलक ने जूना खाँ की स्मृति में 1359-60 ई. में की और 1394 ई. में यह एक स्वतन्त्र राज्य बन गया। जौनपुर राज्य लगभग एक शताब्दी तक स्वतंत्र रहा, तत्पश्चात् सुल्तान सिकन्दर लोदी ने इसे विजित कर अपने राज्य में मिला लिया। इब्राहीम लोदी के शासन काल में यह 'शीराज-ए-हिन्द' कहा जाता था। यहाँ के शासकों ने स्थापत्य कला की ओर विशेष ध्यान दिया। यहाँ दिल्ली की भाँति हिन्दू-मुस्लिम शैली का सम्मिश्रण पाया जाता है। जौनपुर की इमारतों का विवरण निम्न प्रकार है:

शाही किला– यह गोमती नदी के किनारे स्थित है। इसका निर्माण फिरोज तुगलक के शासन काल में हुआ था। किले में सामने के प्रवेशद्वार में नीले, पीले पत्थरों का प्रयोग किया गया है। किले के अन्दर अनेक भवन स्थित हैं जो स्थापत्य कला की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। किले के अन्दर स्नान के लिए एक हम्माम (स्नानागार) है जिसमें स्नान के लिए पानी गर्म करने की

व्यवस्था थी। किले के अन्दर एक मस्जिद भी स्थित है जिसकी लम्बाई लगभग 36 मीटर तथा चौड़ाई 6.6 मीटर है। मस्जिद के अग्रभाग में एक स्तम्भ भी स्थित है।

अटाला मस्जिद- यह मस्जिद अटाला देवी के मंदिर को तोड़कर बनायी गई है। मस्जिद के अन्दर एक वर्गाकार आँगन है जिसका व्यास 53.1 मीटर है। आँगन के उत्तर-दक्षिण तथा पूर्व में विहार तथा पश्चिम में इबादतखाना स्थित है। मस्जिद में तीन प्रवेशद्वार हैं जिनमें उत्तर तथा दक्षिण के प्रवेशद्वारों के ऊपर दो गुम्बद स्थित हैं। यह मस्जिद हिन्दू-मुस्लिम स्थापत्य कला शैली का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती है।

लाल दरवाजा मस्जिद- लाल दरवाजा मस्जिद अटाला मस्जिद की सरल रचना है। मस्जिद में स्त्रियों के लिए भी नमाज पढ़ने के लिए 'गैलरी' की व्यवस्था है। इस मस्जिद में तीन प्रवेशद्वार हैं। पर्सी ब्राउन के अनुसार, 'इसमें अटाला मस्जिद के तुल्य प्रभाव का अभाव है।'

जामा मस्जिद- इस मस्जिद का निर्माण अधिकतर अटाला मस्जिद की विशेषताओं के आधार पर किया गया है। मस्जिद एक ऊँचे चबूतरे पर स्थित है। इसका सहन (आँगन) 6.3 मीटर वर्गाकार है। इसमें भी तीन प्रवेशद्वार स्थित हैं। मस्जिद की दीवारों में सुन्दर शिल्पकारी की गयी है। मस्जिद के अहाते से ही लगा हुआ एक कब्रिस्तान है, जहाँ सुल्तान हुसेन शाह तथा उसके वंशजों को दफनाया गया है। मस्जिद के आँगन के मध्य में एक धूप घड़ी भी स्थित है। मस्जिद के दोनों कोनों पर मेहराबदार कक्ष हैं जिनमें प्रत्येक की लम्बाई 15 मीटर, चौड़ाई 12 मीटर तथा ऊँचाई 13.5 मीटर है।

झंझरी मस्जिद- यह मस्जिद अब खण्डहर अवस्था में है तथा इसका प्रवेशद्वार ही शेष रह गया है। इसका निर्माण भी अटाला मस्जिद की शैली पर हुआ है। मस्जिद के भीतरी भाग में सुन्दर झंझरियों का निर्माण किया गया है। इस मस्जिद में की गई सुन्दर शिल्पकारी, शिल्पकारों की कुशलता का परिचय प्रदान करती है।

खालिस मुखलिस मस्जिद- इस मस्जिद का निर्माण खालिस तथा मुखलिस नामक दो सूबेदारों ने कराया था। यह एक सरल पद्धति पर आधारित इमारत है तथा इसमें कोई विशेष उल्लेखनीय विशेषता नहीं है।

अहमदनगर

अहमदनगर दक्षिण भारत के राज्यों में एक प्रमुख राज्य था। यहाँ की वास्तुकला की अपनी स्वयं की विशेषताएँ हैं। जिसका स्वरूप हमें प्रयोग किये गये छोटे आकार के पत्थरों के टुकड़ों पतले मीनारों, अर्द्ध वृत्ताकार गुम्बदों तथा नीची मेहराबों में दृष्टिगत होता है। यहाँ की प्रमुख इमारतों का विवरण निम्न प्रकार है :

अहमदनगर का किला - यह किला अण्डाकार 1.6 किमी तथा 5 किमी की परिधि में है। किले के अन्दर निजामशाह का शयनकक्ष तथा अन्य भवन हैं। भवनों के मेहराबों तथा छतों को पीले तथा लाल रंगों से अलंकृत किया गया है। इसमें सुन्दर जालियों की भी व्यवस्था है। बाहरी प्रवेशद्वार के निकट दायीं ओर एक सन्त 'सैयद-बाग-ए-निजाम' की मजार है। इसके अतिरिक्त चाँद बीबी का राजप्रसाद है जो कि स्थापत्य कला का एक उत्कृष्ट नमूना है।

बाग-ए-रौजा- यह एक सुन्दर भवन है। इसका निर्माण काले पत्थरों के द्वारा हुआ है और यह 12 मीटर वर्गाकार है। इसकी छत गुम्बद के आकार की है तथा इसके अन्तर्गत पवित्र कुरान

की आयतें स्वर्ण अक्षरों में खुदी हुई हैं।

रूमी खाँ की मस्जिद अथवा मक्का मस्जिद- इस इमारत के निर्माण में चूने तथा गारे का उपयोग हुआ है। इसके उत्तर तथा दक्षिण की दिशा की दीवार 12 मीटर लम्बी है तथा इसका पूर्वी भाग 2.1 मीटर ऊँची मिट्टी की दीवार से घिरा हुआ है।

अल्लह दाद मस्जिद अथवा काली मस्जिद- यह सरल पद्धति पर आधारित इमारत है। इसका निर्माण सैयद अल्लह दाद खाँ ने कराया था जो बुरहान निजामशाह का प्रशासन अधिकारी था।

कोटला मस्जिद- यह मस्जिद दीवारों से घिरी हुई है। सर्वप्रथम इसके बनाने का उद्देश्य एक धार्मिक संस्थान अथवा विद्यालय से था।

रूमी खाँ का मकबरा- इसे 'पीला गुम्बद' तथा 'पीला मकबरा' भी कहा जाता है। यह इमारत वर्गाकार है तथा इसके ऊपर गुम्बद की योजना है। इसकी ऊँचाई 5.4 मीटर तथा दीवार की मोटाई 1.2 मीटर है।

अन्य भवन- अहमदनगर में अन्य भवनों तथा मस्जिदों का निर्माण हुआ जिनमें चंगेज खाँ का महल, फरहाद खाँ की मस्जिद, सरजा खाँ का महल तथा मस्जिद, तोरा बीबी की मस्जिद, नियामत खाँ का महल, सलाबत खाँ का मकबरा आदि उल्लेखनीय हैं।

बीजापुर

आदिलशाही सुल्तानों के शासनकाल में बीजापुर में अनेक मस्जिदों, मकबरों तथा भवनों का निर्माण हुआ। बीजापुर की स्थापत्य कला शैली उच्चकोटि की है। यहाँ शासकों ने भवनों को गुम्बदों, छज्जों तथा बेल-बूटों द्वारा सुसज्जित करने का प्रयास किया है, जिसका स्वरूप हमें उनके द्वारा निर्मित निम्न भवनों में दृष्टिगत होता है :

बीजापुर का किला- यह एक वृत्ताकार इमारत है। इसमें महलों तथा दो छोटी-छोटी मस्जिदों का निर्माण हुआ है। इस इमारत की कुछ अपनी विशेषताएँ है, जैसे गुम्बद की योजना (जो लगभग वृत्ताकार है) तथा सजावट के लिए बेल-बूटों का प्रयोग। इसके अतिरिक्त महलों में मेहराबों का सुन्दर ढंग से प्रयोग किया गया है तथा स्तम्भों का प्रयोग कम हुआ है।

जामा मस्जिद- यह एक आयताकार इमारत है जिसकी लम्बाई 135 मीटर तथा चौड़ाई 67.5 मीटर है। इसका आँगन वर्गाकार है तथा इसके तीन ओर मेहराबों की योजना है। प्रवेश द्वार को विभिन्न बेल-बूटों के द्वारा अलंकृत करने का प्रयास किया गया है।

रौजा-ए-इब्राहीम- यह नगर के पश्चिम में स्थित है। इसमें एक मकबरा तथा एक मस्जिद है जो एक वर्गाकार घेरे में स्थित हैं। दोनों (मक़बरा तथा मस्जिद) एक आयताकार चबूतरे पर स्थित हैं और यह चबूतरा 91.2 मीटर लम्बा तथा 45 मीटर चौड़ा है। इस चबूतरे के पूर्व की ओर मकबरा तथा पश्चिम की ओर मस्जिद स्थित है। मकबरे के ऊपर एक गुम्बद तथा मेहराबदार बरामदों की व्यवस्था है। मकबरे के अन्तर्गत 5.4 मीटर एक वर्गाकार कक्ष है। इसकी छत अलंकृत तथा सुन्दर है।

गोल गुम्बद- मोहम्मद आदिलशाह का मकबरा 'गोल गुम्बद' के नाम से विख्यात है। यह भारत के विशालकाय भवनों में से एक है। इसका बाह्य भाग देखने से प्याले की भाँति लगता है तथा इसके कोनों पर कंगूरों की व्यवस्था है। इसके ऊपर के अर्द्धवृत्ताकार गुम्बद का बाह्य व्यास

43.2 मीटर है। गोल गुम्बद भारतवर्ष का ही नहीं, वरन् विश्व का सबसे बड़ा गुम्बद है।

मेहतर महल- यह लघु आकार का एक महत्वपूर्ण भवन है। इसमें पत्थरों को इस प्रकार स्थापित किया गया है कि उनके मध्य के जोड़ भी स्पष्ट दिखाई नहीं देते हैं। इसका प्रत्येक भाग सुन्दर एवं अलंकरण से युक्त है। इसमें सुन्दर नक्काशी की भी व्यवस्था है।

अन्य भवन- इनके अतिरिक्त बीजापुर में अन्य कई मकबरों, मस्जिदों तथा भवनों का निर्माण हुआ जिनमें शाह करीम का मकबरा, अण्डाजहान मस्जिद, मलिका जहाँ बेगम की मस्जिद, अली शाहिद पीर की मस्जिद तथा गगन महल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

मांडू

परमार वंश के पश्चात् जब मालवा में मुस्लिम राजसत्ता स्थापित हुई तो वहाँ के शासकों ने धार नगरी के स्थान पर मांडू को नयी राजधानी बनाया और मांडू को स्थापत्य कला की कृतियों द्वारा सुसज्जित करने का प्रयास किया और इस प्रकार मांडू में अनेक सुन्दर तथा वैभवशाली भवनों का निर्माण कराया। मांडू की महत्वपूर्ण इमारतों का परिचय निम्न प्रकार है :

मलिक मुगीस की मस्जिद- यह मांडू की प्रारम्भिक मस्जिदों में है तथा इस पर हिन्दू स्थापत्य कला शैली का प्रभाव है। पर्सी ब्राउन के अनुसार, "यह विशेष मस्जिद इस काल की सुन्दरतम तथा अपने ढंग की अनोखी है।"

मांडू का किला- मांडू का किला देश के अन्य शहरी किलों से अति सुन्दर है। किले के चारों ओर बुर्जदार दीवारों का निर्माण हुआ है जिनमें मेहराबदार प्रवेशद्वार स्थित हैं। किले के प्रवेशद्वारों में 'दिल्ली दरवाजा' अधिक महत्वपूर्ण है।

जामा मस्जिद- यह एक विशालकाय मस्जिद है। यह वर्गाकार है तथा इसके एक ओर की दीवार की लम्बाई 86.4 मीटर है। मस्जिद का सहन (आँगन) वर्गाकार है तथा इसके प्रत्येक ओर की लम्बाई 48.6 मीटर है। मस्जिद को रंग-बिरंगे पत्थरों की सहायता से अलंकृत किया गया है।

अशरफी महल- यह जामा मस्जिद से मिला हुआ भवन है। इस समय यह भग्नावशेष अवस्था में है। यह भवन 96 मीटर वर्गाकार था।

होशंग शाह का मकबरा- यह मकबरा पूर्णतया संगमरमर का बना हुआ है। इसकी दीवारों की ऊँचाई 9 मीटर है। इसमें अलंकरण के लिए रंग-बिरंगे पत्थरों का प्रयोग किया गया है। यह मकबरा हिन्दू-मुस्लिम स्थापत्य कला शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है।

हिण्डोला महल- इस भवन का आकार अंग्रेजी वर्णमाला के टी (T) अक्षर की भाँति है। इसके मुख्य कक्ष की सामने की दीवार में तीन मेहराबदार प्रवेशद्वार हैं। इस भवन की मुख्य विशेषता सुन्दर दीवार तथा आनुपातिक मेहराबदार बरामदों का निर्माण है जो कि कारीगरों की कुशलता का परिचय देते हैं।

जहाज महल- यह भवन विशाल तथा दो मंजिला है। इस भवन के साथ दो छोटी झीलों की भी योजना है जो उसकी सुन्दरता में वृद्धि करती हैं।

बाज बहादुर का महल- यह महल नर्मदा के ऊपरी पठार पर स्थित है। यह एक अकेला भवन है। इस भवन में मेहराबदार कमरों के दो आयताकार समूह हैं तथा एक बाहरी आँगन की योजना है। इस भवन में बाज बहादुर रहा करता था।

रूपमती का महल- यह भवन पठार के दक्षिणी सिरे पर स्थित है। इसमें एक विशाल कक्ष की योजना है जिसके दोनों कोनों पर एक-एक कक्ष स्थित है। इसके अतिरिक्त इसकी छत के ऊपर दोनों कोनों पर गुम्बददार मण्डपों का निर्माण किया गया है। इससे भवन की सुन्दरता में वृद्धि होने के साथ-साथ इन मण्डपों से नर्मदा के मैदानों का सुन्दर दृश्य भी दिखाई देता था।

अन्य भवन- इन भवनों के अतिरिक्त मांडू के अन्य निर्मित भवनों में दरिया खाँ का मकबरा, नीलकण्ठ महल तथा चिश्ती खाँ का महल आदि प्रमुख हैं।

जैसलमेर

देश की उत्तर-पश्चिम सीमा पर थार के रेगिस्तान में बसा राजस्थान का जैसलमेर नगर अपने ऐतिहासिक दुर्ग, भवनों, झरोखों तथा हवेलियों के कारण विशेष रूप से प्रसिद्ध है। इस नगर की लाल इमारतों के कारण इसे **'रेगिस्तान में गुलाब'** की संज्ञा दी जाती है।

दुर्ग- जैसलमेर के दुर्ग का शिल्पकला के दृष्टिकोण से देश में महत्वपूर्ण स्थान है। आकार 9 मीटर ऊँची ठोस पत्थरों की दीवार से घिरा है। यह दुर्ग 77 मीटर ऊँचा, 457.2 मीटर लम्बा और 228.8 मीटर चौड़ा है तथा इसकी परिधि 5.1 किमी. है। इसका निर्माण महाराव जैसल ने कराया था। दुर्ग में नक्काशी तथा सोने की कलम से चित्रकारी किये 'गजमहल', 'मोतीमहल', 'रंगमहल' आदि दर्शनीय प्रासाद हैं। दुर्ग के चार प्रवेशद्वार हैं जो 'अखैपोल', 'सूरजपोल', 'भूतपोल' तथा 'हवापोल' के नाम से प्रसिद्ध हैं। पत्थर की विशाल शिलाओं से निर्मित 'सूरजपोल' अत्यन्त आकर्षक मध्यकालीन कला का विशिष्ट नमूना है। इसके अलावा दुर्ग का 'लक्ष्मीनाथ मंदिर', 'महादेव मंदिर' तथा 'गणेश मंदिर' भी अपनी कलात्मकता के कारण दर्शनीय हैं।

जैसलमेर का 'बादल विलास' एवं 'जवाहर विलास' भी दर्शनीय भवन हैं। ताजिये के आकार में निर्मित 'बादल विलास' पाँच-मंजिला भवन है तथा प्रत्येक मंजिल पर बने हुए बरामदे व उनके ऊपर की छतरियाँ आकर्षक हैं।

हवेलियाँ- जैसलमेर को हवेलियों के शहर के नाम से भी जाना जाता है। हवेलियों में पत्थरों से बनी जालियों का काम, पारदर्शक झरोखे, सोने की कलम से की गई चित्रकारी तथा सीपी व कांच का कार्य दर्शकों को आत्म-विभोर कर देता है। इन हवेलियों में पत्थरों के मिलान का कार्य इतना कलात्मक है कि यह पता ही नहीं चलता कि हवेली एक ही पत्थर से निर्मित है या पत्थरों को जोड़कर बनायी गयी है। हवेलियों में मेहता सालम सिंह तथा नथमल की हवेलियाँ अत्यंत आकर्षक हैं।

जैन मंदिर- जैसलमेर में अनेक जैन मंदिर हैं। इन मंदिरों के तोरण-स्तम्भ, छत, मूर्तियाँ आदि कला की दृष्टि से द्वितीय हैं। शिल्प व मूर्तिकला की दृष्टि से यहाँ का 'पार्श्वनाथ मंदिर', सम्भवनाथ मंदिर', 'ऋषभदेव मंदिर', 'महावीर मंदिर' तथा 'चन्द्रप्रभु मंदिर' विशेष रूप से दर्शनीय हैं।

भद्रसुरि ज्ञान-भंडार- जैसलमेर में संभवनाथ जी के भूमिगत भँवर में 'जिन भद्रसुरि ज्ञान भंडार' है। इसमें प्राचीनतम ताड़पत्रीय और हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह है। इस ज्ञान भंडार में ताड़पत्रों पर लिखी हुई 1226 पाण्डुलिपियाँ तथा कागज पर लिखी लगभग 2257 पाण्डुलिपियाँ हैं।

सरोवर- जैसलमेर नगर के चारों ओर सुरम्य सरोवर बने हुए हैं। इन सरोवरों में सुन्दर कलापूर्ण घाट तथा घाटों पर विभिन्न देवी-देवताओं के कलापूर्ण मंदिर हैं। सरोवरों में महारावल

अमरसिंह द्वारा निर्मित 'सागर सरोवर' विशेषरूप से दर्शनीय है। इसके किनारे पर बने मंदिरों की स्थापत्यं कला तो अपने-आपने में बेजोड़ ही है।

निःसन्देह, स्थापत्य कला, कला के बेजोड़ नमूनों, कलात्मक भवनों, झरोखों तथा सुरम्य सरोवरों के कारण ही जैसलमेर को 'स्वर्ण-नगरी' की उपमा दी जाती है।

उदयपुर

उदयपुर नगर की स्थापना महाराणा उदय सिंह द्वारा 1559 में की गई थी। इसलिए उन्हीं के नाम पर इसका नाम उदयपुर रखा गया। उदयपुर में अनेक दर्शनीय स्थल हैं जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

झील पिछौला- उदयपुर को अद्भुत सौंदर्य प्रदान करने वाली यहाँ की पिछौला झील है। इस झील का निर्माण 15वीं शताब्दी में महाराणा लाखा के राज्यकाल में एक बंजारे द्वारा कराया गया था। झील चारों ओर से पर्वत-श्रेणियों, स्नान-घाटों, महलों और मंदिरों से घिरी हुई है। इस विशाल झील के पूर्वी तट तथा दक्षिणी तट पर क्रमशः 'जग निवास', अब जिसने 'लेक पैलेस होटल' का रूप से लिया है, जंग मंदिर है।

राज प्रासाद- पिछौला झील के तट पर राजप्रासाद स्थित है। इसके महल इतने भव्य हैं कि प्रसिद्ध इतिहासकार फर्ग्यूसन ने इन्हें 'राजस्थान के विन्डसर महलों' की उपाधि दी है। राजप्रासाद में बाड़ी महल, दिलखुश महल, यश मंदिर, मोती महल, मोर चौक, छोटी चित्रसाल, करन विलास, सूर्य प्रकाश, मानक महल, सूरज गोखड़ा, सूरज चौंपड़,, प्रीतम निवास, शिव विलास आदि भाग दर्शनीय हैं। राजप्रासाद के एक भाग में 'प्रताप संग्रहालय' है जिसमें पुरानी तस्वीरें, शिलालेख, हथियार, भारत के विभिन्न प्रदेशों में पहनी जाने वाली पगड़ियों के नमूने आदि वस्तुओं का संग्रह है।

सहेलियों की बाड़ी- सहेलियों की बाड़ी एक सुंदर उद्यान है। यहाँ राजकुमारियाँ अपनी सहेलियों के साथ मनोरंजन एवं जल-क्रीड़ा हेतु आती थीं। इसी कारण इसे सहेलियों की बाड़ी कहा जाता है। यहाँ प्रतिवर्ष श्रावण माह की अमावस्या को 'हरियाली अमावस्या' नामक एक विशाल मेला भी लगता है।

झील फतहसागर- नगर के उत्तर-पश्चिम में कुछ दूरी पर फतहसागर झील है। झील के किनारे सर्पाकार मार्ग बना है जो झील की सुन्दरता अद्वितीय कर देता है। झील का बाँध लगभग 540 मीटर लम्बा है व इसकी सामान्य गहराई लगभग 45 मीटर है।

नेहरू दीप उद्यान- झील फतहसागर के मध्य टापू पर नेहरू दीप उद्यान स्थित है जो लगभग साढ़े चार एकड़ क्षेत्रफल में फैला हुआ है। उद्यान में पिरामिड रूपी फौव्वारे लगाये गये हैं जो रात्रि में रंगीन प्रकाश में आकर्षक प्रतीत होते हैं।

प्रताप स्मारक- झील फतहसागर के पास की पहाड़ी पर कॉस्य मिश्रित धातु से निर्मित चेतक पर सवार महाराणा प्रताप की मूर्ति का भव्य स्मारक है।

जगदीश जी का मंदिर- उदयपुर नगर के बीचो-बीच जगदीश जी का मंदिर है। इसका निर्माण महाराणा जगतसिंह प्रथम ने लगभग 15 लाख रुपये की लागत से करवाया था।

मंदिर की ऊँचाई 24 मीटर है तथा 7.5 मीटर ऊँचे चबूतरे पर बना हुआ है। मंदिर तक पहुँचने के लिए 32 सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं। मंदिर की भित्तियों में चित्रित विभिन्न मूर्तियाँ कला के सर्वोत्तम नमूने हैं। इस मुख्य मंदिर के अलावा यहाँ ऐसे और अनेक मंदिर हैं।

उदयपुर में शैक्षणिक संस्थाओं का एक जाल-सा बिछा हुआ है। यहाँ रेलवे ट्रेनिंग स्कूल, उदयपुर विश्वविद्यालय, विद्या भवन आदि अनेक शिक्षण संस्थाओं के साथ-साथ भारतीय लोक कला मंडल तथा मीर कला मण्डल आदि सांस्कृतिक संस्थाएँ भी हैं।

चित्तौड़

राजस्थान की वीरता, त्याग और देश-प्रेम का प्रतीक चित्तौड़ दुर्ग जमीन से लगभग 150 मीटर की ऊँचाई पर एक पहाड़ी पर स्थित है। दुर्ग का भीतरी वृत्त 5 किमी. लम्बा और 0.91 किमी. चौड़ा है। प्राचीर समेत दुर्ग 279 हेक्टेयर में फैला है। दुर्ग का सम्पूर्ण व्यास 11 किमी. है। दुर्ग में प्रवेश के लिए उत्तर, पूर्व और पश्चिम से रास्ते हैं। पूर्व में स्थित सूरज पोल दरवाजा दुर्ग का सबसे प्राचीन दरवाजा है। चित्तौड़ दुर्ग की प्रशंसा करते हुए एक ब्रिटिश वास्तुकार ने लिखा है कि 'यह दुर्ग एक बड़े समुद्री जहाज की तरह लगता है।'

चित्तौड़ दुर्ग के देखने योग्य स्मारकों में कुम्भा के महल, फतल महल, विजय स्तम्भ, कुम्भा श्याम मंदिर, पद्मणी महल, कालिका माता मंदिर, महादेव तथा चार भुजाजी का मंदिर, सती स्थल, भामाशाह की हवेली, मीरा मंदिर, गौमुख व सत बीस देवरी आदि प्रमुख हैं। दुर्ग का गौरव स्थल विजय स्तम्भ है। 14.32 वर्ग मीटर व्यास वाला यह ऐतिहासिक स्तम्भ 37.19 मीटर ऊँचे एक चबूतरे पर खड़ा है। स्तम्भ का निर्माण महाराज कुम्भा ने 1437 में मांडू के सुल्तान महमूद को हराने के बाद कराया था। इस नौ मंजिले भवन में लगभग हिन्दुओं के सब देवी-देवाताओं की मूर्तियों को सुन्दर रूप में तराशा गया है।

आठवीं शताब्दी में निर्मित कालिका माता का मंदिर दुर्ग के पूर्वी किनारे पर एक ऊँचे स्थान पर स्थित है। मूल रूप में यह सूर्य मंदिर था। लेकिन बाद में इसे शक्ति मंदिर के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। अश्विनी द्वारा चलाये जा रहे सात घोड़ों के एक रथ पर पीठासीन मुद्रा में स्थित सूर्य की मूल प्रतिमा आज भी गर्भगृह के मुख्य द्वार के ऊपर बने पट्ट की चोटी को ढँके हुए है। मंदिर का सभा मंडप 3.6 मीटर ऊँचे स्तम्भों पर टिका हुआ है तथा भीतरी छत समतल और अनेक भागों में विभक्त है।

नवीं शताब्दी में निर्मित कुम्भ श्यामजी का मंदिर भी कालिका माता के मंदिर की भांति विस्तृत है। मंदिर में गर्भगृह, अर्द्धमण्डप, सभागृह तथा श्रृंगार चौकी हैं। वर्तमान समय में यह मंदिर भगवान विष्णु को समर्पित है। मंदिर में ब्रह्मा, अग्नि, धनुष-बाण लिए राम और लक्ष्मण, हरिहर, नाग नागिन, षष्ठमुखी कार्तिकेय, दिक्पाल, शिव-पार्वतीय व्याह, वरुण,यम, शेरवाहिनी 'दुर्गा' अर्द्धनारीश्वर, नृत्य करती चामुंडा, महिषामर्दिनी, लक्ष्मीनारायण और सरस्वती आदि की प्रतिमाएँ हैं। इसके साथ ही समीद्धेश्वर और कुकावेश्वर के मंदिर भी दर्शनीय हैं।

जोधपुर

1459 में मारवाड़ के राजा जोधाराव द्वारा जोधपुर की स्थापना तथा दुर्ग का निर्माण कराया गया था। जोधपुर के दर्शनीय स्थलों में मुख्यतः दुर्ग तथा मंदिर हैं। दुर्ग को मेहरनगढ़ के नाम से पुकारा जाता है। बलुआ पत्थरों से निर्मित यह दुर्ग 500 मीटर लम्बा और 230 मीटर चौड़ा है। दुर्ग की प्राचीर की ऊँचाई 6 मीटर से 36 मीटर तक तथा मोटाई 3.6 मीटर से 21 मीटर तक है। इसमें प्रवेश के लिए उत्तर-पूर्व में 'जयपोल' और दक्षिण-पश्चिम में 'फतेहपोल' नामक दो मुख्य प्रवेश द्वार हैं। फतेहपोल द्वार को 'लोहा पोल' भी कहा जाता है। इसके अतिरिक्त ध्रुव पोल,

सूर्य पोल, भेरु पोल आदि अन्य प्रवेश द्वार हैं।

दुर्ग के मोतीमहल, फूल महल, तकिया महल और अनवर महल में सुन्दर भीत्ति-चित्रों और उनकी बनावट में उत्तम वास्तुकला झलकती है। चौमुंडा देवी और मुरली मनोहर के सुन्दर मंदिर भी विद्यमान हैं।

दुर्ग से लगा हुआ 'गुलाब सागर' नामक एक विशाल जलाशय है जिसका निर्माण विजय सिंह की उपपत्नी गुलाबराय ने 1788 में कराया था। विशाल सागर में पानी लाने के लिए कागा मंजोर के पहाड़ों से निकाली गई सात किलोमीटर लम्बी पत्थर की एक नहर है। सागर के मध्य में एक पनघट है तथा सागर के एक ओर संगमरमर पर उत्कीर्ण किया हुआ एक शिलालेख भी है जो कि संगमरमर के पत्थर के स्तम्भ पर लगा हुआ है। इसके गुलाब सागर की निर्मात्री गुलाबराय की गाथा अंकित है। सागर के किनारे ही गुलाबराय का राजमहल है। गुलाब सागर के सामने एक पुरानी बावड़ी थी जिसे गुलाबराय ने परिवर्तित कर झालरे का रूप दे दिया था। यह झालरा लाल घाटू के पत्थरों से बना एक महल की भाँति नजर आता है। इसमें प्राकृतिक रूप से पानी की शीरें आती थीं। वर्तमान समय में गुलाब सागर और झालरा पूरी तरह उपेक्षित हैं। गुलाब सागर ने अब एक विशाल कचरा पात्र का रूप ले लिया है।

जोधुपर के प्रासादों में उम्मेद विलास, चन्दन महल, दौलतखाना व छीतर महल तथा मंदिरों में कुंज बिहारी मंदिर व घनश्याम मंदिर दर्शनीय स्थल हैं।

हैदराबाद

आन्ध्र प्रदेश की राजधानी हैदराबाद इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसका पुराना नाम 'भाग्य नगर' था। यहाँ के इब्राहीम कुतुबशाह के पुत्र मुहम्मद कुली ने जब भागमती से विवाह किया और उसका नाम हैदर महल रखा, तभी भाग्य नगर का नाम बदल कर हैदराबाद कर दिया गया। हैदराबाद के मुख्य दर्शनीय इस प्रकार हैं :

चार मीनार– चार मीनार इमारत इस शहर का सबसे बड़ा आकर्षक स्थल है। इसका निर्माण 1591 ई. में शुरू किया गया और चारों मीनारों को बनाने में लगभग 21 वर्ष लगे।

गोलकुण्डा किला– हैदराबाद से करीब 10 किमी. दूर पर गोलकुण्डा किला है। 800 वर्ष पुराने इस किले के खण्डहर स्थापत्य कला के अद्भुत नमूने हैं। किले में आठ विशाल द्वार हैं। किले के अन्दर रानी महल के खण्डहरों में शाही हमाम, मस्जिदें, मंदिर और दीवान-ए-आम दर्शनीय भवन हैं।

निजाम महल– हैदराबाद के निजामों द्वारा बनवाया गया फलकनुमा महल उनकी शान-शौकत और स्थापत्य कला के प्रति बेहद लगाव का प्रतीक है। 1884 ई. में यह महल बनकर तैयार हुआ और इसके बनने में लगभग नौ वर्ष लगे। महल के अन्दर की नक्काशी और चित्रकारी देखने योग्य है।

कुतुबशाही मकबरा– कुतुबशही मकबरे इस नगर की सबसे प्रसिद्ध ऐतिहासिक इमारतों में हैं। यह विश्व का ऐसा मकबरा है जहाँ पूरा कुतुबशाह वंश एक स्थान पर दफनाया गया हैं।

मंदिर व मस्जिद– हैदराबाद में संगमरमर से बना विशाल बिड़ला मंदिर देखने लायक है। इसके अतिरिक्त बेंकटेश्वर मंदिर, आनंद बुद्ध बिहार, तथा मक्का मस्जिद आदि दर्शनीय इमारतें हैं।

परिशिष्ट 'ख' से संबंधित अति लघु उत्तरीय प्रश्न (उत्तर सीमा 10 शब्द)

नोट- निम्नलिखित भवनों एवं कला आदि पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।

1. बुलन्द दरवाजा
2. ताजमहल
3. आगरा की 'मोती मस्जिद'
4. लाल किला का 'दीवान-ए-खास'
5. दिल्ली की 'जामा मस्जिद'
6. अलाई दरवाजा
7. आगरा का 'जहाँगीरी महल'
8. कालिंजर दुर्ग का 'नीलकंठ मंदिर'
9. लखनऊ का 'बड़ा इमामबाड़ा'
10. संसद भवन
11. राष्ट्रपति भवन
12. अक्षरधाम मंदिर
13. बीजापुर का 'गोल गुम्बद'
14. हैदराबाद का 'निजाम महल'
15. मांडू का 'हिंडोला महल'
16. जौनपुर की 'अटाला मस्जिद'
17. उदयपुर का 'प्रताप स्मारक'
18. फतेहपुर सीकरी का 'पंच महल'
19. फतेहपुर सीकरी का 'खास महल'
20. कुतुबमीनार
21. फतेहपुर सीकरी का 'जोधाबाई महल'
22. मांडू का 'रूपमती महल'
23. एतमाद-उद्-दौला का मकबरा
24. आगरा दुर्ग का 'मुसम्मन-बुर्ज'
25. फतेहपुर सीकरी की 'जामा-मस्जिद'
26. अकबर का मकबरा
27. आगरा दुर्ग का 'शीशमहल'
28. मांडू का 'बाज बहादुर का महल'
29. बीजापुर का 'रोजा-ए-इब्राहीम'
30. जैसलमेर का 'बादल-विलास'

परिशिष्ट 'ग'

प्रमुख ऐतिहासिक व्यक्ति

(1) बैरम खाँ – बैरम खाँ ईरानी शिया मुसलमान था। वह बाबर के समय भारत आया था। हुमायूँ के शासन काल में उसे विशेष महत्व प्राप्त हुआ। बैरम खाँ की स्वामि-भक्ति से प्रभावित होकर ही हुमायूँ ने अकबर के संरक्षण का भार उसे सौंपा था। अकबर उसे खान बाबा के नाम से सम्बोधित करता था। संरक्षक के रूप (1556-60) में बैरम खाँ की सबसे बड़ी सफलता हेमू को पराजित करना एवं अकबर के शत्रुओं को नष्ट करना था। संरक्षण-काल में प्रादेशिक विस्तार भी किया गया था। नये अधिकृत क्षेत्रों में शासन व्यवस्था स्थापित की गयी।

बैरम खाँ ने मुगलों की बहुमूल्य सेवा की थी, परन्तु अनुचित तरीके से कार्य करने के कारण उसने अब तक बहुतों को अपना शत्रु बना लिया था। अबुल फजल लिखता है, "अन्त में बैरम के कार्य सहन-शक्ति के बिल्कुल बाहर हो गये।" अकबर स्वयं वास्तव में तथा नाम में भी बादशाह बनना चाहता था। उसकी माँ हमीदा बानू बेगम, उसकी धाय माहम-अनगा का पुत्र आदम ख़ाँ उसे संरक्षक से मुक्ति पाने के लिए प्रेरित भी करने लगे। 1560 में अकबर ने शासन सूत्र अपने हाथों में ले लेने का अपना निर्णय बैरम खाँ के सामने स्पष्ट रूप से व्यक्त किया तथा उसे पदच्युत कर दिया। बैरम खाँ ने असन्तोष व्यक्त किया और विद्रोह कर दिया। वह जालन्धर के निकट पराजित हो गया, पर अकबर ने उसके साथ उदारता का व्यवहार किया और उसे मक्का जाने की अनुमति दे दी (अक्टूबर 1560)। मार्ग में ही पाटन में मुबारक खाँ लोहानी नामक अफगान ने खानबाबा की हत्या कर दी (31 जनवरी, 1561)। उस अफगान के पिता को माछीवाड़ा के युद्ध (मई, 1555) में बैरम खाँ के अधीन मुगल सिपाहियों ने मार डाला था। अकबर ने बैरम खाँ की विधवा सलीमा बेगम से विवाह कर लिया और उसके पुत्र अब्दुर्रहीम खानखाना को अपने संरक्षण में ले लिया। आगे चलकर वह साम्राज्य का एक प्रमुख अमीर बना।

(2) अब्दुर्रहीम खानखाना- आप बैरम खाँ के पुत्र थे जो अकबर के प्रारम्भिक काल में उसके संरक्षक के पद पर आसीन थे और जिन्होंने मुगल-साम्राज्य की स्थापना में सक्रिय भाग लिया। बैरम खाँ की मृत्यु के समय अकबर ने उसको अपनी संरक्षिता प्रदान की और उनके ऊपर उसकी सदा विशेष कृपा बनी रही। इसी कारण उनमें विशेष प्रतिभा का उदय हुआ। वह फारसी, तुर्की तथा हिन्दी भाषा का विद्वान था। उसने बाबर की आत्मकथा 'बाबरनामा' का तुर्की भाषा से फारसी भाषा में अनुवाद किया। उन्होंने हिन्दी भाषा में बहुत से दोहों की रचना की। ये बड़े शिक्षाप्रद हैं और आज भी बड़े चाव से उनका अध्ययन किया जाता है। उनकी गणना उच्चकोटि के सेनापतियों तथा सेनानायकों में की जाती है। उन्होंने साम्राज्य के विकास में सहयोग प्रदान किया। उन्होंने गुजरात, दक्षिण तथा सिन्ध के अभियानों में भाग लेकर अपनी कीर्ति की स्थापना की। उनकी अद्भुत प्रतिभा तथा योग्यता से प्रभावित होकर अकबर ने उसको 'खानखाना' की पदवी प्रदान की। जहाँगीर के समय में उनके मान की क्षति हुई। उनका देहान्त 1627 ई. में हुआ।

(3) अबुल फजल- आप शेख मुबारक के पुत्र थे जो बड़े विद्वान तथा शिया धर्म के अनुयायी थे। इनका जनम 1551 ई. में हुआ था। इन पर अपने पिता के विचारों का बड़ा प्रभाव पड़ा जिसके कारण इनके धार्मिक विचार बड़े उदार थे। ये बड़े ही स्वतन्त्र प्रकृति के थे। इनका सम्पर्क सम्राट से 1572 ई. में हुआ। अपनी योग्यता तथा प्रतिभा के आधार पर ये शीघ्र ही सम्राट के कृपा-पात्र बने गये। कट्टर मुसलमान इनको घृणा की दृष्टि से देखते थे। इनका सम्राट पर विशेष प्रभाव था और उसके धार्मिक विचारों में उदारता लाने का पर्याप्त श्रेय इनको ही प्राप्त है। सम्राट

इनको अपना अन्तरंग मित्र तथा हितैषी समझते थे। इनको साहित्य से विशेष प्रेम था। ये उच्चकोटि के विद्वान थे। 'अकबरनामा' तथा 'आइन-ए-अकबरी' इनके अमूल्य ऐतिहासिक ग्रन्थ थे जिनसे अकबर के समय का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होता है। इन्होंने 'कालीय दमन' का अनुवाद फारसी में किया था। ये उच्चकोटि के सेनानायक भी थे। इन्होंने दक्षिण के अभियानों में भाग लिया। जब दक्षिण अभियान से ये वापिस आ रहे थे तो जहाँगीर के षड्यंत्र के कारण बुन्देला सरदार वीरसिंह देव ने इनका वध 1602 ई. में कर दिया। इनकी मृत्यु का शोकमय समाचार सुनकर सम्राट अकबर को बड़ा दुःख हुआ।

(4) शेख फैजी – शेख फैजी अबुल फजल के जेष्ठ भ्राता थे। 1572 ई. के समीप आप सम्राट अकबर के संपर्क में आये। ये उच्चकोटि के कवि तथा साहित्यकार थे। अकबर ने इनकी विद्वता के कारण इनको राजकवि के पद पर सुशोभित किया। इनके धार्मिक विचार बड़े उदार थे और इनका भी सम्राट पर विशेष प्रभाव था। आपने 'लीलावती' तथा 'नलदमयन्ती' का अनुवाद फारसी में किया। इनका देहान्त 1595 ई. में हुआ।

(5) तानसेन– तानसेन ग्वालियर के निवासी थे। इनको गायन तथा संगीत से विशेष प्रेम था। ये अपने समय के सर्वोत्कृष्ट गायक थे। ये रीवां के राजा रामचन्द्र के दरबार में थे। 1560 ई. में उनके गायन की प्रसिद्धि सुनकर अकबर ने उनको अपने दरबार में बुलाया और उनका बड़ा आदर-सत्कार किया गया। बाद में इन्होंने इस्लाम-धर्म अंगीकार कर लिया था। इनको कविता करने का भी चाव था। 1589 ई. मं इनका देहान्त हो गया और ये ग्वालियर में दफनाये गये। आज भी उनके मजार पर प्रतिवर्ष एक मेला लगता है।

(6) राजा मानसिंह – आप राजा भगवानदास के दत्तक पुत्र थे जो आमेर के राजा थे। 1561 ई. में इन्होंने सम्राट अकबर की सेवा में प्रवेश किया। इस वंश का सम्राट तथा राजकुमार सलीम से वैवाहिक सम्बन्ध था जिसके कारण दरबार में इनका मान तथा प्रतिष्ठा बहुत अधिक थी। इन्होंने मुगल-साम्राज्य के विस्तार में अकथनीय परिश्रम किया। उनके ही प्रयत्नों के परिणामस्वरूप हिन्दुओं को जजिया तथा अन्य करों से मुक्ति मिली। ये उच्च कोटि के सेनानायक तथा सेनापति थे। इन्होंने महाराणा प्रताप को हल्दीघाटी के युद्ध में परास्त किया। इन्होंने अफगानों को परास्त किया। ये बंगाल, बिहार तथा काबुल के सूबेदारों के पद पर आसीन हुए। ये राजकुमार खुसरो को अकबर के उपरान्त सम्राट बनाना चाहते थे। किन्तु षड्यन्त्र में असफल हुए। जहाँगीर ने इनको क्षमा कर दिया और इनको बंगाल का सूबेदार नियुक्त किया। 1611 में इनकी मृत्यु हो गयी। जहाँगीर के समय में इनका मान तथा प्रतिष्ठा बहुत कम हो गयी थी।

(7) राजा टोडरमल– इनका जन्म मोहलपुर गाँव में हुआ था। ये जाति के खत्री थे। आपने शेरशाह को भूमि-व्यंवस्था में बड़ी सहायता प्रदान की थी। अकबर के शासन-काल में ये लेखक पद पर आसन्न हुए किन्तु धीरे-धीरे उन्नति करते हुए आप 'वकील' (दीवान-ए-अशरफ) के पद पर आसीन हुए। आपको माल-विभाग की जानकारी थी। 1573 ई. में गुजरात में जो भूमि-सुधार अकबर ने किये वे उनकी ही योजना पर आधारित थे। यहीं से उनकी उन्नति होनी आरम्भ हुई। 1577 ई. में वजीर, 1582 ई. में वकील के पद पर आसीन हुए। उन्होंने वकील के पद पर रहकर जो भूमि-व्यवस्था की उसने उनके नाम को अमर कर दिया। ये उच्चकोटि के सेनानायक तथा सेनापति भी थे। इन्होंने बहुत से युद्धों में भाग लिया। 1589 ई. में इनका देहान्त हो गया। राजा टोडरमल बड़े ही चरित्रवान तथा धर्म-परायण व्यक्ति थे। मुस्लिम दरबार में रहकर भी इन्होंने अपने धर्म के आचार-व्यवहारों को निभाया और सम्राट का बड़ा कृपा-पात्र होने पर भी इन्होंने दीन-ए-इलाही को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। यद्यपि अबुल फजल उनको धार्मिक कट्टरता तथा गर्वशीलता के कारण पसन्द नहीं करता था परन्तु उसके साहस तथा उनकी निर्लोभिता की उसने भी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।

(8) राजा बीरबल– इनका जन्म कालपी में 1528 ई. में हुआ था। इनका बालकपन

का नाम महेशदास था। ये जाति के ब्राह्मण थे। राजा भगवानदास ने इनको दरबार में प्रवेश कराया। ये अच्छे कवि और संगीतज्ञ थे। इनकी वाक्यपटुता प्रसिद्ध है। अपने गुणों के कारण ये सम्राट अकबर को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल हुए। ये धीरे-धीरे उनके कृपापत्र बनते गये और बाद में उनके अन्तरंग मित्र बन गये। अकबर ने इनको 'कविराज' की पदवी प्रदान की। ये सेनापति भी थे। कई युद्धों में इन्होंने सक्रिय भाग लिया। 1586 ई. में यूसुफजाइयों से युद्ध करते हुए वे मारे गये। अकबर ने इनके मृत्यु पर बड़ा शोक मनाया था। इनके लतीफे आज भी मनोविनोद का साधन प्रस्तुत करते हैं।

(9) महाराणा प्रताप- उदयसिंह की मृत्यु के पश्चात् 1572 ई. में गद्दी पर आसीन हुए। राणा का जन्म 31 मई, 1539 ई. हुआ था। वह स्वतन्त्र प्रकृति के व्यक्ति थे। अपने वंश की मर्यादा तथा स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए राणा प्रताप सिंह दृढ़ संकल्प थे। राणा प्रताप ने दुर्गों की मरम्मत करवाना तथा सैन्य शक्ति बढ़ाना शुरू कर दिया। अकबर ने राणा के पास दूत भेजकर अधीनता स्वीकार करने को कहा। इसी बीच गुजरात से वापस आते समय मानसिंह उदयपुर गये। राणा प्रताप ने मानसिंह का आदर-सत्कार किया किन्तु उसके साथ भोजन करने से इन्कार कर दिया क्योंकि मानसिंह की बुआ जोधाबाई का विवाह अकबर के साथ हुआ था। राणा के इस व्यवहार से राजा मानसिंह तथा अकबर दोनों ही उन्हें नीचा दिखाने लिए दृढ़ संकल्प हो गये।

1576 ई. में अकबर ने राजा मानसिंह तथा आशफ खाँ को पाँच हजार अश्वारोहियों के साथ मेवाड़ के लिए भेजा। हल्दीघाटी के मैदान में राणा प्रताप तथा मुगल सेना में भीषण युद्ध हुआ। राणा की सेना पीछे हट गयी। राणा को अरावली पर्वत की पहाड़ियों में शरण लेनी पड़ी और असहनीय कष्ट सहने पड़े। उन्होंने पुनः सेना संगठित की तथा कुछ दुर्गों पर उनका अधिकार भी हो गया। किन्तु 1597 ई. में राणा प्रताप की मत्यु हो गयी। जीवनपर्यन्त इस स्वतन्त्रता प्रेमी ने अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की। उसने अपनी माँ के दूध को सफल बनाने की कठिन प्रतिज्ञा की थी और उसने उसे भलीभाँति निभाया भी। टॉड के शब्दों में, 'राणा वह राजपूत था जिसकी स्मृति आज भी हर सिसोदिया को है और उसे वह तब तक रखेगा जब तक कि कोई नया दमन का विनाशक तत्व देश-प्रेम की उन बची-खुची चिनगारियों को बुझा न देगा। आशा है कि वह दिन कभी न आयेगा।"

(10) नूरजहाँ- नूरजहाँ का बचपन का नाम मेहरुन्निसा था। उसका पिता मिर्जा गयासबेग तेहरान का निवासी था। वह अत्यधिक निर्धन था जिसके कारण वह नौकरी की खोज में भारत आया। 1578 ई. में जब गयासबेग कन्दहार आया तब उसकी गर्भवती पत्नी ने एक लड़की को जन्म दिया, जिसका नाम मेहरुन्निसा रखा गया। मलिक मसूद नामक व्यापारी के प्रयास से गयासबेग को अकबर के दरबार में नौकरी मिल गयी। अपनी योग्यता के बल पर वह शीघ्र ही शाही प्रबन्धक बन गया।

मेहरुन्निसा बड़ी ही रूपवती थी। सलीम उसकी सुन्दरता पर मुग्ध हो गया था किन्तु अकबर ने उसका विवाह मेहरुन्निसा से करने से इन्कार कर दिया। 16 वर्ष की आयु में मेहरुन्निसा का विवाह एक ईरानी व्यक्ति शेर अफगन के साथ कर दिया। पहले इसका नाम अली कुली खाँ था, किन्तु जहाँगीर ने उसे शेर अफगन की उपाधि प्रदान की। वह जहाँगीर की सेवा में रहा करता था। जहाँगीर ने उसे बर्दवान, बंगाल की जागीर दे दी, जिससे वह बंगाल चला गया। वहाँ पर बंगाल के हाकिम कुतुबुद्दीन और अफगन में झगड़ा हो जाने के कारण अफगन की हत्या कर दी गयी।

इस घटना के पश्चात् विधवा नूरजहाँ और उसकी पुत्री लाड़िली बेगम को आगरा लाया गया। उसे राजमाता सलीमा बेगम की सेवा में रख दिया गया। चार वर्ष पश्चात् 1611 ई. में जहाँगीर ने उससे विवाह कर लिया। बादशाह उसके सौन्दर्य से इतना मुग्ध था कि पहले उसने उसे नूरमहल और बाद में नूरजहाँ की उपाधि से विभूषित किया।

नूरजहाँ का राजनीतिक प्रभाव- जहाँगीर ने शासन का पूरा काम नूरजहाँ को सौंप दिया

था। दरबार में नूरजहाँ ने अपना एक गुट बना लिया था। शासन पर उसके प्रभाव के दो काल हैं, (1) 1611 से 1622 तक और (2) 1622 से 1627 तक। पहले काम में नूरजहाँ ने अपने पिता एतमादुद्दौला, भाई आसफ खाँ और शाहजादा खुर्रम का एक शक्तिशाली गुट बनाकर अपना प्रभाव बढ़ाया तथा दूसरे काल में उसने शासन का सम्पूर्ण नियन्त्रण स्वयं अपने हाथों में ले लिया। इस समय वह अपने दामाद शहरयार को जहाँगीर का उत्तराधिकारी बनाने के प्रयत्नों में लगी रही। अन्त में 17 दिसम्बर, 1645 को उसकी मृत्यु हो गई।

(11) दाराशिकोह– शाहजहाँ के चार पुत्र थे। इनका जन्म मुमताज महल के गर्भ से हुआ था। भाइयों में सबसे बड़ा दारा था। उसे 'शाह इकबाल' की उपाधि मिली थी। शाहजहाँ उसे सबसे अधिक प्यार करता था। इससे वह प्रायः आगरा में अपने पिता के पास रहता था। वह बड़े ही उदार तथा दयालु स्वभाव का था। उस पर शियाओं, सूफियों तथा वेदान्तियों का अधिक प्रभाव था। परन्तु जितना उसे प्रशासकीय अनुभव था उतना उसे सामरिक अनुभव न था। फिर भी वीरता, साहस तथा उत्साह का उसमें अभाव न था। एक लेखक के अनुसार, 'दारा का पालन–पोषण अपने पिता की नर्तकियों और भाँड़ों के बीच हुआ था, इसलिए उसे युद्धों का पर्याप्त अनुभव नहीं था और वह विश्वासघातियों की बातों पर भी आवश्यकता से अधिक विश्वास करता था।' वह पंजाब का सूबेदार था। अत्यधिक प्रिय होने के कारण शाहजहाँ उसे ही अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था।

शाहजहाँ के बीमार पड़ने पर उसका उत्तराधिकारी बनने के लिए जो संघर्ष हुआ उसमें औरंगजेब ने मुराद से सन्धि कर ली, संधि के अनुसार यह निश्चित हुआ कि वे दोनों दारा से संयुक्त मोर्चा लेंगे और बाद में शाही कोष और साम्राज्य को आपस में बाँट लेंगे।

अप्रैल, 1658 के अन्त में दोनों की सम्मिलित फोजों ने शाही फौजों से मुठभेड़ की, जिसका सेनापतित्व राजा जसवन्त सिंह तथा कासिम खाँ कर रहे थे। धरमत (उज्जैन के निकट) नामक स्थान पर दोनों पक्षों में भयानक युद्ध हुआ, जिसमें शाही सेना की हार हुई। जसवन्त सिंह राजस्थान भाग गया।

धरमत के युद्ध के फलस्वरूप औरंगजेब की सैनिक प्रतिष्ठा एवं मनोबल में वृद्धि हुई। दारा का पक्ष अत्यन्त निर्बल हो गया। विजयी औरंगजेब चम्बल पार कर आगरा से लगभग 13 किमी दूर सामूगढ़ नामक स्थान पर आ डटा। दाराशिकोह ने अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करने का असफल प्रयास किया। वह एक बड़ी फौज लेकर मुकाबला करने चल पड़ा। 29 मई, 1658 को दारा और उसके दोनों भाइयों के बीच सामूगढ़ नामक स्थान पर एक निर्णायक युद्ध हुआ। अन्त में दारा रणक्षेत्र से भागने को विवश हुआ। सामूगढ़ के युद्ध में परास्त होकर दारा दिल्ली तथा लाहौर से होता हुआ मुल्तान पहुँचा। औरंगजेब ने भी उसका पीछा नहीं छोड़ा। आखिरकार दुःख, अपमान और कटुता का जीवन व्यतीत करते हुए भावी बादशाह ने अपने आपको दुश्मनों के हाथों में पाया। इस्लामी क़ानूनों में आस्था त्यागने के आरोप में 15 सितम्बर, 1659 को औरंगजेब ने दारा का अन्त कर दिया।

(12) शम्भाजी (1680–89)– शिवाजी की मृत्यु पर उनकी पत्नी सोयराबाई ने राजाराम को उत्तराधिकारी घोषित कराया, परन्तु शीघ्र ही पन्हाला के किलेदार की हत्या करके शम्भा जी ने रायगढ़ के दुर्ग पर अधिकार कर लिया और राजाराम तथा सोयराबाई को बन्दी बना लिया। अब शम्भा जी के हाथ में मराठा राज्य की बागडोर आ गयी।

इसी बीच औरंगजेब का तृतीय पुत्र अकबर विद्रोही होकर शम्भाजी की शरण में आया। अपनी अयोग्यता और आलस्य के कारण शम्भाजी विद्रोही राजकुमार की ममद करने में असफल रहा। अतः निराशा होकर शाहजादा को 1687 में ईरान जाकर शरण लेनी पड़ी।

1681 में शम्भा जी ने जंजीरा के सिद्दियों पर आक्रमण कर बहुत क्षति पहुँचायी, परन्तु मुग़ल सेना की उपस्थिति के कारण उसे अपना घेरा उठाना पड़ा। 1683 में उसने चोल और गोआ

के पुर्तगाली बन्दरगाहों पर भी आक्रमण किया, परन्तु परिणाम तक पहुँचने के पूर्व ही मुगल सेना का सामना करने के लिए उसे अपना घेरा उठाना पड़ा।

बीजापुर और गोलकुण्डा के पतन के बाद औरंगजेब ने मराठा शक्ति को समाप्त करने के अपने प्रयास और अधिक तीव्र कर दिया। उत्तरी कोंकण और बागलना पर आक्रमण करने के लिए सेनापति फीरोज जंग को आदेश दिया गया। सतारा पर आक्रमण करने के लिए बीजापुर राज्य के पूर्व सेनापति को रवाना किया गया। इस युद्ध में शम्भा जी का प्रधान सेनापति हम्मीराव मोहिते मारा गया। मुगल सेना ने मराठों को अब चारों ओर से घेरना प्रारम्भ किया। अन्त में फरवरी, 1689 में संगमेश्वर नामक स्थान पर शम्भा जी को बन्दी बना लिया गया। 21 मार्च, 1689 को घोर यातना के पश्चात् उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये।

(13) हैदरअली- हैदरअली का जन्म मैसूर के कोलार जिले में 1722 में हुआ था। उसका पिता फतेह मोहम्मद मैसूर के राजा के यहाँ सेना में एक उच्च पद पर नियुक्त था। हैदर की योग्यता से प्रभावित होकर मैसूर के प्रधानमंत्री नेजराज ने उसे 1755 में डिंडीगल के फौजदार का पद प्रदान किया। परन्तु हैदर बड़ा महत्वाकांक्षी था। कुछ समय के बाद उसने मैसूर की राजधानी श्री रंगपट्टम पर आक्रमण करके प्रधानमंत्री नेजराज को बन्दी बना लिया और स्वयं राजा के संरक्षक के रूप में शासन करना शुरू कर दिया। 1761 में वह राजा के स्थान पर स्वयं मैसूर का शासक बन गया।

अंग्रेजों से संघर्ष- हैदरअली ने अपने साम्राज्य की सीमा को बढ़ाना आरम्भ किया। 1763 में उसने बेदनूर, साबनूर तथा धारवाड़ पर अधिकार कर लिया। हैदरअली की शक्ति से भयभीत होकर अंग्रेज उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचने लगे। उन्होंने 1766 में निजाम और मराठों को मिलाकर एक संयुक्त मोर्चा बनाया। परन्तु हैदरअली ने बड़ी बुद्धिमानी से निजाम और मराठों को अपनी ओर मिलाकर मोर्चे को छिन्न-भिन्न कर दिया। अब उसे केवल अंग्रेजों से लोहा लेना था।

प्रथम मैसूर युद्ध (1767-69)- 1767 में हैदर ने कन्नड़ तट पर आये एक अंग्रेजी बेड़े को नष्ट कर दिया। फलतः अंग्रेजों और हैदर के बीच युद्ध आरम्भ हो गया। इस युद्ध में पहले तो अंग्रेजों को चंगामा और त्रिनोमली नामक दो स्थानों में सफलता मिली, परन्तु बाद में हैदर ने अंग्रेजों को चारों ओर से घेरना आरम्भ किया। उसने अंग्रेजों को हराकर मंगलौर पर अधिकार कर लिया। इसके बाद उसने तीन ओर से मद्रास पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में अंग्रेजों की बड़ी हानि हुई। अन्त में 1 अप्रैल, 1769 को अंग्रेजों ने हैदर से सन्धि कर ली। सन्धि के अनुसार दोनों पक्षों ने एक दूसरे के जीते हुए भू-भाग को वापस कर दिया और एक-दूसरे को परस्पर सहायता देने का वायदा किया।

द्वितीय मैसूर युद्ध (1780-1784)- अंग्रेजों ने 1769 में हैदर के साथ हुई सन्धि की शर्तों का पालन नहीं किया। क्योंकि जब 1771 में मराठों ने मैसूर पर आक्रमण कर दिया, अंग्रेजों ने हैदर की मदद नहीं की। हैदर का अंग्रेजों से क्रुद्ध होना स्वाभाविक था। फलतः उसने जुलाई, 1780 में कर्नाटक पर आक्रमण कर दिया और राजधानी अर्काट पर अधिकार कर लिया। कर्नाटक का नवाब भागकर मद्रास चला गया। जब यह समाचार अंग्रेजों को मालूम हुआ, तो उन्होंने हैदर के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और उन्होंने एक सेना मुनरो की अध्यक्षता में मद्रास से और दूसरी सेना बेली की अध्यक्षता में गुंतूर से हैदर के विरुद्ध भेजी। हैदर और उसके पुत्र टीपू ने बेली की सेना को मार भगाया। बेली की पराजय सुनकर मुनरो मद्रास की ओर भाग गया। अन्त में आयरकूट की अध्यक्षता में आयी सेना ने हैदर को पोर्टोनोवो और पोलीलोर के युद्धों में पराजित किया। इसी बीच 7 दिसम्बर, 1782 को हैदरअली की मृत्यु हो गयी।

(14) ऐनी बेसेन्ट- श्रीमती ऐनी बेसेन्ट एक आयरिश महिला थीं। आपका जन्म 1 अक्टूबर, 1847 को हुआ था। उन्हें भारत और उसकी संस्कृति से सच्चा लगाव था और भारतीय पुनरुद्धार में उनकी विशेष भूमिका है। उन्होंने भारतीयों में आत्म-सम्मान और अपने गौरवमय अतीत

पर गर्व की भावना जागृत की। उन्होंने भारतीयों को अपनी संस्थाओं और प्राचीन आदर्शों का पुनरुद्धार करने को प्रोत्साहित किया। वह लिखने और बोलने की अद्‌भुत क्षमता रखती थीं। उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया तथा 1917 में इडियन नेशनल कांग्रेस की अध्यक्ष भी रहीं। होमरूल लीग की स्थापना करके उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन को एक नया कार्यक्रम दिया। श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने बनारस में हिन्दू स्कूल की स्थापना की, जो कुछ दिनों में कालेज बन गया। 1915 में इसी कॉलेज को केन्द्र बनाकर पं. मदनमोहन मालवीय ने हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की। भारतीय राजनीति में ऐनी बेसेन्ट का योगदान 1914-1917 ई. के मध्य की सीमित रहा। 20 सितम्बर, 1933 को उनका देहावसान हो गया। महात्मा गाँधी के शब्दों में, 'श्रीमती ऐनी बेसेन्ट की भारत-भक्ति पारदर्शी, सन्देह से परे एवं अनुकरणीय थी।' भारत उनके प्रति सदैव ऋणी रहेगा।

(15) सरदार वल्लभ भाई पटेल (1875-1950)- सरदार पटेल का जन्म 31 अक्टूबर, 1875 को हुआ था। आपके पिता का नमा झेवरभाई पटेल था। अपनी शिक्षा समाप्त करने के बाद सरदार पटेल ने वकालत शुरू की, बाद में बैरिस्टर बनने के लिए इंग्लैण्ड गये। 1913 में इंग्लैण्ड से लौटने पर उन्होंने अहमदाबाद में वकालत शुरू की और शीघ्र ही मुख्य फौजदारी वकील बन गये। 1916 में आपका देश की राजनीति में पदार्पण हुआ। 1918 की अहमदाबाद मजदूर हड़ताल में आप गाँधी जी के मुख्य सहायक रहे। 1928 में आपने वारदोली आन्दोलन चलाया और उसे सफल बनाया। उसी समय गाँधी जी ने उन्हे 'सरदार' की पदवी प्रदान की।

सरदार पटेल सर्वप्रथम 1930 में गिरफ्तार हुए। 1931 में वे कांग्रेस के सभापति चुने गये और अगले तीन वर्षों तक सभापति रहे। 1932 से 1934 तक आप जेल में रहे। 1935 से 1940 तक वे कांग्रेस की संसदीय उप समिति के सभापति रहे। 1941 व 1942 में आप गिरफ्तार हुए। सितम्बर, 1946 में पं. जवाहर लाल नेहरू द्वारा बनाई गयी अंतरिम सरकार में आप गृहमंत्री बने।

जब आपने गृह मंत्रालय सँभाला उस समय मुस्लिम लीग द्वारा की जाने वाली प्रत्यक्ष कार्यवाही के कारण शान्ति व व्यवस्था की स्थिति बड़ी बिगड़ी हुई थी पर आपने बड़ी दृढ़ता से उस पर काबू पा लिया। भारत की आजादी के बाद आप भारत के उप-प्रधानमंत्री बनाये गये और गृहमंत्रालय, रियासत मंत्रालय तथा सूचना और प्रसारण मंत्रालय आपके अधीन थे। देश के प्रति आपकी सबसे बड़ी सेवा 600 देशी रियासतों का भारतीय संघ में विलय है। आप अनुशासन प्रेमी थे। इसलिए उन्हें 'लौहपुरुष' कहा जाता था। आपकी मृत्यु 15 दिसम्बर, 1950 को हुई। आपकी मृत्यु के समय लन्दन के मैनेचेस्टर गार्जियन ने लिखा था, "पटेल के बिना गाँधी के विचारों का प्रभाव व्यवहार में पूरा नहीं उतरता और श्री नेहरू के आदर्शवाद का क्षेत्र कम हो जाता। पटेल स्वतन्त्रता संग्राम के संगठनकर्ता ही नहीं रहे, वरन् संग्राम की समाप्ति पर नवीन भारत के निर्माता भी बने। एक व्यक्ति विद्रोह व राजनीतिज्ञ के रूप में कभी-कभी ही सफल होता है और इस सम्बन्ध में सरदार पटेल एक अपवाद थे।" मरोणोपरान्त 1991 में भारत सरकार ने उन्हें 'भारत रत्न' से सम्मानित किया।

(16) डॉ. राजेन्द्र प्रसाद (1884-1963)- 'अजातशत्रु' कहे जाने वाले डॉ. राजेन्द्र प्रसाद स्वतंत्रता संग्राम के उन सेनानियों में से थे, जिन्हें बिहार ने भारत को दिया। आपका जन्म सारन जिले के जीरादेई ग्राम में 3 दिसम्बर, 1884 को हुआ था। अपने बाल्यकाल में ही आप बड़े मेधावी छात्र थें और अपनी एम.ए. की परीक्षाओं में आपने सदा प्रथम स्थान प्राप्त किया। आपने वकालत भी पास की और पहले कलकत्ता और बाद में पटना के उच्च न्यायालय में वकालत की। आप बड़े ऊँचे वकीलों में थे फिर भी सार्वजनिक जीवन के कार्यों में बड़ी रुचि व लगन थी। सन् 1916 में आपने कांग्रेस में प्रवेश किया और असहयोग आन्दोलन छिड़ने पर आपने अपनी अच्छी आय की वकालत छोड़कर उसमें भाग लिया। स्वतन्त्रता संग्राम के सक्रिय सेनानी होने के कारण आपको अनेक बार जेलयात्रा करनी पड़ी। कांग्रेस के रचनात्मक कार्य में आपकी अपूर्व

निष्ठा थी और इस सम्बन्ध में वे गाँधी जी के पक्के अनुयायी थे।

सर्वप्रथम सन् 1924 में आप कांग्रेस अध्यक्ष चुने गये और उसके बाद लगातार वे कांग्रेस कार्य समिति और कांग्रेस संसदीय बोर्ड के सदस्य चुने जाते रहे। सन् 1946 में भारत की अन्तरिम सरकार में वे खाद्य व कृषि मंत्री नियुक्त हुए। भारत के लिए नवीन संविधान बनाने के लिए जिस संविधान निर्मात्री सभा का गठन किया गया, उसके वे अध्यक्ष चुने गये और जब 1950 में नवीन संविधान लागू हुआ, तब वे भारत के प्रथम राष्ट्रपति चुने गये। राष्ट्रपति के पद पर आप 10 वर्ष तक पदासीन रहे। 28 फरवरी, 1963 को आपका देहावसान हो गया। पं. जवाहरलाल नेहरू ने आपके विषय में कहा था, "कृषक स्वभाव होने के कारण वे कुछ सरल प्रतीत होते हैं।, परन्तु उनकी ज्वलंत योग्यता, उनकी शुद्ध निष्कपटता, उनकी शक्ति एवं भारत की स्वतन्त्रता के लिए उनकी लगन आदि ऐसे गुण हैं, जिन्होंने उनको सम्पूर्ण भारत का स्नेह भाजन बना दिया है। उनके अतिरिक्त गाँधी जी के संदेश को पूर्णतया ग्रहण करने वाले बिरले होंगे। उन्होंने दस वर्ष तक देश की अपार सेवायें राष्ट्रपति के रूप में कीं।"

(17) महाराज रणजीत सिंह (1780-1839)- महाराज रणजीत सिंह का जन्म 13 नवम्बर, 1780 ई. को पंजाब की एक छोटी-सी रियासत 'सुकर चकिया' में हुआ था। इनके पिता का नाम महावीर महासिंह तथा माता का नाम श्रीमती मलबाई था। बचपन में चेचक के कारण इनकी एक आँख चली गयी थी और चेहरा दागों से कुरूप हो गया था। 5 वर्ष की अल्पावस्था में ही महताब कुमारी के साथ इनका विवाह हो गया था। 12 वर्ष की अवस्था में इनके पिता का देहान्त हो गया। अपनी सास की देख-रेख में ये रियासत का कार्य करने लगे। 17 वर्ष की किशोरावस्था में वे स्वतंत्र रूप से राज्य संचालन में दक्ष हो गये। 1798 ई. में अफगानिस्तान का दुर्रानी सरदार जमान शाह जब लाहौर तक आ पहुँचा तो उन्हें भी भागना पड़ा। किन्तु कुछ ही समय पश्चात् उन्होंने अपनी शूरवीरता, साहस और नीतिज्ञता से पंजाब की बिखरी शक्ति को इस प्रकार संगठित किया कि 1799 ई. तक लाहौर पर अधिकार कर लिया।

1801 ई. में रणजीत सिंह ने अपना विधिवत् राज्याभिषेक किया तथा 'महाराज' की उपाधि धारण की। सम्पूर्ण पंजाब पर अधिकार करके वे 'सुकर चकया' के जागीरदारों से 'पंजाब केसरी' हों गये। उन्होंने पंजाब को एक सुव्यवस्थित और सुदृढ़ शासन व्यवस्था प्रदान की। सतलज नदी की उत्तरी सीमा तक उनका सिख राज्य फैला था। नदी की दक्षिणी सीमा तक अंग्रेजों का शासन स्थापित था। उस समय की परिस्थिति को देखकर रणजीत सिंह ने अंग्रेजों से भिड़ना उचित नहीं समझा और 1809 ई. में उनसे संधि कर ली। इस संधि के अन्तर्गत अंग्रेजों से सतलज नदी की उत्तरी सीमा को पंजाब की सीमा स्वीकार कर लिया। 1821 ई. में महाराज रणजीत सिंह ने कश्मीर पर आक्रमण करके शाह शुजा को पराजित किया और उससे कोहनूर हीरा छीन लिया। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि वह कोहनूर हीरे से भगवान जगन्नाथ की मूर्ति को आभूषित करें किन्तु संयोग से उनकी यह इच्छा पूरी न हो सकी। वे हिन्दू मंदिरों और तीर्थों का बड़ा सम्मान करते थे।

16 अक्टूबर, 1831 ई. को महाराज रणजीत सिंह ने रोपड़ में आयोजित दरबार में गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बेंटिंक से भेंट की। इस अवसर पर अंग्रेजों को सिन्धु नदी से व्यापार करने की अनुमति मिल गयी। महारजा रणजीत सिंह की सहायता से अंग्रेजों ने अफगानिस्तान पर विजय प्राप्त की। इस विजय के उपरान्त शाह शुजा को अफगानिस्तान का अधिपति बना दिया गया।

इस विजय के उपलक्ष्य में उत्सव मनाते हुए वे पक्षघात से पीड़ित हुए और 28 जून, 1839 ई. को उनका देहावसान हो गया।

(18) लाल बहादुर शास्त्री (1904-1966)- लाल बहादुर शास्त्री का जन्म 2 अक्टूबर 1904 को एक सामान्य परिवार में मुगलसराय में हुआ था। उन्होंने शास्त्री की उपाधि प्राप्त की। 1921 में वह राष्ट्रीय आन्दोलन में सम्मिलित हो गये। महात्मा गाँधी उनके आदर्श थे। सत्य और अहिंसा में उनका अटूट विश्वास था। प्रारम्भ में वह उत्तर प्रदेश में सक्रिय रहे। कांग्रेस

व शासन में विविध पदों पर रहे। 1951 में कांग्रेस के महामंत्री बने और राष्ट्रीय स्तर पर कार्यरत हुए। 1951 में वह रेलमंत्री भी बने किन्तु अलियापुर में रेल दुर्घटना का नैतिक व संवैधानिक उत्तरदायित्व स्वीकार कर 1956 में रेल मंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया। 1957 में वह पुनः मंत्रि-मण्डल के सदस्य बने और गृह विभाग सहित अन्य विभागों में मंत्री रहे। यह बिना विभाग के मंत्री के रूप में भी तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को सहयोग देते रहे।

1964 में पं. नेहरू की मृत्यु के पश्चात् शास्त्री जी कांग्रेस संसदीय दल के नेता निर्वाचित हुए तथा भारत के प्रधानमंत्री बने। 1965 में भारत-पाक युद्ध में देश का प्रेरणादायक नेतृत्व किया तथा विजयश्री का वरण किया। 1966 में भारत-पाक शान्तिवार्ता ताशकंद (सोवियत संघ) में हुई। ताशकंद समझौता सम्पन्न करने के बाद ताशकंद में ही 11 जनवरी, 1966 को उनकी मृत्यु हो गयी।

(19) नाना फड़नवीस (1742-1800)- नाना फड़नवीस का जन्म 12 फरवरी, 1742 ई. को पूना के फड़नवीस परिवार में हुआ था। इनका मूल नाम बालाजी जनार्दन भानु था। मराठा मण्डल के फड़नवीस कार्यालय के मुख्याधिकारी के पद पर कार्य करने के कारण इनके पूर्वजों के साथ 'फड़नवीस' की उपाधि लगने लगी थी। 1761 में नाना फड़नवीस ने पानीपत के तृतीय युद्ध में मराठी सेनाओं के प्रधान सेनापति सदाशिवराव भाऊ का मंत्री बनकर अहमदशाह अब्दाली के विरुद्ध युद्ध किया। इस युद्ध में सदाशिवराव भाऊ मारे गये और नाना फड़नवीस को भागना पड़ा। पानीपत से मराठी सेना के पाँव उखड़ने पर दिल्ली और मथुरा में डेरा डाले मराठी सेनाएँ भी भाग खड़ी हुईं।

पानीपत के पराजय का धक्का पेशवा नाना साहब (बालाजीराव) सहन न कर सके और पाँच महीने के अंदर ही 23 जून, 1761 को उनकी मृत्यु हो गयी। मृत्यु के बाद उनका सोलह वर्षीय पुत्र माधवराव पेशवा बना। नाना फड़नवीस उसके मंत्री नियुक्त हुए। फड़नवीस के मार्ग-दर्शन में माधव राव ने महाराष्ट्र मंडल को पुनः शक्तिशाली बनाया। किंतु दुर्भाग्यवश दस वर्ष बाद ही 27 वर्ष की अवस्था में माधवराव की मृत्यु हो गयी। माधवराव के बाद उनके कनिष्ठ भ्राता नारायण राव को पेशवा बनाया गया। परन्तु उसके चाचा राघोवा ने जो स्वयं पेशवा बनना चाहता था, षड्यंत्र रचकर 30 अगस्त, 1773 को उनका वध करवा दिया और स्वयं पेशवा बन गया। अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए उसने मुम्बई के गवर्नर से 7 मार्च, 1775 को सूरत की संधि की। उधर फड़नवीस ने राघोवा के पेशवा बनने का विरोध किया और उन्होंने नारायणराव के पुत्र माधवराव को पेशवा बना दिया और वारेन हेस्टिंग्ज से 1777 में पुरन्दर की संधि की। परन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टरों ने सूरत की संधि को ही मान्यता दी। इसलिए वारेन हेस्टिंग्ज को राघोवा की सहायता करनी पड़ी। राघोवा की सहायता के लिए अंग्रेजी सेना का जो दस्ता मुम्बई से पूना की ओर चला, उसे मार्ग में ही फड़नवीस ने होल्कर तथा सिंधिया की सम्मिलित सेनाओं की मदद से 9 जनवरी 1779 को पराजित कर दिया। मुम्बई सरकार को विवश होकर मराठों से बड़गाँव की अपमानजनक संधि करनी पड़ी। लेकिन शीघ्र ही वारेन हेस्टिंग्ज ने बड़गाँव सन्धि मानने से इन्कार कर दिया और पुनः युद्ध आरम्भ हो गया। अन्त में महादजी सिंधिया की मध्यस्थता से अंग्रेजों और मराठों के बीच 1782 में सालबाई की सन्धि हो गयी। इस प्रकार नाना फड़नवीस के प्रयासों से महाराष्ट्र मण्डल एक बार पुनः भारत की मुख्य शक्ति बन गया। 16 फरवरी, 1800 ई. को नाना फड़नवीस की मृत्यु हो गयी।

(20) सरदार भगत सिंह (1907-1931)- सरदार भगत सिंह का जन्म 27 सितम्बर, 1907 को लायलपुर के बंगा गाँव के एक सिक्ख किसान परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम सरदार किशन सिंह तथा माता का नाम विद्यामती था। बचपन से ही देश-प्रेम की भावना उन्हें विरासत में मिली थी। भगत सिंह के दो चाचा सरदार अजीतसिंह तथा स्वर्णसिंह भी क्रान्तिकारी आन्दोलन के समर्थक थे। वैसे भगत सिंह का सम्पूर्ण परिवार देशभक्ति के रंग में रंगा

हुआ था। भगतसिंह ने लाहौर में मैट्रिक पास किया। इसके पश्चात् उन्होंने नेशनल कॉलेज लाहौर में प्रवेश लिया। वहाँ उनका सम्बन्ध अन्य क्रान्तिकारी सुखदेव, तीर्थराम, झण्डा सिंह, भगवतीचरण बोहरा तथा यशपाल से हुआ।

1926 ई. में चन्द्रशेखर आजाद जब पंजाब में क्रान्तिकारी दल का संगठन कर रहे थे तो भगतसिंह भी सुखदेव, राजगुरु, शिवराज आदि युवकों के साथ इस दल के सदस्य हो गये।

1928 ई. में साइमन कमीशन के विरोध में लाहौर में एक विशाल जुलूस का नेतृत्व लाला लाजपतराय कर रहे थे। सैण्डर्स नामक पुलिस अधिकारी ने जुलूस पर तीव्रता से लाठी प्रहार किया। लाला लाजपतराय को अनेक लाठियाँ लगीं। वे सख्त घायल हो गये। 17 नवम्बर, 1928 को उनका स्वर्गवास हो गया। लाला लाजपतराय की मृत्यु से सरदार भगतसिंह आदि क्रान्तिकारी नेताओं को अत्यधिक क्रोध आया और उन्होंने इसे राष्ट्रीय अपमान समझकर सैण्डर्स से बदला लेने का विचार किया। 17 दिसम्बर, 1928 को भगतसिंह, राजगुरु एवं शिवराम ने मिलकर सैण्डर्स की हत्या कर दी।

उन दिनों केन्द्रीय असेम्बली में दो बिल विचाराधीन थे। एक 'जन सुरक्षा कानून' तथा दूसरा 'औद्योगिक विवाद बिल'। प्रथम बिल का उद्देश्य जन आन्दोलन को कुचलना था और दूसरे का उद्देश्य मजदूर हड़ताल को समाप्त करना था। भगतसिंह ने दोनों बिलों का विरोध करने के लिए एक नया ढंग सोचा। 8 अप्रैल, 1929 को केन्द्रीय असेम्बली भवन में भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त ने बम फेंका। बम फेंकने के पश्चात् उन्होंने कुछ पर्चे भी फेंके जिनका प्रमुख शीर्षक था 'बहरों को सुनाने के लिए धड़ाके की आवश्यकता होती है।' उन्होंने 'इन्कलाब जिन्दाबाद', 'हिन्दुस्तान हिन्दुतानियों का है', 'साम्राज्यवाद का नाश हो' के भी नारे लगाये। उन दोनों पर मुकदमा चला और 12 जून, 1929 को दोनों को आजीवन कारावास की सजा दे दी गयी, किन्तु इसी बीच 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन सोसलिस्ट एसोसिएशन' के लाहौर के गुप्त केन्द्र और बम के कारखाने का पता पुलिस को लग गया। चन्द्रशेखर आजाद को छोड़कर 16 नौजवानों को पकड़कर लाहौर लाया गया जिनमें भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव भी थे। इन लोगों पर हुकूमत को उल्टने का मुकदमा चला गया। इसी मुकदमे का नाम लाहौर षड्यंत्र केस (1929) पड़ा।

1930 के अन्त में लाहौर षड्यंत्र केस का फैसला सुनाया गया। भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव को फाँसी की और बाकी को कालेपानी की सजा दी गयी। देश के कोने-कोने से फाँसी की सजा रद्द करने की माँग की गयी लेकिन ब्रिटिश शासकों द्वारा 23 मार्च, 1931 की शाम तीनों को फाँसी दे दी गयी।

(21) चन्द्रशेखर 'आजाद' (1906-1931)- चन्द्रशेखर आजाद का जन्म 23 जुलाई, 1906 को अलीराजपुर (मध्य प्रदेश) रियासत में भावरा नामक छोटे से गाँव में हुआ था। इनके पिताजी का नाम पं. सीताराम तिवारी था। तिवारी घोर आर्थिक संकट में रहते हुए भी स्वाभिमानी थे। वे किसी को गलत बात के आगे नहीं झुकते थे। आर्थिक संकट के बावजूद चन्द्रशेखर को पढ़ने की धुन सवार थी, अतः एक दिन वे घर से निकल भागे और बनारस जा पहुँचे। वहाँ वे मन लगाकर संस्कृत का अध्ययन करने लगे।

1920 ई. में जो असहयोग आन्दोलन छेड़ा गया। उसमें चन्द्रशेखर ने भी भाग लिया। उन्हें पकड़कर जेल भेज दिया गया। इस समय आजाद की आयु केवल 14 वर्ष की थी। मजिस्ट्रेट मि. खरेघाट ने उन्हें पन्द्रह बेतों की सजा सुनायी। जब भी उनको बेतों से मारा जाता वे जोर से चिल्लाते- "वन्देमातरम्", "महात्मागांधी की जय"।

चन्द्रशेखर गाँधी जी में अपार श्रद्धा रखते थे। परन्तु उनका अहिंसक क्रांति में विश्वास नहीं था। उन्होंने अहिंसा को जनजागृति का माध्यम तो माना परन्तु अंग्रेजों को देश से निकालने के लिए वे सशस्त्र क्रान्ति में विश्वास करते थे तथा प्राणों की परवाह न करते हुए राष्ट्रहित का कार्य करने के लिए तत्पर रहते थे। दल को भली-भाँति संचालित करने के लिए धन की आवश्यकता थी।

अतः 1925 ई. में काकोरी काण्ड हुआ। एक रेलगाड़ी को रोककर अंग्रेजों का खजाना लूट लिया गया। इस लूट के कार्य में आजाद ने प्रमुख भूमिका निभायी।

काकोरी काण्ड से ब्रिटिश सरकार दहल गयी। जिन युवकों पर क्रान्तिकारी होने का संदेह था उन सबको गिरफ्तार कर लिया गया। आजाद के अन्य साथियों जैसे- रामप्रसाद बिस्मिल तथा अशफाक उल्ला खाँ आदि को फाँसी दे दी गयी। परन्तु इन लोगों ने दल के अन्य सदस्यों के नाम नहीं बताये। आजाद के कमरे की भी तलाशी ली गयी परन्तु सौभाग्य से वे कहीं बाहर गये हुए थे।

पर्याप्त काल तक आजाद फरार रहने के पश्चात् मुम्बई चले गये और वह जहाज के गोदाम में मजदूरी करने लगे। यह समय उनका बड़े संकट का था। जब काकोरी काण्ड का मामला शान्त हो गया तो आजाद ने पुनः अपने दल का संगठन किया। इन्हीं दिनों लाहौर के पुलिस अफसर सैण्डर्स ने साइमन कमीशन का विरोध करने वाले जुलूस पर लाठी चार्ज किया। जुलूस का नेतृत्व लाला लाजपतराय कर रहे थे। एक लाठी उनके सिर में लगी। कुछ दिन के पश्चात् लालाजी की मृत्यु हो गयी। 17 दिसम्बर, 1928 को आजाद ने अपने सहयोगियों के साथ मिलकर मि. सैण्डर्स की हत्या कर दी। पुलिस ने सारे लाहौर को घेर लिया। चन्द्रशेखर आजाद मथुरा के चौबे का वेश धारण करके निकल गये।

एक दिन वे आन्दोलनकारियों का संगठन करने के लिए इलाहाबाद आये। वे अल्फ्रेड पार्क में अपने साथी सुखदेवराज के साथ बैठे हुए थे। किसी गुप्तचर ने पुलिस को उनके पार्क में बैठे होने की सूचना दे दी। तुरन्त ही पुलिस अधीक्षक नाटबाबर ने उनको घेर लिया। आजाद जब चारों ओर पुलिस से घिर गये और उन्होंने देखा कि उनके बचने का कोई रास्ता नहीं है तो उन्होंने सुखदेवराज को भगा दिया और विशाल वृक्ष की आड़ से गोली चलाना आरम्भ कर दिया और वहाँ उपस्थित अनेक पुलिस अधिकारियों को घायल कर दिया। उनके रिवाल्वर में जब केवल एक गोली बची उसी से उन्होंने स्वयं को निशाना बनाया और सदा के लिए मातृभूमि के चरणों में सो गये। यह घटना 27 फरवरी 1931 को घटित हुई।

(22) सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन् (1888-1975)- डॉ. राधाकृष्णन् का जन्म 5 सितम्बर, 1888 को तमिलनाडु से लगभग 80 किलोमीटर दूर पश्चिम में स्थित तिरुतनी नामक गाँव के एक साधारण ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आपके पिता गाँव के जमींदार के यहाँ साधारण-सी नौकरी कते थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में हुई। आठ वर्ष की आयु में उन्हें लूथरन मिशन हाई स्कूल में भर्ती किया गया, जहाँ वे चार वर्ष तक पढ़े। फिर मद्रास के क्रिश्चियन कॉलेज में प्रवेश लिया। यहीं पर आपने एम.ए किया तदनन्तर आन्ध्र विश्वविद्यालय ने आपको 'डी. लिट.' की उपाधि से सम्मानित किया।

एम. ए. करने के तुरन्त बाद ही डॉ. राधाकृष्णणन् को मद्रास के प्रेसीडेंसी कॉलेज में दर्शनशास्त्र का अध्यापक बना दिया गया। मद्रास के बाद आप दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक के रूप में मैसूर विश्वविद्यालय में आ गये। यहाँ आपने 'ब्रिटेन ऑफर रिलीजन इन कन्टेम्परेरी फिलासफी' नामक पुस्तक की रचना की। 1921 में आपको कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्रोफेसर ऑफ मेंटल एण्ड मॉरल साइंस का पद प्रदान किया गया। तदनंतर आप इंगलैण्ड के ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में प्रोफेसर बने। यहाँ आप लगभग एक वर्ष तक रहे। भारत लौटने पर आपको आन्ध्र विश्वविद्यालय के उपकुलपति पद पर नियुक्त किया गया। तभी कलकत्ता विश्वविद्यालय ने आपको अपने यहाँ के लिए आजीवन प्रोफेसर बना दिया।

शिक्षक होने के साथ डॉ. राधाकृष्णन् ने अन्य क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक कार्य किया। भारत की ओर से आप संयुक्त राष्ट्र-शिक्षा, सामाजिक एवं सांस्कतिक परिषद के अध्यक्ष के रूप में न्यूयार्क गये। इतना ही नहीं, भारत सरकार द्वारा विश्वविद्यालयों की दशा सुधारने के उद्देश्य से स्थापित आयोग के अध्यक्ष पद का कार्य भी आपने बड़ी चतुराई से सँभाला। 1949 में आपको रूस में भारत का राजदूत बनाकर भेजा गया। 1952 तक आपने सफलतापूर्वक इस पद का कार्यभार

सँभाला। 1952 में रूस से भारत लौटने पर आपको सर्वसम्मति से भारत का प्रथम उपराष्ट्रपति पद प्रदान किया गया। 1962 तक आप उपराष्ट्रपति के पद पर बने रहे। 1962 में ही आप स्वतन्त्र भारत के द्वितीय राष्ट्रपति निर्वाचित हुए और 1967 तक राष्ट्रपति पद पर कार्य किया।

डॉ. राधाकृष्णन ने अनेक ग्रन्थों की रचना की जिनमें 'भारतीय दर्शन का इतिहास' (दो खण्ड), 'दी फिलासफी ऑफ रवीन्द्रनाथ', 'रेन ऑफ रिलीजन', 'दी हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ', 'ईस्ट एण्ड वेस्ट इन रिलीजन' तथा 'सत्य की खोज' आदि उल्लेखनीय हैं।

राष्ट्रपति पद से अवकाश ग्रहण कर लेने के उपरान्त भी आपने बौद्धिक क्षेत्र से अवकाश नहीं लिया। 17 अप्रैल, 1975 को आपकी मृत्यु हो गयी।

(23) अब्दुल गफ्फर खान (1890-1988)- 'सीमान्त गांधी' और 'बादशाह खान' के नाम से विख्यात अब्दुल गफ्फर खान का जन्म 1890 में मुहम्मदजई पठान कबीले के एक सम्पन्न परिवार में पेशावर के उत्तमजई गाँव में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा मिशन हाई स्कूल पेशावर में हुई तथा उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए उन्हें अलीगढ़ भेजा गया। शुरू से ही शिक्षा के प्रसार तथा सामाजिक सुधार में उनकी विशेष रुचि थी। 1921 में उन्होंने उत्तमजई में 'आजाद हिन्द विद्यालय' तथा 'अंजुमन-उल अफगानिस्तान ' की स्थापना की। अंग्रेजों ने पठानों के अन्दर राष्ट्रीयता जगाने के जुर्म में उन्हें सलाखों के पीछे धकेल दिया।

भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में गफ्फर खान का प्रवेश 1919 में हुआ, जब उन्होंने रॉलेट कानून के खिलाफ विरोध प्रदर्शन में सक्रिय भूमिका निभाई। 1920 में उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में हिस्सा लिया तथा खिलाफत आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। 1929 में उन्होंने 'खुदाई खिदमतगार' नामक एक संगठन की नींव रखी। यह संगठन अहिंसावादी क्रान्तिकारियों का एक दल था, जिन्हें 'लाल कुर्ती या कमीज' के नाम से जाना जाता था। इस दल ने गफ्फार खान को 'फक्र-ए-अफगान' की उपाधि से सम्मानित किया। खुदाई खिदमतगार आन्दोलन का एक पहलू सुधारवादी भी था, क्योंकि यह सामाजिक बदलाव का पक्षधर तथा कट्टर मुस्लिम विचारधारा का विरोधी था।

अंग्रेजी सरकार ने गफ्फार खान के क्रियाकलापों से भयभीत होकर खुदाई खिदमतगार संगठन को 1930 में अवैध घोषित कर दिया तथा उन्हें कैद कर लिया।

1931 में गांधी-इर्विन समझौते के बाद गफ्फार खान को रिहा कर दिया गया। जब 1936 में चुनाव हुए तो खुदाई खिदमतगार को उत्तर-पश्चिम प्रान्त की प्रान्तीय सभा में अभूतपूर्व विजय हासिल हुई। 1940 में सरदर्या के छोर पर गफ्फार खान ने 'मर्कज-ए-अल्लाह-ए-खुदाई खिदमतगार' नामक एक विशाल खुदाई खिदमतगार भवन का शिलान्यास किया।

गफ्फार खान ने भारत के विभाजन का कड़ा विरोध किया। उन्होंने सिर्फ इस उद्देश्य से एक स्वतंत्र पठान प्रान्त की मांग की, ताकि उस प्रान्त को पाकिस्तान में शामिल करने की मुस्लिम लीग की मंशा पर पानी फेरा जा सके। इसी कारण 1943 में जिन्ना ने गफ्फार खान को 'पठानों के हिन्दूकरण तथा उन्हें नपुंसक बनाने के कार्यवाहक' की संज्ञा दी थी।

कुछ समय के लिए उन्हें अफगानिस्तान में शरणार्थी के रूप में भी रहना पड़ा। वापस पाकिस्तान लौटने पर उनके स्वास्थ्य में क्रमिक ह्रास होता गया। काफी लम्बे समय तक बीमार रहने के बाद अन्ततः 1988 में बादशाह खान का देहान्त हो गया। 1987 में जब वे मृत्यु-शैय्या पर थे, तब भारत सरकार ने उन्हें अपने सर्वोच्च सम्मान 'भारत रत्न' से अलंकृत किया। आज भी भारत में उनका नाम सम्मान से लिया जाता है।

(24) अबुल कलाम आजाद (1888-1958)- भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में जहाँ साम्प्रदायिक विचारधारा ने कई बड़े नेताओं को प्रभावित किया, वहीं अबुल कलाम आजाद ने अपने धर्म निरपेक्ष तथा ब्रिटिश विरोधी विचारधारा द्वारा अपनी एक अलग पहचान बनायी। इस महान नेता का जन्म 1888 में मक्का में हुआ, जहाँ उनका परिवार 1857 की क्रान्ति के दौरान

बस गया था। 1898 में वे भारत आए और उन्होंने अपने निवास स्थान के रूप में कलकत्ता को चुना। इनकी उच्चशिक्षा कैरो के विख्यात विश्वविद्यालय अल अजहर में हुई।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अबुल कलाम का प्रवेश स्वदेशी आन्दोलन के दौरान हुआ, जब उन्होंने क्रान्तिकारियों का समर्थन किया। वे देवबन्द स्कूल से जुड़े रहे तथा अपने राष्ट्रवादी एवं तर्कवादी विचारधारा को उन्होंने 1912 में अपने समाचार-पत्र 'अल-हिलाल' में प्रतिपादित किया। 1915 में उन्होंने एक साप्ताहिक पत्रिका 'अल-बलग' का प्रकाशन प्रारम्भ किया।

अबुल कलाम जल्दी ही महाम्मा गांधी के सम्पर्क में आए तथा उनसे घनिष्ठ संबंध स्थापित किया। उन्होंने गांधी जी द्वारा शुरू किये गये असहयोग आन्दोलन का समर्थन किया। उन्हें खिलाफत समिति का अध्यक्ष बनाया गया। 1924 में दिल्ली में कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में उन्हें अध्यक्ष बनाया गया। 1940 में वे राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष बनाये गये तथा 1946 तक वे इस पद पर बने रहे। 1942 के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के दौरान उन्हें अहमदनगर तथा बांकुरा जेल में कैद रखा गया। शिमला सम्मेलन के दौरान उन्होंने कांग्रेस प्रतिनिधिमण्डल का नेतृत्व किया तथा 1946 में कैबिनेट मिशन से हुई वार्ता का भी नेतृत्व किया। वे संविधान सभा के सदस्य भी थे। स्वतंत्रता से पूर्व बनी अन्तरिम सरकार में उन्होंने शिक्षा मंत्री का पदभार संभाला। स्वतंत्र भारत में भी वे शिक्षा मंत्री बनाये गये।

मौलाना आजाद कुछ अन्य उपलब्धियों तथा कार्यों के लिए भी विख्यात हैं। उनके द्वारा लिखी गई पुस्तक 'इंडिया विन्स फ्रीडम' ने पूरे विश्व में ख्याति प्राप्त की है। उन्हें मौलाना आजाद विश्वविद्यालय तथा माध्यमिक शिक्षा आयोग की नियुक्ति, यू.जी.सी. का गठन एवं आई.टी.खड़गपुर की स्थापना में निर्णायक भूमिका अदा करने के लिए भी जाना जाता है। 1958 में इस महान स्वतंत्रता सेनानी का देहान्त हो गया।

(25) अरविन्द घोष (1872-1950)- अरविन्द का जन्म 15 अगस्त, 1872 को कलकत्ता में हुआ था। 1879 में उन्हें विशेष शिक्षा हेतु इंग्लैंड भेजा गया। 1890 में इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए, लेकिन घोड़े की सवारी में असफल हो गये। 1905 में सरकार ने बंगाल का विभाजन कर दिया। इसके विरोध में जो आन्दोलन चला उससे अरविन्द अपने को अलग रखने में असमर्थ थे। उन्होंने बड़ौदा नरेश की नौकरी छोड़ कर 10 पौण्ड महीने पर बंगाल राष्ट्रीय कालेज, कोलकाता के प्रधानाचार्य का पद संभाला।

अरविन्द घोष की राजनीतिक विचारधारा के तीन अंग थे- (1) गुप्त क्रान्तिकारी प्रचार तथा हथियारों द्वारा युद्ध की तैयारी करना, (2) जनता के बीच क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार करना, तथा (3) जनता की ऐसी संस्था का गठन करना, जो संगठित रूप में जन-भावना द्वारा विरोध करे।

1906 में अरविन्द विपिनचन्द पाल के सम्पर्क में आए। उनके साथ 'वन्देमातरम' दैनिक का प्रकाशन अंग्रेजी में किया। 2 मई, 1908 को राजद्रोह के अपराध में उनको अलीपुर जेल में बन्द कर दिया गया। जेल से बाहर आने पर उन्होंने देखा कि सम्पूर्ण देश उदास और दुखी है। उन्होंने आन्दोलन को फिर गति प्रदान करने के लिए 'कर्मयुगीन' और 'धर्म' नामक दो साप्ताहिक समाचार-पत्र अंग्रेजी में निकाले, किन्तु एक दिन उन्हें चन्द्रनगर जाने की आन्तरिक प्रेरणा प्राप्त हुई। वे चन्द्रनगर पहुँचे। वहाँ से फिर आन्तरिक प्रेरणा प्राप्त कर 4 अप्रैल 1910 को पांडिचेरी पहुँचे। उनका जीवन राजनीति से हट कर अध्यात्म की ओर झुक गया। यहाँ पर वे 40 वर्षों तक रहे। वे विश्व के एक विशिष्ट अध्यात्मवादी बने। 5 दिसम्बर, 1950 को पांडिचेरी आश्रम में ही उनकी मृत्यु हो गयी।

■

2005 (उत्तर प्रदेश)

नोट : सभी प्रश्न अनिवार्य हैं।

खण्ड – 'अ' (बहुविकल्पीय प्रश्न)

1. चन्देरी का युद्ध कब हुआ था? 1
   (क) 1526 ई. (ख) 1527 ई. (ग) 1528 ई. (घ) 1529 ई.
2. हुमायूँ की मृत्यु कब हुई थी? 1
   (क) 1555 ई. में (ख) 1556 ई. में (ग) 1557 ई. में (घ) 1558 ई. में
3. हल्दीघाटी का युद्ध कब लड़ा गया था? 1
   (क) 1576 ई. (ख) 1577 ई. (ग) 1578 ई. (घ) 1579 ई.
4. ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना कब हुई थी? 1
   (क) 1585 ई. (ख) 1590 ई. (ग) 1595 ई. (घ) 1600 ई.
5. सती प्रथा का उन्मूलन किस वर्ष हुआ था? 1
   (क) 1827 ई. (ख) 1828 ई. (ग) 1829 ई. (घ) 1830 ई.

खण्ड – 'ब' (अति लघु-उत्तरीय प्रश्न)

6. शेरशाह का वास्तविक नाम क्या था और उसका जन्म कब हुआ था? $\frac{1}{2}+\frac{1}{2}$
7. अकबर के दरबार के दो प्रमुख चित्रकारों के नाम बताइए। $\frac{1}{2}+\frac{1}{2}$
8. आर्य समाज की स्थापना स्वामी दयानन्द सरस्वती ने कब और कहाँ की? $\frac{1}{2}+\frac{1}{2}$

खण्ड – 'स' (लघु-उत्तरीय प्रश्न)

9. पानीपत के द्वितीय युद्ध के महत्व का वर्णन कीजिए। 2
10. अकबर की राजपूत नीति की सफलता के कारणों को बताइए। 2
11. शाहजहाँ के स्थापत्य कला की विशेषताएँ बताइए। 2
12. कर्नाटक के प्रथम युद्ध के कारणों की विवेचना कीजिए। 2
13. भारत-छोड़ो आन्दोलन के क्या कारण थे? 2
14. आर्य समाज के प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए। 2

खण्ड 'द' (विस्तृत-उत्तरीय प्रश्न)

15. अकबर की दक्षिण नीति का विवरण दीजिए। क्या वह सफल थी? **अथवा** 6
    हुमायूँ की असफलता के कारणों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। 6
16. औरंगजेब की धार्मिक नीति की विवेचना कीजिए। मुगल साम्राज्य के पतन में इसका कहाँ तक योगदान था? **अथवा** 6
    जहाँगीर के राज्यकाल में नूरजहाँ की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए। 6
17. मराठा राज्य की स्थापना में शिवाजी के योगदान का मूल्यांकन कीजिए। 6
    अथवा
    भारतीय नवजागरण में राजा राममोहन राय की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए। 6
18. असहयोग आन्दोलन के प्रमुख उद्देश्य क्या थे? इस आन्दोलन के प्रभावों की समीक्षा कीजिए। 6
    अथवा
    1909 ई. के अधिनियम की प्रमुख धाराओं एवं महत्व का वर्णन कीजिए। 6
19. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रथम विश्व युद्ध के प्रभावों का परीक्षण कीजिए। 6
    अथवा
    देशी रियासतों के विलय में सरदार वल्लभ भाई पटेल के योगदान पर प्रकाश डालिए। 6

2006 (उत्तर प्रदेश)

नोट : सभी प्रश्न अनिवार्य हैं।

खण्ड 'क' (दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न)

1. "अकबर एक राष्ट्रीय सम्राट था।" समस्त भारत के एकीकरण के संदर्भ में अकबर के प्रयासों के आलोक में इस कथन की विवेचना कीजिए? 6

अथवा

"शाहजहाँ का काल मुगल इतिहास का स्वर्ण युग था।" क्या आप सहमत हैं? इस उत्तर के समर्थन में कारण दीजिए। 6

2. "राजा राममोहन रायं भारतीय पुनर्जागरण के जनक थे।" विवेचना कीजिए। 6

अथवा

"1947 में सम्प्रदायवाद भारतीय विभाजन का कारण था।" क्या आप सहमत हैं? विवेचना कीजिए। 6

3. लार्ड विलियम बेन्टिंक के सुधारों की विवेचना कीजिए। 6

अथवा

भारत के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के कारणों की विवेचना कीजिए। 6

4. भारत सरकार के अधिनियम (गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट) 1935 के प्रमुख प्रावधानों का विवेचन कीजिए। 6

अथवा

'भारत छोड़ो आन्दोलन' के क्या कारण थे? वह क्यों सफल रहा? 6

5. देशी रियासतों (रजवाड़ों) के एकीकरण में सरदार पटेल के उपलब्धियों की विवेचना कीजिए। 6

अथवा

भारतीय विदेश नीति के निर्माण में पंडित जवाहरलाल नेहरू के योगदान की विवेचना कीजिए। 6

खण्ड - 'ख' (अति लघु-उत्तरीय प्रश्न)

निम्नलिखित भवनों एवं कला आदि पर टिप्पणियाँ लिखिए।

6. बुलन्द दरवाजा। 1
7. आगरा की मोती मस्जिद। 1
8. विक्टोरिया मेमोरियल। 1

खण्ड - 'ग' (लघु-उत्तरीय प्रश्न)

9. शेरशाह की भू-राजस्व व्यवस्था की दो विशेषताओं की विवेचना कीजिए। 1+1
10. अकबर के अधीन मुगल स्थापत्य की दो प्रमुख विशेषताओं को इंगित कीजिए। 1+1
11. भारतीय नवजागरण के विकास के दो कारणों की विवेचना कीजिए। 1+1
12. लार्ड कार्नवालिस के 'स्थायी बन्दोबस्त' की दो कमियों (दोषों) का उल्लेख कीजिए। 1+1
13. टोडरमल क्यों प्रसिद्ध था? 2
14. लार्ड रिपन को 'अच्छा रिपन' क्यों कहा जाता है? 2

खण्ड - 'घ'

15. निम्नलिखित ऐतिहासिक तिथियों से सम्बन्धित घटनाओं का उल्लेख कीजिए। प्रत्येक तिथि के लिए $\frac{1}{2}$ अंक निर्धारित है:

(क) 1540 ई. (ख) 1600 ई. (ग) 1658 ई. (घ) 1761 ई. (ङ) 1793 ई.
(च) 1919 ई. (छ) 1950 ई. (ज) 1952 ई. (झ) 1962 ई. (ञ) 1965 ई.

2007 (उत्तर प्रदेश) 358 (KS)

नोट : सभी प्रश्न अनिवार्य हैं।

खण्ड 'क' (दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न)

1. निम्नलिखित ऐतिहासिक तिथियों से सम्बन्धित घटनाओं का उल्लेख कीजिए।
   (क) 1527 ई. (ख) 1567 ई. (ग) 1605 ई. (घ) 1658 ई. (ङ) 1680 ई.
   (च) 1885 ई. (छ) 1907 ई. (ज) 1922 ई. (झ) 1942 ई. (ञ) 1947 ई.

खण्ड - 'ख' (अति लघु-उत्तरीय प्रश्न)

निम्नलिखित भवनों एवं कला आदि पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।

2. बुलन्द दरवाजा की दो विशेषताएँ। 1
3. ताज महल। 1
4. संसद भवन। 1

खण्ड - 'ग' (लघु-उत्तरीय प्रश्न)

5. इबादतखाना के महत्व का वर्णन कीजिए। 2
6. नूरजहाँ के महत्त्व की विवेचना कीजिए। 2
7. 'चौथ' और 'सरदेश मुखी' क्या थे? 1+1
8. 'अंग्रजों की आर्थिक शोषण की नीति' पर टिप्पणी लिखिए। 2
9. "भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना का मुख्य उद्देश्य अंग्रेजी सामाज्य को खतरे से बचाना था।" टिप्पणी कीजिए। 2
10. माउन्टबेटन योजना (3 जून, 1947) के चार महत्वपूर्ण बिन्दुओं को बताइए। ½ + ½ + ½ + ½ = 2

खण्ड - 'घ' (दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न)

11. "एक शासक के रूप में अकबर की सबसे बड़ी विशेषता (सफलता) यह थी की उसने भिन्न-भिन्न राज्यों, विभिन्न जातियों पर विभिनन धर्मां के समूह को एक सूत्र में पिरो दिया" विवेचना कीजिए 6

    अथवा

    "शाहजहाँ का शासनकाल संभवतः भारतीय इतिहास का सर्वाधिक समृद्धशाली युग था।" इस कथन की विवेचना कीजिए। 6

12. "शिवाजी एक कुशल सेनानायक और सफल प्रशासक था।" विवेचना कीजिए। 6

    अथवा

    "राजा राममोहन राय भारतीय नवजागरण के अग्रदूत थे।" व्याख्या कीजिए। 6

13. गांधी के असहयोग आन्दोलन के कार्यक्रम तथा पद्धति की विवेचना कीजिए। 3+3

    अथवा

    गांधीजी के नेतृत्व में सविनय अवज्ञा आन्दोलन का विवरण दीजिए। 6

14. भारत में सम्प्रदायवाद के विकास पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए। 6

    अथवा

    भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में सुभाषचन्द्र बोस के योगदान का मूल्यांकन कीजिए। 6

15. सरदार बल्लभभाई पटेल तथा भारत का राजनीतिक एकीकरण पर एक निबन्ध लिखिए।6

    अथवा

    भारतीय विदेश नीति की प्रमुख विशेषताएँ बताइए। क्या हम इसे सफल मान सकते हैं? 6

2008 (उत्तर प्रदेश)

खण्ड 'क' (बहुविकल्पीय प्रश्न)

1. चौसा का युद्ध कब हुआ? 1

   (क) 1534 ई. (ख) 1539 ई. (ग) 1542 ई. (घ) 1545 ई.

2. पानीपत का तीसरा युद्ध कब लड़ा गया? 1

   (क) 1526 ई. (ख) 1556 ई. (ग) 1665 ई. (घ) 1761 ई.

3. 'असहयोग आंदोलन' कब प्रारम्भ हुआ? 1

   (क) 1920 ई. (ख) 1921 ई. (ग) 1922 ई. (घ) 1923 ई.

4. 10वीं पंचवर्षीय योजना कब प्रारम्भ हुई? 1

   (क) 2000 ई. (ख) 2001 ई. (ग) 2002 ई. (घ) 2003 ई.

5. तेरहवाँ निर्गुट शिखर सम्मेलन कब हुआ? 1

   (क) 2002 ई. (ख) 2003 ई. (ग) 2004 ई. (घ) 2005 ई.

खण्ड - 'ख' (अति लघु-उत्तरीय प्रश्न)

6. अकबर द्वारा निर्मित किन्हीं दो प्रमुख किलों के नाम लिखिए। 1
7. भारत में नवजागरण का जनक किसे कहा जाता है? 1
8. द्वैध शासन किसने समाप्त किया? 1

खण्ड - 'ग' (लघु-उत्तरीय प्रश्न)

9. अकबर का इबादतखाना क्या था? संक्षेप में लिखिए। 2
10. मुगल साम्राज्य के पतन के दो प्रमुख कारण स्पष्ट कीजिए। 2
11. शिवाजी की शासन पद्धति में अष्ट प्रधान कौन थे? 2
12. हैदर अली की दो प्रमुख उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए। 2
13. डांडी यात्रा कब प्रारम्भ हुई? इसका क्या महत्व था? 2
14. 'पंचशील' के दो सिद्धान्त लिखिए। 2

खण्ड - 'घ' (दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न)

15. हुमायूँ की असफलता के कारणों का परीक्षण कीजिए। क्या इसके लिए वह स्वयं उत्तरदायी था? कारण लिखिए। 6

    अथवा

    अकबर की राजपूत नीति क्या थी? उसका उसने साम्राज्य विस्तार के लिए किस प्रकार उपयोग किया? 6

16. "शाहजहाँ का युग मुगलकाल का स्वर्ण युग था"। विस्तारपूर्वक समझाइए। 6

    अथवा

    शिवाजी के शासन-प्रबन्ध का वर्णन कीजिए। 6

17. "लार्ड विलियम बैंटिक का शासनकाल सामाजिक सुधारों के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण समय था।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं? 6

अथवा

1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया की एक्ट की प्रमुख धाराओं का विश्लेषण कीजिए। 6

18. सविनय अवज्ञा आंदोलन क्यों प्रारम्भ किया गया? इसके क्या परिणाम हुए? 6

अथवा

स्वतंत्र भारत की विदेश नीति के प्रमुख सिद्धान्त क्या हैं? उन्हें पूरा करने में भारत को कहाँ तक सफलता मिली है? 6

19. भारतीय संविधान द्वारा नागरिकों को प्रदत्त मूल अधिकारों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

अथवा

पंचवर्षीय योजनाओं पर एक आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए। 6

2009 (उत्तर प्रदेश)

निर्देश- सभी प्रश्न अनिवार्य हैं।

(दीर्घ उत्तरीय प्रश्न)

1. "बाबर एक सैन्य नेता तथा कुशल प्रशासक था।' क्या आप इस दृष्टिकोण से सहमत हैं? अपने उत्तर के समर्थन में तर्क प्रस्तुत कीजिए। 3+3

अथवा

"अकबर एक राष्ट्रीय सम्राट था।" इस कथन के आलोक में उसकी उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए। 6

2. "कारतूस प्रकरण ही 1857 की क्रान्ति का तात्कालिक कारण था।" इस कथन के आलोक में 1857 की क्रान्ति के कारणों की विवेचना कीजिए। 6

अथवा

"भारतीय पुनर्जागरण का उदय अनेक कारणों से हुआ।" टिप्पणी कीजिए। 6

3. प्रशासन-व्यवस्था के विशेष सन्दर्भ में, शेरशाह की उपलब्धियों की विवेचना कीजिए। 6

अथवा

क्या शाहजहाँ के काल को मुगल इतिहास का स्वर्ण युग माना जा सकता है? क्यों? 6

4. शिवाजी के प्रशासन पर प्रकाश डालिए। 6

अथवा

भारत में आंग्ल ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सुदृढ़ीकरण के कारणों की विवेचना कीजिए। 6

5. 1947 ई. में भारत के विभाजन के कारणों की विवेचना कीजिए। 6

अथवा

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत के राजनीतिक एकीकरण की प्रक्रिया पर प्रकाश डालिए। 6

(अति लघु-उत्तरीय प्रश्न)

निम्नलिखित भवनों एवं कला आदि पर टिप्पणियाँ लिखिए–

6. बुलन्द दरवाजा। 1
7. मुगल चित्रकला। 1
8. संसद भवन। 1

(लघु-उत्तरीय प्रश्न)

9. औरंगजेब की अलोकप्रियता के दो कारणों की विवेचना कीजिए। 1+1
10. पानीपत के तृतीय युद्ध में मराठों की पराजय के दो कारणों को समझाइए। 1+1
11. लार्ड विलियम बैंटिंक के दो महत्वपूर्ण सुधारों पर प्रकाश डालिए। 1+1
12. दयानन्द सरस्वती के दो महत्वपूर्ण सुधारों की विवेचना कीजिए। 1+1
13. स्वतन्त्रता के समय भारत ने किन दो प्रमुख समस्याओं का सामना किया? उनका निस्तारण कैसे किया गया? 1+1
14. 'गुट निरपेक्षता' से आप क्या समझते हैं? 1+1
15. निम्नलिखित ऐतिहासिक तिथियों से सम्बन्धित घटनाओं का उल्लेख कीजिए।

(i)	1540 ई.	½	(ii)	1575 ई.	½
(iii)	1628 ई.	½	(iv)	1707 ई.	½
(v)	1720 ई.	½	(vi)	1761 ई.	½
(vii)	1773 ई.	½	(viii)	1853 ई.	½
(ix)	1919 ई.	½	(x)	1950 ई.	½

बाबर + हुमाँयू + अकबर + जहाँगीर +
शाहजहाँ + औरंगजेब

मन्दिर का निर्माण हम सबका हो
की उपासना से पाते हम
ारक पाणिनि क